KALYAN

Year 85 No. 1 2011

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १७० रुपये

वर्ष ८५

दानमहिमा-अङ्क

संख्या १

गीताप्रेस, गोरखपुर

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,१५,०००)

धर्माचरण ही सच्चा मित्र है

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यं
आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।
प्राणास्तृणाग्रजलविन्दुसमा नराणां
धर्मः सदा सुहृदहो न विरोधनीयः॥

इस सम्पूर्ण पृथ्वीका आधिपत्य (सम्पत्ति-अधिकारादि) हवामें उड़नेवाले बादलके समान (क्षणभंगुर) है, यह धन-सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा सदा बनी ही रहेगी—ऐसा समझना केवल भ्रान्तिमात्र है। इन्द्रियोंके विषय-भोग केवल आरम्भमें ही अर्थात् केवल भोगकालमें ही मधुर लगनेवाले हैं, उनका अन्त अत्यन्त दुःखदायी है। प्राण तिनकेकी नोकपर अटके हुए जलकी बूँदके समान अस्थिर हैं, किस क्षण निकल जायँ; कोई भरोसा नहीं, अहो! एकमात्र धर्माचरण—सत्कर्मानुष्ठान ही ऐसा है, जो मनुष्योंका सनातन एवं सच्चा मित्र है, अतः उसका कभी विरोध (तिरस्कार) नहीं करना चाहिये, अपितु अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक दानधर्मादि सत्कर्मानुष्ठानके अनुपालनमें सतत संलग्न रहना चाहिये।

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते। * कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें।

वार्षिक शुल्क *
भारतमें १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs. 2000)
(Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क *
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा गोदान
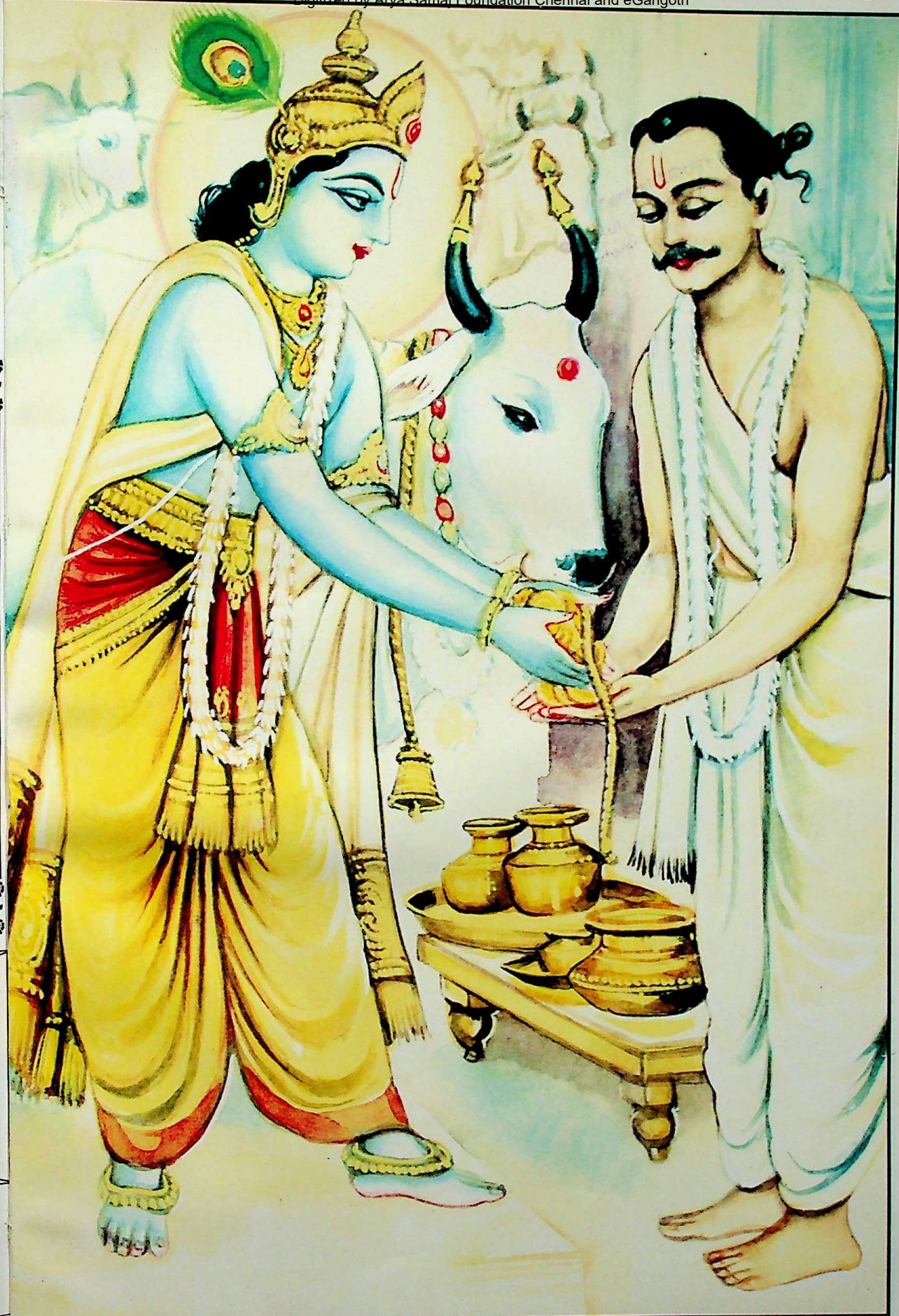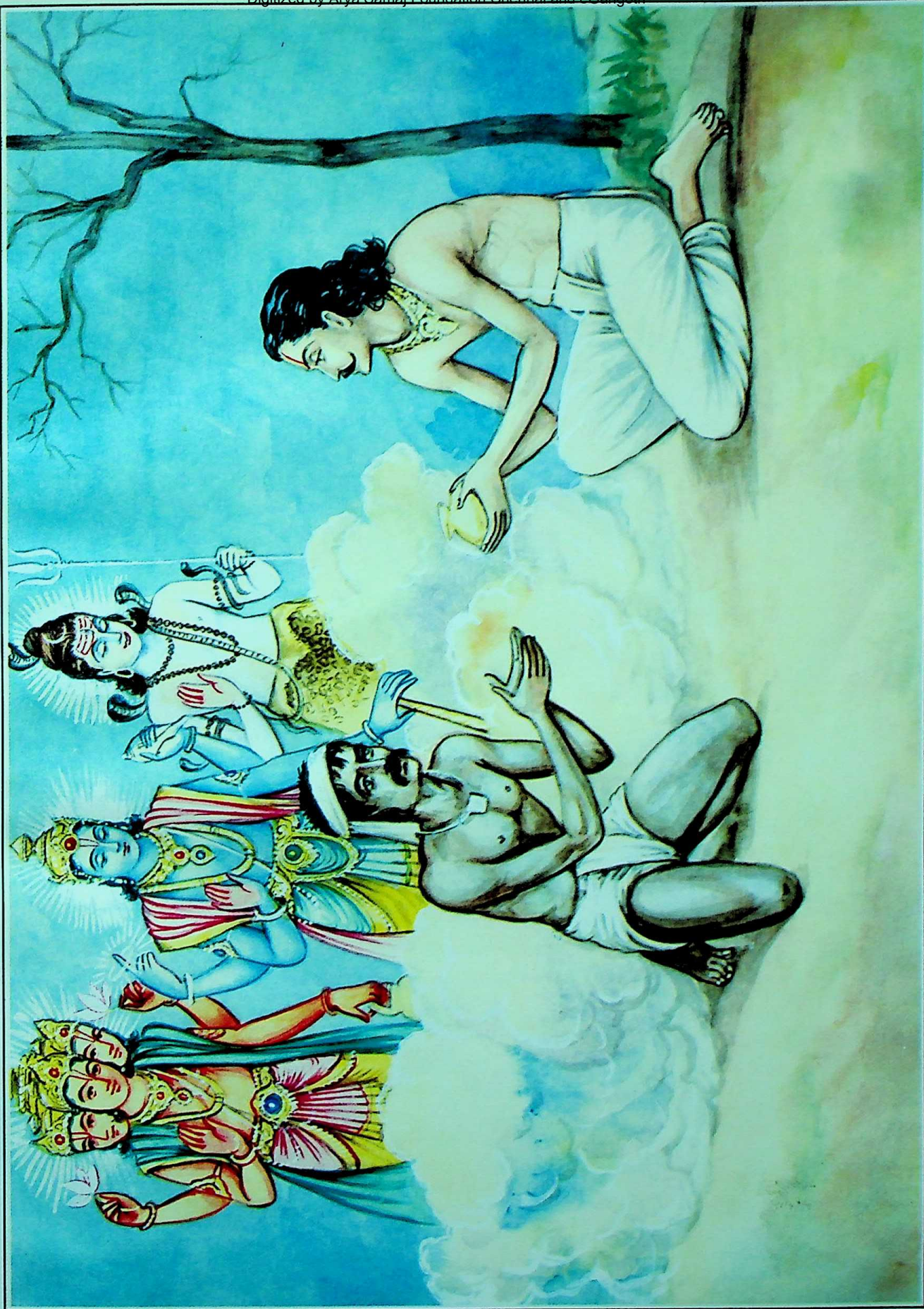
महर्षि दधीचिका अस्थिदान

महाराज रन्तिदेवका आदर्श दान

महर्षि दधीचिका अस्थिदान

दानवीर राजा बलिकी यज्ञशालामें भगवान् वामन

माता अन्नपूर्णाद्वारा भगवान् शिवको भिक्षादान

त्रिविध दान

श्रीरामका महाराज दशरथके निमित्त पिण्डदान
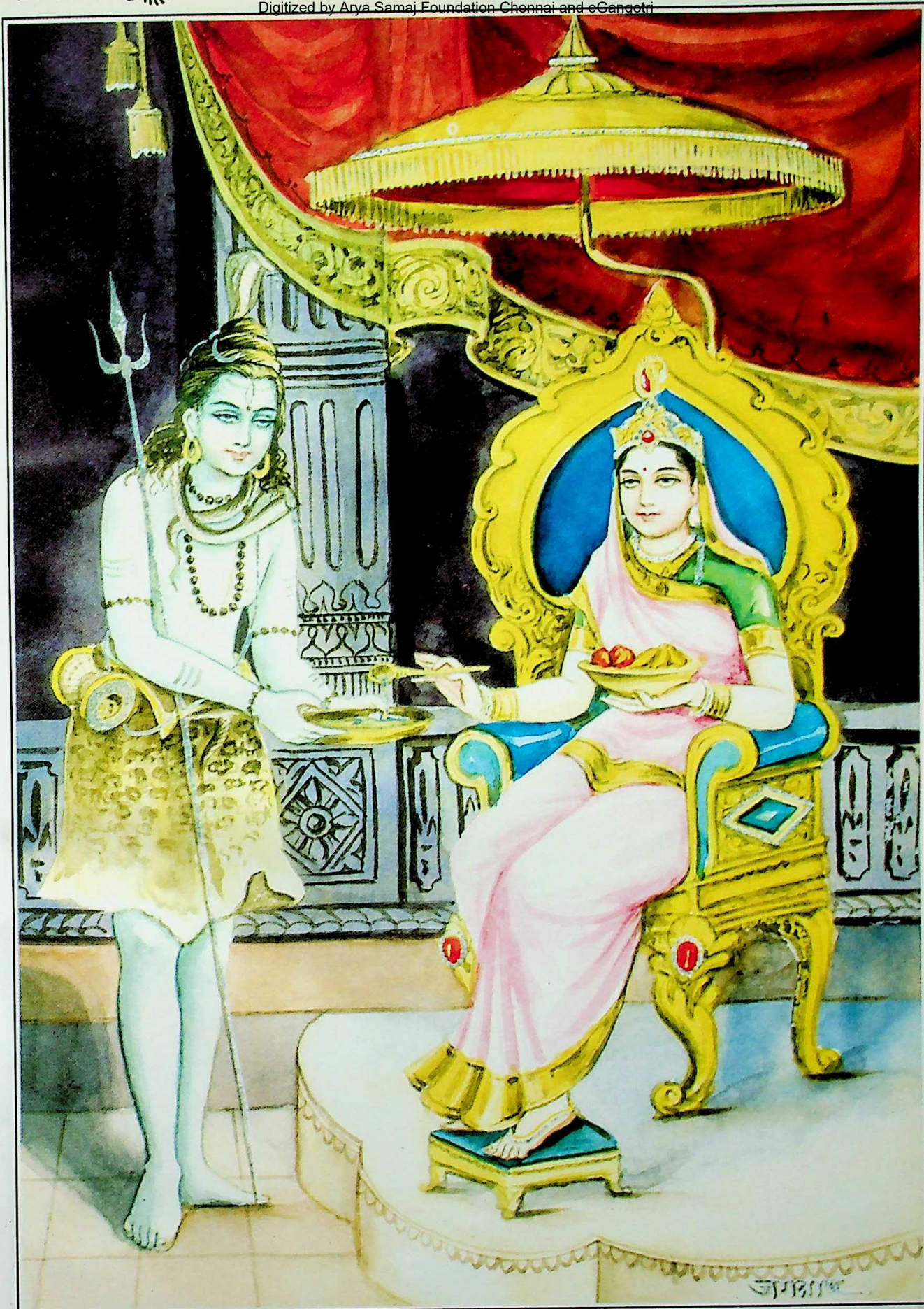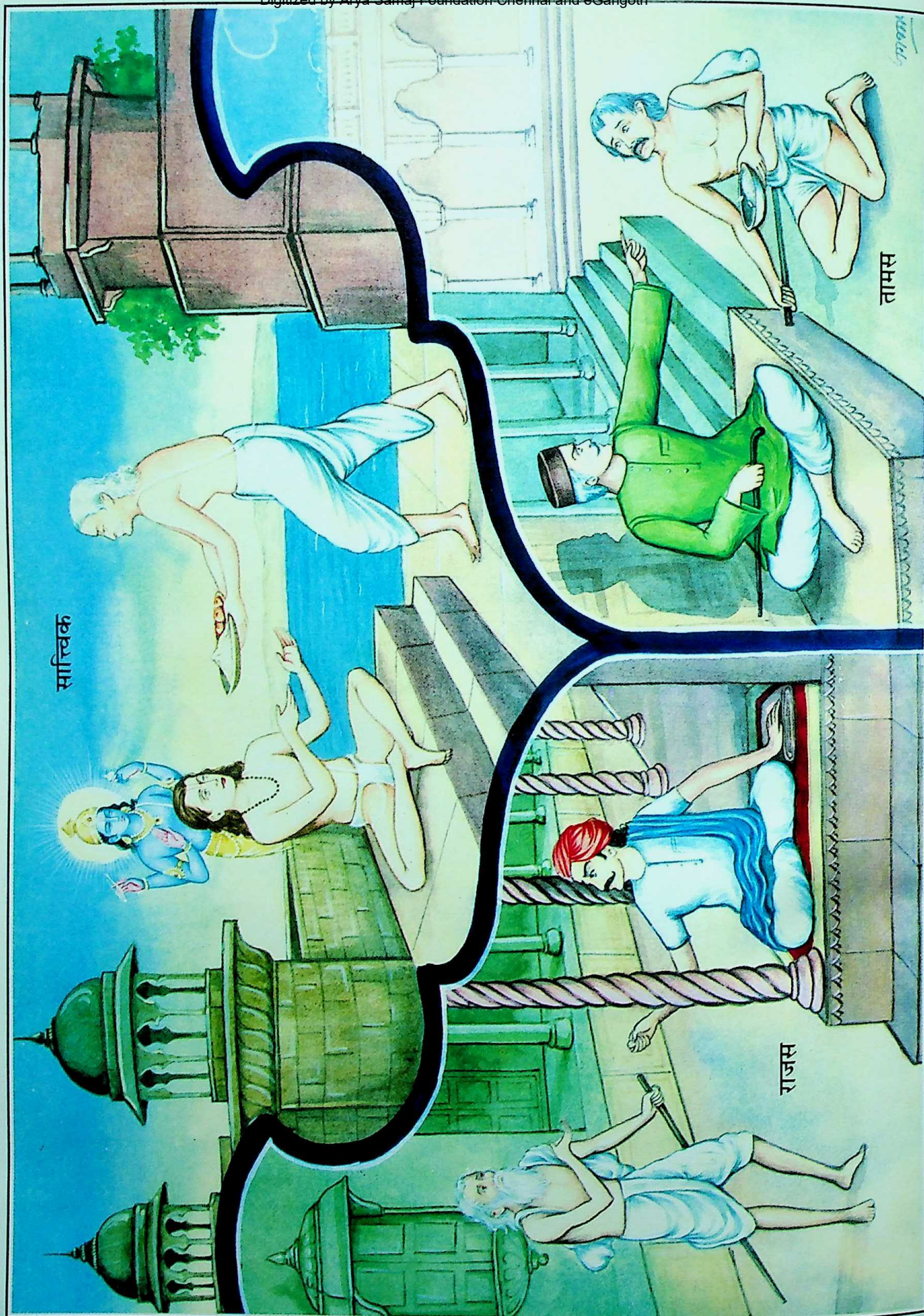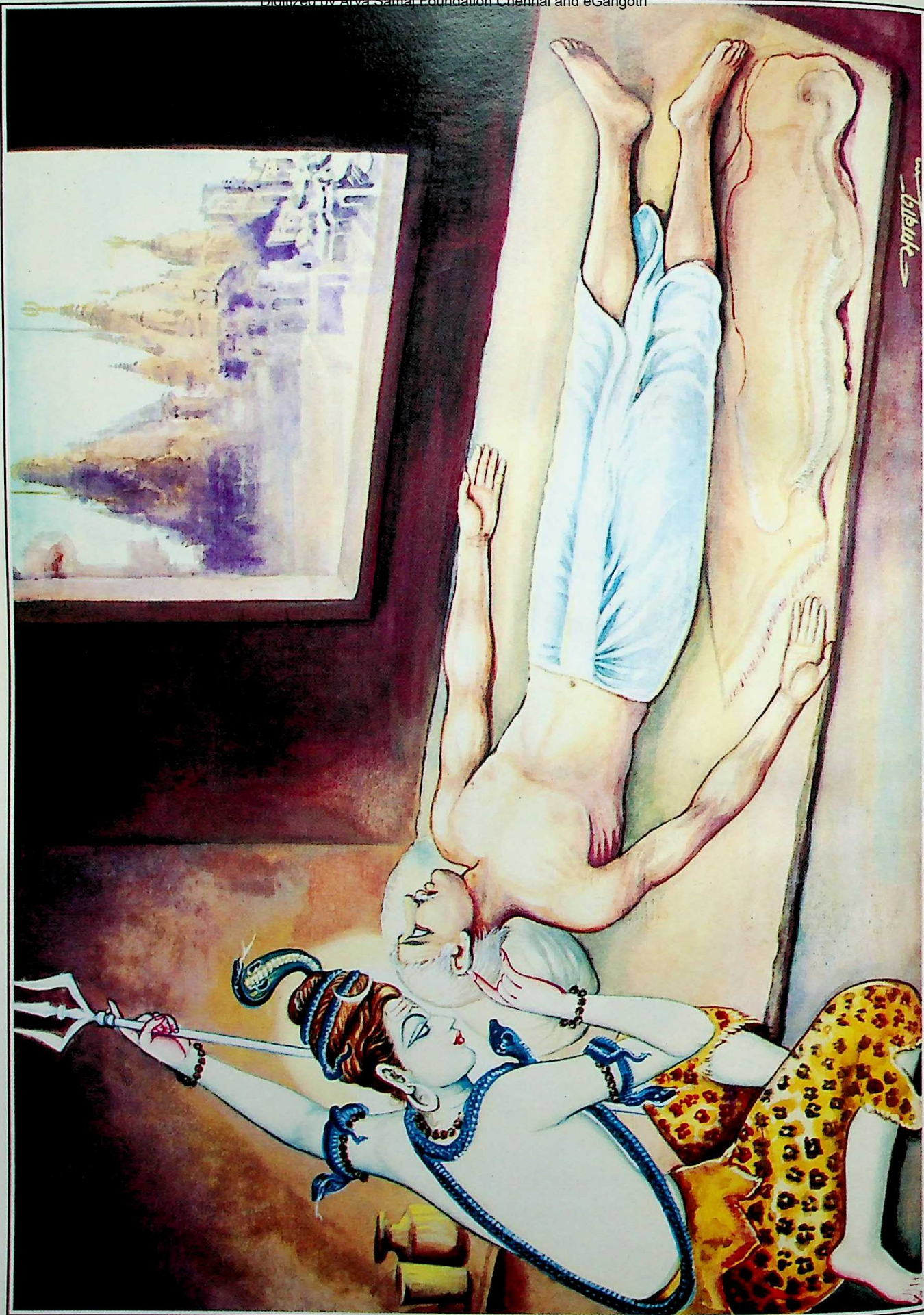
भगवान् शिवद्वारा काशीमें मुक्तिदान

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

वर्ष ८५ | गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, जनवरी २०११ ई० | संख्या १
पूर्ण संख्या १०१०

काशीमें भगवान् शिवका मुक्तिदान

रामेण सदृशो देवो न भूतो न भविष्यति॥×××
अतएव रामनाम काश्यां विश्वेश्वरः सदा। स्वयं जप्त्वोपदिशति जन्तूनां मुक्तिहेतवे॥
संसारार्णवसंमग्नं नरं यस्तारयेन्मनुः। स एव तारकस्त्वत्र राममन्त्रः प्रकथ्यते॥
×××अन्तकाले नृणां रामस्मरणं च मुहुर्मुहुः॥
इति कुर्वन्त्युपदेशं मानवा मुक्तिहेतवे। अन्यच्चापि शववाहैः सदा लोकैर्मुहुर्मुहुः॥
रामनामैव मुक्त्यर्थं शवस्य पथि कीर्त्यते। रामनाम्नः परो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति॥

रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न होगा ही।××× इसीलिये काशीमें विश्वनाथ भगवान् शंकर निरन्तर 'राम'नामका स्वयं जप करते हैं और प्राणियोंकी मुक्तिके लिये उन्हें राममन्त्रका उपदेश दिया करते हैं। संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्यको जो मन्त्र तार देता है, वही तारकमन्त्र राममन्त्र कहलाता है।××× मनुष्योंकी मुक्तिके लिये लोगोंके द्वारा अन्तिम समयमें उनसे बार-बार यही कहा जाता है कि रामका स्मरण करो, रामका स्मरण करो। इसी प्रकार शव-वहन करनेवाले लोगोंके द्वारा मृतप्राणीकी मुक्तिके लिये शवयात्रामें बार-बार रामनामका ही उच्चारण किया जाता है। रामनामसे श्रेष्ठ कोई मन्त्र न आजतक हुआ है और न होगा ही। [आनन्दरामायण]

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ८५वें वर्ष—सन् २०११ का यह विशेषाङ्क *'दानमहिमा-अङ्क'* आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४८० पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये, जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो उक्त वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोगी भी हो सकेंगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी सदस्य-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पता एवं पिन-कोड आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)
१०	योगाङ्क	१३०	३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१५०	६७	शिवोपासनाङ्क	१००
१९	सं० पद्मपुराण	१७०	४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	११०	६९	गो-सेवा-अङ्क	८५
२०	गो-अङ्क	१३०				७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५
२१	सं० मार्कण्डेयपुराण	६०				७४	सं० गरुडपुराण	१२०
२१	सं० ब्रह्मपुराण	८५	४५	नरसिंहपुराण-सानुवाद	७०	७५	आरोग्य-अङ्क (संवर्धित सं०)	१५०
२५	सं० स्कन्दपुराण	२३०	४९	श्रीहनुमान-अङ्क	१००	७७	भगवत्प्रेम-अङ्क	१००
२६	भक्त-चरिताङ्क	१६०	५१	सं० श्रीवराहपुराण	७५	७९	देवीपुराण [महाभागवत] (सानुवाद)-शक्तिपीठाङ्क	९०
२८	सं० नारदपुराण	१४०	५३	सूर्याङ्क	८०			
३४	सं० देवीभागवत (मोटा टाइप)	१७०	५६	वामनपुराण-सानुवाद	९०	८२	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध)	१००
३५	सं० योगवासिष्ठ	१२०	५८-५९	श्रीमत्स्यमहापुराण-सानुवाद	१८५	८३	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (उत्तरार्द्ध)	१००
३६	सं०शिवपुराण (बड़ा टाइप)	१५०	६६	सं० भविष्यपुराण	१२०			

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

श्रीहरि:

'दानमहिमा-अङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

आशीर्वाद—

विषय	पृष्ठ-संख्या

दानतत्त्वविमर्श—

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

सत्साहित्यमें दान-निरूपण—

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

(सादे चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

मंगलाशंसा

आभ्युदयिक अभ्यर्थना

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि। यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १॥

हे सूर्य! उदयको प्राप्त होइये, उदयको प्राप्त होइये और अपने तेजसे मुझे प्रकाशित कीजिये। जिन प्राणियोंको मैं देखता हूँ और जिनको नहीं भी देखता—उनके विषयमें मुझे सुमतिवाला कीजिये। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ १॥

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ २॥

हे इन्द्र! आप हम सबको बड़े सौभाग्यके लिये न दबनेवाले प्रकाशोंसे सब ओरसे सुरक्षित रखें। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ २॥

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः। तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ ३॥

हे देव! आप इन्द्र हैं, आप महेन्द्र हैं, आप लोक—प्रकाशपूर्ण हैं, आप प्रजापालक हैं, यज्ञ आपके लिये फैलाया जाता है और हवन करनेवाले आपके लिये आहुतियाँ देते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ ३॥

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्। भूतं ह भव्यं आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ ४॥

हे देव! आप असत्‌में अर्थात् प्राकृतिक विश्वमें सत् अर्थात् आत्मा हैं, सत्‌में अर्थात् आत्मामें उत्पन्न हुए जगत् हैं, भूत होनेवालेमें आश्रित हैं, होनेवाले भूतमें प्रतिष्ठित हुए हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ ४॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि। स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम्॥ ५॥

आप तेजस्वी हैं, आप प्रकाशमय हैं, जैसे आप तेजस्वी हैं, वैसे ही मैं तेजसे प्रकाशित होऊँ॥ ५॥

रुचिरसि रोचोसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय॥ ६॥

आप प्रकाशमान हैं, आप देदीप्यमान् हैं, जैसे आप तेजसे तेजस्वी हैं, वैसे ही मैं पशुओं और ज्ञानके तेजसे प्रकाशित होऊँ॥ ६॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः। विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥ १०॥

उदित होनेवालेको नमस्कार है, ऊपर आनेवालेके लिये नमस्कार है, उदयको प्राप्त हुएको नमस्कार है, विशेष प्रकाशमानको नमस्कार है, अपने तेजसे चमकनेवालेको नमस्कार है, उत्तम प्रकाशयुक्तको नमस्कार है॥ ७॥

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः। विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥ ८॥

अस्त होनेवालेको नमस्कार है, अस्तको जानेवालेको नमस्कार है, अस्त हुएको नमस्कार है, विशेष तेजस्वी, उत्तम प्रकाशमान और अपने तेजसे प्रकाशित होनेवालेको नमस्कार है॥ ८॥ [अथर्ववेद]

धनान्नदानसूक्त

[ऋग्वेदके दशम मण्डलका ११७वाँ सूक्त जो कि 'धनान्नदानसूक्त' के नामसे प्रसिद्ध है, दानकी महत्ता प्रतिपादित करनेवाला एक भव्य सूक्त है। इसके मन्त्र उपदेशपरक एवं नैतिक शिक्षासे युक्त हैं। सूक्तसे यही तथ्य प्राप्त होता है कि लोकमें दान तथा दानीकी अपार महिमा है। धनीके धनकी सार्थकता उसकी कृपणतामें नहीं, वरन् दानशीलतामें मानी गयी है। यहाँ मन्त्रोंको अनुवादसहित दिया जा रहा है—]

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते॥ १॥
य आध्राय चकमानाय पित्वो ऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते॥ २॥
स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्॥ ३॥
न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्॥ ४॥
पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः॥ ५॥
मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥ ६॥
कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः।
वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात्॥ ७॥
एकपाद् भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः॥ ८॥
समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः संमातरा चिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् संतौ न समं पृणीतः॥ ९॥

देवोंने भूख देकर प्राणियोंका (लगभग) वध कर डाला। जो अन्न देकर भूखकी ज्वाला शान्त करे, वही दाता है। भूखेको न देकर जो स्वयं भोजन करता है, एक दिन मृत्यु उसके प्राणोंको हर ले जाती है। देनेवालेका धन कभी नहीं घटता, उसे ईश्वर देता है। न देनेवाले कृपणको किसीसे सुख प्राप्त नहीं होता॥ १॥ अन्नकी इच्छासे द्वारपर आकर हाथ फैलाये विकल व्यक्तिके प्रति जो अपना मन कठोर बना लेता है और अन्न होते हुए भी देनेके लिये हाथ नहीं बढ़ाता तथा उसके सामने ही उसे तरसाकर खाता है, उस महाक्रूरको कभी सुख प्राप्त नहीं होता॥ २॥ घर आकर माँग रहे अति दुर्बल शरीरके याचकको जो भोजन देता है, उसे यज्ञका पूर्ण फल प्राप्त होता है तथा वह अपने शत्रुओंको भी मित्र बना लेता है॥ ३॥ मित्र अपने अंगके समान होता है। जो अपने मित्रको माँगनेपर भी नहीं देता, वह उसका मित्र नहीं है। उसे छोड़कर दूर चले जाना चाहिये। वह उसका घर नहीं है। किसी अन्य देनेवालेकी शरण लेनी चाहिये॥ ४॥ जो याचकको अन्नादिका दान करता है, वही धनी है। उसे कल्याणका शुभ मार्ग

प्रशस्त दिखायी देता है। वैभव-विलास रथके चक्रकी भाँति आते-जाते रहते हैं। किसी समय एकके पास सम्पदा रहती है तो कभी दूसरेके पास रहती है॥ ५॥ जिसका मन उदार न हो, वह व्यर्थ ही अन्न पैदा करता है। संचय ही उसकी मृत्युका कारण बनता है। जो न तो देवोंको और न ही मित्रोंको तृप्त करता है, वह वास्तवमें पापका ही भक्षण करता है॥ ६॥ हलका उपकारी फाल खेतको जोतकर किसानको अन्न देता है। गमनशील व्यक्ति अपने पैरके चिह्नोंसे मार्गका निर्माण करता है। बोलता हुआ ब्राह्मण न बोलनेवालोंसे श्रेष्ठ होता है॥ ७॥ एकांशका धनिक दो अंशके धनीके पीछे चलता है। दो अंशवाला भी तीन अंशवालेके पीछे छूट जाता है। चार अंशवाला पंक्तिमें सबसे आगे चलता हुआ सबको अपनेसे पीछे देखता है। अतः वैभवका मिथ्या अभिमान न करके दान करना चाहिये॥ ८॥ दोनों हाथ एकसमान होते हुए भी समान कार्य नहीं करते। दो गायें समान होकर भी समान दूध नहीं देतीं। दो जुड़वाँ सन्तानें समान होकर भी पराक्रममें समान नहीं होतीं। उसी प्रकार एक कुलमें उत्पन्न दो व्यक्ति समान होकर भी दान करनेमें समान नहीं होते॥ ९॥ [ऋक्० १०। ११७]

दान-सुभाषितावली

यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने।
तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥

जो विशिष्ट सत्पात्रों को दान देता है और जो कुछ अपने भोजन-आच्छादनमें प्रतिदिन व्यवहृत करता है, उसीको मैं उस व्यक्तिका वास्तविक धन या सम्पत्ति मानता हूँ, अन्यथा शेष सम्पत्ति तो किसी अन्यकी है, जिसकी वह केवल रखवालीमात्र करता है।

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि॥

दानमें जो कुछ देता है और जितनेमात्रका वह स्वयं उपभोग करता है, उतना ही उस धनी व्यक्तिका अपना धन है। अन्यथा मर जानेपर उस व्यक्तिके स्त्री, धन आदि वस्तुओंसे दूसरे लोग आनन्द मनाते हैं अर्थात् मौज उड़ाते हैं। तात्पर्य यह है कि सावधानीपूर्वक अपनी धन-सम्पत्तिको दान आदि सत्कर्मोंमें व्यय करना चाहिये।

किं धनेन करिष्यन्ति देहिनोऽपि गतायुषः।
यद्वर्धयितुमिच्छन्तस्तच्छरीरमशाश्वतम्॥

जब आयुका एक दिन अन्त निश्चित है तो फिर धनको बढ़ाकर उसे रखनेकी इच्छा करना मूर्खता ही है, वह धन व्यर्थ ही है, क्योंकि जिस शरीरकी रक्षाके लिये धन बढ़ानेका उपक्रम किया जाता है—वह शरीर ही अस्थिर है, नश्वर है, इसलिये धर्मकी ही वृद्धि करनी चाहिये, धनकी नहीं। धनके द्वारा दान आदि करके धर्मकी वृद्धिका उपक्रम करना चाहिये, निरन्तर धन बढ़ानेसे कोई लाभ नहीं।

अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

'शरीरधारियोंके शरीर नश्वर हैं और धन भी सदा साथ रहनेवाला नहीं है; साथ ही मृत्यु भी निकट ही सिरपर बैठी है'—ऐसा समझकर प्रतिक्षण धर्मका संग्रह—धर्माचरण ही करना चाहिये; क्योंकि कालका क्या ठीक कब आ जाय, अतः अपने धन एवं समयका सदा सदुपयोग ही करना चाहिये।

यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये।
यत् परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते॥

जो धन धर्म, सुखभोग या यश—किसी काममें नहीं आता और जिसे छोड़कर एक दिन यहाँसे अवश्य ही चले जाना है, उस धनका दान आदि धर्मोंमें उपयोग क्यों नहीं किया जाता?

जीवन्ति जीविते यस्य विप्रा मित्राणि बान्धवाः।
जीवितं सफलं तस्य आत्मार्थे को न जीवति॥

जिस व्यक्तिके जीनेसे ब्राह्मण, साधु-सन्त, मित्र, बन्धु-बान्धव आदि सभी जीते हैं—जीवन धारण करते हैं, उसी व्यक्तिका जीवन सार्थक है—सफल है; क्योंकि अपने लिये कौन नहीं जीता? पशु-पक्षी आदि क्षुद्र प्राणी भी जीवित रहते ही हैं, अतः स्वार्थी न बनकर परोपकारी बनना चाहिये।

क्रिमयः किं न जीवन्ति भक्षयन्ति परस्परम्।
परलोकाविरोधेन यो जीवति स जीवति॥

कीड़े-मकोड़े भी एक-दूसरेका भक्षण करते हुए क्या जीवन नहीं धारण करते? पर यह जीवन प्रशंसनीय नहीं है। परलोकके लिये दान-धर्मपूर्वक जिया गया जो जीवन है, वही सच्चा जीवन है।

पशवोऽपि हि जीवन्ति केवलात्मोदरम्भराः।
किं कायेन सुपुष्टेन बलिना चिरजीविनः॥

केवल अपने पेटको भरकर पशु भी किसी प्रकार अपना जीवन धारण करते ही हैं। पुष्ट होकर तथा बली होकर भी जो लम्बे समयतक जीता है, धर्म नहीं करता—ऐसे निरर्थक जीवनसे क्या लेना-देना! वह तो पशुके समान ही जीना है।

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥

अपने भोजनके ग्रासमेंसे भी आधा या चतुर्थ भाग आवश्यकतावालों या माँगनेवालोंको क्यों नहीं दे दिया जाता; क्योंकि इच्छानुसार धन तो कब किसको प्राप्त होनेवाला है, अर्थात् अबतक तो किसीको प्राप्त नहीं हुआ है और न आगे किसीके पास होगा। यह नहीं सोचना चाहिये कि इतना धन और आ जायगा तो फिर मैं दान-पुण्य करूँगा। अतः जितना भी प्राप्त हो, उसीमें सन्तोषकर उसीमेंसे दान इत्यादि सब धर्मोंका अभ्यास करना चाहिये।

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥

शूरवीर व्यक्ति तो सौमेंसे खोजनेपर एक प्राप्त हो जाता है, हजारमें ढूँढ़नेपर एक विद्वान् व्यक्ति भी मिल जाता है, इसी प्रकार एक लाखमें सभापर नियन्त्रण करनेवाला कोई वक्ता भी प्राप्त हो जाता है, किंतु असली दाता खोजनेपर भी मिल जाय, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, अर्थात् दानी व्यक्ति संसारमें सबसे अधिक दुर्लभ है।

न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पण्डितः।
इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पण्डितः॥

शूरवीर वही है जो वास्तवमें इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करता है, युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला असली शूरवीर नहीं है। मात्र शास्त्रोंका अध्ययन करनेवाला ज्ञानी नहीं है, बल्कि तदनुकूल धर्माचरण करनेवाला ही सच्चा ज्ञानी है।

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्।
सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित्॥

दान सभी उपायोंमें सर्वश्रेष्ठ है। यथोचित रीतिसे दान देनेसे मनुष्य दोनों लोकोंको जीत लेता है।

न सोऽस्ति राजन् दानेन वशगो यो न जायते।
दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्॥

राजन्! ऐसा कोई नहीं है, जो दानद्वारा वशमें न किया जा सके। दानसे देवतालोग भी सदाके लिये मनुष्योंके वशमें हो जाते हैं।

दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम।
प्रियो हि दानवाँल्लोके सर्वस्यैवोपजायते॥

नृपोत्तम! सारी प्रजाएँ दानके बलसे ही पालित होती हैं। दानी मनुष्य संसारमें सभीका प्रिय हो जाता है।

न केवलं दानपरा जयन्ति
भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं
सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः॥

दानपरायण पुरुषश्रेष्ठ केवल एक भूलोकको ही अपने वशमें नहीं करते, प्रत्युत वे अत्यन्त दुर्जय देवराज इन्द्रके लोकको भी, जो देवताओंका निवासस्थान है, जीत लेते हैं।

अदत्तदानाच्च भवेद् दरिद्रो
दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान्नरके प्रयाति
पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥

दान न देनेसे प्राणी दरिद्र होता है। दरिद्र हो जानेपर फिर पाप करता है। पापके प्रभावसे नरकमें जाता है और नरकसे लौटकर पुनः दरिद्र और पुनः पापी होता है।

यदैव जायते श्रद्धा पात्रं सम्प्राप्यते यदा।
स एव पुण्यकालः स्याद्यतः सम्पत्तिरस्थिरा॥

जब कभी भी श्रद्धा उत्पन्न हो जाय और जब भी दानके लिये सुपात्र प्राप्त हो जाय, वही समय दानके लिये पुण्यकाल है; क्योंकि सम्पत्ति अस्थिर है।

यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवैः।
यमलोकपथे तानि ह्युपतिष्ठन्ति चाग्रतः॥

पृथ्वीपर मनुष्योंके द्वारा जो-जो दान दिये जाते हैं, यमलोकके मार्गमें वे सभी आगे-आगे उपस्थित हो जाते हैं।

गृहादर्था निवर्तन्ते श्मशानात्सर्वबान्धवाः।
शुभाशुभं कृतं कर्म गच्छन्तमनुगच्छति॥

धन-सम्पत्ति घरमें ही छूट जाती है। सभी बन्धु-बान्धव श्मशानमें छूट जाते हैं, किंतु प्राणीके द्वारा किया हुआ शुभाशुभ कर्म परलोकमें उसके पीछे-पीछे जाता है।

पितुः शतगुणं पुण्यं सहस्रं मातुरेव च।
भगिनी दशसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम्॥

पिताके उद्देश्यसे किये गये दानसे सौ गुना, माताके उद्देश्यसे किये गये दानसे हजार गुना, बहनके उद्देश्यसे किये गये दानसे दस हजार गुना और सहोदर भाईके निमित्त किये गये दानसे अनन्त गुना पुण्य प्राप्त होता है।

अहन्यहनि याचन्तमहं मन्ये गुरुं यथा।
मार्जनं दर्पणस्येव यः करोति दिने दिने॥

दिन-प्रतिदिन याचना करनेवालेको मैं उस गुरुके समान समझता हूँ, जो दर्पणकी भाँति प्रतिदिन शिष्यका मार्जन करता रहता है, अर्थात् जैसे धूलराशिसे दर्पण मलिन रहता है, वैसे ही शिष्यका अन्तःकरण भी मलिन रहता है, गुरु अपने ज्ञानरूपी प्रकाशसे उसके अन्तःकरणको स्वच्छ कर देता है, वैसे ही याचक भी याचना करते हुए व्यक्तिको यह बोध करा देता है कि यदि दान नहीं दोगे तो मेरी (भिक्षुक)-जैसी स्थिति होगी, अतः दान देते रहना चाहिये। याचक सच्चे एवं हितैषी गुरुके समान है।

आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः।
गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः॥

सैकड़ों कठिन प्रयत्नोंद्वारा प्राप्त तथा प्राणोंसे भी अधिक प्रिय धनकी केवल एकमात्र गति है—दान, उसकी अन्य गतियाँ अर्थात् दान छोड़कर उसका अन्य उपयोग करना विपत्ति ही है।

किं धनेन करिष्यन्ति देहिनो भङ्गुरश्रियाः।
यदर्थं धनमिच्छन्ति तच्छरीरमशाश्वतम्॥

क्षणभरमें ही विनष्ट हो जानेवाले शरीररूपी सम्पदासे सम्पन्न मनुष्य धनसे क्या करेंगे; क्योंकि जिस शरीरके लिये वे धनकी अभिलाषा रखते हैं, वह शरीर तो अशाश्वत है, रहनेवाला ही नहीं है।

न दानादधिकं किञ्चित् दृश्यते भुवनत्रये।
दानेन प्राप्यते स्वर्गः श्रीर्दानेनैव लभ्यते॥

तीनों लोकोंमें दानसे बढ़कर कुछ दिखायी नहीं देता। दानसे दिव्य लोककी प्राप्ति होती है, लक्ष्मी दानके द्वारा ही प्राप्त होती है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम्।

दानको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस चतुर्वर्गकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन बताया गया है।

दानं कामफला वृक्षा दानं चिन्तामणिर्नृणाम्।
दानं पुत्रकलत्राद्यं दानं माता पिता तथा॥

दान अभिलषित फल देनेवाले वृक्षोंके समान है, दान मनुष्योंके लिये चिन्तामणिके समान है अर्थात् जिस वस्तुका चिन्तन किया जाय, वह (दानसे) तत्काल सुलभ हो जाती है। दान पुत्र, स्त्री आदि है तथा दान ही माता-पिता है।

पापकर्मसमायुक्तं पतन्तं नरके नरम्।
त्रायते दानमेकं तु पात्रभूते द्विजे कृतम्॥

नरकमें पड़े हुए पापी व्यक्तिको एकमात्र दान ही बचा सकता है, बशर्ते कि वह दान सत्पात्र ब्राह्मणको दिया गया हो।

न्यायेनार्जनमर्थानां वर्धनं चाभिरक्षणम्।
सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते॥

सभी शास्त्रोंको पढ़कर यही देखा गया है कि न्यायपूर्वक धनका अर्जन करना चाहिये, सत्प्रयत्नसे उसकी वृद्धि करनी चाहिये और उसकी रक्षा भी इसीलिये करनी चाहिये ताकि सत्पात्रमें उसका विनियोग किया जा सके।

यस्य वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनाम्।
नापि कीर्त्यै न धर्माय तस्य वित्तं निरर्थकम्॥

जिसका धन न तो दानमें प्रयुक्त होता है, न लोगोंके उपयोगमें आता है, न यशके लिये होता है और न धर्मार्जनमें विनियुक्त होता है, उसका धन निरर्थक है, निष्प्रयोजन है।

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य सञ्चयात्।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः॥

गौरवकी प्राप्ति दानसे होती है, वित्तके संचयसे नहीं। निरन्तर वर्षा आदिका दान करनेसे बादलोंकी स्थिति ऊपर होती है और जलका संग्रह करनेवाले सागरोंकी स्थिति नीचे रहती है।

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्॥

जिस प्रकार उपार्जित की गयी धन-सम्पदाका त्याग ही उसकी रक्षा है, उसी प्रकार तालाब आदिमें भरे हुए जलका प्रवाह ही उसका रक्षण है।

दानेन भूतानि वशीभवन्ति
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै-
र्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥

दानसे सभी प्राणी वशमें हो जाते हैं, दानसे वैर भी शान्त हो जाते हैं, दानके द्वारा पराया भी बन्धु बन जाता है और दान सभी प्रकारके व्यसनोंको दूर कर देता है।

कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः।
ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम्॥

महादानी कर्णने अपनी त्वचाका दान कर दिया, शिबिने अपने शरीरका मांस दानमें दे दिया, जीमूतवाहनने अपने प्राणोंका दान कर दिया, महर्षि दधीचिने अस्थियोंका दान कर दिया—महात्माओंके लिये कुछ भी अदेय नहीं है।

द्वारं द्वारमटन्तीह भिक्षुकाः पात्रपाणयः।
दर्शयन्त्येव लोकानामदातुः फलमीदृशम्॥

भिक्षाका पात्र हाथमें लिये हुए भिक्षुक लोग दरवाजे-दरवाजे घूमते हुए लोगोंको यही दिखाते हैं कि दान न देनेका ही यह फल है। यदि पहले दान दिया होता तो आज घर-घर भटकते हुए भीख न माँगनी पड़ती, अतः जिसे भीख न माँगनी हो, उसे दान अवश्य देना चाहिये।

स्नानं दानं जपो होमो स्वाध्यायो देवतार्चनम्।
यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्॥

जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय तथा देवतार्चन नहीं होता, मनुष्योंका वह दिन व्यर्थ हो जाता है।

यथा वेदाः स्वधीताश्च यथा चेन्द्रियसंयमः।
सर्वत्यागो यथा चेह तथा दानमनुत्तमम्॥

जैसे वेदोंका स्वाध्याय, इन्द्रियोंका संयम और सर्वस्वका त्याग उत्तम है, उसी प्रकार इस संसारमें दान भी अत्यन्त उत्तम माना गया है।*

---

* व्याससमृति, मत्स्य तथा गरुड आदि पुराण और महाभारतसे संग्रहीत।

दान—एक विहंगम दृष्टि

सफल जीवन जीनेके लिये दानकी अनिवार्यता

सफल जीवन क्या है? जीवन सफल उसीका है, जो मनुष्य-जीवन प्राप्तकर अपना कल्याण कर ले। भौतिक दृष्टिसे तो जीवनमें सांसारिक सुख और समृद्धिकी प्राप्तिको ही हम अपना कल्याण मानते हैं, परंतु वास्तविक कल्याण है—सदा-सर्वदाके लिये जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना अर्थात् भगवत्प्राप्ति। अपने शास्त्रोंने तथा अपने पूर्वज ऋषि-महर्षियोंने सभी युगोंमें इसका उपाय बताया है। चारों युगोंमें अलग-अलग चार बातोंकी विशेषता है। सफल मानव-जीवनके लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये मानव-धर्मशास्त्रके उद्भावक राजर्षि मनुने चारों युगोंके चार साधन बताये हैं—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

सत्ययुगमें तप, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें एकमात्र दान मनुष्यके कल्याणका साधन है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लिखा है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

गोस्वामीजीका यह वचन तैत्तिरीयोपनिषद्के निम्न प्रसिद्ध वचनोंपर ही आधृत है—

'श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।'

अर्थात् दान श्रद्धापूर्वक करना चाहिये, बिना श्रद्धाके करना उचित नहीं (**श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया अदेयम्**), अपनी सामर्थ्यके अनुसार उदारतापूर्वक देना चाहिये (**श्रिया देयम्**), विनम्रतापूर्वक देना चाहिये (**ह्रिया देयम्**), दान नहीं करूँगा तो परलोकमें नहीं मिलेगा—इस भयसे देना चाहिये अथवा भगवान्ने मुझे देनेयोग्य बनाया है, पर दूसरोंको न देनेपर भगवान्को क्या मुँह दिखाऊँगा—इस भयसे देना चाहिये (**भिया देयम्**), प्रमादसे, भयसे या उपेक्षापूर्वक न देकर ज्ञानपूर्वक, विधिपूर्वक, आदरपूर्वक एवं उदारतापूर्वक निःस्वार्थ भावसे देना चाहिये (**संविदा देयम्**), चाहे जैसे भी दो, किंतु देना चाहिये। मानवजातिके लिये दान परमावश्यक है। दानके बिना मानवकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है।

इस प्रसंगमें बृहदारण्यकोपनिषद्की एक कथा है—एक बार देवता, मनुष्य और असुर तीनोंकी उन्नति अवरुद्ध हो गयी। अतः वे सब पितामह प्रजापति ब्रह्माजीके पास गये और अपना दुःख दूर करनेके लिये उनकी प्रार्थना करने लगे। प्रजापति ब्रह्माने तीनोंको मात्र एक अक्षरका उपदेश दिया—'द'। स्वर्गमें भोगोंके बाहुल्यसे भोग ही देवलोकका सुख माना गया है, अतः देवगण कभी वृद्ध न होकर सदा इन्द्रिय-भोग भोगनेमें लगे रहते हैं, उनकी इस अवस्थापर विचारकर प्रजापतिने देवताओंको 'द' के द्वारा दमन—इन्द्रियदमनका उपदेश दिया। ब्रह्माके इस उपदेशसे देवगण अपनेको कृतकृत्य मानकर उन्हें प्रणामकर वहाँसे चले गये।

असुर स्वभावसे ही हिंसावृत्तिवाले होते हैं, क्रोध और हिंसा इनका नित्यका व्यापार है, अतएव प्रजापतिने उन्हें इस दुष्कर्मसे छुड़ानेके लिये—'द' के द्वारा जीवमात्रपर दया करनेका उपदेश किया। असुरगण ब्रह्माकी इस आज्ञाको शिरोधार्यकर वहाँसे चले गये।

मनुष्य कर्मयोगी होनेके कारण सदा लोभवश कर्म करने और धनोपार्जनमें ही लगे रहते हैं। इसलिये प्रजापतिने लोभी मनुष्योंको 'द' के द्वारा उनके कल्याणके लिये दान करनेका उपदेश दिया। मनुष्यगण भी प्रजापतिकी आज्ञाको स्वीकारकर सफलमनोरथ होकर उन्हें प्रणामकर वहाँसे चले गये। अतः मानवको अपने अभ्युदयके लिये दान अवश्य करना चाहिये।

'विभवो दानशक्तिश्च महतां तपसां फलम्'

विभव और दान देनेकी सामर्थ्य अर्थात् मानसिक उदारता—ये दोनों महान् तपके ही फल हैं। विभव होना तो सामान्य बात है। यह तो कहीं भी हो सकता है, पर उस विभवको दूसरोंके लिये देना—यह मनकी उदारतापर ही निर्भर करता है, यही है दान-शक्ति, जो जन्म-जन्मान्तरके पुण्यसे ही प्राप्त होती है।

महाराज युधिष्ठिरके समयकी एक घटना है—उद्दालक नामके एक ऋषि थे। अकस्मात् उनके पिताका देहान्त हो गया। मुनिने अपने पिताकी अन्त्येष्टि चन्दनकी लकड़ीकी चितापर करनेका विचार किया, पर चन्दनकी लकड़ी उनके पास तो थी नहीं। वे धर्मराज युधिष्ठिरके पास पहुँचे और उनसे चन्दनकी लकड़ीकी याचना की। धर्मराजके पास चन्दन-काष्ठकी तो कमी नहीं थी, परंतु अनवरत वर्षा होनेके कारण सम्पूर्ण काष्ठ भीग चुका था। गीली लकड़ीसे दाह-संस्कार नहीं हो सकता था, अतः उन्हें वहाँसे निराश लौटना पड़ा। इसके अनन्तर वे इसी कार्यके निमित्त राजा कर्णके पास पहुँचे। राजा कर्णके पास भी ठीक वही परिस्थिति थी, अनवरत वर्षाके कारण सम्पूर्ण काष्ठ गीले हो चुके थे, परंतु मुनिको पितृदाहके लिये चन्दनकी सूखी लकड़ीकी आवश्यकता थी। कर्णने तत्काल यह निर्णय लिया कि उनका राजसिंहासन चन्दनकी लकड़ीसे बना हुआ है, जो एकदम सूखा है, अतः उन्होंने यह आदेश दिया कि चन्दनसे बने मेरे सिंहासनको तुरन्त खोल दिया जाय तथा इसको काटकर चिताके लिये इसकी लकड़ी मुनि उद्दालकको दे दी जाय। इस प्रकार उन मुनि उद्दालकके पिताका दाह-संस्कार चन्दनकी चितापर सम्भव हो सका। चन्दनके काष्ठका सिंहासन महाराज युधिष्ठिरके पास भी था, पर यह सामयिक ज्ञान—मौकेकी सूझ और मनकी उदारता इस रूपमें उन्हें प्राप्त न हुई, जिसके कारण वे इस दानसे वंचित रह गये और यह श्रेय कर्णको ही प्राप्त हो सका। इसीलिये कर्ण दानवीर कहलाये।

दानके लिये स्थान, काल एवं पात्रका विचार

शास्त्रोंमें दानके लिये स्थान, काल और पात्रका विस्तृत विचार किया गया है—

गीतामें भी भगवान्ने कहा है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

(गीता १७। २०)

स्थान—दान किसी शुभ स्थानपर अर्थात् काशी, कुरुक्षेत्र, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, जगन्नाथपुरी, बदरीनारायण, गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, हरिद्वार, प्रयाग, पुष्कर आदि तीर्थोंमें; गंगागर्भ, गंगातट, मन्दिर, गोशाला, पाठशाला, एकान्तस्थल अथवा सुविधानुसार अपने घर आदि कहीं भी पवित्र स्थलपर करना चाहिये।

काल—शुभ कालमें अर्थात् अच्छे मुहूर्तमें दान देना चाहिये। वैसे तो दान मनमें उत्साह होनेपर तत्क्षण करना चाहिये, कारण जीवनका कुछ पता नहीं कि वह कब समाप्त हो जाय, परंतु पुण्यकी दृष्टिसे शास्त्रोंने कुछ विशिष्ट काल भी निर्धारित कर रखे हैं। शास्त्रोंके अनुसार अमावस्यामें दानका फल सौ गुना अधिक, उससे सौ गुना दिनक्षय अर्थात् तिथिक्षय होनेपर, उससे सौ गुना मेष आदि संक्रान्तियोंमें, उससे सौ गुना विषुव (समान दिन-रात्रिवाली तुला-मेषकी संक्रान्तियों)-में, उससे सौ गुना युगादि तिथियोंमें (कार्तिक शुक्लपक्षकी अक्षय नवमीमें सत्ययुग, वैशाख शुक्लपक्षकी अक्षय तृतीयामें त्रेता, माघकी मौनी अमावस्यामें द्वापर और भाद्रमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीमें कलियुगका आरम्भ हुआ—ये युगादि तिथियाँ कहलाती हैं, इनमें दानका फल अक्षय है), उससे सौ गुना सूर्यके दक्षिणायन और उत्तरायण होनेपर अर्थात् अयन तिथियोंमें, उससे सौ गुना चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण कालमें और उससे सौ गुना व्यतिपातयोगमें दानका अधिक फल है। यद्यपि पुण्यकी दृष्टिसे शास्त्रने यह व्यवस्था प्रदान की है, परंतु कुछ ऐसे दान हैं, जिनमें कालकी अथवा मुहूर्तकी प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। यथा—मृत्युके समयका दान—मृत्यु आनेपर तत्काल अन्तिम समयके दान (दसमहादान, अष्टमहादान, पंचधेनु—ऋणापनोद, पापापनोद, उत्क्रान्तिधेनु, वैतरणीधेनु तथा मोक्षधेनु) करनेकी विधि है। इसी प्रकार मृत्युके उपरान्त पिण्डदान तथा शय्या आदिका दान भी समयपर ही करना होता है।

अन्नदान तथा जलदानकी भी कोई समय-सीमा नहीं है। किसी भी समय आवश्यकतानुसार याचक व्यक्तिके उपस्थित होनेपर इसे तत्काल करना चाहिये।

पात्र—शास्त्रोंमें देश और कालकी तरह पात्रका भी विचार किया गया है। सत्पात्रको दिया गया दान ही सफल और सात्त्विक दान है। महर्षि याज्ञवल्क्यका मत है कि दानके लिये अन्य वर्णोंकी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो कर्मनिष्ठ ब्राह्मण हैं वे श्रेष्ठतर हैं, उन कर्मनिष्ठोंमें भी विद्या तथा तपस्यासे युक्त ब्रह्मतत्त्ववेत्ता श्रेष्ठतम हैं। जो ब्राह्मण विद्वान्, धर्मनिष्ठ, तपस्वी, सत्यवादी, संयमी, ध्यानी और जितेन्द्रिय हों; मुख्यरूपसे वे ही दानके लिये सत्पात्र हैं, परंतु इसके साथ ही उत्तरोत्तर सद्गुणोंसे युक्त, सच्चरित्र, अभावग्रस्त जो उपलब्ध हों, उन ब्राह्मणोंको सत्पात्र मानकर दान करना श्रेयस्कर है।

शास्त्रोंमें तो यहाँतक लिखा है—**'अपात्रे दीयते दानं दातारं नरकं नयेत्'** अर्थात् कुपात्रको दिया हुआ दान दाताको नरकमें ले जाता है, इसलिये दान देते हुए दानीको सतर्क और सजग रहना चाहिये।

सात्त्विक, राजस और तामस दानके लक्षण

गीतामें भगवान्ने तीन प्रकारके दानोंका वर्णन किया है, देश-काल और पात्रको ध्यानमें रखते हुए प्रत्युपकार न करनेवाले व्यक्तिको निःस्वार्थ भावसे जो दान किया जाता है, वह दान सात्त्विक दान कहा गया है।[१]

जो दान क्लेशपूर्वक (जैसे चन्दे-चिट्ठेमें विवश होकर देना पड़ता है), प्रत्युपकारके प्रयोजनसे (अर्थात् दानके बदलेमें अपना सांसारिक कार्य सिद्ध करनेकी आशासे), फलको दृष्टिमें रखकर (मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिये अथवा रोगादिकी निवृत्तिके लिये) दिये जाते हैं, उन दानोंको राजसदान कहा गया है।[२]

जो दान बिना श्रद्धाके, असत्कारपूर्वक अथवा तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश-कालमें कुपात्र (मद्य-मांस आदि अभक्ष्य वस्तुओंको खानेवाले, जुआ खेलनेवाले, दुर्व्यसनोंसे युक्त, चोरी-जारी आदि नीच कर्म करनेवाले दुश्चरित्र)-के प्रति दिया जाता है, उस दानको तामस कहा गया है।[३]

दान-धर्मके चार विभाग

व्यासभगवान्ने दान-धर्मको चार भागोंमें विभक्त किया है—

(१) नित्य दान—प्रत्येक व्यक्तिको अपने सामर्थ्यानुसार कर्तव्यबुद्धिसे नित्य कुछ-न-कुछ दान करना चाहिये। जो मनुष्य श्रोत्रिय, कुलीन, विनयी, तपस्वी, सदाचारी तथा धनहीन ब्राह्मणोंको प्रतिदिन कुछ दान करता है, वह परमपदको प्राप्त करता है। असहाय एवं गरीबको भी नित्यप्रति सहायतारूपमें दान करना कल्याणकारी है। शास्त्रोंमें प्रत्येक गृहस्थके लिये पाँच प्रकारके ऋणों (देव-ऋण, पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण, भूत-ऋण और मनुष्य-ऋण)-से मुक्त होनेके लिये प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करनेकी विधि है। अध्ययन-अध्यापन ब्रह्मयज्ञ (ऋषि-ऋणसे मुक्ति), श्राद्ध-तर्पण करना पितृयज्ञ (पितृ-ऋणसे मुक्ति), हवन-पूजन करना देवयज्ञ (देव-ऋणसे मुक्ति), बलिवैश्वदेव करना भूतयज्ञ (भूत-ऋणसे मुक्ति) और अतिथि-सत्कार करना मनुष्ययज्ञ (मनुष्य-ऋणसे मुक्ति) है। अतः गृहस्थको यथासाध्य प्रतिदिन इन्हें करना चाहिये।

बलिवैश्वदेवका तात्पर्य सारे विश्वको बलि (भोजन) देना है। बलिवैश्वदेव करनेसे गृहस्थ पापोंसे मुक्त होता है। इन सबकी गणना नित्य दानमें है।

(२) नैमित्तिक दान—जाने-अनजानेमें किये गये पापोंके शमनहेतु तीर्थ आदि पवित्र देशमें तथा अमावस्या, पूर्णिमा, व्यतिपात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण आदि पुण्यकालमें अथवा किसी सुयोग्य सत्पात्रके प्राप्त होनेपर जो दान किया जाता है, उसे नैमित्तिक दान कहते हैं। यह दान सकाम एवं निष्काम (भगवत्प्रीत्यर्थ)—दोनों प्रकारका हो सकता है।

(३) काम्य दान—किसी कामनाकी पूर्तिके लिये, ऐश्वर्य, धन-धान्य, पुत्र-पौत्र आदिकी प्राप्ति तथा अपने किसी कार्यकी सिद्धिहेतु जो दान दिया जाता है, उसे काम्य दान कहते हैं। शास्त्रोंमें सकाम भावसे किये गये विभिन्न

१-दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ (गीता १७। २०)

२-यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः। दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥ (गीता १७। २१)

३-अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते। असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥ (गीता १७। २२)

दानोंके विभिन्न फल लिखे हैं। जैसे—तिलदानसे इच्छित सन्तान प्राप्त होती है। दीपदानसे उत्तम दृष्टि (चक्षु)-की प्राप्ति होती है, गृहदान करनेवालेको सुन्दर महल (आवास), स्वर्णदान करनेवालेको दीर्घ आयु, चाँदी दान करनेवालेको उत्तमरूप, वृषभदान करनेवालेको अचल सम्पत्ति (लक्ष्मी), शय्यादान करनेवालेको उत्तम भार्या, अभयदान करनेवालेको ऐश्वर्य, ईंधनका दान करनेसे प्रदीप्त जठराग्नि अर्थात् पाचनशक्तिका विकास, रोगियोंकी सेवामें दवा-फल आदिकी सहायता करनेपर रोगरहित दीर्घ आयुकी प्राप्ति, अन्नदान करनेसे अक्षयसुख, जलदान करनेसे तृप्ति और गोदान करनेवालेको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। इस प्रकार दानसे लौकिक सुख और कामनाओंकी पूर्ति भी होती है।

(४) विमल दान—भगवान्‌की प्रीति प्राप्त करनेके लिये निष्काम भावसे बिना किसी लौकिक स्वार्थके ब्रह्मज्ञानी अथवा सत्पात्रको दिया जानेवाला दान विमल दान कहलाता है। देश, काल और पात्रको ध्यानमें रखकर अथवा नित्यप्रति किया गया यह दान अत्यधिक कल्याणकारी होता है। यह सर्वश्रेष्ठ दान है।

दानदाता भी सच्चरित्र होना चाहिये

शुद्ध और सात्त्विक दानके लिये दान लेनेवाला व्यक्ति जैसे सत्पात्र होना चाहिये, वैसे ही दानदाता भी सच्चरित्र और सत्पात्र होना चाहिये, इसलिये भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतामें दानकी अवश्यकर्तव्यतापर जोर देते हुए कहा कि यज्ञ, दान तथा तप मनीषियोंको पवित्र करते हैं—

'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥'

अब प्रश्न उठता है कि मनीषी कौन है? जिनका मन निर्मल है, जो मन, वाणी और कर्मसे एकरूप हैं तथा जो लोभसे रहित हैं—**'दानं लोभराहित्यम्'** अर्थात् सांसारिक अनित्य पदार्थोंके प्रति लालसा न रखना ही दान है, इस प्रकार सत्य, आर्जव, दया, अहिंसा आदि गुणोंसे युक्त व्यक्ति ही मनीषी कोटिमें है। अतः दानका पूर्ण लाभ प्राप्त करनेके लिये दानदाताको भी इस प्रकारका होना चाहिये।

दानका अवसर

देश, काल और पात्रकी जो व्याख्या शास्त्रोंमें बतायी गयी है, यद्यपि वह सर्वथा उचित है, परंतु अनवसरमें भी यदि अवसर प्राप्त हो जाय तो भी दानका अपना एक वैशिष्ट्य है—जिस पात्रको आवश्यकता है, जिस स्थानपर आवश्यकता है और जिस कालमें आवश्यकता है, उसी क्षण दान देनेका अपना एक विशेष महत्त्व है। विशेष आपत्तिकालमें तत्क्षण पीड़ित समुदायको अन्न, जल, आवास आदिकी जो सहायता प्रदान की जाती है, वह इसी कोटिका दान है। यह दान व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकारसे होता है। जब कभी भूकम्प, बाढ़, दुर्भिक्ष, महामारी, दुर्घटना तथा कोई अन्य प्राकृतिक आपदा आ जाती है, तो तत्क्षण सामूहिक रूपसे सहायता तथा दानकी व्यवस्था करना परम कर्तव्य है।

इसी प्रकार किसी भी समय, किसी भी स्थानमें तथा किसी भी व्यक्तिके भूख और प्याससे पीड़ित होनेपर अन्न और जलकी सेवा करनी चाहिये। अन्नदान और जलके दानमें कुपात्रका कोई विचार नहीं। इसे प्राप्त करनेके सभी अधिकारी हैं।

अन्य सभी दान देश, काल और पात्रकी अपेक्षा करते हैं, परंतु अन्नदानके लिये समागत-अभ्यागत अतिथि चाहे जो भी हो, वह भगवान्‌का ही स्वरूप होता है। (**अतिथिदेवो भव**) अतः बिना नाम, गाँव, जाति, कुल पूछे ही उन्हें आदरपूर्वक अन्नदान (भोजनदान) करें, वे ही सर्वश्रेष्ठ पात्र हैं, जब वे पधारें तभी सर्वश्रेष्ठ समय (काल) है, जहाँ वे पधारें, वही सर्वश्रेष्ठ देश (स्थान) हो जाता है। भूखेको अन्न, प्यासेको जल, रोगीको औषधि, वस्त्रहीनको वस्त्र, अशिक्षितको शिक्षा, निराश्रयीको आश्रय, जीविकाहीनको जीविका अत्यन्त उत्तम दान है। इनमें मुहूर्तकी अपेक्षा नहीं रहती। इन्हें किसी भी स्थानपर किसी भी समय कर सकते हैं।

दान और दया

वास्तवमें उपर्युक्त दान दयापर आश्रित हैं। दया भी दानका एक अंग है, किंतु दया और दानमें थोड़ा अन्तर है। दया कभी भी, कहीं भी, किसीपर भी, कोई भी, कैसे भी कर सकता है, इसमें देश, काल और विधि अपेक्षित नहीं है। स्वार्थरहित होकर दूसरेके दुःखको न देख पाना ही दया है। दयाके लिये सभी स्थान, सभी व्यक्ति

(प्राणीमात्र), सभी समय उपयोगी हैं, अनुकूल हैं, किंतु दानके विषयमें ऐसा नहीं है। दया पानेके अधिकारी सब हैं, किंतु दान पानेके अधिकारी मुख्य रूपसे ब्राह्मण ही हैं, अतः दयासे समन्वित दान सबको दिया जा सकता है अर्थात् यह दान प्राणीमात्रके लिये है।

दान और त्याग

किसी वस्तुसे अपनी सत्ता और ममता उठा लेना ही दान है, यह त्याग भी है, परंतु त्याग और दानमें भी थोड़ा अन्तर है। दान मुख्यतः पुण्यका और त्याग देवत्वका हेतु होता है। कोई भी दान त्यागकी श्रेणीमें आता है, किंतु सभी प्रकारके त्याग दान नहीं हैं। दान प्राप्त वस्तुओंका और वह भी सीमित मात्रामें किया जा सकता है, जबकि त्याग अप्राप्त वस्तुओंका और असीमित मात्रामें हो सकता है। दानदाता स्वयंको दान-ग्रहणकर्ताके प्रति अनुगृहीत मानता है, किंतु हर त्यागमें यह आवश्यक नहीं।

अनादिकालसे त्यागपूर्ण जीवनको ही उत्तम माना गया है। पौराणिक गाथाओंमें त्यागके अनेक आदर्श कथानक हैं। महाराज शिबिने एक कबूतरकी प्राणरक्षामें क्षुधातुर बाजके लिये अपने अंग-प्रत्यंगके मांसको काट-काटकर तोल दिया। महर्षि दधीचिने देवताओंके हितमें अपने प्राणोंका उत्सर्गकर अपनी हड्डियाँ दे दीं। महाराज बलिने वामन भगवान्‌को अपना सर्वस्व तो दिया ही, साथ ही अपना शरीर भी दे दिया। महाराज हरिश्चन्द्र सत्यकी रक्षाके लिये अपने राज्यको त्यागकर स्वयं पत्नी और पुत्रके साथ काशीके बाजारमें बिक गये। रन्तिदेव, महाराज युधिष्ठिर, महान् दानी कर्ण आदिका त्यागपूर्ण जीवन किससे छिपा है? स्वदेशरक्षामें महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, झाँसीकी महारानी लक्ष्मीबाई, सिक्खगुरु तेग-बहादुर, गुरु गोविन्दसिंह, बालगंगाधर तिलक, सुभाषचन्द्र बोस एवं चन्द्रशेखर आजाद आदिका त्याग भुलाया नहीं जा सकता।

दान आत्माका दिव्य गुण है, यह ध्यान रखना चाहिये कि व्यक्ति जो कुछ अर्जित करता है, वह केवल अपने पुरुषार्थसे नहीं बल्कि उसमें भगवत्कृपा मुख्य कारण है, साथ ही संसारके अनेक प्राणियोंका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग भी प्राप्त होता है, इस प्रकार उस प्राप्त धनपर हमारा अकेलेका अधिकार नहीं है। उपनिषदोंमें तो स्पष्ट निर्देश है—**'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** अर्थात् तुम प्राप्त धन-सम्पत्तिका त्यागपूर्वक उपभोग करो। जितना तुम्हारे निर्वाहमात्रके लिये आवश्यक है, उतनेसे अधिकको तो अपना मानो ही मत। वह भगवान्‌की वस्तु है, उसे चराचर विश्वमें व्याप्त भगवान्‌की सेवामें लगा दो। निर्वाहमात्रके लिये जितना आवश्यक समझते हो, उसे भी पंचमहायज्ञ आदिके द्वारा त्यागपूर्वक अपने उपयोगमें लाओ। वास्तवमें धनके स्वामी तो एकमात्र लक्ष्मीपति भगवान् ही हैं। श्रीमद्भागवतमें तो यहाँतक कहा गया है कि जितनेसे पेट भरे, उतने ही अन्न-धनपर देहधारीका अधिकार है, उससे अधिकको जो अपना मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भा० ७।१४।८)

उपर्युक्त वचनसे परमात्मचिन्तन और त्याग—इन दो बातोंकी आज्ञा मिलती है, वस्तुतः यह परमात्माकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है।

सकामसे निष्कामकी ओर

वेद-पुराणोंमें कुछ ऐसे दानोंका भी वर्णन है, जो कामनाओंकी पूर्तिके लिये किये जाते हैं, जिनमें तुलादान, गोदान, भूमिदान, स्वर्णदान, घटदान, अष्टमहादान, दशमहादान तथा षोडश महादान आदि परिगणित हैं—ये सभी प्रकारके दान काम्य होते हुए भी यदि निःस्वार्थभावसे भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त भगवदर्पणबुद्धिसे किये जायँ तो वे ब्रह्मसमाधिमें परिणत होकर भगवत्प्राप्ति करानेमें विशेष सहायक सिद्ध हो सकेंगे।

कुछ दान ऐसे हैं, जिन्हें बहुजनहिताय-बहुजनसुखायकी भावनासे सर्वसाधारणके हितमें करनेकी परम्परा है। देवालय, विद्यालय, औषधालय, भोजनालय (अन्नक्षेत्र), अनाथालय, गोशाला, धर्मशाला, कुएँ, बावड़ी, तालाब आदि सर्वजनोपयोगी स्थानोंका निर्माण आदि कार्य यदि न्यायोपार्जित द्रव्यसे बिना यशकी कामनासे भगवत्प्रीत्यर्थ

किये जायँ तो परमकल्याणकारी सिद्ध होंगे।

सामान्यतः न्यायपूर्वक अर्जित किये हुए धनका दशमांश बुद्धिमान् मनुष्यको दान-कार्यमें ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये लगाना चाहिये—

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥

(स्कन्दपुराण)

अन्यायपूर्वक अर्जित धनका दान करनेसे कोई पुण्य नहीं होता। यह बात '**न्यायोपार्जितवित्तस्य**' इस वचनसे स्पष्ट होती है। दान देनेका अभिमान तथा लेनेवालेपर किसी प्रकारके उपकारका भाव न उत्पन्न हो, इसके लिये इस श्लोकमें कर्तव्य पदका प्रयोग हुआ है। अर्थात् धनका इतना हिस्सा दान करना—यह मनुष्यका कर्तव्य है। मानवका मुख्य लक्ष्य है—ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त करना। अतः दानरूप कर्तव्यका पालन करते हुए भगवत्प्रीतिको बनाये रखना भी आवश्यक है। इसीलिये '**कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च**' इन शब्दोंका प्रयोग किया गया है। यदि किसी व्यक्तिके पास एक हजार रुपये हों, उसमेंसे यदि उसने एक सौ रुपये दान कर दिये तो बचे हुए नौ सौ रुपयोंमें ही उसकी ममता और आसक्ति रहेगी। इस प्रकार दान ममता या आसक्तिको कम करके अन्तःकरणकी शुद्धिरूप प्रत्यक्ष (दृष्ट) फल प्रदान करता है और शास्त्र-प्रमाणानुसार वैकुण्ठलोककी प्राप्तिरूप अप्रत्यक्ष (अदृष्ट) फल भी प्रदान करता है।

द्रव्यकी शुद्धि

देवीभागवतमें तो यह स्पष्ट कहा गया है कि अन्यायसे उपार्जित धनद्वारा किया गया शुभ कर्म व्यर्थ है। इससे न तो इहलोकमें कीर्ति ही होती है और न परलोकमें कोई पारमार्थिक फल ही मिलता है—

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥

(३।१२।८)

धनके पाँच विभाग

उपार्जित धनके दशमांशका दान करनेका यह विधान सामान्य कोटिके मानवोंके लिये किया गया है, पर जो व्यक्ति वैभवशाली, धनी और उदारचेता हैं, उन्हें तो अपने उपार्जित धनको पाँच भागोंमें विभक्त करना चाहिये—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

(१) धर्म, (२) यश, (३) अर्थ (व्यापार आदि आजीविका), (४) काम (जीवनके उपयोगी भोग), (५) स्वजन (परिवार)-के लिये—इस प्रकार पाँच प्रकारके धनका विभाग करनेवाला इस लोकमें और परलोकमें भी आनन्दको प्राप्त करता है।

यहाँ व्यापार आदि आजीविकाके लिये धनका विभाग इसलिये किया गया है कि जिससे जीविकाके साधनोंका विनाश न हो; क्योंकि भागवतमें यह स्पष्ट कहा गया है कि जिस सर्वस्व-दानसे जीविका भी नष्ट हो जाती हो, बुद्धिमान् पुरुष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि जीविकाका साधन बने रहनेपर ही मनुष्य दान, यज्ञ, तप आदि शुभकर्म करनेमें समर्थ होता है—

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते।
दानं यज्ञस्तपःकर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥

जो मनुष्य अत्यन्त निर्धन हैं, अनावश्यक एक पैसा भी खर्च नहीं करते तथा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक अपने परिवारका भरण-पोषण कर पाते हैं, ऐसे लोगोंके लिये दान करनेका विधान शास्त्र नहीं करते। इतना ही नहीं, यदि पुण्यके लोभसे अवश्यपालनीय वृद्ध माता-पिताका तथा साध्वी पत्नी और छोटे बच्चोंका पालन न करके उनका पेट काटकर जो दान करते हैं, उन्हें पुण्य नहीं, प्रत्युत पापकी ही प्राप्ति होती है।

जो धनी व्यक्ति अपने स्वजन—परिवारके लोगोंके दुःखपूर्वक जीवित रहनेपर उनका पालन करनेमें समर्थ होनेपर भी पालन न कर दूसरोंको दान देता है, वह दान मधुमिश्रित विष-सा स्वादप्रद है और धर्मके रूपमें अधर्म है—

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः॥

दानका रहस्य

स्कन्दपुराणमें वर्णन है कि राजा धर्मवर्माने दानके तत्त्वको जाननेके लिये तप किया तो आकाशवाणीद्वारा एक श्लोकमें इसके रहस्यका वर्णन किया गया—

द्विहेतुः षडधिष्ठानं षडङ्गं च द्विपाकयुक्।
चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते॥

(स्कन्दपुराण माहे०)

अर्थात् दानके दो हेतु, छः अधिष्ठान, छः अंग, दो प्रकारके फल, चार प्रकार, तीन भेद एवं तीन विनाश करनेके कारण हैं।

श्लोकका अर्थ तो स्पष्ट था, परंतु अनेक विद्वान्, ऋषि, मुनि इसकी विस्तृत व्याख्या करनेमें सफल नहीं हुए। अन्तमें महामुनि नारदद्वारा इस श्लोकके वास्तविक अर्थको प्रकट किया गया, जिसमें दानके रहस्यका वर्णन किया गया है।

दानके हेतु

दानके दो हेतु—श्रद्धा एवं शक्ति कहे गये हैं। दानकी मात्रा नहीं, बल्कि श्रद्धा एवं शक्ति ही उसके फलकी वृद्धि या क्षयके कारण होते हैं।

श्रद्धा—दानमें श्रद्धाका बहुत महत्त्व है। बिना श्रद्धाके दिया गया सर्वस्व दान भी निष्फल हो जाता है। न्यायोपार्जित धनका जो व्यक्ति सत्पात्रको दान करते हैं, वह थोड़ा होनेपर भी वे भगवान्‌को प्रसन्न कर लेते हैं। श्रद्धा भी सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक—तीन प्रकारकी कही गयी है।

शक्ति—कुटुम्बका पालन-पोषण करनेके बाद जो धन बचे, वही दान करनेकी शक्ति कही गयी है। आश्रित जनको कष्टमें रखकर किसी सुखी व्यक्तिको दान करनेसे उसका फल मधुके समान मीठा न होकर विषके समान कटु हो जाता है। आपत्तिकाल पड़नेपर भी सामान्य, याचित, न्यास, बन्धक, दान, दानसे प्राप्त, अन्वाहित, निक्षिप्त एवं सान्वय-सर्वस्व दान—इन नौ प्रकारके धन या पदार्थोंका दान नहीं करना चाहिये।

दानके अधिष्ठान

धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष एवं भय—ये दानके छः अधिष्ठान हैं। बिना प्रयोजनके धार्मिक भावनासे दिया गया दान **धर्म-दान** है। प्रयोजनवश दिया गया दान **अर्थ-दान** है। सुरापान एवं जूएके प्रसंगमें अनधिकारी मनुष्यको जो दिया जाता है, वह **काम-दान** है। याचकद्वारा सबके सामने माँग लेनेपर लज्जावश या संकोचवश प्रतिज्ञा करके जो दिया जाता है, वह **लज्जा-दान** है। शुभ समाचार सुनकर जो दिया जाता है, वह **हर्ष-दान** है। निन्दा, हिंसा एवं अनर्थके भयसे विवश होकर जो दिया जाता है, वह **भय-दान** है।

दानके छः अंग

दानकर्ता, प्रतिग्रह लेनेवाला, शुद्धि, दानका पदार्थ, देश एवं काल—ये दानके छः अंग कहे गये हैं।

दानकर्ता धर्मात्मा, दानकी अभिलाषा रखनेवाला, व्यसनरहित, पवित्र एवं अनिन्दित कर्मसे व्यवसाय करनेवाला होना चाहिये।

प्रतिग्रहीता सात्त्विक, दयालु, कुल-विद्या-आचारसे श्रेष्ठ तथा शुद्ध जीवन-निर्वाहकी वृत्ति करनेवाला होना चाहिये।

शुद्धिका अर्थ है कि दान करते समय याचकके प्रति हार्दिक प्रेम हो, उन्हें देखकर प्रसन्नता हो तथा उनमें दोषदृष्टि न रखकर उनका सत्कार हो।

दानका पदार्थ एवं धन वही उत्तम है, जो अपने प्रयत्नसे उपार्जित किया गया हो। दूसरेको सताकर, चोरी-ठगीसे या अधर्मयुक्त विधिसे प्राप्त धन या पदार्थका दान करनेसे कोई फल प्राप्त नहीं होता।

जिस देश एवं कालमें जो पदार्थ दुर्लभ हों, उन्हें उसी देश एवं कालमें दान करनेसे श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है।

दानके दो फल

महात्माओंने दानके दो फल कहे हैं। इनमें एक इहलोकके लिये होता है तथा दूसरा परलोकके लिये।

दानके चार प्रकार

ध्रुव, त्रिक, काम्य एवं नैमित्तिक—ये चार दानके प्रकार कहे गये हैं। सार्वजनिक कार्योंके लिये जैसे—बाग-बगीचे लगवाना, धर्मशाला बनवाना एवं पीनेके पानीका प्रबन्ध करना-करवाना इत्यादिके लिये दिया गया दान **ध्रुव** है। जो प्रतिदिन दिया जाता है, उसे **त्रिक** कहते हैं। किसी इच्छाकी पूर्तिके लिये किया गया दान **काम्य दान** है। **नैमित्तिक** दान तीन प्रकारका है। ग्रहण, संक्रान्ति आदि कालकी अपेक्षासे किया गया दान कालापेक्ष नैमित्तिक दान है। श्राद्ध इत्यादि क्रियाओंसे जुड़ा दान क्रियापेक्ष नैमित्तिक

दान है। विद्या-प्राप्ति एवं अन्य संस्कार आदि गुणोंकी अपेक्षासे किया गया दान गुणापेक्ष नैमित्तिक दान है।

दानके तीन भेद

उत्तम, मध्यम एवं कनिष्ठ—दानके तीन भेद कहे गये हैं—

गृह, मन्दिर, भूमि, विद्या, गौ, कूप, स्वर्ण एवं प्राण—इन आठ पदार्थोंका दान शास्त्रोंमें **उत्तम** कहा गया है। अन्न, बगीचा, वस्त्र एवं वाहनादि पदार्थोंके दानको **मध्यम** दान कहा गया है। जूता, छाता, बर्तन, दही, मधु, आसन, दीपक, काष्ठ एवं पत्थर इत्यादि पदार्थोंके दानको **कनिष्ठ** दान कहा गया है।

दानके नाशके तीन कारण

पश्चात्ताप, अपात्रता एवं अश्रद्धा—ये तीन कारण दानके नाशक हैं।

दान देकर बादमें पश्चात्ताप हो, वह आसुरदान होता है। इसका कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता।

बिना श्रद्धाभावके जो दान दिया जाता है, वह राक्षसदान है। यह भी निष्फल होता है। दान प्राप्त करनेवालेको डाँट-डपटकर या उसे कटुवचन सुनाकर जो दान दिया जाता है, वह पिशाचदान माना गया है। यह दान भी व्यर्थ होता है। अपात्र व्यक्तियोंको दिया गया दान भी पिशाचदानकी श्रेणीमें रखा गया है। दुराचारी तथा विद्याहीन व्यक्ति जातिसे ब्राह्मण होनेपर भी कुपात्र होता है, जो प्रतिग्रह स्वीकार करनेपर स्वयं भी नष्ट होता है तथा दानकर्ताको भी नष्ट करता है। कुपात्र ब्राह्मणको दानमें मिली भूमि उसके अन्तःकरणको, गाय उसके भोगोंको, सोना उसके शरीरको, वाहन उसके नेत्रोंको, वस्त्र उसकी स्त्रीको, घी उसके तेजको एवं तिल उसकी सन्तानको नष्ट कर देते हैं। अतः पात्रता न होनेपर कभी प्रतिग्रह स्वीकार नहीं करना चाहिये।

शास्त्रोंमें दान देनेकी जितनी महिमा आयी है, उतनी ही अथवा उससे भी अधिक असत्प्रतिग्रहकी निन्दा की गयी है। दान देनेमें जितनी अधिक सावधानी बरतनेकी बात कही गयी है, उससे अधिक सावधानी बरतनेकी बात दान लेनेके विषयमें कही गयी है। दान देनेसे जहाँ पुण्यजनकताकी बात, अपनी कई पीढ़ियोंको तारनेकी बात और परलोकमें उत्तम गति तथा अक्षय लोकोंकी प्राप्तिकी बात कही गयी है, वहीं असत्प्रतिग्रहसे अधोगति प्राप्त करनेकी बात आयी है। अतः दानग्रहीताको पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिये।

दान इस प्रकार करें

अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुरूप स्वेच्छासे, कृतज्ञतासे, मधुर वाणीके साथ, श्रद्धापूर्वक एवं संकोचपूर्वक इस भावनासे कि सारे धनके वास्तविक स्वामी तो भगवान् ही हैं। वे ही दानदाता हैं और वे ही स्वयं लेनेवाले ग्रहीता, मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ—इस प्रकार विचारकर दान करनेके लिये निरन्तर तत्पर रहना चाहिये। परंतु सामान्यतः इस भावनामें चूक हो जाती है, उदाहरणार्थ मान लें कभी ऐसा अवसर प्राप्त हो कि किसी असहाय रोगीको ओषधि और दूधकी आवश्यकता है और उसके पास इसके साधन नहीं हैं। हमें यह बात मालूम हुई और हमने दयापूर्वक उसकी व्यवस्था कर दी, परंतु स्वाभाविक रूपसे हमारे मनमें यह भाव आता है कि उस रोगीको यह तो मालूम होना चाहिये कि सहायता मेरेद्वारा की जा रही है। हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे यह बात किसी भी प्रकार उसकी जानकारीमें कराते हैं, वस्तुतः यह बात नीचे दर्जेकी है। उच्चकोटिकी बात तो यह है कि परमात्मप्रभुका धन प्रभुकी सेवामें लग रहा है, इसमें हमारे नामकी क्या आवश्यकता है। इस प्रकार हमें किसी भी प्रकारके अहंकारसे बचना चाहिये।

प्रकृतिप्रदत्त दान

वस्तुतः स्वयं सृष्टिकर्ता परमात्मा प्रतिक्षण प्रकृतिके माध्यमसे हमें दान देते रहते हैं, सूर्यनारायण अपने प्रकाशसे हमें ऊर्जा तथा प्राणशक्तिका दान देते हैं। धरतीमाता हमें अन्नरूपी सामग्री देती हैं, नदियाँ जलदान करती हैं, वृक्ष निःस्पृह भावसे फलदान करते हैं, वायुदेव निरन्तर संचरणकर श्वास-प्रश्वासके रूपमें हमें जीवनदान देते हैं, बादल सागरसे जल आकर्षितकर जलकी वर्षाकर अपना अस्तित्व ही समाप्त कर देते हैं। प्रभुप्रदत्त प्रकृतिके सहयोगसे ही मनुष्य जीवन धारण करनेमें समर्थ होता है। तो क्या प्रकृतिके सतत दानसे हमें यह प्रेरणा नहीं मिलती

कि हम भी अपनी प्राप्त वस्तुओंका दान करें।

दानके अनेक रूप

वास्तवमें दानके अनेक रूप हैं। कुछ तो प्रत्यक्ष दान ऐसे हैं, जिसमें द्रव्यका विनियोग अर्थात् अपने अर्जित धनका त्याग करना पड़ता है, जैसे अन्नदान, जलदान, वस्त्रदान, भूमिदान, गृहदान, स्वर्णदान, शय्यादान, तुलादान, पिण्डदान, आरोग्यदान, गोदान इत्यादि। इन दानोंकी अपनी महत्ता है, इनके अलग-अलग सबके देवता हैं और सबके मन्त्र हैं, जिनका स्मरण संकल्पके समय करनेकी विधि है, पर **कुछ ऐसे भी दान हैं, जिनके लिये किसी प्रकारका धन खर्च नहीं करना पड़ता, इस प्रकारके दानोंका भी कम महत्त्व नहीं है, जैसे—**

१-मधुर वचनोंका दान—यदि कोई व्यक्ति कष्टमें है, तो उसे मधुर वचनोंके द्वारा सान्त्वना प्रदान की जा सकती है, कभी-कभी कठोर वचनोंसे आन्तरिक पीड़ा हो जाती है, परंतु मधुर वचन सबको प्रिय लगते हैं। मधुर वचनोंसे स्वयंको भी प्रसन्नता मिलती है।

२-प्रेमका दान—वास्तविक प्रेम तो त्यागमें समाहित है। जब हम दूसरोंके प्रति प्रेमका भाव रखते हैं तो मौकेपर उनके लिये त्यागहेतु भी तत्पर रहना पड़ता है। सबके प्रति प्रेम रखना एक प्रकारसे परमात्मप्रभुके प्रति प्रेम करना है।

३-आश्वासनदान—किसी संकटग्रस्त व्यक्तिके जीवनमें आश्वासनका बड़ा महत्त्व है। कभी-कभी लोग अपने जीवनसे निराश होकर आत्महत्यातक करनेको तैयार हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें सहायताका आश्वासन देकर अथवा सत्प्रेरणा देकर हम उन्हें बचा सकते हैं। किसीकी विपरीत परिस्थितियोंमें भी सहायताका आश्वासन देकर उसका मनोबल बढ़ाया जा सकता है।

४-आजीविकादान—जीवनयापन एवं परिवारपालनके लिये आजीविकाकी आवश्यकता होनी स्वाभाविक है। जो व्यक्ति किसीके लिये आजीविकाकी व्यवस्था कर देते हैं, उनके द्वारा प्रदत्त दान आजीविकादान है।

५-छायादान—छायादार एवं फलदार वृक्ष लगाकर राहगीरोंको छायादान किया जा सकता है।

६-श्रमदान—अपनी सामर्थ्यके अनुसार मौकेपर दूसरोंके लिये श्रमदान करनेसे स्वयंको आनन्दकी अनुभूति होती है—यह आनन्द ही हमारी आध्यात्मिक उन्नतिकी अनुभूतिका द्योतक है। कोई वृद्ध या अशक्त व्यक्ति अपना सामान नहीं उठा पा रहा है तो उसका सामान उठा दें। अपने असमर्थ पड़ोसीका बाजारसे सामान ला दें—इस प्रकारके कितने ही छोटे-मोटे कार्य हैं, जो श्रमदानके अन्तर्गत आ सकते हैं।

७-शरीरके अंगोंका दान—कहा गया है—**'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'**। यह शरीर व्याधि (रोगों)-का मन्दिर है। मानव-शरीर कभी भी रोगोंसे ग्रस्त हो सकता है। आजकल कई असाध्य रोग हैं, जिनके कारण व्यक्ति मृत्युशय्यापर आ जाता है, ऐसे समयमें कभी-कभी उसे रक्तकी आवश्यकता होती है। रक्तदानसे किसीकी भी जिन्दगी बचायी जा सकती है तथा स्वयंको भी कभी रक्तकी जरूरत पड़ सकती है। रक्तका कोई विकल्प नहीं होता और न यह कृत्रिम रूपसे तैयार हो सकता है। मनुष्यको अपने जीवनकालमें रक्तदान-जैसा महान् कार्य अवश्य करना चाहिये।

इसी प्रकार गुर्दा (किडनी)-के दानकी भी आवश्यकता कभी-कभी किसीके लिये पड़ती है। प्रत्येक व्यक्तिके शरीरमें दो गुर्दे रहते हैं, कभी किसीके दोनों गुर्दे खराब हो जाते हैं, तो डॉक्टरकी सलाहपर किसी स्वस्थ मनुष्यके एक गुर्देका प्रत्यारोपण करनेसे उसकी जान बचायी जा सकती है। गुर्दादान करनेवाले व्यक्तिका भी एक गुर्देसे भलीभाँति काम चल सकता है। इस प्रकार गुर्देका दान भी उत्तम कोटिका है। इसी प्रकार यकृत (लीवर)-का प्रत्यारोपण भी होता है।

शरीरके अंगोंका दान जीवितावस्थामें ही करना चाहिये।

८-समयदान—निःस्वार्थ भावसे किसी सेवाकार्यमें अपने समयका विनियोग करना समयदान है।

९-क्षमादान—कोई शक्तिशाली एवं सामर्थ्यसम्पन्न व्यक्ति अपराध होनेपर भी अपराधीको दण्ड न देकर क्षमा करे तो उसे क्षमादान कहते हैं। यह कोई सहनशील और

उत्तम चरित्रका व्यक्ति ही कर सकता है।

क्षमाशील मनुष्यकी विशेष महिमा शास्त्रोंमें कही गयी है—

क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः।
क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः॥

क्षमा ही धर्म है, क्षमा ही सत्य है और क्षमा ही दान, यश और स्वर्गकी सीढ़ी है। क्षमाका विरोधी भाव क्रोध है। यह क्रोध दूसरेकी कम अपनी अधिक हानि करता है। क्रोधपर विजयी होनेपर ही क्षमाकी प्रतिष्ठा होती है।

१०-सम्मानदान—किसी व्यक्तिको सम्मान देनेसे उसकी अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाती है। अतः दूसरोंको सम्मान देनेका स्वभाव बना लेना चाहिये। एक दोहा प्रसिद्ध है—

गोधन गजधन बाजिधन और रतनधन दान।
तुलसी कहत पुकार के बड़ो दान सम्मान॥

११-विद्यादान—विद्या ही मनुष्यका सर्वोत्तम धन है। विद्या मूलतः दो प्रकारकी होती है—पारलौकिकी और लौकिकी। पारलौकिकी विद्या अध्यात्मविद्या है। वस्तुतः विद्या वही है, जिससे मुक्ति (मोक्ष) मिले (**सा विद्या या विमुक्तये**)। लौकिकी विद्याका भी कम महत्त्व नहीं है। चौरादिकोंसे नहीं चुराये जानेसे, कभी क्षय न होनेसे तथा सब पदार्थोंसे अनमोल होनेसे विद्याको ही सब पदार्थोंमें उत्तम पदार्थ कहा गया है। विद्यादान अनेक प्रकारसे किया जा सकता है। अध्यापनके द्वारा, छात्रोंको पुस्तकदान देकर, छात्रवृत्ति, आवास तथा अन्यान्य सामग्री देकर भी विद्यादान किया जा सकता है। विद्यालय-महाविद्यालय, विश्वविद्यालय और शोधसंस्थानकी स्थापना करना भी विद्यादानका प्रमुख अंग है।

१२-पुण्यदान—किसी भी अपने स्वजन व्यक्तिकी मृत्युके समय या मृत्युके बाद उसे सद्गति मिले, शान्ति मिले, उसका उद्धार हो—इस निमित्त दयावश, करुणावश अपने पुण्यका दान किया जाता है। अपने जीवनके पुण्यवाहक कर्म—व्रत, तीर्थसेवा, सन्तसेवा, अन्नदान आदिके पुण्यफलको किसीके निमित्त संकल्प कर देना पुण्यदान है।

१३-जपदान—पुण्यदानका ही एक दूसरा रूप है जपदान। कई लोग माता-पिता तथा अपनी सन्तान आदिकी सुख-शान्ति एवं आरोग्यताके लिये जप करते हैं। यह भी एक प्रकारका अप्रत्यक्ष दान है। किसी दूसरेके भलेके लिये जपदान करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस निमित्त नाम-जप आदि भी किये जाते हैं, जिसका दोहरा लाभ है। ऐसे व्यक्ति परोपकारी एवं आध्यात्मिक प्रवृत्तिके होते हैं।

१४-भक्तिदान—भगवद्भक्तिका मार्ग बताकर उस पथपर आरूढ़ करा देना भक्तिदान है।

१५-आशिष्दान—किसी साधु-संन्यासी, संत तथा कर्मनिष्ठ ब्राह्मणद्वारा अथवा सती-साध्वी, प्रौढ़ महिलाद्वारा उन्हें प्रणाम, अभिवादन किये जानेपर वे जो आशीर्वाद प्रदान करते हैं, उसे आशिष्दानकी संज्ञा दी जाती है।

ये सभी प्रकारके दान मानव-जीवनके कर्तव्यरूपमें आध्यात्मिक उन्नतिके साधन हैं।

इसके साथ ही कुछ ऐसे दान हैं जो द्रव्यपर ही आधारित हैं, उनका भी कम महत्त्व नहीं है।

१-आश्रयदान—जो व्यक्ति सम्पन्न और उदार होते हैं, वे धर्मशालाएँ आदि बनवाकर यात्रियोंके लिये रात्रिविश्रामका आश्रय देते हैं। कई अनाथाश्रम, वृद्धाश्रम-जैसी संस्थाएँ निराश्रितोंको आश्रय देती हैं। जहाँ भोजन, वस्त्र तथा अन्य वस्तुओंको भी प्राप्त करनेकी सुविधा रहती है। इसके साथ ही किसी अभ्यागत, अतिथिको कुछ समयके लिये आश्रय देना भी पुण्यप्रद है।

२-भूमिदान—सम्पत्तिशाली व्यक्ति किसी गरीब ब्राह्मणको अथवा अपने अधीनस्थ सेवकको भूमिदान करते हैं तथा मन्दिर, विद्यालय, धर्मशाला, गोशाला इत्यादिके लिये भूमिदान दिया जाता है। भूमिदानका बड़ा महत्त्व है। स्वतन्त्र भारतमें संत विनोबा भावेने गरीब भूमिहीनोंके लिये बड़े लोगोंसे भूमि लेकर भूमिदान कराया था, जो भूदान-आन्दोलनके नामसे प्रसिद्ध है।

३-स्वर्णदान—दानमें स्वर्णदानकी विशेष महिमा

है। स्वर्णदानसे ऐश्वर्य और आयुकी वृद्धि शास्त्रोंमें बतायी गयी है। किसी भी वस्तुके अभावमें उस वस्तुके निष्क्रयके रूपमें स्वर्णदान करनेकी विधि है।

४-कन्यादान—भारतीय संस्कृतिमें कन्यादानकी बड़ी महिमा है। शास्त्रोंमें कन्याको लक्ष्मीस्वरूप मानकर विष्णुस्वरूप वरको प्रदान करनेकी विधि है। इसके साथ ही कन्याके माता-पिता वर-वधूके आभूषण, पोशाक एवं अपनी सामर्थ्यानुसार धन-दहेज भी प्रदान करते हैं तथा दान देनेके कारण कन्याके घरका कुछ स्वीकार नहीं करते। यह एक विशिष्ट परम्परा है।

५-आरोग्यदान—बीमार व्यक्तिको चिकित्सा उपलब्ध कराना तथा गरीब अथवा असहाय व्यक्तिकी औषध, फल, दूधसे सहायताकर और उसके रोगके शमनकी व्यवस्थाकर उसे स्वस्थ कर देना—यह आरोग्यदान है।

६-वस्त्रदान—शरीरकी रक्षाके लिये वस्त्रकी आवश्यकता होती है। कुछ निर्धन और असहाय व्यक्तियोंके पास वस्त्रका अभाव होनेपर उनकी शारीरिक रक्षाके लिये वस्त्रका दान महत्त्वपूर्ण है। शीतकालमें कम्बल आदि ऊनी वस्त्रोंका भी गरीब छात्रों, साधु-संतों, निर्धन, असहाय लोगोंको दान दिया जाता है।

७-ग्रहदान—मनुष्यके जीवनमें ग्रहोंकी दशा बदलती रहती है। ग्रहदशाके अनुसार जीवनमें अनुकूलता-प्रतिकूलताकी अनुभूति होती है। प्रायः प्रतिकूल परिस्थितियोंमें ग्रहशान्तिके निमित्त उस ग्रहसे सम्बन्धित वस्तुका दान ब्राह्मणको करते हैं। ग्रहोंकी अलग-अलग वस्तुएँ निर्धारित हैं। इस प्रकारके दानसे ग्रहोंको प्रसन्नता होती है और वे कुछ अंशोंमें शान्त भी हो जाते हैं।

८-तुलादान—यह जीवनका महत्त्वपूर्ण दान है। प्राचीनकालमें तो राजालोग स्वर्णसे अपना तुलादान करते थे। शास्त्रोंमें विभिन्न द्रव्योंसे तुलादान करनेकी विधि लिखी है तथा सबके अलग-अलग फल भी लिखे हैं, परंतु बिना किसी कामनाके भगवत्प्रीति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे तुलादान करना विशेष कल्याणकारी है।

९-पिण्डदान—मृत्युके बाद मृत प्राणीकी सुख-शान्तिके लिये शास्त्रोंमें पिण्डदानकी प्रक्रिया दी गयी है। मृत व्यक्तिके उत्तराधिकारी बेटे-पोतोंका यह कर्तव्य होता है कि वे मृत्युके उपरान्त शास्त्रानुसार पिण्डदान आदिकी प्रक्रिया पूरी करें। गया आदि तीर्थोंमें भी पिण्डदान करनेकी विधि है। पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये यह परम आवश्यक है।

१०-गोदान—शास्त्रोंमें गोदानकी बड़ी महिमा है। प्राचीन कालमें तो गोको ही सर्वोपरि धन माना जाता था। लौकिक एवं पारलौकिक सभी प्रकारके फलोंकी प्राप्तिके लिये गोदान सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है। अन्तिम समयमें मृत्युके पूर्व प्रायः गोदान करनेका लोग प्रयास करते हैं। मृत्युके उपरान्त श्राद्ध आदिमें भी गोदान करनेका विशेष महत्त्व है।

इसके साथ ही जो गायें कसाईके हाथमें चली जाती हैं, उन्हें यदि कसाईसे मुक्त कराकर उनकी सेवा-शुश्रूषाकी जाय तो यह भी एक महत्त्वपूर्ण सत्कर्म है, शास्त्रोंमें लिखा है—

गोकृते स्त्रीकृते चैव गुरुविप्रकृतेऽपि वा।
हन्यन्ते ये तु राजेन्द्र शक्रलोकं व्रजन्ति ते॥

अर्थात् गोरक्षा, अबला स्त्रीकी रक्षा, गुरु और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये जो प्राण दे देते हैं, राजेन्द्र युधिष्ठिर! वे मनुष्य इन्द्रलोक (स्वर्ग)-में जाते हैं।

बारह महीनोंके विशिष्ट दान

अपने देशमें छः ऋतुएँ और बारह महीने होते हैं। इन बारहों महीनोंमें ऋतुके अनुसार शास्त्रोंमें विशेष प्रकारके दानोंकी महिमा लिखी है। वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासकी प्रत्येक तिथिमें कुछ-न-कुछ दान अपने सामर्थ्यानुसार देना ही चाहिये, तथापि चैत्रादि विशेष मासोंमें ऋतुपरिवर्तनकी दृष्टिसे उस मासकी प्रकृतिके अनुसार कुछ विशिष्ट वस्तुएँ दानमें दी जाती हैं। जैसे ग्रीष्म ऋतुमें तापनिवारणके लिये जलदान, छाता, पंखा आदिका दान, इसी प्रकार शीत ऋतुमें शीतबाधाके निवारणके लिये वस्त्रदान, अग्निदान, लवण, गुड़, तिल, घृत इत्यादि गर्म वस्तुओंका दान करना चाहिये। मेष

तथा मकरकी संक्रान्ति अर्थात् वैशाख तथा माघके महीनेमें क्रमशः सत्तू तथा तिल एवं खिचड़ीके दान तो सामान्यतः सुपरिचित ही हैं, पर इसके अतिरिक्त वर्षके प्रत्येक महीनेमें शास्त्रानुसार किसी-न-किसी अन्न एवं पदार्थका दान करना चाहिये। इसकी व्यवस्था शास्त्रोंमें बतायी गयी है।

दानमें देय-वस्तुके देवता

प्रकृतिके स्थूल-सूक्ष्म सभी रूपोंमें परमात्मा व्याप्त हैं—**ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्** (शु०यजु० ४०।१)। उसीकी सत्तासे सभी सत्तावान् हैं, प्रतिष्ठित हैं, चेतन हैं और आनन्दरूप हैं। वही एक तत्त्व विभिन्न रूपवाला होकर अनेक देवरूपोंमें विभक्त है और पृथक्-पृथक् रूपसे उन-उन पदार्थों तथा द्रव्योंके देवतारूपमें अधिष्ठित है। इस दृष्टिसे सभी पदार्थोंके अधिष्ठाता देवता भिन्न-भिन्न नाम-रूपवाले होते हैं। यथा प्रकृतिके स्थूलभूत पंचतत्त्वोंके अधिष्ठाता देवता क्रमशः इस प्रकार हैं—आकाशके देवता विष्णु, अग्निके महेश्वरी, वायुके सूर्य, पृथ्वीके शिव तथा जलके देवता गणेश हैं। ऐसे ही तिथियोंके देवता हैं, नक्षत्रोंके देवता हैं, पृथ्वीपरके जितने पदार्थ हैं, सबके अलग-अलग देवता हैं। शास्त्रने यह विचार किया है कि दानमें जो वस्तु देय है, उसे देते समय संकल्पमें उस वस्तुके देवताका उल्लेख होना आवश्यक है। इसके लिये यह जानकारी होनी आवश्यक है कि किस वस्तुके देवता कौन हैं? इसपर शास्त्रोंमें विस्तारसे विचार हुआ है। तैत्तिरीय आरण्यकमें बताया गया है कि वस्त्रके देवता सोम हैं, गौके देवता रुद्र हैं, अश्वके देवता वरुण हैं, पुरुषके देवता प्रजापति हैं, शय्याके देवता मनु हैं, अजाके देवता त्वष्टा हैं, मेषके देवता पूषा हैं, इसी प्रकार अश्व और गर्दभके देवता निर्ऋति, हाथीके हिमवान्, माला तथा अलंकारके पदार्थोंके गन्धर्व तथा अप्सराएँ, धान्य पदार्थोंके विश्वेदेव, अन्नके वाक् देवता, ओदन (भात)-के ब्रह्मा, जलके समुद्र, यान आदिके उत्तानांगिरस तथा रथके देवता वैश्वानर हैं।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें विस्तारसे द्रव्य-देवताओंका उल्लेख आया है, जो उपयोगी होनेसे संक्षेपमें तालिकाके रूपमें यहाँ प्रस्तुत है—

देय-द्रव्य	देवता
भूमि	विष्णु
गाय	रुद्र
कुम्भ, कमण्डलु आदि जलपात्र	वरुण
समुद्रसे उत्पन्न रत्नादि पदार्थ	वरुण
स्वर्ण तथा सभी लौहपदार्थ	अग्नि
सभी फसलें, पक्वान्न पदार्थ	प्रजापति
सभी गन्धयुक्त पदार्थ	गन्धर्व
विद्या तथा पुस्तक आदि	सरस्वती (ब्राह्मी)
शिल्पपदार्थ (बर्तन आदि)	विश्वकर्मा
वृक्ष, पुष्प, शाक तथा फल	वनस्पति देवता
छत्र, शय्या, रथ, आसन, उपानह तथा सभी प्राणरहित पदार्थ	आंगिरस
गृह	सर्वदैवत्य (विश्वेदेव)
अन्य अनुक्त पदार्थ	विष्णु

इसी प्रकार विविध देय-द्रव्योंके मन्त्र भी शास्त्रोंमें दिये गये हैं, जिनका उपयोग दानके समय करना चाहिये।

दान-सम्बन्धी आवश्यक ज्ञातव्य बातें

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने परामर्श दिया है कि दान चाहे जैसे भी दें, वह कल्याण ही करता है—***'जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान'*** (रा०च०मा० ७।१०३ ख)। यह बात बहुत अच्छी है, महत्त्वपूर्ण है तथा दानके लिये प्रेरणादायी भी है। इस वचनसे सद्विचारोंका प्रादुर्भाव होता है और उदारता तथा त्यागवृत्तिका उदय होता है तथा दया एवं अनुकम्पाका भाव हृदयमें जागता है तथापि शास्त्रोंमें विधि-विधानसे दान देनेकी विशेष महिमा बतायी गयी है। दाता कैसा हो, ग्रहीता कैसा हो, देयद्रव्य कैसा हो, देश-काल कौन-सा हो आदि बातोंपर विस्तारसे विचार किया गया है। इन बातोंकी आवश्यक जानकारी अवश्य होनी चाहिये, इस आशयसे दान-सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें यहाँ दी जा रही हैं—

१-जीवनकी अनित्यता होनेसे तत्क्षण दान देना चाहिये—मत्स्यपुराणने बताया है कि जब कभी भी धन पासमें आ जाय, जब कभी भी मनमें दान देनेकी श्रद्धा उत्पन्न हो ज़ाय, उसीको दानका मुख्य काल समझना चाहिये;

क्योंकि जीवन अनित्य है, इसका कोई भरोसा नहीं है, किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है, मृत्यु किसीकी प्रतीक्षा नहीं करती। अतः दान देनेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये—

यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम्।
तदैव दानकालः स्याद् यतोऽनित्यं हि जीवितम्॥

२-दानमहिमा—दानकी महिमा तो अनन्त है, तथापि एकवचनमें बताया गया है कि दुर्भिक्षमें अन्नका दान करनेवाला तथा सुभिक्षमें स्वर्ण तथा वस्त्रदान करनेवाला—ये दो पुरुष सूर्यमण्डलका भी भेदन करके उच्चगतिको प्राप्त करनेवाले हैं—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।
दातान्नस्य च दुर्भिक्षे सुभिक्षे हेमवस्त्रदः॥

(मदनरत्न दानविवेकोद्योतमें नन्दिपुराणका वचन)

३-प्रतिज्ञाकर न देनेसे पुण्यका क्षरण—वह्निपुराणमें बताया गया है कि दान देनेकी प्रतिज्ञा करके न देनेपर और दिये गये दानका हरण कर लेनेसे जन्मभरका जो पुण्य संचित किया गया रहता है, वह सब नष्ट हो जाता है—

प्रतिश्रुताप्रदानेन दत्तस्य हरणेन च।
जन्मप्रभृति यत्पुण्यं तत्सर्वं विप्रणस्यति॥

४-रातमें दान न करे—स्कन्दपुराणमें बताया गया है कि सामान्यतः रातमें दान नहीं किया जाना चाहिये; क्योंकि ऐसे दानका फल राक्षस ले लेते हैं और वह दाताके लिये भयावह होता है—

रात्रौ दानं न कर्तव्यं कदाचिदपि केनचित्।
हरन्ति राक्षसा यस्मात् तस्मात् दातुर्भयावहम्॥

किंतु यह निषेध ग्रहण आदि पर्वोंके नैमित्तिक दान तथा काम्यव्रतोंके व्रतांगभूत दानको छोड़कर सामान्य दानके लिये है।

५-दानके लिये पुण्यकाल—सामान्यरूपसे दानमें किसी निमित्तरूपी पुण्यकालकी अपेक्षा रहती है तथापि कुछ ऐसे दान हैं, जिनमें किसी देश-काल आदिकी अपेक्षा नहीं रहती, ये अवसरप्राप्त दान हैं, कुछ यहाँ दिये जाते हैं—

(क) उभयतोमुखी गोका दान—गोमाता जब प्रसव कर रही होती हैं, तब वत्स जब योनिद्वारसे बाहर निकलनेके लिये मुखकी ओरसे बाहर निकला रहता है, शेष शरीर योनिके अन्दर ही होता है तो एक तरफ बछड़े (बछिया)-का मुख तथा दूसरी ओर गौका मुख—इस प्रकार दोनों तरफ मुख रहनेसे उस अवस्थामें वह गौ उभयतोमुखी गौ (अर्धप्रसूता गौ) कहलाती है, ऐसी अवस्थामें गोदान करनेका बड़ा माहात्म्य है, दानग्रहणका यही काल है, अतः उस समय कालका विचार नहीं करना चाहिये—

अर्धप्रसूतां गां दद्यात् कालादि न विचारयेत्।
कालः स एव ग्रहणे यदा स्याद् विमुखी तु गौः॥

(दानविवेकोद्योतमें स्कन्दपुराण)

(ख) मरणासन्न-अवस्थामें—आसन्न मृत्युवाले व्यक्तिको अथवा उसके पुत्र-पौत्रादिको तत्काल सवत्सा गौका दान तथा अन्तिम समयके दस महादान, अष्ट महादान, पंचधेनु और अन्न आदिके दानका संकल्प करना चाहिये। उस समय जो भी दान दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। यदि प्रत्यक्ष वस्तुकी उपलब्धता न हो तो निष्क्रय भी कर सकते हैं।

(ग) भूख-प्यासकी स्थितिमें—विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें बताया गया है कि भूखे व्यक्तिको अन्नका दान करने तथा प्यासे व्यक्तिको जल पिलानेमें कालका विचार नहीं करना चाहिये—

न हि कालं प्रतीक्षेत जलं दातुं तृषान्विते।
अन्नोदकं सदा देयमित्याह भगवान् मनुः॥

(घ) नालच्छेदनसे पूर्व—पुत्रोत्पत्ति होनेपर नालच्छेदनसे पूर्व अशौचकी प्रवृत्ति नहीं होती, अतः उस समय (जातकर्मसंस्कारमें) तत्काल दान देना चाहिये—

अच्छिन्ननाड्यां यद्दत्तं पुत्रे जाते द्विजोत्तमाः।
संस्कारेषु च यद्दत्तं तदक्षय्यमुदाहृतम्॥

(विष्णुधर्मो०पु०)

(ङ) भयकी स्थितिमें—कोई व्यक्ति भयकी स्थितिमें हो तो तत्काल उसे अभयदान देना चाहिये—

अभयस्य प्रदाने तु नात्र कार्या विचारणा॥

(विष्णुधर्मो०पु०)

६-अपमानपूर्वक दान न दे—अपमान करके दान नहीं देना चाहिये; क्योंकि कोई ऐसा करता है तो ऐसेमें

वह दाता ही दोषभागी होता है—

नावज्ञया प्रदातव्यं किंचिद् वा केनचित् क्वचित्।
अवज्ञया हि यद्दत्तं दातुस्तद्दोषमावहेत्॥

७-क्रोध करके न दे—शिवधर्मोत्तरपुराणने बताया है कि दान, व्रत, नियम, ज्ञान, ध्यान, होम, जप आदि अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक किये जानेपर भी यदि क्रुद्धावस्थामें किये जाते हैं तो किया हुआ सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है—

दानव्रतानि नियमा ज्ञानं ध्यानं हुतं जपः।
यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधितस्य वृथा भवेत्॥

८-अपवित्र अवस्थामें न दे—हारीतस्मृतिमें बताया गया है कि जो शौचाचारसे भ्रष्ट है, उसके स्नान, दान, तप, त्याग, मन्त्रजप, विहितकर्म तथा मांगलिक आचारके नियम—ये सभी कर्म निष्फल होते हैं—

स्नानं दानं तपस्त्यागो मन्त्रकर्म विधिक्रिया।
मङ्गलाचारनियमाः शौचाद् भ्रष्टस्य निष्फलाः॥

९-दानमें अँगूठेकी स्थिति—वायुपुराणने निर्देश दिया है कि दान, प्रतिग्रह, होम, भोजन, बलिवैश्वदेव आदि सत्कर्मोंके समय हाथका अँगूठा अँगुलियोंसे मिला रहे। अर्थात् सभी अँगुलियाँ मिली रहनी चाहिये। ऐसा न करनेपर वह दान आदि क्रिया असुरोंको प्राप्त हो जाती है—

दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च।
साङ्गुष्ठेन सदा कार्यमसुरेभ्योऽन्यथा भवेत्॥

१०-दानके समय दोनों हाथ घुटनोंके अन्दर रहें—दान आदि देते समय दोनों हाथोंको घुटनोंके बाहर नहीं रखना चाहिये, ऐसे ही आचमन करते समय भी हाथ घुटनोंके अन्दर रहें—

एतान्येव च कार्याणि दानादीनि विशेषतः।
अन्तर्जानु विधेयानि तद्वदाचमनं नृप॥

११-कच्छरहित तथा खुली शिखावाला दानका अधिकारी नहीं—ब्रह्माण्डपुराणने यह बताया है कि धोतीमें खुले हुए कच्छवाला तथा खुली शिखावाला व्यक्ति न तो दान देनेका अधिकारी होता है और न दान लेनेका। ऐसे ही ब्रह्मयज्ञ आदि कर्मोंमें भी समझना चाहिये—

नाधिकारी मुक्तकच्छो मुक्तचूडस्तथैव च।
दाने प्रतिग्रहे यज्ञब्रह्मयज्ञादिकर्मसु॥

१२-सत्कर्ममें कैसा वस्त्र पहने—ब्रह्माण्डपुराणमें उल्लेख है कि सभी सत्कर्मोंमें धोतीके साथ उत्तरीय वस्त्र (गमछा, चादर) अवश्य धारण करना चाहिये, जो धुला न हो तथा धोबीके द्वारा धुला हो, ऐसा वस्त्र नहीं पहनना चाहिये—

सोत्तरीयस्ततः कुर्यात् सर्वकर्माणि भावतः।
अधौते कारुधौते च परिदध्यात् न वाससी॥

१३-गीले वस्त्रोंसे जप-होम-प्रतिग्रह आदि न करे—महर्षि आपस्तम्बका कहना है कि गीले वस्त्र पहनकर जप, होम, दानग्रहण आदि न करे, साथ ही हाथोंको घुटनोंसे बाहर न करे। ऐसा करके यदि दान आदि किया जाता है तो वह सब राक्षसोंको प्राप्त होता है—

आर्द्रवासस्तु यः कुर्यात् जपहोमप्रतिग्रहम्।
सर्वं तद्राक्षसं विद्याद् बहिर्जानु च यत् कृतम्॥

१४-दानमें एक वस्त्रका निषेध—विष्णुपुराणमें बताया गया है कि होम, देवार्चन, आचमन, पुण्याहवाचन, जप तथा दान आदि सत्कर्म एक वस्त्र (केवल धोती) धारणकर नहीं करने चाहिये—

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा।
नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विजवाचनिके जपे॥

१५-दानमें प्रौढ़पाद होकर न बैठे—महर्षि शाङ्खायनने बताया है कि दान, आचमन, होम, भोजन, देवतार्चन, स्वाध्याय, पितृतर्पण आदि सत्कर्मोंमें प्रौढपाद (उकड़ूँ) होकर न बैठे—

दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम्।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥

१६-दानमें कुश और यज्ञोपवीतकी महिमा—छन्दोगपरिशिष्टमें महर्षि कात्यायनके एक वचनमें बताया गया है कि कुशके पवित्र आसनपर बैठनेवाले तथा यज्ञोपवीत धारण करनेवालेको ही दान देना चाहिये अथवा दान ग्रहण करना चाहिये। अन्यथा वह विफल हो जाता है—

कुशोपरि निविष्टेन तथा यज्ञोपवीतिना।
देयं प्रतिग्रहीतव्यमन्यथा विफलं भवेत्॥

१७-दानमें दाता और ग्रहीताकी दिशा—स्मृत्यन्तरके एक वचनमें कहा गया है कि दान देते समय दाताका मुख पूर्व दिशाकी ओर होना चाहिये और दानग्रहण करनेवालेका मुख उत्तरकी ओर होना चाहिये। इससे दाता और प्रतिग्रहीता दोनोंकी आयुकी वृद्धि होती है—

दद्यात् पूर्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः।
आयुर्विवर्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत्॥

१८-नाम-गोत्रका उच्चारण—वृद्धवसिष्ठजीने बताया है कि दानमें देनेवालेको केवल अपने नाम तथा गोत्रका उच्चारण करना चाहिये, किंतु कन्यादानमें पिता, पितामह तथा प्रपितामह—इस प्रकार तीन पीढ़ियोंका नामगोत्रोच्चार करना चाहिये—

नामगोत्रे समुच्चार्य सम्प्रदानस्य चात्मनः।
सप्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने तु पुंस्त्रयम्॥

१९-दानकी चर्चासे दानका फल नष्ट हो जाता है—मनुस्मृतिमें बताया गया है कि असत्य बोलनेसे यज्ञ नष्ट हो जाता है, विस्मयसे तपस्या नष्ट हो जाती है, ब्राह्मणको दुर्वचन कहनेसे आयु नष्ट हो जाती है और दानकी चर्चा करने (मैंने यह दान दिया आदि कहने)-से दानका फल नष्ट हो जाता है—

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात्।
आयुर्विप्रापवादेन दानं तु परिकीर्तनात्॥

दानके सम्बन्धमें कुछ सूक्ष्म बातें

दानके सम्बन्धमें कुछ सूक्ष्म बातें हैं, जो बड़े महत्त्वकी हैं। दान की हुई वस्तुसे दानदाताकी आसक्ति और उसके मोहका समापन तथा उस वस्तुसे दानग्रहीताकी निःस्पृहताका उदाहरण नीचे लिखी एक सत्य घटनासे स्पष्ट हो सकेगा—

पूर्वमें ज्योतिष्पीठके शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज अपने स्थानपर विराजमान थे, उनका एक अत्यन्त श्रद्धालु भक्त जो सम्पन्न परिवारका था, कश्मीर आदि स्थानोंकी यात्रा करके आया था। उसने कश्मीरकी एक कीमती शाल अपने श्रद्धास्पद महाराजजीको समर्पित की। स्वामीजी महाराज शाल देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके पास एक सत्पात्र निर्धन ब्राह्मण बैठा था। महाराजजीने वार्ता करते-करते उन ब्राह्मणदेवताको संकेत किया कि शाल तुम ले लो। उस ब्राह्मणने प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार भी कर लिया। वह श्रद्धालु देख रहा था। उसे यह देखकर क्षोभकी अनुभूति हुई। उसने महाराजजीसे पुनः निवेदन किया—महाराज! यह शाल तो मैं आपके लिये लाया था, आपको इसका उपयोग करना चाहिये। स्वामीजी महाराजने मुसकराते हुए उस ब्राह्मणको पुनः संकेत किया कि यह शाल इन्हें वापस दे दो। वह श्रद्धालु व्यक्ति आश्चर्यचकित हो महाराजकी ओर देखने लगा। स्वामीजी महाराजने अपने उस भक्तसे बड़े स्नेहपूर्वक कहा—तुमने यह वस्तु मुझे दी तो सही, परंतु अभीतक तुम्हारी आसक्ति इस वस्तुसे मिटी नहीं है। किसी वस्तुको दे देनेके बाद उस वस्तुका क्या उपयोग करना चाहिये—यह तो मेरे विचार करनेकी बात है। अभी इसमें तुम्हारी ममता होनेके कारण मैंने इसे तुम्हें वापस दिलवाया। उस श्रद्धालु व्यक्तिको महाराजजीसे एक सीख मिली और उसने पुनः आग्रहपूर्वक उस शालको महाराजजीके आज्ञानुसार उन ब्राह्मणदेवताको प्रदान कर दिया।

दानकी मार्मिक बात

दानकी महत्तामें बड़ा रहस्य छिपा है। वास्तवमें प्रत्येक सत्कार्य दान है। यदि हम अपने भाईको अपनी मुसकराहटसे आनन्दित करते हैं तो ऐसा करना भी दान है। यदि हम अपने संगी-साथीको अथवा किसी अन्य व्यक्तिको सत्कर्मकी प्रेरणा देते हैं या उसके हितमें कोई सत्परामर्श देते हैं तो यह भी दान है। भूले-भटके मुसाफिरको सही मार्गपर पहुँचाना, अन्धे व्यक्तिको मार्ग बताना, सड़कपर पड़े पत्थरों, काँटों और अन्यान्य दुःखदायी बाधाओंको हटाना, भूखेको अन्न और प्यासेको जल देना यह सब दानकी कोटिमें ही तो है। महाभारतकी एक कथा है—

महाराज युधिष्ठिरका बहुप्रशंसित अश्वमेध यज्ञ प्रायः समाप्त हो रहा था। उनके सत्य और क्षमताकी धाक दूर-दूर देशोंपर छा रही थी। उनका यश चतुर्दिक् व्याप्त हो रहा था। उसी समयकी बात है। कुछ ब्राह्मण और यज्ञ करानेवाले एक स्थानपर बैठे उनके उस अश्वमेध यज्ञकी

प्रशंसा कर रहे थे। उनका मत था कि ऐसा यज्ञ और ऐसा दान न पृथ्वीपर कभी हुआ, न होगा।

उसी समय वहाँ कहींसे चलकर एक नेवला आ गया। वह एक विचित्र नेवला था। उसकी आँखें नीली थीं और उसके शरीरके एक ओरका भाग सोनेका था। वहाँ पहुँचते ही उसने वज्र-तुल्य भयंकर गर्जना की, जिससे समस्त मृग-पक्षीगण भयभीत् हो गये। इसके बाद वह मनुष्यकी भाषामें कहने लगा—'राजाओ! तुम्हारा यह यज्ञ कुरुक्षेत्रवासी एक उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके दिये हुए सेरभर सत्तूके तुल्य भी नहीं है।' इसपर सभी ब्राह्मण तथा अन्य लोग भी आश्चर्यमें पड़ गये। ब्राह्मणगण उसे घेरकर खड़े हो गये तथा पूछने लगे—'तुम कौन हो और यहाँ कैसे पहुँच गये, जो इस यज्ञकी निन्दा कर रहे हो?'

नेवलेने कहा—'ब्राह्मणो! मैंने जो कुछ कहा है, सच है; आपलोग धैर्यसे सुनें। कुछ दिन पहले कुरुक्षेत्रमें एक ब्राह्मण रहते थे। उनके परिवारमें स्त्री, पुत्र और पुत्रवधूके सहित चार व्यक्ति थे। वे अनाज काट लेनेके बाद खेतोंसे दाने चुनकर उञ्छवृत्तिसे सपरिवार अपने जीवनका निर्वाह करते थे। उनका प्रति तीन दिन बाद ही सपरिवार भोजनका नियम था। एक बार वहाँ बड़ा भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। इसमें कई तीन दिन निकल जानेपर भी उन्हें अन्न प्राप्त न हुआ। अन्तमें किसी दिन उन्हें एक सेर जौ मिला, जिससे उन्होंने सत्तू तैयार किया। फिर उससे अग्निहोत्र करके एक-एक पाव बाँटकर खानेके लिये वे उद्यत हुए। इसी बीच वहाँ एक ब्राह्मण अतिथि आ गया। तब विधिपूर्वक पाद्य-अर्घ्य आदिसे उसकी पूजा करके ब्राह्मणने उसे एक पाव सत्तू भोजनके लिये दिया, पर अतिथि उससे तृप्त न हुआ और क्रमशः वह सबके भागका सत्तू ग्रहण कर लिया। वास्तवमें धर्म ही उस ब्राह्मण-अतिथिके रूपमें उपस्थित थे। वे प्रवचनमें अत्यन्त कुशल थे, अतः प्रसन्न होकर उन्होंने ब्राह्मणसे कहा कि 'द्विजश्रेष्ठ! तुम्हारे इस श्रेष्ठ दानसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। देखो, आकाशसे भूतलपर यह पुष्पोंकी वर्षा हो रही है और देवगण तुम्हारे दानसे विस्मित हो तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। तुम्हारे समस्त पितृगण तर गये। अनेक युगोंतक आगे होनेवाली सन्तानें भी तुम्हारे इस पुण्यके प्रतापसे तर जायँगी। अब तुम सभी अपने धर्मके प्रभावसे सशरीर स्वर्गमें चलो।

क्लेशमें भी जब मनुष्यमें दानविषयक रुचि जाग्रत् होती है, तब उसका धर्म बढ़ता है। विशेष समय, पात्र एवं श्रद्धाके संयोगसे तो उसका महत्त्व और भी अधिक हो जाता है। स्वर्गका द्वार अत्यन्त सूक्ष्म है, पर मोहाच्छन्न मनुष्य उसे देख नहीं पाता। महाराज रन्तिदेव शुद्ध हृदयसे केवल जलके दानसे ही स्वर्ग चले गये थे, पर अन्यायोपार्जित धनके दानका कोई अर्थ नहीं है। इसीलिये नृगको नरकमें जाना पड़ा। तुम्हारे दानकी तुलना अनेक यज्ञोंसे भी सम्भव नहीं, अतः तुम ब्रह्मलोकको जाओ। यह दिव्य विमान तुम्हारे सामने उपस्थित है। मेरी ओर देखो, मैं साक्षात् धर्म हूँ। तुम सभी सानन्द इस विमानपर चढ़ो।'

इस तरह उन सभीके सशरीर स्वर्ग जानेपर मैं उस बिलसे निकला और उन शक्तुकणोंके स्पर्श एवं घ्राणसे, जल-कीचड़के सम्पर्कसे और स्वर्गसे गिरे हुए दिव्य पुष्पोंके रौंदनेसे मेरा सिर एवं पार्श्व स्वर्णिम हो गया। तबसे मैं अनेक यज्ञोंमें घूमा, फिर यहाँ आया; पर मेरा शेष शरीर सोनेका न हुआ। अतः यह यज्ञ उस सेरभर सत्तूके दानके तुल्य नहीं है।

इस कथासे स्पष्ट हो जाता है कि दान और त्यागमें परिमाणका उतना महत्त्व नहीं है; जिस वृत्तिसे दान दिया गया है, उसीका विशेष महत्त्व है। यदि दानके पीछे यशकी लिप्सा है या अहंभाव है तो वह दान दान होकर भी उच्चकोटिका नहीं हो सकता। दानमें देनेका गर्व, यहाँतक कि भाव भी न हो तो वह महान् दान है। यह अनुभूति कि 'सब कुछ प्रभुका है, मेरा अपना कुछ नहीं है', दानको सात्त्विक बनाती है। 'सब कुछ उन्हींका है, उन्हींकी सत्प्रेरणासे यह कार्य हो रहा है, इसलिये उन्हींकी कृपासे यह पुण्य कार्य हुआ और मैं धन्य हुआ, मेरा धन-धान्य या पौरुष सफल हुआ'—यही भावना दानमें होनी चाहिये।

दान धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस चतुर्वर्गकी प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन है—

'धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम्।'

—राधेश्याम खेमका

भगवान् सदाशिवका दानधर्मोपदेश

भगवान् साम्बसदाशिवकी अनन्तानन्त गुणावलियोंमेंसे गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने उनकी आशुतोषता, दानशीलता, उदारता, अवढरदानीपन तथा भक्तप्रियता आदि गुणोंको मुख्यता दी है। वे कहते हैं कि भगवान् शंकरके समान दानी कहीं नहीं है, वे तो दीनदयाल हैं, देना ही उनके मनको भाता है और माँगनेवाले उन्हें सदा सुहाते हैं—

दानी कहुँ संकर-सम नाहीं।
दीन-दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं॥

(विनय-पत्रिका ४)

एक अन्य पदमें तुलसीदासजी कहते हैं—हे शंकर! आप बड़े देव हैं, बड़े दानी हैं और बड़े भोले हैं, जिन-जिन लोगोंने आपके सामने हाथ जोड़े, आपने बिना भेद-भावके उन सब लोगोंके दुःख दूर कर दिये—

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किये दूर दुख सबनिके, जिन्ह-जिन्ह कर जोरे॥

(विनय-पत्रिका ८)

संसारमें माँगनेवाला किसीको अच्छा नहीं लगता, किंतु भगवान् शंकरजी तो ऐसे भोले हैं कि उन्हें याचक ही अच्छे लगते हैं और वे आशुतोष अवढरदानी हैं। जो जो कुछ चाहता है, माँगता है, वह सब सहज ही दे देते हैं और इससे ब्रह्माजीको बड़ा कष्ट होता है, वे श्रीपार्वतीजीके पास जाकर अपना दुःखड़ा सुनाते हुए कहने लगे—हे भवानी! आपके नाथ (शिवजी) बावले-से हैं, सदा देते ही रहते हैं, जिन लोगोंने कभी किसीको दान देकर बदलेमें पानेका कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त किया, ऐसे लोगोंको भी वे दे डालते हैं, जिससे वेदकी मर्यादा टूटती है। आप बड़ी सयानी हैं, अपने घरकी भलाई तो देखिये, शिवजी तो अनधिकारियोंको भी सब कुछ दे देते हैं, जिन लोगोंके मस्तकपर मैंने सुखका नाम-निशान भी नहीं लिखा था, आपके पति तो उनको भी स्वर्गका स्थान दे देते हैं, जिससे मेरे लिये स्वर्ग सजाते-सजाते नाकों दम आ गया है। दीनता और दुःखको कहीं रहनेकी जगह नहीं रह गयी है, याचकता तो व्याकुल हो उठी है, आपके पति तो मेरी लिखी भाग्यलिपि ही बदल देते हैं, अब मुझसे यह कार्य नहीं होगा, यह कार्य किसी और को सौंपिये। ब्रह्माजीकी ऐसी प्रेमभरी वाणी सुनकर महादेवजी मन-ही-मन मुदित हुए तथा माता पार्वती मुसकराने लगीं—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी॥
निज घरकी बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकनकौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी॥
दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी॥
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंगजुत, सुनि बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी॥

(विनय-पत्रिका ५)

भगवान् शंकरके इसी भोलेपन और दानशीलताको कवितावलीमें इस प्रकार दर्शाया गया है—

नागो फिरै कहै मागनो देखि 'न खाँगो कछू', जनि मागिये थोरो।
राँकनि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरें जाचक जोरो॥
नाक सँवारत आयो हौं नाकहिं, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो।
ब्रह्मा कहै, गिरिजा! सिखवो पति रावरो, दानि है बावरो भोरो॥

ब्रह्माजी कहते हैं—हे पार्वति! तुम अपने पतिको समझा दो—यह बड़ा बावला और भोला दानी है। देखो, स्वयं तो नंगा फिरता है; परंतु यदि किसी याचकको देखता है तो कहता है कि थोड़ा मत माँगना, यहाँ कुछ कमी नहीं है। संसारमें जितने याचक जोड़े जुट सकते, उन्हें जुटाकर उन सब कंगालोंको प्रसन्न होकर इन्द्र बना देता है। उनके लिये स्वर्ग तैयार करते-करते मेरी नाकमें दम आ गया है, परंतु पिनाकी (पिनाकपाणि महादेव) मेरा कुछ भी अहसान नहीं मानते।

इस प्रकार भगवान् भोलेनाथने अपने स्वभाव एवं मंगल चरित्रसे दान-धर्मकी प्रतिष्ठा की है और प्रकारान्तरसे उन्होंने यह शिक्षा दी है कि अपने सामर्थ्यानुसार नित्य दान देना चाहिये और दीन-दुःखियों एवं याचकोंको कभी भी निराश नहीं करना चाहिये।

एक बारकी बात है, देवी पार्वतीजीने भगवान्से पूछा—प्रभो! जो द्रव्य लोकमें सभीको प्राप्त है तथा जो सर्वसाधारणकी वस्तु है, उस सर्वसामान्य वस्तुका दान करनेवाला मनुष्य कैसे धर्मका भागी होता है? इस प्रश्नको सुनकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और बोले देवि! आपने बहुत सुन्दर बात पूछी है, वास्तवमें संसारमें जो द्रव्य हैं, वे सब तो भौतिक हैं, सभीके लिये साधारण हैं फिर उनमें उत्तम फल देनेकी शक्ति कैसे आ सकती है? किंतु छः ऐसी बातें हैं, जिनका पालन किया जाय तो सांसारिक वस्तुओंके दानमें भी श्रेष्ठ फल देनेकी शक्ति आ जाती है। दान देनेवाला कैसा है, उसे ग्रहण करनेवाला कैसा है, देय वस्तु कैसी है, उसे देनेका प्रयत्न कैसा है, देश और काल कौन-सा है—इन छः वस्तुओंके गुणोंसे युक्त दान उत्तम बताया गया है और ऐसा दान श्रेष्ठ फल देनेवाला होता है—

दाता प्रतिग्रहीता च देयं सोपक्रमं तथा।
देशकालौ च यत् त्वेतद् दानं षड्गुणमुच्यते॥

(महा० अनु० दान०)

भगवान्ने बताया कि दान देनेवाला मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा शुद्ध हो, उसे सत्यवादी, क्रोधजयी, लोभहीन, अदोषदर्शी, श्रद्धालु और आस्तिक होना चाहिये—ऐसा दाता ही उत्तम दाता होता है। दान लेनेकी पात्रताके लिये भगवान् शंकर कहते हैं कि जो शुद्ध, जितेन्द्रिय, क्रोधजयी, उदार, उच्च कुलमें उत्पन्न, शास्त्रज्ञान एवं सदाचारसे सम्पन्न हो, पंचमहायज्ञपरायण हो, वह दान लेनेका उत्तम पात्र है। लोकमें तो जो जिस वस्तुके योग्य हो, वही उस वस्तुको पानेका पात्र होता है; भूखा मनुष्य अन्नका और प्यासा व्यक्ति जलका पात्र होता है। हे देवि! दूसरोंके वध या चोरी करनेसे जो प्राप्त होता है, अधर्मसे, धनविषयक मोहसे तथा बहुतसे प्राणियोंकी जीविकाका अवरोध करनेसे जो धन प्राप्त होता है, वह अत्यन्त निन्दित है—

परोपघाताद् यद् द्रव्यं चौर्याद् वा लभ्यते नृभिः।
निर्दयाल्लभ्यते यच्च धूर्तभावेन वै तथा॥
अधर्मादर्थमोहाद् वा बहूनामुपरोधनात्।
लभ्यते यद् धनं देवि तदत्यन्तविगर्हितम्॥

(महा० अनु० दान०)

हे भामिनि! ऐसे धनसे किये हुए दानादि धर्मको निष्फल समझो। अतः शुभकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको न्यायतः प्राप्त हुए धनके द्वारा ही दान करना चाहिये—**'तस्मान्न्यायागतेनैव दातव्यं शुभमिच्छता॥'**

जो-जो अपनेको प्रिय लगे, उसी-उसी वस्तुका सदा दान करना चाहिये। भगवान् शंकर कहते हैं कि दानका सुयोग्य पात्र ब्राह्मण यदि दूरका निवासी हो तो उसीके पास जाकर उसे प्रसन्नकर दाता इस प्रकार दान दे कि वह सन्तुष्ट हो जाय। यह दानकी श्रेष्ठ विधि है—**'एष दानविधिः श्रेष्ठः।'** दानपात्रको अपने घर बुलाकर दान देना मध्यम श्रेणीका दान है।

एक महत्त्वकी बात बताते हुए भगवान् कहते हैं कि ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको कुपात्र पुरुषोंको भी

आवश्यकता होनेपर अन्न-वस्त्र आदिका दान करना चाहिये। इसी प्रकार पुण्य क्षेत्रों तथा पुण्य अवसरोंपर जो दिया जाता है, वह देश और कालकी मर्यादासे अत्यन्त शुभकारक होता है। भगवती पार्वतीजीने पुनः प्रश्न किया—हे देव! आपने दानके गुणोंके विषयमें बताया, क्या ऐसा भी होता है कि इन गुणोंसे युक्त रहनेपर भी दान निष्फल हो जाय।

इसपर भगवान् बोले—महाभागे! मनुष्योंके भावदोषसे ऐसा होता है। यदि कोई विधिपूर्वक दानादि धर्मका अनुष्ठान करे और फिर उसके लिये पश्चात्ताप करे अथवा भरी सभामें उसकी प्रशंसा करे तो उसका वह धर्म सब कुछ रहनेपर भी व्यर्थ हो जाता है, अतः दाताको इन दो-का परित्याग कर देना चाहिये अर्थात् देकर पश्चात्ताप न करे और दिये दानकी स्वयं प्रशंसा न करे।

विविध वस्तुओंका दान

किन-किन वस्तुओंका दान करना चाहिये, इस जिज्ञासापर भगवान् शंकर उन्हें बताते हैं—हे देवि! अन्नका दान सबसे बड़ा दान है, अन्न मनुष्योंका प्राण है, जो अन्नदान करता है, वह प्राणदान करता है। हे भामिनि! संसारमें गौओंका दान विशेष दान है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने समस्त प्राणियोंके जीवन-निर्वाहके लिये गौओंकी सृष्टि की थी। इसीलिये वे सबकी माता कही गयीं हैं, गौओंके मल-मूत्रसे कभी उद्विग्न नहीं होना चाहिये और उनका मांस कभी नहीं खाना चाहिये, सदा गौओंका भक्त होना चाहिये—

गवां मूत्रपुरीषाणि नोद्विजेत कदाचन।
न चासां मांसमश्नीयाद् गोषु भक्तः सदा भवेत्॥

(महा० अनु० दान०)

भगवान् शिव कहते हैं—अब मैं भूमिदानका वर्णन करूँगा; क्योंकि भूमिदानका महत्त्व बहुत अधिक है, रहनेके लिये सुन्दर घर बना हो, कुआँ हो, हलसे जोती हुई उस भूमिमें फसल उगी हो, फलदार वृक्ष हों—ऐसी भूमिका दान करना चाहिये। भूमिदान करके मनुष्य परलोकमें दीर्घायु, सुन्दर शरीर और बढ़ी-चढ़ी उत्तम सम्पत्ति पाता है—

दीर्घायुष्यं वराङ्गत्वं स्फीतां च श्रियमुत्तमाम्।
परत्र लभते मर्त्यः सम्प्रदाय वसुन्धराम्॥

(महा० अनु० दान०)

हे देवि! अपनी कन्याके साथ ही दूसरोंकी कन्याका दान भी यथाशक्ति करना-कराना चाहिये। ऐसे ही शिष्यको विद्यादान देनेवाला मृत्युके पश्चात् वृद्धि, बुद्धि, धृति और स्मृति प्राप्त करता है। निर्धन छात्रोंको धनकी सहायता देकर विद्या प्राप्त कराना भी स्वयं किये विद्यादानके समान है। हे देवि! तिल पवित्र, पापनाशक और पुण्यमय माने गये हैं, अतः तिलोंका दान करना चाहिये। आश्विनमासकी पूर्णिमा तिथिको तिलदानका विशेष महत्त्व है। ऐसे ही तिलोंसे गौ की आकृति बनाकर तिलधेनुका दान करना चाहिये।

हे देवि! पुल, कुआँ और पोखरा बनानेवाला मानव दीर्घायु, सौभाग्य तथा मृत्युके पश्चात् शुभगति प्राप्त करता है। छाया, फूल और फलदार वृक्ष लगानेवाला पुण्यलोक प्राप्त करता है। जो रोगियोंको औषध प्रदान करता है, वह रोगहीन तथा दीर्घायु होता है। इसी प्रकार जो लोकहितके लिये वेदविद्यालय, सभाभवन, धर्मशाला तथा भिक्षुओंके लिये आश्रम बनाता है, गोशालाओंका निर्माण करता है, वह मृत्युके पश्चात् शुभ फल पाता है। अन्तमें भगवान् शिव दानतत्त्वका रहस्य बताते हुए पार्वतीजीसे कहते हैं—हे देवि! सभी दानोंको शुद्ध हृदयसे निष्काम भावसे देना चाहिये, उसमें क्रूरताका अभाव होना चाहिये और दयापूर्वक तथा अत्यन्त प्रसन्नताके साथ देना चाहिये, तभी दाता शुभ फलका भागी होता है—

मनसा तत्त्वतः शुद्धमानृशंस्यपुरस्सरम्।
प्रीत्या तु सर्वदानानि दत्त्वा फलमवाप्नुयात्॥

(महा० अनु० दान०)

दानकी महिमा बताते हुए वे कहते हैं—इस पृथ्वीपर दानके समान कोई दूसरी वस्तु नहीं है और दानके समान कोई निधि नहीं है, सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है और असत्यसे बढ़कर कोई पातक नहीं है—

नास्ति भूमौ दानसमं नास्ति दानसमो निधिः।
नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्॥

(महा० अनु० दान०)

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी दान-मर्यादा

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्'—अपनी चर्याद्वारा मर्यादाकी प्रतिष्ठा स्थापित करनेके लिये तथा लोगोंको उत्तम चरित्रकी शिक्षा प्रदान करनेके लिये भगवान्‌ने मनुष्यावतार ग्रहण किया। अकारणकरुण भगवान् श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम कहलाते हैं और उनका समस्त पावन चरित्र, उनके समस्त कर्म लोकके लिये सदा ही अनुकरणीय हैं, अनुपालनीय हैं—**'रामादिवत् वर्तितव्यम्।'** वे साक्षात् धर्मविग्रह हैं—**'रामो विग्रहवान् धर्मः'** (वा०रा० ३।३७।१३)। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी स्थापना और पूरी निष्ठा एवं श्रद्धाके साथ उनका परिपालन श्रीरामजीकी नित्यकी चर्या थी। आनन्दरामायणमें बताया गया है कि श्रीराम गृहस्थधर्मका पालन करते हुए प्रातःकाल उठकर शौचादिक कृत्यसे निवृत्त होकर पालकीपर चढ़कर सरयूजी स्नानके लिये जाते थे और सवारी आदिको किनारे छोड़कर पैदल बालुकापर चलकर नदीतटतक जाते थे। सरयू नदीको प्रणाम करके नित्यकर्म करते और ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, धान्य तथा सुवर्ण आदिका दान देकर पवित्र सरयू और ब्राह्मणोंकी सादर पूजा करते थे—

दत्त्वा दानान्यनेकानि गोभूधान्यरसादिभिः।
सम्पूज्य सरयूं पुण्यां ब्राह्मणान् पूज्य सादरम्॥
(आ०रा० सा० ५।७०)

तीर्थयात्राके प्रसंगमें भगवान् श्रीरामने सीताजीके साथ धर्मतत्पर रहते हुए एक वर्ष काशीमें निवास किया। गंगाजीके तटपर उन्होंने पत्थरोंका एक घाट बनवाया, जो उन्हींके नामसे रामघाट नामसे आज भी विख्यात है। उन्होंने सीताजीके साथ पंचगंगामें स्नान किया, उस समय उत्तम कार्तिकमास था, एक वर्षतक यहाँ रहकर धर्माचरण किया, दान-पुण्य किया, बादमें तीर्थवासियोंको रत्न, सुवर्ण, वस्त्राभूषण, गौ, सोना-चाँदी आदि दानमें दिया। अन्नदान तथा धान्य आदिके दानसे उन्हें सन्तुष्ट किया। (आ०रा० यात्रा० सर्ग ६) भगवान् श्रीरामजीका जहाँ भी पावन चरित्र आया है, वहीं उनके द्वारा नित्य नियमपूर्वक सत्कर्मानुष्ठान करने तथा दान देनेका विवरण आया है—**'आवश्यकं तु सम्पाद्य कृत्वा शौचविधिं क्रमात्। हुत्वाग्निहोत्रविधिना कृत्वा देवार्चनं गृहे॥ ददौ दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो यथाक्रमम्।'** (आ०रा०वि० ४।१५-१६)

एक बार श्रीरामजीने लक्ष्मणजीके माध्यमसे अपने राज्यमें सभीको धर्माचरण करनेकी आज्ञा करवायी, उसीमें दानधर्मकी भी अनेक बातें आयी हैं, वहाँ कहा गया है—कोई मनुष्य अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको न छोड़े—**'नित्यनैमित्तिकं कर्म न त्याज्यं वै कदाचन॥'** (आ०रा०राज्य० २४।८६) देवताओंकी सदा पूजा करनी चाहिये, निरन्तर धर्मकार्य करते रहना चाहिये। लोग समय-समयपर धेनुदान, वाजिदान, गजदान आदि ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक दिया करें। वसन्तऋतुमें चन्दन, छत्र तथा पंखेका दान करें। कार्तिकमासमें दीपदान करें। माघमासमें लकड़ियों तथा कम्बलका दान करें। चैत्रमें ताम्बूल तथा केलेके फलका दान करें, वैशाखमें शीशा, कस्तूरी, जायफल, इलायची तथा कपूरका दान करें। गीता आदि सद्ग्रन्थोंका निरन्तर दान करें—**'दानानि पुस्तकानां च कर्तव्यानि निरन्तरम्'** (आ०रा० राज्य० २४।१२६)। श्रीरामजी अपनी आज्ञामें बताते हैं कि दान आदि शुभ कर्मोंमें शीघ्रता करनी चाहिये; क्योंकि कालका कोई भरोसा नहीं है, कब आ जाय—**'दाने विलम्बो नो कार्यः'** (आ०रामा०राज्य० २४।१३७)। श्रीरामजीने अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ किये, जिनमें भूमि, दक्षिणा तथा अनेक दान दिये गये थे। भीष्मपितामहने राजा युधिष्ठिरको बताया—राजन्! दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यज्ञोंमें प्रचुर धन दानमें देकर संसारमें अपने यशकी स्थापना करके अक्षय लोकोंमें गये हैं—

रामो दाशरथिश्चैव हुत्वा यज्ञेषु वै वसु।
स गतो ह्यक्षयाँल्लोकान् यस्य लोके महद् यशः॥
(महा०अनु० १३७।१४)

वाल्मीकीय रामायणमें बताया गया है कि श्रीरामजीने बहुत-से अश्वमेधयज्ञ किये और उससे दस गुने वाजपेय तथा अग्निष्टोम, गोसव आदि बड़े-बड़े यज्ञ किये। एक गोसवयज्ञकी दक्षिणामें दस हजार गौएँ देनेका विधान है तो फिर इन यज्ञोंमें कितनी गौएँ दानमें दी गयी होंगी, अनुमान

करना भी कठिन है! श्रीरामचरितमानसमें कहा गया है कि प्रभुने करोड़ों अश्वमेधयज्ञ किये और द्विजोंको अनेक प्रकारके दान दिये—

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥

(रा०च०मा० ७। २४। १)

अपने राज्याभिषेकके अवसरपर श्रीरामने ब्राह्मणोंको एक लाख घोड़े, उतनी ही संख्यामें दुधार गौएँ तथा एक सौ साँड़ दानमें दिये थे—

सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा॥
ददौ शतवृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः।

(वा०रा० ६। १२८। ७३-७४)

शरणागतिके दाता और अभयदान देनेवाले तो भगवान् श्रीराम ही हैं। उनकी तो यह घोषणा है कि जो एक बार भी सच्चे मनसे 'प्रभो, मैं आपका हूँ, आपके शरणागत हूँ' ऐसा कहता है, उसे मैं सभी प्राणियोंसे अभय होनेका वर प्रदान करता हूँ, यह मेरी प्रतिज्ञा है, यह मेरा नियम है, व्रत है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा०रा० ६। १८। ३३)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भगवान् श्रीरामकी दानशीलता, उदारता और कृपालुता आदि गुणोंके विषयमें कहते हैं कि हे श्रीराम! सच्चे दानियोंमें शिरोमणि एक आप ही हैं, जिस किसीने (एक बार) आपसे माँगा, फिर उसे माँगनेके लिये बहुत नाच नहीं नाचने पड़े अर्थात् वह पूर्णकाम हो गया।

एकै दानि सिरोमनि साँचो।
जोइ जाच्यो सोइ जाचकताबस, फिरि बहु नाच न नाचो॥

(विनय-पत्रिका १६३)

एक दूसरे प्रसंगमें वे कहते हैं कि यदि माँगना है तो केवल रामसे ही माँगो, वे जिस याचकको अपनाते हैं, उसके दोष, दुःख और दरिद्रताको दरिद्र (क्षीण) कर देते हैं, ऐसे श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर और किसके आगे हाथ फैलाया जाय?

रीति महाराजकी, नेवाजिए जो माँगनो, सो
दोष-दुख-दारिद दरिद्र कै-कै छोड़िए।
× × × × ×
तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िये॥

(कवितावली उत्तर० २५)

भगवान् श्रीरामका वनगमन परिजनोंके लिये विषादका विषय था, पर स्वयं श्रीरामके लिये विनोदका। उन्होंने उत्साहपूर्वक अकूत अन्न-धन-रत्न आदि तथा बहुत-सी गौएँ दानकर वनयात्रा आरम्भ की। उस समय भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणजीसे कहा कि महर्षि अगस्त्य एवं विश्वामित्रजीको हजारों गौएँ देकर सन्तुष्ट करो—'**तर्पयस्व महाबाहो गोसहस्रेण राघव**'। इसी प्रकार उन्होंने सूतश्रेष्ठ सचिव चित्ररथको वस्तु-वाहन-धनादिके साथ एक हजार गौएँ—'**गवां दशशतेन च**' एवं कठ तथा कलाप-शाखाके अध्येता ब्रह्मचारियोंको चावल और चनेका भार वहन करनेवाले बारह सौ बैल और व्यंजन एवं दही-घीके लिये एक हजार गौएँ दिलवायीं—

शालिवाहनसहस्रं च द्वे शते भद्रकांस्तथा॥
व्यञ्जनार्थं च सौमित्रे गोसहस्रमुपाकुरु।

(वा०रा० २। ३२। २०-२१)

भगवान् श्रीरामकी वनयात्राके अवसरपर गोदानकी एक विनोदपूर्ण कथा श्रीवाल्मीकीय रामायणमें आयी है। श्रीराम वन जानेको तैयार थे। उस बातसे अनभिज्ञ त्रिजट नामक एक दीन-दुर्बल ब्राह्मणको पत्नीने प्रेरित किया—'नाथ! आप श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करें तो अवश्य कुछ पा जाइयेगा, वे बड़े धर्मज्ञ हैं।' त्रिजटने भगवान् श्रीरामके पास पहुँचकर कहा—'मैं निर्धन हूँ, मेरे बहुत-सी सन्तानें हैं। आप मुझपर कृपा करें।' दुर्बलतासे पीले पड़े हुए ब्राह्मणकी बात सुनकर भगवान् श्रीरामने विनोदमें कह

दिया—'विप्रवर! आप अपना डंडा जितनी दूर फेंक सकें,

फेंकिये। वह जहाँ जाकर गिरेगा, वहाँतककी सब गौएँ आपकी हो जायँगी। यह सुनकर त्रिजटने शीघ्रतासे धोतीका फेंटा कसकर डंडेको घुमाकर ऐसे जोरसे फेंका कि वह सरयूजीके पार हजारों गौओंके बीच एक साँड़के पास गिरा। भगवान् श्रीरामने त्रिजटको गले लगा लिया और कथनानुसार सारी गौएँ उनके पास भिजवा दीं। गौओंके समूहको पाकर मुनि त्रिजट पत्नीसहित प्रसन्न हो गये—**'गवामनीकं प्रतिगृह्य मोदितः।'** (वा०रा० २।३२।४३)

भगवान् श्रीकृष्णका दानवचनामृत

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥

लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका अवतरण धर्मकी प्रतिष्ठा, सत्कर्मोंके संस्थापन तथा भक्तोंपर साक्षात् कृपा करनेके लिये हुआ करता है। उनके जन्म और कर्म दिव्य, लोकसंग्रह तथा लोकशिक्षणके लिये हुआ करते हैं। भगवान्‌का दिव्य चरित्र अत्यन्त मंगलमय और परम पावन है। उनकी चर्या और उनके उपदेश लोकके लिये महान् कल्याणकारी हैं। श्रीमद्भागवतादि पुराणोंमें उनके महनीय लोककल्याणकारी लीलाओंका निदर्शन हुआ है तथा भगवान्‌के आविर्भाव (जन्म)-से लेकर परमधामगमनतकके मार्मिक प्रसंगोंका उल्लेख हुआ है। भगवान्‌ने लीलाके माध्यमसे, उपदेशोंके माध्यमसे लोकको महान् शिक्षा प्रदान की है। श्रीमद्भगवद्गीता तो भगवान्‌की साक्षात् वाणी ही है, जिसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोगकी विशद मीमांसा और दानके त्रिविध भेद बताते हुए सात्त्विक दानकी प्रतिष्ठा हुई है। भगवान्‌ने कहा है—**'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ'** अर्थात् क्या करणीय है और क्या अकरणीय है—इसमें शास्त्र ही प्रमाण है। भगवान्‌का दिव्य जीवन शास्त्रकी मर्यादासे ही प्रतिष्ठित है। उनकी चर्याद्वारा शास्त्रप्रतिपादित कर्मोंका ही अनुष्ठान हुआ है। वे नित्य प्रातःकाल क्या-क्या किया करते थे, इस विषयमें भागवतमें बताया गया है कि वे ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर हाथ-पैर धोकर आत्मध्यान करते थे, तदनन्तर शुद्धजलमें स्नानकर वस्त्र-धारण-सन्ध्या-वन्दन आदि नित्यक्रिया करते थे, अग्निमें हवन करते थे, गायत्रीका जप करते थे। तदनन्तर तर्पण आदि करके ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे और ब्राह्मणोंको वस्त्र, आसन और तिलसहित तेरह हजार चौरासी गौएँ दान करते थे—**'अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वं बद्वं दिने दिने'** (श्रीमद्भा० १०।७०।९)। उन गौओंके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए थे, गलेमें मोतियोंकी मालाएँ पड़ी थीं, बदनपर सुन्दर झूलें उढ़ायी हुई थीं। ऐसी दुधार, एक बारकी ब्याई, सुशीला, बछड़ेसहित गौएँ देकर वे अपनी विभूति गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रणाम किया करते थे। भगवान्‌का शास्त्रीय कर्मोंकी प्रतिष्ठाके लिये पृथ्वीपर अवतरण हुआ। अतः उन्होंने स्वयं भी शास्त्रानुसार जीवन जिया और लोकको भी शास्त्ररक्षण तथा शास्त्रानुवर्तनका उपदेश दिया। वर्णाश्रमधर्मके अनुपालन तथा तदनुसार सत्कर्मानुष्ठानके लिये उन्होंने बार-बार कहा है। गरुडपुराणमें उन्होंने गरुडजीको बताया कि जीव अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है एवं अपने पाप-पुण्य भी अकेले ही भोगता है, उसके मृत शरीरको मिट्टी-काष्ठके समान छोड़कर उसके सभी बान्धव लौट आते हैं, केवल धर्म ही उसके साथ जाता है—

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥

(गरुडपु० उत्तर० २।२२-२३)

भगवान् कहते हैं कि यज्ञ, दान, तप आदि सत्कर्म मनुष्योंको पवित्र बनानेवाले हैं—**'पावनानि मनीषिणाम्'**, अतः इन्हें अवश्य करना चाहिये, इनका त्याग नहीं करना चाहिये—**'यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।'** दानरूपी पाथेयके सहारे प्राणी परलोकके महामार्गको

सुखपूर्वक पार कर जाता है—**'गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि'** (गरुडपु० उत्तर० ४। ११)।

निष्फल दिन

भगवान्‌ने एक बड़े ही महत्त्वकी बात बताते हुए कहा है कि जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन—ये सब कर्म नहीं होते, मनुष्यका वह दिन व्यर्थ है—

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥
यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्।

(गरुडपु० उत्तर० १३। १३-१४)

निष्फलदान

धर्मराज युधिष्ठिरके पूछनेपर दानादि सत्कर्मोंकी नित्य अवश्यकरणीयता बताकर भगवान्‌ने उन्हें बताया कि
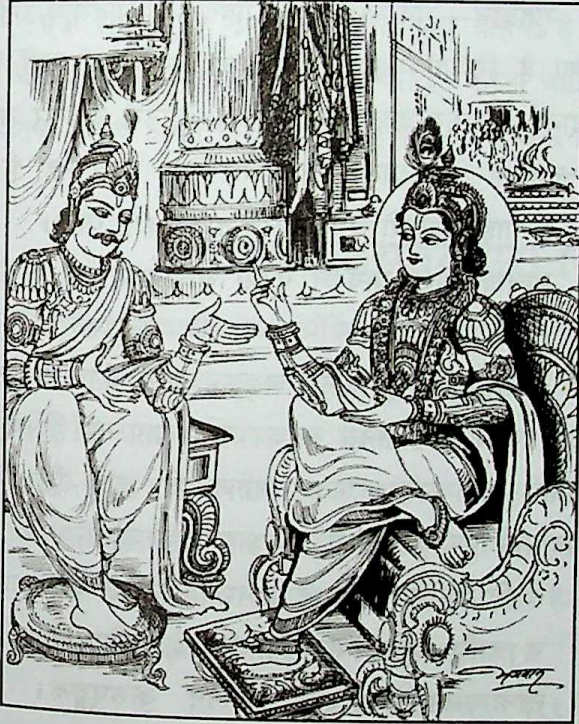
राजन्! जो दान अश्रद्धा या अपमानके साथ दिया जाता है, जिसे दिखावेके लिये दिया जाता है, जो पाखण्डी या शूद्रके समान आचरण करनेवाले पुरुषको दिया जाता है, जिसे देकर अपने ही मुँहसे उसका बार-बार बखान किया जाता है, जिसे देकर पीछे उसके लिये शोक किया जाता है, वह दान निष्फल होता है—

अश्रद्धयापि यद् दत्तमावमानेन वापि यत्।
दम्भार्थमपि यद् दत्तं यत् पाखण्डिहितं नृप॥
शूद्राचाराय यद् दत्तं यद् दत्त्वा चानुकीर्तितम्।
×××××××× यद्दत्तमनुशोचितम्॥
× × × ×
वृथा ह्येतानि दानानि कथितानि समासतः॥

दाताकी उत्तम गति

हे युधिष्ठिर! जो दान, तपस्या, सत्यभाषण और इन्द्रिसंयमके द्वारा निरन्तर धर्माचरणमें लगे रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं—

दानेन तपसा चैव सत्येन च दमेन च।
ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥

धनकी एकमात्र गति दान

श्रीकृष्ण बोले—धनका सदुपयोग दानमें ही है। जिस पुरुषके सभी दिन धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गसे रहित होकर आते और चले जाते हैं, वह मनुष्य लोहारकी भाथीके समान श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं है। जिन्होंने दान नहीं किया, हवन नहीं किया तथा तीर्थमें गमन नहीं किया और जिन्होंने ब्राह्मणोंको अन्न, जल, सुवर्ण आदि नहीं दिये, वे बार-बार गरीब, भूखसे व्याकुल, रूखे और हाथमें खप्पर लिये इधर-उधर घूमते हुए देखे जाते हैं। सैकड़ों प्रकारके प्रयत्न एवं श्रमसे कमाये हुए तथा प्राणोंसे भी प्यारे धनका दान ही उसकी एकमात्र गति है। इस धनके अन्य प्रयोग तो विपत्तियाँ ही हैं। जबतक पहलेका पुण्य रहता है, तबतक भोग और दान करनेसे भी धन समाप्त नहीं होता, किंतु पुण्योंके क्षय होनेपर वह बिना दान-भोग किये हुए भी नष्ट हो जाता है—

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥
यैर्न दत्तं न च हुतं न तीर्थे गमनं कृतम्।
हिरण्यमन्नमुदकं ब्राह्मणेभ्यो न चार्पितम्॥
दीना निरशना रूक्षाः कपालाङ्कितपाणयः।
ते दृश्यन्ते महाराज जायमानाः पुनः पुनः॥
आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः।
गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः॥
नोपभोगैः क्षयं यान्ति न प्रदानैः समृद्धयः।
पूर्वार्जितानामन्यत्र सुकृतानां परिक्षयात्॥

(भविष्यपु० उत्तर० १५१। ८—१२)

तीन अतिदान

दानोंमें तीन दान अत्यन्त श्रेष्ठ हैं—गोदान, पृथ्वीदान और विद्यादान। ये दुहने, जोतने और जाननेसे सात कुलतक पवित्र करते हैं—

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।
आसप्तमं पुनन्त्येते दोहवाहनवेदनैः॥

(भविष्यपु० उत्तर० १५१।१८)

दानका सत्फल

भगवान् बताते हैं कि ऐश्वर्य, धन-सम्पत्ति तो बहुत लोगोंके पास हो सकती है, किंतु उसके साथमें दान देनेकी भावना, शक्ति और उत्साहका होना थोड़ेसे तपका फल नहीं है, जिसने महान् तप किया हो, उसीके पास धन भी रह सकता है और दान देनेकी शक्ति भी—

'विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम्॥'

(गरुडपु० उत्तर० १४।१७)

दान न देनेका फल

जो दान नहीं देता, वह दरिद्र होता है और दरिद्र होकर उसे विवश होकर पाप करना पड़ता है। पापोंके प्रभावसे वह नरकमें जाता है और नरकसे निकलनेपर फिर दरिद्र तथा पापी ही होता है। इस तरह वह भारी कुचक्रमें फँस जाता है, अतः दान अवश्य देना चाहिये—

अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्री
दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति
पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥

(गरुडपु० उत्तर० १४।१९)

तीन दानोंकी विशेष महिमा

भगवान् कहते हैं कि अग्निका पुत्र सुवर्ण, भगवान् विष्णुकी पुत्री (पृथु-अवतारमें) पृथ्वी तथा सूर्यदेवकी पुत्री गो—इन तीनोंके दानसे त्रिलोकीके दानका फल मिलता है—

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं
भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः।
लोकत्रयं तेन भवेत् प्रदत्तं
यः काञ्चनं गां च महीं प्रदद्यात्॥

(गरुडपु० उत्तर० ३१।४)

विविध दान

विद्यादान—भगवान् श्रीकृष्णने विद्यादानको विशेष दान बताया है और कहा है कि विद्याके बिना मनुष्य धर्माधर्मकी जानकारी नहीं प्राप्त कर सकते, इसलिये धर्मात्मा पुरुषको विद्यादानमें सदा तत्पर रहना चाहिये। तीनों लोक, चारों वर्ण, चारों आश्रम और ब्रह्मा आदि सभी देवता विद्यादानमें ही प्रतिष्ठित हैं—

धर्माधर्मं न जानाति विद्यया रहितः पुमान्।
तस्मात् सदैव धर्मात्मा विद्यादानरतो भवेत्॥
त्रैलोक्यं चतुरो वर्णाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः॥

(भविष्यपु० उत्तर० १७४।२४-२५)

गृहदान—गृहस्थाश्रम तथा गृहदानकी महिमामें उन्होंने बताया है कि गृहस्थाश्रमसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। गृहदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। झूठसे बढ़कर कोई पाप नहीं है और ब्राह्मणसे बढ़कर कोई पूज्य नहीं है—

न गार्हस्थ्यात्परो धर्मो नास्ति दानं गृहात् परम्।
नानृतादधिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात् परः॥

(भविष्यपु० उत्त० ३६८।३)

भूमिदान—भूमिदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है और भूमि छीन लेनेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। दूसरे दानोंके पुण्य समय पाकर क्षीण हो जाते हैं, किंतु भूमिदानके पुण्यका कभी भी क्षय नहीं होता—

न हि भूमिप्रदानात् वै दानमन्यद् विशिष्यते।
न चापि भूमिहरणात् पापमन्यद् विशिष्यते॥
दानान्यन्यानि हीयन्ते कालेन कुरुपुङ्गव।
भूमिदानस्य पुण्यस्य क्षयो नैवोपपद्यते॥

(महाभारत)

गोदान—गोमाता तो भगवान्की लीलासहचरी ही हैं, वे सदा गौओंके बीचमें रहा करते हैं और उनकी सेवा किया करते हैं। गौके कल्याणके लिये उनका अवतरण हुआ। उन्होंने अपनी चर्याद्वारा नित्य गोसेवा करनेकी सीख दी है, वे सदा गौओंका दान किया करते थे, उन्होंने गौमें सभी देवताओं, ऋषियों, महर्षियों, पितृगणों, वेदों तथा गंगा आदि नदियोंकी प्रतिष्ठा बतायी

है और कहा है कि दानमें दी हुई गौ अपने विभिन्न गुणोंद्वारा कामधेनु बनकर परलोकमें दाताके पास पहुँचती है और दाताका उद्धार कर देती है। जैसे प्रज्वलित दीपक घरमें फैले हुए अन्धकारको दूर कर देता है, उसी प्रकार मनुष्य कपिला गौका दान करके अपने भीतर छिपे हुए पापको भी निकाल देता है—

यथान्धकारं भवते विलग्नं
दीप्तो हि निर्यातयति प्रदीपः।
तथा नरः पापमपि प्रलीनं
निष्क्रामयेद् वै कपिलाप्रदानात्॥

(महाभारत)

अपने हाथसे किये गये सत्कर्मकी प्रशंसा

एक महत्त्वपूर्ण उपदेशमें भगवान्का कहना है कि जो भी सत्कर्म किया जाय, अपने हाथसे ही करना चाहिये। तभीतक मनुष्य अपने परिवारवालोंका भाई-बन्धु और पिता बना रहता है, जबतक वह जीवित रहता है, मरनेपर उसे मृत समझकर सभी तत्काल अपना स्नेह खींच लेते हैं। इसलिये मनुष्यको स्वयं ही अपने लिये अन्न, जल और शय्या आदिका दान करना चाहिये। मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु है, इसे हृदयमें स्मरण रखना चाहिये। जो दान-धर्म और भोग आदिके द्वारा स्वयं अपना कल्याण नहीं करता तो फिर उसके मरनेके बाद उसके लिये दूसरा कोई क्या व्यवस्था कर सकता है?

तावत् स बन्धुः स पिता यावज्जीवति भारत।
मृतो मृत इति ज्ञात्वा क्षणात् स्नेहो निवर्तते॥
तस्मात् स्वयं प्रदातव्यं शय्याभोज्यजलादिकम्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरिति सञ्चिन्त्य चेतसि॥
आत्मैव यो हि नात्मानं दानभोगैः समर्चयेत्।
कोऽन्यो हिततरस्तस्मात् कः पश्चात् पूजयिष्यति॥

(भविष्यपु० उत्तर० १८४। ३—५)

आचार्य बृहस्पतिद्वारा निरूपित दानकी तात्त्विक बातें

आचार्य बृहस्पति देवताओंके भी गुरु हैं, धर्म-कर्मके अधिष्ठाता, सदा आचारपरायण और सत्कर्मानुष्ठानकी शिक्षा देनेवाले हैं। ये अत्यन्त सत्त्वसम्पन्न, धर्मनीतिके सम्यक् परिज्ञाता तथा वाणी-बुद्धि एवं ज्ञानके अधिष्ठाता और महान् परोपकारी हैं। भीष्मपितामहका कहना है कि बृहस्पतिके समान वक्तृत्वशक्तिसम्पन्न और कोई दूसरा कहीं भी नहीं है—

'वक्ता बृहस्पतिसमो न ह्यन्यो विद्यते क्वचित्॥'

(महा० अनु० १११। ५)

पुराणोंमें बतलाया गया है कि ये महान् तपस्वी महर्षि अंगिराके पुत्र हैं। ये देवगुरु तथा वाचस्पति भी कहलाते हैं। नक्षत्रमण्डलमें प्रतिष्ठित होकर ये एक ग्रहके रूपमें जगत्के कल्याण-चिन्तनमें निमग्न रहते हैं। सात वारोंमें भी इनका परिगणन है और शास्त्रीय मान्यतामें 'बृहस्पति' सब प्रकारसे शुभ एवं मंगल ही करनेवाले हैं। पुराणों तथा महाभारत आदिमें आचार्य बृहस्पतिके अनेक दिव्य चरित्र और उपदेशप्रद आख्यान गुम्फित हैं। देवताओंके साथ ही असुर तथा किन्नर, नाग, गन्धर्व आदि देवयोनियों एवं मनुष्यवर्गने इनकी उपासनासे अनेक प्रकारके उत्तम फल प्राप्त किये हैं। इनके द्वारा दिये गये धर्ममय उपदेश बड़े ही कल्याणकारी और अभ्युदयको प्राप्त करानेवाले हैं। इनका स्वभाव बड़ा ही शान्त है, इन्होंने प्रत्येक परिस्थितिमें शान्त, सम एवं विकाररहित रहने, अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको सावधानीपूर्वक करने तथा सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन बोलनेका उपदेश देवराज इन्द्रको देते हुए कहा—देवराज इन्द्र! जो सभीको देखकर पहले ही बात करता है और मुसकराकर ही बोलता है, उसपर सब लोग प्रसन्न रहते हैं—

यस्तु सर्वमभिप्रेक्ष्य पूर्वमेवाभिभाषते।
स्मितपूर्वाभिभाषी च तस्य लोकः प्रसीदति॥

(महा० शान्ति० ८४। ६)

धर्मराज महाराज युधिष्ठिरको धर्म-तत्त्वका रहस्य बतलाते हुए आचार्य बृहस्पति कहते हैं—

सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः।
देवाऽपि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः॥

(महा० अनु० ११३। ७)

अर्थात् जो सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा है, किंवा सबकी आत्माको अपनी ही आत्मा समझता है तथा जो सब भूतोंको समानभावसे देखता है, उस गमनागमनसे रहित ज्ञानीकी गतिका पता लगाते समय देवता भी मोहमें पड़ जाते हैं।

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि न्यायसे प्राप्त हुए धनके द्वारा ही धर्मका अनुष्ठान करें; क्योंकि एकमात्र धर्म ही परलोकमें मनुष्योंका सहायक है—

तस्मान्न्यायागतैरर्थैर्धर्मं सेवेत पण्डितः॥
धर्म एको मनुष्याणां सहायः पारलौकिकः।

(महा० अनु० १११। १६-१७)

देवगुरु होनेके साथ-साथ बृहस्पतिजी अन्य प्राणियोंके भी गुरुरूप हैं। इन्होंने अपने-अपने वर्णधर्मों, अपने-अपने आश्रमधर्मोंके कर्तव्यकर्मोंको करनेपर विशेष बल दिया है, इनकी सदाचारनिष्ठा अत्यन्त सात्त्विक रही है। देवराज इन्द्रको ये बार-बार सावधान करते रहते हैं। इन्द्रको दिया गया दानविषयक उपदेश इनकी बनायी स्मृति बृहस्पति-स्मृति तथा महाभारतमें विशेष रूपसे गुम्फित है। यहाँ संक्षेपमें कुछ बातें प्रस्तुत हैं—

भूमिदान सबसे बड़ा दान है

आचार्य बृहस्पति देवराज इन्द्रसे कहते हैं—राजन्!

जो भूमिदान देता है, उसके द्वारा सुवर्ण, रजत, वस्त्र, मणि और रत्न आदि सब कुछका दान दे दिया गया, ऐसा समझना चाहिये; क्योंकि ये सभी पृथ्वीसे ही प्राप्त होते हैं—

सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिरत्नं च वासव।
सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति॥

(बृहस्पतिस्मृति ५)

जो मनुष्य जोती-बोयी और उपजी हुई खेतीसे भरी भूमिका दान करता है, वह जबतक लोकोंमें सूर्यका प्रकाश रहेगा, तबतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित रहेगा—

फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां शस्यशालिनीम्।
यावत् सूर्यकरा लोकास्तावत् स्वर्गे महीयते॥

(बृहस्पतिस्मृति ६)

अपनी आजीविकाके परवश हुआ व्यक्ति जो कुछ भी पाप करता है, वह सब 'गोचर्म' के बराबर भूमिके दान कर देनेसे नष्ट हो जाता है और वह व्यक्ति शुद्ध हो जाता है—

'अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति॥'

(बृहस्पतिस्मृति ७)

गोचर्म-भूमिका परिमाण

आचार्य बृहस्पतिने 'गोचर्म'-भूमि कितनी लम्बी-चौड़ी होती है, इसे बताते हुए कहा है कि दस हाथके दण्डसे तीस दण्डका एक निवर्तन होता है और दस निवर्तन विस्तारवाली भूमि 'गोचर्म'-भूमि कहलाती है। इस प्रकार (१० हाथ=एक दण्ड, तीस दण्ड=३०० हाथ या एक निवर्तन और १० निवर्तन=३,००० हाथ) तीन हजार हाथ या लगभग १¹/४ किमी० लम्बी-चौड़ी भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है। गोचर्मभूमिका एक अन्य परिमाप देते हुए कहा गया है कि एक वृषभ तथा बछड़े-बछड़ियोंसहित एक हजार गायें जितनी भूमिमें आरामसे इधर-उधर चर सकें, घूम-फिर सकें, उतनी लम्बी-चौड़ी भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है।*

महाभारतमें बृहस्पतिजी कहते हैं—हे इन्द्र! सुवर्णदान, गोदान, भूमिदान, विद्यादान और कन्यादान—ये अत्यन्त शुभ फल देनेवाले हैं, किंतु मैं तो भूमिदानसे बढ़कर किसी दूसरे दानको नहीं मानता—

* दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्तनम्। दश तान्येव विस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम्॥ सवृषं गोसहस्रं च यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम्। बालवत्सप्रसूतानां तद्गोचर्म इति स्मृतम्॥ (बृहस्पतिस्मृति ८-९)

'न भूमिदानाद् देवेन्द्र परं किञ्चिदिति प्रभो।'

(महा० अनु० ६२।५६)

तदनन्तर विस्तारसे बृहस्पतिजीने भूमिदानकी महिमाका ख्यापन किया है। प्रकरणके उपसंहारमें वे कहते हैं—भूमिके समान कोई दान नहीं है, माताके समान कोई गुरु नहीं है, सत्यके समान कोई धर्म नहीं है और दानके समान कोई निधि नहीं है—

नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति सत्यसमो धर्मो नास्ति दानसमो निधिः॥

(महा० अनु० ६२।९२)

तीन अतिदान

गोदान, भूमिदान और विद्यादान—ये तीन दान महादानोंसे भी बड़े अतिदान कहे गये हैं। अतिदान करनेवालेका सब प्रकारके पापोंसे उद्धार हो जाता है, ये दाताको तार देते हैं—

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती॥
तारयन्ति हि दातारं सर्वात् पापादसंशयम्।

(बृहस्पतिस्मृति १८-१९)

भूमिहरणसे महान् पाप

भूमिदान करनेसे जितने महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है, उतने ही पापकी प्राप्ति भूमिहरण करनेवालेको होती है—

'भूमिदो भूमिहर्ता च नापरं पुण्यपापयोः।'

(बृहस्पतिस्मृति ३०)

भूमिहर्ता यदि करोड़ों गोदान भी करे, तब भी वह शुद्ध नहीं होता—

'गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुध्यति॥'

(बृहस्पतिस्मृति ३९)

गोदानकी तात्त्विक बातें

एक बार राजर्षि मान्धाताके प्रश्न करनेपर गोदानकी तात्त्विक बातें बताते हुए बृहस्पतिजीने कहा कि गोदान करनेवालेको चाहिये कि वह नियमपूर्वक व्रतका पालन करे और एक दिन पूर्व ही ब्राह्मणका सत्कारकर उनसे कहे कि मैं कल आपको एक गोदान करूँगा। फिर गौओंके बीचमें प्रवेशकर निम्न प्रार्थनाकर गौओंकी शरण ले—

गौर्मे माता वृषभः पिता मे
दिवं शर्म जगती मे प्रतिष्ठा।
प्रपद्यैवं शर्वरीमुष्य गोषु
पुनर्वाणीमुत्सृजेद् गोप्रदाने॥

(महा० अनु० ७६।७)

अर्थात् गौ मेरी माता है। वृषभ (बैल) मेरा पिता है। वे दोनों मुझे स्वर्ग तथा ऐहिक सुख प्रदान करें, गौ ही मेरा आधार है—ऐसा कहकर गौओंकी शरण लें और वह रात्रि गौओंके साथ मौन रहकर बिताकर प्रातःकाल गोदानकालमें ही मौन-भंग करें।

बृहस्पतिजी बताते हैं कि जो गौके निष्क्रयरूपसे उसके बदलेमें मूल्य, वस्त्र अथवा सुवर्ण दान करता है, उसको भी गोदाता ही कहना चाहिये। मूल्य, वस्त्र एवं सुवर्णरूपमें दी जानेवाली गौओंका नाम क्रमशः **ऊर्ध्वास्या, भवितव्या** और **वैष्णवी** है। संकल्पके समय इन्हींका उच्चारण करना चाहिये। यथा—गौके बदले द्रव्यका निष्क्रय देनेपर **'इमां ऊर्ध्वास्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे'** इत्यादि कहे।

आगे बृहस्पतिजी मान्धाताको बताते हैं कि साक्षात् गौका दान लेकर जब ब्राह्मण अपने घरकी ओर जाने लगता है, उस समय उसके आठ पग जाते-जाते ही दाताको अपने दानका फल मिल जाता है—

'गोप्रदाता समाप्नोति समस्तानष्टमे क्रमे॥'

(महा० अनु० ७६।१७)

अन्नदानकी महिमा

एक बार धर्मराज युधिष्ठिरने बृहस्पतिजीसे पूछा—ब्रह्मन्! मनुष्य किस कर्मके अनुष्ठानसे सद्‌गतिको प्राप्त होते हैं तो इसपर बृहस्पतिजीने बताया—अज्ञानवश अधर्म बन जानेपर उसके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये और मनको वशमें रखकर पुनः पाप न करे। मनुष्यका मन ज्यों-ज्यों पापकर्मकी निन्दा करता है, त्यों-त्यों उसका शरीर उस अधर्मके बन्धनसे मुक्त हो जाता है, यदि सावधान हो ब्राह्मणोंको नानाविध दान करे तो दाताकी उत्तम गति होती है, आगे फिर विविध दानोंका निरूपण करते हुए उन्होंने अन्नदानको ही सर्वश्रेष्ठ बताया—

'सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम्।'

(महा० अनु० ११२।१०)

अन्नदान करनेवाले वास्तवमें प्राणदान करनेवाले हैं, उन्हीं लोगोंसे सनातन धर्मकी वृद्धि होती है—

'ते हि प्राणस्य दातारस्तेभ्यो धर्मः सनातनः॥'

(महा० अनु० ११२।२४)

पूर्त-धर्मकी महिमा

निःस्वार्थभावसे कुआँ, बावड़ी, तालाब, देवालय, धर्मशाला, विद्यालय, अनाथालय, चिकित्सालय, मन्दिर, पौसला आदि बनवाना तथा उनका जीर्णोद्धार और छायादार एवं फलदार वृक्ष लगाना तथा मार्ग आदि बनवाना—ये सभी लोकोपकार एवं जनहितके कार्य करना-करवाना पूर्त-धर्म कहलाता है। यह लोकोपकारी दान है, आचार्य बृहस्पतिने पूर्त-धर्मकी विशेष महिमा गायी है और कहा है कि जो नये तालाबका निर्माण करवाता है अथवा पुराने तालाबका जीर्णोद्धार कराता है, वह अपने कुलका उद्धार कर देता है और स्वयं भी स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पुराने बावड़ी, कुआँ, तालाब, बाग-बगीचेका जीर्णोद्धार करानेवाला नये तालाब आदि बनवानेका फल प्राप्त करता है। आचार्य बृहस्पति कहते हैं—हे देवराज इन्द्र! जिसके बनाये हुए तालाब आदिमें गर्मीके दिनोंमें भी पानी बना रहता है, सूखता नहीं, उसे कभी कठोर विषम दुःख प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह सर्वदा सुखी रहता है।' आचार्यके मूल वचन इस प्रकार हैं—

यस्तडागं नवं कुर्यात् पुराणं वापि खानयेत्।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गे लोके महीयते॥
वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानि च।
पुनः संस्कारकर्ता च लभते मौलिकं फलम्॥
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव।
स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुयात्॥

(बृहस्पतिस्मृति ६२—६४)

महर्षि वाल्मीकिद्वारा निरूपित दान-धर्मकी महिमा

भगवन्नामके जपसे मनुष्य क्यासे क्या हो सकता है, इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं महर्षि वाल्मीकि। ये प्रचेताके पुत्र हैं। प्राक्तन संस्कारवश कुछ दिन ये व्याध-कर्ममें लगे रहे, किंतु फिर सप्तर्षियोंके सत्संगसे 'मरा-मरा' जपकर वाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध हुए और इन्होंने आर्षग्रन्थ

वाल्मीकीय रामायणकी रचना की। ब्रह्माजीके वरदानसे ही इस दिव्य महाप्रबन्धका प्राकट्य हुआ। इसमें भगवान् श्रीरामकी महत्ता, दयालुता, भगवत्ता और उनकी मर्यादित जीवन-शैलीका निरूपण हुआ है। भक्ति, ज्ञान, सदाचार, जप, तप, दान-पुण्य, उपासना तथा नाम-महिमाके गौरवसे यह ग्रन्थ भरा पड़ा है। महर्षि वाल्मीकि स्वयं भक्ति, योग, तपस्या एवं सदाचारके मूल हैं, वनवासके समय भगवान् श्रीराम इनके आश्रममें आये थे। माता सीताने भी इनके आश्रममें निवास किया था। महर्षि वाल्मीकिकी वाणी सत्य एवं धर्मसे सदा आप्लावित रही है। उनके दिव्य उपदेश बड़े ही कल्याणकारी और पालनीय हैं। वेदवत् प्रतिष्ठित श्रीवाल्मीकीय रामायणमें मूलतः भगवान्की मंगलमयी कथाका और उनके पवित्र नामकी महिमाका निरूपण हुआ है, किंतु क्रमप्राप्त नित्य-नैमित्तिक कर्मों, अपने-अपने वर्ण एवं आश्रमके नियमोंके परिपालन तथा उपासनाके स्वरूपका भी बीच-बीचमें बड़ा ही विशद वर्णन हुआ है। महर्षि वाल्मीकिजीने श्रीराम-कथाके पात्रोंद्वारा सर्वत्र शास्त्रोक्त धर्मानुष्ठान कराया है। महर्षिने दानको अवश्यकरणीय कृत्य बताकर दानकी महिमा तथा दान न करनेके दुष्परिणामके सम्बन्धमें एक रोचक कथा प्रस्तुत की है,

जिसका सार भाग यहाँ प्रस्तुत है—

दान न करनेका दुष्परिणाम
[राजा श्वेतका आख्यान]

पूर्वकालकी बात है विदर्भ देशमें सुदेव नामके एक यशस्वी राजा थे, उनके दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्रका नाम श्वेत और छोटेका नाम था—सुरथ। पिताकी मृत्युके अनन्तर श्वेतको राज्य मिला। श्वेत बड़े ही धर्मात्मा राजा थे। धर्मके अनुकूल राज्य-शासन चला रहे थे। उन्होंने एक सहस्र वर्षतक राज्य किया, अनन्तर अपने छोटे भाईको राज्य देकर राजा श्वेत एक दुर्गम वनमें तपस्या करने चले गये, वहाँ एक सरोवरके तटपर उन्होंने दीर्घकालतक महान् तपका अनुष्ठान किया। तीन हजार वर्षोंतक दुष्कर तपके अनन्तर राजा श्वेतको उत्तम ब्रह्मलोक प्राप्त हुआ। किंतु ब्रह्मलोक पहुँच जानेपर भी उन्हें भूख और प्यास बड़ा कष्ट देते थे, जिसके कारण उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और वे बहुत दु:खित रहने लगे। ऐसे ही उनका बहुत समय व्यतीत हो गया। ऐसा क्यों हो रहा है, उनकी समझमें भी नहीं आया, वे सोचते थे कि मैंने इतना महान् दुष्कर तप किया है और दीर्घकालतक धर्मपूर्वक राज्यका शासन भी किया है, तब भी भूख-प्यास मेरा पीछा नहीं छोड़ती। दु:खित हो वे पितामह ब्रह्माजीके पास गये और बोले—'भगवन्! यह ब्रह्मलोक तो भूख-प्यासके कष्टसे रहित है, किंतु यहाँ भी क्षुधा-पिपासाका कष्ट मुझे छोड़ नहीं रहा है, यह मेरे किस कर्मका परिणाम है? हे प्रभो! मेरा आहार क्या है, बतानेका कष्ट करें।'

श्वेतके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजी बोले—सुदेवनन्दन! तुमने उत्तम तप करते हुए केवल अपने शरीरका ही पोषण किया है, किसीको कभी कुछ भी दानमें नहीं दिया, यह जान लो कि दान करना—खेतमें बीज बोनेके समान है। दानरूपी बीज बोये बिना कहीं कुछ नहीं जमता—कोई भी भोज्य पदार्थ उपलब्ध नहीं होता। तुमने देवताओं, पितरों एवं अतिथियोंके लिये कभी कुछ थोड़ा भी दान किया हो, ऐसा नहीं दिखायी देता, तुम केवल तपस्यामें ही लगे रहे, इसीलिये ब्रह्मलोकमें आनेपर भी तुम भूख-प्याससे पीड़ित हो रहे हो और तुम्हें प्रतिदिन मर्त्यलोकमें जाकर अपने ही शवका आहार ग्रहणकर अपनी भूख-प्यास मिटानी पड़ रही है—

स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता तप उत्तमम्।
अनुप्तं रोहते श्वेत न कदाचिन्महामते॥
दत्तं न तेऽस्ति सूक्ष्मोऽपि तप एव निषेवसे।
तेन स्वर्गगतो वत्स बाध्यसे क्षुत्पिपासया॥

(वाल्मी०रामा०उत्तर० ७८। १५-१६)

ब्रह्माजी पुन: बोले—राजन्! उस वनमें उस सरोवरके निकट जहाँ तुम्हारा दिव्य शव पड़ा है, महर्षि अगस्त्य पधारेंगे तो उनकी कृपासे तुम्हारा यह कष्ट दूर हो जायगा। इतना कहकर ब्रह्माजी चले गये और राजर्षि श्वेत महर्षि अगस्त्यजीके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

वह समय आ गया। एक दिन अगस्त्यजी उस निर्जन सुन्दर वनमें प्रविष्ट हुए और उस दिव्य सरोवरके निकट स्थित उन्होंने एक हृष्ट-पुष्ट शव देखा, जो अत्यन्त निर्मल था। आश्चर्यचकित हो वे यह दृश्य देख ही रहे थे कि आकाशसे एक सुन्दर विमान उतरा और विमानसे एक सुन्दर पुरुष आकर उस शवका भक्षण करने लगा और सरोवरका जल पीकर पुन: विमानमें बैठकर जानेको उद्यत हुआ, विमानमें अनेक अप्सराएँ बैठी थीं, जो उस पुरुषको पंखा झल रहीं थीं, कौतूहलवश अगस्त्यजीने उस पुरुषसे पूछा—हे देवतुल्य तेजस्वी पुरुष! आप कौन हैं तथा किसलिये ऐसा घृणित आहार कर रहे हैं, आपका ऐसा दिव्य रूप है, आप देवलोकसे विमानसे यहाँ आये हैं और शवका भक्षणकर वापस जा रहे हैं, इसका क्या रहस्य है, बतानेकी कृपा करें। इसपर राजर्षि श्वेतने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त बता डाला और दान न देनेका ही यह दुष्परिणाम बताया। राजा श्वेतने अपने तपके प्रभावसे यह जान लिया कि ये ही मेरा उद्धार करनेवाले कुम्भयोनि अगस्त्यजी हैं, अत: वे उन्हें प्रणामकर बोले—विप्रवर! मैंने अनेक सत्कर्म तो किये, किंतु कभी किसीको कुछ भी दानमें नहीं दिया, मेरे भाग्यसे आज आप यहाँ आये हैं, अब कृपाकर मेरे द्वारा दिया जानेवाला यह आभूषण दानमें स्वीकार करें और मुझे अपना कृपाप्रसाद दें। यह आभूषण दिव्य है, जो मनोवांछित फलोंको देनेवाला है, मेरा उद्धार करनेके लिये यह दान स्वीकारकर आप मुझपर कृपा करें—

इदमाभरणं सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम।
प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते प्रसादं कर्तुमर्हसि॥

(वा०रा०उत्तर० ७८। २३)

राजा श्वेतकी दुःखभरी बात सुनकर उनका उद्धार करनेकी दृष्टिसे अगस्त्यजीने वह दान स्वीकार कर लिया और दानका यह प्रभाव हुआ कि दान ग्रहण करते ही राजा श्वेतका वह पूर्व शरीर (शव) अदृश्य हो गया और राजर्षि श्वेत परमानन्दसे तृप्त हो प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मलोक चले गये—

मया प्रतिगृहीते तु तस्मिन्नाभरणे शुभे।
मानुषः पूर्वको देहो राजर्षेर्विननाश ह॥
प्रणष्टे तु शरीरेऽसौ राजर्षिः परया मुदा।
तृप्तः प्रमुदितो राजा जगाम त्रिदिवं सुखम्॥

(वा०रा०उत्तर० ७८। २७-२८)

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिजीने उक्त आख्यानके माध्यमसे यह बताया है कि प्रतिदिन यथाशक्ति अवश्य दान करना चाहिये। अन्य सभी कर्म करो, किंतु दान न करो तो उसका दुष्परिणाम यह होता है कि दिव्य लोक प्राप्त होनेपर भी भूख-प्यास पीछा नहीं छोड़ती, यहाँतक कि उस व्यक्तिको अपने ही शवका भक्षण करना पड़ता है, ऐसी स्थिति न आने पाये, अतः दान अवश्य करना चाहिये।

महर्षिने अपने महाप्रबन्धमें यत्र-तत्र दान-धर्मका उल्लेख किया है। दशरथ आदि राजाओंने बड़े-बड़े यज्ञोंपर अनेक प्रकारके दान देकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया, दीनों-अनाथोंको यथेच्छ सामग्री प्रदान की। महाराज दशरथजीने जब अश्वमेध यज्ञ किया तो ऋत्विजोंको सारी पृथ्वी दानमें दे दी—

'ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां कुलवर्धनः॥'

(वा०रा०बा० १४। ४५)

इसपर ऋत्विज बोले—महाराज! आप अकेले पृथ्वीकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, हममें इसके पालनकी शक्ति नहीं है, अतः भूमिसे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। आप हमें भूमिके निष्क्रयके रूपमें कुछ दीजिये। तब महाराज दशरथने दस लाख गौएँ, दस करोड़ स्वर्णमुद्रा और उससे चौगुनी रजतमुद्रा अर्पित की, इसके साथ ही उन्होंने अपना सर्वस्व ब्राह्मणोंको दानमें दे दिया। जब उनके पास कुछ भी नहीं बचा तो एक दरिद्र ब्राह्मण धनकी याचनाहेतु उनके पास आये तो उन्होंने हाथका उत्तम आभूषण उतारकर उन्हें दानमें दिया—

'दरिद्राय द्विजायाथ हस्ताभरणमुत्तमम्॥'

(वा०रा०बा०१४। ५४)

ऐसे ही पुत्रेष्टि यज्ञके अवसरपर दशरथजीने ब्राह्मणोंको प्रभूत धन और सहस्त्रों गोधन प्रदान किये—

'ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः॥'

(वा०रा०बा० १८। २०)

श्रीराम आदिके विवाहके पूर्व राजा दशरथने प्रत्येक पुत्रके मंगलके लिये एक-एक लाख गौएँ (कुल चार लाख) ब्राह्मणोंको दानमें दीं, उन सबके सींग सोनेसे मढ़े हुए थे, सबके साथ बछड़े थे और काँसेके दुग्धपात्र थे। (वा०रा०बा० ७२। २२—२४) श्रीराम जब वन जाने लगे तो उन्होंने दान देकर सबको तृप्त कर दिया और त्रिजट नामक एक ब्राह्मणको तो यह कहा कि आप अपना डण्डा जहाँतक फेंक सकें वहाँ तकका गोधन आपका होगा, फिर वैसा ही हुआ भी। ऐसे ही श्रीरामजीका नैमिषारण्यमें अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ तो उसमें दान-धर्मकी ऐसी प्रतिष्ठा हुई कि चिरजीवी आमन्त्रित मुनियोंको कहना पड़ा कि ऐसा यज्ञ तो पहले कभी इन्द्र, चन्द्रमा, यम और वरुणके यहाँ भी नहीं हुआ, हमें किसी ऐसे यज्ञका स्मरण नहीं, जिसमें दानका ऐसा उदार स्वरूप दिखायी दिया हो और सम्पूर्ण यज्ञ दानराशिसे पूर्णतः अलंकृत रहा हो—

'नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलंकृतम्।'

(वा०रा०उत्तर० ९२। १५)

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिजीने अपने ग्रन्थमें यत्र-तत्र दानके अवसरोंपर महनीय उदारताका उल्लेख किया है और देश, काल, पात्र, श्रद्धा, द्रव्यशुद्धि, दाता, प्रतिग्रहीता आदिपर सूक्ष्म विचार किया है। महर्षि वाल्मीकिजीकी दृष्टि अत्यन्त दूरदर्शी और धर्मानुगामिनी रही है। धर्मकी प्रतिष्ठा बनी रहे, सदाचारकी मर्यादा बनी रहे, सभी अपने वर्ण एवं आश्रम-धर्मोंका ठीक-ठीक पालन करें, दानादि सत्कर्मोंका अनुष्ठान करते रहें और भगवान्‌के मर्यादित क्रिया-कलापोंका अनुपालन करें—यही चाहते थे। महर्षि वाल्मीकि और रामराज्यमें यह सब हुआ भी। वाल्मीकीय रामायण साक्षात् वेदवाणी है। महर्षिने अपने दिव्य ज्ञानके प्रभावसे श्रीरामावतारसे पहले ही रामायणकी रचना कर दी थी। ऐसे पवित्रकीर्ति उन वाल्मीकिजीको बार-बार प्रणाम है—

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥

राजर्षि मनुका दानविधान

भारतीय सनातन संविधानके उद्भावक राजर्षि मनु और देवी शतरूपाका सदाचारमय जीवन सभी मानवोंके लिये सर्वथा अनुकरणीय है। ब्रह्माजी स्वयम्भू कहलाते हैं, उन्हींसे प्रकट होनेसे ये स्वायम्भुव मनु कहलाते हैं। चौदह मनुओंमें ये आदिमनु हैं। ब्रह्माजीने जब सृष्टि बनायी तो

प्रजापालनके लिये इन्हें ही राजा बनाया (महा०शान्ति० ६७। २१-२२), इसीलिये ये आदिराज कहलाते हैं। समस्त मानवोंका पालन करनेके कारण ये पिता भी कहलाते हैं—**'मनुष्पिता'** (ऋक्० १। ८०। १६)।

इनमें ज्ञान, तप, सत्य, सदाचार, यम-नियम, ध्यान-समाधिकी जैसी प्रतिष्ठा थी, वैसी ही अन्तःकरणकी निर्मलता और भगवद्भक्तिकी प्रतिष्ठा भी थी। ये नारायणके अनन्य भक्त थे। आदिराज होनेसे धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने तथा धर्माचरणका स्वरूप स्पष्ट करनेके लिये इन्होंने वेदसम्मत एक शास्त्रकी उद्भावना की, जो इन्हींके नामसे मानवधर्मशास्त्र या मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें बारह अध्याय हैं। इसके पहले ही अध्यायमें मनुजीने सत्य आदि चारों युगोंमें चतुष्पाद् धर्म किस रूपमें प्रतिष्ठित रहता है, इसका निरूपण करते हुए बताया कि सत्ययुगमें धर्म अपने चारों चरणों (तप, ज्ञान, यज्ञ तथा दान)-से स्थित रहता है, किंतु चारों चरणोंमेंसे तपका प्राधान्य रहता है, त्रेतामें ज्ञानका प्राधान्य रहता है, द्वापरमें यज्ञकी प्रधानता रहती है और कलियुगमें महर्षियोंने दानको ही प्रधान धर्म कहा है—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

(मनु० १। ८६)

इस प्रकार मनुजीने कलियुगमें अन्य साधनोंकी सहज साध्यता न होनेसे दानको ही कल्याणप्राप्तिका श्रेष्ठ साधन बताया है।

दानका स्वरूप

राजर्षि मनु विधिज्ञ हैं और अत्यन्त दयालु भी हैं, उन्होंने कलियुगके लिये दानको सहज साधन तो बता दिया, किंतु वे कहते हैं कि दान तभी सफल होता है, तभी वह धर्मका साधन बनता है जबकि दान उचित देश-कालमें, योग्यपात्रमें श्रद्धाभक्तिपूर्वक विधि-विधानसे दिया जाय—

देशकालविधानेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्।
पात्रे प्रदीयते यत्तु तद्धर्मस्य प्रसाधनम्॥

(मनु० ७। ८६। [८])

दानमें सत्पात्रकी महत्ता

सत्पात्रमें दिये दानकी प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं कि विद्या एवं तपसे युक्त ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक थोड़ा या बहुत; जितना भी दिया जाय, वह परलोकमें उसे प्राप्त होता है—

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधानतयैव च।
अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्य फलमश्नुते॥

(मनु० ७। ८६)

मनुजी सदाचारी वेदज्ञ विद्वान्‌को दिये गये दानका फल अनन्त बताते हैं—**'अनन्तं वेदपारगे'** (मनु० ७। ८५)।

इतना ही नहीं, वे कहते हैं कि विद्या तथा तपसे समृद्ध ब्राह्मणको दिया गया दान महान् दुःखों तथा महान् पापोंसे छुटकारा दिला देता है—'**निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात्**' (मनु० ३। ९८)।

विधिपूर्वक दान

मनुजी कहते हैं कि दानदाताको विधिपूर्वक देना चाहिये और प्रतिग्रहीताको भी विधिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। दानमें संकल्पकी आवश्यकता है। पहले दानदातासे दान लेनेकी स्वीकारोक्ति ग्रहण करनी चाहिये, फिर उसका वरण करना चाहिये, देयद्रव्यका पूजन करना चाहिये, दानग्रहणके बाद प्रतिग्रहीताको 'स्वस्ति' बोलना चाहिये। दाता पूर्वमुख तथा ग्रहीता उत्तरमुँह बैठे। इत्यादि विधियाँ शास्त्रोंमें विस्तारसे बतायी गयी हैं। उनका पालन अवश्य करना चाहिये तभी दानका पूर्ण फल प्राप्त होता है अन्यथा देश, काल, पात्रका ध्यान रखे बिना अविधिपूर्वक दिया गया दान तथा अविधिसे ग्रहण किया दान अनर्थकारी होता है—

असम्यक् चैव यद्दत्तमसम्यक् च प्रतिग्रहः।
उभयं स्यादनर्थाय दातुरादातुरेव च॥

(महा०शान्ति० ३६। ३९)

अपात्रको दिया गया दान निष्फल

अपात्रको दिये गये दान आदिके विषयमें मनुजी कहते हैं कि जैसे ऊसर भूमिमें बीज बोनेसे कोई फल बोनेवालेको नहीं मिलता, ऐसे ही विद्याविहीन अथवा अपात्र ब्राह्मणको दान देनेसे दाताको कोई फल प्राप्त नहीं होता—'**न दाता लभते फलम्**' (मनु० ३। १४२)।

दानमें न्यायोपार्जित द्रव्य तथा श्रद्धाकी महिमा

मनुजी बताते हैं कि दानमें जैसे सत्पात्रका विचार है, वैसे ही द्रव्यशुद्धि तथा श्रद्धाकी भी महिमा है। वे कहते हैं—इष्टापूर्तकर्म नित्यकर्म है। इष्ट कहते हैं; यज्ञादि दान-धर्म-सम्बन्धी धर्माचरणके कार्योंको और पूर्त कहते हैं लोकोपकारकी दृष्टिसे किये गये कर्म यथा—कुआँ, बावली, तालाब, धर्मशाला, औषधालय-निर्माण तथा वृक्षारोपण आदि। इन्हें आलस्य छोड़कर अवश्य करना चाहिये अर्थात् दानधर्म आदि कार्योंमें प्रमाद नहीं करना चाहिये। ये नित्य करणीय पवित्र कृत्य हैं, किंतु ये तभी अक्षय फलदायी होते हैं, जब न्यायोपार्जित द्रव्यसे इनका अनुष्ठान किया जाय, प्रसन्न मनसे किया जाय और श्रद्धापूर्वक किया जाय। अन्यायसे प्राप्त द्रव्यसे किया गया सत्कर्म फलदायी नहीं होता—

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः॥
दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम्।

(मनु० ४। २२६-२२७)

विविध दानोंके विविध फल

राजर्षि मनु दानके स्वरूप तथा उसकी अवश्यकरणीयताको बतानेके अनन्तर किस वस्तुके दानका क्या फल होता है, इसका संक्षेपमें निरूपण करते हैं ताकि लोग दान अवश्य करें, चाहे फलप्राप्तिकी अभिलाषासे ही लोगोंमें दानकी प्रवृत्ति जाग्रत् हो और वे दानधर्ममें प्रवृत्त हों। वे कहते हैं कि जल ही प्राणीका जीवन है, अतः जलदान करनेसे दाता भूख और प्यासकी पीड़ासे निवृत्त होकर सदा सन्तृप्त रहता है। अन्नका दान करनेवाला अक्षय सुख प्राप्त करता है, तिलोंका दान करनेवाला मनोभिलषित सन्तति प्राप्त करता है और दीपदान करनेवाला उत्तम नेत्रज्योति प्राप्त करता है—

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥

(मनु० ४। २२९)

भूमिदान करनेवाला भूमिका आधिपत्य, सुवर्णदान करनेवाला दीर्घायु, गृहदान करनेवाला उत्तम भवन तथा चाँदीका दान करनेवाला उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न रूप एवं सौन्दर्य प्राप्त करता है—

भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥

(मनु० ४। २३०)

वस्त्रका दान करनेवाला चन्द्रलोक, अश्वका दान करनेवाला अश्विनीकुमारोंके लोक, वृषभ (बैल)-का दान करनेवाला अखण्ड ऐश्वर्य तथा गोदान करनेवाला प्रकाशमान सूर्यलोकको प्राप्त करता है—

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः।
अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्॥

(मनु० ४। २३१)

यान (सवारी) तथा शय्याका दान करनेवाला सुलक्षणा भार्या (पत्नी), प्राणियोंको अभयदान देनेवाला अर्थात्

अहिंसक व्यक्ति उत्तम ऐश्वर्य, धान्य (गेहूँ, जौ, धान, चना, चावल, मुद्ग आदि अन्न) तथा फलोंका दान करनेवाला शाश्वत सुख और वेद-ज्ञानका उपदेश देनेवाला (वेदकी शिक्षा देनेवाला) ब्रह्माजीकी समानताको प्राप्त करता है—

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः।
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम्॥

(मनु० ४।२३२)

ब्रह्मज्ञानकी श्रेष्ठता

मनुजी कहते हैं कि जल, अन्न, गौ, भूमि, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृत आदि—इन वस्तुओंके दानोंसे ब्रह्मज्ञानके दान (वेदाध्ययन तथा वेदज्ञानकी शिक्षा)-की महिमा विशेष फल देनेवाली है—

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥

(मनु० ४।२३३)

दानमें दाताके भावके अनुसार फल

मनुजी एक महत्त्वपूर्ण बात बताते हुए कहते हैं कि दान देनेमें दाताकी जैसी श्रद्धा होती है, दाताका सकाम-निष्काम जैसा भाव होता है, तदनुसार ही जन्मान्तरमें उसे फलप्राप्ति होती है। अतः सात्त्विक भावनासे निष्काम होकर भगवत्प्रीत्यर्थ दिया गया दान ही महान् कल्याणकारी होता है—

येन येन तु भावेन यद् यद्दानं प्रयच्छति।
तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः॥

(मनु० ४।२३४)

उद्‌बोधन

मनुजी धर्माचरण करनेवालोंको सावधान करते हुए कहते हैं कि सत्कर्म करके उसकी चर्चा न करें; क्योंकि इससे कर्तृत्वाभिमान आता है और फलप्राप्ति नहीं होती—**'न दत्त्वा परिकीर्तयेत्', 'दानं च परिकीर्तनात्'** (मनु० ४।२३६-२३७) 'मैंने दान दिया या मैं दाता हूँ'—ऐसा कहनेसे दानका फल नष्ट हो जाता है। ऐसे ही वे बताते हैं कि 'मैं दानी कहलाऊँ' इस प्रसिद्धिको बनानेके लिये दान न दें—**'न दद्याद् यशसे दानम्'** (महा०शान्ति० ३६।३६)।

सत्कर्मानुष्ठानकी महिमा

मनुजी कहते हैं कि जिस प्रकार दीमक धीरे-धीरे संचय करके विशाल बॉबीका निर्माण कर लेती है, वैसे ही मनुष्यको धीरे-धीरे पुण्यार्जन करते रहना चाहिये; क्योंकि परलोकमें धर्मके अलावा और कोई सहायक नहीं होता। प्राणी अकेला पैदा होता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही पुण्य-पापका फल भोगता है, मृत शरीरको बन्धु-बान्धव लकड़ी और मिट्टीके ढेलेके समान भूमिपर छोड़ देते हैं, कोई उसके साथ नहीं जाता। केवल धर्म ही उसके पीछे जाता है—**'धर्मस्तमनुगच्छति'** (मनु० ४।२४१) और वही धर्म नरकसे उसका निस्तारण भी करता है। अतः इस लोकमें दान आदि श्रेष्ठ कर्मोंका अनुपालन करते रहना चाहिये—**'दानधर्मं निषेवेत'** (मनु० ४।२२७)।

प्रेमदान

(पंचरसाचार्य श्रद्धेय स्वामी श्रीरामहर्षणदासजी महाराज)

प्रियतम कीजै प्रेम को दान।
प्रेम स्वरूप परात्पर प्रभु ही, राम रसिक रस खान॥
तव पद कमल मोर मन मधुकर, रहै सदा मेड़रान।
नव नव नेह बढ़ै उर निर्मल, आँख रहैं अँसुआन॥
सुमिरण छुटै छुनहु जो प्यारे, विकल होंहि मम प्रान।
अहनिशि करि कैंकर्य अबाधित, तव सुख रहौं भुलान॥
प्रेमिन संग सदा यह पावै, जहँ तिहरो गुण गान।
'हर्षण' भूखो भीखहिं याचत, द्वारे जानकी जान॥

[प्रेषक—पं० श्रीरामायणप्रसादजी गौतम]

महर्षि याज्ञवल्क्यद्वारा निरूपित दानतत्त्व

महान् अध्यात्मवेत्ता, योगी, ज्ञानी, धर्मात्मा एवं श्रीरामकथाके प्रवक्ता महर्षि याज्ञवल्क्यजीका नाम सर्वविश्रुत ही है। पुराणोंमें इन्हें ब्रह्माजीका अवतार बताया गया है। श्रीमद्भागवतमें इन्हें देवरातका पुत्र बताया गया है (श्रीमद्भा० १२।६।६४)। ये वेदाचार्य महर्षि वैशम्पायनके शिष्य हैं। इन्होंने अपने गुरु वैशम्पायनजीसे वेदोंका ज्ञान प्राप्त किया। एक बार गुरुजीसे कुछ विवाद हो जानेके कारण गुरु वैशम्पायनजी इनसे रुष्ट हो गये और कहने लगे—'तुम मेरेद्वारा पढ़ी हुई यजुर्वेदकी शाखाको उगल दो।' गुरुजीकी आज्ञा पाकर याज्ञवल्क्यजीने अन्नरूपमें वे सब ऋचाएँ उगल दीं, जिन्हें वैशम्पायनजीके दूसरे शिष्योंने तित्तिर (तीतर) बनकर ग्रहण कर लिया। यजुर्वेदकी वही शाखा, जो तीतर बनकर ग्रहण की गयी 'तैत्तिरीय शाखा' के नामसे प्रसिद्ध हुई।

पुनः याज्ञवल्क्यजीने वेद-ज्ञान और वेद-विद्या प्राप्त करनेका निश्चय किया और इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये भगवान् सूर्यकी उपासना की तथा उनसे प्रार्थना की कि 'मुझे ऐसे यजुर्वेदकी प्राप्ति हो, जो अबतक किसीको न मिला हो'—

'अहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति।'

(श्रीमद्भा० १२।६।७२)

महर्षि याज्ञवल्क्यकी स्तुति-उपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य उनके सामने अश्वरूपसे प्रकट हुए और उन्हें यजुर्वेदके उन मन्त्रोंका उपदेश दिया, जो अबतक किसीको प्राप्त न हुए थे—

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात् प्रसादितः॥

(श्रीमद्भा० १२।६।७३)

अश्वरूप सूर्यसे प्राप्त होनेके कारण शुक्ल यजुर्वेदकी यह शाखा 'वाजसनेय' या 'माध्यन्दिन' नामसे प्रसिद्ध हुई और इसके मुख्य द्रष्टा महर्षि याज्ञवल्क्यजी हैं। 'वाजसनेयीसंहिता' के आचार्य होनेके कारण ये 'वाजसनेय' भी कहलाते हैं। इस प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्य वेदोंके मुख्य आचार्य हैं। साथ ही ये 'शतपथ ब्राह्मण' तथा 'बृहदारण्यक उपनिषद्' के द्रष्टा भी हैं। गार्गी, मैत्रेयी और कात्यायनीसे ज्ञान-विज्ञान-सम्बन्धी जो इनका विचार-विमर्श हुआ, वह बड़ा ही मार्मिक, कल्याणकारी तथा अपूर्व है, वह उपनिषदों तथा पुराणोंमें उल्लिखित है। ये विदेहराज महाराज जनकजीके गुरु थे।

एक बार महाराज जनकजीकी इच्छा हुई कि हम किसी ब्रह्मनिष्ठ गुरुसे ब्रह्मविद्या प्राप्त करें। सर्वोत्तम ब्रह्मनिष्ठ ऋषिकी परीक्षा करनेके लिये उन्होंने एक युक्ति सोची। उन्होंने बड़े-बड़े ऋषियोंको बुलाया और सभामें बछड़ेसहित हजार सुवर्णकी गौएँ खड़ी कर दीं। तदनन्तर उन्होंने समस्त ऋषियोंके सामने घोषणा की—'जो कोई ब्रह्मनिष्ठ हों, वे इन गौओंको सजीव बनाकर ले जायँ।' सभीकी इच्छा हुई कि हम लें, किंतु 'पहले उठकर हम ऐसा करते हैं तो और लोग समझेंगे कि ये तो अपने मुँह ही अपनेको ब्रह्मनिष्ठ बताते हैं'—ऐसा सोचकर शिष्टाचार और लोकापवादके भयसे कोई भी न उठा। शिष्योंसहित याज्ञवल्क्यजी भी वहाँ थे। उन्होंने अपने एक शिष्यसे कहा—'सब गौओंको ले चलो।' इसपर उनका समस्त ऋषियों तथा गार्गीसे शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने सभीके प्रश्नोंका विधिवत् उत्तर दिया। सभी सन्तुष्ट हुए और महर्षि याज्ञवल्क्यजीके प्रातिभ-ज्ञान, विद्याशक्ति एवं दिव्य योगबलसे पराभूत हो गये। गौएँ भी सजीव हो गयीं। तब
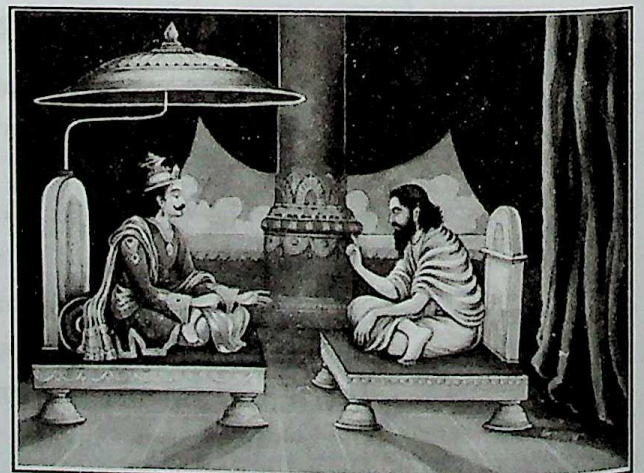
महाराज जनकजीने उनसे ब्रह्मविद्या प्राप्त की। महर्षि

याज्ञवल्क्यजीका मिथिला देशसे विशेष सम्बन्ध रहा है।

ब्रह्मविद्याके सूक्ष्म तत्त्वदर्शी होनेके साथ ही महर्षि याज्ञवल्क्यजी उच्चकोटिके भक्त भी हैं। प्रयागमें इन्होंने ऋषियोंके समाजमें महर्षि भरद्वाजजीको दिव्य रामचरित सुनाया—

तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

(रा०च०मा० १।३०।५)

तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई॥

(रा०च०मा० १।४७।५)

योगके उपदेष्टा आचार्यों तथा स्मृतिकारोंमें महर्षि याज्ञवल्क्यजीका स्थान सबसे ऊँचा माना जाता है। याज्ञवल्क्यस्मृतिके साथ ही ब्रह्मोक्त योगियाज्ञवल्क्य, बृहद्योगियाज्ञवल्क्य आदि स्मृतियाँ भी उनके नामसे विख्यात हैं। इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्यगीता, याज्ञवल्क्योपनिषद्, याज्ञवल्क्यशिक्षा आदि ग्रन्थ भी इनके बहुत प्रसिद्ध हैं। गायत्री-भाष्यका इन्होंने ही सर्वप्रथम प्रणयन किया, जिसमें गायत्री-मन्त्रके एक-एक अक्षरपर विस्तृत गूढ़ार्थवाले कई श्लोक इनके द्वारा प्रणीत हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्यजीकी त्याग, तपस्या एवं सदाचारमय जीवनचर्या महान् उपयोगी तथा शिक्षा ग्रहण करनेयोग्य है। इनका प्रत्येक क्षण धर्मकी मर्यादामें स्थिर रहता आया है। यहाँ दानसम्बन्धी उनके कुछ वचनोंका संग्रह प्रस्तुत है—

दानकी अवश्यकरणीयता

महर्षि याज्ञवल्क्यजी सभी आश्रमों एवं सभी वर्णोंके सामान्य धर्मोंका निर्देश करते हुए सभीके लिये दानकी आवश्यकता बताते हैं और कहते हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दमो दया शान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥

(याज्ञ०स्मृ० आ० १२२)

अर्थात् मन, वाणी तथा शरीरसे किसी भी प्रकार हिंसाका भाव न रखना, यथार्थ भाषण, चोरी न करना, बाह्याभ्यन्तर शुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, दान, अन्तःकरणका संयम, दया तथा क्षान्ति (क्रोधका सर्वथा अभाव)—ये सभीके लिये धर्मसाधन हैं।

धर्माचरण करें

महर्षि याज्ञवल्क्य मन, वचन, कर्मसे सब प्रकारसे सर्वदा धर्माचरण करने, सत्कर्मानुष्ठान करने और अधर्माचरणका परित्याग करनेके लिये विशेष रूपसे कहते हैं—

कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्मं समाचरेत्।

(याज्ञ०स्मृ० आ० १५६)

महर्षिने अपने दान-प्रकरणमें दान-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातें बतायी हैं, जिनका सार यहाँ प्रस्तुत है—

दान सत्पात्रको दें

याज्ञवल्क्यजीने दाता तथा प्रतिग्रहीताकी पात्रतापर विशेष बल दिया है और कहा है कि सभी वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणोंमें भी वेदका अध्ययन करनेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे भी श्रेष्ठ क्रियानिष्ठ हैं और उनसे भी श्रेष्ठ अध्यात्मवेत्ता ब्राह्मण हैं। पुनः वे आगे बताते हैं कि न केवल विद्यासे और न केवल तपसे पात्रता आती है, अपितु जिसमें अनुष्ठान तथा ये दोनों—विद्या और तप हों, वही दान ग्रहण करनेका सत्पात्र होता है—

न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम्॥

(याज्ञ०स्मृ०आ० २००)

दानके सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति सत्पात्रको दान देनेसे ही प्राप्त होती है, अतः आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवालेको चाहिये कि वह अपात्रको दान न दे—

गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम्।
नापात्रे विदुषा किंचिदात्मनः श्रेय इच्छता॥

(याज्ञ०स्मृ०आ० २०१)

प्रतिग्रहीताकी पात्रता

याज्ञवल्क्यजी बताते हैं कि जो ब्राह्मण विद्या और तपसे हीन हो, उसे प्रतिग्रह नहीं लेना चाहिये, यदि वह दान लेता है तो दाताको तथा अपनेको अधोगति (नरकमें) ले जाता है—

विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः।
गृह्णन् प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च॥

(याज्ञ०स्मृ०आ० २०२)

प्रतिदिन दान दे

प्रतिदिन सत्पात्रको दान करना चाहिये। चन्द्रग्रहण

आदि विशेष पर्वोंपर विशेष दान देना चाहिये—

दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः।

(याज्ञ०स्मृ०आ० २०३)

गोदान तथा उभयतोमुखी गोदान

महर्षिने गोदानका अनन्त फल बताया है। ऐसे ही उभयतोमुखी गौ अर्थात् प्रसव करते समय जबतक बछड़ेके दो पैर और मुख गायकी योनिमें दिखायी देते हैं तबतक वह उभयतोमुखी गौ है—ऐसी गौका दान करनेवाला अनन्त समयतक उत्तम लोकोंमें निवास करता है।

गोदानके समान पुण्यप्रद कर्म

दीनों, अनाथों, दुर्बलोंकी सहायता, उनकी आसन-शय्यादान आदिके द्वारा थकान दूर करना, रोगियोंकी परिचर्या तथा औषधदान, देवपूजन, द्विजोंका पैर धोना आदि कर्म भी गोदानके समान ही फलदायी हैं—

श्रान्तसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम्।
पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत्॥

(याज्ञ०स्मृ०आ० २०९)

ब्रह्मविद्यादान

महर्षि याज्ञवल्क्यजी ब्रह्मविद्याके दानको सर्वधर्ममय और सर्वोत्कृष्ट बताते हुए इसे ब्रह्मलोक प्राप्त करानेवाला बताते हैं, इससे विद्यादानकी महत्ता प्रकट होती है—

सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः।
तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम्॥

(याज्ञ०स्मृ०आ० २१२)

प्रतिग्रह न लेनेकी महिमा

महर्षिका कथन है कि जो ब्राह्मण प्रतिग्रह लेनेमें समर्थ है अर्थात् दान ग्रहण करनेकी पात्रतायुक्त है तथापि वह प्रतिग्रह (दान) नहीं लेता तो भी वह दानशीलोंके लोकको प्राप्त करता है—

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम्।
ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति पुष्कलान्॥

(याज्ञ०स्मृ०आ० २१३)

दानमें सर्वस्व न दे दे

दानके विषयमें विशेष महत्त्वकी बात बताते हुए याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि दान उतना ही देना चाहिये, जिससे कुटुम्बके भरण-पोषणमें बाधा न हो। अपने स्त्री-पुत्रको दानमें न दे। पुत्र-पौत्र होनेपर सर्वस्व दानमें न दे दे और जिस वस्तुकी किसीको देनेके लिये प्रतिज्ञा कर दी हो, उसे फिर अन्यको न दे—

स्वं कुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते।
नान्वये सति सर्वस्वं यच्चान्यस्यै प्रतिश्रुतम्॥

(याज्ञ०स्मृ०आ० १७५)

महर्षि वेदव्यासद्वारा निरूपित दानका माहात्म्य

विद्यावन्तं विपुलमतिदं वेदवेदान्तवेद्यं
श्रेष्ठं शान्तं शमितविषयं शुद्धतेजो विशालम्।
वेदव्यासं सततविनतं विश्ववेद्यैकयोनिं
पाराशर्यं परमपुरुषं सर्वदाहं नमामि॥

(स्कन्द० वैष्ण० १। २४)

विद्वान्, विपुल बुद्धिदाता, वेदवेदान्तके द्वारा ज्ञेय, श्रेष्ठ, शान्त, विषयोंसे उपरत, विशाल शुद्ध तेजसे युक्त, सदा विनीत, संसारके समस्त ज्ञानके आदिस्रोत, पराशरजीके सुपुत्र, परमात्मस्वरूप भगवान् वेदव्यासको मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

चौबीस अवतारोंमें परिगणित भगवान् वेदव्यासजीका अवतरण लोकमें धर्म, सदाचार, विद्या, ज्ञान, तप, नामनिष्ठा तथा सत्कर्मानुष्ठानकी प्रतिष्ठाके लिये हुआ है। इन्होंने लोकमें ज्ञानका ह्रास तथा विद्याकी शिथिलता देखकर जनकल्याणके लिये प्रथम तो वेदसंहिताका चार भागोंमें विभाजन किया और फिर व्यासस्मृति आदि नामसे प्रसिद्ध धर्मशास्त्रोंका निर्माणकर अठारह पुराणों तथा उपपुराणोंकी रचना कर डाली। महाभारत-जैसा विशाल ग्रन्थ व्यासजीकी ही रचना है। ब्रह्मसूत्र आदि ग्रन्थ अद्वैत तत्त्वकी प्रतिष्ठा करनेवाले हैं। यह सब व्यासजीके अवतरणका ही फल है। ये न केवल ज्ञानी, तपस्वी, आचारनिष्ठ एवं सद्धर्मानुष्ठानमें ही प्रवृत्त रहनेवाले थे, अपितु इन्होंने भगवान्‌की प्राप्तिका जो सहज मार्ग गीतामें दिखाया, वह समस्त विश्वके लिये अनुकरणीय है। ये स्वयं आचारनिष्ठ थे और दूसरे भी

आचारनिष्ठ रहें, सत्कर्मानुष्ठान करते रहें, इसकी सीख इन्होंने अपने ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक दी है। इनकेद्वारा रचित व्याසस्मृति धर्मशास्त्रका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, उपलब्ध व्यासस्मृतिमें चार अध्याय और लगभग २५० श्लोक हैं। व्यासजीने सभी आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम और इसके कर्तव्योंको सर्वोपरि कल्याणकारक बताया है और यह निरूपित किया है कि गृहस्थके लिये नित्यदानकी महती आवश्यकता है; क्योंकि दान गृहस्थका मुख्य धर्म है। इस स्मृतिके चौथे अध्यायके लगभग ५० श्लोकोंमें दानधर्मका विशेष माहात्म्य प्रतिपादित है। इसमें दानकी महिमा, दानके योग्य पात्र, दानका स्वरूप आदि विषय विवेचित हैं। दान-सम्बन्धी व्यासजीका यह विवेचन इतने महत्त्वका है कि इसीके कारण व्यासजी 'दानव्यास' के नामसे प्रसिद्ध हो गये।

विशेष महत्त्वके होनेसे यहाँ उस प्रकरणके कुछ श्लोकोंका भावानुवाद दिया जा रहा है—

दानव्यास

महर्षि व्यासजी कहते हैं—जो विशिष्ट सत्पात्रोंको जो कुछ दान देता है और जो कुछ अपने भोजन-आच्छादनमें प्रतिदिन व्यवहृत करता है, उसीको मैं उस व्यक्तिका वास्तविक धन या सम्पत्ति मानता हूँ, अन्यथा शेष सम्पत्ति तो किसी अन्यकी है, जिसकी वह केवल रखवालीमात्र करता है—

यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने।
तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥

(व्यासस्मृति ४। १६)

दानमें जो कुछ देता है और जितने मात्रका वह स्वयं उपभोग करता है, उतना ही उस धनी व्यक्तिका अपना धन है। अन्यथा मर जानेपर उस व्यक्तिके धन आदि वस्तुओंसे दूसरे लोग आनन्द मनाते हैं अर्थात् मौज उड़ाते हैं—

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि॥

(व्यासस्मृति ४। १७)

तात्पर्य यह है कि सावधानीपूर्वक अपनी धन-सम्पत्तिको दान आदि सत्कर्मोंमें व्यय करना चाहिये। जब
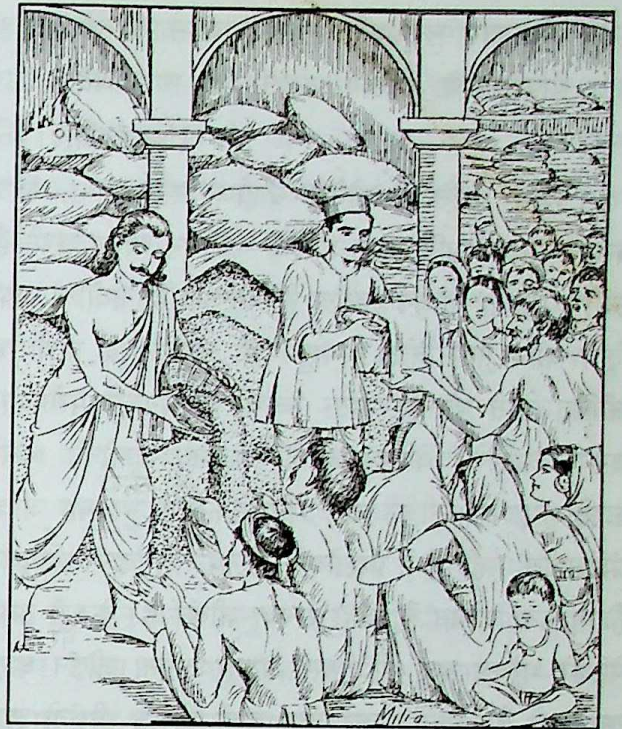
आयुका एक दिन अन्त निश्चित है तो फिर धनको बढ़ाकर उसे रखनेकी इच्छा करना मूर्खता ही है, वह धन व्यर्थ ही है; क्योंकि जिस शरीरकी रक्षाके लिये धन बढ़ानेका उपक्रम किया जाता है, वह शरीर ही अस्थिर है—नश्वर है, इसलिये धर्मकी ही वृद्धि करनी चाहिये, धनकी नहीं। धनके द्वारा दान आदि करके धर्मकी वृद्धिका उपक्रम करना चाहिये, निरन्तर धन बढ़ानेसे कोई लाभ नहीं। धर्म बढ़ेगा तो धन अपने-आप आने लगेगा **(धर्मादर्थो भवेद्ध्रुवम्)**। 'शरीरधारियोंके सभी शरीर नश्वर हैं और धन भी सदा साथ रहनेवाला नहीं है, साथ ही मृत्यु भी निकट ही सिरपर बैठी है' ऐसा समझकर प्रतिक्षण धर्मका संग्रह—धर्माचरण ही करना चाहिये; क्योंकि कालका क्या ठीक, कब आ जाय, अतः अपने धन एवं समयका सदा सदुपयोग ही करना चाहिये—

अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

(व्यासस्मृति ४। १९)

जो धन धर्म, सुखभोग या यश—किसी काममें नहीं आता और जिसे छोड़कर एक दिन यहाँसे अवश्य ही चले जाना है, उस धनका दान आदि धर्मोंमें उपयोग क्यों नहीं किया जाता?—

यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये।
यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते॥

(व्यासस्मृति ४। २०)

जिस व्यक्तिके जीनेसे ब्राह्मण, साधु-सन्त, मित्र, बन्धु-बान्धव आदि सभी जीते हैं—जीवन धारण करते हैं, उसी व्यक्तिका जीवन सार्थक है—सफल है; क्योंकि अपने लिये कौन नहीं जीता? पशु-पक्षी आदि क्षुद्र प्राणी भी जीवित रहते ही हैं, अतः स्वार्थी न बनकर परोपकारी बनना चाहिये। कीड़े-मकोड़े भी एक-दूसरेका भक्षण करते हुए क्या जीवन नहीं धारण करते? पर यह जीवन प्रशंसनीय नहीं है। परलोकके लिये जो दान-धर्मपूर्वक जिया गया जीवन है, वही सच्चा जीवन है। केवल अपने पेटको भरकर पशु भी किसी प्रकार अपना जीवन धारण करते ही हैं। पुष्ट होकर तथा बली होकर भी जो लम्बे समयतक जीता है, धर्म नहीं करता, ऐसे निरर्थक जीवनसे क्या लेना-देना! वह तो पशुके समान ही जीना है। अपने भोजनके ग्रासमेंसे भी आधा या चतुर्थ भाग आवश्यकतावालों या माँगनेवालोंको क्यों नहीं दे दिया जाता; क्योंकि इच्छानुसार धन तो कब किसको प्राप्त होनेवाला है अर्थात् अबतक तो किसीको प्राप्त नहीं हुआ है और न आगे किसीके पास होगा—

ग्रासादर्द्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥

(व्यासस्मृति ४। २३)

यह नहीं सोचना चाहिये कि इतना धन और आ जायगा तो फिर मैं दान-पुण्य करूँगा। अतः जितना भी प्राप्त हो, उसीमें सन्तोषकर उसीमेंसे दान इत्यादि सब धर्मोंका अभ्यास करना चाहिये। जो पवित्र सत्पात्र ब्राह्मणको दान दिया जाता है और जो प्रज्वलित अग्निमें हवन किया जाता है, उतना ही धन वास्तविक रूपमें धन कहा गया है, शेष धन तो निरर्थक ही है—

ब्राह्मणेषु च यद्दत्तं यच्च वैश्वानरे हुतम्।
तद्धनं धनमाख्यातं धनं शेषं निरर्थकम्॥

(व्यासस्मृति ४। ३९)

अच्छे—उपजाऊ क्षेत्रमें ही अन्नके बीज डालने चाहिये और धनका दान भी सत्पात्र गुणवान्को ही देना चाहिये। अच्छे क्षेत्र और अच्छे पात्रमें प्रयुक्त पदार्थ कभी दूषित नहीं होता, कभी नष्ट नहीं होता। शूरवीर व्यक्ति तो सौमेंसे खोजनेपर एक प्राप्त हो जाता है, हजारमें ढूँढ़नेपर एक विद्वान् व्यक्ति भी मिल जाता है, इसी प्रकार एक लाखमें सभापर नियन्त्रण करनेवाला कोई वक्ता भी प्राप्त हो जाता है, किंतु असली दाता खोजनेपर भी मिल जाय—यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अर्थात् दानी व्यक्ति संसारमें सबसे अधिक दुर्लभ है। शूरवीर वही है, जो वास्तवमें इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करता है, युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला असली शूरवीर नहीं है। मात्र शास्त्रोंका अध्ययन करनेवाला ही पण्डित नहीं है, बल्कि तदनुसार आचरण करनेवाला ही सच्चा पण्डित है। केवल लच्छेदार भाषण करनेवाला वक्ता नहीं होता, किंतु मधुर, कल्याणकारी और विश्वहित चाहनेवाला, नीतियुक्त भाषण करनेवाला ही यथार्थ वक्ता है। इसी प्रकार केवल धनका दान करनेवाला दानी नहीं कहलाता, अपितु सम्मानपूर्वक यथोचित यथायोग्य विधिपूर्वक देश-कालके अनुरूप दान करनेवाला दाता ही सच्चा दाता है—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥
न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययान्न च पण्डितः।
न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः॥

(व्यासस्मृति ४। ५८-५९)

पुराणोंमें दाननिरूपण

व्यासजीद्वारा रचित पुराण-वाङ्मय अति विशाल है। यद्यपि सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—यह पुराणोंका पंचलक्षण है, किंतु पुराणोंमें इस लोक तथा परलोक-सम्बन्धी कोई ऐसा विषय नहीं है, जिसका निरूपण न हुआ हो, इसी सन्दर्भमें दानका भी विशाल साहित्य उपलब्ध है, जिसमें दानके विविध अंग-उपांगोंका विस्तारसे वर्णन है। **ब्रह्मपुराण**में अन्नदानकी महिमा बताते हुए व्यासजी कहते हैं—धर्मकी इच्छा रखनेवालेको अन्नदान करना चाहिये। अन्न ही सबका जीवन है, अन्नमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं। देवता, ऋषि, पितर अन्नदानकी

प्रशंसा करते हैं, अन्न बलकी वृद्धि करनेवाला है, अन्नदानसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है, इस लोकमें उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और मृत्युके बाद भी वह सुखका भागी होता है—

अन्नस्य हि प्रदानेन नरो याति परां गतिम्॥
सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम्।

(ब्रह्म० २१८। २६-२७)

शिवपुराणमें दानधर्म तथा अध्यात्मसे उसके सम्बन्धके रहस्यका वर्णन करते हुए व्यासजी कहते हैं—धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे भोग सुलभ होता है, फिर उस भोगसे वैराग्यकी सम्भावना होती है। धर्मपूर्वक उपार्जित धनसे जो भोग प्राप्त होता है, उससे एक दिन अवश्य वैराग्यका उदय होता है। धर्मके विपरीत अधर्मसे उपार्जित हुए धनके द्वारा जो भोग प्राप्त होता है, उससे भोगोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। सत्ययुग आदिमें तपको प्रशस्त कहा गया है, किंतु कलियुगमें द्रव्यसाध्य धर्म—दानको अच्छा माना गया है। न्यायोपार्जित धनका दान करनेसे दाताको ज्ञानकी सिद्धि प्राप्त होती है। गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वह धन-धान्यादि सब वस्तुओंका दान करे। दान लेनेवाला पुरुष दानमें प्राप्त हुई वस्तुका दान तथा तपस्या करके प्रतिग्रहजनित दोषको शान्त कर ले। ईश्वरार्पण-बुद्धिसे किये गये यज्ञ-दान आदि कर्म मोक्ष फलको प्राप्त करानेवाले हैं।

वराहपुराणमें अन्नदानकी विशेष महिमा आयी है और राजा श्वेतके आख्यानमें बताया गया है कि जब राजा श्वेतने अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठजीसे कहा कि प्रभो! मैं समूची पृथ्वी दानमें देना चाहता हूँ, आप आज्ञा प्रदान करें तो वे बोले—राजन्! अन्न सभी समयोंमें सुख देनेवाला है, अतः तुम सदा अन्नदान दिया करो, किंतु राजा श्वेतने अन्नदानको तुच्छ मानकर वैसा न किया, बल्कि अनेक नगरोंका दान किया। कालान्तरमें परलोकमें उन्हें भूख और प्यास सताने लगी, भूखे राजा श्वेत अपनी ही हड्डियोंको चाटकर भूख-प्यास बुझाने लगे; अत्यन्त कष्टमें पड़े श्वेतके पास महर्षि वसिष्ठ आये और उन्होंने बताया कि पूर्वजन्ममें तुमने अन्न-जलका दान नहीं किया, उसीका यह परिणाम है। अब तुम तिलधेनु, जलधेनु तथा रसधेनुका दान करो, इससे क्षुधाका क्लेश शान्त हो जायगा। आगे फिर गुड़धेनु, शर्कराधेनु, मधुधेनु, क्षीरधेनु, दधिधेनु, नवनीतधेनु, लवणधेनु, कार्पासधेनु, धान्यधेनुके दानकी विधि, कपिला गौके माहात्म्य तथा उसके दानकी विधि और उभयतोमुखी गौके दानकी विधि निरूपित है।*

मत्स्यपुराणमें तो वेदव्यासजीने बार-बार दानकी महिमाका वर्णन किया है। वे कहते हैं दान सभी उपायोंमें श्रेष्ठ है, दान देनेसे मनुष्य दोनों लोकोंको जीत लेता है, दानसे देवता भी मनुष्योंके वशमें हो जाते हैं—'**दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्॥**' (मत्स्य० २२४। २) दानी मनुष्य संसारमें सबका प्रिय होता है। इस प्रकार दानका अनेकविध माहात्म्य बताकर उन्होंने सोलह अध्यायोंमें षोडश महादानोंकी विधिका विस्तारसे वर्णन किया है। यहाँ केवल उनके नाम प्रस्तुत हैं—(१) तुलापुरुषदान, (२) हिरण्यगर्भदान, (३) ब्रह्माण्डदान, (४) कल्पवृक्षदान, (५) गोसहस्रदान, (६) कामधेनुदान, (७) हिरण्याश्वदान, (८) हिरण्याश्वरथदान, (९) हेमहस्तिरथदान, (१०) पंचलांगल (हल)-दान, (११) हेमधरादान, (१२) विश्वचक्रदान, (१३) कनककल्पलतादान, (१४) सप्तसागरदान, (१५) रत्नधेनुदान तथा (१६) महाभूतघटदान।

ऐसे ही व्यासजीने विभिन्न वस्तुओंका पर्वत बनाकर उनके दानकी विधि भी विस्तारसे बतायी है—धान्यशैल, लवणाचल, गुडाचल, हेमपर्वत, तिलशैल, कार्पासाचल, घृताचल, रत्नाचल, रजताचल तथा शर्कराचल—ये दस पर्वतदान कहे गये हैं।

कूर्मपुराणमें वेदव्यासजीने व्यासस्मृतिमें बताये गये दान-धर्मके श्लोकोंका पुनः अनुवर्तन किया है और दानकी परिभाषा बताते हुए कहा है कि उदित अर्थात्

* वराहपुराणका यह दान-प्रकरण लगभग १० अध्यायोंमें निरूपित है, जो अनेक निबन्धग्रन्थों—कृत्यकल्पतरु, हेमाद्रिके दानखण्ड, नीलकण्ठके दानमयूख एवं बल्लालसेनके दानसागर आदिमें प्रायः इन्हीं श्लोकोंमें इसी क्रमसे प्राप्त होता है, इससे इसकी महत्ता प्रकट होती है।

वेदवेदांगाध्ययन करनेवाले प्रशस्त पात्रमें श्रद्धापूर्वक प्रतिपादन—दान कहा गया है, यह भोग तथा मोक्षरूप फलको देनेवाला है—

अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥

(कूर्मपुराण, उपरिविभाग २६।२)

उन्होंने नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा विमल—चार प्रकारके दान-भेद बताये हैं। विमल दानके विषयमें बताया गया है कि ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये धर्मभावनासे ब्रह्मज्ञानियोंको जो दिया जाता है, वह कल्याणकारी दान विमलदान कहलाता है।

पद्मपुराणमें विस्तारसे दानकी बात आयी है और अन्य साधनोंकी अपेक्षा दानको आत्मकल्याणका श्रेयस्कर साधन बताया गया है। न्यायोपार्जित द्रव्यका श्रद्धापूर्वक विधिके अनुसार सुपात्रको दान दिया जाय तो उसका अनन्त फल होता है, अतः दानमें श्रद्धाकी विशेष महिमा है। श्रद्धा देवी धर्मकी पुत्री हैं, वे विश्वको पवित्र और अभ्युदयशील बनानेवाली हैं। वैसे तो दानके कई प्रकार हैं, किंतु अन्नदान सर्वोपरि दान है। इसलिये जलसहित अन्नका दान अवश्य करना चाहिये। कूर्मपुराणके समान इस पुराणमें भी व्यासजीने दानके नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा विमल—ये चार भेद बताये हैं तथा विस्तारसे उनका वर्णन किया है। वे कहते हैं कि कुटुम्बके भरण-पोषण किये बिना जो दान दिया जाता है, वह निष्फल दान है।

इसी प्रकार अग्नि आदि अन्य पुराणों तथा उपपुराणोंमें भी वेदव्यासजीने दानके अंगोपांगोंका विशद रूपमें वर्णन किया है, जो बड़ा ही महत्त्वपूर्ण तथा व्यवहारमें लानेयोग्य है। व्यासजीद्वारा निर्मित महाभारतमें तो एक पूरा पर्व ही है, जो दान-धर्म-पर्वके नामसे विख्यात है। व्यासजीकी कृपासे ही यह साहित्य हमें प्राप्त हो सका है।

महात्मा संवर्तकी दानमीमांसा

महात्मा संवर्त दिव्य योग, ज्ञान, तप, वैराग्य और आध्यात्मिक शक्तिसम्पन्न तथा अध्यात्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वैदिक महर्षि हैं। ये अथर्ववेदके आचार्य महर्षि अंगिराके पुत्र और देवगुरु बृहस्पतिजीके कनिष्ठ भ्राता हैं। इनका चरित्र वेद, इतिहास, पुराण तथा महाभारत आदिमें विस्तारसे वर्णित हुआ है, जो अध्यात्मवेत्ताओंके लिये परम कल्याणकारी और अमृतोपम है। महर्षि संवर्त परम शिवभक्त, गायत्रीके महान् उपासक और भक्तोंके परम उपासक हैं। ये मन्त्रद्रष्टा महर्षि वामदेव आदि ऋषियोंके गुरु हैं। वामदेव, मार्कण्डेय आदि ऋषि-महर्षियोंको जो इन्होंने दिव्य उपदेश प्रदान किया, वह 'संवर्तस्मृति' के नामसे विख्यात है। महर्षि संवर्त आत्मविद्यामें लीन रहनेवाले अन्तर्मुखीवृत्तिसम्पन्न महायोगी हैं। अतः बाह्य जगत्से इनका सम्पर्क कम था। इनमें अद्भुत मन्त्रबल था। पुराणेतिहास-ग्रन्थोंसे यह ज्ञात होता है कि ये प्रायः अवधूत-वेषमें गुप्तरीतिसे सर्वत्र विचरण किया करते हैं और भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशीपुरी इन्हें अत्यन्त ही प्रिय है। ये नित्य काशीपुरीमें आकर प्रच्छन्नरीतिसे भगवान् विश्वनाथके दर्शन करते रहते हैं।

इन्होंने चक्रवर्ती सम्राट् अविक्षित्के पुत्र महाराज मरुत्तके सर्वाधिक प्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ यज्ञका आचार्यत्व किया था और उन्हें शिवकी आराधनाका उपाय बतलाकर यज्ञके योग्य अपार सुवर्णकी राशि भी प्राप्त करा दी थी। भगवान् शंकरने राजा मरुत्तको सुमेरुके एक शिखरका भाग ही प्रदान कर दिया था।

महाराज मरुत्त एक महान् धर्मात्मा, प्रतापी सम्राट् हो चुके हैं। उनमें दस हजार हाथियोंके समान बल था। वे साक्षात् दूसरे विष्णुके समान जान पड़ते थे। उनका धर्मशासन-चक्र सातों द्वीपोंमें अबाधरूपसे फैला हुआ था। उन्होंने बहुत-से यज्ञोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया और उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दीं। राजा मरुत्तने सौ यज्ञ करके देवराज इन्द्रको भी मात कर दिया था। महाराज मरुत्तके महान् यज्ञके सम्बन्धमें ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा सभी पुराणों एवं महाभारत आदिमें एक ही प्रकारकी गाथाएँ प्राप्त होती हैं, जो बड़ी स्मरणीय, दिव्य तथा रमणीय हैं। ऐतरेय-श्रुतिमें

कहा गया है कि राजा अविक्षित्के पुत्र आविक्षित—मरुत्तके यज्ञमें मरुद्गणोंने भोजन परोसनेका कार्य किया और उस यज्ञमें विश्वेदेव सभासद्के रूपमें विद्यमान रहे।[१]

राजा मरुत्तके इस यज्ञके विषयमें श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण आदिमें कहा गया है कि राजा अविक्षित्के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् महाराज मरुत्तका यज्ञ अंगिराके पुत्र महायोगी संवर्तने कराया था। मरुत्तका यज्ञ जैसा हुआ, वैसा
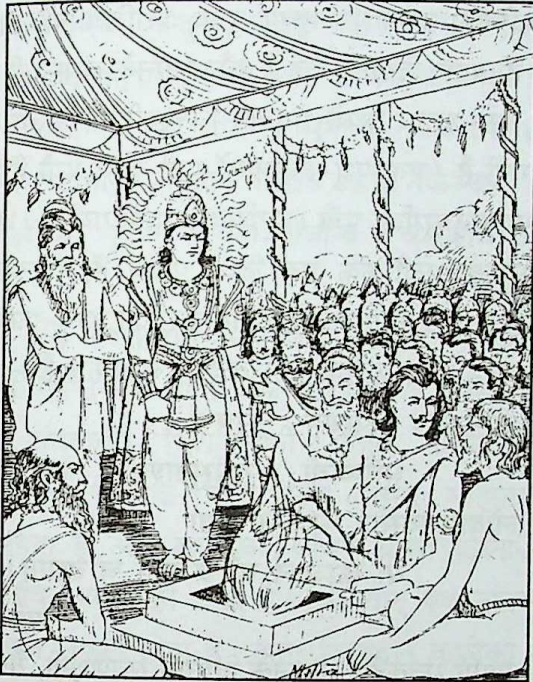
और किसीका नहीं हुआ। उस यज्ञके समस्त छोटे-बड़े पात्र अत्यन्त सुन्दर एवं सोनेके बने हुए थे। उस यज्ञमें इन्द्र सोमपानकर मतवाले हो गये थे और दक्षिणाओंसे ब्राह्मण तृप्त हो गये थे।

ऐसी महिमामयी गाथा किसी अन्य यष्टा या धर्म-कर्मके अनुष्ठाताके लिये नहीं मिलती, पर यह सब कुछ राजा मरुत्तको अपने गुरु महर्षि संवर्तके कृपाप्रसादसे ही प्राप्त हुआ। इसका सारा श्रेय उन्हींकी साधनाओंको प्राप्त होता है। राजा मरुत्तकी ये गाथाएँ आज भी विद्यमान हैं और आज भी सभी याज्ञिक तथा कर्मकाण्डी विद्वान् छोटे-बड़े यज्ञों, पूजा-पाठके अनुष्ठानोंके अन्तमें इस गाथाका अवश्य गान करते हैं। यह प्रकारान्तरसे महर्षि संवर्तकी महिमाका ही गान है।

इस प्रकार महर्षि संवर्तजी महान् धर्मात्मा, गायत्री-जपमें निष्ठ, शिव-शक्तिके सच्चे उपासक थे। तप-ज्ञान एवं योग आदि सभी शक्तियाँ इनके वशमें थीं। शिवकी आराधनासे ही इनमें इतनी शक्ति आ गयी थी। इनका लोक-व्यवहार भी संसारके कल्याणके लिये ही था।

यद्यपि महात्मा संवर्त योगनिष्ठ और अध्यात्मज्ञानके आचार्य हैं तथापि उन्होंने अपने जीवन-दर्शन और उपदेशोंसे सदाचारमय जीवन बनानेपर जोर दिया है, वर्णाश्रमधर्मके परिपालनपर उनका विशेष आग्रह रहा है, उन्होंने सत्कर्मानुष्ठानको कल्याणकारी साधन कहा है और सन्ध्याकर्मको नित्य अवश्यकरणीय कृत्य कहा है तथा सन्ध्याकी महिमा निरूपित की है। ऐसे ही पंचमहायज्ञोंके अनुष्ठानपर विशेष बल दिया है।

अध्यात्मविद्यापरायण महर्षि संवर्तजीके उपदेशात्मक वचन और चरित्र तो सभी पुराण-इतिहासोंमें न्यूनाधिकरूपमें प्राप्त होते हैं, जो बड़े रोचक एवं दिव्य हैं, किंतु उनके नामसे एक स्वतन्त्र स्मृति भी प्राप्त होती है, जो 'संवर्तस्मृति' के नामसे प्रसिद्ध है। यद्यपि यह संक्षिप्त स्मृति प्रायः २२७ श्लोकोंके रूपमें उपनिबद्ध है, तथापि इसके उपदेश बड़े ही उपादेय और महान् कल्याणकारक हैं।

महर्षि संवर्तजीका मुख्य उपदेश गायत्री-महिमासे सम्बन्धित है। वे गायत्रीका नित्य जप करते रहते हैं। उन्होंने सभी सिद्धियोंके मूलमें गायत्री-उपासनाको ही मुख्य धर्म माना है और गायत्री-उपासनापर अधिक बल दिया है।

महर्षि संवर्तने कालधर्मकी भी महिमा गायी है और अनेक प्रकारके पातक-महापातक तथा उपपातकोंके प्रायश्चित्त-विधानका भी संक्षेपमें वर्णन किया है और बताया है कि माघ, कार्तिक मासोंकी पूर्णिमा तिथियोंको सत्पात्र ब्राह्मणको तिल, स्वर्ण, वस्त्र तथा अन्नका श्रद्धापूर्वक दान करनेसे सभी पापोंका विनाश हो जाता है।[२]

इसी प्रकार अपने अधिकारानुसार पाँच अहोरात्रपर्यन्त

---

१. संवर्त आङ्गिरसो मरुत्तमाविक्षितमभिसिषेच तस्मादु मरुत्त आविक्षितः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। इति मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे। आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासदः॥ (ऐत० ब्रा० ३९।८।२१)

(यही बात शतपथ ब्राह्मण (१३।५।४।६)-में भी कही गयी है।)

२. माघमासे तु सम्प्राप्ते पौर्णमास्यामुपोषितः। ब्राह्मणेभ्यस्तिलान् दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
उपवासी नरो भूत्वा पौर्णमास्यां च कार्तिके। हिरण्यं वस्त्रमन्नं वा दत्त्वा मुच्येत दुष्कृतैः॥ (श्लोक २०३-२०४)

गायत्री-जपसे ऐहिक तथा आमुष्मिक सभी पापोंकी निष्कृति हो जाती है, अतः गायत्री-उपासनाके अतिरिक्त पापोंका शोधन करनेके लिये अन्य कोई उपाय नहीं है—

'गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम्॥'

(श्लोक २१४)

दानकी महिमा

महर्षि संवर्तजीने सभी धर्मोंमें दानधर्मकी विशेष महत्ता दिखलायी है और इसका विस्तारसे वर्णन किया है। दानकी अनन्त महिमा है। महर्षि संवर्तजी बताते हैं कि दान समस्त अशुभोंका विनाश करनेवाला है—**'अशुभानां विनाशनम्।'** मनुष्यको जो-जो वस्तु प्रिय हो, वही वस्तु दानमें देनी चाहिये। बुद्धिमान् दाताको चाहिये कि वह स्नान करके शुद्ध सफेद वस्त्र पहना हो, शुद्ध मनवाला हो, इन्द्रियोंको जीतनेवाला हो तथा सात्त्विक भाववाला हो—ऐसा व्यक्ति ही दान देनेका अधिकारी होता है, जैसे-तैसे दान देना ठीक नहीं है—

स्नातः शुचिर्धौतवासाः शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः।
सात्त्विकं भावमास्थाय दानं दद्याद्विचक्षणः॥

(श्लोक २१३)

दान सभी सिद्धियोंका विधायक है, पर संवर्तजीने उन दानोंमें भी अभयदान, गोदान, अन्नदान और विद्यादान—इन चारोंको विशेष महत्त्वका बताया है। महर्षि संवर्तजीने इन दानोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। यहाँ संक्षेपमें इनका दिग्दर्शन कराया जाता है—

(१) अभयदान—अभयदान देनेवालेके लिये महर्षि संवर्तजीने कहा है कि प्राणियोंको अभयदान देनेवाला व्यक्ति सभी कामनाओंको प्राप्तकर दीर्घ आयु प्राप्त करता है और वह सब प्रकारसे सुखी रहता है तथा उसे कोई क्लेश नहीं होता—

भूताभयप्रदानेन सर्वकामानवाप्नुयात्।
दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव तथा भवेत्॥

(श्लोक ५३)

सभी प्राणियोंके हृदयमें भगवान्‌का निवास है। अतः अभयदान सर्वोत्तम दान है। अभयदानमें शरणागत-रक्षणका भाव होनेसे दातामें भगवदीय शक्तिका प्रवेश होने लगता है और उसके हृदयमें दिव्य अद्भुत विज्ञान चमत्कृत होने लगता है। शरणागतकी रक्षा करना सबसे बड़ा धर्म है। महर्षि संवर्तजी करुणाकी मूर्ति हैं और प्राणिरक्षा तथा सभी जीवोंके कल्याणमें निरत रहते हैं, अतः इस उत्तम अहिंसा-धर्मरूपी उपदेशको उन्होंने सभीके लिये मुख्य कर्तव्य निर्दिष्ट किया है।

(२) सुवर्णदान, पृथ्वीदान एवं गोदान—अभयदानके साथ ही महर्षि संवर्तजीने सुवर्णदान, पृथ्वीदान तथा गोदानकी भी विशेष महिमा निरूपित की है। वे कहते हैं—अग्निका प्रथम पुत्र सुवर्ण हुआ, इसलिये वह अग्निके समान ही प्रतप्त दिखायी देता है और अग्निके समान ही पवित्र भी है, इसी प्रकार पृथ्वी भगवान् विष्णुकी शक्ति और पत्नी कही गयी है (एक पृथु-अवतारमें पुत्री कही गयी हैं) तथा गायें भगवान् सूर्यकी पुत्री (सूर्यसुता) मानी गयी हैं। ये तीनों ही अत्यन्त अलौकिक एवं दिव्य पदार्थ हैं, जिनके दान करनेसे दाताको तीनों लोकोंके दान करनेका पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है। महर्षिजीके मूल वचन इस प्रकार हैं—

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं
भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः।
लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता
यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात्॥

(श्लोक ७४)

महर्षि संवर्तजीने गोदानके विषयमें सुवर्णशृंगी, रौप्यखुरी, वस्त्रालंकारोंसे सुसज्जित,सुलक्षणा, सवत्सा पयस्विनी गौके दानका निर्देश किया है। इस प्रकारकी गौका दान करनेसे गोदाता गौके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने हजार गुने वर्षोंतक ब्रह्मलोकमें निवास करता है—

यो ददाति शफै रौप्यैर्हेमशृंगीमरोगिणीम्।
सवत्सां वाससा वीतां सुशीलां गां पयस्विनीम्॥
तस्यां यावन्ति रोमाणि सवत्सायां दिवं गतः।
तावद्वर्षसहस्राणि स नरो ब्रह्मणोऽन्तिके॥

(श्लोक ७७-७८)

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि महर्षि संवर्त धर्मात्मा, पुण्यात्मा होनेके साथ ही गौमाताके भी अनन्य उपासक थे।

(३) अन्नदान—महर्षि संवर्तजीने अन्नदानकी भी बहुत महिमा वर्णित की है; क्योंकि अन्नके आधारपर ही संसारके सभी प्राणी जीवित और प्रतिष्ठित रहते हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि प्रत्येक कल्पमें सृष्टिके

आरम्भमें भगवान् अन्नकी सृष्टि करते हैं और उसी अन्नसे प्रजा जीवित और अनुप्राणित होती है, अतः अन्नदानसे बढ़कर न तो पहले कोई दान हुआ है और न आगे होनेवाला है। यह अन्न ही प्राणियोंका प्राण एवं क्रियाशक्ति आदि सब कुछ है। इसलिये अन्नदान अवश्य करना चाहिये—

सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम्।
सर्वेषामेव जन्तूनां यतस्तज्जीवितं फलम्॥
यस्मादन्नात् प्रजाः सर्वाः कल्पे कल्पेऽसृजत् प्रभुः।
तस्मादन्नात् परं दानं न भूतो न भविष्यति॥
अन्नदानात् परं दानं विद्यते न हि किञ्चन।
अन्नाद् भूतानि जायन्ते जीवन्ति न च संशयः॥

(श्लोक ८१—८३)

(४) विद्यादान—विद्यादान, ज्ञानदान एवं दिव्य तत्त्वकी प्राप्ति—ये तीनों एक ही वस्तु हैं। इसी दृष्टिसे महर्षि संवर्तजीने विद्यादानकी अतीव महिमा बतायी है; क्योंकि विद्याके बिना सारा संसार मोहान्धकारमें डूबा रहता है और व्यक्तिका जीवन धारण करना या न करना एक समान ही होता है। विद्यावान् एवं ज्ञानवान्का ही जीवन सफल होता है। अतः विद्यादान करनेका महान् पुण्यफल प्राप्त होता है। इसीलिये ऋषि-मुनियोंने संसारके कल्याणकी कामनासे योगशक्तियों एवं तपः-शक्तियोंसे प्राप्त अपने दिव्य ज्ञानको ग्रन्थोंके रूपमें उपनिबद्ध कर दिया है, यह उनकी संसारपर अपार कृपा है। विद्याके दानसे शुद्धज्ञानस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है और दाता ब्रह्मलोकमें अनन्तकालतक प्रतिष्ठित होता है—

'विद्यादानेन पुण्येन ब्रह्मलोके महीयते॥'

(श्लोक ८९)

इस प्रकार विद्याके दानसे दाता और प्रतिग्रहीता दोनोंका परम कल्याण हो जाता है।

दानके विषयमें बड़े ही महत्त्वकी बात बताते हुए संवर्तजी कहते हैं कि दानका पुण्यफल अक्षय तभी होता है, जब उसकी चर्चा न की जाय। प्रायः लोग दान देकर उसका प्रचारकर अपनेको दाता सिद्ध करना चाहते हैं, इससे न केवल दान निष्फल होता है, अपितु दाताका भी कोई अभ्युदय नहीं होता। संवर्तजीके मूल वचनमें बताया गया है कि झूठ बोलनेसे यज्ञ नष्ट हो जाता है, अभिमानसे तपस्या नष्ट होती है, ब्राह्मणकी निन्दा करनेसे आयुका नाश हो जाता है और दान देनेकी बात कहनेसे दान नष्ट हो जाता है—

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात्।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात्॥

(श्लोक ९६)

महामुनि सारस्वतकी दाननिष्ठा

प्राचीन समयकी बात है, कात्यायन नामके एक मुनि थे, जिन्होंने बहुत-से धर्मोंका श्रवण करके उनका सारतत्त्व जाननेकी इच्छासे एक अँगूठेके बलपर खड़े हो सौ वर्षोंतक तपस्या की। तदनन्तर दिव्य आकाशवाणी हुई—कात्यायन! तुम परम पवित्र सरस्वती नदीके तटपर जाकर सारस्वत मुनिसे पूछो। सारस्वतमुनि धर्मके तत्त्वको जाननेवाले हैं। वे तुम्हें सारभूत धर्मका उपदेश करेंगे।

यह सुनकर मुनिवर कात्यायन मुनिश्रेष्ठ सारस्वतके पास गये और भूमिपर मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम करके अपने मनकी शंका इस प्रकार पूछने लगे—महर्षे! कोई सत्यकी प्रशंसा करते हैं, कुछ लोग तप और शौचाचारकी महिमा गाते हैं, कोई सांख्य (ज्ञान)-की सराहना करते हैं, कुछ अन्य लोग योगको महत्त्व देते हैं, कोई क्षमाको श्रेष्ठ बतलाते हैं, कोई इन्द्रिय-संयम और सरलताको, कोई मौनको सर्वश्रेष्ठ कहते हैं, कोई शास्त्रोंके स्वाध्यायकी तो कोई सम्यक् ज्ञानकी प्रशंसा करते हैं, कोई वैराग्यको उत्तम बताते हैं और दूसरे लोग मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समभाव रखते हुए आत्मज्ञानको ही सबसे उत्तम समझते हैं। कर्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें प्रायः लोकको यही स्थिति है। अतः सबसे श्रेष्ठ क्या है? यह विचार करनेवाले मनुष्य बहुधा मोहको ही प्राप्त होते हैं। मुने! आप सर्वज्ञ हैं, ऊपर बताये हुए कार्योंमें जो

सर्वोत्तम, महात्मा पुरुषोंके द्वारा भी अनुष्ठान करनेयोग्य तथा सब पुरुषार्थोंका साधक हो, वह मुझे बतानेकी कृपा करें।

सारस्वत बोले—ब्रह्मन्! माता सरस्वतीने मुझे जो कुछ बतलाया है, उसके अनुसार मैं सारतत्त्वका वर्णन करूँगा, सुनो, यह सम्पूर्ण जगत् छायाकी भाँति उत्पत्ति और विनाशरूप धर्मसे युक्त है। धन, यौवन और भोग जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाकी भाँति चंचल हैं। यह जानकर और इसपर भलीभाँति विचार करके भगवान् शंकरकी शरणमें जाना चाहिये और दान भी करना चाहिये। किसी भी मनुष्यको कदापि पाप नहीं करना चाहिये, यह वेदकी आज्ञा है। श्रुति यह भी कहती है कि महादेवजीका भक्त जन्म और मृत्युके बन्धनमें नहीं पड़ता। पूर्वकालमें सावर्णि मुनिने जो गाथाएँ गान की हैं, उन्हें सुनो—भगवान् धर्मका नाम वृष है। वे ही जिनके वाहन हैं, उन महादेवजीकी यदि पूजा की जाती है, तो वही सबसे महान् धर्म कहा गया है। संसारसमुद्रमें डूबनेवाले जीवोंको केवल भगवान् शंकर ही पार लगाते हैं। दान, सदाचार, व्रत, सत्य और प्रिय वचन, उत्तम कीर्ति, धर्मपालन तथा आयुपर्यन्त दूसरोंका उपकार—इन सार वस्तुओंका इस असार शरीरसे उपार्जन करना चाहिये। राग हो तो धर्ममें, चिन्ता हो तो शास्त्रकी, व्यसन हो तो दानका—ये सभी बातें उत्तम हैं। इन सबके साथ यदि विषयोंके प्रति वैराग्य हो जाय तो समझना चाहिये, मैंने जन्मका फल पा लिया।* इस भारतवर्षमें मनुष्यका शरीर, जो सदा टिकनेवाला नहीं है, पाकर जो अपना कल्याण नहीं कर लेता, उसने दीर्घकालतकके लिये अपने आत्माको धोखेमें डाल दिया। देवता और असुर सबके लिये मनुष्ययोनिमें जन्म लेनेका सौभाग्य अत्यन्त दुर्लभ है। उसे पाकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे नरकमें न जाना पड़े। यह मानवशरीर सर्वस्वसाधनका मूल है तथा सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला है। इसी शरीरमें रहकर यतिजन परलोकके लिये तप करते हैं, यशकर्ता होम करते हैं और दाता पुरुष आदरपूर्वक दान देते हैं।

कात्यायनने पूछा—सारस्वतजी! दान और तपस्यामें कौन दुष्कर है तथा कौन परलोकमें महान् फल देनेवाला है, यह बतलाइये।

सारस्वतने कहा—मुने! इस पृथ्वीपर दानसे बढ़कर अत्यन्त दुष्कर कोई कार्य नहीं है। यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। सभी लोग इसके साक्षी हैं। मनुष्य धनके लिये महान् लोभ होनेके कारण अपने प्यारे प्राणोंका भी मोह छोड़कर महाभयंकर समुद्र, जंगल और पहाड़ोंमें प्रवेश कर जाते हैं। दूसरे लोग धनके ही लोभसे सेवा-जैसी निन्दित वृत्तिका आश्रय लेते हैं,जिसे कुत्तेकी वृत्तिके समान त्याज्य माना गया है। कुछ लोग खेतीकी वृत्ति अपनाते हैं, जिसमें प्रायः जीवोंकी हिंसा होती है और स्वयंको भी बहुत क्लेश उठाने पड़ते हैं। इस प्रकार जो बड़े दुःखसे उपार्जन किया गया, सैकड़ों आयास-प्रयाससे प्राप्त किया गया, प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, उस धनका त्याग अत्यन्त दुष्कर है। मनुष्य अपने हाथसे उठाकर जो धन दूसरेको देता है अथवा जिसे वह खा-पीकर भोग लेता है, वही धन वास्तवमें उस धनीका है। मरे हुए मनुष्यके धनसे तो दूसरे लोग मौज करते हैं। जो प्रतिदिन अपने पास आकर याचना करता है, मैं उसे गुरु मानता हूँ; क्योंकि वह नित्यप्रति दर्पणकी भाँति मेरे चित्तका मार्जन करके इसे स्वच्छ बनाता है। दिया जानेवाला धन घटता नहीं, अपितु सदा बढ़ता ही रहता है। ठीक उसी प्रकार, जैसे कुएँसे पानी उलीचनेपर वह शुद्ध और अधिक जलवाला होता है। एक जन्मके सुखके लिये सहस्रों जन्मोंके सुखोंपर पानी नहीं फेरना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष एक ही जन्ममें इतना पुण्य संचय कर लेता है, जो सहस्रों जन्मोंके लिये पर्याप्त होता है। मूर्ख मनुष्य इस लोकमें दरिद्र हो जानेकी आशंकासे अपने धनका दान नहीं करता, परंतु विद्वान् पुरुष परलोकमें दरिद्र न होना पड़े, इस शंकासे यहाँ खुले हाथों धन बाँटता है। जिनका आश्रय ही नाशवान् है, वे मनुष्य धन रखकर क्या करेंगे? जिसके लिये वे धन चाहते हैं, वह शरीर सदा रहनेवाला नहीं है। लोगोंने पहलेसे जो नास्ति-नास्ति (नहीं है, नहीं है)—इन दो अक्षरोंका अभ्यास कर रखा है, उसकी जगह यह देहि-देहि

* दानं वृत्तं व्रतं वाचः कीर्तिर्धर्मस्तथायुषः। परोपकरणं कायादसारात् सारमुद्धरेत्॥
धर्मे रागः श्रुतौ चिन्ता दाने व्यसनमुत्तमम्। इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं सम्प्राप्तं जन्मनः फलम्॥ (स्क० मा० कुमार० २। ४७-४८)

(दो-दो)—इन दो अक्षरोंका प्रस्ताव विपरीत जान पड़ता है। याचकजन 'देहि' (दीजिये) कहकर याचना नहीं करते, अपितु कृपण मनुष्यको यह समझाते हैं कि 'दान न करनेवालेकी यही (मेरी-जैसी) अवस्था होती है। अतः आप भी ऐसे न बनें। याचक दाताका उपकार करनेके लिये ही उसके सामने 'देहि' (दीजिये) कहकर याचना करता है; क्योंकि दाता तो ऊपरके लोकोंमें जाता है और दान लेनेवाला नीचे ही रह जाता है। जो दान नहीं करते, वे दरिद्र, रोगी, मूर्ख तथा सदा दूसरोंके सेवक होकर दुःखके ही भागी होते हैं। जो धनवान् होकर दान नहीं करता और दरिद्र होकर कष्ट-सहनरूप तपसे दूर भागता है, इन दोनोंको गलेमें बड़ा भारी पत्थर बाँधकर जलमें छोड़ देना चाहिये। सैकड़ों मनुष्योंमें कोई शूरवीर हो सकता है, सहस्त्रोंमें कोई पण्डित भी मिल सकता है तथा लाखोंमें कोई वक्ता भी निकल सकता है, परंतु इनमें एक भी दाता हो सकता है या नहीं, इसमें सन्देह है। गौ, ब्राह्मण, वेद, सती स्त्री, सत्यवादी पुरुष, लोभहीन तथा दानशील मनुष्य—इन सातोंके द्वारा ही यह पृथ्वी धारण की जाती है।*

उशीनर देशके राजा शिबि अपने शरीरका दान देकर स्वर्गलोकमें चले गये। विदेहनरेश निमिने अपना सम्पूर्ण राज्य, परशुरामजीने सारी पृथ्वी तथा राजा गयने नगरोंसहित समूची पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी। एक समय जब बहुत दिनोंतक मेघोंने वर्षा नहीं की, तब वसिष्ठजीने सब प्राणियोंको उसी प्रकार जीवित रखा, जैसे प्रजापति समस्त प्रजाके जीवनकी रक्षा करते हैं। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पांचालनरेश ब्रह्मदत्तने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको शंख निधि प्रदान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया। ये तथा और भी बहुत-से राजर्षि, जो शान्तचित्त और जितेन्द्रिय थे, दान तथा शिवभक्तिके प्रभावसे रुद्रलोकमें गये। जबतक यह पृथ्वी टिकी रहेगी, तबतक इन सबकी कीर्ति स्थिर है। ऐसा विचार करके तुम सारभूत धर्मके अभिलाषी होकर भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये सदा दान करते रहो।

यह उपदेश सुनकर कात्यायन भी मोह त्यागकर वैसे ही हो गये।

गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि। अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि॥
आत्मायत्तं धनं यावत् तावद्विप्रं समर्पयेत्। पराधीने धने जाते न किञ्चिद्वक्तुमुत्सहेत्॥

दानरूपी पाथेयको लेकर जीव (परलोकके)-महामार्गमें सुखपूर्वक जाता है, अन्यथा (दानरूपी) पाथेयरहित प्राणीको यममार्गमें क्लेश प्राप्त होता है।

जबतक धन अपने अधीन है। तबतक ब्राह्मणको दान कर दें; क्योंकि धन दूसरेके अधीन (पराया) हो जानेपर तो दान देनेके लिये कहनेका उत्साह (साहस) भी नहीं होगा।

---

* अहन्यहनि याचन्तमहं मन्ये गुरुं तथा। मार्जनं दर्पणस्येव यः करोति दिने दिने॥
दीयमानं हि नापैति भूय एवाभिवर्धते। कूप उत्सिच्यमानो हि भवेच्छुद्धो बहूदकः॥
एकजन्मसुखस्यार्थे सहस्राणि न लोपयेत्। प्राज्ञो जन्मसहस्रेषु सञ्चिनोत्येकजन्मनि॥
मूर्खो हि न ददात्यर्थानिह दारिद्र्यशङ्कया। प्राज्ञस्तु विसृजत्यर्थानमुत्र तस्य शङ्कया॥
किं धनेन करिष्यन्ति देहिनो भङ्गुराश्रयाः। यदर्थं धनमिच्छन्ति तच्छरीरमशाश्वतम्॥
अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्ति नास्तीति यत्पुरा। तदिदं देहि देहीति विपरीतमुपस्थितम्॥
बोधयन्ति न याचन्ते देहीति कृपणं जनाः। अवस्थेयमदानस्य माभूदेवं भवानपि॥
दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थीति देहि मे। यस्माद्दाता प्रयात्यूद्र्ध्वमधस्तिष्ठेत् प्रतिग्रही॥
दरिद्रा व्याधिता मूर्खाः परप्रेष्यकराः सदा। अदत्तदाना जायन्ते दुःखस्यैष हि भाजनाः॥
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्। उभावम्भसि मोक्तव्यौ गले बद्ध्वा महाशिलाम्॥
शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः। वक्ता शतसहस्रेषु दाता जायेत वा न वा॥
गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः। अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥ (स्क० मा० कुमा० २। ६०—७१)

राजर्षि रन्तिदेवकी दानशीलता और अतिथिसेवा

प्राचीनकालकी बात है, रघुवंशमें संकृति नामके एक महाराजा हो गये हैं, उनके दो पुत्र थे—गुरु और रन्तिदेव। रन्तिदेव दया एवं उदारताके अवतार ही थे। अपने कष्टोंकी परवा न करके दूसरोंके कष्टोंको स्वयं झेलकर दु:खितोंको सुखी बनाना, दीनोंपर दया करना—यह महापुरुषोंका काम है। महाराज रन्तिदेवका नाम ऐसे महापुरुषोंमें सर्वप्रथम लिया जाता है, वे प्राणिमात्रके दु:खोंको स्वयं सहना चाहते थे। ऐसे उदार एवं दानी कि उनके द्वारसे कभी कोई विमुख होकर नहीं लौटा।

राजर्षि रन्तिदेवने महान् तपके द्वारा देवराज इन्द्रकी आराधनाकर उनसे यह वर माँगा कि हमारे पास अन्न बहुत हो, हम सदा अतिथियोंकी सेवाका अवसर प्राप्त करें, हमारी श्रद्धा दूर न हो और हम किसीसे कुछ भी न माँगें—

अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
श्रद्धा च नो मा व्यगमन्मा च याचिष्म कंचन॥

(महा०शान्ति० २९। १२१)

उनको ऐसा वरदान प्राप्त भी हुआ, फलतः उनके राजकोषमें अक्षय धन-सम्पत्ति आ गयी, लेकिन उन्हें कभी भी राज्यका, धनका मद नहीं हुआ। ब्राह्मणोंको दान देना, याचकोंको सन्तुष्ट करना तथा अतिथियोंकी सेवा करना—ये उनके पावन चरित्रके तीन प्रमुख अंग थे।

महाभारतमें वर्णन आया है कि राजा रन्तिदेवके यहाँ दो लाख रसोइये थे, जो घरपर आये ब्राह्मण अतिथियोंको अमृतके समान उत्तम अन्न दिन-रात परोसते थे। उन्होंने चारों वेदोंका अध्ययन करके धर्मके द्वारा समस्त राजाओंको अपने वशमें कर लिया और ब्राह्मणोंको न्यायपूर्वक प्राप्त हुए धनका प्रचुर मात्रामें श्रद्धापूर्वक दान दिया। राजा रन्तिदेव एक दिनमें सहस्रों कोटि निष्क*का दान करके भी यह खेद प्रकट किया करते थे कि आज मैंने बहुत कम दान दिया। ऐसा सोचकर वे पुनः दान देते, भला दूसरा कौन इतना दान दे सकता है—

अल्पं दत्तं मयाद्येति निष्ककोटिं सहस्रशः।
एकाह्ना दास्यति पुनः कोऽन्यस्तत् सम्प्रदास्यति॥

(महा०द्रो० ६७। ६)

रन्तिदेव जो-जो भी वस्तुएँ दानमें देते थे, वे सब
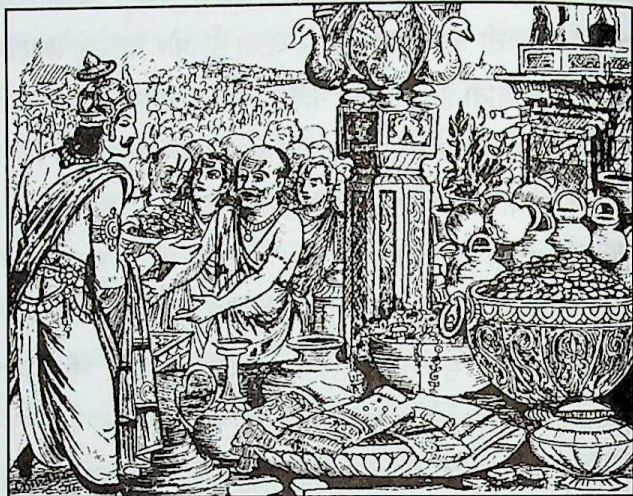
सुवर्णमय होती थीं—**'सर्वं सौवर्णमेवासीद् रन्तिदेवस्य धीमतः'** (महा०द्रो० ६७। ११)।

धर्मात्मा राजर्षि रन्तिदेवकी अलौकिक समृद्धि और दानशीलताको देखकर उनके विषयमें निम्न गाथा प्रसिद्ध हो गयी—

नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्वपि॥

(महा०द्रो० ६७। १३)

अर्थात् हमने कुबेरके भवनमें भी पहले कभी ऐसा—रन्तिदेवके समान—भरा-पूरा धनका भण्डार नहीं देखा है, फिर मनुष्योंके यहाँ तो हो ही कैसे सकता है?

इस प्रकार महाराज रन्तिदेव प्रभूत धनराशि नित्य दान किया करते थे। उनके उदार चरित, तप, सत्कर्मानुष्ठान, आतिथ्य तथा दानधर्मकी ऐसी महिमा थी कि उनके यज्ञमें देवता, पितृगण साक्षात् उपस्थित होकर हव्य-कव्य ग्रहण करते थे। उदारचेता राजर्षि रन्तिदेवका प्रातः-सायं नाम-स्मरण करनेसे अमंगल दूर होता है और सब प्रकारके मंगलकी प्राप्ति होती है। (महा०अनु० १५०। ५१)

* एक हजार सुवर्णके बैल, प्रत्येकके पीछे-पीछे सौ-सौ गाएँ और एक सौ आठ स्वर्णमुद्राएँ—इतने धनको एक निष्क कहते हैं—
सहस्रशश्च सौवर्णान् वृषभान् गोशतानुगान्। साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा॥ (महा०द्रो० ६७। ८)

महाराज रन्तिदेवके समयमें प्रजा सब प्रकारसे सुखी थी। वे राज्यमें किसीको कष्टमें देखकर स्वयं उसका कष्ट ग्रहण करनेके लिये सदा तत्पर रहते थे। उनकी दानशीलता, उदारता तथा सर्वहितैषिताके भावने सर्वत्र सुख-शान्तिका साम्राज्य बिछा रखा था, किंतु दैवयोगसे कब क्या हो जाता है, कोई नहीं जानता। समयने पलटा खाया और अचानक देशमें अनावृष्टिसे अकाल पड़ गया। रन्तिदेवने अपना सम्पूर्ण राज्यकोष, अन्नागार आदि सब क्षुधा-पीड़ितोंकी सेवामें व्यय कर दिया। अन्तमें अवस्था ऐसी आ गयी कि स्वयं रन्तिदेव तथा उनके परिवारके भोजनके लिये दो मुट्ठी अन्न भी राजसदनमें नहीं रह गया।

क्षत्रिय भिक्षा माँग नहीं सकता और माँगनेपर देता भी कौन? सब वैसे ही अन्नाभावसे पीड़ित थे। राजाने स्त्री-पुत्रको साथ लेकर चुपचाप राजसदन छोड़ दिया। जनहीन मार्गसे वे निकल पड़े। वनके कंद, मूल, पत्ते अथवा बिना माँगे कोई कुछ दे दे तो उससे उदर-ज्वाला शान्त करनी थी। लेकिन जब देशमें सब भूखों मर रहे हों, वनके कंद-मूल या पत्ते क्या बच पाते हैं? वृक्षोंकी छालतक तो छीनकर मनुष्य खा जाते हैं अकालके समय।

वनमें न कंद थे न फल। पत्तेतक नहीं थे। प्याससे सूखते कण्ठको सींचनेके लिये दो बूँद पानी मिलना कठिन हो गया और यह असह्य अवस्था एक-दो दिन नहीं, पूरे अड़तालीस दिन चलती रही। सुकुमार राजकुमार एवं महारानी, स्वयं रन्तिदेवके शरीरमें हिलने-चलनेकी शक्ति नहीं रही। अब तो ये तीनों भगवद्-विश्वासी प्राणी भगवान्‌का स्मरण करते हुए अन्तिम समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

भगवान्‌की लीला भी अद्भुत है। उनचासवाँ दिन आया और सूर्योदयके कुछ ही काल पश्चात् एक परिचित व्यक्तिने आकर रन्तिदेवको आदरपूर्वक खीर, मालपुए और जल निवेदित किया। अड़तालीस दिनसे भूखे प्राणियोंको इतना स्वादिष्ट भोजन मिल जाय तो उनके मनकी क्या दशा होगी, आप अनुमान कर सकते हैं। लेकिन रन्तिदेव सामान्य मनुष्य नहीं थे कि उनके चित्तकी स्थितिका अनुमान सामान्य मनुष्य कर सके।

जब जल दुर्लभ हो, स्नानका प्रश्न ही नहीं उठता था। मानसिक स्नान, मानसिक सन्ध्या, तर्पण एवं पूजन ही सम्भव था और यह चलता था। आया आहार एवं जल भगवान्‌को अर्पित करनेके पश्चात् रन्तिदेवके मनमें आया—जीवनमें आज प्रथम बार क्या अतिथिको भोजन कराये बिना स्वयं भोजन करना पड़ेगा?

ठीक उसी समय सुनायी पड़ा—राजन्! मैं बहुत क्षुधातुर हूँ। एक ब्राह्मण अतिथि आ पहुँचे थे। रन्तिदेवको लगा कि स्वयं भगवान् उनकी इच्छा पूर्ण करने आये हैं। बड़ी श्रद्धासे उन्हें भोजन कराया। तृप्त होकर आशीर्वाद देकर वे ब्राह्मण विदा हुए।

ब्राह्मणके जानेपर अन्नका भाग स्त्री-पुत्रको देकर रन्तिदेव स्वयं भोजन करने ही जा रहे थे कि एक शूद्र अतिथि आ गया। उसे भी आदरपूर्वक भोजन कराया राजाने। लेकिन उसके पीठ फेरते ही कई कुत्तोंके साथ एक चाण्डाल आ पहुँचा और बोला—मैं और मेरे कुत्ते भूखसे मर रहे हैं।

जो भी अन्न बचा था, सब बड़े सम्मानसे रन्तिदेवने उस चाण्डाल तथा उसके कुत्तोंको खिला दिया। वे सब भी तृप्त होकर विदा हुए। लेकिन अब बचा था थोड़ा-सा जल और उसको पीकर ही प्राणरक्षा सम्भव थी। राजा उसे पीने ही जा रहे थे कि एक श्वपचकी बड़ी कातर पुकार कानोंमें पड़ी—मैं प्याससे मर रहा हूँ, मुझ अशुभ मनुष्यको कृपा करके दो चुल्लू जल दीजिये!

महाराज रन्तिदेवके प्राण भी कण्ठगत ही थे, किंतु अपना कष्ट उनके ध्यानमें नहीं आया। उनके मुखसे निकला—

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

(श्रीमद्भा० ९। २१। १२)

हे जगत्‌के स्वामी! हे परमेश्वर! मैं अपनी सद्गति, अष्टसिद्धि या मोक्ष नहीं चाहता। मुझे सब प्राणियोंके हृदयमें निवास करके उनके सब दुःख भोग लेनेकी

सुविधा दो, जिससे सब प्राणी दुःखहीन हो जायँ!

दैव! मुझे ही सब दुख दे दे, जगजन सारे सुख पायें।
जो कुछ उनके कलुष-भोग हों, इस जनके माथे आयें॥

श्वपच संकोचसे पिपासाकी दुर्बलतासे दूर ही रह गया था। रन्तिदेव किसी प्रकार उठे। जलपात्र उठाया। उसके समीप गये। बोले—भाई! तुम भली प्रकार जल पीकर अपने प्राणोंकी तृप्ति करो।

उनका हृदय कुछ ऐसी ही बात दुहरा रहा था—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

मुझे फिर राज्य प्राप्त हो जाय, यह मैं नहीं चाहता। देह छूटनेपर स्वर्ग जाऊँ अथवा जन्म-मरणसे छूट जाऊँ, यह भी मेरी इच्छा नहीं है। मैं दुःखसे सन्तप्त प्राणियोंका कष्ट दूर हो, केवल यही चाहता हूँ।

क्षुत्तृट् श्रमो गात्रपरिश्रमश्च
दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः।
सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तो-
र्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥

(श्रीमद्भा० ९। २१। १३)

सर्वव्यापी भगवान् नारायण! इस जीवनकी लालसासे व्याकुल प्राणीके रूपमें तुम्हीं मेरे सम्मुख हो। यह जल मैं तुम्हींको अर्पण कर रहा हूँ। जीनेकी इच्छासे व्याकुल इस प्राणीको जल देनेसे मेरी क्षुधा, मेरी पिपासा, मानसिक तथा शारीरिक श्रम, दीनता, खिन्नता, विषाद, मूर्च्छा आदि सब दुःख दूर हो गये।

महाराज रन्तिदेवने चाण्डालको सारा जल पिला दिया। उसकी तृषा मिट गयी और वह सन्तुष्ट होकर चला गया। उसके जाते ही रन्तिदेव लड़खड़ाकर गिरे; किंतु उन्हें किन्हीं कोमल करोंने सँभाल लिया। आश्चर्यसे नेत्र खोलकर उन्होंने देखा—हंसवाहन चतुर्मुख अरुणवर्ण सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, गरुड़ासीन चतुर्भुज नवघनश्याम भगवान् श्रीहरि, कर्पूरगौर वृषभारूढ़ चन्द्रशेखर नीलकण्ठ भगवान् गंगाधर और महिषपर बैठे दण्डधर यमराज सम्मुख उपस्थित हैं।

महाराज! आप अपने अतिथियोंको पहचाननेमें भूल नहीं करते! मन्दस्मितपूर्वक श्रीनारायणने कहा। ब्राह्मण, शूद्र, कुत्तोंसे घिरे आखेटक तथा श्वपचमें भी जो उन नारायणका ही दर्शन करते थे, उनके यहाँ इन रूपोंमें वे सर्वव्यापक ही पधारे और फिर अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो गये—इसमें रन्तिदेवको कहाँ चकित होना था।

महाराज रन्तिदेवके अथवा उनके परिवारके उद्धारकी चर्चा करना व्यर्थ है। रन्तिदेवके जो अनुयायी सेवक एवं प्रजावर्गके लोग थे, वे सब अपने नरेशके प्रभावसे परम योगी हो गये। यह भारतकी ही महिमा है कि यहाँ ऐसे-ऐसे आतिथ्यधर्मी, दानशील, सर्वहितैषी, प्रजापालक और परदुःखकातर राजर्षि हो चुके हैं। इन्हींके बलपर धरती-माताकी प्रतिष्ठा बनी हुई है।

पितामह भीष्मकी दानतत्त्वमीमांसा

भगवान्‌के प्रेमी भक्तों तथा भागवद्धर्म जाननेवालोंमें पितामह भीष्मका श्रेष्ठ स्थान है, इसीलिये परम भागवतोंमें गणनाकर उनकी वन्दना की गयी है—

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान्नमामि॥

पितामह भीष्मका चरित्र सभी दृष्टियोंसे परम पवित्र और आदर्श है। प्रतिज्ञाबद्ध होनेके कारण उनके संतान नहीं हुई, तथापि वे समस्त जगत्‌के पितामह हैं, इसीलिये नित्य किये जानेवाले तर्पणके समय उन्हें निम्न मन्त्रसे श्रद्धापूर्वक जलांजलि दी जाती है—

वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च।
अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मणे॥

महात्मा भीष्म प्रसिद्ध कुरुवंशी महाराज शान्तनुके पुत्र थे। ये गंगादेवीसे उत्पन्न हुए थे। वसु नामक देवताओंमें 'द्यौ' नामके वसु ही वसिष्ठके शापसे भीष्मके रूपमें अवतीर्ण हुए, ये ही बचपनमें देवव्रत नामसे प्रसिद्ध

थे। इन्होंने कुमारावस्थामें ही सांगोपांग वेदोंका अध्ययन तथा अस्त्रोंका अभ्यास कर लिया था। अस्त्रोंका अभ्यास करते समय एक बार इन्होंने अपने बाणोंके प्रभावसे गंगाकी धाराको ही रोक दिया था। ये महान् पितृभक्त थे, पिता शान्तनुकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये इन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करनेका व्रत ले लिया। उनकी ऐसी कठिन प्रतिज्ञाके कारण भीष्म-प्रतिज्ञा सदाके लिये प्रसिद्ध हो गयी और देवव्रत भीष्मके नामसे प्रसिद्ध हो गये। भीष्मका यह दुष्कर कार्य देख पिता राजा शान्तनु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इन्हें इच्छामृत्युका वरदान दिया।

भीष्मजीने परशुरामजीसे धनुर्वेद सीखा था। जब परशुरामजी काशिराजकी कन्या अम्बाकी प्रार्थना मानकर भीष्मके पास आये और कहने लगे, तुम उस कन्यासे विवाह कर लो तब भीष्मजीने बड़ी नम्रतासे अपनी प्रतिज्ञाकी बात बतायी। परशुरामजीने बहुत आग्रह किया और भय भी दिखाया, यहाँतक कि अन्तमें युद्धकी बात आ गयी। बड़ा ही उग्र संग्राम हुआ। ऋषियोंने भीष्मजीको युद्धसे विरत होनेको कहा, किंतु भीष्मजीने क्षात्रधर्मकी रक्षाकी बात की। अन्तमें देवताओंके कहनेपर परशुरामजीको ही मानना पड़ा। भीष्मजीका व्रत अटल रहा।

महाभारतके अठारह दिनोंके युद्धमें दस दिनतक पितामह भीष्म ही सेनानायक रहे। आश्रयदाताकी सहायता करना धर्म है—यह समझकर ही भीष्मजीने महाभारतके युद्धमें दुर्योधनका पक्ष लिया, किंतु वे सदा धर्म एवं न्यायकी ही विजय हो—यही चाहते रहे। जब युद्धमें उनको जीतना पाण्डव पक्षके लिये असम्भव हो गया तब उन्होंने अपनी मृत्युका उपाय स्वयं बताया और युधिष्ठिरको अपने वधकी आज्ञा दी। महाभारतके युद्धमें श्रीकृष्णने शस्त्र-ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा की थी, किंतु भीष्मजीने अर्जुनको अपनी बाण-वर्षासे जब व्याकुल कर दिया तो भक्तवत्सल भगवान्‌को रथका पहिया लेकर भीष्मकी ओर दौड़ना पड़ा। उस समय भगवान्‌का जो स्वरूप था, जो छवि थी, उसपर भीष्म मुग्ध हो गये, भीष्मके हृदयमें भगवान्‌की यह छवि बस गयी।

महाभारतका युद्ध समाप्त होनेपर जब युधिष्ठिरका अभिषेक हो गया तो वे एक दिन रात्रिमें भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और उन्हें प्रणामकर उनकी कुशल पूछी, तो उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। जब उन्होंने ध्यानसे देखा तो पता चला कि श्रीकृष्ण ध्यानस्थ हैं। उनका रोम-रोम पुलकित हो रहा है, कुछ क्षणोंके बाद युधिष्ठिरने पुनः पूछा—प्रभो! भला आप किसका ध्यान कर रहे हैं? भगवान्‌ने बताया कि शरशय्यापर पड़े हुए महात्मा भीष्म मेरा ध्यान कर रहे थे, उन्होंने मेरा स्मरण किया था, अतः मैं भी उनका ध्यान कर रहा था।

भगवान्‌ने फिर कहा—युधिष्ठिर! वेद एवं धर्मके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता, नैष्ठिक ब्रह्मचारी पितामह भीष्मके न रहनेपर जगत्‌के ज्ञानका सूर्य अस्त हो जायगा—**'अमुं च लोकं त्वयि भीष्म याते ज्ञानानि नङ्क्ष्यन्त्यखिलेन वीर।'** (महा० शान्ति० १५१। १७) अतः हे युधिष्ठिर! तुमको वहाँ चलकर उनसे उपदेश लेना चाहिये।

भगवान्‌के परामर्शसे युधिष्ठिर श्रीकृष्णके साथ

भाइयोंको लेकर वहाँ गये, जहाँ भीष्मजी शरशय्यापर पड़े थे, बड़े-बड़े ब्रह्मवेत्ता ऋषि-मुनि वहाँ पहलेसे उपस्थित थे। श्रीकृष्णचन्द्रने पितामहसे कहा—ये युधिष्ठिर बन्धुजनोंके शोकसे अपना शास्त्रज्ञान खो बैठे हैं, अतः आप युधिष्ठिरको यथार्थ उपदेश प्रदानकर इनका शोक दूर करें।

इसपर भीष्मजीने हाथ जोड़ते हुए कहा—मधुसूदन! बाणोंकी पीड़ासे मेरे मनमें बड़ी व्यथा है, सारा शरीर

शिथिल हो गया है, बुद्धि कुछ काम नहीं दे रही है, अतः मुझमें कुछ भी कहनेकी शक्ति नहीं रह गयी है, आप-जैसे गुरुके रहते भला दूसरेको उपदेश देनेका क्या अधिकार है!

भगवान्‌ने स्नेहपूर्ण वाणीमें कहा—गांगेय! आपके शरीरका क्लेश, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, क्षुधा-पिपासा, मोह आदि सब अभी नष्ट हो जायँ और आपके अन्तःकरणमें सब प्रकारके ज्ञानका स्फुरण हो, आप जिस विद्याका चिन्तन करेंगे, वह आपके चित्तमें प्रत्यक्ष हो जायगी। फिर आपकी बुद्धि किसी भी विषयमें कुण्ठित नहीं होगी—

न ते ग्लानिर्न ते मूर्च्छा न दाहो न च ते रुजा।
प्रभविष्यन्ति गाङ्गेय क्षुत्पिपासे न चाप्युत॥
ज्ञानानि च समग्राणि प्रतिभास्यन्ति तेऽनघ।
न च ते क्वचिदासक्तिर्बुद्धेः प्रादुर्भविष्यति॥

(महा० शान्ति० १५३। १६-१७)

भगवान्‌की कृपासे पितामहकी सारी पीड़ा दूर हो गयी। उनके हृदयमें भूत, भविष्य तथा वर्तमानका समस्त ज्ञान प्रकट हो गया। युधिष्ठिरके द्वारा विनयपूर्वक जिज्ञासा करनेपर उन्होंने बड़े ही विस्तारसे लगातार कई दिनोंतक आख्यान-उपाख्यानोंके माध्यमसे राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म, अध्यात्मज्ञान, धर्माधर्मका स्वरूप, सदाचार, आश्रमधर्म, वर्णधर्म, श्राद्धधर्म, दानधर्म, स्त्रीधर्म, गोमहिमा आदि अनेक महत्त्वके विषयोंपर उपदेश दिया, जो महाभारतके शान्तिपर्व और अनुशासनपर्वमें संग्रहीत है। प्रत्येकके लिये वह पठनीय, मननीय तथा अनुकरणीय है। भीष्मजीने युधिष्ठिरको भगवान् विष्णुका जो सहस्रनाम सुनाया था, भक्तोंमें उसका बड़ा ही आदर है। अनेक आचार्योंके उसपर भाष्य हैं, ऐसे ही भीष्मजीद्वारा की गयी भगवान्‌की स्तुति भीष्मस्तवराजके नामसे प्रसिद्ध है। भगवान्‌के माहात्म्य एवं प्रभावका ज्ञान जैसा भीष्मजीको था, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। वे आदर्श पितृभक्त, सत्यप्रतिज्ञ, महान् पराक्रमी ही नहीं थे, बल्कि शास्त्रोंके ज्ञाता, धर्म एवं ईश्वरको जाननेवाले तथा आचारमय जीवनकी पराकाष्ठा थे। वर्णाश्रम-धर्म तथा गृहस्थधर्मकी चर्याका उन्हें भलीभाँति ज्ञान था। सत्कर्मोंके अनुष्ठानपर इन्होंने सदा ही बल दिया है। अपने उपदेशमें इन्होंने दानकी बड़ी महिमा बतायी है, महाभारतका एक पर्व दानधर्मपर्वके नामसे विख्यात है, जो इन्हींके द्वारा युधिष्ठिरको सुनाया गया। यहाँ संक्षेपमें उसीका सार प्रस्तुत है—

दानके रहस्यका वर्णन करते हुए भीष्मजी कहते हैं युधिष्ठिर! दान महान् पुण्यकर्म है—'**दानं हि महती क्रिया॥**' (महा० अनु० ९। २६) जो दान देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर प्रतिज्ञा-भंग कर लेता है, वह अपने जीवनभर किये गये पुण्यकर्मोंके फलको नष्ट कर देता है और पापयोनि प्राप्त करता है। युधिष्ठिर! हमने सुना है कि 'जिसके भरण-पोषणका अपने ऊपर भार है, उस समुदायको कष्ट दिये बिना ही दाताको दान करना चाहिये।' जो पोष्यवर्गको कष्ट देकर या भूखे मारकर दान करता है, वह अपनेको नीचे गिराता है—

अपीडयन् भृत्यवर्गमित्येवमनुशुश्रुम।
पीडयन् भृत्यवर्गं हि आत्मानमपकर्षति॥

(महा० अनु० ३७। ३)

भीष्मजी बताते हैं कि दान करनेसे उत्तम यशकी प्राप्ति होती है—'**कीर्तिर्भवति दानेन।**' विविध दान-फलोंके विषयमें बताते हुए वे कहते हैं कि मन्दिरमें दीपकका प्रकाश दान करनेसे मनुष्यका नेत्र नीरोग होता है, दर्शनीय वस्तुओंका दान करनेसे मनुष्य स्मरण-शक्ति एवं मेधा प्राप्त करता है। गोदानकी तो भीष्मजीने अपार महिमा बतायी है, जलाशय बनाकर उसका दान भी अतुलनीय दान है। जल दुर्लभ पदार्थ है, परलोकमें तो उसका मिलना और भी कठिन है, जो जलदान करते हैं; वे ही वहाँ जलदानके पुण्यसे सदा तृप्त रहते हैं। जलदान करनेके लिये प्याऊ आदि लगाना चाहिये। युधिष्ठिर! स्थावर भूतोंकी छः जातियाँ बतायी गयी हैं—१. वृक्ष (बड़-पीपल आदि), २. गुल्म (कुश आदि), ३. लता (वृक्षपर फैलनेवाली बेल), ४. वल्ली (जमीनपर फैलनेवाली बेल), ५. त्वक्सार (बाँस आदि) तथा ६. तृण (घास आदि)—इनके लगानेसे लोकमें कीर्ति तथा बादमें उत्तम

शुभ फलकी प्राप्ति होती है।

युधिष्ठिर! सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देना, संकटके समयपर उनपर अनुग्रह करना, याचकको उसकी अभीष्ट वस्तु देना तथा प्यासेको पानी पिलाना उत्तम दान है। सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान—ये तीन पवित्र दान हैं, जो पापीको भी तार देते हैं। दान सदा श्रद्धासे, पवित्र और कर्तव्यबुद्धिसे ही देना चाहिये। श्रद्धापूर्वक दिया हुआ दान आत्मशुद्धिका सर्वोत्तम साधन बन जाता है—'**श्रद्धामास्थाय परमां पावनं ह्येतदुत्तमम्॥**' (महा० अनु० ६१।६)

तात! सब दानोंसे बढ़कर पृथ्वीदान (भूमिदान) बताया गया है; वस्त्र, रत्न, पशु और धान, जौ आदि नाना प्रकारके अन्न—इन सबको देनेवाली पृथ्वी ही है, अतः पृथ्वीका दान करनेवाला सबसे अधिक अभ्युदयशील होता है। भूमिके समान कोई दान नहीं है, माताके समान कोई गुरु नहीं है, सत्यके समान कोई धर्म नहीं है और दानके समान कोई निधि नहीं है—

नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति सत्यसमो धर्मो नास्ति दानसमो निधिः॥

(महा० अनु० ६२।९२)

भीष्मजी युधिष्ठिरको बताते हैं कि एक बार जब मैंने श्रीनारदजीसे सबसे बड़े दानके विषयमें पूछा तो उन्होंने बताया कि अन्नके सदृश न कोई दान था और न होगा—'**अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति।**' (महा० अनु० ६३।६) संसारमें अन्न ही शरीरके बलको बढ़ानेवाला है, अन्नके आधारपर ही प्राण टिके हुए हैं और इस जगत्‌को अन्नने ही धारण कर रखा है। अन्नमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है, अतः अन्नदान करना चाहिये। अन्नदान करनेवाला पुरुष प्राणदाता और सर्वस्व देनेवाला कहलाता है।

विविध दान—ब्रह्माजीने तिलोंको उत्पन्न किया है, वे पितरोंके सर्वश्रेष्ठ खाद्य-पदार्थ हैं। तिलदान करनेसे पितरोंको बड़ी प्रसन्नता होती है। माघमासमें जो तिलदान करता है, वह नरक नहीं देखता। वैशाखकी पूर्णिमाको तिलदान करे, तिल खाये और तिलोंका ही उबटन लगाये।

जो गृहदान करता है, वह उत्तम लोकमें सम्मानित होता है। गौओंके लिये जो गोशाला बनवाता है, वह अपनी सात पीढ़ियोंको तार देता है। गौओंकी भारी महिमा है। ये समस्त तपस्वियोंसे बढ़कर हैं। ये जगत्‌का उपकार करनेवाली हैं। इनके दानसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है। गौएँ सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता हैं, वे सबको सुख देनेवाली हैं, जो अपने अभ्युदयकी इच्छा रखता हो, उसे गौओंको सदा दाहिने करके चलना चाहिये—

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।
वृद्धिमाकांक्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः॥

(महा० अनु० ६९।७)

गोदान करनेवाले गोलोकमें निवास करते हैं।

अग्निसे सुवर्णकी उत्पत्ति है अतः यह सुवर्ण परम पवित्र तथा देवताओंका स्वरूप है। सुवर्ण-दानसे सभी देवताओंका दान हो जाता है। सुवर्ण अक्षय द्रव्य है। जो सूर्योदयके समय सुवर्णदान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

छाता और जूतादानकी परम्परा—युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ! श्राद्धकर्म तथा अन्य पुण्य अवसरोंपर जो छाता और जूतेका दान दिया जाता है, इसका रहस्य बतानेकी कृपा करें। इसपर भीष्मजीने कहा—राजन्! इस विषयमें महर्षि जमदग्नि तथा भगवान् सूर्यका एक प्राचीन संवाद उपलब्ध होता है, आप सुनें। एक बारकी बात है, भृगुनन्दन महर्षि जमदग्नि धनुष चलानेकी क्रीड़ा कर रहे थे। वे बारम्बार धनुषपर बाण रखकर चलाते और उन बाणोंको उनकी पत्नी रेणुका दूर-दूरसे ला-लाकर दिया करती थीं, ज्येष्ठ मासकी बात थी, बाण चलानेकी क्रीड़ा करते-करते दोपहर हो आयी, धूप बहुत तेज थी, देवी रेणुका वृक्षोंकी छायाका आश्रय लेकर जातीं और बीच-बीचमें ठहर भी जातीं; क्योंकि उनके सिर और पैर बहुत तप गये थे। देर होनेपर महर्षिने पूछा—रेणुके! तुम्हारे आनेमें इतनी देर क्यों हुई? तब रेणुकाने तेज धूपकी बात बता दी। इसपर महर्षि जमदग्नि सूर्यपर कुपित हो उठे और बोले—

आज ही इस सूर्यको मैं गिरा दूँगा। ऐसा कहकर वे धनुष-बाण लेकर सूर्यकी दिशामें खड़े हो गये। सूर्य भयभीत हो ब्राह्मण-वेशमें आकर उनके शरणागत हो गये, तब जमदग्नि बोले—शरणागतके वधसे पाप होता है, अतः हे सूर्य! तुम्हीं कोई उपाय सोचो, जिससे तुम्हारे तीव्र तापसे रक्षा हो सके, तब भगवान् सूर्यने
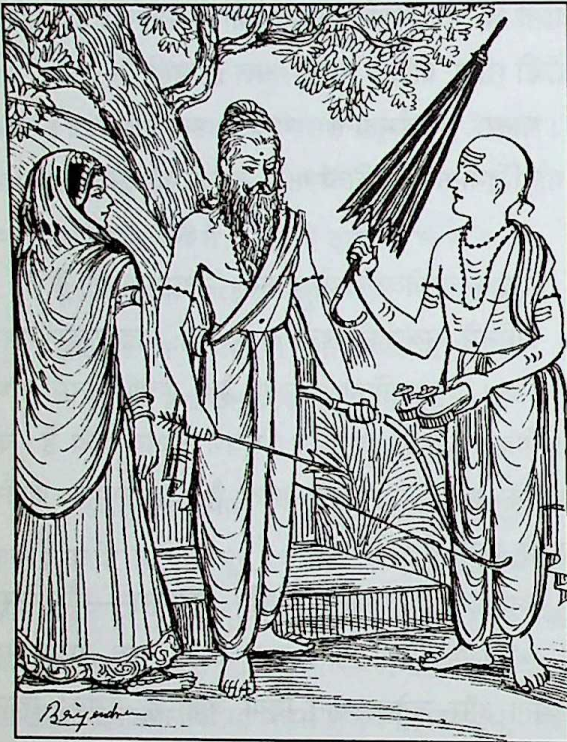
उन्हें शीघ्र ही छाता तथा जूता (उपानह)—ये दो वस्तुएँ प्रदान कीं और कहा कि आजसे जगत्में इन दोनोंका प्रचार होगा और पुण्यके अवसरोंपर इनका दान अक्षय फल देनेवाला होगा। अतः हे भारत! इन दोनों वस्तुओंका तुम भी ब्राह्मणोंको दान करो। इनके दानसे महान् धर्म होता है।

प्रतिग्रह-दोष—युधिष्ठिरने पूछा—महात्मन्! प्रतिग्रह (दान लेने)-के अनेक दोष बताये गये हैं और ब्राह्मणके लिये दान लेना भी मुख्य कर्म है, तब उसे क्या करना चाहिये? इसपर भीष्मजीने बताया कि प्रतिग्रहका दोष गायत्री-जपसे दूर हो जाता है।

पाँच प्रकारके दान—युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आपने दानके विषयमें बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें बतलायीं, अब दानके कितने भेद हैं, इसे बतानेकी कृपा करें।

भीष्मजी बोले—भारत! धर्म, अर्थ, भय, कामना और दया—इन पाँच हेतुओंसे दानको पाँच प्रकारका जानना चाहिये।

(१) धर्ममूलक दान—दान करनेवाला मनुष्य इहलोकमें कीर्ति तथा परलोकमें सर्वोत्तम सुख पाता है, इसलिये ईर्ष्यारहित होकर ब्राह्मणोंको अवश्य दान दे—यह धर्ममूलक दान है।

(२) अर्थमूलक दान—याचकोंके मुखसे दान-सम्बन्धी अपनी कीर्ति सुननेकी इच्छासे याचकको दान देना अर्थमूलक दान है।

(३) भयमूलक दान—यदि इसको दान न दूँ तो यह मेरा अनिष्ट कर डालेगा—इस भयसे किसी मूर्खको दान देना भयमूलक दान है।

(४) कामनामूलक दान—अपने मित्रको प्रसन्नतापूर्वक दिया दान कामनामूलक दान है।

(५) दयामूलक दान—यह गरीब है और मुझसे याचना कर रहा है, थोड़ा देनेसे भी सन्तुष्ट हो जायगा—यह सोचकर दरिद्र मनुष्यके लिये दयावश दिया गया दान दयामूलक दान कहलाता है।

हे युधिष्ठिर! यथाशक्ति सबको दान करना चाहिये, ऐसा प्रजापति ब्रह्माजीका कथन है—'**यथाशक्त्या प्रदातव्यमेवमाह प्रजापतिः॥**' (महा० अनु० १३८। ११) राजन्! संसारमें सैकड़ों शूरवीर हैं, परंतु उनकी गणना करते समय जो उनमें दानशूर (दानवीर) हो, वही सबसे श्रेष्ठ माना जाता है—

शूरा वीराश्च शतशः सन्ति लोके युधिष्ठिर।
येषां संख्यायमानानां दानशूरो विशिष्यते॥

(महा० अनु० ८। ११)

इस प्रकार पितामह भीष्मजीद्वारा दिये गये दान-सम्बन्धी उपदेश बड़े ही महत्त्वके हैं। इनसे प्रेरणा लेकर निष्काम भावसे सत्कार्यका सतत सम्पादन करते रहना चाहिये।

धर्मराज युधिष्ठिरद्वारा प्रतिपादित क्षमादानकी महिमा
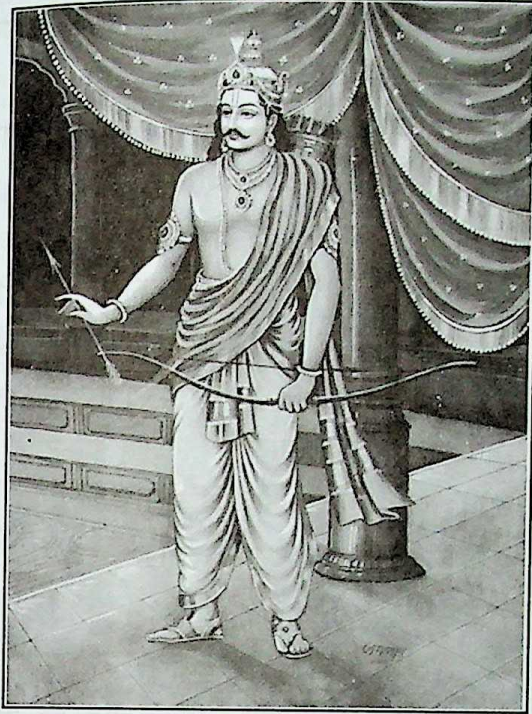
'धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन' महाराज युधिष्ठिरके नामोच्चारणसे धर्मकी अभिवृद्धि होती है। धर्मके अंशसे प्रादुर्भूत महाराज युधिष्ठिरकी सन्तों, महात्माओं तथा भगवद्भक्तोंमें गणना है। सदाचार, धीरता, धर्मपालन, धर्माचरण, प्रजावत्सलता आदि सात्त्विक गुणोंकी इनमें दृढ़ प्रतिष्ठा थी। सत्य तथा क्षमा तो इनके सहजात गुण थे। पाण्डवोंमें बड़े होनेके कारण दुर्योधनादि कौरवोंके व्यवहारसे सर्वाधिक कष्ट इन्हें ही होता था, किंतु इन्होंने **'यतो धर्मस्ततो जयः'** की प्रतिष्ठा करते हुए कभी न तो अन्यायका पक्ष लिया और न कभी धर्मको छोड़ा। इसीलिये भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य आदि कौरव पक्षमें होते हुए भी 'धर्मराज युधिष्ठिर ही विजयी हों' सदा ऐसी कामना करते थे।

महाराज युधिष्ठिरके समक्ष क्रोध करनेके अनेक अवसर आये, किंतु इन्होंने क्रोधका शमनकर क्षमादानको श्रेयस्कर साधन बताया। बात उन दिनोंकी है, जब पाण्डव वनवासके समय द्वैतवनमें निवास कर रहे थे, एक दिन देवी द्रौपदीने महाराज युधिष्ठिरसे कहा—राजन्! दुर्योधनादिके कारण ही हमें ऐसा कष्ट हो रहा है और हमलोग वनमें महान् दुःखका भोग कर रहे हैं, फिर भी आप शत्रुओंके प्रति क्षमाभाव कैसे धारण कर रहे हैं, निश्चय ही आपमें जरा भी तेज और क्रोधकी मात्रा नहीं है। जिस मनुष्यमें तेज और क्रोधका अभाव है, जो क्रोधके पात्रपर भी क्रोध नहीं करता, वह तो क्षत्रिय कहलानेयोग्य ही नहीं है। धृतराष्ट्रके पुत्र क्षमाके पात्र नहीं, बल्कि क्रोधके पात्र हैं। कौरवोंके प्रति अब क्षमाका अवसर नहीं है, अब तेज प्रकट करनेका अवसर है, कोमलतापूर्ण व्यवहार करनेवालेकी सब उपेक्षा करते हैं, इस प्रकार अनेक प्रकारसे द्रौपदीने महाराजका उद्बोधन किया, उनके मनमें क्रोधका संचार करनेकी चेष्टा की, किंतु धर्मराज उद्विग्न नहीं हुए, शान्त एवं धीर बने रहे। कुछ ही क्षणों बाद बोले—देवी! तुम्हारा कहना ठीक है, किंतु यह जान लो कि क्रोध मनुष्योंका परम शत्रु है, वह मारनेवाला है और उसे यदि जीत लिया जाय तो अभ्युदय करनेवाला है। क्रोधी मनुष्य पाप कर सकता है, गुरुजनोंकी हत्या कर सकता है, श्रेष्ठ पुरुषोंका अपमान कर सकता है, क्रोधी मनुष्य कभी यह नहीं समझ पाता कि क्या कहना चाहिये और क्या नहीं। क्रोधीके लिये कुछ भी अकार्य अथवा अवाच्य नहीं। इसलिये बलवान् या निर्बल सभी मनुष्योंको चाहिये कि आपत्तिकालमें भी क्षमाभावका ही आश्रय लें। साधुपुरुष क्रोधको जीतनेकी ही प्रशंसा करते हैं। जो उत्पन्न हुए क्रोधको अपनी बुद्धिसे दबा देता है, उसे तत्त्वदर्शी विद्वान् तेजस्वी मानते हैं, क्षमाशील पुरुषसे ही समस्त प्राणियोंका जीवन है, जो सदा अपने क्रोधपर काबू रखता है, वही विद्वान् है, वही श्रेष्ठ पुरुष है—

'यश्च नित्यं जितक्रोधो विद्वानुत्तमपूरुषः॥'

(महा०वन० २९। ३३)

हे कृष्णे! क्षमाकी महिमामें महात्मा काश्यपने जिस गाथाका गान किया है, उसे तुम सुनो—

क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः क्षमा वेदाः क्षमा श्रुतम्।
य एतदेवं जानाति स सर्वं क्षन्तुमर्हति॥

क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं क्षमा भूतं च भावि च।
क्षमा तपः क्षमा शौचं क्षमयेदं धृतं जगत्॥

(महा०वन० २९। ३६-३७)

क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है और क्षमा शास्त्र है। जो इस प्रकार जानता है, वह सब कुछ क्षमा करनेके योग्य हो जाता है। क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा भूत है, क्षमा भविष्य है, क्षमा तप है और क्षमा शौच है। क्षमा ने ही सम्पूर्ण जगत्‌को धारण कर रखा है।

द्रौपदी! क्षमा तेजस्वी पुरुषोंका तेज है, क्षमा तपस्वियोंका ब्रह्म है, क्षमा सत्यवादी पुरुषोंका सत्य है। क्षमा यज्ञ है और क्षमा शम (मनोनिग्रह) है। अत: हे देवि! क्रोध न करो, शान्त हो जाओ। इतना कहनेपर भी जब द्रौपदीका उद्वेग कम न हुआ तो वे उनकी बुद्धि, धर्माचरण, ईश्वरनिष्ठा आदिपर मोहका आवरण पड़ गया है—ऐसा बार-बार कहकर उनको उद्वेलित करने लगीं, और भीमसेनने भी उनके क्षमाभावकी निन्दा की, किंतु तब भी महाराज युधिष्ठिरने क्षमाका ही आश्रय लिया और कहा—मैं धर्मका पालन इसलिये नहीं करता कि मुझे उसका फल मिले, शास्त्रोंकी आज्ञा है, इसलिये वैसा आचरण करता हूँ। फलके लिये धर्माचरण करनेवाले सच्चे धार्मिक नहीं हैं, धर्म और उसके फलका लेन-देन करनेवाले व्यापारी हैं। धर्मका फल तुरंत न दिखायी दे तो इसके लिये धर्म एवं देवताओंपर आशंका नहीं करनी चाहिये। दोषदृष्टि न रखते हुए यत्नपूर्वक यज्ञ और दान करते रहना चाहिये—

न फलादर्शनाद् धर्मः शङ्कितव्यो न देवताः।
यष्टव्यं च प्रयत्नेन दातव्यं चानसूयता॥

(महा० वन० ३१। ३८)

धर्म कभी निष्फल नहीं होता और अधर्म भी अपना फल दिये बिना नहीं रहता। मेरी यह सच्ची प्रतिज्ञा सुनो—मैं जीवन और अमरत्वकी अपेक्षा भी धर्मको ही बढ़कर समझता हूँ। राज्य, पुत्र, यश और धन—ये सब-के-सब सत्यधर्मकी सोलहवीं कला भी नहीं पा सकते।

इस प्रकार महाराज युधिष्ठिरने सत्य एवं क्षमाको ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ आचरणीय धर्म बताया और इसीके बलपर उन्होंने विजयश्री और यश:श्री भी प्राप्त की। धर्माचरणकी निष्ठा और क्षमाके आदर्शके लिये वे सदाके लिये विख्यात हो गये। यक्ष-प्रश्नपर भी उन्होंने धर्माचरण एवं धर्मनीतिका आश्रय लिया और यक्षके यह कहनेपर कि आपके चारों भाइयोंमेंसे किस एकको जिला दिया जाय तो युधिष्ठिरने नकुलका प्रस्ताव रखा और बताया कि मेरी दो माताएँ थीं, कुन्ती और माद्री। कुन्तीका पुत्र मैं जीवित हूँ, माता माद्रीका भी एक पुत्र जीवित रहना चाहिये, अत: नकुल जीवित हो जाय। धर्मराजका ऐसा दिव्य व्यवहार देखकर धर्म जो यक्षके रूपमें थे, साक्षात् प्रकट हो गये और उन्होंने चारों भाइयोंको जीवित कर दिया तथा इनका धर्मभाव और इनकी समत्व बुद्धि देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

धर्मराज युधिष्ठिर अपने अन्तिम समयमें धर्मके सूक्ष्म अंशमें प्रविष्ट हो गये। उनका पावन सदाचारमय चरित सदाके लिये प्रसिद्ध हो गया, अनुकरणीय हो गया। क्षमाकी प्रतिष्ठा और क्षमादानके आदर्श पुरुषकी जहाँ भी चर्चा होती है, वहाँ धर्मराज युधिष्ठिरजीका नाम बड़े ही आदरसे लिया जाता है। एक बार धर्मराज युधिष्ठिरने पितामह भीष्मजीसे अनेक प्रश्न किये और कहा—पितामह! आप धर्मात्मा हैं, भगवद्भक्त हैं, कृपया यह बतायें कि सर्वोपरि धर्म कौन है और किस नामके जपनेसे मनुष्य इस संसारसे पार हो जाता है? इसपर भीष्मजी बोले—राजन्! मेरा तो यही अभिमत है कि भक्तिपूर्वक पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णुका स्तवन ही सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ है और उनके नामोंका जप ही दु:खोंसे पार लगानेवाला है—

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा॥

तदनन्तर भीष्मजीने युधिष्ठिरको पूरा विष्णु-सहस्रनामका उपदेश दिया। इस प्रकार युधिष्ठिरजीकी कृपासे ही हमें विष्णुसहस्रनाम प्राप्त हो सका। वे महान् भगवद्भक्त थे। ऐसे ही अलुब्ध, दानशील राजर्षियोंद्वारा पृथ्वी टिकी हुई है।

आद्य शंकराचार्यजीकी दृष्टिमें दानका स्वरूप

अद्वैत सिद्धान्तके प्रतिष्ठाता तथा भक्तितत्त्वके परमाचार्य शंकरावतार भगवान् शंकराचार्यका जीवन-दर्शन बड़ा ही विलक्षण और महान् लोकोपकारी है। उनकी भैक्ष्यचर्या निवृत्तिमार्गके उपासकोंके लिये परम अनुकरणीय है। अत्यन्त अल्प समय (केवल ३२ वर्ष)-में उन्होंने जिस साधना-पद्धतिका निरूपण किया और संसारके प्राणियोंको जो सनातन मर्यादा प्रदान की, वैसा कोई अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न दिव्य महापुरुष ही कर सकता है। जहाँ उनके जीवनमें अद्वैत तत्त्वकी प्रतिष्ठा थी, वहीं उनका अन्तःकरण भगवान्की मधुर लीलाओंसे सदा आप्लावित और द्रवित रहता था। साधु पुरुषोंके लिये जैसी उपरति और जैसा उत्कट कोटिका वैराग्य होना चाहिये, वह उनमें प्रतिष्ठित था और वैसे ही सद्गृहस्थके लिये जो उत्कट पुरुषार्थरूपी आदर्श होना चाहिये, वह भी उनमें अनुस्यूत था।

आचार्य शंकर सनातन वैदिक संस्कृति और वर्णाश्रमधर्मके मूर्तिमान् पुरुष थे। यद्यपि उनके वेदान्त ग्रन्थों तथा उपनिषदोंके भाष्यादिमें प्राधान्येन सर्वत्र ज्ञानमार्गकी निष्ठाका निरूपण हुआ है तथापि बीच-बीचमें यत्र-तत्र सदाचार, सत्कर्म, वर्णाश्रमधर्म, नित्य-नैमित्तिक-कर्म-मीमांसा तथा कर्तव्य बुद्धिसे करणीय कर्मोंका निरूपण भी हुआ है। गृहस्थके लिये सत्कर्मोंके अनुष्ठान तथा नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी अवश्यकरणीयतापर उनकी विशेष मान्यता थी। दानादि कर्मोंको उन्होंने पुण्यजनकतामें हेतु माना है। आचार्यजीके दानसे सम्बन्धित कुछ प्रकरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

शंकराचार्यजीने पारमार्थिक दृष्टिसे अर्थको अनर्थका साधन बताते हुए धन-संग्रहकी बड़ी निन्दा की है और उसे सुखका साधन नहीं बताया—**'न धनं सुखसाधनम्'** (सर्ववेदान्त० ७२)। उनका कहना है कि संग्रह-परिग्रह आसक्तिका हेतु है, अतः कल्याणकामीको चाहिये कि अनासक्त भावसे रहे। वे धनकी दो गति बताते हैं—दान तथा भोग और फिर बताते हैं कि भोगसे उन्मत्तता आती है और दानसे पुण्योदय होता है, पुण्य उदय होनेपर भोगके लिये पुनः जन्म लेना पड़ता है, इस प्रकार धन दोनों दृष्टियोंसे व्यर्थ है—

भोगेन मत्तता जन्तोर्दानेन पुनरुद्भवः।
वृथैवोभयता वित्तं नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(सर्ववेदान्त० ७५)

इस प्रकरणसे आचार्यजीने यह सचेत किया है कि आसक्ति ही बन्धनका हेतु है। अहन्ता-ममता एवं कर्तृत्वाभिमानसे किये गये कर्म ही दुःखकारक हैं। कर्तव्यबुद्धिसे तो कर्म अवश्यकरणीय ही हैं। निःस्वार्थभावसे किये गये दान आदि सत्कर्म भी महान् कल्याणकारी हैं।

एक दूसरे उपदेशमें वे प्रश्नोत्तर-शैलीमें स्वयं प्रश्न करते हैं कि विद्युत्के समान चंचल और क्षणिक कौन है? और फिर स्वयं ही उत्तर देते हैं—इस जीवनमें धन, यौवन और आयु—ये तीन ऐसे हैं, जो बिजलीकी तरह क्षणिक हैं, कब इनका विनाश हो जाय, पता नहीं, इनका एक

क्षणका भी भरोसा नहीं है, अतः प्राप्त धन, प्राप्त यौवन और प्राप्त आयुका सदुपयोग करना चाहिये। तभी इनका साफल्य है, प्राप्त धनका उपयोग दान आदि कार्योंमें तथा दीनों-अनाथोंकी सेवामें करना चाहिये। दान क्या है, इसकी मीमांसामें वे स्वयं कहते हैं कि सत्पात्र—सुपात्रको जो कुछ दिया जाय, वही दान है—**'विद्युच्चलं किं धनयौवनायुर्दानं परं किञ्च सुपात्रदत्तम्।'** (प्रश्नोत्तरी ३०)

चार कल्याणकारी बातें—चतुर्भद्र

आचार्यने इस जीवनमें चार बातोंको महान् कल्याणकारी होनेके साथ ही अत्यन्त दुर्लभ भी बताया है और सर्वप्रथम स्थान दिया है—प्रियवचनोंके साथ आदरपूर्वक दान देनेको, दूसरा है अहंकाररहित ज्ञान, तीसरा है क्षमायुक्त पराक्रम और चौथा है धनवैभव रहनेपर उसके त्यागने—उसको दानमें देनेकी शक्ति। इन चारोंको आचार्यने चतुर्भद्र संज्ञा दी है, तात्पर्य यह है कि दान देनेवाले तो कई हो सकते हैं, किंतु उनमें कर्तृत्वाभिमान हो जानेकी सम्भावनासे वाणीमें मधुरता और प्रियता होनी कठिन हो जाती है तथा वाणीमें रुक्षता आ सकती है। अतः इस प्रकार तिरस्कारपूर्वक दिया दान निरर्थक हो जाता है। प्रिय एवं मधुर बोलते हुए श्रद्धापूर्वक जो दान दिया जाता है वही सफल दान है, दुर्लभ दान है। इसी प्रकार धन-वैभव भी हो और दान करनेकी शक्ति भी हो, यह भी एकत्र अत्यन्त दुर्लभ है, जिसमें ये दोनों चीजें एक साथ हैं, उसके लिये वह दान महान् कल्याणकारी बन जाता है। लोकमें कई वैभवशाली दीखते तो हैं, किंतु उनमें दान देनेका साहस नहीं रहता। आचार्यके मूल वचन इस प्रकार हैं—

दानं प्रियवाक्यसहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
वित्तं त्यागसमेतं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम्॥

(प्र०रत्नमालि० २५)

शोचनीय कौन है?

आचार्य दानकी महिमामें कहते हैं कि इस संसारमें वैभव होनेपर जो व्यक्ति दान नहीं देता, दूसरोंकी सहायता नहीं करता, दीनों-दुःखियोंकी मदद नहीं करता, वह शोक करनेयोग्य है, धन होनेपर कृपणता होना शोचनीय है—**'इह भुवने कः शोच्यः सत्यपि विभवे न यो दाता'** (प्र०रत्नमालि० ३१)। **'किं शोच्यम् कार्पण्यम्'** (प्र०रत्नमालि० २६)।

अक्षय वटवृक्ष कौन है?

आचार्य बताते हैं कि सत्पात्रमें यथाविधि दिया गया दान अक्षय वटवृक्षके समान सदा अक्षय फल देनेवाला होता है—

'कोऽक्षयवटवृक्षः स्याद्विधिवत्सत्पात्रदत्तदानं यत्'

(प्र०रत्नमालि० ३९)

यथार्थ दाता

यथार्थ दाता कौन है? इसके उत्तरमें शंकराचार्यजी कहते हैं कि वही वास्तवमें दाता है—दानी है, जो याचना करनेवालेको सदाके लिये सन्तुष्ट कर देता है अर्थात् याचककी कामनासे भी अधिक देकर उसे सन्तृप्त कर देता है और फिर उसे माँगनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। तृप्तिपर्यन्त दान देनेवाला ही दाता है—**'को दाता योऽर्थितृप्तिमातनुते।'** (प्र०रत्नमालि० ५१)

दानमें कौन-सी वस्तु देय है

आचार्य कहते हैं कि जिस व्यक्तिको, जिस समय, जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, उसे वह वस्तु उपलब्ध कराना ही दानका स्वरूप है, जिसे जिस वस्तुकी आवश्यकता न हो, उसे वह वस्तु देना दान नहीं है, दानका असली पात्र वही है, जिसे यथोचित समयपर यथोचित पदार्थ मिले, जैसे कोई भूखा हो तो उसे अन्नदान—भोजनदानसे तृप्त करना चाहिये, प्यासेको पानी पिलाना चाहिये, वस्त्रहीनको वस्त्र देना चाहिये, आवासहीनको गृहका दान करना चाहिये। अर्थार्थीको अर्थ देना चाहिये, दीनों-दुःखियोंकी यथोचित सेवा करनी चाहिये, रोगीके लिये औषधका दान करना चाहिये। भयभीतको अभयदान देना चाहिये, शरणागतको शरण देनी चाहिये। ये सब दानके उचित अवसर हैं, इसी बातका शंकराचार्यजी संकेत करते हुए कहते हैं—**'पात्रं किमन्नदाने क्षुधितम्'** (प्र०रत्नमालि० ६५) अर्थात् अन्नदानका पात्र कौन है? भूखा व्यक्ति। जिसे क्षुधा नहीं है, उसे भोजनदानका क्या प्रयोजन? अवसरपर दिये जानेवाले ऐसे दानको उन्होंने महान् मूल्यवान् बताया है—**'किं चानर्घं यदवसरे दत्तम्'** (प्र० रत्नमालि० १४)।

दान क्या है ?

दानका यथार्थ स्वरूप क्या है? इस सम्बन्धमें वे कहते हैं—**'किं दानमनाकांक्षम्'** (प्र०रत्नमालि० २२) अर्थात् अनाकांक्षा ही दान है। दान देकर उसके फलकी इच्छा न करना और अनासक्तिभावसे सत्पात्रमें धनका विनियोग ही दान है। आकांक्षारहित—फलाकांक्षारहित दिया गया दान ही यथार्थ दान है। सकामभावसे दिया गया दान उत्तम नहीं है।

किस वस्तुके लिये प्रयत्न करना चाहिये

किन-किन वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये बार-बार प्रयत्न-पुरुषार्थ करते रहना चाहिये—इसके उत्तरमें वे स्वयं बताते हैं कि विद्याप्राप्ति, भवरोगसे मुक्तिके उपायोंकी प्राप्ति और दान देनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। इनके लिये निरन्तर पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। इन तीन बातोंके लिये परिश्रमपूर्वक किया गया प्रयत्न सार्थक है, सफल है, सोद्देश्य है, अन्यत्र किया गया श्रम व्यर्थ है—**'कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने'** (प्र०रत्नमालि० १५)।

करणीय क्या है ?

जीवनकी सार्थकताके लिये क्या करना चाहिये, इसके उत्तरमें वे बताते हैं कि जीवनमें चार कार्य ऐसे हैं, जो नित्य अवश्यकरणीय हैं—(१) गीता, विष्णुसहस्रनाम आदि सद्ग्रन्थोंका निरन्तर पाठ, (२) लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके स्वरूपका निरन्तर चिन्तन, (३) अपने चित्तको सज्जनोंके संगमें लगाना और (४) दीनों, अनाथों, जरूरतमन्दोंको अपने धनका दान—

गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्॥

(मोहमुद्गर २७)

केवलाघो भवति केवलादी

एक स्थलपर देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ आदि पंचमहायज्ञोंमें निवेदित अन्नकी महिमा बताते हुए वे कहते हैं कि जो अन्न देवताओं तथा अतिथियोंको निवेदित किया जाता है, अन्य भूतप्राणियोंको समर्पित किया जाता है, वह अमृतरूप हो जाता है, ऐसे ही यज्ञशिष्टान्नका सेवन करना चाहिये, ऐसा न करनेपर वह अन्न अपवित्र रहता है। जो केवल अपने लिये ही अन्न पकाता है, किसी दूसरेको अर्पित नहीं करता है और अकेले ही खाता है, वह मानो पापका ही भक्षण करता है। प्राणाग्निहोत्र अर्थात् जो प्राण-अपान आदिमें भोजनकी ग्रासाहुति दिये बिना भोजन करता है, वह भोजन मृत्युरूप ही है। इस प्रकरणमें बलिवैश्वदेव तथा पंचमहायज्ञों आदिको आवश्यक बताते हुए प्रकारान्तरसे यही सिद्ध किया गया है कि अपने धनका ठीक-ठीक यथोचित विभागकर देवार्पण, दान आदिमें निवेशकर शेषको स्वयंके उपयोगमें लेना चाहिये। ऐसा निवेदित अन्न अमृतरूप अन्यथा (मृत्युरूप) निष्फल हो जाता है—

अन्नं देवातिथिभ्योऽर्पितममृतमिदं चान्यथा मोघमन्नं
यश्चात्मार्थं विधत्ते तदिह निगदितं मृत्युरुषं हि तस्य।
लोकेऽसौ केवलाघो भवति तनुभृतां केवलादी च यः स्यात्
त्यक्त्वा प्राणाग्निहोत्रं विधिवदनुदिनं योऽश्नुते सोऽपि मर्त्यः॥

(शतश्लोकी २०)

चित्तकी प्रसन्नताके हेतु

चित्तकी प्रसन्नताके कारणोंका परिगणन करते हुए एक स्थलपर शंकराचार्यजीने यह भी बताया है कि यज्ञशिष्टान्न (देवता, ऋषि, पितर, ब्राह्मण, अतिथि, गोमाता, कीट-पतंगादिको देनेके बाद बचा अन्न)-का सेवन करना, भगवान्की पूजा, सत्पुरुषोंकी सेवा, तीर्थयात्रा, अपने वर्णाश्रमधर्ममें निष्ठा अर्थात् अपने वर्ण एवं आश्रमके कर्तव्योंका परिपालन, यम-नियमोंका अभ्यास एवं अनुपालन—ये सब मनकी प्रसन्नताके हेतु हैं, इन कर्मोंके करनेसे चित्तमें प्रसाद आता है और ये अभ्युदयके हेतु बन जाते हैं। इन सभी साधनोंमें दानधर्मकी अत्यन्त सूक्ष्म प्रतिष्ठा है—

शिष्टान्नमीशार्चनमार्यसेवां
तीर्थाटनं स्वाश्रमधर्मनिष्ठाम्।
यमानुषक्तिं नियमानुवृत्तिं
चित्तप्रसादाय वदन्ति तज्ज्ञाः॥

(सर्ववेदान्तसारसंग्रह ३६८)

अभयदान

आचार्यश्रीने एक स्थलपर दानके एक दूसरे स्वरूपको उद्घाटित करते हुए बताया है कि सभी प्राणियोंको निर्भय करना—अभय देना अभयदान है—'**अभयं सर्वभूतानां दानमाहुर्मनीषिणः**' (सदाचारानुसन्धान १७)। भगवान्ने भी अभयदान देनेको अपना व्रत बताया है—'**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।**'

इस प्रकार आचार्यने दानको पुण्यजनकताका हेतु बताते हुए उसे अवश्यकरणीय कृत्य बताया है तथा परामर्श दिया है कि प्राप्त अन्नादि वस्तुओंका यथायोग्य संविभाजन करना चाहिये अर्थात् दान आदि कार्योंमें सदुपयोगके लिये अपने धनका विभाग करना चाहिये—'**यथाशक्ति संविभागः अन्नादीनाम्।**' (गीता १०।५, १६।१ शांकरभाष्य)

उपभोगसे तो धनका क्षय होता है, किंतु दानसे धन अक्षय हो जाता है। दानमें कृपणता नहीं बल्कि उदारता—मुक्तहस्तता रहनी चाहिये—'**देयेषु मुक्तहस्तता**' (गीता १८।४३ का शांकरभाष्य)।

सत्कर्मानुष्ठानके साथ ही आत्मकल्याणके लिये क्या करना चाहिये, इसके उत्तरमें वे कहते हैं कि सत्-शास्त्र और सत्पुरुषोंका संग करना चाहिये और अपने हृदयमें भगवान्की सुदृढ़ पराभक्ति—प्रपत्तिका व्रत धारण करना चाहिये—'**सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढा धीयताम्**' (उप० पंचक २)।

श्रीरामानुजमतमें दान-प्रतिष्ठा
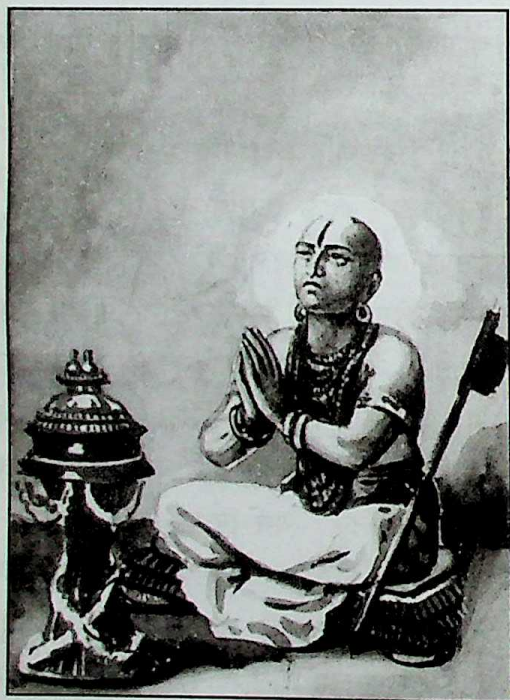
वैष्णवधर्मानुसार चार प्रसिद्ध सम्प्रदाय हैं—१-श्री-सम्प्रदाय, २-ब्रह्मसम्प्रदाय, ३-रुद्रसम्प्रदाय और ४-सनक-सम्प्रदाय। श्रीसम्प्रदायके मुख्य प्रवर्तक आचार्य श्रीरामानुज, ब्रह्मसम्प्रदायके श्रीमध्वाचार्य, रुद्रसम्प्रदायके श्रीविष्णुस्वामी और सनकसम्प्रदायके श्रीनिम्बार्काचार्यजी हैं।

श्रीरामानुजसम्प्रदायकी प्रवर्तिका भगवती लक्ष्मी (श्री) हैं, इसलिये यह श्रीसम्प्रदाय कहलाता है। इस सम्प्रदायमें विशिष्ट अद्वैतकी स्थापना हुई है। इसीलिये यह विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदाय कहलाता है। इस सम्प्रदायके अनुयायी श्रीवैष्णव या रामानुजवैष्णव कहलाते हैं। इस मतकी मान्यता है कि भगवान् नारायणने अपनी शक्ति श्री (लक्ष्मी)-को अध्यात्मदीक्षा प्रदान की। आगे यह ज्ञान विष्वक्सेन, शठकोपाचार्य, श्रीनाथमुनि तथा यामुनाचार्यजीको प्राप्त हुआ। तदनन्तर श्रीरामानुजाचार्यजी (१०१७—११३७ ई०) हुए, जिन्होंने इस सिद्धान्तको विशेष रूपसे प्रतिष्ठित किया, इसीसे यह सिद्धान्त श्रीरामानुजसिद्धान्त या श्रीरामानुजमत भी कहलाता है।

इस मतके अनुसार ईश्वर पुरुषोत्तम हैं, जीवसे श्रेष्ठ हैं। जीव कृपण है, दुःख-शोकमें डूबा हुआ है। ईश्वर सर्वज्ञ, सत्यसंकल्प और असीम सुखसागर हैं। ईश्वर पूर्ण हैं, जीव अणु है। जीव और ईश्वर नित्य पृथक् हैं। मुक्त जीव ईश्वरका सांनिध्य प्राप्त करता है, ईश्वरभावको प्राप्त नहीं होता। जगत् जड़ और ब्रह्मका शरीर है। ब्रह्म सविशेष—सगुण, अशेष कल्याणगुणसागर, सर्वनियन्ता हैं, जीव उनका दास है। निर्विशेष वस्तुका न तो ज्ञान हो सकता है और न प्रतिपादन ही हो सकता है। भगवान्के दासत्वकी प्राप्ति ही मुक्ति है। मुक्तिका श्रेष्ठ साधन प्रपत्ति (शरणागति) है। सब प्रकारसे भगवान्के शरण

हो जाना ही प्रपत्ति है।

मार्जारन्याय तथा मर्कटन्यायसे प्रपत्तिके दो भेद हो जाते हैं। सब प्रकारसे भगवान्के अनुकूल हो जाना तथा भगवान्के प्रतिकूल सभी बातोंका वर्जन आदि रूपोंमें शरणागतिके छः रूप हैं। तात्पर्य यही है कि सर्वतोभावसे सम्पूर्ण आत्मनिवेदन करना ही जीवका मुख्य लक्ष्य है।

इस विशिष्टाद्वैत-परम्परामें आचार-मीमांसा तथा व्यवहारशुद्धिपर विशेष बल दिया गया है। पवित्र जीवन, सत्कर्मोंका अनुष्ठान तथा भगवत्समर्पण यह इस मतकी मुख्य विचारधारा है। गृहस्थधर्मका अनुपालन, आतिथ्यधर्म, त्यागवृत्ति, सेवा, सत्कार तथा धनका उत्तम विनियोग यह प्रधान चर्या है। श्रीवैष्णवोंकी आचार-परम्पराको आगम ग्रन्थोंमें पाँच भागोंमें बाँटा गया है—१-अभिगमन, २-उपादान, ३-इज्या, ४-स्वाध्याय तथा ५-योग। यह प्रत्येक दिन-रातकी चर्या है, इसे अहोरात्रचर्या भी कहा गया है अर्थात् चौबीस घण्टेके समयमें कैसे-कैसे क्या-क्या करना है, इसमें बताया गया है। इस अहोरात्रचर्याका अनुपालन करनेवाले भागवतोंका जीवन भगवदुपासना बन जाता है। भगवत्पाद श्रीरामानुजाचार्यजीने अपने ग्रन्थोंमें श्रीवैष्णवोंके लिये पंचकालोपासनाका विधान किया है। अभिगमनकालमें ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त हो भगवत्पूजनमें प्रवृत्त होना, अभिगमनकालिक क्रिया है। इसमें शौच, स्नान, सन्ध्या, तर्पण तथा भगवदाराधन आदि समाहित है।

उपादानकालमें भगवदाराधनहेतु न्यायार्जित वृत्तिसे पवित्र वस्तुओंका अर्जन है। इसी अर्जित धनसे दानादि सत्कार्य भी सम्पन्न होते हैं। इज्याकालमें अतिथिसत्कार, भगवत्प्रसाद-वितरण, सेवन, दीनानाथोंकी संतृप्ति, पोष्यवर्गका भरण-पोषण आदि कृत्य आते हैं। स्वाध्यायकालमें सद्ग्रन्थोंका पाठ तथा पूर्वाचार्योंद्वारा प्रणीत ग्रन्थोंका अध्ययन आता है। योगकालमें सायं-सन्ध्या-पूजन आदिसे निवृत्त होकर भगवच्चरणारविन्दोंका ध्यान करते हुए शयन आदि कृत्य समाहित हैं।

इस प्रकार वैष्णवोंकी दिनचर्या सम्पूर्ण रूपसे भगवदाराधनामय है। उसमें दानादि जितने भी कर्म हैं, सब भगवदर्पित होते हैं।

स्वयं श्रीरामानुजाचार्यजीकी चर्या अत्यन्त ही सदाचारनिष्ठ थी। जब उनके परमधामगमनका समय आ गया तो उनका शरीर अत्यन्त जर्जर हो गया, पर उस समय भी अपने शिष्योंके सहारे कावेरीतक जाकर आपने सायंकालिक सूर्यार्घ्य प्रदान किया और शिष्योंके पूछनेपर बताया कि जीवनमें शास्त्रविहित नित्य-नैमित्तिक कृत्योंका त्याग कभी नहीं करना चाहिये, इन्हें करते रहना चाहिये। यह उनकी सदाचारमय महत्त्वपूर्ण शिक्षा थी, इसीमें दान-धर्मकी शिक्षा भी अन्तर्निहित है। जीवनमें सत्कर्मों तथा सदाचरणकी शिक्षाको प्रधानता देनेहेतु श्रीसम्प्रदायके अनेक प्रतिष्ठानोंमें आज भी अनुदिन भगवान्के सामने तैत्तिरीयोपनिषद्की उस शीक्षावल्लीका पाठ किया जाता है, जिसमें सत्यके अनुपालन, धर्मके आचरण, देवता-पितरोंकी आराधना, माता-पिताकी सेवा आदिका उपदेश दिया गया है, उसीमें श्रद्धापूर्वक दान देनेकी महिमाका ख्यापन हुआ है—**'श्रद्धया देयम्, अश्रद्धयादेयम्'** इत्यादि।

आचार्यने दानकी परिभाषा करते हुए बताया है कि अपने द्रव्यको दूसरेकी सम्पत्ति बना देनेतकका त्याग दान है—**'आत्मीयस्य द्रव्यस्य परस्वत्वापादनपर्यन्तः त्यागः'** (गीता १८। ४३ का भाष्य)।

सदाचारपूर्वक कालक्षेप करते हुए भगवत्कैंकर्यको स्वीकार करते हुए भगवद्दास्यकी निष्ठा रखना श्रीवैष्णवोंका मुख्य योग है। व्यवहारसे परमार्थकी साधनाके लिये यहाँ सात सोपान बताये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) विवेक, (२) विमोक, (३) अभ्यास, (४) क्रिया, (५) कल्याण, (६) अनवसाद तथा (७) अनुद्धर्ष।

विवेकका अर्थ है—खान-पानकी शुद्धिका विचार। मानव-जीवनमें आहार-विहारके संयमका बड़ा महत्त्व है। भोजनके अतिरिक्त इतर कार्य-कलापका नाम है—विहार। ये दोनों जब संयत हो जाते हैं—युक्त हो जाते हैं, तब साधक सर्वांगीण उन्नतिकी ओर अग्रसर होते हैं। आहारमें तीन प्रकारके दोष होते हैं—जातिदोष, आश्रयदोष तथा निमित्तदोष। इन तीनों दोषोंसे रहित पवित्र अन्नका भगवान्को भोग लगाकर स्वयं ग्रहण करनेका विधान है। विवेकसाधनमें मुख्यरूपसे धनकी शुद्धि तथा उचित स्थानपर धनके विनियोग (दान आदि)-का विचार होता है।

विमोकका अर्थ है परित्याग। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य—ये षड्रिपु साधनाके मार्गमें बाधक हैं, इनमें भी लोभ सर्वातिशायी है; अतः धन आदिकी आसक्ति तथा उसके सत्पात्रमें त्यागकी वृत्ति दानवृत्ति है। इसका अनुपालन करणीय है।

प्रपञ्चोन्मुखी चित्तको समस्त अशुभ आश्रयोंसे हटाकर प्रपंचातीत शुभाश्रय श्रीभगवान्में निविष्ट करनेका बार-बार प्रयत्न करना **अभ्यास** नामक साधन है, यह भक्तिनिष्ठाका महत्त्वपूर्ण साधन है।

भगवान्से सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक शास्त्रीय **क्रिया** भक्तिका चौथा सोपान है। कर्मभेदसे क्रिया चार प्रकार की है—नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा निषिद्ध। स्नान, सन्ध्या, जप, तप, दान, हवन आदि नित्यकर्म हैं, सूर्यग्रहण आदि विशेष पर्वोंपर स्नान-दानादि कर्म नैमित्तिक कर्म हैं। गृहस्थोंके लिये पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान नित्य करणीय है—ब्रह्मतन्त्रमें कहा गया है कि भक्तको चाहिये कि वह पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान करे—

इति विज्ञाप्य देवेशं वैश्वदेवं स्वमात्मनि।
कुर्यात्पंचमहायज्ञानपि गृह्योक्तकर्मणा॥

(ब्रह्मतन्त्र)

कल्याण नामक पंचम साधनमें उपादेय वृत्तियोंके ग्रहणका विधान है, वैष्णवको चाहिये कि वह धृति, क्षमा, दया, आर्जव, मार्दव, अद्रोह, मैत्री, करुणा आदि दैवी सम्पत्तियोंका अर्जन करे और चित्तको प्रभुचरणोंमें लगाये रखे।

इष्टदर्शनके लिये साधन करते-करते साधनजन्य कष्टोंमें विषाद न होना **अनवसाद** नामक छठा साधन है।

साधनमार्गमें सन्तोष न कर, सिद्धियोंके प्रलोभनमें न पड़कर नित्य आगे बढ़ते रहना और भगवान्का सांनिध्य प्राप्त करनेके लिये चेष्टा करना **अनुद्धर्ष** नामक साधन है।

इस प्रकार भक्तिके सात सोपानोंमें नित्य कर्तव्य कर्मोंकी सावधानीपर विशेष बल दिया गया है। बताया गया है कि धीरे-धीरे इन साधनोंके सम्पन्न होते रहनेसे भगवत्कैंकर्यकी प्रतिष्ठा दृढ़ होने लगती है और फिर उसे भगवान्की विशेष कृपा भी प्राप्त हो जाती है और वह भगवत्सेवा करते हुए अपनेको कृतकृत्य—कृतार्थ समझने लगता है।

श्रीमध्वाचार्यजीके द्वैतमतमें शारीरिक भजन—दान

श्रीमध्वाचार्यजी (आविर्भाव सं० १२९५ माघ शु० ७)-का सिद्धान्त द्वैतवाद कहलाता है। इस मतके आदिगुरु ब्रह्माजी हैं। द्वैतमतके अनुसार समस्त पदार्थोंका मूल कारण परमात्मा है और उसीसे सारा जगत् आविर्भूत हुआ है—**'विष्णोर्देहात् जगत्सर्वमाविरासीत्'** (तत्त्वविवेक)। परमात्मा और जीवात्मा—दोनों अनादि हैं और इन दोनोंमें उसी प्रकार भेद है, जैसे नदी और समुद्र, वृक्ष और रस तथा पुरुष और इन्द्रियके विषय।

जीव और ईश्वर सर्वदा भिन्न और विलक्षण हैं। जीव और ईश्वरके दो होनेके कारण ही यह सिद्धान्त द्वैतवाद कहलाता है। श्रीमध्वाचार्यजीने बताया कि परमात्मा (विष्णु) स्वतन्त्र हैं और जीवात्मा परतन्त्र है। इसलिये यह मत स्वतन्त्रास्वतन्त्रवाद भी कहलाता है। जीव विष्णुका दास है। परमात्मा निर्दोष और सत्त्वगुणस्वरूप हैं, जीव उनकी समता नहीं कर सकता। कायिक, वाचिक और मानसिक भजन ही उपासना है और इसे भगवान्को समर्पित कर देना चाहिये। इसीमें जीवकी कृतकृत्यता है। ब्रह्म और जीवमें सेव्य-सेवकभाव है। श्रीमध्वाचार्यजी वायुदेवके पुत्र (अवतार) माने जाते हैं तथा दयाकी मूर्ति कहलाते हैं। माध्वमतानुसार वैकुण्ठकी प्राप्ति ही मुक्ति है। त्याग, भक्ति और ईश्वरकी प्रत्यक्ष अनुभूति मुक्तिका एकमात्र साधन है। ध्यानके बिना ईश्वरसाक्षात्कार नहीं होता।

भगवान्‌की सेवा करना उत्तम साधन है। सेवा तीन प्रकारकी है—भगवान्‌के आयुधोंकी छाप शरीरपर लेना, घरमें पुत्रादिका नाम भगवान्‌के नामपर रखना और भजन।

भजन दस प्रकारका है—१-सत्य बोलना, २-हितके वाक्य बोलना, ३-प्रियभाषण और ४-स्वाध्याय—ये चार प्रकारके वाचिक भजन हैं। ५-सत्पात्रको दान देना, ६-विपन्न व्यक्तिका उद्धार करना और ७-शरणागतकी रक्षा करना—ये तीन शारीरिक भजन हैं। ८-दया, ९-स्पृहा तथा १०-श्रद्धा—ये तीन मानसिक भजन हैं। दरिद्रका दुःख दूर करना दया है, केवल भगवान्‌का दास बननेकी इच्छाका नाम स्पृहा है और गुरु तथा शास्त्रमें विश्वास करना श्रद्धा है। इन दसों प्रकारके कार्य करके उन्हें नारायणको समर्पित करना भजन है। इस प्रकार दशविध-भजन प्रभुसेवाका अनन्य रूप है, इसमें दया, दानादिकी विशेष प्रतिष्ठा की गयी है। आचार्य स्वयं दयाकी मूर्ति थे। अतः दयापूर्वक सबका पोषण और द्रव्यादिके अभावकी पूर्ति एवं उसके यथायोग्य विनियोगपर उनकी विशेष दृष्टि थी।

आचार्यका कहना है कि श्रीभगवान्‌का नित्य-निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये ताकि अन्तकालमें उनकी विस्मृति न हो। सुख-दुःखोंकी स्थिति कर्मानुसार होनेसे उसका अनुभव सभीके लिये अनिवार्य है। इसीलिये सुखका अनुभव करते समय भी भगवान्‌को न भूलो तथा दुःखकालमें भी उनकी निन्दा न करो। वेदशास्त्रसम्मत कर्ममार्गपर अटल रहो। कोई भी कर्म करते समय बड़े दीनभावसे भगवान्‌का स्मरण करो। भगवान् ही सबसे बड़े, सबके गुरु तथा जगत्‌के माता-पिता हैं। इसीलिये अपने सारे कर्म उन्हींके अर्पण करने चाहिये। (द्वा०स्तो०)

श्रीवल्लभाचार्यजीका पुष्टिमार्ग और दान-सरणि

श्रीवल्लभाचार्यजी (आविर्भाव सं० १५३५ वैशाख कृ० ११)-ने सिद्धान्तरूपसे शुद्धाद्वैतका प्रतिपादन किया है। इनका सिद्धान्त श्रीविष्णुस्वामीके मतका अनुवर्तन है। यह सम्प्रदाय रुद्रसम्प्रदाय कहलाता है। इस सम्प्रदायमें बालगोपालविग्रहकी आराधना होती है। श्रीरुद्रदेवने बालखिल्योंको उपदेश दिया और वही परम्परा फिर आगे चली। भक्तिसम्प्रदायमें यह मत पुष्टिमार्ग या पुष्टिसम्प्रदाय कहलाता है। पुष्टिमार्गका अर्थ है—भगवान्‌के अनुग्रहका पथ। श्रीमद्भागवतमें कहा है—**'पोषणं तदनुग्रहः'** अर्थात् भगवान्‌का अनुग्रह ही पुष्टि है। इस मार्गमें परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णका अनुग्रह ही जीवके कल्याणका एकमात्र साधन है। इसके लिये उनके अनुग्रहमें पूरा विश्वास तथा उनकी अलौकिक कृपापर नितान्त भरोसा रखना चाहिये। भगवान् अपनी दयाके बलपर आत्मसमर्पित जीवका प्रपंचसे उद्धार कर देते हैं। अतः यह मार्ग सभी जीवोंके लिये सर्वथा उपादेय है। **'श्रीकृष्णः शरणं मम'** इस आत्मनिवेदन मन्त्रकी दीक्षासे भक्त अपनेको भगवान्‌में अर्पित कर देता है। इस सम्प्रदायमें श्रीमद्भागवत ग्रन्थकी अपूर्व प्रतिष्ठा है। श्रीवल्लभाचार्यने अपने मतकी प्रतिष्ठामें ब्रह्मसूत्रपर अणुभाष्य, भागवतकी सुबोधिनीटीका आदि अनेक ग्रन्थरत्न विर्निमित किये।

आचार्य वल्लभके मतसे जीव अणु और सेवक है। प्रपंचभेद (जगत्) सत्य है। ब्रह्म निर्गुण और निर्विशेष है। ब्रह्म ही जगत्‌का निमित्त और उपादान कारण है। गोलोकाधिपति श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं। वे ही जीवके सेव्य हैं। जीवात्मा और

परमात्मा दोनों शुद्ध हैं। इसीसे इस मतका नाम शुद्धाद्वैत पड़ा।

श्रीवल्लभके मतानुसार सेवा द्विविध है—फलरूपा और साधनरूपा। सर्वदा श्रीकृष्णश्रवणचित्ततारूप मानसीसेवा फलरूपा और द्रव्यार्पण तथा शारीरिक सेवा साधनरूपा है। श्रीकृष्णकी पतिरूपसे सेवा करना और सर्वात्मभाव रखना मुक्ति है। भगवान्‌की कृपाके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।

पुष्टिभक्तिकी प्राप्तिके लिये शम-दमादि बहिरंग साधन हैं और श्रवण, मनन आदि अन्तरंग साधन हैं। भगवान्‌के विशेष अनुग्रहसे जो भक्ति पैदा होती है, वह पुष्टिभक्ति कहलाती है। पुष्टिभक्तको भगवान् कृपा करके अपने स्वरूपका दान करते हैं। अतएव ऐसे कृपापात्र जीवका कर्तव्य है कि वह भगवान्‌की सेवा करे। प्रभुके सुखका विचार करना ही पुष्टिभक्ति है। पुष्टिभक्ति साधन-साध्य नहीं है, अपितु भगवान् जिसको अंगीकार करते हैं, उसीके द्वारा शक्य है। पुष्टिभक्तिमें भगवत्कृपा ही नियामक होती है, परंतु भगवदनुग्रह कब और किसके ऊपर होगा यह कोई नहीं जान सकता, इसलिये इस भगवत्कृपाकी प्राप्तिके योग्य बननेके लिये जीवको तत्पर रहना चाहिये। इसके लिये जीवको जो कुछ भी भला-बुरा हो, उसे भगवल्लीला समझना चाहिये। पुष्टिभक्तिमें भाव ही मुख्य साधन है। पुष्टिभक्तिके फलस्वरूप जीवको प्रभुके साथ सम्भाषण, गान, रमण आदि करनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है तथा अलौकिक सामर्थ्यकी प्राप्ति होती है—इसीको पुष्टिभक्त मोक्ष कहते हैं। पुष्टिमार्गमें गीता, भागवत और वेद प्रमाणस्वरूप माने गये हैं। पुष्टिमार्गमें अष्टयाम (आठों पहर) सेवा-भावनामें निरत रहनेका विधान है। इसीमें उसके द्वारा सभी भगवदर्थीय कर्म सम्पन्न होते हैं। भगवत्सेवा क्या है, इसके सम्बन्धमें आचार्यजी कहते हैं—चित्तको भगवान्‌में जोड़ देना ही सेवा है। इसकी सिद्धि प्रभुके चरणोंमें तन-धन—सर्वस्वका समर्पण करनेसे होती है। इससे संसारके दुःखकी निवृत्ति होती है और ब्रह्मका बोध हो जाता है—

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्॥

(सिद्धान्तमुक्तावली २)

यह जो तनुजा और वित्तजासेवा है, यही शारीरिक क्रिया तथा उपार्जित द्रव्यसे की गयी सेवा है। यह सेवा बाह्यसेवा है। इसीमें शरीर तथा द्रव्यकी शुद्धिको विशेषरूपसे बताया गया है। शुद्ध द्रव्यका उपार्जन और उसका भगवत्सेवाके कार्योंमें विनियोग तथा भगवद्भक्तोंमें—योग्य पात्रोंमें वितरण (दान) ही द्रव्यका सदुपयोग है। प्रभुकी सेवाके दो रूप हैं, पहली है नित्यसेवा दूसरी है नैमित्तिकसेवा।

नित्यसेवामें मंगला, शृंगार, गोपीवल्लभभोग, सन्ध्या-आरती, शयन एवं उत्सवोंकी विशिष्ट सेवा होती है।

नैमित्तिकसेवामें वर्षभरके उत्सवोंकी सेवा, भगवत्समर्पण तथा दानादिका विधान है। इसमें मुख्य अवतारोंकी जयन्तियाँ, रक्षाबन्धन, दीपावली, अन्नकूट, दोलोत्सव, सावनके हिण्डोले, झाँकीके उत्सव आदि हैं। ऋतुओंके अनुसार उत्सवोंमें पलनेका उपयोग होता है।

सेवाके अंग हैं—भोग, राग तथा शृंगार। भोगमें विविध व्यंजनोंका भोग प्रभुको लगता है। रागमें वल्लभीय भक्त कवियोंके पदोंका कीर्तन होता है तथा शृंगारमें ऋतुओंके अनुसार भगवद्विग्रहका शृंगार होता है।

इस प्रकार इस सम्प्रदायमें आठों याम भगवत्सेवाका प्राधान्य है। मानसीसेवाके साथ ही प्रभुकी जो बाह्यसेवा होती है, उसमें शारीरिक क्रियाओं (तनुजा) तथा धनसे होनेवाली सेवा (वित्तजा) मुख्य है। दैनन्दिन चर्यामें पवित्रताका विशेष विधान है। धनका प्रभुको समर्पण तथा आसक्तिरहित उसका दान बाह्यसेवाका मुख्य प्रयोजन है। पुष्टिभक्तका जीवन दानधर्मादिसे सेवित तथा पूर्णरूपसे प्रभुको समर्पित है।

वल्लभसम्प्रदायमें गोकुलनाथजीरचित वार्तासाहित्य एवं वचनामृतसाहित्यका विशेष महत्त्व है। गोस्वामी गोकुलनाथजीने अपने वचनामृतोंमें स्पष्ट रूपसे निर्देश दिया है कि वैष्णवको प्राणिमात्रपर दया रखनी चाहिये। हाथीसे चींटीपर्यन्त सबमें एक ही जीवभावको प्रतिष्ठित समझना चाहिये। परोपकार, अहिंसा, दयाभाव आदि वैष्णवके लिये आवश्यक है। अपने तीसरे और चौथे वचनामृतमें उन्होंने सदा प्रसन्न रहने, धनादिका सद्विनियोग करने, सन्तोषवृत्ति धारण करने तथा मृदुभाषी होनेका आदेश दिया है। सारांश रूपमें यही कथ्य है कि पुष्टिमार्गमें दानधर्मादिका सेवन करते हुए सदाचारके पालन, दृढ़ाश्रय एवं प्रभुसेवासे ही गृहस्थका उद्धार हो जाता है।

श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें दानमहिमा
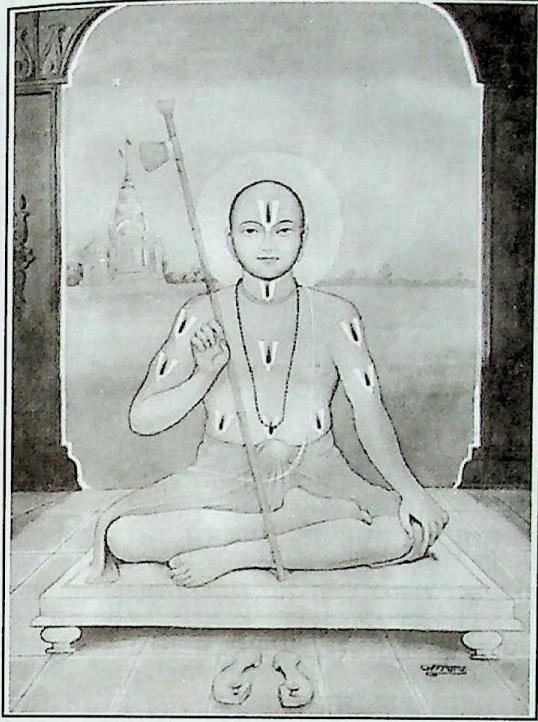
श्रीभगवदुपदिष्ट वैदिक सनातन धर्मकी अनादि तथा लोकमंगलकारी परम्पराके मूल उत्स वेद हैं। वेदानुकूलतासे सम्बद्ध इतिहास-पुराण उन्हीं सनातन वेदोंके उपबृंहणभूत व्याख्यानमात्र हैं। वेद सहस्रों माता-पिता तथा गुरुसे भी वत्सलतम तो हैं ही, अपौरुषेय तथा निरपेक्षध्वनिके विस्तारक होनेके नाते मानवमात्रके लिये परमप्रेरक तथा परमोद्धारक भी हैं। श्रीवैष्णवसम्प्रदायोंके भगवत्स्वरूप आचार्योंने उन्हीं श्रुत्यनुमोदित सिद्धान्तोंको स्व-स्व सम्प्रदायोंमें शास्त्रानुसार निर्धारित किया है। यद्यपि सभी सम्प्रदाय पूर्णतया श्रीभगवच्चरणावाप्तिके लिये ही हैं तथापि जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याभिमत श्रीसम्प्रदाय प्राणिमात्रके कल्याणहेतु सर्वथा अनुपम रीतिसे प्रवर्तित है। वेदोंके साररूपमें प्रकट भक्ति-प्रपत्तिमें **'सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः'** की शास्त्रसम्मत उद्घोषणाके कारण स्वामी रामानन्द ईश्वरकी प्राप्तिमें सभीके समान अधिकारके महान् संस्थापक आचार्य हैं।

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके धर्ममूलक होनेसे धर्मका विशिष्ट महत्त्व है। उस कर्मानुष्ठानरूप अपूर्वजनक धर्मके लक्षणको बताते हुए मीमांसकाचार्य महर्षि जैमिनिने **'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'** कहा है। अपने वर्ण तथा आश्रमधर्मका पालन करते हुए मनुष्यको सौ वर्षतक जीनेकी इच्छा करनी चाहिये। भगवती श्रुति कहती है—

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।'

जो ज्ञानसे मोक्ष मानते हैं, उनके लिये भी मोक्षोपयोगी विद्याकी उत्पत्तिमें वर्णाश्रमोचित कर्मोंकी आवश्यकता शास्त्रकारोंने निर्धारित की है, तभी तो ब्रह्मसूत्रकार भगवान् श्रीबादरायणने **'सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववद् तथा अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः'** (३।४।२६ एवं ३।४।१९) इन दो सूत्रोंमें योग्यतानुसार शास्त्रविहित कर्म करनेका निर्देश दिया है। स्वयं भगवान् श्रीयशोदानन्दन भी शास्त्रविहित कर्मोंके परित्यागका निषेध करते हुए कहते हैं—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८।५)

'धर्मेण पापमपनुदति'—इस श्रुतिके द्वारा भी पापके निरसनमें धर्मकी महनीय भूमिकाका उल्लेख किया गया है। **'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते'** वेदवाक्यमें भी अविद्या पदसे वर्णाश्रमविहित कर्मके द्वारा ही मृत्युसन्तरणकी बात कही गयी है। सभी वैष्णवसम्प्रदाय भगवत्प्रीत्यर्थ शास्त्रविहित सकल कर्मोंका सम्पादन करते हैं। जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य आनन्दभाष्यके जिज्ञासाधिकरणमें ब्रह्मजिज्ञासाके पूर्ववृत्तके रूपमें धर्मविचारको ही स्वीकृत करते हैं, न कि शंकराभिमत शमदमादि साधनचतुष्टयको। श्रीभाष्यकार भगवान् श्रीरामानुजाचार्य जिज्ञासाधिकरणमें पूर्व तथा उत्तरमीमांसाके शास्त्रैकत्वकी सिद्धि करते हैं। **'मीमांसाशास्त्रं अथातो धर्मजिज्ञासा इत्यारभ्य अनावृत्तिः शब्दात् इत्येवमन्तं सङ्गतिविशेषेण विशिष्टक्रमम्।'** (श्रीभाष्य १।१।१) भगवान् श्रीबोधायनाचार्यकृत विस्तृत ब्रह्मसूत्रवृत्ति विशिष्टाद्वैत दर्शनका मुख्याधार ग्रन्थ है। भगवान् बोधायनने वैष्णवोंद्वारा आत्मकल्याणार्थ करने-योग्य अनुष्ठानोंमें नित्यदानको अपरिहार्य तथा अनिवार्य कर्म माना है। वे उस परमात्माकी निरन्तर स्मृतिकी

निष्पत्ति विवेकादि सप्त पदार्थोंसे स्वीकारते हैं, भगवान् बोधायनका वचन है—'**तल्लब्धिर्विवेकविमोकाभ्यास-क्रियाकल्याणानवसादानुद्धर्षेभ्यः।**' अर्थात् विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद एवं अनुद्धर्षादिसे ही ईश्वरकी सतत स्मृति-भक्ति प्राप्त होती है। इन साधनोंमें कल्याणको परिभाषित करते हुए श्रीबोधायन अपने वृत्तिग्रन्थमें कहते हैं—'**सत्यार्जवदयादानाहिंसाभिध्याः कल्याणानि।**' अर्थात् सत्य, आर्जव, दया, दान, अहिंसा और अनभिध्या—ये कल्याण हैं। यहाँ यह ध्यान रखनेकी आवश्यकता है कि दानसे पूर्व जिन गुणोंका बखान है, वे भी दानकर्तामें अनिवार्य रूपसे होने ही चाहिये। **सत्य**—समस्त प्राणियोंके हित-कल्याणमें रत रहनेका सतत अभ्यास ही सत्य है। **आर्जव**—मन, वाणी तथा शरीरकी एकरूपता है; क्योंकि मनसे भिन्न, वाणीसे भिन्न तथा शरीरसे भिन्न होना दुष्टोंका लक्षण है। **दया**—स्वार्थरहित होकर दूसरोंके दुःखको न देख पाना ही दया है। इन तीन आवश्यक मानवीय गुणोंसे युक्त होनेपर ही व्यक्तिमें न केवल दान देने अपितु ब्राह्मणादिमें दान लेनेकी भी योग्यता आती है। अहिंसा तथा अनभिध्या (किसीकी वस्तुको न चाहना) आदि गुण भी दानी व्यक्तिमें ही हो सकते हैं। 'दान' शब्दको व्याख्यायित करते हुए श्रुतप्रकाशिकाकार श्रीसुदर्शन व्यास कहते हैं, '**दानं लोभराहित्यम्।**' अर्थात् सांसारिक अनित्य पदार्थोंके प्रति लालसा न रखना ही दान है। नित्यकर्म पञ्चमहायज्ञमें भी दान अनिवार्य ही है।

स्वसत्ताके निरसनपूर्वक परसत्ताके संस्थापनकी प्रक्रिया ही दान है। तभी तो अलौकिक गतिकी प्रदात्री इस दान-प्रक्रियाकी उपनिषद् भी भूरिशः प्रशंसा करते हैं—'**तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन।**' (बृहदारण्यकोपनिषद् ४।४।२२) उन परमप्रभु परमात्माको वैदिक विद्वान् वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, तपस्या एवं व्रत-उपवासादिसे जाननेकी इच्छा करते हैं। यहाँ सम्प्रदायाचार्योंका यह भी मत है कि ये दानादि सभी भगवदुपासनामें साधन हैं, न कि ब्रह्मविविदिषामें साधन। इस श्रुतिसे आश्रमगत कर्मोंका भी बोध होता है। वेदानुवचन अर्थात् स्वाध्याय ब्रह्मचर्याश्रमके लिये, यज्ञ तथा दान गृहस्थियोंके लिये तथा तप—उपवास आदि वानप्रस्थियोंके लिये होनेसे इन दानादि कृत्योंका सर्वाश्रमकृत्यत्व भी सिद्ध होता है। संन्यासाश्रमके पृथक् आदरको स्वीकारते हुए श्रुति इन सब वेदानुकूल कर्मोंसे युक्त व्यक्तिको संन्यासी या मुनि कहती है—

'एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति।'

यहाँ दानका नित्यत्व भी श्रुतिसिद्ध है, तथापि तीन प्रकारके भेदोंसे युक्त दानमें सात्त्विकदान ही नित्यत्वगुण-विशिष्ट तथा भगवत्प्राप्तिके साधनमें स्वीकार किया गया है। सात्त्विक, राजस तथा तामस-भेदवाला यह दान देश, काल, पात्र एवं पदार्थसे इन तीनोंमें विभक्त हो जाता है। निष्काम भावसे देश, काल तथा पात्रका उचित विचारकर अपने प्रति किसी अनुपकारीको जो दान दिया जाता है, वह सात्त्विक दान कहलाता है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीतामें कहते हैं—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

प्रदाता तथा ग्रहीता दोनोंको ही पूर्ण भाव तथा श्रद्धा और विश्वासके साथ दान देना तथा लेना चाहिये। दान पूर्ण श्रद्धाविद्ध मनसे ही देना चाहिये। दान देना मनीषियोंका परम पावन कार्य है। दृष्टदानमें पदार्थका त्याग उपस्थित व्यक्तिके लिये होता है। वहीं अदृष्टदानमें देवताओंके निमित्त द्रव्यका त्याग यज्ञ कहलाता है। अतः यज्ञ तथा दान—ये दोनों निःश्रेयसकी प्राप्तिमें महान् साधन हैं। कलियुगमें तो दान ही आत्मकल्याणका अनुपम साधन है। श्रीरामानन्दसम्प्रदायकी गौरवमयी महाविभूति गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजकी तो श्रीरामचरितमानसमें यह डिण्डिम घोषणा ही है—

'जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥'

[शास्त्री श्रीकोसलेन्द्रदासजी]

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका नामदान

प्रवर्तमान कलियुगमें युगधर्म-प्रवर्तनार्थ बंगदेश (नवद्वीपधाम)-में कारुण्य, तारुण्य, लावण्यपूर्ण, तप्तकांचन गौरांग प्रेमपुरुषोत्तम श्रीचैतन्यमहाप्रभुका अवतरण हुआ। उस कालमें अर्थलिप्सा, भोगलिप्सा, परस्पर द्वेष, घृणा, हिंसाका ताण्डव सर्वत्र था। अनाचार, दुराचार, व्यभिचारसे सन्त्रस्त-क्षेत्रमें मानवताके आत्यन्तिक हितसाधनके लिये महाप्रभुने पात्रापात्र-विचारसे मुक्त रहकर नामीके नामका दान स्वयं दिव्य भाव, महाभावमें नित्य रहकर किया और उनके श्रीमुखसे निःसृत हुआ—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

(शिक्षाष्टक ३)

सर्वपददलित अत्यन्त तुच्छ तृणसे भी अपनेको दीन-हीन समझकर, वृक्षकी भाँति सहनशील बनकर तथा स्वयं अमानी होकर दूसरोंको यथायोग्य मान देनेवाला बनकर सदा श्रीहरिनाम-संकीर्तन करते रहना चाहिये।

अपने अनुयायी सनातन गोस्वामीसे इसी हेतु आग्रहपूर्वक महाप्रभु कहते हैं—

जीवे दया नामे रुचि वैष्णव सेवन, इहा
हइते धर्म नाहिं सुनो सनातन॥

इसी नामदान-परम्परामें फिर संत ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, नानकदेव, तुलसी, कबीर, रैदास, मीराँ, दादू, नरसी मेहता आदि प्रमुख हैं, जिनके परम दानका गुणगान हम नित्य करते हैं।

विद्या, धन, भूमि, भवन, अन्न, गौ, सुवर्ण आदि अन्यदान भवके कारक हैं, किंतु नामदान सर्वथा भवतारक है। अन्य दानोंकी उपयोगिता मात्र शरीरस्थितिपर्यन्त ही है, जागतिक है, किंतु नामकी महिमा लोक-परलोकमें सर्वदा सर्वत्र है। अन्य दानोंसे प्रायः जीवात्माके स्वार्थोंकी पूर्ति होती है और ये लोकैषणाकी पूर्तिके साधन हैं, पुण्यसंचयनकारक हैं, किंतु नामदानसे प्रशस्य परमार्थ-तत्त्वकी प्राप्ति होती है। नामदान नित्य श्रेयस्कर है और साधन तथा साध्य—दोनों है।

अन्य दानोंमें देश, काल, पात्रका विचार अवश्य ही किया जाता है, करना भी चाहिये। दक्षस्मृति (३।१६)-में कहा गया है—

धूर्ते वन्दिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे।
चाटुचारणचौरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम्॥

अर्थात् धूर्त, वन्दी, मल्ल, कुवैद्य, कपटी, शठ, चाटुकार, चारण और चोर—इनको देना निष्फल है।

परंतु नामदानमें देश-कालका कोई नियम नहीं है—

'नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।'

(शिक्षाष्टक २)

अर्थात् भगवन्! आपने अपने गोविन्द, गोपाल, वनमाली इत्यादि अनेक नाम प्रकट किये हैं और उन नामोंमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति निहित कर दी है। श्रीनामस्मरणमें कोई कालाकालका विचार भी नहीं रखा है।

महाप्रभुने तो पात्रापात्र-विचारका परित्यागकर करुणापरिपूरित हो वन्य हिंसक जीवोंको, चाँद काजी, जगाई, मधाई-जैसे क्रूरकर्माओंको, कुष्ठरोगग्रस्तोंको गले लगाया—नामदान किया। सभी हिंसापरायणोंको दिव्य महाभावसे परिपूर्ण हो, नृत्यपरायण हो नर्तनशील बनाया। वे सब हिंसक वन्य बाघ प्रेमोन्मत्त हो महाप्रभुका अनुकरणकर नाच उठे।

आनन्द और उल्लासकी सूक्ष्म तरंगोंसे विकीरित सीकरका सिंचन जब अन्तरात्मामें होता है तो जीव, मनुष्य, पशु-पक्षी चाहे किसी भी योनिका हो, वह नाच उठता है।

नामदानके प्रभावसे पाषाणहृदय और नास्तिकोंको भी अश्रुधारा बहाते हुए—रुदन करते हुए नृत्य करते हुए संकीर्तन-समारोहोंमें सर्वत्र देखा ही जाता है।

नामदानका यह लोकोत्तर चमत्कार एवं प्रभाव है। महाप्रभु एवं उनके अनुयायिगणोंने दशविध-नामापराधसे मुक्त रहकर सभी जीवोंके कल्याणार्थ नामदान किया, वे महादानी कहलाये—

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥

[स्वामी श्रीअजस्रानन्दजी महाराज]

श्रीरमणमहर्षिका उपदेशदान
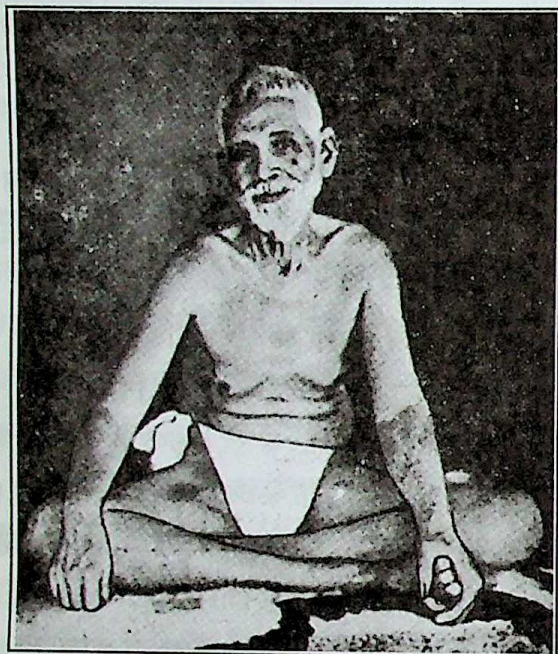
श्रीरमणमहर्षि १८७९ ई० में प्रसिद्ध शिवक्षेत्र तिरुच्चुळीमें पैदा हुए। जब वे १७ वर्षके थे, आकस्मिक प्राप्त हुए मरणभयके कारणसे उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और वे मदुरै क्षेत्रसे पवित्र क्षेत्र अरुणाचल (तिरुवण्णामलै)-को चले गये और वहाँ ५४ वर्षतक रहकर निरन्तर ज्ञानदानका कार्य करते रहे। १९५० ई० में उनकी महासमाधि अरुणाचलमें हुई। ठीक उसी समय एक बड़ा तारा धीरे-धीरे आसमानसे टूटता हुआ दिखायी दिया। यह तारा अरुणाचल गिरिके शिखरकी ओर चला गया और अदृश्य हो गया।

भगवान् श्रीरमण दर्शाते हैं कि परिपूर्ण शाश्वत सुखकी प्राप्ति ही मानवका लक्ष्य है। सांसारिक वस्तुओंका अर्जनकर पंचेन्द्रियोंद्वारा उनके उपभोगसे प्राप्त सुख अत्यल्प एवं अनित्य है। हम ऐसा अल्प सुखानुभवी न बन, परिपूर्ण सुखानुभवी बनें—यही श्रीरमणमहर्षिका हमें निर्दिष्ट उपदेश है। श्रीरमणजीका यह अनुदान मानवके लिये परम कल्याणकारी है।

इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये श्रीरमणजीद्वारा संदर्शित दो मार्ग हैं। वे हैं—(१) आत्मविचार अर्थात् अपनेको 'मैं कौन हूँ?' ऐसा विचारकर जान लेना और (२) आत्मसमर्पण—अपनेको सम्पूर्णतः ईश्वरार्पित कर देना। प्रथम ज्ञानमार्ग है एवं द्वितीय भक्तिमार्ग।

१. आत्मविचार

हम जिस विषयको जानना चाहते हैं, उसपर ध्यान देते हैं। इसी तरह यदि हम अपनेको जानना चाहते हों तो हमें अपने ही ऊपर ध्यान देना चाहिये, किन्तु संसारमें जो सकलविध अनुसन्धान हो रहे हैं, वे सब-के-सब उत्तम पुरुष 'मैं' को छोड़ (अर्थात् अपनेको छोड़) मध्यम पुरुष एवं अन्य पुरुषरूपी जगत् तथा ईश्वरके बारेमें ही हैं, जगत् एवं ईश्वरके सम्बन्धमें विचार करनेवाले बुद्धिरूप मानवने अपनेको अबतक ठीक नहीं जाना है। 'मैं मनुष्य हूँ।' यह कहना अज्ञान ही है, उत्तम पुरुषका वास्तविक ज्ञान नहीं है। शरीरको, जो हमारा स्वत्व है, गलतीसे उसे 'हम' माननेके कारण ही हमलोग कहते हैं, 'मैं मनुष्य हूँ।' स्वत्वाधिकारी मैं कौन हूँ? इस विचारद्वारा शरीरसे अपनेको पृथक् करके जान लेना ही सही ज्ञान है। 'मैं शरीर ही हूँ' यह भान (अहंकार) कृत्रिम उत्तम पुरुष भान ही है। अपनेको अखण्ड आत्मस्वरूप ऐसा जान लेना ही वास्तविक उत्तम पुरुष ज्ञान अथवा आत्मज्ञान है। 'मैं कौन हूँ?' इस विचारद्वारा मनोनिग्रह होगा और मनोनाश होगा। मनमें जबतक विषय-वासनाएँ रहती हैं तबतक **'कोऽहम्'**

(मैं कौन हूँ?) यह विचार आवश्यक है। सदा-सर्वदा मनको आत्मा (उत्तम पुरुष भान)-में सुस्थित रखनेका ही नाम आत्मविचार है। इस प्रकार जीवोपाधिसे मुक्त हो हमारा स्वयं प्रकाशमान होना ही मोक्ष, जीवन्मुक्ति, परनिर्वाण, परमपद, ईश्वर-स्थिति इत्यादि नामोंसे नाना धर्मोंमें उद्घोषित है। जीवबोध-नाशरूपी अहन्ताविनष्ट यह स्थिति ही परमानन्दरूपी अमरता है।

२. आत्मसमर्पण

आत्मसमर्पण माने अहंकारको समग्रत: ईश्वरको समर्पित कर देना। यथार्थमें आत्मविचार एवं आत्मसमर्पण ये दोनों—परिणाममें ही नहीं बल्कि अभ्यास-विधिमें भी एक ही हैं—पृथक्-पृथक् नहीं। जो लोग ईश्वरको मानते हैं, उनके लिये भक्तिमार्गरूपी आत्मसमर्पण उचित है। यह 'मैं' रूपी जीव तथा जगत् जब वास्तवमें ईश्वरके ही स्वत्व हैं, तब शरीरपर 'मैं', 'मेरा'—इस प्रकार अपना अधिकार मानना, ईश्वरके स्वत्वका अपहरणरूपी अपचार ही है। देहाभिमान (अर्थात् शरीरके प्रति 'मैं' और 'मेरा' के रूपमें आसक्ति)-को ईश्वरार्पित कर देनेसे अहम्-विहीन स्थिति प्राप्त होगी। अहंकार-ममकारविहीन यह स्थिति ही आत्मस्वरूप-स्थिति है।

'मैं यह शरीर नहीं हूँ, प्रत्युत शाश्वत परम सद्वस्तु-परब्रह्म ही हूँ'—इस प्रकार परमानुभवी भगवान् श्रीरमण-महर्षिकी दैवी सन्निधि सदाके लिये मौन होकर ज्ञानामृतका निरन्तर दान कर रही है। **[डॉ० एम० डी० नायक]**

दान—श्रद्धाका प्रतिफलन

[श्रीअरविन्दके आलोकमें]

मानवकी प्रकृति दैवी और आसुरी दोनों होती है। उसकी चेतनाको लीलामें प्रारम्भिक स्वाधीनता दी गयी है कि वह आत्मन् और अहंकार इनमेंसे किसीसे भी अपना तादात्म्य स्थापित करके आचरण करे। दैवी और आसुरी सम्पदापर उसका समान अधिकार है। दैवी सम्पदासे सम्पन्न समस्त सत्ता पूर्णरूपसे शुद्ध होती है। उसकी श्रद्धा तेज, अभय, धृति और सत्यमें होती है।

ऐसे मानव यज्ञ और दानका उपयोग अहंके पोषणके लिये नहीं, अपितु प्रकृतिके अन्दर जीवके विकासके लिये करते हैं और श्रीअरविन्द इसे ही दानकी सार्थकता मानते हैं। लोकसम्मत सत्यविधानके आचरणमें दान ही धर्म बन जाता है, आध्यात्मिक जीवन-यापनका साधन बन जाता है और मानवके लिये उसकी परम सत्ताकी ओर जानेका मार्ग एवं उपाय बन जाता है। जीव अपने एकमेव कर्तव्य-कर्महेतु सीधे भागवत-संकल्पद्वारा कर्म करता है और आध्यात्मिक स्तरका यह दान आत्मामें निवासका आलोक प्रस्तुत कर देता है।

मानवजाति अभी भी अज्ञानसे प्रेरित है और वैयक्तिक कामनाकी तुष्टि ही उसका ध्येय है। इससे मुक्त होनेके लिये दान उसके सात्त्विक अंशका प्रयास है। वह तामसिक और राजसिक अहंकारको संयत और नियन्त्रित करनेमें सहायक होता है। जहाँ कहीं भी मानवने किसी प्रकारके विकसित और सुप्रतिष्ठित समाजकी स्थापना की है, वहाँ दानको जीवनके सामान्य विधानमें स्वीकार किया गया है। यह व्यवस्थामें एक उदात्त अवधारणा प्रदान करता है। इसीलिये दानकी पृष्ठभूमिमें श्रद्धा अपरिहार्य है। यह श्रद्धा ही प्रकृति और कर्मविधानको सदाचारकी मर्यादामें संयमित करती है। श्रीअरविन्द इस विधानकी विद्यमानताको मानवकी आशाओंका मूर्तिमान् रूप मानते हैं। इस विधानका बाहरी रूप अलग भले दिखायी दे, पर इसका उद्देश्य ज्ञानदीप्तमनके द्वारा प्रदीप्त आत्मन्का अधिकार जीवनपर प्रस्थापित करना ही है। पाशविक प्रवृत्तियाँ ज्ञान और दानको आडम्बरमें बदलनेकी सतत चेष्टा किया करती हैं। धर्म और सदाचारको अपूर्णता और संकीर्णताका दोषी

ठहराया जाता है, पर सत्य और पूर्णताकी खोजके साधन ज्ञान और दान सर्वदा बने रहते हैं; क्योंकि ये पूर्ण, सर्वोच्च और मूलभूत सत्ताके खोजके साधन हैं।

शास्त्र व्यक्तिके लिये निर्वैयक्तिक वस्तु होता है। शास्त्रका अवलम्बन छोड़कर सनातन चेतनामें प्रवेश कर जाना सात्त्विक मानवके लिये भी सर्वदा सम्भव नहीं होता। अतः शास्त्रविधिका परित्याग मात्र उच्छृंखल चेष्टा है। ज्ञान और दान मर्यादाकी इन सीमाओंका नियमन करते हैं और इनकी डोर श्रद्धाके हाथमें होती है। श्रद्धाका अर्थ है—जगत्‌के सत्यस्वरूपको समझकर तदनुरूप जीवनयापन।

श्रद्धा त्रिगुणातीत नहीं होती। सत्, रज और तमसे चेतनाको मुक्त करके दिव्यजीवनके मार्गपर ले जानेके लिये कर्तव्यकर्मके तीन मुख्य अंग हैं—यज्ञ, दान और तप। समस्त क्रियाओंको मूलतः इन तीन अंगोंमें समाहित किया जा सकता है। श्रीअरविन्द बताते हैं कि समस्त क्रियामें जो कुछ हम हैं या जो कुछ हमारे पास है, उसका दान अर्थात् एक प्रकारका व्यय अन्तर्निहित रहता है जो उस अर्जन या सम्भूतिका मूल्य होता है, वही दान है।

अन्य शास्त्रविहित कर्मोंकी भाँति दान भी यज्ञ है। परम प्रभुके प्रति समर्पित सभी क्रिया-कलाप यज्ञ तो माने जाते हैं, परंतु प्रश्न यह है कि यज्ञ एक बुद्धिहीन अर्धचेतन संकल्पके साथ केवल कर्मकाण्डके लिये किया जाय या ऐसे संकल्पके साथ किया जाय जो सचेतनता और भागवत-ज्ञानपर प्रतिष्ठित है और जिसका लक्ष्य प्रभुके प्रति समर्पणकी उत्तरोत्तर वृद्धि और उद्देश्य केवल उनकी प्रीतिका सम्पादन है।

यज्ञको श्रीअरविन्द विश्वव्यापी संकल्पनाके रूपमें ग्रहण करते हैं। यज्ञपुरुष ब्रह्मका प्रतीक है। दान-यज्ञ सृष्टिको परम पुरुषके चरणोंमें समर्पणका साधन है। यदि प्राणी इसे न करना चाहे तो भी प्रकृति इसे करनेको विवश करती है। कुल और समाजमें इसे करनेकी परम्परा है। इसके साथ दक्षिणा उसे आत्मसम्मत बनाती है—'**दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते।**' दान, यज्ञके मन्त्र और संकल्प ज्ञानके सूक्ष्म शरीर हैं, जो यज्ञपुरुषको अर्पित हैं।

विशुद्ध दान सत्यके द्वारा प्रेरित होता है, धर्मसम्मत होता है और कर्तव्यकर्मके प्रति स्वतः स्फूर्त होता है। वह हमारे जीवनके परिचालक दिव्य विधानद्वारा कराया जाता है। यह दान व्यक्ति नहीं करता, भगवत्संकल्पकी परिपूर्तिके लिये किया जाता है। यह अमृतधर्मका साधन है। दिव्य दानमें अन्तरात्मा यन्त्रमात्र होती है। यज्ञके अधीश्वर जीवमें विद्यमान अपनी शक्तिके कर्मोंको अपनी ही विश्वरूप सत्ताके प्रति अर्पित कर रहे होते हैं।

श्रीअरविन्द दानकी पालिका शक्तिको तुच्छ मानकर अस्वीकृत नहीं करते। वह तो विष्णुशक्ति है—'**दानं व्ययः कौशलं भोगलिप्सेति वैश्यशक्तिः।**' यहाँ दान-प्रतिदान समुद्र और लहरोंकी तरह एक ही है। लीलामें दोनों अलग प्रतिभासित होते हैं। यह पुरुषोत्तमकी दानलीला है।

एक दिया तो वे दो देते, दो देनेपर चार।
शत के सम्मुख कोटि धरें वे, अनन्त यह सम्भार॥

यहाँ दानी कृष्णका अंश और विष्णुशक्तिका वाहक है। यज्ञपुरुष लीलाके लिये है, सभी पदार्थोंका दान आनन्दके लिये है। इस स्तरपर चेतना जब पहुँचती है तो ज्ञानयज्ञ सार्थक होता है।

दान समग्र चेतनाका तप है। प्रकृतिकी शक्तिको पुरुषोत्तमके संकल्पसे संयुक्त करनेका मार्ग है। '**इदं न मम**' की मनोचेतनाको साधित करनेका प्रयास है। सात्त्विक दान वह है, जो शुद्ध बुद्धिके साथ, सदिच्छा और सहानुभूतिके साथ समुचित देश-कालको देखकर ऐसे सत्पात्रको अर्पित किया जाता है जो दानके योग्य होता है और वस्तुतः दान उपकारी होता है। इस दानकी पराकाष्ठा कर्मके अन्दर जगत् और जगदीश्वरके प्रति व्यापक आत्मार्पणकी क्रमशः वृद्धि करती है।

इस सम्पूर्ण नानारूप विश्वका मूल है कि परमेश्वर स्वयंको और स्वयंकी शक्तियोंका दान करते हैं। अतः समस्त तप और दान इसी अखण्ड और दिव्य कर्मके प्रतीक हैं। **[श्रीदेवदत्तजी]**

दानसे धनकी शुद्धि होती है

[ब्रह्मनिष्ठ संत पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके सदुपदेश]

—धन-सम्पत्ति आदि सब कुछ प्रभुकी अनुकम्पासे ही प्राप्त होते हैं। हम नहीं ईश्वर ही सम्पूर्ण संसारके मालिक हैं, ऐसा मानकर धनका धर्म तथा परोपकारके कार्योंमें उपयोग करते रहना चाहिये। यज्ञ, सेवा, परोपकार-जैसे सत्कर्मोंके लिये दान दिया गया धन ही सार्थक होता है।

प्रश्न—शरीर, वाणी, धन और अन्त:करण किस प्रकार शुद्ध होता है?

उत्तर—१-झूठ, हिंसा और व्यभिचारके त्यागसे शरीर शुद्ध होता है।

२-भगवन्नामके जपसे वाणी शुद्ध होती है।

३-दानसे धन शुद्ध होता है।

४-धारणा और ध्यानसे अन्त:करण शुद्ध होता है।

—अधर्म तथा अन्यायसे अर्जित धनका दान फलदायक कदापि नहीं होता। अन्यायोपार्जित धन विषके समान होता है। जो अन्यायसे धन कमाते हैं, उनके चारों तरफ विष-ही-विष है। विषभरे धनके दानसे कोई भी सत्कर्म भला पुण्यदायक कैसे हो सकता है?

—श्रीभगवान् दान करनेवालेपर प्रेम करते हैं, किंतु जो कंगाल होते हुए भी दान करता है, उसपर अधिक प्रेम करते हैं। भगवान् लोभीपर क्रोध करते हैं, किंतु जो धनी होकर भी लोभ करता है—दान नहीं करता, उसपर अधिक क्रोध करते हैं।

—संसारके प्रवाहसे बचनेके चार सेतु हैं। इनके द्वारा संसार-समुद्रको सुगमतासे पार किया जा सकता है—

१-ईश्वर, गुरु और शास्त्रमें श्रद्धा।

२-क्षमा।

३-सहनशीलता।

४-सत्य और दान।

—तीन साधन बहुत लाभदायक-कल्याणकारी हैं—

१-सबको भगवत्स्वरूप समझकर दया-परोपकार करना।

२-एकान्तमें भगवान्‌का भजन, नाम-स्मरण करना।

३-सन्तोंका श्रद्धापूर्वक सत्संग करना।

—वही दाननिष्ठ है, जो सर्वस्व नाशकी सम्भावना होनेपर भी दान दिये बिना नहीं रहता।

—वही परोपकारनिष्ठ है, जिसके घरमें अन्नका भी अभाव है, फिर भी जो दूसरेको दु:खी देखकर उसे दिये बिना नहीं रह सकता।

—वही भक्तिनिष्ठ है, जो तिनकेसे भी छोटा बनकर और सर्वत्र भगवद्दृष्टि होनेसे सबको बड़ा मानकर सभीकी सेवामें संलग्न है।

—दान, रुपया, पैसा लेनेसे साधुका तप क्षीण हो जाता है।

—साधुको भोजन (भिक्षा)-वस्त्र देना चाहिये, किंतु धन देकर उसे साधुत्वसे वंचित करनेका पाप नहीं लेना चाहिये।

—साधुको क्षुधापूर्तिके लिये भिक्षा माँगनी चाहिये, अन्य कार्यके लिये धन न माँगना चाहिये, न स्वीकार करना चाहिये।

—ब्राह्मणको दानमें उतना ही धन या वस्तु स्वीकार करनी चाहिये, जितनेकी आवश्यकता हो। संचयके लिये दान स्वीकार करना उचित नहीं है। धनकी अधिक लालसा ब्राह्मणत्वका नाश कर डालती है।

[प्रस्तुति—भक्त श्रीरामशरणदासजी]

दानसे अनेक जन्मोंतक सुख प्राप्त होता है

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

[प्रस्तोता—भक्त श्रीरामशरणदासजी]

हमारे वेद, शास्त्रों, पुराणोंमें दानकी बड़ी महिमा बतायी गयी है। वेद कहते हैं—'**एतस्य वाऽक्षरस्य शासने ददतो मनुष्याः प्रशंसन्ति।**' दान देनेवाले मनुष्य इसी ब्रह्मके शासनमें प्रशंसा प्राप्त करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

(गीता १८।५)

यज्ञ, दान एवं तप—इन तीन सत्कर्मोंको कदापि नहीं छोड़ना चाहिये। यज्ञ, दान, तप मनीषीजनोंको भी पवित्र एवं पावन करनेवाले हैं। श्रद्धा एवं सामर्थ्यसे किया गया दान लोक-परलोक दोनोंमें कल्याण करनेवाला होता है। दान करनेसे धन एवं विद्याकी निरन्तर स्वभावतः वृद्धि होती रहती है। शास्त्रमें कहा गया है—

मूर्खो हि न ददात्यर्थानिह दारिद्र्यशङ्कया।
प्राज्ञस्तु विसृजत्यर्थान् तयैव ननु शङ्कया॥

दान देनेसे धन समाप्त होगा या दरिद्रता आयेगी—यह मूर्खोंकी ही सोच हो सकती है। मूर्ख दरिद्रताकी आशंकाके वशीभूत दानके पुण्यसे वंचित रहता है। विवेकी पुरुष हर क्षण, हर स्थितिमें यथाशक्ति दान देनेको तत्पर रहकर अनेक जन्मोंका सुख प्राप्त करता है।

दान सुपात्रको दिया जाय—इसका ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। कुपात्रको, दुर्व्यसनीको, दुराचारीको दिया गया दान—पुण्यकी जगह पापदायक हो सकता है। अपात्रको दिया गया दान 'पिशाचदान' की श्रेणीमें माना गया है। कुपात्रको दान देना शास्त्रोंमें निरर्थक तथा अकल्याणकारी माना गया है। शास्त्रमें कहा गया है—'**कुपात्रदानेषु भवेद् दरिद्री**' कुपात्रको दान देनेसे दूसरे जन्ममें दरिद्री होना पड़ता है, वहीं कहा गया है कि कुपात्रको दानमें मिली भूमि उसके अन्तःकरणको, गाय उसके भोगोंको, स्वर्ण उसके शरीरको, वाहन उसके नेत्रोंको, घी उसके तेजको समूल नष्ट कर देते हैं। अतः दान देने तथा लेनेवालोंको पात्रतापर विचार अवश्य कर लेना चाहिये।

दान देनेके आकांक्षीको यह जान लेना चाहिये कि वही धन उत्तम तथा फलदायक होता है, जो पूर्ण ईमानदारी तथा प्रयत्नसे उपार्जित किया गया है। अधर्मयुक्त विधिसे अर्जित धनका दान कदापि फलदायक नहीं होता। दान देते समय याचकके प्रति प्रेम तथा श्रद्धा-भावना होनी चाहिये।

राजा बलिकी दानशीलताकी अनूठी कथा

राजा बलि अनूठे दानी थे। जिस समय वे वामनरूप धारणकर याचनाके लिये आये भगवान् (श्रीविष्णु)-को तीन पग भूमि देनेको प्रस्तुत हुए, उस समय उनके गुरु शुक्राचार्यने उन्हें समझाया कि इन्हें साधारण ब्राह्मण न समझो—ये महाविष्णु हैं, तुम्हें छलने आये हैं। किंतु राजा बलि तनिक भी विचलित नहीं हुए और उन्होंने बड़े विनम्र शब्दोंमें गुरुदेवसे निवेदन किया—'आपने जो कुछ भी कहा, वह बिलकुल सत्य है, किंतु आपके शब्दोंमें यदि ये महाविष्णु हैं तो मैं इन्हें मनचाही भूमि अवश्य प्रदान करूँगा, कारण जिन विष्णुको आप-जैसे शास्त्रीय विधानके विज्ञाता नानाविध यज्ञोंद्वारा प्रसन्न करते हैं, वही वरद विष्णु स्वयं हमारे यहाँ याचक बनकर आये हैं, फिर इन्हें निराश कैसे कर सकता हूँ? यदि ये विष्णु न होकर दूसरे भी हों तब भी इन्हें भूमि अवश्य प्रदान करूँगा।'

यजन्ति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता
भवन्त आम्नायविधानकोविदाः।
स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो
दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने॥

(श्रीमद्भा० ८।२०।११)

गुरुदेव शुक्राचार्यने अपनी बात न माननेपर रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया कि आज्ञाका उल्लंघन करनेके

कारण शीघ्र ही राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट होना पड़ेगा। फिर भी महाभाग बलि अपने पृथ्वीदानके निश्चयसे विचलित नहीं हुए और उन्होंने धर्मपत्नी विन्ध्यावलिके साथ भगवान्‌के चरण-कमलोंको पखारा, उस पावन जलको सिरपर छिड़का तथा भगवान्‌से विनीत शब्दोंमें कहा—'लीजिये, नाप लीजिये।' भगवान्‌ने दो ही पगोंमें समस्त विश्वको नाप लिया। तीसरे पगके लिये बलिसे कहा कि 'बले, तुमने हमें तीन पग दिया, सो तुम्हारा सम्पूर्ण राज्य दो ही पग हुआ। स्वीकार करके भी तीसरा पग न दे सके, अतः तुम्हें कुछ दिनके लिये नरक भोगना पड़ेगा।' बलिने कहा—'भगवन्! आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि धनसे धनी बड़ा होता है। ऐसी स्थितिमें यदि इस दासका धन दो पग हुआ तो यह दास भी—इसका शरीर भी कम-से-क़म एक पगके लायक तो होगा ही। अतः तीसरे पगके लिये श्रीचरण हमारे सिरपर रखकर मुझे नाप लें। आपने मुझे अभी नरकका भय दिखाया है, तो हे नाथ! पदच्युत होकर नरक जाने, पाशबन्धन, महाविपत्ति, महती दरिद्रता आदिसे मुझे उतना भय नहीं है, जितना कि मैं असाधुवाद अर्थात् अपकीर्तिसे डरता हूँ'—

बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो
न पाशबन्धाद् व्यसनाद् दुरत्ययात्।
नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहाद-
साधुवादाद् भृशमुद्विजे यथा॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। ३)

प्रभु तो परम सरल स्वभावके हैं। फलतः भगवान्‌ने महाभाग बलिसे कहा—'मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ—कहो क्या दूँ?' राजा बलि हँस पड़े और कहने लगे—'नाथ, अभी तो आप मुझसे याचक बनकर तीन पग भूमि माँगने आये और अब दानी बनकर मुझसे माँगनेको कहते हो। नाथ, अब मुझे कुछ नहीं चाहिये।' भगवान्‌ने फिर बहुत आग्रह किया, किंतु बलिने कुछ नहीं माँगा। भगवान्‌ने फिर स्वयं उन्हें पाताललोकका राज्य दिया, जो स्वर्गसे कोटिगुणित सुख-समृद्धियुक्त है तथा वहाँके निवासी अनन्त कालतक जीते रहते हैं।

इतना देनेपर भी भगवान्‌को सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें यह शंका बनी रही कि इनके दानके सामने मैंने कुछ नहीं दिया। यदि यह कुछ माँग लेता तो मुझे सन्तोष हो जाता। इसलिये भगवान्‌ने फिर बड़े आग्रहसे कहा—'बले, मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम अत्यन्त निःस्पृह हो, अतः तुम्हें कुछ न चाहिये। किंतु मेरे सन्तोषके लिये कुछ अवश्य माँग लो।' बलिने कहा—'दयामय, आपने तो बिना माँगे ही जो मेरे मनोरथमें न था, उसे प्रदान किया, फिर भी यदि देना चाहते हैं तो यही माँगता हूँ कि प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही आपका मंगलमय दर्शन हो।' भगवान् बड़े प्रसन्न हुए कि भला इसने माँगा तो। अब वे विचार करने लगे कि यह तो पातालमें बारहदरीमें सोयेगा, फिर उठते समय पता नहीं किधर इसका मुख होगा। अतः बारहों द्वारोंपर मुझे रहना चाहिये। यह सोचकर उन्होंने बारह रूप बनाकर सभी दरवाजोंपर पहरा देना प्रारम्भ किया। कुछ समय पहले याचक बने भगवान् दानशील राजाके पहरेदार बननेको विवश हो गये। ऐसे हैं दयालु हमारे भगवान्। राजा बलि और वामनरूपी भगवान्-जैसे दानदाता और याचक भला कहाँ मिलेंगे!

भगवान्‌से ही माँगना चाहिये

यदि किसी को अभावके कारण धनकी आवश्यकता है तो उसे किसीसे दान न माँगकर भगवान्‌से ही माँगना चाहिये। शास्त्र कहते हैं—

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातेर्दातुः परायणम् (महोपनिषद् २। ९)। **तिष्ठमानस्य तद्विदः।**

ब्रह्म विज्ञान और आनन्दस्वरूप हैं और धन देनेवाले एकमात्र आश्रय हैं अर्थात् धन-दान देनेवाले भी वहींसे धन प्राप्त करते हैं तो हम भी साक्षात् उन्हींसे क्यों न माँगें। दान देनेवालेको भी सोचना चाहिये कि हम जो दे रहे हैं, वह भगवान्‌की कृपासे ही दे रहे हैं। यदि भगवान् हमें नहीं देते तो हम कहाँसे देते? लोग भ्रमवश समझते हैं कि देनेसे वस्तु घटती है, किंतु शास्त्र कहते हैं कि देनेसे ही वस्तु मिलती है **'नादत्तं कस्योपतिष्ठते'** बिना दिये किसीको क्या मिलेगा। **[प्रेषक—श्रीअनिरुद्धकुमार गोयल]**

दानवेन्द्र बलिपर भगवान्‌की अद्भुत कृपा

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

राजा बलि तमाम लोक-लोकान्तरोंको जीतकर राजा इन्द्र हो गया। लोग पहले सौ अश्वमेध करते हैं तब इन्द्र होते हैं, परंतु राजा बलि पहले इन्द्र हो गया, फिर सौ अश्वमेधकी उसने तैयारी की।

कहते हैं, बलि पूर्वजन्मका कोई जुआरी था। एक दिन जुएमें कहीं कुछ पैसे पाये। उन पैसोंकी उसने एक माला खरीदी अपनी प्रियतमा वेश्याके लिये। माला हाथमें लिये वह जा रहा था। किसी पाषाणसे ठोकर खाकर गिर पड़ा। मूर्च्छित हो गया। कुछ देरमें होश हुआ तो उसने अनुभव किया, 'अब मैं मर जाऊँगा।' सोचने लगा—मेरी इस मालाका क्या होगा? मेरी यह बहुत खूबसूरत माला मेरी प्रियतमातक तो पहुँची नहीं। हाँ ठीक है, कभी मैंने महात्माके मुखसे सुन रखा है, वस्तु 'शिवार्पण' कर देनेसे बहुत लाभ होता है। 'शिवार्पण' कर देनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा। न होगा तो मर तो रहा ही हूँ, माला तो बेकार जा ही रही है। इस दृष्टिसे जुआरीने माला शिवजीको अर्पण कर दी।

जुआरी माला 'शिवार्पण' करके मर गया। यमराजके दूत पकड़कर ले गये। यमराजके सामने खड़ा किया। उन्होंने चित्रगुप्तसे कहा—'देखो, इसका बहीखाता।'

चित्रगुप्तने कहा—'यह तो जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरका पापी है। बस, अभी-अभी थोड़ी देर पहले द्यूतमें पैसा पाकर इसने माला खरीदी थी वेश्याके लिये। ठोकर खाकर रास्तेमें गिर पड़ा। इसने देखा कि माला अब निरर्थक हो रही है तो शिवार्पण कर दिया। बस, यही एक इसका पुण्य है।'

धर्मराज जुआरीसे बोले—'भाई! तुम पहले पुण्यका फल भोगोगे या पापका?'

जुआरीने कहा—पाप तो जन्म-जन्मान्तरके हैं, उनको भोगने लगेंगे, तो उनके अन्तका कुछ पता नहीं, इसलिये पहले पुण्यका फल चाहिये।

यमराजने कहा—'तुम दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकके मालिक बने।'

जुआरी दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकका मालिक बना, इन्द्रासनपर विराजमान हुआ। अप्सराएँ गुणगान करने आयीं, गन्धर्व गुणगान करने आये। उन गन्धर्वोंमें नारद भी थे। नारदको हँसी आ गयी, हँस दिये।

जुआरी बोला—बताओ, क्यों हँसते हो?

नारदजीने कहा—हमको श्लोक याद आता है, इसको पूर्वमीमांसक भी मानते हैं और नैयायिक भी मानते हैं—

सन्दिग्धे परलोकेऽपि कर्तव्यः पुण्यसञ्चयः।
नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः॥

(श्लोकवार्तिक, कुमारिलभट्ट)

अर्थात् परलोकमें संशय हो तो भी पुण्यका संचय करते चलो। अगर परलोक नहीं है तो आस्तिक का कोई नुकसान नहीं है। कहीं परलोक सत्य हुआ तो नास्तिक मारा जायगा।

नारदजीने कहा—'जुआरी! तू जन्म (जीवन)-भर जुआ खेलता था। जुएमें कोई निश्चित आमदनी तो होती नहीं—'लग गया तीर नहीं तो तुक्का।' तूने यही सोचा कि 'शिवार्पण' करनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा, न होगा तो मर तो रहे ही हैं, माला तो बेकार जा ही रही है, शिवको अर्पण कर दें। इस दृष्टिसे तूने शिवार्पण किया और उसका परिणाम यह हुआ कि दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकका स्वामी है। इसलिये मुझे हँसी आयी।'

जुआरी सिंहासनसे उतरा और नारदजीसे बोला—'गुरुदेव! अब हम सारे इन्द्रासनपर तुलसीदल रख देते हैं।' किसी ब्राह्मणको बुलाया और चिन्तामणिका दान कर दिया। किसी ब्राह्मणको बुलाया और नन्दनवनका दान कर दिया। किसी ब्राह्मणको बुलाकर ऐरावतका दान कर दिया, अमृतके कुण्ड-के-कुण्डका दान कर दिया। इस तरह

सम्पूर्ण इन्द्रलोकका ही दान उस जुआरीने कर दिया।
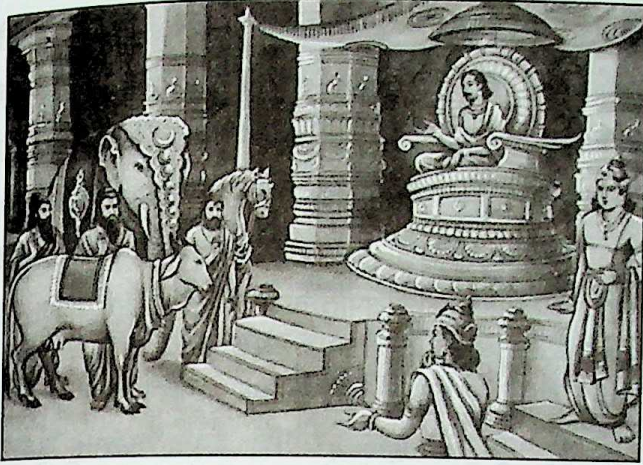
इतनेमें दो घड़ी बीत गयी।

इन्द्र आया और बोला—'हमारा ऐरावत हाथी कहाँ गया?'

उत्तर मिला—'जुआरी दान कर गया।'

इन्द्र बोला—'कामधेनु आदि कहाँ हैं?'

उत्तर मिला—'सब कुछ जुआरीने दानमें दे डाला।'

बड़े बिगड़े इन्द्र। यमराजके पास आये। यमराज भी जुआरीको डाँटने लगे।

जुआरीने कहा—'भैया! हमें जो करना था हमने कर लिया, अब आपको जो करते बने, सो आप करो।'

यमराजकी आँखें खुलीं। उसने कहा—अब यह नरक नहीं जायगा, अब तो यह इन्द्र ही होगा। जब नाजायज उद्देश्यसे खरीदी हुई, नाजायज पैसेकी मालाको संशय रहनेपर भी 'शिवार्पण' कर दिया, उसके फलस्वरूप दो घड़ीके लिये इन्द्र बना, तो अब इसने विधिवत् इन्द्रलोकका ही दान कर दिया है। इसलिये यह इन्द्र ही होगा। वही जाकर राजा बलि बना।

इन्द्र प्राय: त्यागी नहीं होते। अविवेकी इन्द्रोंमें औदार्य नहीं होता। तभी वे अक्षर तत्त्वके अनुसन्धानमें तत्पर और जगत्से पूर्ण विरक्त महापुरुषोंको भी धन-जन और स्वर्गादिमें आसक्त होकर ही तपस्या करनेवाले समझकर उपद्रव करते हैं। लेकिन राजा बलि ऐसा नहीं था। बड़ा त्यागी था। अपना सर्वस्व भगवान् वामनको उसने शुक्राचार्यके मना करते रहनेपर भी सौंप दिया।

यह देखकर शुक्राचार्यजी नाराज हो गये। शाप दे दिया, पर बलिने दान कर दिया। फिर क्या बात थी। भगवान्‌ने बलिका दो पगमें सब कुछ ले लिया। तृतीय पगका दान बाकी रहा।

भगवान् बोले—तुमने तीन पगका दान दिया था न? दो पगमें मैंने तेरा सब कुछ ले लिया। एक पग तो बाकी ही रहा।

भगवान्‌के पार्षदोंने वारुण-पाशमें राजा बलिको बाँध दिया।

बलिने कहा—'पूछ लूँ एक बात!'

भगवान्‌ने कहा—'पूछ लो।'

बलिने कहा—'धन बड़ा होता है कि धनवान् बड़ा होता है?'

भगवान्‌को उसके लिये कहना पड़ा—'राजन्! धन बड़ा नहीं होता, धनवान् बड़ा होता है।'

बलि—'भगवन्! धनवान् बड़ा होता है धनसे आपको यह मान्य है न?'

भगवान्—'हाँ-हाँ, मान्य है।'

बलि—'तो मैं धनवान् हूँ न? मैं अपने-आपको ही अर्पित कर रहा हूँ, तीसरा पैर पूरा करनेके लिये। तीसरा पग मेरे सिरपर धरो और बस मेरा दान पूरा हो गया।' 'जब धनसे बड़ा धनवान् है' यह मान्य ही है तो सांगता-सिद्धिके लिये जो कुछ चाहिये, उसके सहित मेरा दान पूरा हो गया।' दान-पूर्ति और सांगता-सिद्धिके लिये मुझ धनवान्‌के सिरपर ही आपके श्रीचरण प्रतिष्ठित हों।

भगवान्‌ने ब्रह्माजीसे कहा—'हमने इस (बलि)-का यश दिग्दिगन्तमें विकीर्ण-विस्तीर्ण करनेके लिये यह सब गड़बड़ किया है, परंतु इसने कोई गड़बड़ नहीं की। इसका ढंग बहुत सौम्य है। भगवान् बोले—'भाई! तुम्हें क्या दें?' बलि बोले—'महाराज! हमारी जिधर भी दृष्टि जाय, उधर हम आपका ही दर्शन करें।'

कहते हैं, राजा बलिकी बैठकके बावन दरवाजे हैं। भगवान्‌ने सोचा, न जाने किस दरवाजेपर बलिकी दृष्टि चली जाय? तो बावनों दरवाजोंपर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए सर्वान्तरात्मा ब्रह्माण्डनायक भगवान् पहरेदारके रूपमें विराजमान हैं।

जीवोंपर श्रीभगवान्‌की अहैतुकी कृपा सदा ही रहती है। जीव केवल अपने त्याग, तपस्या आदि साधनोंके बलपर इस

भवसागरसे कभी तर नहीं सकता। बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र, महात्मागण अनन्त जन्मोंतक त्याग-तपस्या आदि साधनकर श्रीभगवान्के पास पहुँचते हैं। किंतु जब भगवान्की भास्वती अनुकम्पा भक्तोद्धारके लिये आतुर हो जाती है, तब श्रीभगवान् स्वयं भक्तके पास जानेके लिये बाध्य हो जाते हैं और वे उसका कृपापूर्वक उद्धार करते हैं। श्रीभगवान्ने वामनरूप धारणकर दानवेन्द्र बलिको बाँध लिया। वह घटना सचमुच बड़ी ही करुणापूर्ण थी। जिसने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया हो, उस बलिके प्रति श्रीभगवान्का यह व्यवहार आपाततः सहसा बड़ा कठोर-सा प्रतीत होता है, किंतु विचार करनेपर ज्ञात होता है कि इस लीलाके मूलमें भी उन कृपालुकी अनन्त कृपा ही छिपी है। ब्रह्माजी कुछ कहना चाहते थे, पर इसी बीच महामना बलिकी पत्नी श्रीविन्ध्यावलीजी श्रीभगवान्के सामने आ जाती हैं। वे कहती हैं—

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते
स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः।

(श्रीमद्भा० ८। २२। २०)

अर्थात् 'प्रभो! आपने अपनी क्रीडाके लिये ही इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है, पर यहाँ जो कुबुद्धि हैं, वे आपकी इस सम्पत्तिपर अपना स्वामित्व अंगीकार करते हैं।' वस्तुतः सारा विश्व भगवान्का है; अतः सर्वस्व समर्पण ही मनुष्यका परम कर्तव्य है। इसमें भी भगवत्कृपा ही कारण होती है।

श्रीप्रह्लादजीने कहा कि 'प्रभो! लोग कहते हैं कि भगवान् देवताओंका पक्षपात करनेवाले हैं, किंतु आज यह बात विदित हो गयी कि तत्त्वतः आप असुरोंके भी पक्षपाती हैं, उनपर भी आपकी अजस्र कृपा रहती है। तभी तो आप बलिके घरमें उनके सभी द्वारोंपर चक्र लिये हुए खड़े दिखायी पड़ते हैं। यह कैसी विशेषता है कि आप किसी देवताके यहाँ चक्र लिये खड़े नहीं दीखते, पर बलिके यहाँ पहरा दे रहे हैं।'

यह महान् आश्चर्य है कि भगवान् वामनरूपमें दानवेन्द्र बलिके सभी द्वारोंपर खड़े दीखते हैं। बलिकी आँखें जहाँ जाती हैं, वहीं श्रीभगवान् दिखायी पड़ते हैं। बलिका जीवन परम धन्य है। वस्तुतः यह सब बलिके दानकी महिमा है।

दानका फल

भूप्रदो मण्डलाधीशः सर्वत्र सुखितोऽन्नदः॥
तोयदाता सुरूपः स्यात् पुष्टश्चान्नप्रदो भवेत्। प्रदीपदो निर्मलाक्षो गोदातार्य्यमलोकभाक्॥
स्वर्णदाता च दीर्घायुस्तिलदः स्याच्च सुप्रजः। वेश्मदोऽत्युच्चसौधेशो वस्त्रदश्चन्द्रलोकभाक्॥
हयप्रदो दिव्यदेहो लक्ष्मीवान् वृषभप्रदः। सुभार्यः शिबिकादाता सुपर्यङ्कप्रदोऽपि च॥
श्रद्धया प्रतिगृह्णाति श्रद्धया यः प्रयच्छति। स्वर्गिणौ तावुभौ स्यातां पततोऽश्रद्धया त्वधः॥

भूमिदान करनेवाला मण्डलेश्वर होता है, अन्नदाता सर्वत्र सुखी होता है और जल देनेवाला सुन्दर रूप पाता है। भोजन देनेवाला हृष्ट-पुष्ट होता है। दीप देनेवाला निर्मल नेत्रसे युक्त होता है। गोदान देनेवाला सूर्यलोकका भागी होता है, सुवर्ण देनेवाला दीर्घायु और तिल देनेवाला उत्तम प्रजासे युक्त होता है। घर देनेवाला बहुत ऊँचे महलोंका मालिक होता है। वस्त्र देनेवाला चन्द्रलोकमें जाता है। घोड़ा देनेवाला दिव्य शरीरसे युक्त होता है। बैल देनेवाला लक्ष्मीवान् होता है। पालकी देनेवाला सुन्दर स्त्री पाता है। उत्तम पलंग देनेवालेको भी यही फल मिलता है। जो श्रद्धापूर्वक दान देता और श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों स्वर्गलोकके अधिकारी होते हैं तथा अश्रद्धासे दोनोंका अधःपतन होता है। (स्क०पु०ब्रा०ध०मा० ६। ९५—९९)

सनातन हिन्दू संस्कृतिमें दान-महिमा

[ब्रह्मलीन श्रीदेवराहा बाबाजीके उपदेश]

एक बारकी बात है, भक्तिरसमय श्रीवृन्दावनधाममें यमुना नदीके तटपर ब्रह्मलीन श्रीदेवराहा बाबा दानके स्वरूपपर अपना अनुभव प्रस्तुत कर रहे थे। उन्होंने बताया—

देनेका भाव 'दान' कहा जाता है। दानद्वारा ही मनुष्यका अन्तःकरण पवित्र होता है और पवित्र अन्तःकरण होनेपर ही भगवान्‌की प्राप्ति होती है। दानका अर्थ केवल धनका ही दान नहीं है, बल्कि दानका अर्थ भगवान्‌के प्रति मन, बुद्धि, श्रद्धा और विश्वास अर्पित करना भी है। सब कुछ भगवान्‌ने ही हमें दिया है, हमारा अपना कुछ नहीं है। भगवान्‌द्वारा दी हुई वस्तु भगवान्‌को ही देना दानका सच्चा स्वरूप है।

दान आत्मकल्याणका महत्त्वपूर्ण साधन है। भगवान्‌ने गीता (१८।५)-में कहा है—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

अर्थात् यज्ञ, दान और तपरूप कर्मका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। ये मनीषियोंको पवित्र करते हैं। दान करनेकी सामग्रियाँ तथा शक्तियाँ अनन्त रूपोंमें भगवान्‌ने हमें दी हैं। उनका सदुपयोग करनेकी विवेकशक्ति भी उन्होंने हमें प्रदान की है। लेकिन उधर ध्यान नहीं देनेके कारण उस नित्यप्रभुके नित्ययोगका अनुभव हमें नहीं होता। यदि प्रभुको अपने हृदयमें देखना चाहते हो तो सत्संग, स्वाध्याय, नाम-कीर्तन तथा प्रभुकी लीलामें अपने मन एवं बुद्धिको जोड़ दो, यही जीवनदान सच्चा पारमार्थिक दान है। भगवान्‌ने भी इसी जीवनदानके विषयमें कहा है—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

(गीता १२।८)

नाम-साधनामें लगना श्रद्धा और विश्वासका दान है। दान वास्तवमें भगवान्‌के प्रति श्रद्धा और विश्वासरूप आत्मसमर्पण है, जिसकी अनुभूति प्रकट करते हुए तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥

(रा०च०मा० ७।९०क)

भगवान्‌की कृपा बिना न तो उनमें विश्वास होता है और न उनका भजन ही होता है। भजन करना भक्तका आत्मसमर्पण-भाव है। आत्म-समर्पण-भावके बिना भगवान्‌का अनुभव अपने हृदयमें नहीं होता है। इस प्रकार आत्मसमर्पण-रूप दानकी महिमा अपार है। यह मानव-शरीर भगवान्‌की भक्ति-साधनामें लगनेके लिये ही प्राप्त हुआ है, अतः इसे भगवान्‌में लगाना ही जीवनमें सच्चा दान है। दानकी महिमा हृदयसे ही समझी जाती है।

आत्मभाव तथा ईश्वरभावमें रहनेवाले मनुष्य देवमानव कहे जाते हैं तथा शरीर एवं संसारके भावमें रहनेवाले मनुष्य असुरमानव कहे जाते हैं। देवमानवकी प्रवृत्ति दैवीप्रवृत्ति और असुरमानवकी प्रवृत्ति आसुरीप्रवृत्ति कही जाती है। सब प्रकारके धन भगवान्‌के ही दिये हुए हैं, ऐसा समझकर मानव भगवद्भावसे जो दान देता है, वह सर्वश्रेष्ठ दान है। दानकी क्रिया शास्त्रविहित शुभकर्म है, लेकिन इसका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ न होनेपर केवल कर्ममात्र ही रह जाता है। अज्ञान और स्वार्थभाव रहनेसे दानद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि अर्थात् आत्मशुद्धि नहीं हो पाती।

शरीर और जीव—दोनोंके मालिक भगवान् हैं, अतः भगवान्‌की भावनासे ही दान करना सर्वोत्तम है।

मनुष्योंका अधिकार केवल उतने ही धनपर है, जितनेसे उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्तिको जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये। मनुष्यको प्रारब्धसे प्राप्त और दान आदिसे बचे हुए धनका ही उपयोग अपने जीवनमें करना चाहिये। आत्मभाव ही भगवान्‌का भाव है। सबमें भगवान् देखते हुए नित्य दान करना चाहिये।

सात्त्विक दान करनेसे आत्मसाक्षात्कार होता है। दान करनेसे दाताका मन पवित्र बनता है और दुर्गुण एवं दुराचारकी मात्रा घटती ही है। मनुस्मृतिमें बताया गया है कि इस कलियुगमें धर्मके चार चरणोंमें केवल एक धर्म

'दान' ही बच गया है—

'दानमेकं कलौ युगे।' तुलसीदासजीने इसीका भाव बताते हुए कहा है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

(रा०च०मा० ७। १०३ख)

अर्थात् किसी भी प्रकारसे दान दिया जाय तो दाताका कल्याण ही होता है। इसलिये मनुष्यको दान देनेका स्वभाव अवश्य बनाना चाहिये। दान देना शुभ कर्म है और इससे शुभ संस्कार बनते हैं। जिससे अन्तःकरण निर्मल बनता है, उसे संस्कार कहते हैं।

पूज्य बाबाने दानके सम्बन्धमें विशेष बात बताते हुए कहा—'बच्चा! भक्तमें एक भगवद्भावनाकी विशेषता रहती है। वह भगवद्भावनासे दान देकर भगवान्‌को प्रसन्न करता है। कलियुगमें नाम-संकीर्तनकी विशेष महिमा है। भक्त भगवान्‌का नाम-संकीर्तन करते हुए ही कोई वस्तु दूसरोंको देता है। भगवान्‌की भावनासे दान करनेपर भक्त गुणातीत बन जाता है और उसे भगवान्‌के समग्र रूपका अनुभव हो जाता है जो मानव-जीवनका अन्तिम लक्ष्य है। दानका सच्चा रूप आत्म-समर्पण है। अतः भक्तिभावसे दान करना उचित है। दानका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। भगवत्प्राप्तिमें देहासक्ति तथा कर्मफलासक्ति मिट जाती है।

तुलसीदासजीने दानकी भावनाको धर्म तथा भक्तिमणि, दोनों कहा है। उनकी वाणी देखी जाय—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥

(रा०च०मा० ७। ४१। १, ७। १२०। १०-११)

छोटे-से-छोटा और साधारण-से-साधारण कर्म भी यदि भगवान्‌के उद्देश्यसे निष्कामभावपूर्वक किया जाता है तो उससे भगवत्प्राप्ति हो जाती है। भगवान्‌की प्राप्तिमें क्रियाकी प्रधानता नहीं है, बल्कि श्रद्धाकी विशेष महत्ता है। आध्यात्मिक संस्कृतिमें साधककी श्रद्धाका विशेष मूल्य है। अतः दान ईश्वर-भावसे करना चाहिये। दानद्वारा भगवत्प्राप्ति होती है, यह दानकी अपार महिमा है।

[**प्रेषक—श्रीरामानन्दजी चौरासिया 'श्रीसन्तजी'**]

दानकी महिमा

(पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल')

दान ही को मान होत, दान ही महान होत,
दान ही से नम्रता, विनम्रता फरत है।
दान से अभाव जात, वैरी दुर्भाव जात,
दान की सुबेलि ही से सुमन झरत है॥
दान ही से ज्ञान होत दान ही से ध्यान होत,
दान ही से द्वेष दम्भ जियत जरत है।
दान ही से हारे देव दान से विजय स्वमेव,
दान द्वारे भोर होत ध्वजा फहरत है॥ १॥
राखी दान मरजाद डोम के बिकानो हाथ,
मृत पुत्र देख हरीचंद नहीं गीलो है।
कर्र कर्र चीरो अरकसिया चला के पुत्र,
मोरध्वज दृढ़, दान हित गर्वीलो है॥
साढ़े तीन पग भूमि बलि दियो बामन को,
शेष पै नपायो तन अलग हठीलो है।
दान-दानी मारग को कहाँ लौं बखान करौं,
सुनत में सूदो चलिबे में पथरीलो है॥ २॥

दानकी रूपरेखा

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज)

सामवेदमें एक सेतुगान है। सेतुगान उसे कहते हैं, जो सेतुका काम करे। जीवनमें चार चहारदीवारियाँ हैं, जिनसे तुम बँधे हुए हो। वे चहारदीवारियाँ क्या हैं? वे हैं—अश्रद्धा, असत्य, लोभ और क्रोध। जेलखानेमें जैसे चहारदीवारी होती है—उसीकी तरह इनका वर्णन है। ये तुमको आगे बढ़ने नहीं देतीं।

अश्रद्धया श्रद्धां असत्येन सत्यं अक्रोधेन क्रोधं दानेन अदानम्।
सेतुं स्तर दुस्तरान् सेतुं स्तर दुस्तरान्।

श्रद्धासे अश्रद्धाकी चहारदीवारी पार करो। सत्यसे असत्यकी चहारदीवारी पार करो। अक्रोधसे क्रोधकी चहारदीवारी पार करो और दानसे लोभकी चहारदीवारी पार करो।

वेदके एक मन्त्रमें आता है कि एक बार देवता, दैत्य और मनुष्य तीनों प्रजापतिके पास गये और उन्होंने कहा कि आप बड़े-बूढ़े हैं—हमारे पिता-पितामह हैं—हमें कुछ उपदेश कीजिये। ब्रह्माजीने तीन बार कहा—द-द-द। पहले बहुत सरल और बहुत विस्तारसे उपदेश नहीं किया जाता था। वैदिक रीति यही थी कि बात संक्षेपमें कह दी जाय। श्रोता विचार करके और अपनी बुद्धिका प्रयोग करके किसी विषयको समझे तो उसकी बुद्धि बढ़ेगी। यदि उपदेश करनेवाला ही सरल करके खोलकर उसको बता देगा तो श्रोताकी बुद्धि नहीं बढ़ेगी। सरल रूपसे समझानेपर काम तो वह कर सकेगा, पर श्रोताकी समझदारी नहीं बढ़ेगी। पहलेके बड़े-बूढ़ोंको यह ध्यानमें रखना पड़ता था कि हमारे बच्चोंकी समझ बढ़े और वे संकेतकी भाषा भी समझें। इसलिये ब्रह्माजीने दैत्योंको बुलाया और पूछा कि मेरे प्यारे बच्चो! तुमने मेरे 'द' का क्या अर्थ समझा? उन्होंने कहा कि समझ गये महाराज! अच्छी तरह समझ गये। हमलोग अपने हृदयमें बहुत क्रोध रखते हैं, द्वेष रखते हैं, हमारे अन्दर यह दोष है, यह दुर्गुण है, आपने जो 'द' का उच्चारण किया, उसका अर्थ है 'दया'। आपने हमारे अनुरूप उपदेश किया है कि हम दया करें, क्रूरता न करें। इसके बाद प्रजापतिने देवताओंको बुलाया और उनसे पूछा कि देवताओ! तुमने मेरी बात समझी? हाँ, समझी। खूब अच्छी तरह समझी। हमलोग बड़े कामुक हैं, भोग-परायण हैं, इसलिये आपने हमारे लिये उपदेश दिया है कि इन्द्रियोंका दमन करो, दमन करो। अपनी इन्द्रियोंको जिनमें स्वच्छन्द, उच्छृंखल, बेधड़क, बेरोक-टोककी प्रवृत्ति है, उसपर काबू करो। अब ब्रह्माजीने मनुष्योंको बुलाया और उनसे पूछा कि तुम हमारे उपदेशको ठीक-ठीक समझ गये। हाँ महाराज, समझ गये। आपने यह कहा कि हमलोग बड़े लोभी हैं। इतना संग्रह न तो कोई देवता करता है और न कोई दैत्य करता है। यह जो हमारे जीवनमें लोभ है, इसके लिये आपने 'द' शब्दका उच्चारण करके बताया कि तुमलोग दान करो। ब्रह्माजीने तीनोंकी समझका समर्थन किया। उन्होंने काम-निवारणके लिये उपदेश दिया देवताओंको, क्रोध-निवारणके लिये उपदेश दिया दैत्योंको और लोभ-निवारणके लिये उपदेश दिया मनुष्योंको। इसीलिये मनुष्योंके जीवनमें जो दान है, यह उनका विशेष धर्म है।

मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह स्वयं खा-पीकर सन्तोष न करे, बल्कि दूसरोंको खिला-पिलाकर सन्तोष करे, नहीं तो कितना भी इकट्ठा कर लो, अन्तमें उसको छोड़कर जाना पड़ता है। इसलिये श्रुति कहती है कि **'तस्मात् दानं परमं वदन्ति'**—दान परमधर्म है। यदि दाता बुद्धिमान् हो तो दान करके अपनेको पवित्र कर सकता है। जैसे लोग अपनेको यज्ञसे पवित्र करते हैं, जलसे पवित्र करते हैं, ध्यानसे पवित्र करते हैं, ज्ञानसे पवित्र करते हैं, वैसे ही बुद्धिमान् दाताको दान परम पावन बना देता है। **'पावनानि मनीषिणाम्'** का अर्थ है कि **'मनीषिणां पावनानि न तु मूर्खाणाम्।'** ऐसा क्यों? इसलिये कि मूर्खको दान अभिमानी बना देता है। पावन माने वह जो स्वयं पवित्र हो और दूसरोंको भी पवित्र कर दे।

इस प्रकार दानमें बड़ा सामर्थ्य है; किंतु दानके सम्बन्धमें लोगोंको बहुत कम जानकारी है। जो देते हैं, उनको भी बहुत कम जानकारी है। लोग दान करते हैं—यह ठीक है। परंतु यह समझना चाहिये कि दान कैसे

करना चाहिये, क्यों करना चाहिये और उसके भीतर क्या होना चाहिये? वकालत करना है तो किसी बड़े वकीलके नीचे रहकर सीखना पड़ता है और डॉक्टरी करनी हो तो डॉक्टरके नीचे रहकर सीखना पड़ता है, उसी तरह पढ़ना हो तो पण्डितके साथ रहकर पढ़ना पड़ता है। लेकिन दान करनेकी जो रीति-नीति है, उसको तो लोग सीखते ही नहीं हैं।

मैं पहले ही कह देता हूँ कि आपलोग मुझसे दानकी महिमा, उसकी रीति-नीति तो सुनो, लेकिन इसे सुनकर मुझको कुछ मत देना। अरे बाबा! जो तुमको देता है, वही मुझको भी देता है। जो तुम्हारे घरमें भेजता है, वही हमको भी भेजता है। दाता तो एक ही है। उससे तुम्हारा रिश्ता ज्यादा है और हमारा रिश्ता कम है—ऐसा तो हम मानते नहीं।

हमारे शास्त्रमें जो दानका वर्णन है, उसकी एक रूपरेखा मैं आपको बताता हूँ। दातामें दानके पूर्व दो बात होनी चाहिये। एक तो श्रद्धा हो और दूसरे दान देनेकी शक्ति हो। यदि आप श्रद्धासे दान करते हैं तो वह यज्ञ हो जाता है। अश्रद्धासे आप जो भी दान करते हैं, वह निष्फल हो जाता है, न तो इस जीवनमें फल देता है और न मरनेके बाद। अन्तःकरण-शुद्धि भी नहीं करता; क्योंकि अश्रद्धा तो स्वयं अन्तःकरणकी अशुद्धि है। हम किसीको बुरा भी समझते जायँ और देते भी जायँ, यह ठीक नहीं। जिसको दीजिये, भगवत्-भावसे दीजिये और समझिये कि इसके रूपमें तो भगवान् अपनी ही वस्तु लेनेके लिये आये हैं।

तो होनी चाहिये हृदयमें श्रद्धाके साथ-साथ देनेकी शक्ति। देनेकी शक्तिके बारेमें मनुस्मृतिमें ऐसा निर्णय किया हुआ है कि जब तीन वर्षोंतक अपने परिवारके लोगोंका भरण-पोषण करने और नौकर-चाकरोंको वेतन देनेकी शक्ति अपने पास हो, तब दान करना चाहिये। यह नहीं कि दान तो करे, लेकिन अपने परिवार और सेवकोंको कष्ट देकर। लोग यज्ञके नामपर रात-दिन अपने सेवकोंसे काम लेते हैं और कहते हैं कि हमारे यहाँ यज्ञ हो रहा है, तुम भी इसका फल पाओगे, इसमें कुछ बिना लिये-दिये काम करो—यह ठीक नहीं है। यदि आप उनसे कुछ ज्यादा काम लें तो उनको अधिक वेतन देना चाहिये।

आपने एक मनोरंजक बात सुनी होगी। एक बाबूजीकी तनख्वाह कम हो गयी। उन्होंने अपने रसोइयेसे कहा कि खर्च कुछ कम करो; क्योंकि मेरी तनख्वाह कम हो गयी है। इसपर रसोइयेने बाबूजीको तो रूखी रोटी दे दी और स्वयं घीकी चुपड़ी रोटी खाने लगा। बाबूजी बोले कि यह क्या करते हो भाई! रसोइया बोला कि बाबूजी! आपकी तनख्वाह कम हुई है, लेकिन मेरी तनख्वाह कम नहीं हुई।

इसका मतलब यह है कि अपने जो अधीन हैं, उनको पीड़ा पहुँचाये बगैर ही यज्ञ करना चाहिये, दान करना चाहिये। पहले अपनी शक्तिको तौल लें और अपनी श्रद्धाको देख लें। दानके पूर्व इन दोनों बातोंका होना आवश्यक है। इसके बाद यह विचार करें कि आप दान किस भावसे कर रहे हैं?

आपका अन्तःकरण शुद्ध हो, इसके लिये आप दान कर रहे हैं या आपकी पूँजी बहुत है, इसलिये कर रहे हैं। एक सेठने देखा कि हमारे दीवालिया होनेकी चर्चा चारों ओर चल रही है। लोग कह रहे हैं कि मेरे यहाँ पैसा नहीं रहा है, जिनके रुपये मेरे यहाँ हैं—वे लोग अपने-अपने रुपये उठायेंगे। तो उन्होंने घोषणा कर दी कि मैं एक करोड़ रुपयोंका मन्दिर बनाने जा रहा हूँ। उन्होंने अपनी योजना प्रकाशित कर दी कि एक करोड़ रुपयेका मन्दिर बन रहा है। इसपर लोग यह कहने लगे कि इनके पास तो इतना धन है कि ये एक करोड़ रुपयेका मन्दिर बनाने जा रहे हैं, इसलिये अब उनके यहाँसे रुपये उठानेकी कोई जरूरत नहीं है।

आप यह देखिये कि अन्तःकरण-शुद्धिके लिये दान कर रहे हैं कि पूँजी बढ़ानेके लिये दान कर रहे हैं। हम लोगोंके यहाँ दानका प्रसंग आता है तो लोग क्या करते हैं? दान करके अपनी बेटी, बूआ या बहनके घर भेज देते हैं। कहते हैं कि ये भी तो ब्राह्मण ही हैं ना? लेकिन बेटी, बूआ, बहनको जो दान दिया जाता है, उसका नाम धर्म-दान नहीं होता।

एक बार रक्षाबन्धनके दिन एक सभामें कोई सेठ बैठे थे। उस समय एक महिला प्रिन्सिपल आयी और उसने सेठजीको राखी बाँध दी। सेठजीने कहा कि अब तुम बहन हो गयी, बताओ—मैं तुमको क्या दूँ? वह बोली कि मुझे तो कुछ नहीं चाहिये। आप भाई और मैं बहन।

पर जो कालेज मैं चलाती हूँ, उसमें धनकी कमी रहती है। इसलिये आप उसको पाँच हजार रुपया दीजिये। सेठजीने कह दिया कि हाँ देंगे। वे भरी सभामें ना कैसे बोलते? पर जब घर आये, तब सिर पीटकर पछताने लगे कि इतना धन मैंने पानीमें फेंक दिया। इसको कहते हैं लज्जा-दान।

एक होता है हर्ष-दान। जब घरमें बेटेका जन्म होता है या कोई विशेष आमदनी हो जाती है या मनमें कोई और खुशी होती है, तब हम हर्षमें भरकर किसीको कुछ देते हैं तो उसका नाम हर्ष-दान होता है।

एक होता है भय-दान। हम इसको कुछ देंगे नहीं तो यह हमारा नुकसान कर देगा। इसके हाथमें चोर हैं, गुण्डे हैं। यह हमारी मिलमें हड़ताल ही करा देगा। यह मजदूरोंका नेता है। इस भावनासे जब हम किसीको कुछ देते हैं। तो वह भय-दान होता है। एक बार मैं बम्बईमें किसी सेठके घर गया। उसकी मिलमें बहुत दिनोंसे हड़ताल चल रही थी। मैंने पूछा तो बोले कि अब चालू हो गयी है। मैंने फिर पूछा कि कैसे चालू हुई? तो बताया कि वह जो मजदूरोंका नेता है, जो हड़ताल करवा रहा था—मैंने उसको मिलाकर कुछ मशीनें उसके हिस्से कर दी हैं कि उन मशीनोंसे जो कपड़े बनेंगे और जो आमदनी होगी, वह उसके पास जाती रहेगी। इसके बाद अब खूब आनन्दसे हमारी मिल चल रही है। इसीको कहते हैं भय-दान।

इसी तरह काम-दान होता है। हम जानते हैं कि बड़े-बड़े सेठ लोग सिनेमाकी सुन्दर अभिनेत्रियोंको बहुत रुपये देते हैं, बल्कि उनको कोई विभाग ही दे देते हैं कि तुम इसको सम्हालो। इसको बोलते हैं काम-दान।

असलमें दानमें होनी चाहिये श्रद्धा। आप गीतामें पढ़ते ही हैं—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

(१७।२०)

इस श्लोकमें दानके लिये देश, काल और पात्र इन तीनोंका ध्यान रखनेके लिये कहा गया है। जहाँतक पात्रताका प्रश्न है वह लेनेवाले और देनेवाले दोनोंसे सम्बन्धित है। एक ओर दातामें श्रद्धा और शक्ति तो दूसरी ओर दान लेनेवालेको यह देखना चाहिये कि दान कैसा है? यह नहीं कि जिसने जो कुछ लाकर दे दिया, उसको ले लिया।

एक महात्मा थे ऋषिकेशमें। बम्बईके एक सेठजी आये और उन्होंने उन महात्माको एक शाल ओढ़ाया। महात्माने कहा कि सेठ! हम तो यहाँ कि सर्दी-गर्मी सह लेते हैं और आनन्दमें रहते हैं, हमें शालकी जरूरत नहीं है। सेठने कहा—महाराज! हम आपकी जरूरतसे थोड़े ही देते हैं? हमको जरूरत है देनेकी, इसलिये देते हैं। हम आपको यहाँ एक शाल देंगे तो स्वर्गमें जानेपर हमें सौ शालें मिलेंगी। हम तो अपनी वृद्धि कर रहे हैं। महात्माजी बिचारे सीधे-सादे थे, चुप हो गये। जब सेठजी पौन घण्टा सत्संग करके जाने लगे तब महात्माने कहा कि सुनो सेठ! तुम्हारे सौ शालका कर्जा हमारे ऊपर हो गया। तुम एक शाल तो यहीं ले लो, जब तुम परलोकमें हमको मिलोगे तब निन्नानवे शाल तुमको और दे देंगे।

तो दाताका क्या भाव है देनेमें, यह लेनेवालेको देखना चाहिये। वह सदाचारी है कि नहीं, समझदारीसे रहा है कि नहीं, उसकी कमाई अच्छी है कि नहीं। इस तरह दान लेनेवालेको दाताके बारेमें जानकारी होनी चाहिये। केवल विद्वान् होने या बुद्धिमान् होनेसे कोई दानका अधिकारी नहीं हो जाता। उसका सदाचारी होना भी आवश्यक है। यदि वह बुद्धिमान् होनेपर भी दुराचारमें रत है तो वह दानका पात्र नहीं है। पात्र माने होता है आधार। **'पतनात् त्रायते'**—जो हमको नीचे गिरनेसे बचाये, उसका नाम होता है—पात्र। जैसे हम दूधको एक पात्रमें डालते हैं तो वह पात्र दूधको बिखरनेसे बचाता है। हमारे पास जो धन है, वह बिखरकर बुरे काममें न चला जाय—पात्रमें ही जाना चाहिये। जो आपको पतित होनेसे बचाता हो—जहाँ दान करनेसे आप पतित होनेसे बच जायँ—उसका नाम होता है पात्र। दाता भी होना चाहिये सदाचारी और लेनेवाला भी होना चाहिये सदाचारी। जिसको हम जानते हैं कि यह दुराचारी है, व्यभिचारी है, जुआरी है, शराबी है—उसको दान नहीं देना चाहिये। दाताकी योग्यता, ग्रहीताकी योग्यता और इसके बाद वह देय वस्तु जो हम दे रहे हैं, कौन-सी है, इसपर विचार करना चाहिये।

देय वस्तुका भी महत्त्व होता है कि आप आखिर

दे क्या रहे हैं! हम गुजरातमें अहमदाबाद जाते हैं, तो वहाँका दृश्य देखनेमें बड़ा मजा आता है। सेठ लोग जेबमेंसे पाँच हजार रुपये निकालते हैं, उसमें-से सौके नोट अलग रख देते हैं, पचासके अलग, दसके अलग और पाँचके अलग। फिर एक-एक रुपयेके दो नोट निकालते और उसको भी अँगूठेसे दबाकर अलग-अलग करके दिखा देते हैं कि हम दो दे रहे हैं। दाताका भी महत्त्व होता है कि कौन दे रहा है?

एक बार सन् १९४८ ई० में हमलोग बदरीनाथ जा रहे थे। एक मारवाड़ी परिवारके सैकड़ों स्त्री-पुरुषोंके साथ ज्योतिर्मठमें ठहर गये थे। वहाँ हम लोगोंको सूर्यास्तके बाद कहीं ठहरनेकी जगह नहीं मिली। फिर हम लोग उन्हीं लोगोंके पास चले गये और हमने कहा कि रातको ठण्ड बहुत है और हमको सोनेकी जगह नहीं मिल रही है। उन्होंने अपने नौकरोंको एक जगह कर दिया और हम लोगोंके लिये स्थान बना दिया, फिर हमारे भोजनके लिये पूड़ी-साग बनानेकी आज्ञा दे दी। रसोइयेने सोचा कि हम लोग तो भिखारी साधु हैं, हमारे खानेके लिये अच्छा भोजन क्या बनाना? किंतु परसनेके लिये आयी सेठजीकी बेटी। उसने पूड़ियोंको देखकर थाली पटक दी और कहा कि मैं अपने हाथसे मोटी-मोटी और कच्ची-कच्ची पूड़ियाँ परोसूँ? उसके बाद हम लोगोंको बढ़िया भोजन मिला। इसका मतलब इतना ही है कि देनेवालेको अपने स्वरूपके अनुरूप देना चाहिये।

एक दूसरी बात बम्बईकी है। एक सेठजी मेरे मित्र थे। उनकी गद्दीपर एक दिन एक साधु आ गया, उसको देखते ही सेठजी बिदक गये कि तुम ऊपर कैसे चढ़ आये? कोई गुमाश्ता नहीं है क्या? फिर गुमाश्तेको बुलाकर बोले कि इसको चवन्नी दे दो और जल्दी विदा करो। साधुने कहा—कि देखो सेठजी! हम तुमसे चवन्नी या रुपया लेने नहीं आये हैं। भगवान्की कृपासे हम तो तुमको एक बात बताने आये हैं। वह बात यह है कि अब तुम्हारी उम्र सिर्फ छः महीनोंकी है। बस, अब मैं जा रहा हूँ। हमें तुमसे न कुछ लेना है और न कुछ देना है। अब तो सेठजीने तुरंत गद्दीसे उठकर उस साधुका पाँव पकड़ लिया और बोले—महाराज! आप कहाँ जा रहे हैं? दो-चार मिनट ठहरिये। कुछ फल खाइये, कुछ नाश्ता कीजिये। इस प्रकार सेठने मीठी-मीठी बातें कीं। फिर महात्माने कहा—कि देखो सेठ! तुम भगवान्का नाम नहीं लेते, आजसे तुम भगवान्का भजन करनेका निश्चय करो—*हरे राम, हरे राम, राम-राम, हरे हरे। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे हरे॥* सेठने भगवन्नाम लेनेकी प्रतिज्ञा की। महात्माने कहा कि अच्छा जाओ, अब छः महीनेमें तुम नहीं मरोगे। इससे ज्यादा जिओगे।

तो इस कहानीका अर्थ यह है कि दाता प्रतिग्रहीताकी अवज्ञा, तिरस्कार न करे। देय वस्तु कितनी बड़ी है, इससे मतलब नहीं है। मतलब इससे है कि आपके हृदयमें श्रद्धा है कि नहीं? दानके साथ श्रद्धा अनिवार्य है।

दानके लिये देश और कालका विचार भी आवश्यक है। जिस जगह जो वस्तु मिलती न हो, उस जगह उस वस्तुकी व्यवस्था करनी चाहिये। जहाँ अन्नकी कमी हो वहाँ अन्न, जहाँ पानीकी कमी हो वहाँ पानी देना चाहिये। जहाँ दवा न मिलती हो, वहाँ दवा देनी चाहिये। जहाँ ठण्ड हो, वहाँ गर्म कपड़ा देना चाहिये। पहले लोग बदरी-केदारकी ओर जाते थे, तो दानके लिये सुई और धागा लेकर जाते थे। उन दिनों मोटरें तो जाती-आती नहीं थीं, उधरके लोगोंको सुई-धागा मिलना बड़ा मुश्किल था। इसके सिवाय दानमें और भी कई बातें देखनेयोग्य होती हैं।

दान किसको देना चाहिये? जो पढ़ रहे हों, अध्ययन कर रहे हों, वे दानके अधिकारी हैं; जो त्याग, ब्रह्मचर्य आदिके व्रतोंसे युक्त हैं और अध्ययनशील हैं, उनके भोजन-वस्त्रकी व्यवस्था तो होनी ही चाहिये। जहाँके लोग बिना व्रतके हैं, बिना अध्ययनके हैं, जो जुआ खेलते हैं, चोरी करते हैं, छल करते हैं और भिक्षा लेनेके समय साधुका वेष बनाकर पहुँच जाते हैं, उनको जिस गाँवमें भी भिक्षा मिलती है, उस गाँवपर सामूहिक जुर्माना कर देना चाहिये। यह बात मैं नहीं कहता, हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं। एक नहीं दस स्मृतियोंमें ये नियम आते हैं।

कोई दान निष्फल होता है, उसका कोई फल नहीं होता। कोई दान हीन फल देता है। दान होता है बड़ा, लेकिन उसका फल होता है छोटा; क्योंकि वह अखबारोंमें छप जाता है और लोग तारीफ कर देते हैं। उस दानसे अन्तरंगमें, हृदयमें जो फल होना चाहिये, वह बाहर चला

आता है। जो फल स्वरूपमें मिलना चाहिये, मरनेके बाद मिलना चाहिये, वह धरतीपर आ जाता है और जो अन्तःकरण-शुद्धिके लिये होना चाहिये, वह बाहर चला जाता है।

आप जितना देंगे, उतना आपको मिलेगा। किसीको जूता दे देना, किसीको पहननेके लिये कपड़ा दे देना, किसीको छाता दे देना, किसीको एक मुट्ठी अन्न दे देना—इनको बड़े दानोंमें नहीं माना जाता। ये छोटे दान होते हैं। गोदान, कन्या-दान, वृत्ति-दान, भवन-दान, स्वर्ण-दान, रक्त-दान—ये बड़े दान होते हैं। विद्या-दान इन सबसे बड़ा दान है।

बम्बईमें हमारे एक परिचित सेठ थे। एक बार वे शराब पीकर बहुत मतवाले हो गये थे। डॉक्टरने फोन करके मुझको बुलाया कि आप आइये और इनकी शराब छुड़वा दीजिये, नहीं तो ये मर जायेंगे। मैं उनके घर गया। उनके यहाँ नौ कुत्ते थे और उनको सम्भालनेके लिये कई नौकर थे। खुद तो मांस शराब खाते-पीते थे ही, उनके कुत्तोंके लिये भी मांस आता था। अन्तमें उनका लीवर खराब हो गया और वे मर गये। वे उन नौ कुत्तोंपर जो खर्च करते थे, उससे चाहते तो कम-से-कम तीन-चार मनुष्योंको बहुत योग्य बना सकते थे। कुत्तोंपर नौकर रखने, उनको मांस खिलाने, उनकी डॉक्टरी कराने, उनकी सफाई आदिकी देख-भाल करने, उनको घुमाने-फिराने आदिपर जितना खर्च हो रहा था, उतना यदि एक-एक मनुष्यपर होता तो कितने ही मनुष्योंका जीवन-निर्माण हो जाता।

एक दान होता है वह, जो हम लोग देते हैं। आप लोग समझते हैं कि हम धन देते हैं तो बहुत कुछ देते हैं। लेकिन जो हम लोग देते हैं उसका नाम है—अभय-दान। जो लोग भूत-प्रेतसे डरते हैं, ग्रहोंसे डरते हैं, भविष्यसे डरते हैं, नरकसे डरते हैं, अपने पिछले कर्मोंसे डरते हैं और वर्तमान परिस्थितिसे डरते हैं, उनको आत्मज्ञान कराकर हर तरहसे निर्भय कर देना—यही संन्यासीकी प्रतिज्ञा है, दान है। '**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम**'—आजसे हम प्रतिज्ञा करते हैं कि किसीको भय नहीं देंगे, भय नहीं दिखायेंगे और यदि उसके मनमें भय होगा तो उस भयसे उसे मुक्त कर देंगे। ऐसी प्रतिज्ञा संन्यासी जब संन्यास लेता है तब करता है और इस अभय-दानसे बड़ा शास्त्रमें और कोई दान नहीं माना जाता। दुष्फल, निष्फल, हीनफल, पुण्यफल, अधिकफल और अक्षयफल—इन छः फलोंको ध्यानमें रखकर दान किया जाता है।

अक्षय फल क्या है? यही है कि अन्तःकरण शुद्ध हो जाय और परमात्माका अनुभव इसी जीवनमें होने लगे। वैसे तो सर्वस्व-दान भी होता है। लेकिन आपके दान कैसे-कैसे होते हैं, इसका थोड़ा संस्कार पड़े, इसके लिये मैं संक्षेपमें आपको ये बातें सुना रहा हूँ। गीतामें तीन प्रकारका दान बताया गया है—सात्त्विक, राजस और तामस। इसी प्रसंगमें देश, काल और पात्रकी महिमा भी गीतामें भरपूर है। लेकिन इसमें कोई परिवर्तन किये बिना ही भागवतमें थोड़ा संशोधन है। आप जो यह समझते हैं कि देय वस्तु मेरी है और मैं किसीको दे रहा हूँ—इसका नाम दान नहीं है। वह देय वस्तु तो ममतासे उच्छिष्ट हो गयी, जूठी हो गयी। आपने ही उसको 'मेरी-मेरी' करके जूठी कर दिया; क्योंकि सब वस्तु भगवान्‌की है। जो कुछ स्वर्गमें है, जो कुछ धरतीपर है और जो कुछ अन्तरिक्षमें है; सब-की-सब भगवान्‌के द्वारा निर्मित भगवान्‌की वस्तुएँ हैं।

फिर दान क्या है? दान यह है कि चीज थी भगवान्‌की और उसको मैं अपनी मान रहा था। न तो मैंने हीरा पैदा किया, न सोना पैदा किया, न चाँदी पैदा किया, न जमीन पैदा की, न बीज पैदा किया। अन्नका बीज भी भगवान् द्वारा निर्मित है। तब उसमें अपनी चीज क्या है? पंचभूत अपना है कि सोना अपना है कि हीरा अपना है कि मोती अपनी है। क्या अपना है? पहली भूल तो यह थी कि हमने पैसेको अपना माना—अब यदि हम सब कुछ भगवान्‌का मानने लग जायँ तो हम एक सत्यपर आ जाते हैं। सौ-का-सौ भगवान्‌का न मानें तो उसमें-से एक पैसा निकालकर किसीको दे दीजिये। लेकिन यह ध्यानमें रखिये कि आप उसको देते नहीं हैं बल्कि उसपर उसका भी उतना ही अधिकार है, ज़ितना आपका है। आप उसको देकर उसके ऊपर कोई एहसान नहीं लादते, उसको कृतज्ञ नहीं बनाते। वह वस्तु तो आपकी भी और उसकी भी है। उस दानसे आपका लाभ यह हुआ कि आपकी ममताकी चहारदीवारी पहले सौ पैसेपर थी। अब उसमें-से जब एक पैसा आपने निकाल दिया तो ममताकी चहारदीवारी थोड़ी छोटी हो गयी। इसी अंशमें आपका जो ममत्व अन्तःकरणमें था, वह कम हो गया। इसी तरह आपको अपने मोह और ममताका विस्तार मिटाना है और यह समझना है कि '**त्वदीयं**

वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'—'हे भगवान्, आपकी वस्तु आपको समर्पित है।' भागवतका कहना है कि चीज है भगवान्‌की और हम देते हैं भगवान्‌को। यह बात हमारे धर्मशास्त्रोंमें भी बड़े अच्छे ढंगसे आयी है।

आपको शायद मालूम ही है कि आकाशमें कितने उपग्रह होते हैं। हमारे ज्योतिषी लोग इनकी चर्चा करते रहते हैं। राहु, केतु, मंगल आदि ग्रह सब आसमानमें रहते हैं। पर ये सब देखते तो हैं आसमानकी ओर और पाँव रखते हैं धरतीपर, फिर तो जरूर गड़बड़ायेंगे। अरे भाई, जहाँ पाँव रखना हो, वहाँ देखकर पाँव रखो। आसमानकी ओर देखते हुए धरतीपर चलोगे तो कहीं-न-कहीं गड्ढेमें गिरोगे। धरतीपर देखकर पाँव रखना चाहिये। बहुत खसुरी नहीं होना चाहिये। खसुरी माने आसमानके चुगलखोर। आसमानकी चुगली ज्यादा नहीं करना चाहिये। जहाँ देखो, वहाँ पाँव रखो, ऐसा होना चाहिये। सब ग्रह तो रहते हैं आसमानमें और लेकिन जो दुराग्रह है, परिग्रह है, संग्रह है—ये सब दुष्ट ग्रह हैं और हमारे हृदयमें रहते हैं। यदि ग्रहोंको हृदयसे निकाल दो तो आसमानके ग्रह तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे।

हमारे हृदयमें रहनेवाले ग्रह हमको पीड़ा देते हैं। वही आग्रह करते हैं कि ऐसा हो, वैसा हो और जब वह नहीं होता है तब हमें पीड़ा पहुँचाते हैं। आकाशके ग्रह हमारे दुराग्रह, विग्रह, संग्रह, परिग्रहको ही पीड़ा पहुँचाते हैं, दूसरेको नहीं पहुँचाते। दान क्या है? अपनी ममता और मोहको मिटाना। ये सब वस्तु ईश्वरकी हैं, पहलेसे हैं, तुम भूलसे उसको अपना मानते हो तथा जिसको देते हो, उसपर अपना एहसान जताते हो और दान करके एक अभिमान और मोल ले लेते हो। इसलिये दानके सम्बन्धमें इन बातोंको ध्यानमें रखना चाहिये।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

दानका एक रोचक आख्यान—

अमृत-फल

[श्रीश्रीमाँ आनन्दमयीकी अमृतवाणी]

बीसवीं शताब्दीकी विश्वविभूति श्रीश्रीमाँ आनन्दमयीके अध्यात्म ज्ञानके देदीप्यमान आलोकसे तत्कालीन सन्तसमाज प्रभावित था। न केवल अध्यात्म, अपितु मानव-समाजके विभिन्न पहलुओंपर दृष्टान्तके तौरपर श्रीश्रीमाँके श्रीमुखसे समय-समयपर अनेक कहानियाँ सुनी गयी हैं। यह कथानक देहरादून, राजपुर-रोडस्थित श्रीश्री माँके आश्रम 'कल्याण-वन' में पू० श्री हरिबाबाजी, पू० श्रीशरणानन्दजी (मानव सेवा संघ), पू० श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी आदि महापुरुषोंकी सन्तसभामें श्रीश्रीमाँने उपस्थित संगतको सुनाया था।

एक राजा थे, उनके राज्यमें कोई दुःखी नहीं था। सब उस राज्यमें सुखी थे। उसका कारण यह था कि उस राज्यके राजा अत्यन्त परोपकारी थे। वे सर्वदा अपने राज्यमें घूमकर देखा करते थे, कौन दुःखी है, किसको कौन-सी चीजकी आवश्यकता है। इस तरहका कुछ देखते ही वह उसके निराकरणके लिये तत्पर हो उठते थे। देश-विदेशमें राजाकी ख्याति थी।

एक दिनकी बात है, राजा अपने सिंहासनपर बैठे हैं, राजदरबार है, सभा बैठी है, अचानक उस सभामें एक संन्यासीका आगमन होता है। इधर-उधर देखकर वह सीधे महाराजके सामने जाकर खड़े हो जाते हैं।

अपने राजोचित स्वभावके अनुकूल महाराज तुरंत सिंहासनसे उठकर संन्यासीके सामने आकर खड़े हो जाते हैं, उनको यथोचित आसनपर विराजमान कराते हुए महाराजने दोनों हाथोंको जोड़ते हुए विनयपूर्वक पूछा—'महात्मन्! मेरे द्वारा आपकी कौन-सी सेवा हो सकती है?'

महाराजके आग्रहको देखते हुए संन्यासी बोले—'महाराज! तुम्हारी ख्याति मुझे तुम्हारे पास खींच लायी है, मुझे तुमसे कुछ माँगना है, माँगनेसे मिल जायगा?'

सारी सभा मूक दृष्टिसे संन्यासीको देख रही थी, सबके चेहरोंपर कौतूहलका भाव था। सर्वत्यागी संन्यासीको किसकी चाह!

महाराजने अत्यन्त सहज रूपसे विनम्रताके साथ जवाब दिया—'महात्मन्! मैं आपका सेवक हूँ। यह जो कुछ दिख रहा है, यह सब आपका ही है, आप निःसंकोच अपनी बात कहिये।'

महाराजकी बात पूरी होती; इसके पूर्व ही संन्यासी उठ

खड़े हुए और राजाके दोनों हाथोंको पकड़कर बोले—'तुम्हारा यह राज-पाट मुझे चाहिये।'

महाराज जरा भी विचलित न होते हुए विनम्र कण्ठसे बोले—'ऐसा ही होगा, महाराज, इसी क्षणसे यह राज्य आपका है।' ऐसा कहते हुए एक लोटा और कम्बल लेकर राजभूषणादिका त्याग करके तपस्वीके वेशमें महाराज वनको चल पड़े।

यह संवाद पूरे राज्यमें फैल गया। चलते-चलते महाराजको प्यास लगी। सामने ही एक कुआँ था, पानी निकालनेके लिये जैसे ही राजा आगे बढ़े तो देखते हैं; कुएँमें चार प्राणी हैं। महाराजने भलीभाँति देखनेके लिये कुएँमें झाँका तो चारों प्राणी एक साथ चीख पड़े—आप कौन हैं? हमें बचाइये, हमें प्राण-दान दीजिये।

उनकी आवाजको सुनकर महाराजने कुएँमें झाँका, उन्होंने देखा, तो वहाँ एक मानव, एक शेर, एक वानर और एक साँप है। महाराज अचरजमें पड़कर सोचने लगे, आखिर ये सब वहाँ कैसे पहुँचे!

परोपकारी महाराजने तुरन्त अपने मनके कौतूहलपर लगाम लगायी और अपने काममें जुट गये। उन्होंने कन्धेपर रखी रस्सीको कुएँमें फेंक दिया और उन फँसे हुए प्राणियोंको निकालने लगे।

पहले उन्होंने शेरको निकाला। शेर बाहर आते ही धन्यवाद देते हुए राजासे बोला—मैं हिंसक प्राणी अवश्य हूँ, पर कृतघ्न नहीं हूँ, यद्यपि मैं भूखा हूँ, पर आपको हानि नहीं पहुँचाऊँगा। मेरा निवास दण्डकारण्य है। आपको प्रणाम, जब कभी आवश्यकता होगी, उस वनमें मेरा पता करनेसे मैं मिल जाऊँगा। अब मैं जाता हूँ, जानेसे पहले आपको एक बात बताना चाहूँगा—आप सबको कुएँसे निकाल लें, पर उस आदमीको मत निकालना। इतना कहकर शेर चला गया।

अब आयी साँपकी बारी, महाराजने साँपको बाहर निकाला। विषधर नाग था, उसे सामने देख राजा थोड़ा-सा घबड़ाये। साँपने कहा—यद्यपि मैं विषधर सर्प हूँ, पर अकृतज्ञ नहीं हूँ। आपने मुझे प्राणदान किया है, आपको कभी भी मेरेसे किसी प्रकारके अनिष्टकी आशंका नहीं रहेगी, वरन् किसी भी आवश्यकतामें मेरा स्मरण करते ही मैं आपके समक्ष उपस्थित हो जाऊँगा। अब मैं चलता हूँ, जाते-जाते एक बात और कह दूँ, वह यह कि कुएँमें पड़े व्यक्तिको मत निकालना। इतना कहकर साँप चला गया।

अब महाराजने बन्दरको निकाला। बन्दरने कहा—भैया! कुएँमें पड़े आदमीको नहीं निकालनेमें ही तुम्हारी भलाई है। मैं दण्डकारण्यमें रहता हूँ, आपने मुझे प्राणदान दिया। जब भी आप उधरसे गुजरोगे तो मेरेसे अवश्य मिलना, आवश्यकता पड़नेपर मैं भी तुम्हारा उपकार करनेकी कोशिश करूँगा। अब मैं चलता हूँ।

शेर, वानर, साँप सब चले गये। महाराजने सोचा अब क्या करूँ! एक आदमी कुएँमें पड़ा हुआ है, उसको बाहर न निकालकर पड़ा रहने दूँ—ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है, जो होना होगा होने दो। इसको भी निकाल लेता हूँ, ऐसा सोचकर राजाने उस व्यक्तिको भी बाहर निकाला।

बाहर आते ही उसने अपना परिचय देते हुए महाराजसे कहा—मैं उदयपुर राजका स्वर्णकार हूँ। आपने मुझे प्राणदान दिया है, मेरी इच्छा है, मैं भी कभी आपकी सेवामें लग सकूँ। यदि आप कभी उदयपुर पधारें तो आपकी सेवाका अवसर पाकर मैं अपनेको धन्यभाग महसूस करूँगा। इतना कहकर उसने भी विदा ली। परोपकारका काम पूरा करके महाराज घूमते-घूमते दण्डकारण्यके जंगलमें पहुँचे, वहाँ उसी शेरसे भेंट हो गयी। शेर अपने जीवनदाताको सामने देखकर फूला न समाया। शेर वनका राजा था, अतः उसने अपनी वन्य प्रजासे महाराजको नमन करनेको कहा। सभी वन्य पशु महाराजका अभिवादन करने लगे। शेरकी कृतज्ञताको देख महाराजकी आँखोंमें पानी भर आया। इतना ही नहीं वनराजने जंगलकी श्रेष्ठ चीजोंका उपहार भी दिया अपने प्राणदाताको। उन वस्तुओंमें एक अनोखा रत्नहार था। राज्याधिकारी होनेपर भी ऐसा सुन्दर हार महाराजने कभी नहीं देखा था। महाराज सोचने लगे—'मैं तो घुमक्कड़ हूँ, यह हार कहाँ रखूँगा।' ऐसा सोचकर उन्होंने शेरको वह हार वापस करना चाहा, पर शेरने उसे स्वीकार नहीं किया। आखिर महाराजको रत्नहार स्वीकार करना ही पड़ा।

महाराजकी यात्रा आगे बढ़ी, अब महाराज पहुँचे उदयपुर। उदयपुर पहुँचकर उन्होंने राजस्वर्णकारका पता किया और उनके पास पहुँचे। महाराजने उक्त रत्नहारको स्वर्णकारको दिखाते हुए पूछा—इसका मूल्य कितना होगा, क्या आप बता

सकते हो ?

संयोगकी बात थी, यह रत्नहार इसी स्वर्णकारका बनाया हुआ था, जो कि इसी राज्यके राजकुमारके लिये बनाया गया था, उदयपुरके राजकुमार एक दिन शिकार करने गये थे और दैववश वहाँसे कभी नहीं लौटे, तबसे इस रत्नहारका पता भी किसीको नहीं लगा।

हारको देखते ही स्वर्णकार पहचान गया। अब उसकी मनोवृत्ति लालचके घेरेमें घिर गयी। उसने सोचा युवराजका यह हार यदि मैं राजाको सौंप दूँ तो अवश्य ही वे बड़े पुरस्कारसे मुझे पुरस्कृत करेंगे। साथ ही यदि मैं इस व्यक्तिको हारके साथ युवराजका हत्यारा कहकर पकड़वा दूँ तो महाराज अत्यधिक प्रसन्नतामें मुझे दो-एक गाँव भी दे देंगे। जैसा सोचना वैसा करना। उसने महाराजको हारके साथ पकड़वा दिया।

उदयपुर राजाको इस बातपर किसी प्रकारकी शंका नहीं रही, क्योंकि हार वही था। अब परोपकारी राजाको मृत्युदण्डका आदेश दिया गया।

महाराजको वधभूमिपर लाया गया। सारी तैयारियाँ होने लगीं।

वधभूमिपर आते ही महाराजको कुएँसे निकाले गये सर्पकी बात याद आयी। स्मरण करते ही अन्तरिक्षके मार्गसे सर्प वधभूमिपर उपस्थित हो गया। उसने सारी परिस्थिति भाँप ली।

महाराजकी रक्षा करना उसका धर्म था, उसने महाराजसे कहा—इस राज्यके राजा अभी आपका मृत्युदण्ड देखने आयेंगे। उनके आते ही मैं उनको डँस लूँगा, तब आप इस मन्त्रसे उनको जीवित कर देना। ऐसा होनेसे राजासे आपकी मित्रता हो जायगी। तब आप सत्य घटना विस्तृत रूपसे राजासे कहना, तब स्वर्णकारके इस षड्यन्त्रका भण्डाफोड़ हो जायगा और आपके बदले स्वर्णकार ही मृत्युदण्डका अधिकारी बनेगा। इतनेमें उदयपुरके राजा वधभूमिपर पधारे। महाराजके वधकी पूरी तैयारी हो चुकी थी।

जल्लाद महाराजपर जब वार करनेवाला था तो ठीक उसी समय सर्पने उदयपुरके राजाको डँस लिया। राजा साथ-ही-साथ वहींपर लुढ़क गये। अब क्या था! बिजलीकी तरह यह संवाद पूरे राज्यमें फैल गया। प्रजा एवं परिवारजन सब एकत्रित हो गये, राजाकी प्राणरक्षाका प्रयास किया जा रहा था, इधर सर्पदंशसे पीड़ित राजा मृत्युके गलियारेमें पहुँचते नजर आ रहे थे।

जब चारों ओर हाहाकार मच रहा था, तब परोपकारी महाराजने वधके मंचसे उतरकर सर्पद्वारा दिये हुए मन्त्रके बलसे मृत राजामें प्राण फूँक दिये। मन्त्रके प्रभावसे उदयपुर राजा इस तरह उठ बैठे, मानों नींदसे अभी-अभी जागे हों। वधभूमिमें आनन्दोल्लासका शोर-शराबा था। यह तो एक चमत्कार था। दण्डित राजाने पलक झपकते उदयपुरराजको प्राणदान दिया।

देखते-ही-देखते सम्पूर्ण राज-परिवार तथा राजा परोपकारी महाराजके परम मित्र बन गये। आदर-सत्कारके साथ महाराजको राजभवन ले जाया गया।

धीरे-धीरे उदयपुरराजको स्वर्णकारके इस षड्यन्त्रका पता चला। अब महाराजके बदले स्वर्णकारके मृत्युदण्डका आदेश हुआ।

इस आदेशको सुनकर परोपकारी महाराज दुःखी हो गये। उन्होंने अपने मित्र उदयपुरके राजासे स्वर्णकारके प्राणोंकी भिक्षा माँगी, केवल इतना ही नहीं, उन्होंने उसके लिये भारी परिमाणमें पारितोषिककी भी व्यवस्था करवा दी। केवल राजाके आदेशसे स्वर्णकारको उदयपुर त्याग करना पड़ा।

परोपकारी महाराज अपनी यात्रामें पुनः निकल पड़े। इस बार उनकी मुलाकात कुएँसे निकाले गये बन्दरसे हुई। बन्दरने अतिशय आनन्दसे उनका स्वागत किया और उनको एक अमृत-फल भेंट किया। फल देखते ही महाराज पहचान गये—यह अमृत-फल है। परोपकारी राजाने सोचा, यह फल किसीको दिया जाय तो कितना अच्छा हो। अमृत-फलके खानेसे लोग अमर हो जाते हैं। यह सोचकर महाराजने सोचा—यह फल वह उसी संन्यासीको देंगे, जिसको उन्होंने पूरा राजपाट दानमें दिया है।

राजा अमृत-फल लेकर अपने राज्यमें पहुँचे, संन्यासीने फलको देखते ही कहा—इस फलके खानेसे लोग अमर हो जाते हैं, पर मेरे अकेलेके अमर होनेसे क्या लाभ है? मेरी महारानीके लिये यदि एक और फल मिल जाय, तब ही मैं इस फलको ग्रहण कर सकता हूँ।

संन्यासीकी बातको सुनकर महाराज सोचमें पड़ गये

कि क्या उपाय किया जाय, उन्होंने संन्यासीसे कहा—'यह फल बन्दरने मुझे दिया है, उसके पास चलते हैं, शायद एक और फल मिल जाय।'

संन्यासी और राजा बन्दरके पास गये। सब सुनकर बन्दरने कहा—मेरे पास तो और फल नहीं है। बजरंगबली महावीरने यह फल मुझे दिया था। चलो, हम हनुमान्‌जीके पास चलें, संन्यासी, राजा और बन्दर हनुमान्‌जीके पास चले। हनुमान्‌जीने सब बात सुनकर कहा—'यह फल कहाँ पाया जाता है, यह मैं नहीं जानता, यह तो शंकरजीने मुझे दिया था।' हनुमान्‌जी सबको लेकर भगवान् शंकरके पास गये। शंकरजीने कहा—यह फल भगवान् विष्णुने उनको दानमें दिया था। अब महादेव शंकर सबके साथ वैकुण्ठधाम पहुँचे। लक्ष्मीनारायणकी निवासस्थली वैकुण्ठधाम। भगवान् नारायणसे उन्होंने अपने आनेका कारण निवेदन किया। स्वयं नारायण भी और एक फलकी व्यवस्था नहीं कर सके।

उन्होंने कहा—'जिस अमृतकाननमें यह अमृत-फल लगता है, अब उसपर उनका अधिकार नहीं है। धरतीके ही किसी परोपकारी राजाके पुण्यफलसे उनको यह कानन भेंट किया गया है। अब इस काननपर यदि किसीका अधिकार है तो वह उसी परोपकारी राजाका है।'

नारायणकी बात सुनकर सब निराश हो गये। सोच-विचार करके वे लोग उस राजाकी खोजमें धरतीपर लौट चले।

धरतीपर पहुँचकर ही वे पहले संन्यासी-राजाके राजमें आये। वहाँ आते ही उन्होंने देखा, वैकुण्ठका एक दूत अमृतकाननका दान-पत्र लेकर परोपकारी राजाकी प्रतीक्षामें बैठा है।

संन्यासी-राजाने उस दान-पत्रको विष्णुदूतसे लेकर उसे परोपकारी महाराजके हाथोंमें देते हुए कहा—'महाराज, यह लो तुम्हारे अमृतकाननका अधिकार-पत्र और स्वीकार करो तुम्हारा यह राज-पाट। मैं नारायणका ही दूत हूँ। तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये ही नारायणने मुझे भेजा था। तुम मेरी सभी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हुए हो; तुम्हारा परोपकार, तुम्हारी दया, तुम्हारी सबका कल्याण करनेकी इच्छा—यह सब लेकर तुमने देवत्वको प्राप्त किया है। एक नरपतिका आदर्श तुममें प्रकट (प्रस्फुटित) हुआ है। तुम धन्य हो, तुम जीवन्मुक्त हो, राजन्! अब मैं चलता हूँ।'

इतना कहकर वे संन्यासी अदृश्य हो गये। स्वर्गसे परोपकारी महाराजके मस्तकपर देवलोकके पुष्प बरसने लगे।

श्रीश्रीमाँने कहा—यही है सच्चे दानकी महिमा।

[प्रेषिका—डॉ० ब्र० गुणीता, विद्यावारिधि, वेदान्ताचार्य]

पुत्रजन्मके उपलक्ष्यमें श्रीनन्दरायजीद्वारा दिया गया दान

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कृते।
तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान्॥

(श्रीमद्भा० १०।५।३)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्, नन्दजीने बीस लाख गौएँ ब्राह्मणोंको दीं, वे सब-की-सब वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत थीं। सात तिलके पर्वत भी दिये, जो रत्नोंसे तथा सुनहरे काम किये हुए वस्त्रोंसे ढके हुए थे।

छप्पय

पुनि बुलवाये गोप कही खिरकनिकूँ खोलो।
मनमानी द्विज धेनु लेहिं मत तिनतें बोलो॥
चाँदीके खुर करो सींग सोनेतें मढ़िकें।
सुन्दर वस्त्र उढ़ाइ पूँछ मोतिनितें जड़िकें॥
माँगें जितनी जो गऊ, तितनी तिनकूँ दानमहँ।
देहु न होवे नेकहू, कमी मान सम्मानमहँ॥

सूतजी कहते हैं—मुनियो, नन्दजी महामना थे। उनका चित्त अत्यन्त ही उदार था। व्रजमें उनकी उदारता सर्वविदित थी। सहस्रों वेदज्ञ ब्राह्मणोंको उन्होंने आश्रय दे रखा था। व्रजके जितने गोप हैं, सब उन्हें अपने पिताके समान मानते थे। जिसे जिस वस्तुकी आवश्यकता होती, अपने घरके समान नन्दजीके यहाँ जाते और उठा ले जाते

थे। भाग्यसे ऐसा ही स्वभाव श्रीमती यशोदामैयाका भी था। दोनोंकी अवस्था ढल चुकी थी। सभी गोप बूढ़े नन्दजीको बाबा कहकर ही पुकारते थे। यशोदाजीका तो नाम ही मैया प्रसिद्ध हो गया। मैयाके यहाँ मुझे जाना है कहनेपर अपनी मैयाको कोई न समझता। सभी समझते कि यशोदारानीके यहाँ जाना है। दोनोंको ही अब सन्तानकी आशा नहीं रही थी। जब वृद्धावस्थामें उनके पुत्र उत्पन्न हुआ और पुत्र भी ऐसा-वैसा नहीं; विश्वविमोहन साक्षात् साकार सौन्दर्यने ही पुत्रका रूप रख लिया। तब तो उनके हर्षका ठिकाना ही नहीं रहा। उन्होंने कहा—देखो भाई, हम तो गोप हैं। गौएँ हमारा धन हैं। हमारे जितने गौओंके खिरक हैं उन सबको खोल दो, जिस ब्राह्मणको जितनी गौएँ चाहिये, वे उतनी गौएँ ले जायँ। छाँटकर जो उन्हें अच्छी लगें, उन्हें ही बतायें। सजाकर हम उन्हें दे देंगे।

अब क्या था, व्रज चौरासी कोशमें हल्ला मच गया, दस महीनेसे ब्राह्मण आशा लगाये बैठे थे। झुण्ड-के-झुण्ड ब्राह्मण आने लगे और खिरकोंमें घुसने लगे। नन्दजीके यहाँ एक-से-एक दुधार, एक-से-एक सुन्दर, स्वच्छ, सबल तथा दर्शनीय गौएँ थीं। जो ब्राह्मण जिस गौको देखता उसे ही लेनेकी इच्छा करता। एक गोष्ठसे दूसरे गोष्ठमें दौड़ा जाता। पहले जो छाँटी थीं उन्हें छोड़ देता, फिर और अच्छी-अच्छी छाँटता। नन्दबाबाने वहाँ सहस्रों गोप बैठा रखे थे, कोई पगड़ी लिये बैठे थे, किसीके पास दुपट्टे थे, अँगरखे थे, किसीके पास दुशाले थे, तो किसीके सम्मुख मोतियोंका पहाड़ लगा था। कोई सुवर्णकी मालाओंको ही लिये बैठा था, किसीके पास काँसेकी दोहनी ही थी। किसीके आगे अन्नका ढेर लगा था। नन्दबाबाके १०८ गोष्ठ थे। सभीमें ऐसा ही प्रबन्ध था। ब्राह्मण छाँट-छाँटकर गौओंको ले जाते, गोप तुरंत उनके खुरोंको चाँदीसे मढ़ देते। सींगोंमें सोना लगा देते। कण्ठमें सुवर्णकी माला पहना देते। ऊपरसे सुवर्णके कामका दुशाला उढ़ा देते। पूँछमें मोतियोंको लगा देते। काँसेकी दोहनी दे देते। अन्न रख देते, ब्राह्मणको भी अँगरखी, पगड़ी, पेंच, दुपट्टा, साफी तथा मणिमुक्ताओं और सुवर्णकी मालाएँ पहना देते। इस प्रकार अलंकृत गौओंको अलंकार किये हुए ब्राह्मणों के लिये तुरंत दे देते थे। किसीको रोक नहीं, टोक नहीं, जिसे जितनी चाहिये उतनी ले जाओ। बहुत-से आते, सहस्रों छाँट लेते, फिर सोचते और गौओंका ले जाना तो सरल है, इन्हें रखें कहाँ, बाँधेंगे कहाँ फिर इनकी देख-रेख कौन करेगा। यही सब सोचकर वे सबको छोड़ देते, दो-चार ले जाते। इस प्रकार दिनभर यही लीला होती रही।

एक ब्राह्मण था, घर तो उसका छोटा था, किंतु तृष्णा बड़ी थी। अच्छी-अच्छी सुन्दर पचास गौएँ ले आया। इसकी स्त्री कुछ ऐसी ही सट्ट-पट्ट थी। वह तो बड़े उत्साहमें बड़ी प्रसन्नतामें गौओंको लाया। उसने सोचा—मेरी घरवाली अत्यन्त प्रसन्न होगी। आते ही उसने घरमें, आँगनमें, पैरीमें, द्वारपर सर्वत्र खूँटे गाड़ दिये। फिर भी गौएँ न समायीं। तब उसने रसोईघरमें खूँटे गाड़े। अब घरमें एक तिल रखनेको भी स्थान न रहा। गौएँ फिर भी शेष थीं। उसने अपनी घरवालीसे पूछा—सुनती हो, सुक्खाकी माँ! ये गौएँ बच रही हैं, इन्हें कहाँ बाँधूं?

उसने कहा—एक खूँटा मेरे सिरपर गाड़ दो, उसमें बाँध दो।

ब्राह्मण बोला—अरी, क्रोध क्यों करती है, कैसी सुन्दर-सुन्दर तो मैं गौएँ लाया हूँ, तुझे प्रसन्न होना चाहिये। उलटे व्यंग्य-वचन बोल रही है।

उसने तुनककर कहा—और कहाँ स्थान बताऊँ? घर तो तुम्हारा जितना बड़ा है, उतना ही रहेगा। वह बड़ा तो हो सकता नहीं। चौके-चूल्हेको भी तो तुमने घेर लिया है। चूल्हेपर खूँटा गाड़ दिया है, अब मैं रोटी कहाँ करूँगी?

ब्राह्मणने कहा—अब रोटीका क्या काम? अब तो खीर बनाओ और दोनों हाथोंसे सपोटो।

स्त्री बोली—खीर बनानेको भी तो स्थान चाहिये।

ब्राह्मण बोला—बरोसीमें बने, यदि तेरी इच्छा होगी तो कुछ गौओंको ससुराल भेज देंगे।

यह सुनकर स्त्री प्रसन्न हो गयी और उसने ब्राह्मणकी बातको स्वीकार कर लिया। इस प्रकार दिनभर गौओंका दान होता रहा। जब सब चले गये तो नन्दजीने पूछा—सब कितनी गौएँ दान दी गयीं?

सेवकोंने गणना करके बताया—बीस लाख गौएँ अबतक दान हुई हैं।

नन्दजीने कहा—इतनेसे तो हमारी तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने ब्राह्मणोंसे कहा—ब्राह्मणो, मेरी तो इच्छा यह होती है कि सुवर्णके सुमेरुको दानमें दे दूँ। किंतु सुमेरु हमें मिले कैसे?

ब्राह्मण बोले—बाबा, साक्षात् सुमेरु न भी हो तो भी पुराणोंमें ऐसे उपाय हैं कि सुमेरु-दानका फल मिल जाता है।

नन्द बाबा बोले—हाँ, हाँ, वह उपाय मुझे अवश्य बताओ। उसे मैं करूँगा।

ब्राह्मण बोले—बाबा, तिलोंका एक ऐसा ढेर लगाओ जिसके पीछे खड़े होनेपर मनुष्य दिखायी न दे। उसे रत्नोंसे ढक दो, उसके ऊपर पीला वस्त्र ढककर ब्राह्मणोंको दान कर दो। सुमेरु पर्वतके दानका फल हो जायगा। यदि ऐसे सात पर्वत दान कर दो तो ब्रह्माण्डदानका फल हो जायगा।

नन्द बाबा बोले—तो ब्राह्मणदेवता! आप मुझसे ऐसे सात तिलोंके पर्वतोंका ही दान करायें।

फिर क्या था, इस समाचारसे सबके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। सहस्रों बोरियोंमें भरे तिल मँगवाये गये। उतने ही मणि-मुक्ताओं आदि रत्नोंके समूह मँगाये गये। सुनहरे कामके बहुत-से पीले रंगके बहुमूल्य दुशाले मँगाये गये। सात स्थानोंमें तिलोंके बड़े-बड़े सात पर्वत बनाये गये। उनके ऊपर मणि-मुक्ता इस प्रकार बिछाये गये कि तिल दिखायी ही न दें। फिर वे सब पीले दुशालोंसे ढक दिये गये। उनको ब्राह्मणोंके लिये दान कर दिया गया।

यह सुनकर शौनकजी बोले—सूतजी, पुत्र उत्पन्न होनेपर वृद्धिसूतक लग जाता है। सूतकमें तो ब्राह्मण उस घरका जल भी नहीं पीते, फिर इतने दान ब्राह्मणोंने सूतकमें कैसे ले लिये?

सूतजीने कहा—महाराज, पुत्र उत्पन्न होनेपर सूतक तभी लगता है जब नालच्छेदन हो जाय। जबतक नालच्छेदन नहीं होता तबतक सूतक नहीं माना जाता। उस समयमें दान लेनेमें कोई दोष नहीं, ऐसा शास्त्रका प्रमाण है।*

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः।
गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः॥

(श्रीमद्भा० १०।५।५)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! श्रीनन्दजीके पुत्रोत्सवके समय ब्राह्मणगण तथा सूत, मागध और वन्दीजन सुन्दर मंगलयुक्त वचन बोलने लगे। गायक लोग गाने लगे तथा भेरी-दुन्दुभि आदि बाजे स्वयं बार-बार बजने लगे।

छप्पय

सबकी आशा लगी नित्य ही टोह लगावें।
नँदरानी कब कमलनयन लालाकूँ जावें॥
धुनि भेरीकी सुनी सुनत सब जन हरषाये।
जामा पगड़ी पहिन दौरि गोकुलमहँ आये॥
दूरहितें अति मुदित मन, जय जयकार सुनाइकें।
आशिष सुतकूँ देहि शुभ, गीत मनोहर गाइकें॥

सूतजी कहते हैं—मुनियो, नन्दरायके लाला हुआ है। यह बात सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें रातों-रात फैल गयी। सभी लोग आशा लगाये तो बैठे ही थे। रात्रिभर भेरी, नगाड़े तथा दुन्दुभियोंकी तुमुल ध्वनियाँ सुनकर ही सबने समझा लालाके जन्मका ही महोत्सव है। सभी बधाई देने गोकुलकी ओर दौड़े। मार्गमें उन्होंने देखा सहस्रों ब्राह्मण लाखों गौओंको लिये जा रहे हैं, सब बड़े उत्साहसे पूछते—क्या व्रजराजजीके लाला हुआ है?

ब्राह्मण कहते—लाला नहीं हुआ है, सब सुख-समृद्धि देनेवाला हुआ है, तुम जाओ, जो इच्छा हो माँग लाओ। कोई भी वहाँसे निराश या रिक्तहस्त न लौटने पायेगा।

यह सुनकर याचक तथा सूत, मागध, वन्दी तथा अन्यान्य विद्योपजीवीजन परम प्रमुदित होते। सब बड़े उत्साहके साथ, अत्यन्त उमंग, आह्लाद और शीघ्रताके साथ गोकुलकी ओर दौड़े जाते।

नन्दजी बड़े-बड़े गोपोंसे घिरे चौपालपर बैठे थे। इतनेमें पगड़ी बाँधे लम्बा अँगरखा पहिने, तिलक-छापा लगाये, दो-चार बाल-बच्चोंके सहित पोथी-पत्रा बाँधे सूतजी वहाँ आ गये।

नन्दजीने कहा—आओ, आओ महाराज, आप कौन हैं? कहाँसे पधारे? आगत वृद्धने नन्दजीका जय-जयकार किया और कहा—

गोपेश्वर व्रजराजजी, मैं तुम्हारो हूँ सूत।
दौर्‍यो आयो सुनत ही, भयो तुम्हारे पूत॥

नन्दजीने कहा—धन्य-धन्य महाराज, कुछ सुनाइये, आप तो पौराणिकी गाथा सुनाया करते हैं, सुनाइये कुछ। यह सुनकर सूतजी सुनाने लगे—

सवैया

व्रजराज! कहैं सब सूत हमें, मुनि व्यास कृपा करिके अपनाये।

* यावन्न छिद्यते नालस्तावन्नाप्नोति सूतकम्। छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते॥

सुनिके सुत जन्म उमंग भरे, हियमहँ हुलसे सरसे इत आये॥
दान निहारि निहाल भये, धन धेनु सुमेरु समान लुटाये।
व्रजमहँ विहरें घुँघची पहिरें, वर देहु जिही तनु धूरि लगाये॥

नन्दबाबाने कहा—सूतजी, कुछ हमारी समझमें बात आयी नहीं। आप क्या चाहते हैं, धन, रत्न, पृथिवी, हाथी, घोड़ा, ऊँट, बछेरा, गौ, रथ, घर, भूमि तथा और भी अन्न, वस्त्र आप जो चाहें माँग लें।

यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरके सूत बोले—महाराज! मैं आपके लालाको जानता हूँ कि वह कौन है? जीवनभर मैंने पुराणोंमें यही पढ़ा है। माँगते-माँगते बाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही माँगता हूँ कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर अन्य किसीके सामने हाथ न पसारना पड़े, यही अन्तिम याचना हो।

नन्दजीने उत्साहके साथ कहा—हाँ, हाँ ठीक है। इतना धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रहो। दूसरेके यहाँ याचना करनेकी क्या आवश्यकता है?

सूत बोले—आप तो महान् हैं, उदारशिरोमणि हैं। मेरी तो यही भीख है—

धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूप,
मोहन की मोहिनी-सी मूरति निहारौंगो।
पढ़िके पुरान ज्ञान भयो नहिँ बाढ़्यो मान,
दान पाहि आइ ब्रजमाहिँ डेरा डारौंगो॥
कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत,
धूतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारौंगो।
नेहतें निहारि मुख समुझि श्याम सत्यमुख,
साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हौं वारौंगो॥

नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें।

सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी हैं। उनके पास भी ऊँट हैं। उन्होंने नन्दजीका जयकार किया। नन्दजीने पूछा—कहो भाई, तुम कौन हो? इन ऊँटोंमें ये इतनी बहियोंको लादकर क्यों लाये हो?

यह सुनकर वह बूढ़ा आगे बढ़कर बोला—

मढ्यो झगा सोने तगा, दगा करूँ नहिँ नेंक।
हरो पेच तुर्रा पगा, जगा हमारो बेंक॥

नन्दजीने हँसकर कहा—अरे भैया, तू तो बड़ा तुनकबाज है। ये सब और कौन हैं?

यह सुनकर एक ओर संकेत करके बोला—

सवैया

धोती फटी कछु नाक कटी पिचकी चिपटी हमरो जिह भैया।
कंठ सुरीलो रँगीलो बड़ो चटकीलो छबीलो बड़ो ही गवैया॥
भाँग चढ़ाइ नहाइ मलाई उड़ाइ चुराइ सदाहिँ रुपैया।
दूबर दूध बिना ब्रजराज बड़ोहि लबार जि माँगतु गैया॥

नन्दजी हँसकर बोले—अच्छा भैया, यह गवैया है तो इसे गैया दिला दो।

फिर नन्दजीने पूछा, 'भैया! इन ऊँटोंपर क्या लदा है? जगा बोला—

बही पुरानी सबनिमहँ, सब गोपनिके वंश।
आप सबनिके मुकुट मनि, गोपवंश अवतंश॥

नन्दजीने उत्सुकताके साथ कहा—अच्छा, हमारे वंशको सुनाओ।

इतना सुनकर बड़े हर्षके साथ जगाने ऊँटसे बहुत-सी बहियोंको उतारा। कई बार शीघ्र-शीघ्र पन्नोंको पलटकर उसे उठाकर नन्दबाबाके समीप आया और उसमेंसे पढ़ते हुए बोला—

छप्पय

प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप चन्द्र सुरभिजी।
भीमक तिनके पुत्र भये तिनि महाबाहुजी॥
तिनिके सुत गोपेश काननेचर बड़भागी।
कंजनाभि तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥
कंजनाभिके पुत्र सुठि, वीरभानु आभीरवर।
कृती तनय तिनि गोपपति, धर्मधीर सुत धीरधर॥

छप्पय

धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत।
देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥
काननेन्दु सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।
देवमीढ़ मथुरेश संग ब्याही कन्या जिनि॥

ताके सुत परिजन्यजी, नानाकी गोदी गये।
तिनिके अति सुन्दर सुघर, पुत्र पाँच पैदा भये॥

दोहा

ते पाँचों ई शूर अति, भये ज्येष्ठ उपनन्द।
नन्दन अरु सन्नन्दजी, अभिनन्दन श्रीनन्द॥

छप्पय

मातामहकी गोद गये गोकुलमहँ गोपति।
वृद्ध भये परिजन्य गये तपहित हर्षित अति॥
गद्दीको अधिकार पाइ उपनन्द सिहाये।
सुकृति मूर्ति श्रीनन्द यशस्वी भूप बनाये॥
इतनो जानूँ वंश मैं, नारायण किरपा करी।
वृद्धावस्थामहँ बहुरि, गोद यशोदाकी भरी॥

यह सुनकर नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और सब लोगोंको सुनाकर बोले—अरे भैया, यह तो हमारा वंश जानता है। इसे जो माँगे सो तुरंत दो। गौएँ दो, वस्त्र दो, आभूषण दो, द्रव्य दो। जो माँगे उससे दुगुना-चौगुना दो।

इतनेमें एक आदमी खिरकीदार पाग बाँधे हुए बहुत-से बाल-बच्चोंको साथ लिये हुए आया। नन्दजीने उससे पूछा—अरे, भाई तुम कौन हो?

वह बोला—अन्नदाता! हम रायभाट हैं। हमारा काम ही है, तुरंत रचना करके तुरंत कवित्त कहना। यदि श्रीमान्‌की आज्ञा पाऊँ तो मैं भी स्वरचित कवित्त सुनाऊँ?

नन्दजीने कहा—हाँ, भाई सुनाओ।

तब वह भाट कहने लगा—

कवित्त

नन्दको दुलारो सुत प्यारो व्रजवासिनिको,
कोई कहे कारो परि जग को उजारो है।
वेद नहिँ पायो भेद ताही को नाल छेद,
आँगन में गाढ़ि तापैं अगिहानो वारो है॥
भक्तनिको जीवनधन गोपिनिको प्राण मन,
बालनिको बन्धु धेनु धनको रखवारो है।
यशुमतिको लाल व्रजगोपिनको ग्वालबाल,
दर्शनतें निहाल होहुँ सरबसु हमारो है॥

नन्दजी बोले—भैया, तैंने तो मेरे लालकी बड़ी उपमा बढ़ायी। बड़ी सुन्दर कविता सुनायी। अच्छा तू चाहे जितना धन ले जा, छकड़ा भर ले जा, चाहे जितनी गौएँ हँकवा ले जा।

छप्पय

अति आनन्दित नन्द सबनिको स्वागत कीन्हों।
जाने जो जो करी, याचना सो सब दीन्हों॥
बार बार ह्वै मुदित गीत लालाके गावें।
गोप गान अरु वाद्य सुनत अतिशय हरषावें॥
नन्दलालके जन्मको, घर-घर में उत्सव भयो।
मानो व्रज मण्डल सकल, मंगलमय ही बनि गयो॥

[प्रेषक—श्रीश्यामलालजी पाण्डेय]

दान-प्रश्नोत्तरी

(साधुवेशमें एक पथिक)

प्रश्न—त्याग और दानमें क्या अन्तर है?

उत्तर—फेंकनेको, छोड़ देनेको त्याग कहते हैं। विधिपूर्वक स्थापनको, बोनेको दान कहते हैं। फेंकने और बोनेमें जो अन्तर है, वही त्याग और दानमें अन्तर है।

(त्यागसे सम्बन्ध टूट जाता है, किंतु दानसे सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतम सम्बन्ध दृढ़ होता जाता है। अशुभ, असुन्दरका त्याग किया जाता है, शुभ तथा सुन्दरका दान किया जाता है)।

प्रश्न—दान कब करना चाहिये?

उत्तर—जब देनेयोग्य पात्र मिल जाय तभी दान करना चाहिये। (सुखी दशामें दान और दुःखी दशामें दोषोंका त्याग किया जाता है)।

प्रश्न—देनेयोग्य उत्तम वस्तु क्या है?

उत्तर—जिस अवस्थामें तुमने जो कुछ पाया है, उसी अवस्थावाले व्यक्तिको उसी प्रकार देना उत्तम दान है।

(दानमें सदा शुद्ध, सुन्दर तथा आवश्यक वस्तु ही देनी चाहिये। अशुद्ध, जूठी, काममें लायी हुई, अनावश्यक वस्तुका दान नहीं होता)।

प्रश्न—दान किसे देना चाहिये?

उत्तर—बालकको, विद्यार्थीको, वृद्धको, विरक्तको, रोगीको, असहाय अभावपीड़ितको तथा असमर्थको केवल रक्षामात्रके लिये आवश्यक वस्तु देनी चाहिये। जो दूसरोंको दे सके, उसे विद्या और धन देना चाहिये।

प्रश्न—दान क्यों देना चाहिये?

उत्तर—चूँकि कभी लिया गया है, इसलिये उऋण होनेके लिये देना चाहिये या फिर कई गुना अधिक पानेके लिये देना चाहिये।

प्रश्न—दानमें क्या लेना चाहिये?

उत्तर—जिससे जीवनका निर्वाह हो, जिससे जीवनमें सद्‌गति हो, जिसकी वृद्धि की जा सके और दूसरोंको दी जा सके, वही लेना चाहिये।

प्रश्न—दातासे उऋण कैसे हुआ जा सकता है?

उत्तर—जिस दशामें जिस अवस्थामें तुमने दातासे पाया है, उसी अवस्थामें जब किसीको अपने सम्मुख देखो उसे तुम भी मिली हुई वस्तुका दान करो, यही दातासे उऋण होनेका उपाय है। (देनेकी वस्तु शुद्ध हो, सुन्दर हो, समयोपयोगी हो)।

प्रश्न—उत्तम कोटिका दान किसे कहते हैं?

उत्तर—जिसके पीछे अभिमान न हो, बदलेमें कुछ लेनेकी इच्छा न हो, देकर पश्चात्ताप न हो, किसी दूसरेको दुःख न हो, वही उत्तम कोटिका दान है।

प्रश्न—दानके योग्य पात्र कौन है?

उत्तर—जो सन्तोषी हो, परिश्रमी हो, उदार हो, तपस्वी हो, दोषोंका त्यागी हो और भगवद्भक्त अथवा आत्मज्ञानी हो, वही सुपात्र है।

जो मिले हुएका अपने निर्वाहमें उपयोग करे, उसका भोगी न बने और बच जानेपर दूसरोंको देते हुए प्रसन्न रहे। जो उत्तम कुलीन हो, सदाचारी हो, विद्वान् हो, स्वावलम्बी हो, दयालु हो, कर्तव्यपरायण हो, आस्तिक हो, वही सुपात्र है।

प्रश्न—कितना भाग दान करना चाहिये?

उत्तर—कुटुम्बके भरण-पोषणसे जो अधिक हो, वही दान करनेयोग्य है। जो धन प्राप्त हो, उसका दसवाँ भाग देनेका विधान है। जो अपनी आवश्यकतासे अधिक हो, उसे ही दूसरोंकी आवश्यकतापूर्तिके लिये देश-काल, पात्रका विचार रखते हुए दान करना धर्मदान है। इसी प्रकार लोभवश दान, कामासक्त होकर दान, लज्जित होकर दान, भयातुर होकर दान और हर्षित होकर दान—ये दानके छः भेद हैं। दानमें भेद होनेसे फलमें भी भेद होता है।

प्रश्न—दान न करनेसे क्या हानि है?

उत्तर—जो दान नहीं करते; वे लोभवश आगे चलकर मूर्ख होते हैं, रोगी होते हैं, दूसरोंके सेवक बनकर दुःखी होते हैं। भिखारी बनते हैं। दरिद्रतासे पीड़ित रहते हैं।

प्रश्न—दानसे क्या लाभ है?

उत्तर—धर्मपूर्वक दान करनेवाले लाभके लोभी न रहकर उदार होते हैं, श्रद्धा आदि दैवी गुणोंके धनी बनते जाते हैं, शरीरसे निरोग होते हैं; अनुकूलतासे, सुविधाओंसे सुखी रहते हैं; धनी कुलमें जन्म लेते हैं और विरक्त होते जाते हैं।

प्रश्न—दानका फल लोक-परलोकमें कैसे मिलता है?

उत्तर—श्रेष्ठ पुरुषोंको सात्त्विक धर्मदानका फल परलोकमें मिलता है। अविवेकी, लोभी, मोही, कामीको दानका फल इस लोकमें मिलता है। जो देकर पश्चात्ताप करता है, जो अपात्र-कुपात्रको देता है, अश्रद्धापूर्वक देता है, उसे कहीं भी दानका फल नहीं मिलता है। वह जो कुछ देता है—उसके संग्रहकी चिन्तासे मुक्त हो जाता है, इतना ही लाभ होता है। तमोगुणी दानका फल कामोपभोगकी सुविधा है। रजोगुणी दानका फल धन और मानकी प्राप्ति है। सतोगुणी दानका फल भोगोंसे विरक्ति और दैवी सम्पत्तिकी प्राप्ति है।

प्रश्न—भिखमंगोंको दान देना चाहिये या नहीं?

उत्तर—भिखमंगोंको अन्नकी भीख तो देनी चाहिये, परंतु दानमें संकल्प की हुई सम्पत्ति तो विद्वान्, सन्तोषी,

सदाचारी, सद्गुणोंसे सम्पन्न ब्राह्मणको ही देनी चाहिये।

श्रम करते हुए जो परिवारकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके योग्य धन नहीं कमा पाते, उनकी आवश्यकतापूर्तिके लिये सहायता करनी चाहिये। आलसी, विलासी, हिंसक, क्रोधी, धर्मविमुख दानका पात्र नहीं होता।

प्रश्न—कोई माता या पतिव्रता पत्नी प्रेमका दान करते हुए महात्मा-सन्त क्यों नहीं कही जाती?

उत्तर—अधिकतर माता अथवा पत्नी प्रेमका दान करते हुए बदलेमें कुछ-न-कुछ पानेकी अपेक्षा रखती हैं। अधिकतर प्रेमके बदलेमें कोई धन चाहते हैं, कोई मान तथा अधिकार चाहते हैं। कोई प्रेमके बदलेमें प्रेम चाहते हैं; क्योंकि अपनेको प्रेम करनेवाले मानते हैं। जो कर्ता है, वही भोक्ता बनता है। जहाँ कर्ता भोक्ता है, वहीं अहंकारकी सीमा है। जहाँतक अहंकार है वहाँतक प्रेम ढका हुआ है। अहंकार दानी नहीं हो पाता; क्योंकि अहंकार भिखारी है, दरिद्र है। अहंकार जो कुछ भी अपना मानकर देता है, उसके बदलेमें कुछ-न-कुछ पानेके लिये ही देता है। माता-पिता-पुत्र-पत्नी आदि जितने सम्बन्धी हैं, वे अहंकारके ही नामरूप हैं। अहंकार अपना मानकर आरम्भमें ही अपनी सन्तुष्टिके लिये लेता है, अपना मानकर दानी बनता है, त्यागी बनता है, अहंकार ही प्रेमी बनता है। अहंकार ही प्रेमकी पूर्णतामें बाधक है। अहंकार न रहनेपर जो शेष है, वही शान्तात्मा है-महात्मा है-परमात्मा है।

प्रश्न—दान करना चाहते हैं, फिर क्यों नहीं कर पाते?

उत्तर—दान करनेकी अभिलाषा मानवी स्वभाव है। अदानवृत्ति अर्थात् न देनेकी रुचि राक्षसी स्वभाव है। दैवी वृत्ति उदारतापूर्वक दानके लिये उत्सुक होती है, परंतु लोभकी प्रधानतामें राक्षसी वृत्ति दान नहीं करने देती है। जहाँ लोभ है, वहीं भय है। जहाँ भय है, वहीं भेद है। जहाँ भेद है, वहाँ प्रेम नहीं विकसित होता। जहाँ भय है, वहाँ शैतानका राज्य है; जहाँ प्रेम है, वहाँ प्रभुका साम्राज्य है। जब भीतर प्रेम होता है, तभी बाहर सब प्रभुमय दीखने लगता है। जिसकी दृष्टिमें सभी प्रभुमय है तभी दान करना सहज स्वभाव हो जाता है, भेदभाव मिट जाता है, कोई शत्रु रह ही नहीं जाता, सर्पमें, फूलमें, काँटेमें, जीवनमें, मृत्युमें प्रभुकी ही क्रीड़ा-लीला दीखने लगती है। जबतक हृदय प्रेमसे भरपूर नहीं होता, तबतक ही विषयोंमें प्रतीत होनेवाले सुखोपभोगकी कामना तथा लोभ, मोह, ममता, रागद्वेष, ईर्ष्या, क्रोध-कलह, निन्दा, घृणा आदि दुर्विकारोंसे अहंकार घिरा रहता है। जिस दिन हृदय प्रेमसे भर जाता है, उसी दिन दुर्विकारोंके मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं तब तो चारों ओर परमात्माका बोध होने लगता है। तभी जीवनका सत्य, जीवनका आनन्द, जीवनका सौन्दर्य आलोकित होता है। इसके विपरीत दिशामें हम लोभसे-कामसे-भयसे-दुःखसे-अशान्तिसे तथा चिन्तासे घिरे हुए हैं। हमें प्रेमको पूर्ण करनेकी साधनाके लिये दृढ़ संकल्प करना है।

प्रश्न—भिखारियोंको देना क्या उन्हें आलसी नहीं बनाना है?

उत्तर—जबतक किसी प्रकारकी चाह है, तबतक सभी भिखारी हैं। कोई मुखसे माँगते हैं, कोई पापोंसे तरसते रहते हैं, कोई पूर्तिके लिये मनसे व्यथित रहते हैं। कोई पैसा माँगता है, कोई संयोग-भोगका सुख माँगता है। कोई मान चाहता है। कोई प्यार तथा अधिकार चाहता है। कोई वस्तु चाहता है, कोई वोट ही चाहता है। संसारसे चाहनेवाला सदा भिखारी ही बना रहता है। जो किसीसे कुछ लेता है, उसे देना भी चाहिये। देनेवाला उदार होता है लेनेवाला दरिद्र, दीन बना रहता है, अतः कुछ-न-कुछ पात्रकी योग्यताके अनुसार देनेयोग्यको देते रहना ही शुभ है, सुन्दर है। हर किसीको उसके श्रमानुसार योग्यता तथा आवश्यकताका निर्णय करते हुए जहाँतक जो कुछ दे सको—धन, मान, प्यार, अधिकार, सुख, सन्तोष देते रहो।

दान-पुण्य

(श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)

मुझे संसारके रास्ते तो चलना नहीं, मुझे तो धर्मके रास्ते चलना है, तो ऐसी रीतिसे यदि आपने अपने 'मैं' को त्याग दिया तो ये महादान हो गया। आपके अन्दर जितनी मात्रामें यह त्यागका बल आयेगा, उतनी ही मात्रामें आपका बाहरी जीवन सफल होगा, शान्त होगा और संसारसे भय भी नहीं लगेगा। भयका स्वरूप क्या है? भयका यह स्वरूप है कि बाहर तो दुःख ही दुःख है, दुःखकी आग जल रही है। लोगोंके बर्ताव सही नहीं हैं। ये सब ऐसा भाव क्यों होता है? क्योंकि अपनेसे ठीक नहीं बन पाता, तो यह बल प्राप्त किये बिना बाहर अच्छा जीवन नहीं बन पाता।

देश, काल और पात्र देखकर धन, अन्न, वस्त्र, स्वर्ण, भूमि, औषधि आदि वस्तुओंका दान देना तो ठीक ही है; परंतु यह दान देते समय अपने 'मैं-भाव' अथवा 'अहं-भाव' को मनमें न आने दे अर्थात् किसी प्रकारका भी मनमें 'मैं-भाव' नहीं आना चाहिये। यदि कोई जन अपने 'मैं-पने' को किसी भी धर्मक्रियामें न आने दे, तो समझना चाहिये कि उस व्यक्तिने 'मैं-भाव' का उत्तम दान कर दिया है। कोई भी क्रिया करते समय या वचन बोलते समय अपने 'मैं अर्थात् अहंकार' भावको न प्रकट होने दे बल्कि सब ईश-प्रेरणासे ही हो रहा है, ऐसा ही भाव रखे, 'मैं' करने-करानेवाला न बने। ऐसा करनेसे और भी अच्छे-अच्छे गुण उस मनुष्यमें प्रवेश कर जायँगे। जो 'मैं' का बलिदान कर देता है, भगवान्‌की दृष्टिमें वह बहुत प्रिय समझा जाता है।

पुण्य मनके उस धर्मका नाम है, जो कि मनुष्यको सुख उपजाता है। सुख उपजानेवाले या भविष्यमें जो-जो भी कर्म सुख उपजायें, वे सब पुण्य कर्म कहे जाते हैं। इसी प्रकार पुण्यकी एक ऐसी सूक्ष्म अवस्था है जो कि मोक्षके सुखकी ओर अग्रसर करती है, जिसमें शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धिका संयम सम्मिलित है। इस पूर्ण संयमसे जो पुण्य उदय होता है, वह अन्ततः मोक्षप्राप्तिका कारण होता है, परंतु ऐसा पुण्य करनेवालेको यदि कोई सांसारिक सुख पानेकी इच्छा या संकल्प या कामना न हो तो वह बड़े आरामसे सब पापोंको समाप्त करता हुआ मोक्ष-मार्गपर अग्रसर हो जायगा और अन्तमें मोक्षको प्राप्त करेगा।

दान-धर्म

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीदयानन्दजी सरस्वती, भारतधर्म महामण्डल)

धर्मके तीन प्रधान अंग हैं—यज्ञ, तप और दान। श्रीगीतोपनिषद्‌में कहा है **'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।'** इन तीन प्रकारके प्रधान धर्मांगोंमें दान-धर्म सब प्रकारके अधिकारियोंके लिये प्रथम और कलियुगमें परम सहायक है। भगवान् मनुजीने भी कहा है—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

(मनुस्मृति १।८६)

सत्ययुगमें तपोधर्म, त्रेतायुगमें ज्ञानधर्म, द्वापरमें यज्ञधर्म और कलियुगमें केवल दान-धर्म ही प्रधान माना गया है। अपनी वस्तुको अपना सम्बन्ध हटाकर दूसरेको दे देनेका नाम दान है, स्मरण रहे कि दे देना तो सहज है, परंतु दी हुई वस्तुओंसे अपना सम्बन्ध चित्तसे हटाना अत्यन्त ही कठिन है। जो दाता अपनी दान की हुई वस्तुसे जितना चित्तको हटाता हुआ सम्बन्धको छोड़ता है, उतनी ही उसके दानकी गणना उत्तम श्रेणीमें होती है।

दान-धर्म और धर्मोंकी अपेक्षा बहुत ही सहज एवं अनायास साध्य है; क्योंकि यज्ञधर्म और तपोधर्मके साधनके लिये अत्यन्त शारीरिक परिश्रमकी भी आवश्यकता होती है, परंतु दान-धर्मका निष्पादन केवल अपनी वस्तु

उठाकर दूसरेको दे देनेसे हो जाता है; इसलिये यह धर्म सुखसाध्य है। दान-धर्म तीन प्रकारका माना गया है, यथा—अभयदान, ब्रह्मदान और अर्थदान। इस संसाररूपी महाभयसे जीवको बचानेके लिये जो उपदेश दिया जाता है, उसको अभयदान कहते हैं।

विद्योन्नतिके अभिप्रायसे साक्षात् और परोक्षरूपसे जो कुछ दान किया जाता है, उसको ब्रह्मदान कहते हैं। शरीरद्वारा, वचनद्वारा अर्थादिद्वारा विद्योन्नतिके उद्देश्यसे जो कुछ दान-धर्म किया जाय, उसको ब्रह्मदान कहते हैं। विद्यालयकी स्थापना करना, विद्योन्नतिकारी यन्त्रालयकी स्थापना करना, पुस्तक प्रकाशित करना, पुस्तकका प्रणयन करना, पुस्तक दान करना, शास्त्र-अध्यापन इत्यादि इस प्रकारके सभी कार्य ब्रह्मदानके अन्तर्गत समझे जायँगे।

धन-ऐश्वर्य आदिका जो दान किया जाता है, उसको अर्थदान कहते हैं। अन्न, वस्त्र, भवन, भूमि, रत्न आदि सब प्रकारके दानको अर्थदान कहते हैं।

ये उक्त सब प्रकारके दान गीतोपनिषद्के अनुसार त्रिगुणविचारसे तीन प्रकारके होते हैं—(१) सात्त्विक, (२) राजस तथा (३) तामस।

देना अपना कर्तव्य और धर्म है—इस विचारसे जो दान किया जाय और ऐसे व्यक्तिको दान किया जाय कि जिससे किसी प्रकारके प्रत्युपकार पानेकी कोई भी सम्भावना न हो और कैसे देशमें दान करनेसे दानका अधिक फल होगा, कैसे समयमें दान करनेसे दानका अधिक फल होगा और कैसे व्यक्तिको दान करनेसे दानका फल अधिक होगा; इन सब बातोंको विचार करके सावधानीपूर्वक जो दान किया जाता है, उसे **सात्त्विक दान** कहते हैं। बदलेमें प्रत्युपकारकी आशासे, फलके उद्देश्यसे और देते समय चित्तमें क्लेश पाकर जो दान किया जाता है, उसको **राजसिक दान** कहते हैं। सात्त्विकदानमें जिस प्रकारके देश, काल और पात्रका विचार रखा गया है, उस प्रकारके देश, काल, पात्रका विचार न रखकर जो दान किया जाय और दान लेनेवालेको जिस प्रकार सम्मान करना उचित है, ऐसा सम्मान न करके जो दान किया जाय और अवज्ञाके साथ जो दान किया जाय उसको **तामसिक दान** कहते हैं।

सात्त्विक दानसे मुक्ति, राजसिक दानसे ऐहिक तथा पारलौकिक सुख और तामसिक दानसे कभी-कभी नरककी प्राप्ति होना भी सम्भव होता है। इसलिये दान करनेसे ही पुण्यकी प्राप्ति नहीं होती, इसमें विचारकी आवश्यकता होती है, विचारपूर्वक किये हुए दानका फल ही उत्तमरूपसे मिल सकता है।

यदि कोई यह प्रश्न करे कि क्या एक क्षुद्र वस्तुके प्रदानरूप एक सामान्य कर्मसे दुर्लभ मुक्तिपदकी प्राप्ति हो सकती है? ऐसे पूर्वपक्षके उत्तरमें सिद्धान्त यह है कि जब कर्ममीमांसाद्वारा यह सिद्ध है कि धर्म मुक्तिप्रद है, तो यह निश्चय है कि दानरूपी पुण्यकर्म यदि यथावत् वेदानुकूल किया जाय और वह कर्म तीव्रतम हो, तो अवश्य उस धर्म-कार्यद्वारा मुक्तिकी प्राप्ति होगी। जब धर्म मुक्तिप्रद है, तो धर्मका प्रत्येक अंग भी मुक्तिप्रद है। जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति रहनेसे उसके अंशभूत क्षुद्र स्फुलिंगमें भी दाहिका शक्ति है, जैसे एक क्षुद्र स्फुलिंग भी देश, काल और सहयोगीकी सहायता मिलनेपर बड़े-बड़े पदार्थोंको दग्ध कर सकता है, उसी प्रकार यथार्थ विज्ञानानुकूल दान-धर्मके साधनद्वारा साधकको परम्परा-सम्बन्धसे अवश्य ही मुक्ति मिल सकती है।

जबतक मनुष्यका अन्तःकरण विषयोंमें आसक्त रहता है, तबतक वृत्तियाँ अन्तःकरणको प्रतिक्षण चंचल करती रहती हैं और जब अन्तःकरणकी विषयासक्ति नष्ट हो जाती है, उसी समय सब वृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। वृत्तियोंके विलीन होते ही अन्तःकरणका चांचल्य निःशेष नष्ट हो जाता है। योगदर्शनसे यह बात सिद्ध है कि यदि चित्तवृत्तियोंका निरोध कर दिया जाय तो अन्तःकरणकी चंचलता नष्ट होनेके कारण स्वतः चैतन्यका दर्शन होने लगता है। पूज्यपाद महर्षि पतंजलिजीने कहा है—

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः', 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।'

(योगदर्शन)

अब विचार करनेकी बात यह है कि जिस किसी मनुष्यका अन्तःकरण किसी विषयमें अत्यन्त आसक्त हो और उस आसक्तिके कारण वृत्तियाँ अन्तःकरणको आलोडित

करके चंचल कर रही हों, वह मनुष्य यदि साहस करके उस विषयसे अपने चित्तकी आसक्ति एकदम हटाकर उस विषयका त्याग कर दे, तो क्या वृत्तियोंका निरोध हो जानेसे अन्तःकरणकी स्थिरता नहीं हो सकती? और क्या स्थिर अन्तःकरणमें चैतन्यका दर्शन दुर्लभ है? और जब चैतन्यका दर्शन हो गया तो क्या मुक्तिमें कुछ कसर रह गयी? कदापि नहीं। इस कारण यह विज्ञानसे सिद्ध हुआ कि पहले कहे हुए सात्त्विक दानके विज्ञानके अनुसार यदि कोई दाता अपने उन पदार्थोंका दान करे, जिन पदार्थोंमें उसकी आसक्ति है, तो दानधर्मद्वारा मुक्ति प्राप्त होना अवश्य सम्भव है, परंतु यह निश्चय है कि केवल सात्त्विक दान ही मुक्तिका कारण हो सकता है। देश-काल-पात्रके विचारसे सात्त्विक दानद्वारा दाताके अन्तःकरणमें दिन-प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा सत्त्वगुण अवश्य बढ़ता जायगा और क्रमशः निष्काम भाव और सत्त्वगुणके विशेष बढ़ जानेसे वह दाता मुक्तिके निकट पहुँच जायगा।

दानकी विलक्षणता यह है कि मनुष्य यदि एकान्तमें बैठकर सात्त्विक भावसे किसी समय किसी उत्तम तथा योग्य पात्रको एक पैसा भी दान करे, तो उसकी गणना सात्त्विक दानमें हो सकती है और इसी प्रकारका दान दाताको मुक्तिपद प्राप्त करा सकता है। यदि मुक्तिकी प्राप्ति करना बिलकुल ही असम्भव हो, तो उससे ऐहिक और पारलौकिक शान्ति-सुखकी प्राप्ति हो सकती है। सात्त्विक वृत्तिसे एक पैसा अथवा एक मुट्ठी अन्न आदिका दान भी क्रमशः दाताकी मुक्तिका कारण हो सकता है और क्रमशः उसकी बुद्धिको शुद्ध करता हुआ दाताको मुक्ति-भूमिमें पहुँचा देता है; परंतु राजसिक वृत्तिसे दान किये हुए करोड़ों रुपयोंसे भी मुक्ति नहीं हो सकती। अतः यह स्वतः सिद्ध है कि दानधर्म श्रद्धामूलक है। शुद्धभावद्वारा दान करनेमें दानकी शक्ति असाधारणरूपसे बढ़ जाती है। भावके द्वारा ही एक छोटे दानका भी अनन्त फल हो सकता है और यदि भाव ठीक न हो तो महान् दानका भी फल अति सामान्य ही होता है।

पूर्वविज्ञानानुसार यह सिद्ध ही हो चुका है कि किस प्रकारसे दान-धर्मके द्वारा साधकको मुक्तिपदकी प्राप्ति हो सकती है और यह भी सिद्ध हो चुका है कि केवल दान-धर्मके साधनसे ही किस प्रकार चित्तवृत्तिनिरोध होकर साधक समाधि-भूमिमें पहुँचता है। दान जब धर्म ही है, तब उक्त धर्मके द्वारा धर्मका अन्तिम फल मुक्तिपद अवश्य ही प्राप्त होगा। पहले ही कह चुके हैं कि अग्निका एक स्फुलिंग यदि देश, काल और पदार्थकी सहायता प्राप्त कर ले तो वही स्फुलिंग क्रमशः महान् शक्तिको धारण करके प्रलयाग्निके रूपमें परिणत होकर इस पृथिवीको दग्ध कर सकता है। जिस प्रकार अग्निका स्फुलिंग भी अग्नि ही है, उसी प्रकार दान-धर्म भी धर्म ही है और उसमें धर्मकी पूर्ण शक्ति विद्यमान है।

अब यह प्रश्न हो सकता है कि दान-धर्मद्वारा अभ्युदयकर स्वर्ग और निःश्रेयसकर मुक्ति तो प्राप्त हो सकती है; परंतु दानके द्वारा विरुद्ध फल नरक कैसे प्राप्त होता है? इस पूर्वपक्षके उत्तरमें सिद्धान्त यही है कि जब दानमें पूर्णशक्ति विद्यमान है तो वही शक्ति ऊर्ध्वगामिनी होनेसे अभ्युदय और निःश्रेयस फल देती है और वही शक्ति अधोगामिनी होनेसे नरकरूपी फल भी दे सकती है। सात्त्विक दानसे निःश्रेयस और राजसिक दानसे पारलौकिक और ऐहलौकिक अभ्युदयकी प्राप्ति होती है, ये दोनों दान भय-रहित और उन्नतिप्रद हैं। साधक इन दोनोंके द्वारा यथाधिकार आध्यात्मिक उन्नति अवश्य प्राप्त करता है, परंतु तामसिक दानद्वारा दाताको कभी-कभी केवल ऐहलौकिक अभ्युदयकी प्राप्ति होती है और कभी-कभी नरककी भी प्राप्ति हो सकती है। उदाहरणार्थ समझ सकते हैं कि यदि किसी दाताके देश, काल, पात्र विचार-रहित प्रमादयुक्त तामसिक दानसे धन प्राप्त करता हुआ कोई मनुष्य घोरतर प्रबल पापानुष्ठान करनेमें प्रवृत्त हो, तो यह निश्चय है कि परम्परा-सम्बन्धसे सहायक होनेके कारण वह तामसिक दाता भी उस पापीके किये हुए पापकर्मके कुछ अंशका भागी अवश्य बनेगा। इसी एक सामान्य उदाहरणसे इस विज्ञानके समझनेमें सुगमता हो सकती है, इसमें सन्देह नहीं। इसीलिये अत्रिसंहितामें लिखा है—

नास्ति दानात्परं मित्रमिहलोके परत्र च।
अपात्रे किन्तु यद्दत्तं दहत्यासप्तमं कुलम्॥

अर्थात् इहलोक और परलोकमें दानके समान परममित्र और कोई नहीं है, किंतु अपात्रमें दिया हुआ दान सात पुरुषपर्यन्त दुःखदायी होता है। अतः दान-धर्मके साधकको सदा तीन गुणोंके दानोंके तीनों लक्षणोंको स्मरण रखकर दान करना उचित है और साथ ही यह भी स्मरण रखना उचित है कि जिनके पास यथेष्ट धन है, वे व्यक्ति यदि कृपणता और नीचताके कारण दान न करें तो परलोकमें उनको नरक और जन्मान्तरमें दरिद्र होना पड़ेगा, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया अवश्य हुआ करती है, अतः कृपणको नरक एवं दरिद्रता अवश्य भोगनी होगी, यह विज्ञान मीमांसादर्शनने ऐसे भी सिद्ध किया है कि कर्मकी क्रिया और प्रतिक्रिया-विज्ञानके अनुसार जिस मनुष्यके पास जो पदार्थ है, उसका वह व्यक्ति यदि अपव्यवहार करे, तो जन्मान्तरमें उस व्यक्तिको उस पदार्थका अभाव रहेगा। इसी रीतिपर यदि धनवान् व्यक्ति धनका अपव्यवहार करे, तो वह भी जन्मान्तरमें दरिद्र होगा। सिद्धान्त यह है कि कृपण मनुष्य और धन-अपव्यवहारकारी दोनों व्यक्तियोंको ही परलोकमें नरक भोगना होगा और जन्मान्तरमें दरिद्र होना पड़ेगा।

चाहे पुस्तक, विद्यालय, अन्नसत्र, छात्रनिवास, विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, यन्त्रालय आदि किसी प्रकारका ब्रह्मदान-सम्बन्धी दान हो अथवा अन्न, वस्त्र, भूमि, धन, रत्न आदि किसी प्रकारका अर्थदान-सम्बन्धी दान हो— सभी दान देश, काल, पात्रके विचारपूर्वक होने उचित हैं। कैसे देशमें दान करना चाहिये, किस देशमें उक्त प्रकारके दानका अभाव है, किस देशमें उक्त प्रकारका दान करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति हो सकती है, किस देशमें दान करनेसे ईश्वरकी आज्ञाके पालनमें विशेष सुविधा होगी, किस देशमें दान करनेसे अधिसंख्यक जीवोंका कल्याण हो सकता है इत्यादि विषय विचारनेसे देशका विचार ठीक-ठीक हो सकता है। इसी प्रकार कैसे कालमें दान करना उचित है, किस कालमें उक्त प्रकारके दानका अभाव है, किस कालमें उक्त प्रकारका दान करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति हो सकती है, किस कालमें दान करनेसे ईश्वरकी आज्ञाके पालनमें विशेष सुविधा होगी, किस कालमें दान करनेसे अधिसंख्यक जीवोंका कल्याण हो सकता है इत्यादि विचारोंपर निश्चयकर दान करनेसे उन्नत दान हो सकता है। इसी रीतिसे पात्रका भी विचार होना उचित है। कैसे पात्रको दान करना उचित है, कैसे पात्रमें उक्त प्रकारका अभाव है, किस पात्रमें उक्त प्रकारका दान करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति हो सकती है, किस पात्रमें दान करनेसे ईश्वरकी आज्ञाके पालनमें विशेष सुविधा मिल सकती है, किस पात्रमें दान करनेसे अधिसंख्यक जीवोंका कल्याण हो सकता है इत्यादि विषयोंको भलीभाँति विचारकर दान करनेसे दान-धर्मका साधन ठीक-ठीक हो सकता है। अतः श्रीगीतोपनिषत्-कथित त्रिविध-दानके रहस्यको पूर्णरीतिसे समझकर तथा देश, काल और पात्रका विचार करके दानधर्मका साधन करनेसे मनुष्यमात्र अभ्युदय और निःश्रेयसके अधिकारी होंगे, अन्यथा नहीं।

व्याससंहितामें कहा गया है—

ऊषरे वापितं बीजं भिन्नभाण्डेषु गोदुहम्।
हुतं भस्मनि हव्यश्च मूर्खे दानमशाश्वतम्॥

जिस प्रकार ऊषर भूमिमें बोया हुआ बीज, भग्नपात्रमें स्थित दुग्ध और भस्ममें हवन किया हुआ घृत निष्फल होता है, उसी प्रकार मूर्खको दिया हुआ दान निष्फल हुआ करता है; क्योंकि वह दानका पात्र नहीं है। इसलिये देश, काल और पात्रको बिना विचारे दान करनेसे नहीं करना अच्छा है; क्योंकि ऐसे देश, काल, पात्रोंके विचारसे रहित होकर दान करनेसे स्वजाति और स्वदेशको कोई भी लाभ नहीं पहुँचता है और न अपनी धर्मोन्नति ही होती है। ऐसा दान सर्वथा निष्फल ही होता है। भारतवासी जबतक सात्त्विक दान करनेका अभ्यास नहीं करेंगे, तबतक भारतकी उन्नति होना तो बहुत ही कठिन है, अपितु उसके लिये आशा भी नहीं की जा सकती। आज भी अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतवर्षमें बहुत ही अधिक दान होता है, पर तामसिक दानकी संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी है, इसी कारण भारत दिन-दिन दुःखी होता हुआ गिरता जा रहा है। इसलिये भारतहितैषियोंका इस समय देश, काल और पात्रोंका विचार करके ही दान करना मुख्य कर्तव्य है।

यज्ञ-दानादिसे गृहस्थजनोंका स्वतः कल्याण हो जाता है

[ब्रह्मलीन संत स्वामी श्रीचैतन्यप्रकाशानन्दतीर्थजी महाराजके सदुपदेश]

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २।४०)

सेवा, परोपकार अथवा जो कुछ भी निष्काम भावसे किया जाता है, उसका फल महान् होता है। सकाम कर्मका फल क्षणिक और अल्प होता है। निष्काम सेवाके परिपक्व होनेपर उस सेवकका, दानदाताका सुख, स्वास्थ्य और आनन्द ऐसे ही बढ़ता है, जिस प्रकार वसन्त ऋतुमें वनस्पतिकी हरियाली। स्वर्ग आदि पदार्थ तो सेवाधर्मी, परोपकारी व्यक्तिको सहजहीमें मिल जाते हैं। आत्मसाक्षात्कारका बड़ा ही सुगम मार्ग सर्वसाधारण मनुष्योंके लिये निष्काम सेवा है।

एक बार कात्यायनमुनिने मुनिश्रेष्ठ सारस्वतजीसे प्रश्न किया—'दान तथा तपमें कौन दुष्कर तथा लोक-परलोकमें फलदायी है?' सारस्वतजीने दानको तपसे श्रेष्ठ बताया।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको अन्नदानका महत्त्व बताते हुए कहते हैं—

अन्नदानं प्रधानं हि कौन्तेय परिचक्षते।
अन्नस्य हि प्रदानेन रन्तिदेवो दिवङ्गतः॥

अन्नदान सब दानोंमें श्रेष्ठ है। अन्नदानके पुण्यके कारण ही राजा रन्तिदेवको स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई। अन्नके अलावा अन्य विभिन्न वस्तुओंके दानका भी बहुत महत्त्व हमारे शास्त्रोंमें बताया गया है। जिसे लक्ष्मीकी कृपा प्राप्त है, जिसके पास प्रचुर धन है, उसे धनका ज्यादा-से-ज्यादा अंश धर्मकार्य, यज्ञादि तथा सेवा-परोपकारमें लगानेको सदैव तत्पर रहना चाहिये।

लक्ष्मी कब रूठकर विदा हो जायँ, कहा नहीं जा सकता। इसलिये दानकर्मको कलपर नहीं छोड़ना चाहिये। प्रतिदिन यथाशक्ति यथासामर्थ्य दान देते रहना चाहिये।

पुराणकी एक कथा है कि एक बार एक देवी एक राजाके घरसे जाने लगीं। इन्द्रने कुतूहलवश पूछा—देवी तुम कौन हो? किसलिये इस घरसे विदा हो रही हो? देवी बोलीं—देवेन्द्र, मैं लक्ष्मी हूँ। पहले ये सत्यवादी थे, जितेन्द्रिय थे। अतिथियोंका सत्कार करते थे। कोई इनके द्वारसे खाली हाथ नहीं लौट सकता था—मुक्त हस्तसे सत्कर्मोंके लिये दान देते थे। अब ये समयके प्रभावमें आकर मर्यादाहीन हो गये हैं। भक्ष्य-अभक्ष्यका विचार किये बिना चाहे जो खाने-पीने लगे हैं। परिश्रम त्यागकर आलसीकी तरह पड़े सोते रहते हैं। अतिथियोंका सत्कार न करके तिरस्कार करने लगे हैं। देना छोड़कर संग्रह करनेकी होड़में लगे रहते हैं। इन सब दुर्गुणोंके कारण मैं ऊबकर इनका साथ छोड़कर जा रही हूँ।

देवीने आगे कहा—'मैं अकेली ही विदा नहीं हो रही हूँ, आशा, श्रद्धा, क्षमा-शान्ति आदि आठ देवियाँ इन्हें छोड़कर विदा हो रही हैं।'

उपर्युक्त आख्यानसे यही प्रेरणा लेनी चाहिये कि जहाँ धर्म, शील रहेगा, धनका दानादि सत्कर्मोंमें उपयोग होता रहेगा—लक्ष्मी उसीके यहाँ निवास करेंगी। अतः तन-मन-धन तीनोंका सेवा-परोपकारमें उपयोग करनेके लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये। दान देना ईश्वर तथा समाजके प्रति उऋण होना है। ईश्वरने ही हमें शरीर दिया है, धन दिया है। हमें शरीर तथा मनसे ईश्वरकी पूजा तथा धनसे दान और प्राणियोंकी सेवाके लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये।

एक बार कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके अवसरपर भगवान् श्रीकृष्णके पिता श्रीवसुदेवजी भी पहुँचे हुए थे। वहाँ शास्त्रप्रवक्ता श्रीव्यासजी भी पधारे हुए थे। वसुदेवजीने सत्संगके दौरान व्यासजी महाराजसे प्रश्न किया—सद्गृहस्थके कल्याणके लिये सरल साधन कौन-से हैं? महर्षि व्यासने बताया—न्यायपूर्वक अर्जित धनसे श्रद्धासहित भगवान्‌का पूजन, अर्चन तथा यज्ञादि करे। इच्छाएँ सीमित रखे। धर्मपर, सत्यपर अटल रहे। गृहस्थका इन नियमोंके पालनसे ही स्वतः कल्याण होता है।

व्यासजीने बताया—धन-अर्जनकी इच्छाका नाम वित्तैषणा है। धनार्जन करे तो अवश्य, परंतु धर्मपूर्वक, न्यायपूर्वक ही करे। वही धन सार्थक होता है, जो यज्ञ-दानादिमें, परोपकारमें व्यय किया जाता है। धर्म-कर्म-दानादिमें धनका उपयोग करनेसे वित्तैषणा शान्त हो जाती है। यज्ञ-दान आदि करके मनुष्य देव-ऋणसे मुक्त हो जाता है। **[प्रस्तोता—श्रीत्रिलोकचन्द्रजी सेठ]**

सर्बस दान

(स्वामी श्रीप्रज्ञानानन्दजी सरस्वती)

सर्बस दान दीन्ह सब काहू । जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥

टीका—(१) **सर्बस**=सर्वस्व=सर्व+स्व, अपने पास अपना जो कुछ धन, धान्य, मणि, रत्न, सुवर्ण, धेनु, वाजि, गज आदि था, वह सब सबने दान दिया और जिन्होंने पाया उन्होंने भी वह अपने पास रखा नहीं। यह है इस चौपाईका सीधा अर्थ। यह व्यवहारमें कैसे घट सकता है? यह शंका अनेक मानसके पाठक बार-बार पूछते हैं। हरेक पृच्छकको सविस्तार समाधान लिखना कठिन है। अत: उसे यहाँ दिया जा रहा है—

(१) दान किसने दिया, क्या दिया, किसको दिया और जिन्होंने पाया उन्होंने वह रखा नहीं, तब उसका क्या हुआ, किसे दिया और चक्रापत्ति क्यों न खड़ी हुई—ये हैं मुख्य शंकाएँ। ऐसे समय बिलकुल सुगम और सुरक्षित उपाय यही है कि विशिष्ट शब्दोंका उपयोग मानसमें किस प्रकार किस अर्थसे किया है, यह देखना। यहाँ 'दान देना' 'दान दीन्ह' क्रिया है, इसके उदाहरण देखिये।

'बिबिध दान महिदेवन्हि पाए॥'

(रा०च०मा० १। २१२। ३)

दिए दान आनंद समेता। चले बिप्रबर आसिष देता॥

(रा०च०मा० १। २९५। ८)

दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे॥

(रा०च०मा० १। ३३९। ६)

'दिए दान बिप्रन्ह बिपुल....।'

(रा०च०मा० १। ३४५)

इन चारों उदाहरणोंमें 'दान देना', 'दान पाना' क्रियाका सम्बन्ध विप्रसे ही है, ऐसे और भी उदाहरण हैं—१। ३२५। २—४, अयो० ८। ४, ८०। २-३, २०४। ४, ६। १२०। २१, ७। १२। ७, ७। २४। १, ७। १४। १०। कहीं भी मानसमें 'दान देना' 'दान पाना' क्रियाका सम्बन्ध विप्रों, ब्राह्मणोंके सिवा दूसरे किसीसे भी नहीं है।

(३) विप्रोंको छोड़कर किसी दूसरेको देनेमें—

'जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि....।'

(रा०च०मा० १। २९५)

'भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥'

(रा०च०मा० १। ३०६। ३)

'सादर सकल मागने टेरे॥'

(रा०च०मा० १। ३४०। १)

'भूषन बसन बाजि गज दीन्हे।'

(रा०च०मा० १। ३४०। २)

ऐसे और उदाहरण देखिये—१। २६२, २६५। ६, २९३। ७, ३१९, याचक भिखारी, मागधसूतादिको देनेमें बकसीस देना, देना या निछावरि देना क्रियाका ही सम्बन्ध है, इनके सम्बन्धमें कहीं भी 'दान देना' या 'दान पाना' नहीं कहा है।

(क) यह परिभाषा-भेद धर्मशास्त्र-मर्यादा-पालनके वास्ते ही मर्यादा पुरुषोत्तमके चरित्रमें मानसमें बड़ी सावधानीसे किया है; क्योंकि विधिपूर्वक दान लेनेके अधिकारी अग्रजन्मा ब्राह्मणके सिवा दूसरे कोई भी नहीं हैं। यथा—

अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजन्मनाम्॥

क्षत्रिय, वैश्य (द्विज होनेपर भी) अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह (दान लेना)—तीनोंके भी अधिकारी नहीं हैं। वे केवल अध्ययन (वेदादि पढ़ना), यजन (यज्ञ-याग) करना और दान (देने)-के अधिकारी हैं।

(४) अत: सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि ब्राह्मणेतरोंने सर्वस्व दान ब्राह्मणोंको दिया।

(क) दूसरे चरण 'सर्व:' 'सब' शब्द नहीं न 'दान दीन्हें' 'दान दिया' कहा है। 'जिन्होंने (दान) पाया उन्होंने भी वह रखा नहीं' इतना ही कहा है। सभी ब्राह्मणोंने दान पाया ऐसा भी नहीं कहा और जिन ब्राह्मणोंने पाया उन्होंने 'दान दिया' ऐसा भी अर्थ नहीं है। जिन ब्राह्मणोंने दान लिया, पाया, उन्होंने वह सब याचकोंको दिया, मागधसूतादिको दिया अथवा राजपुत्रपर निछावर कर दिया।

(ख) ब्राह्मण भी दान दे सकता है। अत: जिन ब्राह्मणोंने ब्राह्मणोंसे प्रतिग्रह लिया, उन्होंने भी याचकादिको दिया।

(ग) सभी ब्राह्मण दान लेनेवाले थे, ऐसा समझना भी भूल है; क्योंकि अनेक ब्राह्मण प्रतिग्रह-पराङ्मुख होते

हैं; क्योंकि प्रतिग्रह और असत्य-भाषण मन्त्रसिद्धिमें बाधक होते हैं, यथा—

परान्नेन मुखं दग्धं हस्तो दग्धः प्रतिग्रहात्।
असत्येन तु वाग् दग्धा मन्त्रसिद्धिः कथं भवेत्॥

दान देना विधियुक्त करनेका कर्म है, पर विधिरहित दिया हुआ प्रतिग्रह पराङ्मुख ब्राह्मण भी ले सकते हैं।

(५) क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र विधिपूर्वक दिया हुआ दान लेनेके अधिकारी नहीं हैं। त्रेतामें, दशरथजीके राज्यमें वे सब धर्मशील ही थे, जिससे चक्रापत्ति दोष भी पैदा नहीं होता है। श्रीदशरथजीने जैसे ब्राह्मणोंको दान दिया, वैसे ही दूसरोंने भी ब्राह्मणोंको दिया।

जन्मसे नालच्छेदनतकके अल्पावकाशमें सभी, हजारों ब्राह्मणोंको दान राजा दे ही नहीं सकते थे। जिन्हें जननाशौच होता है, उनसे नालच्छेदनसे दस दिनतक दान लेना निषिद्ध है। पर जिनको जननाशौच नहीं था, उन्होंने बादमें ही ब्राह्मणोंको सर्वस्व दान दिया।

ब्रह्मलीन श्रीप्रेमभिक्षुजी महाराजके दान-सम्बन्धी अमृतोपदेश

मानवकल्याणके लिये भारतीय धर्मशास्त्रोंमें दानकी अपार महिमा बतायी गयी है। भगवान्ने हमें जो कुछ दिया है, उसे अपने भोगके लिये ही नहीं दिया है, बल्कि सच्ची बात यह है कि जितनेसे हमारा जीवन-निर्वाह होता है, उतने ही धनपर हमारा अधिकार है। शेष धन दानकर पुण्यके भागी बनें, ऐसा कल्याणकारी उपदेश हमारे ऋषियोंने दिया है। श्रद्धापूर्वक दान देना ही सत् है। ईश्वरकी भावनासे दान देना दैवीभाव है। परोपकारकी भावनासे दान देनेपर लोकमें सुयश प्राप्त होता है।

अनेक जन्मोंसे मनुष्यका अन्तःकरण मलिन रहा है। काम, क्रोध, लोभ आदि विकार मनुष्यके अन्तःकरणके मल—दोष ही हैं। अन्तःकरणकी मलिनताको दूर करनेके लिये किसी न किसी साधनमें प्रवृत्त होना पड़ता है। इस कलियुगमें दानको एक श्रेष्ठ साधन बताया गया है। अतः नित्य दान देना एक साधन है। श्रीमद्भगवद्गीतामें दानको यज्ञकर्म बताया गया है।

दानकी क्रियाका फल साधककी भावनाके अनुसार प्राप्त होता है। इसमें विवेककी भी आवश्यकता है। विवेकके अभावमें दानका दुरुपयोग होता है। साधकका कल्याण सात्त्विकभावसे दान करनेपर ही होता है। फलेच्छासे रहित होकर परोपकारकी भावनासे दान देना सात्त्विक दान है। देश, काल और पात्रपर उचित विचार करना धर्म है। जिस देश और कालमें जिस वस्तुका अभाव हो, उसे ही प्राणियोंको देना उचित है। जैसे अकालग्रस्त देशमें अन्न-वस्त्रका दान करना उचित है।

रजोगुणी तथा तमोगुणी भावनासे दान देना आसुरी भाव है। निःस्वार्थभावसे दान देना सात्त्विक भाव है। आत्मभाव तथा ईश्वरभावसे दान देना दैवीभाव है। धर्मशास्त्रके अनुसार दान देना मनुष्यका स्वधर्म है। स्वधर्म मनुष्यकी जीवनचर्याका अंग है। प्राचीन समयमें लोग स्वधर्मका पालन करते थे। स्वधर्म आत्मभावमें होता है। हमारा अपना पारमार्थिक स्वरूप आत्मा है। आत्मभाव या ईश्वरभावमें जीवन जीना स्वधर्मका जीवन है। यज्ञ, दान और तप स्वधर्मका जीवन है, जिसे कभी नहीं त्यागना चाहिये। भगवान्ने भी कहा है—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

(गीता १८।५)

दानद्वारा मनुष्यका हृदय पवित्र होता है। उच्च कोटिके साधक भी दानद्वारा विशेष पवित्र बनते हैं, यही पवित्र भाव **'पावनानि मनीषिणाम्'** द्वारा प्रकट किया गया है।

भगवान्ने यह मानवशरीर भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे दिया है। अतः भगवान्के उद्देश्यसे ही दान करना उचित है। मानवशरीर पाकर भी यदि मनुष्य अपने तन, मन और धनद्वारा सांसारिक विषयोंकी प्राप्तिकी ही चेष्टा करता है

तो यह मनुष्यका दुर्भाग्य ही है।

भारतीय धर्मशास्त्रोंमें इस कलियुगमें भगवान्‌के नाम और दानकी विशेष महिमा बतायी गयी है। इसलिये भगवान्‌का नाम लेते हुए दान करनेसे दानका विशेष महत्त्व हो जाता है।

अन्न, जल, वस्त्र और औषधि—इन चारोंके दानमें पात्र-अपात्र आदिका विचार नहीं करना चाहिये।

दान देनेकी दो दृष्टियाँ हैं—

१-लोकदृष्टिसे दान करना—लोककल्याणके लिये हमारे पास जो भी धन, वस्तु, शक्ति, ज्ञान, प्रेम-आनन्द है, उसे हम प्रतिदिन दूसरोंको देते रहें, इससे हमारे जीवनमें सुख-शान्ति बढ़ेगी और हमारा यश भी स्वतः बढ़ेगा।

२-भागवतदृष्टिसे दान देना—सब कुछ अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि, धन, बल आदि भगवान्‌से ही हमें प्राप्त होते हैं। अतः उन सारी वस्तुओं तथा शक्तियोंको भगवत्स्वरूप प्राणियोंकी सेवामें लगाना हमारा स्वधर्म है।

स्वधर्मके यथाविधि परिपालनसे मनुष्य जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। वास्तवमें दान भावसे होता है, केवल धन आदि वस्तुओंद्वारा नहीं होता। दान एक प्रकारकी पवित्र सेवाका भाव है। सच्चे हृदयसे प्रेमद्वारा जो दूसरोंकी सेवा करते हैं, उससे दूसरोंके हृदयमें भी पवित्र प्रेम उदय होता है, यह दानका विशेष महत्त्वपूर्ण भाव है।

सबका भला चाहना सद्भावका दान है। सद्भावसे असीम भगवान्‌की प्राप्ति होती है। धनके दानसे सद्भावके दानका अधिक महत्त्व है।

दान केवल धनका ही नहीं होता, बल्कि पवित्र ज्ञान, सेवा, प्रेम और सद्भावनाके दानसे मनुष्यका विशेष कल्याण होता है। पवित्रताका विकास दानसे ही होता है, भगवत्कृपासे ही दानमें रुचि उत्पन्न होती है। भगवद्भक्तिमें तो पूर्ण जीवनका ही दान भगवान्‌को किया जाता है। सद्भावका दान भक्तिका सच्चा रूप है। अतः दूसरोंके कल्याणके लिये हम सबमें सद्भाव होना चाहिये—यह सर्वश्रेष्ठ दान है। [**प्रेषक—श्रीरामानन्दप्रसादजी**]

सिन्धके संत स्वामी टेऊँरामजी महाराजके दान-प्रसंग

हमारे देशका यह परम सौभाग्य है कि यहाँ परम पिता परमात्माकी असीम अनुकम्पासे परम सिद्ध सन्तोंका प्रादुर्भाव होता रहा है। आचार्य श्रीसद्‌गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज भी इसी सन्त-परम्पराकी एक आदर्श कड़ी हैं। आपका जन्म आषाढ़ शुक्ल षष्ठी संवत् १९४४ को तत्कालीन सिन्ध प्रदेशके हैदराबाद जिलेके खण्ड ग्राममें हुआ था। आपके पिताश्री श्रीचेलारामजी श्रेष्ठ भक्त और माता कृष्णादेवी अत्यन्त धर्ममयी थीं। आप लगभग ५५ वर्षतक इस धराधामपर रहे और आजीवन हिन्दू सनातन धर्मका प्रचार करते रहे। आपने देखा कि सांसारिक लोग अज्ञानसे ग्रस्त होकर जीवनके परम लक्ष्यको भूल गये हैं और नाशवान् वस्तुओंकी प्राप्ति एवं सुरक्षामें ही अपनी-अपनी अमूल्य शक्तिको समाप्त कर रहे हैं, अतः उनपर कृपा करते हुए उन्होंने लोगोंको उपदेश दिया कि प्रभुसे नश्वर वस्तुओंका दान मत माँगो, माँगना है, तो उनसे प्रेम और भक्तिका वरदान माँगो। वे कहते हैं—

सद्‌गुरु मुझको दान दे, प्रेम भक्ति विश्वास।
कहे टेऊँ नित सुमति दे, सन्तनि मांहि निवास॥

सन्त सद्‌गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज पीड़ित मानवताके सच्चे सेवक थे, उनकी उदारता, दयालुता और

परोपकारिताके कतिपय प्रेरणाप्रद प्रसंग यहाँ दिये जा रहे हैं—

गरीबनिवाज—एक बारकी बात है, टण्डे आदम (सिन्धदेश)-में महाराजजीके स्थानपर वार्षिक चैत्र मेला लगा हुआ था, वहाँ रेता (बालू) अत्यधिक थी। मेलेमें बहुत-से लोग आये हुए थे। मेलेके समापन-अवसरपर विशाल भण्डारेका भी आयोजन किया गया था, महाराजजीकी आज्ञा थी कि भण्डारेसे कोई भी भूखा न जाय। सभी प्रेमपूर्वक खाकर जायँ, यदि कोई ले भी जाय तो उसे भी मना न किया जाय।

उस मेलेमें एक गरीब वृद्ध महिला भी आयी हुई थी, जो भूख-प्याससे अत्यन्त व्याकुल थी, उसने भी आकर भण्डारेमें भोजन किया। भोजनके पश्चात् जो थाली-गिलास तथा कटोरा आदि था, उसे उसने वहाँ चुपचाप रेतमें गड्ढा करके छुपा दिया। उसने विचार किया जब सभी लोग चले जायँगे, फिर बादमें इसे निकालकर घर ले जाऊँगी। उसे ऐसा करते हुए किसी सेवाधारीने दूरसे ही देख लिया और शीघ्र जाकर उसने यह बात स्वामी टेऊँरामजीको बतायी कि साईं! उस फलाँ माईने भोजनकी थाली, गिलास आदि रेतमें गड्ढा करके छुपा दिया है और उसे ले जानेकी फिराकमें है। स्वामी टेऊँरामजी महाराज तो करुणाके सागर थे, वे उस माईकी माली हालतसे परिचित थे, अत: उस सेवाधारीसे बोले—बेटे, अब मेरी बात ध्यानसे सुनो, यह जो तुमने देखा न, यह अब किसीसे मत कहना। यह बात सिर्फ मेरे कानतक ही रहे। बेटे! वह माता जरूर अभावग्रस्त है, तभी तो उसने ऐसा किया है, अब चुपचाप जाओ और उस माताको यहाँ ले आओ।

सेवाधारी महाराजजीकी आज्ञा पाकर माताको लेने गया। पहले तो माताको डर लगा कि शायद मेरी बातका स्वामीजीको पता चल गया है। फिर प्रसन्न भी हो रही थी कि मैं कितनी भाग्यशाली हूँ, जो स्वयं स्वामीजी मुझे याद कर रहे हैं। सेवाधारी माताको महाराजजीके पास ले आया। स्वामी टेऊँरामजीने करुणाभरी दृष्टिसे माताकी ओर देखकर कहा—आप यहाँ बैठिये, माताको बैठाकर फिर उसी सेवाधारीसे कहा—जो माताने गिलास, थाली आदि छुपाकर रखा है न उसे ले आओ, सेवाधारी अविलम्ब ले आया। महाराजजीने वह थाली-गिलास एवं एक नयी थाली, गिलास, कटोरा मँगवाकर उसे माताको देते हुए कहा—माता, ये लो ये तुम्हारावाला थाली, गिलास और ये नया एक और थाली, गिलास तथा कटोरा है, ये भी लेकर जाओ और यह मेलेके उपलक्ष्यमें मिठाई तथा कपड़ेका एक जोड़ा भी है, इसे भी पहनना और यह खर्चा है, इसे भी लो। माताको इतना कुछ दिया, जैसे वह अपने मायकेमें आयी हो। सन्तोंका हृदय इतना विशाल होता है, यह देखकर माता आश्चर्यमें पड़ गयी।

इतना कुछ देनेके पश्चात् महाराज स्वामी टेऊँरामजीने मातासे कहा—माता, संकोच मत करें, यदि तुम्हें किसी अन्य वस्तुकी आवश्यकता हो तो तुम नि:संकोच कहो, कोई ख्याल मत करो। वह गरीब वृद्ध महिला महाराजजीकी करुणा, कृपा एवं उदारताका यशोगान करती हुई सजल नेत्रोंसे अपनी कुटियाकी ओर चली गयी।

देनेकी उदारता—एक बार चैत्र मेलेके अवसरपर भोजनका समय बीत चुका था, किंतु आश्रमके बाहर दरिद्र-नारायणकी भीड़ जमा थी। उधरसे अचानक स्वामी टेऊँरामजी महाराज गुजर रहे थे, उन्होंने देखा तो सीधे वहाँ आये, जहाँ भीड़ जमा थी। महाराजजीको देखकर उन लोगोंने शिकायत की कि महाराज! आपका नाम तो बहुत है, लेकिन हमें यहाँ अभीतक भोजन नहीं मिला। स्वामीजीने सेवाधारियोंसे कहा—क्यों, इन्हें अभीतक भोजन क्यों नहीं दिया? सेवाधारी बोले—स्वामीजी, ये लोग भोजन तो कर चुके हैं और साथ-ही-साथ अपनी पोटलियाँ भी भर चुके हैं, अब भण्डारेमें भोजन नहीं है, जितना था वह दे दिया।

स्वामीजी—यदि नहीं है तो जाकर भोजन तैयार करो और जो शेष रह गये हैं, उन्हें भी दो।

सेवाधारी—स्वामीजी, ये खायेंगे नहीं, वरन् बाँधकर घर ले जायँगे।

स्वामीजी—घर ले जाकर क्या करेंगे?

सेवाधारी—महाराज! ये घर ले जाकर भोजन (चावल)-को सुखाकर फिर इसे पकाकर धीरे-धीरे खाते रहेंगे।

स्वामीजी—अरे भाई! फिर भी तो आगे खायेंगे ही न? फिर तो जितना माँगें, उतना दे दो।

स्वामी टेऊँरामजी महाराजकी देनेकी ऐसी उदारताको देखकर सभी सेवाधारी नतमस्तक हो गये।

सिन्धमें आज भी स्वामी टेऊँरामजी अखण्ड भोजन एवं अखण्ड भजनके लिये प्रसिद्ध हैं, सिन्धमें कहावत है—'देना सीखें तो स्वामी टेऊँरामजीसे सीखें।'

सिन्धी समाजमें स्वामी टेऊँरामजीका नाम आदर तथा श्रद्धासे लिया जाता है। ऐसे महापुरुषके चरणोंमें सादर वन्दन।

स्वामी टेऊँरामजी महाराजद्वारा विरचित प्रेमप्रकाश (सिन्धी-हिन्दी वाणी)-ग्रन्थमें परोपकार, दया, दानसम्बन्धित अनेक प्रेरणाप्रद पद आये हैं, उनमेंसे दानसम्बन्धी एक पद यहाँ प्रस्तुत है—

राग पीला भजन॥ ३६ ॥ ७७

दीनों को तुम दान, दिल से दीया करो॥ टेक॥
देने से धन बढ़ता जावे इक देवे सो दश को पावे॥
निश्चय करके जान॥ १
दान देने में विलम्ब न कीजे, मन पर कबहूँ नाहि पतीजे।
चंचल मन पहिचान॥ २
दानी कबहूँ नरक न जावे, मर कर सीधा स्वर्ग सिधावे।
सुर मुनि दे सन्मान॥ ३
कहे टेऊँ कर दान सुजाना, मानुष का कर्तव्य दे दाना।
ब्रह्मा का वख्यान॥ ४

[स्वामी श्रीशान्तिप्रसादजी महाराज]

दानसे धन एवं मनकी शुद्धि

(गोलोकवासी परमभागवत संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)

कलियुगमें दान प्रधान है। श्रुतिमें निर्देश है कि जो सिर्फ अपने लिये पकाकर खाता है, वह अन्न नहीं खाता, पाप पकाकर खाता है—'**केवलाघो भवति केवलादी।**' अतः अन्नदानको सर्वोपरि दान कहा गया है।

कलियुगमें धर्म केवल एक पैर अर्थात् दानके ऊपर टिका हुआ है। ईमानदारी, परिश्रम तथा धर्मानुसार अर्जित धन-सम्पत्तिका दान ही पुण्यदायक होता है। लक्ष्मी माता हैं। उनका सत्कर्मोंके लिये उपयोग तो किया जा सकता है, परंतु सांसारिक सुख-सुविधाओंके लिये—व्यक्तिगत लाभके लिये उनका उपभोग नहीं किया जाना चाहिये।

—अर्थ अमृत है, पर असावधानीसे वह जहर भी बन जाता है। जो नीतिसे आये और जिसका उपयोग रीतिसे हो, वह अर्थ अमृत है; पर अनीतिसे अर्जित धन जहर बन जाता है।

—यदि धर्मकी मर्यादा न रहे तो धन अनर्थ करता है। धन साधन है, धर्म साध्य है।

—धन कमाना कठिन नहीं है, उसका धर्म-कार्यों—सेवा, सहायता, दान आदिमें सदुपयोग करना कठिन है। धनका धार्मिक कर्तव्यों—दान, सेवा, गोसेवा-जैसे सत्कर्मोंमें सदुपयोग हो तो वह सुख देता है और विलासिता आदि दुष्कर्मोंमें उपभोग करनेपर तरह-तरहके दुःख देता है।

—ज्ञानदान श्रेष्ठ दान है। अन्नदान और वस्त्रदानसे कुछ समयके लिये शान्ति प्राप्त होती है, किंतु ज्ञानदान अर्थात् जहाँ अध्यात्मज्ञानका दान होता है, वहाँ सारे तीर्थ आ जाते हैं।

—दान देनेका अधिकार गृहस्थको दिया गया है। दानमें विवेक रखो। इतना दान दो कि गृहस्थकी आवश्यकताकी पूर्तिमें बाधा न पड़े।

—दानसे धनकी शुद्धि, स्नानसे तनकी शुद्धि तथा ध्यानसे मनकी शुद्धि होती है।

—जिसका धन शुद्ध नहीं, उसका दान तथा उसकी सहायता स्वीकार नहीं करनी चाहिये।

—यदि सत्कर्मोंमें, धर्ममें सम्पत्तिका सदुपयोग करोगे तो लक्ष्मीमाता तुम्हें नारायणकी गोदमें बिठायेंगी।

—धनका दान करते रहनेसे धनके प्रति ममता कम होती है तथा तनसे सेवा करनेसे देहाभिमानमें कमी आती है।

—दान देते समय जब तुम लेनेवालेको परमात्माका रूप समझकर दान दो तभी दान सफल-सार्थक होगा।

—आँगनमें आये याचकको यदि कुछ नहीं मिलता है तो वह घरका पुण्य ले जाता है।

—याचक माँगने नहीं आता, वह तो हमको ज्ञान देने आता है कि पूर्वजन्ममें मैंने किसीको कुछ दिया नहीं, इसीलिये मैं भिखारी हुआ हूँ। यदि आप भी किसीको कुछ न देंगे तो अगले जन्ममें मेरे-जैसे याचक बनेंगे।

[प्रेषक—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल]

आर्थिक समताका शास्त्रीय उपाय—दान

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती)

समाजमें कुछ लोगोंके पास जीवनके उपयोगी अतिआवश्यक अन्न, वस्त्र, औषधि और घरका भी अभाव हो, इसके विपरीत कुछ लोगोंके पास इनका इतना अधिक बाहुल्य हो कि उनका दुरुपयोग हो रहा हो, ऐसी विषमताको कोई भी मानवहृदय अच्छा नहीं कहेगा। यही कारण है कि प्राचीन एवं अर्वाचीन बुद्धिमान् मानवोंने इस विषमताको मिटानेका प्रयास किया है और कर रहे हैं। इस कार्यमें सम्यक् सफलता उन्हींको मिलेगी जो उसके सम्पूर्ण कारणोंपर सम्यक् विचार करके उसके अनुरूप तथा नूतन दोषोंके अनुत्पादक साधनोंसे विषमता मिटानेका प्रयास करेंगे। अतः यह विचार करना परम आवश्यक हो जाता है कि उक्त विषमताको मिटानेके लिये प्राचीन ऋषियोंद्वारा बनाया गया दानका विधान कितना ठीक है।

किसी भी समस्याका समाधान करनेके लिये उसके स्थूल कारणसे लेकर मूल कारणतक सम्यक् विचार करनेकी अपनी समुचित शैलीसे ऋषियोंने इस विषमतारूप समस्यापर भी गम्भीर विचार किया है। ऋषियोंने देखा कि १-शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकासका समान अवकाश देनेपर भी सभीका समान विकास होता नहीं, अतः विकसित शरीर, मन तथा बुद्धिवाले अपनी कार्यकुशलतासे अधिक धनका उपार्जन कर लेते हैं।

२-समान उपार्जन करनेवालोंमें भी शरीरकी रुग्णता-अरुग्णता, क्षुधा-शक्तिकी प्रबलता-न्यूनता, परिवारके भारकी अत्यधिक न्यूनता तथा मितव्ययिताकी योग्यता-अयोग्यताके कारण आर्थिक विषमता हो जाती है।

३-शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक समान विकासवालोंमें भी प्रारब्धकी प्रबलता और अप्रबलताके कारण काम मिलने और न मिलनेसे, कहीं ओलोंकी वर्षा, अतिवर्षा तथा सूखा पड़नेसे भी आर्थिक विषमता हो जाती है।

प्रथम तो ऋषियोंने इस प्रकार दृष्ट और अदृष्ट (प्रारब्ध)-के आधारपर विषमताके स्थूल और मूल कारणोंपर विस्तारसे गम्भीरतापूर्वक विचार किया। बादमें वे इस निर्णयपर पहुँचे कि यद्यपि इन कारणोंका निराकरण न हो सकनेके कारण धन-उपार्जनमें विषमताका रहना अनिवार्य है, तथापि यदि अधिक धनवाले धनीसे कम धनवाले निर्धनको कुछ दिला दिया जाय तो अति विषमता उचित समतामें बदल जायगी। परंतु धन इस रीतिसे दिलाया जाय कि जिससे देने और लेनेवालोंमें संघर्ष न हो। देनेवाला यह न कहे कि चाहे चमड़ी चली जाय दमड़ी न दूँगा और लेनेवाला भी यह न कहे कि चाहे मेरी चमड़ी चली जाय तुम्हारे पास दमड़ी भी न रहने दूँगा। सब ले लूँगा; क्योंकि एक आर्थिक विषमताजन्य दुःखको मिटानेके लिये अपनाया हुआ साधन यदि अनेक दुःखोंको उत्पन्न कर दे तो यह दुःख मिटानेका नहीं, अपितु दुःख बढ़ानेका ही साधन कहलायेगा। अतः आर्थिक विषमताको मिटानेवाला साधन ऐसा होना चाहिये जिससे देनेवाला कहे कि हमें इतना कम नहीं, किंतु इतना अधिक देना है और लेनेवाला कहे कि हमें इतना अधिक नहीं लेना है, इतना कम ही लेना है। इतनेसे ही मेरा काम चल जायगा। जरा ऊपर कहे, चमड़ी-दमड़ीवाले और अधिक देना है, अधिक नहीं लेना है। इन दोनोंका एक मानसिक दृश्य बनाकर देखें। पहला कितना भयंकर तथा परिणाममें कितने दुःखोंको उत्पन्न करनेवाला है और दूसरा कितना हृदयद्रावक तथा परिणाममें कितने सुखोंको जन्म देनेवाला है।

इस प्रकार दूरदर्शी मनीषी ऋषियोंने आर्थिक विषमताके कारणोंपर ही नहीं, किंतु उसको दूर करनेवाले साधनोंपर भी गम्भीरतापूर्वक विचारकर दानका विधान किया है। दान देनेवाला व्यक्ति महान् धनका दानरूपमें त्याग करके भी परम सुखका अनुभव करता है, इसके विपरीत बलपूर्वक लेनेकी इच्छावालोंके लिये अल्प धनका त्याग

करनेमें महान् दुःखका अनुभव करता है। बहुत प्राचीन कालकी बात नहीं कहता, केवल १००-५० वर्ष पूर्व और कुछ लोग अब भी दानके नामपर प्रसन्नतापूर्वक लाखों रुपये लगाकर देवालय, विद्यालय, औषधालय, भोजनालय (अन्नक्षेत्र), अनाथालय, गोशाला, पौंसला तथा धर्मशाला बनवा गये और बनवा रहे हैं। परंतु दानके नामपर प्रसन्नतापूर्वक लाखों रुपये देनेवाले ये उदारचेता पुरुष बलपूर्वक चंदा तथा चिट्ठाद्वारा पैसा माँगनेपर १०० रुपये भी देनेमें कष्टका अनुभव करते हैं। मैंने तो यहाँतक देखा है कि देवालय आदि बनवानेवाले दानीका पैसा कम पड़ जानेपर भी यदि उनसे कोई स्वयं जाकर कहता है कि इतना पैसा मेरा भी लगा दीजिये तो दानी प्रायः उसे स्वीकार नहीं करते। वे अपने पेटको काटकर, खेतको बेचकर या कर्ज लेकर भी उस कार्यको पूरा करनेमें ही सुखका अनुभव करते हैं। इसके विपरीत कोई उपाय न रहनेपर दूसरोंका पैसा लगाकर काम पूरा करनेमें लज्जाका अनुभव करते हैं।

शास्त्रीय दानविधानके आधारपर भी भारतवर्षमें सर्वत्र देवालय, विद्यालय, औषधालय तथा कुएँ, बावड़ी, तालाब आदि सर्वजनोपयोगी स्थान बने हैं। इन्हें प्रायः एक-एक व्यक्तिने ही बनवाये हैं। आज जब इन्हीं कार्योंके लिये चंदा-चिट्ठा किया जाता है या कर लगाया जाता है तो जो देनेलायक नहीं हैं, उन्हें भी मजबूर होकर देना पड़ता है और जो हजार देनेलायक होते हैं वे १०० देनेमें भी दुःखका अनुभव करते हैं; पर दान-प्रथामें न देनेलायक लोगोंपर जरा भी भार नहीं आता, यद्यपि कार्य तो दोनों प्रथाओंसे हो जाता है, किंतु दोनों प्रथाओंमें यही महान् अन्तर है।

अतः आर्थिक विषमताको मिटानेके लिये दानका विधान ही मनोविज्ञानमूलक समुचित उपाय है, परंतु खेदका विषय है—शास्त्रीय दानविधानका प्रचार-प्रसार करनेके लिये धर्मशास्त्रोंको पढ़ाने या धर्मशास्त्रीय दानी महानुभावोंके चरित्रोंको पाठ्य-पुस्तकोंमें सम्मिलित करनेतकमें भी धर्मनिरपेक्ष सरकारको आपत्ति है। ऐसी दशामें आर्थिक विषमता समाप्त नहीं हो सकती। इसे समाप्त करनेके लिये सरकार जो कानून बनायेगी, लाला लोग अपनी दो 'ला' से उसे परास्त कर देंगे। मेरा तो सुदृढ़ विश्वास है कि आर्थिक विषमताकी एक ही समस्या नहीं, समाजमें छायी हुई अनेक विषम समस्याओंका समाधान धार्मिक भावनाओंका उत्थान होनेपर ही होगा। इसका कारण यह है—एकान्तमें भी अपराध करनेसे बचानेवाली तो पाप-पुण्यकी धार्मिक भावना ही है। इसके बिना एक-एक व्यक्तिपर एक-एक सिपाही रखकर भी अपराधोंको नहीं रोका जा सकता; क्योंकि वह सिपाही भी एक व्यक्ति है, जब वह अपराध करनेवाले व्यक्तिसे मिल जायगा तब कौन रोकेगा, यही प्रायः हो भी रहा है।

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥

(स्कन्दपुराण)

न्यायपूर्वक पैदा किये हुए धनका दशम अंश बुद्धिमान् मनुष्यको दानकार्यमें ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये लगाना चाहिये।

अन्यायपूर्वक पैदा किये हुए धनका दान करनेसे कुछ भी पुण्य नहीं होता। इस बातको बतानेके लिये श्लोकमें न्यायपूर्वक यह पद जोड़ा है। देवीभागवतमें तो यह स्पष्ट कहा गया है कि अन्यायसे उत्पादित धनद्वारा किया गया शुभ कर्म व्यर्थ है, उससे न तो इस लोकमें कीर्ति ही होती है और न परलोकमें ही कुछ फल मिलता है।

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥

(देवीभागवत ३।१२।८)

दाताको दानका अभिमान एवं लेनेवालेपर अहसानका भाव न उत्पन्न हो, इसके लिये कर्तव्य पदका प्रयोग किया गया है। मनुष्यजीवनका मुख्य लक्ष्य है ईश्वरकी प्रसन्नता, अतः दानरूप कर्तव्यका पालन करते हुए उसे लक्ष्यमें बनाये रखनेके लिये 'ईश्वरप्रीत्यर्थ' यह पद जोड़ा है। मनुष्यके पास एक हजार रुपये हों, उनमेंसे

यदि सौ रुपये दान कर दिये जायँ तो नौ सौ रुपयोंमें ही ममत्व या आसक्ति रह जाती है। इस प्रकार ममता या आसक्तिको कम करके दान अन्तःकरणकी शुद्धिरूप प्रत्यक्ष (दृष्ट) फल प्रदान करता है और शास्त्रप्रमाणानुसार स्वर्ग या वैकुण्ठलोककी प्राप्तिरूप अप्रत्यक्ष (अदृष्ट) फल भी प्रदान करता है। दशम अंशका दान करनेका यह विधान जनसाधारण मानवोंके लिये किया गया है। अधिक धनी मनुष्योंके लिये तो भागवतपुराणमें अपनी आयको पाँच भागोंमें विभक्त करके उपयोग करनेको कहा है—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

(श्रीमद्भा० ८।१९।३७)

१-धर्म, २-यश, ३-अर्थ (व्यापार आदि आजीविका), ४-काम (जीवनके उपयोगी भोग) और ५-स्वजन (परिवार)-के लिये, इस तरह पाँच प्रकारसे धनका विभाग करनेवाला इस लोकमें और परलोकमें भी आनन्द करता है।

यहाँ व्यापार आदि आजीविकाके लिये धनका विभाग इसलिये करवाया गया है, जिससे जीविकाके साधनका विनाश न हो; क्योंकि भागवतमें वहींपर स्पष्ट कहा गया है कि जिस सर्वस्व-दानसे जीविका भी नष्ट हो जाती हो, उस दानकी बुद्धिमान् पुरुष प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि जीविकाका साधन बने रहनेपर ही मनुष्य दान, यज्ञ, तप आदि शुभ कर्म कर सकता है—

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥

(श्रीमद्भा० ८।१९।३६)

जीविकानाशक सर्वस्वदानका निरोध लौकिक दृष्टिसे ही किया गया है, जिन लोगोंने अलौकिक परमात्माकी प्राप्तिके लिये दानको ही महान् साधन मानकर दानव्रत धारण कर रखा है, उनके लिये सर्वस्व दानका भी निषेध नहीं है।

जो मनुष्य अत्यन्त गरीब है, अनावश्यक एक पैसा भी नहीं खर्च करता, तो भी इतनी कम आमदनी है कि रूखा-सूखा खाकर भी सारे परिवारका पेट नहीं भर पाता, ऐसे लोगोंको दान करनेका विधान शास्त्र नहीं करता। इतना ही नहीं, यदि पुण्यके लोभमें अवश्य पालनीय वृद्ध माता-पिताका तथा साध्वी पत्नी और छोटे बच्चोंका पालन न करके उनका पेट काटकर दान करते हैं तो उन्हें पुण्यकी नहीं, किंतु पापकी ही प्राप्ति होती है। मनु महाराजने स्पष्ट कहा है—

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः॥
भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च॥

(मनु० ११।९-१०)

अपने स्वजन-परिवारके लोग दुःखपूर्वक जी रहे हों, उनका पालन करनेमें समर्थ होनेपर भी उनका पालन न करके दूसरोंको जो दान देता है, वह मधुयुक्त विषका स्वाद चखता है, उसका दान अधर्मस्वरूप है एवं पालनीय लोगोंका पेट काटकर जो धर्म करता है, उसको इस जीवनमें तथा मरनेके बाद भी दुःखरूप फल ही मिलता है।

इस प्रकार धनी, अति धनी और अति निर्धन लोगोंके लिये दानका विधान भिन्न-भिन्न प्रकारसे पढ़कर ऋषियोंकी दूरदर्शितापर मन मुग्ध हो जाता है। ऋषियोंका दान-विधान सामान्य विधानकी तरह नहीं कि जिससे न देनेयोग्यको भी बलात् देना पड़े। न देनेयोग्य अति निर्धनको भी दानका विधान करना तो दानविधानके लौकिक उद्देश्य आर्थिक समताके सर्वथा विरुद्ध ही होगा। भला, दूरदर्शी ऋषियोंसे ऐसी भारी भूल कैसे हो सकती है। अकाल, महामारी, महायुद्ध आदि विशेष आपत्तिकालमें तो यहाँतक कह दिया गया है कि जितनेमें पेट भर जाता है, उतनेमें ही मनुष्यका अधिकार है, उससे अधिकमें जो अपना अधिकार मानता है, वह चोर है, दण्डका पात्र है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भा० ७।१४।८)

दान देने-लेनेमें सावधानीकी आवश्यकता

(गोलोकवासी पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

(क) पापकी कमाईसे दानका फल

काहू प्रकार दूसरेके धनकी इच्छा, परायी स्त्रीसौं सम्पर्क, काहूसौं वैर-विरोध यदि ये अपने जीवनमें हैं तौ आत्मोन्नति सम्भव ही नहीं है। चाहै वह साधु हो अथवा गृहस्थ, अपनौ कल्याण चाहै तौ इनसौं बचै। इनसौं बचकैं ही अपनौ लोक-परलोक बनाय सकै है।

आज कलियुगने सर्वथा उल्टी सीख दै दई है। पापसौं बचवेकी आवश्यकता नायँ। पाप हू करते रहौ और पाखण्डपूर्वक भजन हू करते रहौ, कल्याण है जायगौ। झूठ, कपट, पाप, प्रपञ्चसौं धन कमाय लेयँ। वा पापकी कमाईसौं साधु, सन्त, ब्राह्मण आदिकूँ अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, व्यतिपात, भद्रादि योगनमें कुछ दान-पुण्य धर्मादा कर दें, श्रीरामायण, भागवतकी कथा-अनुष्ठान कराय दें तौ पाप नष्ट है जायेंगे। कुछ लोग तौ घोर पाप करकैं पाप काटवेके निमित्त ही साधु-सेवा, ब्राह्मण-सेवा, दान-पुण्य, मन्त्रानुष्ठान एवं कथा करावै हैं।

पापकी कमाईके द्रव्यसौं किये भये साधु-सेवा, दान-पुण्य, कथा-कीर्तन, धर्मादाकौ फल कर्त्ताकूँ या कारण प्राप्त नहीं है सकै है कि वा धनपै शास्त्रकी सम्मतिके अनुसार कर्त्ताकौ स्वत्त्व ही नहीं है। जब अधर्म, अन्यायसौं प्राप्त धनपै ही वाकौ अधिकार नहीं, तब वा धनके द्वारा किये गये दान-पुण्य, सेवा आदिकके फलपै वाकौ अधिकार कैसे होयगौ ?

दूसरी बात यह है, जो अत्यन्त विचारणीय है—पापके द्रव्यसौं श्रीरामायण-भागवत-कथामें जो साधु-ब्राह्मण भोजन करेंगे और दान-दक्षिणा ग्रहण करेंगे, उनकी बुद्धि हू दूषित-रजोगुणी, तमोगुणी बनैगी। वाके फलस्वरूप उनसौं रजोगुणी, तमोगुणी अनुचित पापकर्म बनेंगे। इन पापकर्मनके फलकौ भागीदार वह बनैगो जानै पापकी कमाईसौं यह कार्य सम्पन्न कियौ है। धन कमायवेमें जो पाप कियौ है, वाकौ फल तौ भोगनौ ही है, यह अपराध और बढ़ाय लियौ। यासौं ईश्वर चिढ़ जाय है। जैसे काहू सच्चे कर्तव्यनिष्ठ न्यायाधीश (जज) कूँ कोई घूस दैवे जाय तौ वह चिढ़कै दण्ड और बढ़ाय देय है।

आजकल संतनके यहाँ पापमें लिप्त, पाप करकैं पाप काटवेके लिये, पापसौं उपार्जित द्रव्यसौं साधु-सन्तनकी सेवा करवे वारे लोगनकी भीड़ एकत्रित है रही है। सच्चे सन्त तौ अपने जीवनकूँ सर्वथा त्याग, वैराग्य, सादगी, संयम, सदाचार एवं निरन्तर भजनमय बनायकैं इनके चक्करसौं निकर जायँ हैं, किंतु सन्तसौं अन्य तथा सन्तनके समीप रहवे वारे साधक सुख-भोगकी वासना एवं जनकल्याण, साधु-सेवा, श्रीभगवत्सेवा, यज्ञ आदिके नामपै उनके चंगुलमें फँसकैं आत्मपतन कर बैठें हैं।

कोई-कोई 'लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक या ईश्वरकूँ कौनने देखौ है' ऐसे सर्वथा नास्तिकतापूर्ण विचार अपनेमें राखते भये हू केवल मान-प्रतिष्ठा, धन, भोग-ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये पाखण्डपूर्वक कथा-सत्संग, साधु-ब्राह्मण-सेवा, दान-पुण्य आदि करैं-करावैं हैं। यह हू एकमात्र अपराध कमानौ ही है। ऐसे लोगनके लिये ही गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी उक्ति है—***'बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं।'*** (रा०च०मा० २।१६८।१) या प्रकार पापकी कमाईके द्रव्यसौं अथवा संसारी कामनापूर्वक ब्राह्मण, साधु, संतनकी सेवा अथवा कपट एवं स्वार्थपूर्वक अध्यात्मकौ आश्रय—ये सभी हानिकारक हैं।

(ख) सच्चे ब्राह्मणकी वृत्ति

ब्राह्मण अपनी गाढ़ी शुद्ध कमाईसौं ही अपने जीवनकौ निर्वाह करै। ब्राह्मण होते भये हू दान-पुण्य लैवेकौ विचार न राखै। जहाँ ताँई बनै दैवेकौ ही विचार राखै। ब्राह्मण मानकैं कोई देय तौ जहाँ ताँई बन सकै लैवेसौं बचै। कोई दुराग्रह करकैं दै ही देय अथवा व्यावहारिक विवशतावश कछु लेनौ ही परै तौ कहूँ सेवामें अन्यत्र ही लगाय देय, अपने काममें न लेय।

हमारौ तौ यहाँतक मत है कि काहू सगे-सम्बन्धी (ननिहाल, ससुराल आदि)-सौं हू दान न लेय। अपनी कमाईपै ही निर्भर रहै। तबही सात्त्विक बुद्धि बनै है। सात्त्विक बुद्धिसौं ही भजन-साधनमें अभिरुचि बढ़ै है। अध्यात्ममें धनकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है सात्त्विक बुद्धिकी।

ब्राह्मण दान-पुण्य लैवेके लिये नहीं, अपितु ब्राह्मणोचित ऊँचे कर्म करवेके लिये ही है।

सच्चौ ब्राह्मण बनै। सच्चौ ब्राह्मण वह है, जो संसारके तुच्छ भोगसुखनकी आशा—अभिलाषा त्यागकैं निरन्तर परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही प्रयत्नशील है।

दानका रहस्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

दानमें महत्त्व है त्यागका, वस्तुके मूल्य या संख्याका नहीं। ऐसी त्यागबुद्धिसे जो सुपात्रको, यानी जिस वस्तुका जिसके पास अभाव है, उसे वह वस्तु देना और उसमें किसी प्रकारकी कामना न रखना, उत्तम दान है। निष्कामभावसे किसी भूखेको भोजन और प्यासेको जल देना सात्त्विक दान है। सन्त श्रीएकनाथजीकी कथा आती है कि वे एक समय प्रयागसे काँवरपर जल लेकर श्रीरामेश्वर चढ़ानेके लिये जा रहे थे। रास्तेमें जब एक जगह उन्होंने देखा कि एक गदहा प्यासके कारण पानीके बिना तड़प रहा है, उसे देखकर उन्हें दया आ गयी और उन्होंने उसे थोड़ा-सा जल पिलाया, इससे उसे कुछ चेत-सा हुआ। फिर उन्होंने थोड़ा-थोड़ा करके सब जल उसे
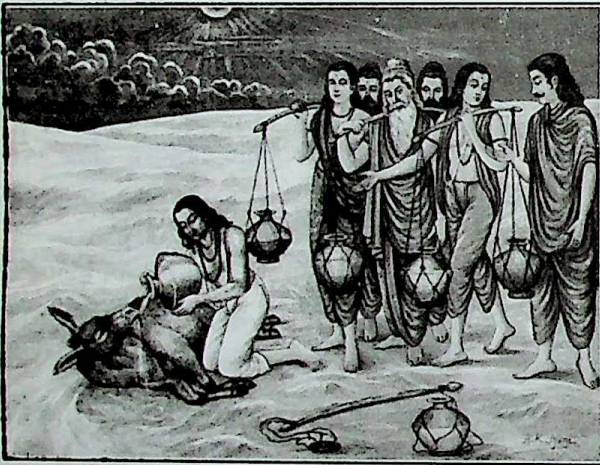
पिला दिया। वह गदहा उठकर चला गया। साथियोंने सोचा कि त्रिवेणीका जल व्यर्थ ही गया और यात्रा भी निष्फल हो गयी। तब एकनाथजीने हँसकर कहा—'भाइयो, बार-बार सुनते हो, भगवान् सब प्राणियोंके अन्दर हैं, फिर भी ऐसे बावलेपनकी बात सोचते हो! मेरी पूजा तो यहींसे श्रीरामेश्वरको पहुँच गयी। श्रीशंकरजीने मेरे जलको स्वीकार कर लिया।'

एक महाजनकी कहानी है कि वह सदैव यज्ञादि कर्मोंमें लगा रहता था। उसने बहुत दान किया। इतना दान किया कि उसके पास खानेको भी कुछ न रह गया। तब उसकी स्त्रीने कहा—'पासके गाँवमें एक सेठ रहते हैं, वे पुण्योंको मोल खरीदते हैं, अतः आप उनके पास जाकर और अपना कुछ पुण्य बेचकर द्रव्य ले आइये, जिससे अपना कुछ काम चले।' इच्छा न रहते हुए भी स्त्रीके बार-बार कहनेपर वह जानेको उद्यत हो गया। उसकी स्त्रीने उसके खानेके लिये चार रोटियाँ बनाकर साथ दे दीं। वह चल दिया और उस नगरके कुछ समीप पहुँचा, जिसमें वे सेठ रहते थे। वहाँ एक तालाब था। वहीं शौच-स्नानादि कर्मोंसे निवृत्त होकर वह रोटी खानेके लिये बैठा कि इतनेमें एक कुतिया आयी। वह वनमें ब्यायी थी। उसके बच्चे और वह, सभी तीन दिनोंसे भूखे थे; भारी वर्षा हो जानेके कारण वह बच्चोंको छोड़कर शहरमें नहीं जा सकी थी। कुतियाको भूखी देखकर उसने उस कुतियाको एक रोटी दी। उसने उस रोटीको खा लिया। फिर दूसरी दी तो उसको भी खा लिया। इस प्रकार उसने एक-एक करके चारों रोटियाँ कुतियाको दे दीं। कुतिया रोटी खाकर तृप्त हो गयी। फिर, वह वहाँसे भूखा ही उठकर चल दिया तथा उस सेठके पास पहुँचा। सेठके पास जाकर उसने अपना पुण्य बेचनेकी बात कही। सेठने कहा—'आप दोपहरके बाद आइये।'

उस सेठकी स्त्री पतिव्रता थी। उसने स्त्रीसे पूछा—'एक महाजन आया है और वह अपना पुण्य बेचना चाहता है। अतः तुम बताओ कि उसके पुण्योंमेंसे कौन-सा पुण्य सबसे बढ़कर लेनेयोग्य है।' स्त्रीने कहा—'आज जो उसने तालाबपर बैठकर एक भूखी कुतियाको चार रोटियाँ दी हैं, उस पुण्यको खरीदना चाहिये; क्योंकि उसके जीवनमें उससे बढ़कर और कोई पुण्य नहीं है।' सेठ 'ठीक है'—ऐसा कहकर बाहर चले आये।

नियत समयपर महाजन सेठके पास आया और बोला—'आप मेरे पुण्योंमेंसे कौन-सा पुण्य खरीदेंगे?' सेठने कहा—'आपने आज जो यज्ञ किया है, हम उसी यज्ञके पुण्यको लेना चाहते हैं।' महाजन बोला—'मैंने तो आज कोई यज्ञ नहीं किया। मेरे पास पैसा तो था ही नहीं,

मैं यज्ञ कहाँसे-कैसे करता?' इसपर सेठने कहा—'आपने जो आज तालाबपर बैठकर भूखी कुतियाको चार रोटियाँ दी हैं, मैं उसी पुण्यको लेना चाहता हूँ।' महाजनने पूछा—'उस समय तो वहाँ कोई नहीं था, आपको इस बातका कैसे पता लगा?' सेठने कहा—'मेरी स्त्री पतिव्रता है, उसीने ये सब बातें मुझे बतायी हैं।' तब महाजनने कहा—'बहुत अच्छा' ले लीजिये; परंतु मूल्य क्या देंगे? सेठने कहा—'आपकी रोटियाँ जितने वजनकी थीं, उतने ही हीरे-मोती तौलकर मैं दे दूँगा।' महाजनने स्वीकार किया और उसकी सम्मतिके अनुसार सेठने अन्दाजसे उतने ही वजनकी चार रोटियाँ बनाकर तराजूके एक पलड़ेपर रखीं और दूसरे पलड़ेपर हीरे-मोती आदि रख दिये; किंतु बहुत-से रत्नोंके रखनेपर भी वह (रोटीवाला) पलड़ा नहीं उठा। इसपर सेठने कहा—'और रत्नोंकी थैली लाओ।' जब उस महाजनने अपने इस पुण्यका इस प्रकारका प्रभाव देखा तो उसने कहा कि 'सेठजी! मैं अभी इस पुण्यको नहीं बेचूँगा।' सेठ बोला—'जैसी आपकी इच्छा।'

तदनन्तर वह महाजन वहाँसे चल दिया और उसी तालाबके किनारेसे, जहाँ बैठकर उसने कुतियाको रोटियाँ खिलायी थीं, थोड़ेसे चमकदार कंकड़-पत्थरों तथा काँचके टुकड़ोंको कपड़ेमें बाँधकर अपने घर चला आया। घर आकर उसने वह पोटली अपनी स्त्रीको दे दी और कहा—'इसको भोजन करनेके बाद खोलेंगे।' ऐसा कहकर वह बाहर चला गया। स्त्रीके मनमें उसे देखनेकी इच्छा हुई। उसने पोटलीको खोला तो उसमें हीरे-पन्ने-माणिक आदि रत्न जगमगा रहे थे। वह बड़ी प्रसन्न हुई। थोड़ी देर बाद जब वह महाजन घर आया तो स्त्रीने पूछा—'इतने हीरे-पन्ने कहाँसे ले आये?' महाजन बोला—'क्यों मजाक करती हो?' स्त्रीने कहा—'मजाक नहीं करती, मैंने स्वयं खोलकर देखा है, उसमें तो ढेर-के-ढेर बेशकीमती हीरे-पन्ने भरे हैं।' महाजन बोला—'लाकर दिखाओ।' उसने पोटली लाकर खोलकर सामने रख दी। वह उन्हें देखकर चकित हो गया। उसने इसको अपने उस पुण्यका प्रभाव समझा। फिर उसने अपनी यात्राका सारा वृत्तान्त अपनी पत्नीको कह सुनाया।'

कहनेका अभिप्राय यह कि ऐसे **अभावग्रस्त आतुर** प्राणीको दिये गये दानका अनन्तगुना **फल हो जाता है,** भगवान्‌की दयाके प्रभावसे कंकड़-पत्थर **भी हीरे-पन्ने** बन जाते हैं।

इस प्रकार दीन-दुःखी, आतुर और अनाथको दिया गया दान उत्तम है। किसीके संकटके समय दिया हुआ दान बहुत ही लाभकारी होता है। भूकम्प, बाढ़ या अकाल आदिके समय आपद्‌ग्रस्त प्राणीको एक मुट्ठी चना देना भी बहुत उत्तम होता है। जो विधिपूर्वक सोना, गहना, तुलादान आदि दिया जाता है, उससे उतना लाभ नहीं, जितना आपत्तिकालमें दिये गये थोड़े-से दानका होता है। अतः हरेक मनुष्यको आपत्तिग्रस्त, अनाथ, लूले, लँगड़े, दुःखी, विधवा आदिकी सेवा करनी चाहिये। कुपात्रको दान देना तामसी दान है। मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये दिया हुआ दान राजसी है; क्योंकि मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा भी पतन करनेवाली है। आज तो यह मान-बड़ाई हमें मीठी लगती है, पर उसका निश्चित परिणाम पतन है। अतः मान-बड़ाईकी इच्छाका त्याग कर देना चाहिये, **बल्कि यदि** किसी प्रकार निन्दा हो जाय तो वह अच्छी समझी जाती है। श्रीकबीरदासजी कहते हैं—

निन्दक नियरें राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निरमल करै सुभाय॥

इसलिये परम हितकी दृष्टिसे मान-बड़ाईके बदले संसारमें अपमान-निन्दा होना उत्तम है। साधकके लिये मान-बड़ाई मीठा विष है और अपमान-निन्दा अमृतके तुल्य है। इसीलिये निन्दा करनेवालेको आदरकी दृष्टिसे देखना चाहिये; परंतु कोई भी निन्दनीय पापाचार नहीं करना चाहिये। दुर्गुण-दुराचार बड़े ही खतरेकी चीज है। इसलिये इनका हृदयसे त्याग कर देना चाहिये। अपने सद्‌गुणोंको छिपाकर दुर्गुणोंको प्रकट करना चाहिये। आजकल लोग सच्चे दुर्गुणोंको छिपाकर बिना हुए ही अपनेमें सद्‌गुणोंका संग्रह बताकर उनका प्रचार करते हैं, यह सीधा नरकका रास्ता है। अतः मान-बड़ाईकी इच्छा

हृदयसे सर्वथा निकाल देनी चाहिये। संसारमें हमारी प्रतिष्ठा हो रही है और हम यदि उसके योग्य नहीं हैं तो हमारा पतन हो रहा है। मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा चाहनेवालेसे भगवान् दूर हो जाते हैं; क्योंकि मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाकी इच्छा पतनमें ढकेलनेवाली है। मान-बड़ाईको रौरवके समान और प्रतिष्ठाको विष्ठाके समान समझना चाहिये। यही सन्तोंका आदेश है।

यह ध्यान रखना चाहिये कि सुपात्रको दिया गया दान दोनोंके लिये ही कल्याणकारी है। कुपात्रको दिया गया दान दोनोंको डुबानेवाला है। जैसे पत्थरकी नौका बैठनेवालेको साथ लेकर डूब जाती है, उसी प्रकार कुपात्र दाताको साथ लेकर नरकमें जाता है।

दानके सम्बन्धमें एक बात और समझनेकी है। बड़े धनी पुरुषके द्वारा दिये गये लाखों रुपयोंके दानसे निर्धनके एक रुपयेका दान अधिक महत्त्व रखता है; क्योंकि निर्धनके लिये एक रुपयेका दान भी बहुत बड़ा त्याग है। भगवान्के यहाँ न्याय है। ऐसा न होता तो फिर निर्धनोंकी मुक्ति ही नहीं होती। इस विषयमें एक कहानी है। एक राजा प्रजाजनोंके सहित तीर्थ करनेके लिये गये। रास्तेमें एक आदमी नंगा पड़ा था, वह ठण्डके कारण ठिठुर रहा था। राजाके साथी प्रजाजनोंमें एक जाट था, उसने अपनी दो धोतियोंमेंसे एक धोती उस नंगे आदमीको दे दी, इससे उसके प्राण बच गये। जाटके पास पहननेको एक ही धोती रह गयी। आगे जब वे दूर गये तो वहाँ बहुत कड़ी धूप थी, पर उन्होंने देखा कि बादल उनपर छाया करते चले जा रहे हैं। राजाने सोचा कि 'हमारे पुण्यके प्रभावसे ही बादल छाया करते हुए चल रहे हैं।' तदनन्तर वे एक जगह किसी वनमें ठहरे। जब चलने लगे, तब किसी महात्माने पूछा—'राजन्! तुम्हें इस बातका पता है कि ये बादल किसके प्रभावसे छाया करते हुए चल रहे हैं?' राजा कुछ भी उत्तर नहीं दे सके। तब महात्माने कहा—'अच्छा, तुम एक-एक करके यहाँसे निकलो। जिसके साथ बादल छाया करते हुए चलें, इसको उसी पुण्यवान्के पुण्यका प्रभाव समझना चाहिये।' तब पहले राजा वहाँसे चले, फिर एक-एक करके सब प्रजाजन चले, पर बादल वहीं रहे। तब राजाने कहा—'देखो तो, पीछे कौन रह गया है।' सेवकोंने देखा कि वहाँ एक जाट सोया पड़ा है। उसे उठाकर वे राजाके पास लाये, तब बादल भी उसके साथ-साथ छाया करते चलने लगे। तब महात्मा बोले—'यह इसी पुण्यवान्के पुण्यका प्रभाव है।' राजाने उससे पूछा—'तुमने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है?' बार-बार पूछनेपर उसने कहा कि 'मैंने और तो कोई पुण्य नहीं किया, अभी रास्तेमें मैंने अपनी दो धोतियोंमेंसे एक धोती रास्तेमें पड़े जाड़ेसे ठिठुरते हुए एक नंगे मनुष्यको दी थी।'

इसपर महात्माने राजासे कहा—'राजन्! तुम बड़ा दान करते हो, परंतु तुम्हारे पास अतुल सम्पत्ति है, इसलिये तुम्हारा त्याग दो धोतीमेंसे एक दे डालनेके समान नहीं हो सकता।'

इस प्रकार दानका रहस्य समझकर दान करना चाहिये।

दान और दया

अहन्यहनि दातव्यमदीनेनान्तरात्मना। स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते॥
परस्मिन् बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा। आत्मवद्वर्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता॥

(अत्रिसंहिता ४०-४१)

'प्रत्येक दिन दान देना कर्तव्य है'—यह समझकर अपने स्वल्पमेंसे भी अन्तरात्मासे प्रसन्न होकर प्रयत्नपूर्वक यत्किंचित् देना 'दान' कहलाता है। दूसरेमें, अपने बन्धुवर्गमें, मित्रमें, शत्रुमें तथा द्वेष करनेवालेमें अर्थात् सम्पूर्ण चराचर संसारमें तथा सभी प्राणियोंमें अपने समान ही सुख-दुःखकी प्रतीति करना और सबमें आत्मभाव—परमात्मभाव समझकर सबको अपने ही समान समझकर प्रीतिका व्यवहार करना—ऐसा भाव रखना 'दया' कहलाता है।'

भूदान—संस्कृतिका सर्वोत्तम दर्शन

(आचार्य श्रीविनोबाजी भावे)

कृष्णार्पण

भारतीय संस्कृतिका सर्वोत्तम शब्द है, 'कृष्णार्पण'। इसका यह अर्थ नहीं कि मात्र शब्द बोला जाय। बल्कि हम जो भोग भोगेंगे, जो काम करेंगे, कुल भगवान्‌के लिये करेंगे। अगर हम खाते हैं, तो भगवत्प्रसाद समझकर खायेंगे। भगवत्सेवाके लिये शरीरमें बल रहे, इसीलिये खायेंगे। यह भगवान् कहाँ है? वह हमारे इर्दगिर्द अनन्त रूपोंमें प्रकट है। वह भूखोंके रूपमें, बीमारोंके रूपमें हमारे सामने है।

आज एक भाई हमारे पास आये थे। उन्होंने एक सुन्दर कहानी सुनायी। उनके पास कुछ जमीन है। उससे जो पैदावार आती है, उसे वे जो भी भूखा आ जाय, उसे खिलाते हैं। उनका नाम ही 'अन्नदानम्' पड़ा है। उस भाईने अपनी जमीनका आधेसे ज्यादा हिस्सा अपनी माताकी और पत्नीकी सम्मतिसे भूदानमें दिया है। तब क्या उनका 'अन्नदानम्' नाम मिट जायगा? नहीं, वह नाम तो वास्तवमें यथार्थ होगा। दान ऐसा देना चाहिये कि जिसे उसने दिया, उसे पुनः-पुनः न देना पड़े। हमने उसे दिया भी और उसका बार-बार माँगना बाकी रहा, तो हमने क्या दिया? भगवान्‌का वर्णन भक्तोंने किया है, 'रामजी, आप इस तरहके राजा हैं, जिन्हें आप देते हैं, उन्हें दुबारा माँगनेकी जरूरत नहीं रहती।' अगर आपने भूखोंको खिलाया, तो अच्छा किया। किंतु थोड़ी देर बाद उसे फिर भूख लगे, वह माँगता रहे और आप देते रहें, तो कहना पड़ेगा कि आपने हमेशाके लिये दातृत्वका अहंकार ले लिया। हम इसे सर्वोत्तम दान नहीं कह सकते। किंतु यदि हम उसे उत्पादनका साधन देते हैं, तो उसे फिर माँगना नहीं पड़ेगा। उसे हम अच्छी जमीन देते हैं, तो वह उस पर काश्त करके अपने बाल-बच्चोंका पालन-पोषण करेगा और फिर माँगने नहीं आयेगा। इसीलिये भूमिदान सर्वोत्तम दान माना गया है। इसीलिये विद्यादानको सर्वोत्तम दान माना गया; क्योंकि हम किसी को विद्या दे दें, तो वह पराश्रित न रहेगा, खुद विचार करेगा। जिसे हम औजार देंगे, वह औजारसे काम करेगा, फिरसे नहीं माँगेगा। इसलिये वही सर्वोत्तम अन्नदान हुआ। इस तरह हमें अपनी संस्कृतिका सर्वोत्तम दर्शन भूदानमें होता है और हम यह भी कहना चाहते हैं कि इसमें कृष्णार्पणका अभ्यास होता है। इसीलिये हम उसे 'भक्तिमार्ग' कहते हैं।

सोनेका दान

[एक आख्यान]

एक धनी सेठने सोनेसे तुलादान किया। गरीबोंको खूब सोना बाँटा गया। उसी गाँवमें एक सन्त रहते थे। सेठने उनको भी बुलाया। वे आग्रह करनेपर आ गये। सेठने कहा—'आज मैंने सोना बाँटा है, आप भी कुछ ले लें तो मेरा कल्याण हो।' सन्तने कहा—'भाई! तुमने बहुत अच्छा काम किया, परंतु मुझको सोनेकी आवश्यकता नहीं है।' धनीने फिर भी हठ किया। सन्तने समझा कि इसके मनमें धनका अहंकार है। सन्तने तुलसीके पत्तेपर राम-नाम लिखकर कहा—'भाई! मैं कभी किसीसे दान नहीं लेता। मेरा स्वामी मुझे इतना खाने-पहननेको देता है कि मुझे और किसीसे लेनेकी जरूरत ही नहीं होती। परंतु तुम इतना आग्रह करते हो तो इस पत्तेके बराबर सोना तौल दो।' सेठने इसको व्यंग समझा और कहा—'आप दिल्लगी क्यों कर रहे हैं, आपकी कृपासे मेरे घरमें सोनेका खजाना भरा है, मैं तो आपको गरीब जानकर ही देना चाहता हूँ।' सन्तने कहा—'भाई! देना हो तो तुलसीके पत्तेके बराबर सोना तौल दो। सेठने झुँझलाकर तराजू मँगवाया और उसके एक पलड़ेपर पत्ता रखकर वह दूसरेपर सोना रखने लगा। कई मन सोना चढ़ गया; परंतु तुलसीके पत्तेवाला पलड़ा तो नीचे ही रहा। सेठ आश्चर्यमें डूब गया। उसने सन्तके चरण पकड़ लिये और कहा—'महाराज! मेरे अहंकारका नाश करके आपने बड़ी ही कृपा की। सच्चे धनी तो आप ही हैं।' सन्तने कहा—'भाई! इसमें मेरा क्या है। यह तो नामकी महिमा है। नामकी तुलना जगत्‌में किसी भी वस्तुसे नहीं हो सकती। भगवान्‌ने ही दया करके तुम्हें अपने नामका महत्त्व दिखलाया है। अब तुम भगवान्‌का नाम जपा करो; तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा।'

सम्मान-दान

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

संसारत्यागी भगवत्प्राप्त महापुरुषोंको और विषयोंसे विरक्त ऊँची श्रेणीके भक्तों और साधक महानुभावोंको छोड़कर संसारमें शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो, जिसको अपमानमें दुःखकी और सम्मानमें सुखकी अनुभूति न होती हो। मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, पशु-पक्षी भी सम्मानसे प्रसन्न और अपमानसे अप्रसन्न होते देखे जाते हैं। प्रत्येक मनुष्यको किसी भी कारणवश दूसरेका अपमान करते समय यह विचार करना चाहिये कि मेरा किसीके द्वारा जब जरा-सा भी अपमान होता है, तब मुझे कितना दुःख होता है। इसी प्रकार इसको भी दुःख होता होगा। इस प्रकार विचार किया जायगा तो धीरे-धीरे अपमान करनेकी बात छूट जायगी। विचारवान् पुरुषको तो भूलकर भी किसीका अपमान नहीं करना चाहिये। छोटे-बड़े सभीका सम्मान करते हुए ही यथायोग्य व्यवहार करना उचित है। बड़ोंका सम्मान तो हमारे लिये परम लाभदायक है। शास्त्रोंमें गुरु, माता, पिता, बड़े भाई, आचार्य, ब्राह्मण, ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध आदिका श्रद्धापूर्वक सम्मान करनेकी आज्ञा जगह-जगह दी गयी है। मनु महाराजके कुछ महत्त्वपूर्ण वचनोंपर ध्यान दीजिये—

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः॥
यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते॥
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते।

(मनु० २। २२५—२२९)

'आचार्य, पिता, माता और बड़े भाई—इनका दुखी होनेपर भी अपमान न करे और औरोंके लिये आदर्श-भूत ब्राह्मणको तो विशेष करके इनका अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि आचार्य ब्रह्माकी मूर्ति, पिता प्रजापतिकी मूर्ति, माता पृथ्वीकी मूर्ति और बड़ा भाई अपनी आत्माकी ही दूसरी मूर्ति है (इनका अपमान करनेसे इन-इन देवताओंका अपमान होता है)। बालकोंको जन्म देकर उनके पालनमें माता-पिताको जो कष्ट सहना पड़ता है, उसका बदला सैकड़ों वर्ष सेवा करके भी नहीं दिया जा सकता। अतएव प्रतिदिन माता-पिता और आचार्यका प्रिय कार्य करे। इन तीनोंके सन्तुष्ट होनेसे सब तप पूर्ण हो जाता है, क्योंकि इन तीनोंकी सेवा करना ही परम तप कहलाता है।'

त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान् विजयेद् गृही।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते॥
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः॥

(मनु० २। २३२, २३४)

'जो गृहस्थ इन तीनोंकी सेवामें तत्पर रहता है, वह तीनों लोकोंको जीत लेता है और सूर्यके समान अपने तेजस्वी शरीरसे प्रकाशित होता हुआ दिव्य लोकमें आनन्दित रहता है। जो इन तीनोंका आदर करता है, वह सब धर्मोंका आदर करता है और जो इन तीनोंका अनादर करता है, वह कुछ भी धर्म-कर्म करे, उसका सब निष्फल होता है।' (आज तो यह प्रत्यक्ष दीखता है, फिर भी नवयुवकोंको नहीं सूझता।)

इसी प्रकार सभी गुरुजनोंके प्रति सम्मान करना चाहिये। माता, पिता, गुरु, आचार्य, वृद्ध, बड़े भाई, मौसी, भौजाई, नाना, नानी, मामा, मामी, ससुर, सास आदिको नित्य सम्मानपूर्वक प्रणाम करना चाहिये। महाराज मनु (मनु० १२। १२१ में) कहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

'जो मनुष्य नित्य वृद्धोंको प्रणाम करता है और उनकी सेवा करता है, उसके आयु, विद्या, यश और बल

बढ़ते हैं।'

खेदका विषय है कि आज मनुष्यका अहंकार इतना अधिक बढ़ गया है कि वह इन स्वभावसे ही नित्य पूजनीय प्रत्यक्ष भगवत्स्वरूप माता, पिता, गुरु आदिका अपमान करनेमें ही अपना महत्त्व समझता है। अधिक क्या, आज तो वह सर्वव्यापी ईश्वरतकका अपमान करनेके लिये कमर कस रहा है, परंतु यह दुराचार है और इसका परिणाम बहुत ही भयानक होगा। अतएव इस पतनके प्रवाहमें न पड़कर विधिपूर्वक बड़ोंका सम्मान करना चाहिये।

यह स्मरण रहे कि सम्मान करनेमें कहीं दम्भ नहीं होना चाहिये। सच्चा सम्मान सरल हृदयसे ही होता है। स्वार्थ या कुटिल हृदयका बाहरी सम्मान तो वस्तुत: सम्मान है ही नहीं, वह तो दिखावटी सभ्यता है अथवा कुचक्रपूर्ण कुटिल नीति है। ऐसे **'विषकुम्भं पयोमुखम्'*** सम्मानसे तो सदा सावधान ही रहना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण जब दूत-लीला करनेके लिये कौरवोंके दरबारमें पधारे थे, तब ऊपरसे उनका स्वागत-सम्मान करनेमें कोई कसर नहीं रखी गयी थी, परंतु दुर्योधनादिके हृदयमें कुटिलता भरी थी। अन्तर्यामी भगवान् इस बातको समझ गये थे और इसीलिये वे कौरव-राजमहलके राजसी निमन्त्रणका निरादर कर, मान-सम्मानकी कुछ भी परवा न कर प्रेमी भक्त विदुरके घर बिना बुलाये चले गये और साग-भाजी जो कुछ मिला, उसीको प्रेमसे भोग लगाकर तृप्त हुए। ***'दुर्योधन घर मेवा त्यागे साग विदुर घर खायो'*** प्रसिद्ध है।

अहंकारी मनुष्य किसीका सम्मान करना नहीं चाहता। वह सबके साथ रूखा व्यवहार करनेमें ही अपना गौरव समझता है। जहाँ कोई दबावका कारण नहीं होता, वहाँ तो अहंकारी मनुष्यको हाथों-हाथ ही रूखेपनका फल मिल जाता है। जहाँ किसी कारणवश लोग दबे रहते हैं, वहाँ लोगोंके मनोंमें वह रूखापन बढ़ता रहता है, जो अवसरकी प्रतीक्षामें अन्दर-ही-अन्दर राखसे ढकी आगकी तरह सुलगता रहता है और अनुकूल समय पाते ही प्रतिहिंसाकी प्रचण्ड ज्वालाके रूपमें प्रकट होकर अपनी सर्वग्रासी लपटोंसे उसे सकुल भस्म कर डालता है और वह वैर की आग आगे चलकर भी जन्म-जन्मान्तरतक दु:ख देती रहती है। इसके विपरीत सम्मानदानकी शीतल सुधाधारा बढ़ी हुई विरोधाग्निको सहज ही शान्तकर हृदयमें अमृत सींच देती है।

अतएव भूलकर भी किसीका अपमान न करके सबका यथायोग्य सम्मान करना चाहिये। न मालूम किस वेषमें कौन आता है। जब उसके वेषका रहस्य खुलेगा, तब मालूम होगा कि कौन है। विराटनगरमें पाँचों पाण्डव और रानी द्रौपदीने वेष बदलकर सालभर नौकरी की थी।
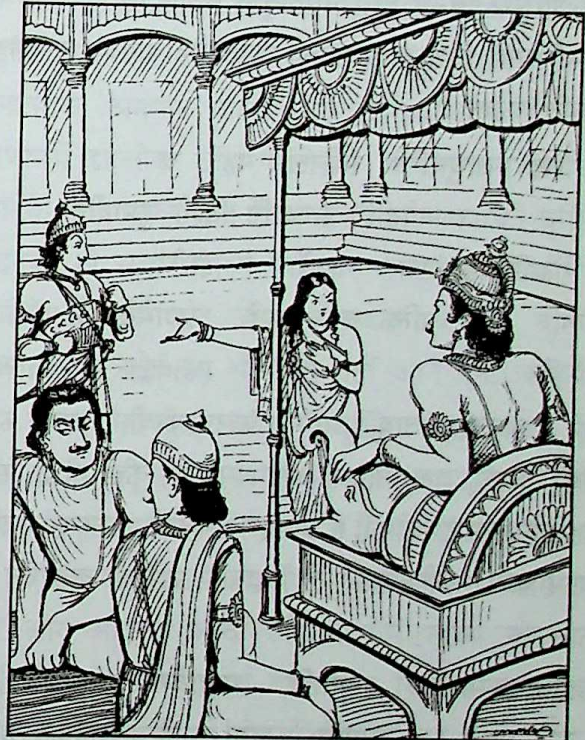
वहाँ नीचमति कीचकके द्वारा द्रौपदीका अपमान हुआ, जिसके फलस्वरूप कीचक अपने बन्धुओंसमेत मारा गया और अन्तमें एक दिन बृहन्नलावेषी अर्जुनकी बड़ाई करनेपर विराटने धर्मराज (युधिष्ठिर)-का अपमान कर दिया। कुछ ही समय बाद जब भेद खुला और यह मालूम हुआ कि ये पाँचों महानुभाव पाण्डव हैं और सैरन्ध्री नाम धारण करके सेवा करनेवाली दासी बनी हुई महारानी

* जिस घड़ेके अन्दर तो जहर भरा हो और मुँहपर थोड़ा-सा दूध हो।

द्रौपदी हैं, तब विराटके मनमें पश्चात्तापका पार न रहा और राजा विराट अर्जुनके पुत्र अभिमन्युको अपनी पुत्री देकर भी पश्चात्तापसे नहीं छूट सके। इसी प्रकार आज हम जिसका अपमान करते हैं, न मालूम वह हमारे कितने सम्मानका पात्र है और वस्तुतः बात भी ऐसी ही है। समस्त जगत् श्रीनारायणका स्वरूप ही तो है। भगवान्ने स्वयं कहा है कि जगत्में मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है—'**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति**' (गीता ७।७)। अतएव सबको परमात्मा समझकर मन, वाणी और शरीर—तीनोंसे सबका सम्मान करना चाहिये। मनसे सबको परमात्माका स्वरूप समझकर सबको नमस्कार करना और सबकी सेवाकी इच्छा रखना, वाणीसे मधुर और आदरपूर्ण भाषण करना और शरीरसे विनय तथा नम्रतायुक्त बर्ताव करना चाहिये। आत्मविद्यामें विशारदके पदको प्राप्त महाभागवत योगेश्वर श्रीकवि कहते हैं—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भा० ११।२।४१)

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, सब जीव, दिशाएँ, वृक्ष, नदियाँ और समुद्र जो कुछ भी हैं, सब श्रीहरिके शरीर ही हैं। अतएव सबको अनन्य-भावसे प्रणाम करो।' श्रीभगवान् तो उद्धवसे यहाँतक कह देते हैं कि—

इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते।
सभाजयन् मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः॥
ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः॥
विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्॥

(श्रीमद्भा० ११।२९।१३, १४, १६)

महातेजस्वी उद्धव! इस प्रकार केवल ज्ञानका आश्रय करके जो पुरुष सब प्राणियोंमें मेरा ही रूप मानकर सबका सम्मान करता है और ब्राह्मण, चाण्डाल, चोर और ब्राह्मणभक्त, सूर्य और चिनगारी, दयालु और निर्दय सबमें समभावसे मुझको देखता है, वही पण्डित है। अपना मजाक उड़ानेवाले स्वजनोंकी बातपर ध्यान न देकर 'मैं अच्छा हूँ, यह बुरा है' ऐसी देहदृष्टिको तथा लोकलाजको त्यागकर कुत्ते, चाण्डाल, गौ और गधेको भी पृथ्वीपर गिरकर (उसे भगवत्स्वरूप समझकर) साष्टांग प्रणाम करना चाहिये।

यद्यपि यह उपदेश देहदृष्टिसे शून्य वीतरागी परमहंसोंकी स्थिति बतलानेवाला है, तथापि इतना तो सभीको निश्चय कर लेना चाहिये कि अपमान पानेयोग्य संसारमें कोई नहीं है। इस नातेसे छोटे-बड़े सभी हमारे सम्मानके पात्र हैं।

इस रहस्यको न समझनेके कारण ही जाति, वर्ण-व्यवसाय, क्रिया, धन, रूप, बल, पद, विद्या आदिके अभिमानवश मनुष्य दूसरोंको अपनेसे नीचा मानकर उनका अपमान करता है और उनकी अन्तरात्मापर भारी आघात पहुँचता है और इसके फलस्वरूप स्वयं नीच बनकर गुरुतर आघातका पात्र बनता है। समाज कभी ऐसे व्यक्तिसे अनुराग नहीं रखता और भीतर-ही-भीतर अपराग रखता है एवं आगे चलकर घृणा करने लग जाता है।

हमलोगोंमेंसे कुछ लोग बड़ेका सम्मान तो किसी भी हेतुसे अथवा अभ्यासवश करते भी हैं, परंतु अपनेसे छोटेका सम्मान करते उन्हें बड़ा संकोच मालूम होता है और कुछ लोग तो उनका अपमान भी कर बैठते हैं। यहाँतक कि अपनी विवाहिता पत्नीतकका पतिभावके अभिमानमें आकर अपमान कर बैठते हैं। कुछ उद्धत प्रकृतिके मनुष्य तो गाली-गलौज और मार-पीटतककी नृशंसता करनेमें भी नहीं हिचकते। यह बड़ा पाप है। पतिको परमेश्वरके समान मानकर उसकी सेवा करनेकी आज्ञा स्त्रियोंके लिये शास्त्रोंने दी है और उन्हें तदनुसार सेवा करनी भी चाहिये। परंतु पति अपनेको परमेश्वर माने और पत्नीको दासी मानकर जबरदस्ती उससे मनमानी—दोषपूर्ण गुलामी करवाये, ऐसी आज्ञा नहीं है। फिर, परमेश्वरके समान गुण होनेपर कोई अपनेको परमेश्वरवत् भी मान ले तो किसी अंशमें उसका बचाव हो सकता है। हम न मालूम परमेश्वरका कितना अपमान करते हैं,

कितना उन्हें भूले रहते हैं, परंतु वे हमारे अपार अपराधोंकी ओर ध्यान न देकर सदा हमारा कल्याण करनेमें ही लगे रहते हैं। ऐसी स्वाभाविक कल्याणकारिणी वृत्ति जिस पतिकी हो वह यदि पत्नीको अपनी पूजा परमेश्वरकी भाँति करनेके लिये कहे तो उसका ऐसा कहना उचित भी हो सकता है, परंतु यह ध्यान रहे कि ऐसा पति सेवा-सम्मानका भूखा ही क्यों होगा? अतएव किसी भी पतिको अपनी पत्नीका कभी अपमान नहीं करना चाहिये, वरं स्वयं सदा सन्मार्गपर आरूढ़ रहकर अपने स्वाभाविक उत्तम और सद्व्यवहारद्वारा उसके हृदयपर अधिकार करके उसे भी सदा सन्मार्गपर चलाना चाहिये और मन-ही-मन उसको भगवान्‌की प्रतिमूर्ति मानकर यथायोग्य क्रियाओंद्वारा उसका सेवा-सम्मान करना चाहिये। इसी प्रकार गुरुको शिष्यका, पिताको पुत्रका, उच्चवर्णको अपनेसे निम्न वर्णका, धनीको निर्धनका, उच्चपदस्थको निम्नपदस्थका, विद्वान्‌को अविद्वान्‌का, सासको वधूका, मालिकको नौकरका सच्चे हृदयसे यथायोग्य सम्मान करना चाहिये। इसका यह तात्पर्य नहीं कि मोहवश, आसक्तिके कारण स्त्री-पुरुष आदिके शास्त्रोक्त व्यवहारमें—जो लोक-परलोक दोनोंमें कल्याणकारी है—उच्छृंखलता पैदा कर ली जाय।

अपनी अधीनतामें काम करनेवाले किसी भी कर्मचारी, सेवक या मजदूरका मन, वाणी या शरीरसे कभी अपमान नहीं करना चाहिये। मनमें किसीको नीचा समझना, शरीरसे अनुचित बर्ताव करना या गर्वपूर्ण आकृति बना लेना और वाणीसे किसीको अपमानजनक शब्द कहना सर्वथा अनुचित है। यह उक्ति सदा याद रखनी चाहिये कि तलवारका घाव मिट जाता है, पर जबानका नहीं मिटता।

मनुमहाराज कहते हैं—

नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः।
ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत्॥

(मनु० २। १६१)

'अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी किसीको मर्मभेदी वचन न कहे, दूसरेके द्रोहके काममें बुद्धिको न लगाये और जिस जबानसे किसीको उद्वेग हो, ऐसी स्वर्गसे भ्रष्ट करनेवाली कड़ी जबान किसीसे न कहे।' हमेशा सबका भला चाहे, मीठी और हितकारी वाणी बोले और हँसमुख रहे। कुछ लोग अभिमानवश बुरी आदत पड़ जानेके कारण अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंसे अथवा सेवक और मजदूरोंसे उनकी शक्तिसे कहीं अधिक काम लेनेमें अपनी बुद्धिमानी समझते हैं और उनसे बात करनेमें अपना अपमान समझते हैं। कभी बोलते भी हैं तो इशारे अथवा चेहरा बिगाड़कर अपने बड़प्पनको दिखाते हुए बहुत ही रूखे शब्दोंमें झिड़कते हुए व्यंगभरा मजाक उड़ाते हुए, ताने मारते हुए, जिससे वे बेचारे दिल खोलकर अपना दुखड़ा रोकर सुना भी न सकें। कुछ लोग तो अहंकारवश यहाँतक नीचता कर बैठते हैं कि बुरी-बुरी गालियाँ देकर अपनी जबान गन्दी करने और हाथ-लात चलाकर निर्दयता प्रकट करनेमें भी नहीं हिचकते। उनकी माँ-बहनोंपर कुविचार और कुदृष्टि करते हैं। ऐसे नीच प्रकृतिके मनुष्य सर्वभूतस्थित परमात्माका अपमान करके घोर अपराध करते हैं और परिणाममें इहलोक तथा परलोकमें भीषण यन्त्रणाओंको भोगनेके लिये बाध्य होते हैं। अतएव इस प्रकारकी घृणित आदतको तो सब प्रकारसे हानिकर समझकर पाठकोंमेंसे किसीमें हो तो तुरंत छोड़ ही देना चाहिये, बल्कि अपमानजनक कोई-सा भी भाव नहीं आने देना चाहिये।

कुछ लोग नौकर और मजदूरोंके नामके साथ 'रे' शब्द जोड़कर ही उन्हें पुकारना आवश्यक समझते हैं। ऐसा करनेमें मिथ्या अहंकार ही कारण है। इस अहंकारको छोड़ देना चाहिये और किसीको भी 'रे' न कहकर यथासाध्य स्नेह और आदरके शब्दों और स्वरोंमें उससे बातचीत करनी चाहिये। कभी कोई दण्ड देना नितान्त आवश्यक जान पड़े तो वह किसी द्रोहबुद्धिसे न देकर उसी स्नेह-भावसे देना चाहिये, जिस भावसे स्नेहमयी जननी अपने पुत्रको देती है, परंतु पहले अपने आचरणोंसे सेवकके हृदयमें यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर देनेकी कोशिश करनी चाहिये, जिससे वह आपको माताके समान प्यार करनेवाला समझ सके।

यह समझ रखना चाहिये—कोई व्यक्ति शुद्ध आजीविकाके लिये हमारे यहाँ काम करके पैसा लेता है, इससे वह हमसे नीचा नहीं हो गया। जैसे हम हैं, वैसे ही वह भी है।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि नौकर या मजदूरको किसी कामके लिये कहनेमें ही उसका अपमान मानकर उसे आलसी, प्रमादी, सुस्त, रोगी, मूर्ख और आज्ञाका उल्लंघन करनेवाला बना दिया जाय। उसका सच्चा सम्मान इसीमें है कि वह हमारे साथ रहकर कर्तव्यपरायण, व्यवस्था माननेवाला, चुस्त, बुद्धिमान्, सदाचारी, आज्ञाकारी बने, जिसमें उसकी उन्नतिका पथ और भी प्रशस्त हो जाय। इस बातका ध्यान रहते हुए ही उसके साथ सम्मानपूर्ण बर्ताव हो। सम्मान कोरा ही नहीं होना चाहिये, उसको पेट भरने योग्य पूरी मजदूरी भी अवश्य ही मिलनी चाहिये।

अहंकाररहित होकर सरलताके साथ जो दूसरोंको सम्मान-दान दिया जाता है, उससे बहुत ही लाभ होते हैं। हम जिसका सम्मान करते हैं, उसका विषाद मिटता है, उसके हृदयमें सुख होता है, उसका क्रोध शान्त होता है, विरोध नष्ट हो जाता है। हमारे प्रति यथायोग्य दया, स्नेह, प्रेम और आत्मीयताके भाव उसके हृदयमें जाग्रत् होते और बढ़ते हैं, जिससे अनायास ही हमारा हित करनेकी कामना उसके हृदयमें उत्पन्न होती है। यों हम सबका सम्मान करके अनायास ही सबको अपने हिताकांक्षी और हितकारी मित्र बना लेते हैं।

यह बात याद रखनी चाहिये कि अपमान करके मनुष्य शत्रुओंकी संख्या बढ़ाता है और सम्मान करके सुहृदोंकी। यह भी निश्चित है कि जिसके जितने ही शत्रु अधिक होंगे, उसकी जीवन-यात्रा उतनी ही कण्टकाकीर्ण, अशान्त, असहाय और लक्ष्यतक पहुँचनेमें संदेहयुक्त रहेगी। इसके विपरीत जिसके सच्चे मित्रोंकी संख्या जितनी ही ज्यादा होगी, उतना ही उसका जीवन विघ्नरहित, शान्त, सहायतासे पूर्ण और स्वाभाविक ही सफलतासे युक्त रहेगा। मनुष्य अभिमानको छोड़ दे तो दुनियाभरको अपने पक्षमें ला सकता है।

भगवान् दीनबन्धु हैं, पतितपावन हैं, अशरण-शरण हैं, अतएव उनकी भक्ति चाहनेवालोंको भी ऐसा ही बनना चाहिये। माता अपने दीन बच्चेको विशेष प्यार करती है। माँकी गोदमें धूलभरा बच्चा भी बड़े स्नेहसे स्थान पाता है। माता उसका अनादर या तिरस्कार नहीं कर सकती। बड़े चावसे उसे हृदयसे लगाये रखती है। अपने हाथों उसका मल-मूत्र धोनेमें सुखका अनुभव करती है। इसी प्रकार हमलोगोंको स्वयं अमानी होकर उन लोगोंका विशेष चावके साथ सम्मान करना चाहिये, उनका विशेष आदर करना चाहिये, जिनका आदर-सम्मान कोई नहीं करता या करनेमें सब सकुचाते हैं। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव कहते हैं—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

अपनेको राहमें पड़े हुए एक तिनकेसे भी नीचा समझो, वृक्षसे बढ़कर सहनशील बनो, अपने मान-सम्मानकी इच्छा बिलकुल छोड़कर दूसरोंका (मानहीनोंका) सम्मान करो और ऐसा बनकर सदा श्रीहरिकीर्तन करो।

सम्मान दो, पर सम्मान चाहो मत। यह शास्त्रका उपदेश है। मनु महाराज तो कहते हैं कि सम्मानसे जहरके समान डरना चाहिये तथा अपमानकी अमृतकी भाँति सदा इच्छा करनी चाहिये। अपना कल्याण चाहनेवालोंके लिये यही सिद्धान्त सर्वथा माननेयोग्य है। मुक्त पुरुषोंको छोड़कर संसारमें शेष तीन तरहके मनुष्य हैं—पामर, विषयी और मुमुक्षु। ***'मान न मान मैं तेरा मेहमान'*** कहावतको चरितार्थ करते हुए पामर प्राणी जबरदस्ती लाठीके जोरसे (जहरभरा) मान प्राप्त करते हैं। विषयान्ध विषयी मनुष्य मान-सम्मानमें—प्रतिष्ठा और पदमें परम सुख मानकर धन और धर्म, अर्थ और परमार्थ—दोनोंको बेचकर मान-बड़ाई प्राप्त करना चाहते हैं और मुमुक्षु पुरुष—सच्चा कल्याण चाहनेवाले बुद्धिमान् पुरुष—मानको जहर समझकर उसका दूरसे ही त्याग करते हैं और अपमानको अमृत मानकर उसको ढूँढ़ा करते हैं एवं मिल जानेपर उसे सिर चढ़ाकर वरण करते हैं तथा उसीमें अपना कल्याण मानते हैं। चौथे मानापमानकी सीमाको लाँघे हुए वे महात्मा मुक्त पुरुष हैं, जिनके मनमें मानापमान जैसी कोई वस्तु ही नहीं है। परंतु लोकसंग्रहार्थ सबमें परमात्माका अनुभव करके वे भी सबका सम्मान ही करते हैं। सबको प्रणाम ही करते हैं—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

'दातव्यमिति यद्दानम्'

(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

मायाका प्रभाव विचित्र है। सर्वस्व-त्यागकी भावना रखनेवाला व्यक्ति यदि सर्वस्वका त्याग कर भी देता है, तब भी उसके त्याग करनेके ढंग तथा प्रक्रियामें मायाका प्रभाव दिखायी देता है। दानमें भी मायाका प्रभाव दिखायी देता है। जैसे संसारके भोगोंमें मनुष्यका मोह रहता है, उसी प्रकार मैं बहुत-सा धन पैदा करके दान करूँ, यह भी एक प्रकारका मोह ही है। अपनी आवश्यकतासे अधिक धन पैदा करके दान करनेकी अपेक्षा अपने जीवननिर्वाहसे अधिक अपने पास न रखना श्रेष्ठ है। फिर भी जिन्हें अपने पूर्वजन्मके पुण्य-प्रभावसे इस जन्ममें पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त हुई है, उनके लिये दान करना सर्वश्रेष्ठ है। दान, भोग और नाश—ये ही धनकी तीन गतियाँ हैं। भोगोंमें खर्च करनेकी अपेक्षा दानमें खर्च करना सबसे अच्छा है, परंतु हमें दान करनेके लिये अधर्म, झूठ, कपट, चोरी, जुआ अथवा ऐसी ही किसी क्रियासे धन प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। पाप-क्रियाद्वारा धन पैदा करके दान करनेसे पापसे छुटकारा नहीं मिलता। जन्म-मरणका चक्कर चलता रहता है। एक हजार रुपये पापसे प्राप्त किये और पाँच सौ उसमेंसे दान कर दिये तो पाप तो एक हजारका ही भोगना पड़ेगा। पुण्यका फल अलग मिल सकता है। दोनोंका फल अलग-अलग भोगना पड़ेगा।

दान धनका ही होता है—ऐसी बात भी नहीं है। दानके अनेक प्रकार हैं—अन्नदान, वस्त्रदान, ज्ञानदान, वस्तुदान, अभयदान आदि-आदि। अपने पास अपनी आवश्यकतासे अधिक जो भी हो, उसे दूसरोंके कल्याणार्थ खर्च करना ही दान है। अपना उपकार करनेवालेको दान देना वास्तवमें दान है ही नहीं, वह तो उस उपकारका बदला है। जो अपनी आजीविकाकी पूर्ति स्वयं करनेमें अशक्त है, ऐसे व्यक्तिको आजीविका दिला देना भी एक प्रकारका दान है। दानसे प्राप्त धनका जो सदुपयोग करे—उस धनसे अपना तथा दूसरोंका कल्याण करे, वह दानका पात्र है। दान भी अच्छी तरह पात्रापात्रका विचार करके करना चाहिये। जैसे योग्य भूमिमें बोया हुआ अन्न ही उगता है, अयोग्य भूमिमें बोया हुआ नहीं उगता, उसी प्रकार जो अपने तथा दूसरोंके कल्याणार्थ धन खर्च करनेको प्रयत्नशील रहता है—ऐसे व्यक्तिको दिया हुआ दान ही उगता है और फलता-फूलता है। दिये जानेवाले जिस दानसे दाता और ग्रहीता दोनोंका ही कल्याण हो, वही सच्चा दान है। जो पापाचारी है, दुराचारी है, व्यसनी है, अपने कल्याण-मार्गमें प्रयत्नशील नहीं है तथा संसारके हितमें भी नहीं लगा है—वह दानका पात्र नहीं है। जिस दानके देनेसे चित्तमें शान्ति रहे, आनन्द प्राप्त हो, क्लेश न हो तथा जिसके द्वारा मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी भावना न हो, ईर्ष्यावश किसीका अशुभ करनेकी भावना न हो—वही सच्चा दान है। अपनी आजीविका नष्ट होती हो अथवा परिवारके लोग दुःखी होते हों, ऐसा दान गृहस्थाश्रमीको नहीं करना चाहिये। गृहस्थीको अपनी शक्तिसे अधिक भी दान नहीं करना चाहिये। अपने परिवारकी आजीविका सुगमतापूर्वक चलती रहे, उससे अधिक अपने पास हो तो सामान्य रीतिसे दान करना चाहिये। संक्षेपमें दान वही करना चाहिये, जिसे दाता और उसके परिवारके सदस्य आनन्दपूर्वक सहन कर लें।

दान, यज्ञ, तप आदि जो भी क्रिया हम करें, उसमें हमें यह भावना रखनी चाहिये कि हमारी इस क्रियासे भगवान् प्रसन्न हों। दान, यज्ञ, तप अथवा इसी प्रकारकी अन्य क्रियाओंके दो ही फल होते हैं—भोग और मोक्ष। मोक्ष परमात्माकी कृपासे मिलता है—इसलिये अपने कल्याणकी कामना रखनेवाले व्यक्तिको भोगोंकी इच्छा न रखकर आनन्दस्वरूप मोक्ष तथा भगवत्प्रसन्नताकी इच्छा रखनी चाहिये। दान आदि क्रिया करते समय भगवान्को स्मरण करना चाहिये और प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभो! मैं तो कुछ भी करनेमें असमर्थ हूँ, आप जब अपना दिया हुआ ही मुझे निमित्त बनाकर, माध्यम बनाकर दिलाते हैं तो मैं देता हूँ, आप जो मुझसे कराना चाहते हैं, वह मैं करता हूँ—वह भी आपकी दी हुई वस्तु, शक्ति और बुद्धिसे ही करता हूँ—इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। मेरा यह शरीर भी आपका ही दिया हुआ है। इस सम्पूर्ण जगत्के स्रष्टा और पालनकर्ता आप ही हैं, मैं जो कुछ भी करता हूँ, उससे आप प्रसन्न हों—यही आपके श्रीचरणोंमें मेरी बार-बार प्रार्थना है। [प्रेषक—श्रीरजनीकान्तजी शर्मा]

दान-जिज्ञासा

[प्रश्नोत्तरी]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रश्न—दान अपनी वस्तुका ही होता है—'**स्वस्वत्व-परित्यागपूर्वकं परसत्त्वोत्पादनं दानम्**', फिर कर्मयोगी किसी भी वस्तुको अपनी न मानकर दूसरोंकी सेवा करता है—यह बात कैसे?

उत्तर—वस्तु अपनी माननेसे कामना होती है। उसीकी वस्तु उसीको दे दी तो फिर कामना कैसे? कामना करना बेईमानी है। वास्तवमें अपना कुछ नहीं है। जो भी वस्तु हमारे पास है, वह मिली है और बिछुड़नेवाली है। अतः जो मिला है, वह दूसरोंकी सेवाके लिये ही है।

जो वस्तु वास्तवमें अपनी है, उसका त्याग कभी होता ही नहीं। क्या स्वरूपका त्याग हो सकता है? क्या सूर्य अपनी किरणोंका त्याग कर सकता है? नहीं कर सकता। त्याग उसीका होता है, जो अपना नहीं है, पर भूलसे अपना मान लिया है। अतः अपनी मानकर वस्तु देना राजस-तामस त्याग है, जिससे मुक्ति नहीं होती।

प्रश्न—पति दान करनेसे मना करता हो तो क्या पत्नी छिपकर दान कर सकती है?

उत्तर—दान करना दोष नहीं है, पर छिपकर दान करना दोष है। स्त्रीको चाहिये कि वह पतिसे मासिक ले और उसमेंसे अर्थात् अपने हकके रुपयोंमेंसे दान करे। अपने हिस्सेकी वस्तुमें तो उसका अधिकार है ही।

पति आदिसे छिपाकर दान करना 'गुप्त दान' नहीं है, प्रत्युत चोरी है। गुप्त दान वह है, जिसमें लेनेवालेको पता ही न लगे कि किसने दिया।

प्रश्न—कुछ लोग अपने घरके बाल-बच्चोंको, पत्नीको वस्तु न देकर दूसरोंको देते हैं, उनकी सेवा करते हैं—यह उचित है क्या?

उत्तर—ऐसे लोग वास्तवमें अपना कल्याण नहीं चाहते, प्रत्युत मान-बड़ाई चाहते हैं। वस्तुओंपर अपने परिवारवालोंका पहला हक है। जो हमसे जितना नजदीक होता है, उतना ही उसका अधिक हक होता है, उतना ही वह सेवाका अधिकारी होता है। परिवारवालोंका हमपर ऋण है। ऋण पहले उतारना चाहिये, दान-पुण्य पीछे करना चाहिये।

प्रश्न—अपनेपर कर्जा हो तो क्या दान-पुण्य कर सकते हैं?

उत्तर—कर्जदार व्यक्तिको दान-पुण्य करनेका अधिकार नहीं है। इसलिये पहले कर्जा चुकाना चाहिये। हाँ, यदि दान-पुण्य करना ही हो तो अपने रोटी-कपड़ेके खर्चेमेंसे निकालकर करना चाहिये।

प्रश्न—मृतात्माके निमित्त ब्राह्मणको शय्या, वस्त्र आदिका दान करते हैं तो ब्राह्मण उन्हें बेच देते हैं और रुपये इकट्ठे कर लेते हैं, यह ठीक है क्या?

उत्तर—ब्राह्मणको दानमें मिली वस्तु बेचनी नहीं चाहिये, प्रत्युत उसको अपने काममें लेनी चाहिये। यदि वह उस वस्तुको बेचता है तो उसको पाप लगता है और जो उसको खरीदता है, वह उस मृतात्माका कर्जदार होता है।

यदि विधिकर्ता ब्राह्मणको शय्या आदि वस्तुओंकी आवश्यकता न हो तो यजमानको चाहिये कि वह उस ब्राह्मणसे विधि (संकल्प) करवा ले और उन वस्तुओंको दूसरे गरीब, अभावग्रस्त ब्राह्मणको दे दे। यदि विधिकर्ता ब्राह्मण ऐसा करनेमें राजी न हो तो उसको वस्तुएँ दे दे, फिर उन वस्तुओंको पैसे देकर वापस खरीद ले और उन्हें दूसरे गरीब ब्राह्मणको दे दे। ऐसा करनेसे विधिकर्ता ब्राह्मणको तो रुपये मिल जायँगे और गरीब ब्राह्मणको वस्तुएँ मिल जायँगी। तात्पर्य है कि वस्तुएँ उसी ब्राह्मणको देनी चाहिये जो उनको खुद काममें ले।

प्रश्न—पैसा देकर वस्तु खरीदनेपर तो दोष नहीं लगता, फिर ब्राह्मणसे शय्या आदि खरीदनेवाला दोषी (मृतात्माका कर्जदार) क्यों होता है?

उत्तर—वह सस्तेमें वस्तुएँ खरीदता है, इसीलिये उसको दोष लगता है। यदि सवाया-ड्योढ़ा अधिक मूल्य देकर खरीदे तो दोष नहीं लगेगा।

प्रश्न—सबसे बड़ा दाता कौन है?

उत्तर—भागवतमें धन देनेवालोंको सबसे बड़े दाता नहीं कहा है, प्रत्युत उनको पृथ्वीके सबसे बड़े दाता कहा है, जो दूसरोंको भगवान्‌में लगाते हैं—'**भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।**' (१०।३१।९) धनके द्वारा जो उपकार

होता है, उससे भी अधिक उपकार दूसरोंको भगवान्‌की तरफ लगानेसे होता है। अन्तःकरणमें जड़ताका महत्त्व होनेसे ही लौकिक उपकार बड़ा दीखता है। जिसका पैसा ही लक्ष्य है, वह पारमार्थिक बातको नहीं समझ सकता।

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम्॥

(महाभारत, वन० २।४९)

'जो मनुष्य धर्मके लिये धनकी इच्छा करता हो, उसके लिये (धनकी इच्छा त्यागकर) निरीह बने रहना ही उत्तम है; क्योंकि कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका स्पर्श न करना ही उत्तम है।'

प्रश्न—क्या मृत्युके बाद नेत्रदान करना उचित है?

उत्तर—सर्वथा अनुचित है। जैसे सम्पत्ति देनेका अधिकार बालिग (वयस्क)-को होता है, नाबालिग (अवयस्क)-को नहीं होता, ऐसे ही शरीरके किसी अंगका दान करनेका अधिकार जीवन्मुक्त महापुरुषको ही है। जिसने अपनी मुक्ति (कल्याण) कर लिया है, अपना मनुष्य-जन्म सफल बना लिया है, वह बालिग है, शेष सब नाबालिग हैं। जीवन्मुक्त महापुरुष भी शरीरके रहते हुए ही नेत्रदान कर सकता है, शरीर छूटनेके बाद नहीं।

शवके साथ छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये। शवका कोई अंग काटनेसे अगले जन्ममें वह अंग नहीं मिलता। अंग मिलता भी है तो उसमें कमी अथवा चिह्न रहता है। कुछ व्यक्तियोंमें पूर्वजन्मका चिह्न इस जन्ममें भी देखा गया है। बालकके मरनेपर माताएँ उसके किसी अंगपर लहसुन लगा देती हैं तो वह चिह्न अगले जन्ममें भी रहता है।

सबसे बड़ा दान अभयदान

[एक आख्यान]

किसी राजाके चार रानियाँ थीं। एक दिन प्रसन्न होकर राजाने उन्हें एक-एक वरदान माँगनेको कहा। रानियोंने कह दिया—'दूसरे किसी समय वे वरदान माँग लेंगी।'

रानियाँ धर्मज्ञा थीं। कुछ काल बाद राजाके यहाँ कोई अपराधी पकड़ा गया और उसे प्राणदण्डकी आज्ञा हुई। बड़ी रानीने सोचा कि 'इस मरणासन्न मनुष्यको एक दिनका जीवनदान देकर इसे उत्तम भोगोंसे सन्तुष्ट करना चाहिये।' उन्होंने राजासे प्रार्थना की—'मेरे वरदानमें आप इस अपराधीको एक दिनका जीवनदान दें और इसका एक दिनका आतिथ्य मुझे करने दें।'

रानीकी प्रार्थना स्वीकार हो गयी। अपराधीको वे राजभवन ले गयीं और उसे बहुत उत्तम भोजन उन्होंने दिया, परंतु दूसरे दिन मृत्यु निश्चित है, इस भयके कारण उस मनुष्यको भोजन प्रिय कैसे लगता! दूसरे दिन दूसरी रानीने यही प्रार्थना की और उन्होंने उस अपराधीको उत्तम भोजनके साथ उत्तम वस्त्र भी दिये। तीसरे दिन तीसरी रानीने भी वही प्रार्थना की और भोजन-वस्त्रके साथ अपराधीके मनोरंजनके लिये उन्होंने नृत्य-संगीतकी भी व्यवस्था कर दी, पर उस मनुष्यको यह कुछ भी अच्छा नहीं लगा। उसने कुछ खाया-पीया नहीं।

चौथे दिन छोटी रानीने प्रार्थना की—'मैं वरदानमें चाहती हूँ कि इस अपराधीको क्षमा कर दिया जाय।' उनकी प्रार्थना स्वीकार हो गयी तो उन्होंने अपराधीको केवल रूखी मोटी रोटियाँ और दाल खिलाकर विदा कर दिया। उसने आज वे रूखी रोटियाँ बड़े चाव तथा आनन्दसे पेटभर खायीं।

रानियोंमें विवाद उठा कि सबसे अधिक सेवा उस मनुष्यकी किसने की? परस्पर जब निर्णय नहीं हो सका, तब बात राजाके यहाँ पहुँची। राजाने अपराधीको बुलाकर पूछा तो वह बोला—'राजन्! जबतक मुझे मृत्यु सामने दीखती थी, तबतक भोजन, वस्त्र या नृत्य-समारोहमें मुझे क्या सुख मिलना था। मुझे तो सबसे स्वादिष्ट लगीं छोटी रानीमाताकी रूखी रोटियाँ; क्योंकि तब मुझे मृत्युसे अभय मिल चुका था।' इसीलिये कहा गया है—

न गोप्रदानं न महीप्रदानं न चान्नदानं न सुवर्णदानम्।
यथा वदन्तीह बुधाः प्रधानं सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम्॥

बुद्धिमान्‌लोग समस्त दानोंमें अभयदानको जितना प्रधान (महत्त्वपूर्ण) बतलाते हैं, उतना महत्त्वपूर्ण गोदान, पृथ्वीदान, अन्नदान या स्वर्णदानको नहीं बतलाते।

शुद्ध धनका दान ही पुण्यदायक होता है

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)

धर्मशास्त्रोंके अनुसार ब्राह्मणका धर्म है कि वह दानदाताका दान स्वीकारकर उसे उपकृत करे। तथापि श्रेष्ठ और विरक्त वृत्तिके ब्राह्मणोंके ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिन्होंने राजा-महाराजाओं एवं धनाढ्य सेठोंद्वारा श्रद्धापूर्वक दिया गया धन यह कहकर लेनेसे इनकार कर दिया कि ब्राह्मणोंका असली धन तो तप है, भक्ति है, हम इस सांसारिक धनका क्या करेंगे।

परम वीतराग संत जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज प्रायः सदुपदेश में कूर्मपुराणका यह श्लोक सुनाया करते थे—

वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेन्नेहेत धनविस्तरम्।
धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते॥

ब्राह्मणको धनके विस्तारकी, अधिक संग्रहकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। धनके लोभमें आसक्त ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाता है।

पूज्य महाराजश्रीने एक बार ब्राह्मणोंकी एक संगोष्ठीमें प्रवचन करते हुए कहा था—'ब्राह्मणोंको अपने परिवारके पोषणके लिये जितना अत्यावश्यक है, उतना ही लेना चाहिये। आवश्यकतासे अधिक धनके संचयके प्रयासमें लगा ब्राह्मण अधोगतिको प्राप्त होता है।' धर्मशास्त्रोंके उपर्युक्त वचनोंका अक्षरशः पालन करनेवाले तपःपूत पूज्य ब्राह्मणोंमेंसे कुछ एकके पावन प्रसंग प्रस्तुत हैं—

तपःपूत पं० श्रीरामजी महाराज

पं० श्रीरामजी महाराज संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनका पूरा परिवार संस्कृतज्ञ था। सभी आपसमें संस्कृतमें बातचीत करते थे। धर्मके प्रचारके उद्देश्यसे कई बार गाँवोंकी ओर निकल जाते थे। पत्नी तथा बच्चोंसहित वे गंगाकिनारे विचरण करते तथा किसी गाँवके मन्दिरमें रुक जाते। गाँवमें पहुँचकर एक-दो घरोंसे आटा-दाल भिक्षाके रूपमें ले आते। अपने हाथोंसे भोजन तैयारकर ठाकुरजीको भोग लगाकर प्रसादके रूपमें ग्रहण कर लेते। ग्रामीणोंको धर्मानुसार जीवन-यापन करनेका उपदेश एवं प्रेरणा दिया करते।

एक बार वे भ्रमण करते हुए एक राजाकी रियासतमें जा पहुँचे। अचानक राजपुरोहित उधरसे आ निकले। उन्होंने पति-पत्नी तथा बच्चोंको वृक्षके नीचे बैठे संस्कृतमें बातें करते देखा तो प्रभावित हुए। राजपुरोहितने उन्हें प्रणाम किया। परिचय प्राप्त किया। बातचीतके दौरान वह समझ गया कि ये अत्यन्त उच्चकोटिके त्यागी-तपस्वी तथा विद्वान् ब्राह्मण हैं। इनके पूर्वज भी महान् विद्वान् रहे हैं। राजपुरोहितने तुरन्त राजाके पास पहुँचकर उन्हें इस ऋषि-परिवारकी बात बतायी। राजा स्वयं परम धर्मात्मा थे। वे तुरन्त पुरोहितको साथ लेकर पण्डितजीके परिवारके दर्शनोंके लिये पहुँचे। उन्हें सादर प्रणामकर चरणस्पर्शकर कहा—'हमारे राज्यका अहोभाग्य है कि आप-जैसे ऋषि यहाँ पधारे हैं। हमारे निवास-स्थानको पावन करनेकी कृपा करें।' उन्होंने कहा—हम तो गंगाके पावन तटपर विचरनेवाले भिक्षुक ब्राह्मण हैं। आपके महलमें चलकर क्या करेंगे, किंतु राजाके बार-बारके विनयपूर्वक आमन्त्रणको उन्हें स्वीकार करना पड़ा। अगले दिन उन्हें महलमें लाया गया। राज-परिवारकी ओर से उनका सम्मान किया गया। उनसे आशीर्वाद प्राप्त करनेके बाद उन्हें सोनेके थालमें भोजन परोसा गया। पं० श्रीरामजी महाराजने कहा—हमारा नियम है कि भिक्षामें मिले सीधे (आटा-दाल-चावल आदि)-से अपने हाथोंसे भोजन बनाकर भगवान्‌के प्रसादके रूपमें पाते हैं। राजाने दक्षिणाके रूपमें सोनेकी अशर्फियोंसे भरा थाल और शाल-दुशाले सामने रखे। उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहा—राजन्! हम इन अशर्फियोंका, शाल-दुशालोंका क्या करेंगे? हमारा नियम है कि कुछ संग्रह नहीं करना। आप एक समयका सीधा (आटा-दाल-चावल) दे दें। हम उसे सहर्ष स्वीकार करते हैं। यह सब धन वापस उठा लें। राजाने कहा—महाराज, मैं क्षत्रिय हूँ। आपको जो यह दान कर चुका, क्या उसे वापस लेना धर्मविरुद्ध नहीं होगा?

पं० श्रीरामजीने कहा—मैं संग्रह न करनेका संकल्प ले चुका हूँ। क्या आपकी भेंट स्वीकारकर मैं धर्मकी अवज्ञाका दोषी नहीं बन जाऊँगा?

अन्तमें पण्डितजीने सुझाव दिया कि इन अशर्फियोंको, शालोंको राजपुरोहितको भेंट कर दें। पं० श्रीरामजी आटा-

दाल-चावलकी पुटलिया साथ लेकर राजमहलसे लौट आये।

तपःपूत पं० श्रीधरजीका आदर्श जीवन

अबसे लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व राजधानी दिल्लीके समीपवर्ती मेरठ जनपदके कस्बा डासनामें महान् भागवताचार्य पं० श्रीधरजी महाराज रहा करते थे। उनके अनूठे पाण्डित्यसे प्रभावित होकर काशीके पण्डितोंने उन्हें 'छत्रपति' की उपाधिसे अलंकृत किया था। पुरानी पीढ़ीके सुविख्यात साहित्यमनीषी श्रीबालमुकुन्द गुप्तने पं० श्रीधरजी महाराजके श्रीचरणोंमें बैठकर ही देववाणी संस्कृत एवं हिन्दीका अध्ययन किया था।

छत्रपति पं० श्रीधरजी महाराज श्रीमद्भागवतके अद्भुत व्याख्याता थे। गाँव-गाँव पहुँचकर श्रीमद्भागवतकी कथा सुनाकर भगवद्भक्ति एवं सदाचारकी प्रेरणा दिया करते थे। वे परम विरक्त एवं तपोनिष्ठ ब्राह्मण थे। उन्होंने संकल्प लिया हुआ था कि आवश्यकतासे अधिक धन या किसी वस्तुका संचय नहीं करेंगे।

श्रीमद्भागवत-कथाके समापनके समय उन दिनों चाँदीके सिक्के, वस्त्र तथा खाद्यान्न (गेहूँ, दाल, चावल, गुड़ आदि) चढ़ाये जानेकी परम्परा थी। पं० श्रीधरजी महाराजकी कथा सुनने अनेक गाँवोंके श्रद्धालुजन उमड़ते थे। आखिरी दिन खूब चढ़ावा भेंट किया जाता था। पं० श्रीधरजी महाराज कहा करते थे—श्रीमद्भागवत-कथा सुनानेके बदले धन-सम्पत्ति लेना अधर्म है। वे चढ़ावेमें आया तमाम धन, वस्त्र तथा खाद्यान्न गरीब लोगोंको वितरित करा देते थे। अपने परिवारके भोजनलायक आटा-दाल ही स्वीकार करते थे।

पं० श्रीधरजी महाराजको कोई धनाढ्य व्यक्ति यदि दानके रूपमें धन देनेकी पेशकश करता तो वे कहते—मेरा गुजारा भक्तजनोंद्वारा भेंट किये गये आटा-दालसे सहजहीमें चल जाता है। इस धनको लेकर मैं क्या करूँगा? इस राशिसे गरीबोंकी बेटियोंका विवाह करा दो। बीमारों तथा असहायोंकी सहायता कर दो। तुम्हारा दान सार्थक हो जायगा।

अधर्मसे अर्जित धन-दान ठुकराया

हमारे धर्मशास्त्रोंमें विस्तारसे विवेचन किया गया है कि किस प्रकारके धनका दान करनेसे पुण्य अर्जित होते हैं। किस वृत्तिके व्यक्तिको दान दिया जाना चाहिये। दान देने एवं लेनेवाला सुपात्र है कि नहीं यह भी बताया गया है।

'स्कन्दपुराण' में कहा गया है—

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमता।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थमेव च॥

न्यायपूर्वक, ईमानदारीसे अर्जित धनका कम-से-कम दसवाँ अंश दान करनेकी प्रेरणा दी गयी है। धर्मशास्त्रोंमें स्पष्ट कहा गया है कि अन्यायसे, बेईमानीसे उपार्जित द्रव्यद्वारा किया गया पुण्यकार्य न तो इस लोकमें यश-कीर्ति दे सकता है और न परलोकमें ही उसका फल मिलता है—

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिहलोके च परलोके न तत्फलम्॥

(देवीभागवत ३। १२। ८)

उपर्युक्त शास्त्राज्ञाके अनुरूप ही दान ग्रहण करनेवालेको भी यह जाँच लेना चाहिये कि दानमें दिया जानेवाला धन कहीं चोरी, बेईमानी, अखाद्य पदार्थों—मांस, मदिराके विक्रय आदिसे अर्जित तो नहीं है। ऐसे अशुद्ध दान-द्रव्यको न लेनेमें ही भलाई है।

इसलिये उच्चकोटिके विवेकी धर्माचार्य तथा संत-महात्मा, यज्ञादि शुभ कर्मों, अनुष्ठानोंमें उसीका धन दानके रूपमें स्वीकार करते थे, जो धर्मानुसार जीवन-यापन करके ईमानदारीसे धन अर्जित करते थे। अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजने पूज्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रम-जीके सान्निध्यमें दिल्लीमें यमुनातटपर ऐतिहासिक यज्ञका आयोजन किया था। मुझे पूरे समय उस महान् सतयुगी दृश्यको देखने, यज्ञभगवान्‌के दर्शन करनेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ था। स्वामीजीको बताया गया कि एक धनाढ्य सेठ अच्छी बड़ी रकम यज्ञके लिये दान करनेके आकांक्षी हैं। जब पूज्य स्वामीजीको पता लगा कि सेठके कपड़ेके कारखानेके साथ-साथ एक डिस्टलरी (शराब बनानेका उद्यम) भी है तो उन्होंने तुरन्त उस धनको यह कहकर स्वीकार करनेसे मना कर दिया था कि अधर्मकी कमाईके धनसे यज्ञकी सार्थकता ही समाप्त हो जायगी। स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज तो अपने सदुपदेशमें स्पष्ट कहा करते थे—पापकी कमाईका मामूली अंश भी यदि भोजनके रूपमें ग्रहण कर लिया जाता है तो वह मन,

मस्तिष्क, बुद्धि तथा शरीरको विकृत कर डालता है। यज्ञादि धर्म-कार्योंमें तो परिश्रम एवं ईमानदारीसे अर्जित पवित्र धनका ही उपयोग कल्याणकारी होता है।

दूषित धनका कुप्रभाव

दूषित धनके कुप्रभावकी आर्यसमाजके सुविख्यात शिक्षाविद् महात्मा हंसराजजीकी आँखों देखी घटना आँखें खोलनेवाली है—

महात्मा हंसराजजी लाहौरसे हरिद्वार आये हुए थे। वे मौन आश्रममें ठहरे हुए थे। एक वानप्रस्थीजी भी वहीं ठहरे हुए थे। वे अनेक वर्षोंसे आश्रममें रहकर प्रातः तीन बजे जगकर ध्यानावस्थित हो जाया करते थे।

एक दिन वे अचानक महात्मा हंसराजजीके पास पहुँचे। जोर-जोरसे रोकर कहने लगे कि महाराज आज तो मैं लुट गया? मेरे वर्षोंसे अर्जित पुण्य नष्ट हो गये। महात्माजीने पूछा—बताओ तो सही कि कैसे लुट गये? क्या हो गया? वानप्रस्थीजीने बताया कि मैं वर्षोंसे ध्यान करता आ रहा हूँ। बड़ा अनूठा आनन्द मिलता था। आज सबेरे पहली बार ध्यानमें व्यवधान पड़ गया। ध्यानमें जो आनन्दरूपी ज्योति दिखायी देती थी, उसकी जगह एक युवती दिखायी दी। कई बार पुनः ध्यानावस्थित होनेका प्रयास किया, किंतु हर बार लाल वस्त्र पहने युवती दिखायी देती। ऐसी स्थितिमें मैं आज अपनेको लुटा-पिटा मानकर दुःखित हूँ।

महात्मा हंसराजजीने पूछा—'वानप्रस्थीजी क्या दिनमें कोई उपन्यास तो नहीं पढ़ा? क्या कोई फिल्म देखने तो नहीं चले गये?' वानप्रस्थीजीने कहा—'महाराज! न मैं उपन्यास पढ़ता हूँ, न कभी फिल्म ही देखता हूँ।' महात्माजीने पूछा—'क्या कल आश्रमसे बाहर तो नहीं गये थे?' वानप्रस्थीजीने बताया कि एक साधु मुझे आग्रह करके एक आश्रममें होनेवाले भण्डारेमें ले गये थे। वहाँ भण्डारेमें भोजन किया और लौट आया।

महात्माजीने कहा—'उस आश्रममें भण्डारा किसके धनसे हुआ—यह पता लगानेका प्रयास करो। गलत धनसे किये गये भण्डारेका भी यह प्रभाव हो सकता है।'

वानप्रस्थीजी इसी खोजमें लग गये। उन्हें पता चल गया कि बाहरसे आये एक ऐसे दुष्टात्माने धन देकर यह भण्डारा कराया था, जिसने अपनी कन्या दस हजार रुपयेमें किसीको सौंपी थी। उसने पापसे बचनेके लिये दो हजार रुपये देकर यह भण्डारा कराया।

महात्मा हंसराजने कहा—घोर अधर्म एवं पापकी कमायीके पैसेसे किये गये भण्डारेका दूषित अन्न ग्रहण करनेसे ही तुम्हारे ध्यानमें विघ्न पड़ा तथा युवती दिखायी दी। अब इस बुरे अन्नके प्रभावको नष्ट करनेके लिये सवा लाख गायत्रीका जप करो, तभी मुक्ति मिलेगी।

उपर्युक्त घटनासे यह सिद्ध होता है कि धर्मशास्त्रोंका यह कथन अक्षरशः सत्य है कि अधर्म एवं पापके धनके दानसे किया जानेवाला यज्ञ, भण्डारा आदि शुभ कार्य भी निष्फल होता है। आश्रम आदि बनानेके आकांक्षी संत-महात्माओंको धनाढ्य सेठोंकी प्रशंसाके पुल बाँधकर उनसे दानके नामपर बड़ी-से-बड़ी रकम प्राप्त करनेकी होड़ लगनी स्वाभाविक है। आज कलियुगमें तो मद्य-मांस एवं तम्बाकू आदि नशीले पदार्थोंका व्यवसाय करनेवाले धनाढ्योंतकसे दानके रूपमें धन प्राप्त करनेमें संकोच नहीं होता। मुझे भलीभाँति स्मरण है कि कुछ दशक पूर्व श्रीमद्भागवतके एक परम वीतराग व्याख्याता संतने एक ऐसे आयोजनमें उपस्थित होनेसे इनकार कर दिया था, जिसका पूरा खर्च तम्बाकू एवं बीड़ी-सिगरेटका उत्पादन करनेवाले उद्योगपतिने वहन किया था।

धर्मशास्त्रोंने पहले ही चेतावनी दी है कि कलियुगमें धर्मविरुद्ध कार्योंको ही धर्म बताकर लोगोंको भ्रमित किया जाता रहेगा।

इस सबके बावजूद अभी भी प्राचीन परम्पराके अनेक परम विरक्त संत-महात्मा, आचार्य अपने-अपने आश्रमोंके माध्यमसे धर्म, संस्कृति, देववाणी संस्कृत भाषाके प्रचार-प्रसारमें संलग्न हैं। कुछ आश्रम गोपालनके लिये गोशालाओं, वेद-वेदांगकी परम्पराके संरक्षण, गरीबोंके लिये अन्नदान-जैसे परम सात्त्विक धार्मिक कार्योंका संचालन कर रहे हैं। धर्मशास्त्रोंके सिद्धान्तोंपर अटल ऐसे सतयुगी संतोंके बलपर ही हमारी प्राचीन सनातन संस्कृति तथा परम्परा अक्षुण्ण बनी हुई है। **[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]**

भगवान् श्रीरामद्वारा विभीषणको अभयदान

(साकेतवासी आचार्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज 'रामायणी')
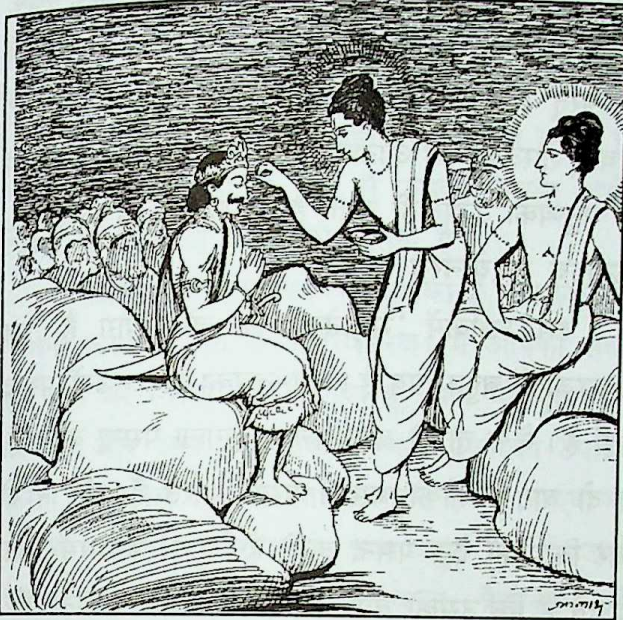
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा०रा० ६। १८। ३३)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें भगवान् श्रीरामजीका यह वचन है—'जो एक बार भी मेरी शरणमें आकर मैं तुम्हारा हूँ इस प्रकार कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है।'

प्रसंग यह है कि श्रीविभीषणजी अपने चार मन्त्रियोंके साथ श्रीरामजीकी शरणमें आये हैं। वानर जब उन्हें दूरसे ही आते देखते हैं तो श्रीसुग्रीवजीको सूचित करते हैं। श्रीसुग्रीवजीको अपने सखा श्रीरामजीमें अत्यन्त ही प्रीति है। अत्यन्त स्नेहीके हृदयमें अपने प्रियके अनिष्टकी आशंका पदे-पदेपर होती रहती है। अतः स्नेहातिशयके कारण श्रीरामजीकी सर्वशक्तिमत्ताका विस्मरण करके सोचने लगते हैं—शरणागतवत्सल श्रीराम 'शरणागत' शब्द श्रवण करते ही विभीषणको शरणमें ले लेंगे और यह क्रूरहृदय राक्षस रावणका छोटा भाई ही है—अतः श्रीरामजीका पता नहीं क्या अनर्थ कर डाले, इस भयकी आशंकासे व्याकुलचित्त श्रीसुग्रीवने सद्यः श्रीरामजीके पास जाकर इस प्रकार प्रार्थना की—

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥

उत्तरमें भगवान् श्रीरामने कहा—*'कह प्रभु सखा बूझिए काहा।'* हे सखे, पूछते क्या हो, आया है तो ले आओ। इसपर सुग्रीवने कहा—

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥

यह दुष्ट हमारा भेद लेने आया है, इसे पकड़कर बाँध लेना चाहिये। इसपर श्रीरामजी कहते हैं—हे मित्र! हम तो चाहते हैं कि लोग हमारा भेद लें। जो मेरा भेद लेने आयेगा, वह मेरा भक्त बन जायगा। वह संसारका नहीं रहेगा। जो हमारा भेद—हमारा स्वभाव जान जायगा, वह हमारा ही हो जायगा।

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥

हे सुग्रीव! यदि विभीषण सभीत होकर मेरी शरणमें आया है तो मैं उसे प्राणकी भाँति हृदय-मन्दिरमें बाँधकर रखूँगा। इसके पश्चात् करुणावतार श्रीरामचन्द्रजी एक श्लोकमें अपना पूरा मन्तव्य व्यक्त कर देते हैं—उस मंगलमय श्लोकको और उसके भावको हृदयमें धारण करके श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी मंगलमयी शरणागति स्वीकार करनी चाहिये—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥

(वा०रा० ६। १८। ३१)

अर्थात् 'मित्रभावसे सम्प्राप्त व्यक्तिका मैं किसी तरह भी परित्याग नहीं कर सकता। हो सकता है, उसमें कुछ दोष भी हो तो भी मैं उसे छोड़ नहीं सकता; क्योंकि मित्रभावसे प्राप्त हुए दोषी व्यक्तिको भी स्वीकार करना सज्जनोंके द्वारा निन्द्य नहीं माना गया है।'

श्रीरामजीका तात्पर्य है कि मित्रत्व, दासत्व अथवा शरणागतित्व आदि किसी भी भावनाको लेकर जो कोई

मेरी शरणमें आता है, उसे मैं कभी भी नहीं छोड़ता हूँ। आगे श्रीरामजी कहते हैं—'हे सुग्रीव! मैं अपने जीवनको छोड़ सकता हूँ, परंतु अपनी शरणमें आये हुए भक्तको नहीं छोड़ सकता। इसी आशयसे ठाकुरजी कहते हैं **'न त्यजेयं कथञ्चन'** अर्थात् मेरे लिये विभीषणका त्याग करना सम्भव नहीं है। ***'मम पन सरनागत भयहारी।'***'

परंतु जब इसके पश्चात् भी श्रीसुग्रीवने श्रीविभीषणजीकी शरणागतिका मुखर विरोध किया तो भगवान् श्रीरामने अपना विचार दृढ़तापूर्वक अभिव्यक्त कर दिया—'हे वानरयूथपते! संसारमें कोई भी मेरा अनहित नहीं कर सकता है। मैं एक अंगुलिके अग्रभागसे ही सबको मार सकता हूँ—**अंगुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर।**' अतः भयके कारण शरणागतका त्याग करना ठीक नहीं है।

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

(रा०च०मा० ५।४३)

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहि ताहू॥

× × × ×

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

हे मित्र! शरणागतकी रक्षा करनेका धर्म सनातन है। पशु-पक्षीतक अपना प्राण देकर भी शरणागतकी रक्षा करते हैं। श्रीठाकुरजीने एक कपोतका उदाहरण देते हुए आर्ष वचनका भी प्रमाण दिया। सब कुछ कहकर अन्तमें शरणागतकी रक्षाके विषयमें अपना चरम निश्चय श्रीरामजी कहते हैं—हे वानरेन्द्र! मेरी प्रतिज्ञाको ध्यानपूर्वक सुनो और मेरे स्वभावका परिज्ञान कर लो। 'जो एक बार भी मेरी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' इस प्रकार कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है'—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा०रा० ६।१८।३३)

'सकृदेव' भगवान्को प्रसन्न करनेके अन्य जितने भी साधन हैं, उन सबमें आवृत्तिकी पुनः-पुनः करनेकी आवश्यकता होती है। जप, कीर्तन, स्वाध्याय, तप, तीर्थाटन इत्यादि सभी साधन—उपाय बार-बार किये जाते हैं, परंतु शरणागतिमें आवृत्ति शास्त्रको अभीष्ट नहीं है अर्थात् शास्त्रकी इस आज्ञाका मात्र एक बार पालन करनेसे ही मनुष्यका उद्धार हो जाता है—**'सकृदेव हि शास्त्रार्थः कृतोऽयं तारयेन्नरम्।'**

इस श्लोकमें **'सकृदेव'** का जो प्रयोग है, वह ठाकुरजीको बहुत प्रिय है। बार-बारका शब्द उन्हें पसन्द नहीं है। वे न तो दो बार निशाना लगाना पसन्द करते हैं, न दो बार किसीको बसाना पसन्द करते हैं और न दो बार किसीको देना पसन्द करते हैं। एक ही बारमें इतना दे देते हैं कि उसको बार-बार लेनेके लिये न आना पड़े। इसीलिये कहते हैं कि केवल एक बार मेरी शरणमें आ जाओ। शरणागति ऐसा भाव है, जो संकीर्ण दृष्टियोंको, संकीर्ण भावनाओंको समाप्त कर देता है। उसमें भगवान् शरणागतके सामने होते हैं, भगवान्के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं होती है।

'प्रपन्नाय' प्रपन्नका अर्थ होता है—प्रपद—पाँव पकड़नेवाला। यह भी शरणागतिका ही एक अंग है। महात्माओंका कहना है शरणागतिका एक अधिकार होता है। जब मनुष्य चारों ओरसे असहाय और निर्बल होकर यह अनुभव करे कि मैं आत्मज्ञानी नहीं हूँ, भक्तिमान् नहीं हूँ, धर्मनिष्ठ नहीं हूँ, केवल एक अकिंचन हूँ, मेरे पास साधनकी कोई पूँजी नहीं है और श्रीरामजीके चरणोंकी गतिके अतिरिक्त अन्य कोई अवलम्ब नहीं, तब वह शरणागतिका अधिकारी होता है—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

(आलवन्दारस्तोत्र २५)

शरणागत कहता है कि हे नाथ! मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है, मेरी युक्तियाँ समाप्त हो गयी हैं, मेरे पास कोई

सहारा नहीं है और मैं कोई भी उपाय नहीं जानता हूँ। केवल तुम्हारी शरणमें आया हूँ। तुम्हीं मेरे आश्रय हो, रक्षक हो, शरण्य हो, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है। इसलिये मुझपर कृपा करो, अपनी शरणमें स्वीकार कर लो।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि जब मनुष्य इस प्रकार याचना करता है, तब मैं उसको समस्त भूतोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

'तवास्मीति च याचते' मैं आपका हूँ, इस प्रकारकी प्रार्थना करता है कि हे अशरणशरण! मैं आपका सेवक हूँ, आप मेरे स्वामी हैं, मैं शिष्य हूँ, आप मेरे गुरु हैं, मैं रक्ष्य हूँ और आप मेरे रक्षक हैं—इस प्रकारकी उपासना करता है। केवल एक बार प्रार्थना करनी है—मात्र एक बार याचना करनी है। श्रीरामजीके कान बहुत बड़े हैं, उनके अनन्त कान हैं, उनकी तरह सुननेवाला त्रैलोक्यमें और कौन हो सकता है, ***'चींटीके पग नूपुर बाजे सो भी साहब सुनता है।'*** सुनना तो श्रीरामजी ही जानते हैं। दुनिया तो बहरी है, बहरोंके सामने जाकर हम गिड़गिड़ाते हैं, परंतु हा हन्त! कोई नहीं सुनता है। क्या कभी श्रीरामजीसे कहा है? कि हे प्रभो! हे करुणामय! मैं तुम्हारा हूँ। अब भी चेत जाओ, श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें शरणागत होकर आर्त्तस्वरसे पुकारो—हे अशरणशरण! हे शरणागतवत्सल! हे अनाथनाथ! हे जगन्नाथ! हे सीतानाथ! मैं आपका हूँ। **'तवास्मीति च याचते'** बात बन जायगी। बिगड़ी सँवर जायगी। सँवारना तो साँवरा ही जानता है।

'तवास्मीति च याचते' का दूसरा भाव यह है कि हे रघुनन्दन! मैं संसारका नहीं हूँ। हे करुणामय! मैं तो केवल आपका ही हूँ। इस प्रकार जो याचना करता है, श्रीरामजी कहते हैं मैं उसे सभी प्राणियोंसे अभयदान दे देता हूँ। अभय मोक्षको भी कहते हैं अर्थात् मैं उसे मोक्ष, भक्ति, प्रेम सब कुछ प्रदान करता हूँ। अथवा समस्त भय प्रदान करनेवाले पदार्थोंसे अभयदान देता हूँ अथवा 'अभय' यहाँ उपलक्षणमात्र है भाव कि सब कुछ देता हूँ; क्योंकि ठाकुरजी जब उसकी शरणागति स्वीकार कर लेते हैं तब सब प्रकारसे उसका अभीष्ट पूर्ण कर देते हैं, उसका योगक्षेम श्रीरामजीको ही वहन करना पड़ता है। यहाँ श्रीरामजी तात्कालिक एवं आत्यन्तिक दोनों प्रकारके अभय प्रदानकी प्रतिज्ञा करते हैं।

श्रीरामजीका एक नाम अभय भी है। उनका नाम भी अभय है, उनका काम भी अभय है, स्वरूप भी अभय है और दान भी अभय है। जिसको अपने लिये भय होता है, वह दूसरेको अभय प्रदान नहीं कर सकता। इसलिये शरणागति भयरहित पुरुषकी ही होती है। भययुक्त या भयभीतके प्रति शरणागति नहीं होती है। श्रीरामचन्द्रजी सर्वथा निर्भय हैं, इसीलिये उनकी शरण ग्रहण की जाती है। वे अपने समस्त स्वरूपोंमें अभयदाता हैं।

'सर्वभूतेभ्यः' श्रीरामजी कहते हैं कि मैं अपने शरणागत भक्तोंको समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ, चाहे उसे कितने ही शक्तिशालीसे भय क्यों न हो—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥

(रा०च०मा० ४।६)

मेरा यह अभयदान समस्त प्राणियोंके लिये है। भाव कि मेरा शरणागत राजा हो, रंक हो, विद्वान् हो, मूर्ख हो, ब्राह्मण हो, चाण्डाल हो, सर्वज्ञ हो, बहुज्ञ हो, अल्पज्ञ हो, पशु हो, पक्षी हो, देवता हो, दानव हो—कोई भी प्राणी क्यों न हो? **'अभयं सर्वभूतेभ्यः'** सर्व प्राणियोंके लिये अभयदान देता हूँ और सब प्राणियोंसे अभयदान देता हूँ।

'एतद् व्रतं मम' यह मेरा व्रत है, भाव है कि सामान्य व्यक्ति भी कोई व्रत लेकर उसको निर्वाह करनेका प्रयत्न करते हैं, फिर मैं अपने व्रतको पूर्ण करनेका प्रयत्न क्यों नहीं करूँगा? अर्थात् मेरी प्रतिज्ञा कभी टल नहीं सकती। ***'सुनु अर्जुन परतिग्या मेरी यह व्रत टरइ न टारे।'*** **'व्रतं मम'** यह मेरा व्रत है; जैसे व्रत किसी अवस्थामें छोड़ा नहीं जा सकता और यदि छोड़ दिया जाय तो वह व्यक्ति दृष्ट और अदृष्ट—दोनों दृष्टियोंसे गिर जाता है। उसका जीवन लांछित हो जाता है। इसी प्रकार शरणागत-रक्षा मुझसे त्रिकालमें भी छोड़ी नहीं जा सकती।

चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीने अपने प्राणप्रिय पुत्र मुझको वनमें भेज दिया और प्राणोंतकका परित्याग कर दिया, परंतु अपना व्रत नहीं छोड़ा। उनका ही पुत्र होकर मैं अपने व्रतको कैसे छोड़ सकता हूँ। अतः **'एतद् व्रतं मम'** यह मेरा

व्रत है, इसका परित्याग नहीं किया जा सकता।

समुद्र-तटपर श्रीहनुमान्‌जी श्रीजाम्बवान्‌जी आदि महान् भक्तोंके सामने करुणामय श्रीरामचन्द्रजीने यह महान् प्रतिज्ञा की। युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरके भक्तगण श्रीरामजीकी इस प्रतिज्ञाको पढ़ करके, मनन करके, चिन्तन करके प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे। अपना यह व्रत सुनानेके बाद—**'एतद् व्रतं मम'** कहनेके पश्चात् ठाकुरजीने सुग्रीवके प्रत्युत्तरकी प्रतीक्षा नहीं की, तत्काल आज्ञा प्रदान कर दी। वह आज्ञा भी श्रीविभीषण-शरणागतिके प्रबल विरोधी श्रीसुग्रीवको ही दी—हे वानरश्रेष्ठ सुग्रीव! वह रावणानुज विभीषण हो, किं वा स्वयं रावण ही आ गया हो, तुम उसे ले आओ। मैंने उसे अभयदान दिया है—

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥

(वा०रा० ६।१८।३४)

× × × ×

उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥

(रा०च०मा० ५।४४)

× × ×

रावण क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखण्ड॥

(रा०च०मा० ५।४९ क)

[प्रेषिका—श्रीमती मधुरानी ज० अग्रवाल]

दानके अधिष्ठातृ-देवकी स्तुति

(श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)

चिरसुन्दर हे करुणानिधे जगदीश्वर दानमहत्त्वप्रभाम् । सचराचरविश्वमिदं प्रभो प्रकटीकुरुते हि सदा च ते॥
पवनाकुलफुल्लसुकोमलैः कुसुमैर्मधुगन्धमनोहरैः । कलकण्ठनिनादितकाननं तनुते ननु ते सुषमाधनम्॥
विमलोर्मिविलासमनोहरा कलनादवती गिरिनन्दिनी । महिमानमनन्तमहर्निशं तव गायति सागरगामिनी॥
गिरिसानुसुशोभितनीरदाश्चपला रुचिरा वरदा मुदा । वितरन्ति हि ते करुणान्वितं मधुराधिपते विमलामृतम्॥
खरवातविघूर्णितसागरे चिरभास्वरचण्डविभाकरे । परिभाति महाधरणीधरे तव सुन्दररुद्रविभा हरे॥
महनीयरुचिस्तव राजते सततं रजनीतिमिरेऽपि भोः । शशलाञ्छनतारकिताम्बरे प्रणताश्रितरक्षक वै विभो॥
तरुणारुणकान्तविभामयं गगनं पदपङ्कजसम्भवम् । तव दर्शयति प्रतिवासरं महिमान्वितमोहनवैभवम्॥
आत्मा क्रीडति ते समस्तजगतां जीवेषु नित्यं प्रभो । हे लीलामय विश्वरूप भगवन् अज्ञेय सर्वज्ञ भोः॥
कस्ते वर्णयितुं च दानमहिमा सम्यक् क्षमो जायते । बारम्बारमसंख्यनामगुणवन् तुभ्यं नमः श्रीपते॥

हे चिरसुन्दर करुणानिधि विश्वेश्वर! हे प्रभो! यह स्थावर-जंगमात्मिका विश्व-प्रकृति आपकी दान-महिमाका ही निरन्तर प्रकाश कर रही है। पवनाकुल पवनसे दोलायित-प्रस्फुटित सुकोमल कुसुमोंके द्वारा मधुर सुगन्धसे भरा हुआ तथा कोकिलोंसे संकूजित उपवन आपके सुषमावदानका ही विस्तार कर रहा है। सुचारु लहरी-माला-विभूषित, मनोहर, कलकलनिनादिनी, सागरकी ओर गतिशील नदी आपकी अपरम्पार महिमाका अहर्निश उद्‌गान करती रहती है। हे मधुराधिप प्रभो! पर्वतोंके श्रृंगों—शिखरोंपर संशोभित मेघमालाएँ बिजलियोंसे सुरुचिर तथा वरप्रद हो सानन्द आपकी निर्मल करुणासुधा वितीर्ण कर रही हैं। हे श्रीहरे! प्रखर वातोंसे घूर्णायमान सागरमें, चिरभास्वर प्रचण्ड सूर्यमें एवं सुविशाल पर्वतोंमें आपकी सुन्दर रुद्रविभा विभासित हो रही है। हे प्रणताश्रितरक्षक भगवन्! आपका महनीय शोभा-सौन्दर्य सदैव निशितिमिरोंमें तथा ताराओंसे मण्डित आकाशपर भी सन्निहित है। तरुणारुणमंजुल प्रभामय आपका पादपद्मोत्पन्न नभोमण्डल प्रत्यह आपके महिमामय सम्मोहन-वैभवोंका प्रदर्शन कर रहा है। हे लीलामय विश्वरूप भगवन्! आप अज्ञेयतत्त्व तथा सर्वान्तर्यामी हैं। सारे जगत्के सभी प्राणियोंके मध्य आपकी आत्मा विद्यमान हो लीला (पावन क्रीड़ा) कर रही है। हे श्रीपते (ईश्वर)! हे असंख्य नाम-यशोगुणशालिन्! आपको हमारा बार-बार नमन है। आपकी अपरम्पार दान-महिमाका वर्णन करनेमें कौन सक्षम—समर्थ हो सकता है!

सर्वश्रेष्ठ धर्म है दान

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

वेदोपनिषदों और इतिहास-पुराणोंमें दानकी विशिष्ट महिमाका वर्णन है। धर्मशास्त्रादि ग्रन्थोंमें भी दानविषयक अनेक प्रसंगोंका उल्लेख प्राप्त होता है। इतिहास और पुराणाश्रित हमारे काव्य-नाटकादि ग्रन्थोंमें दानसे सम्बन्धित अनेक सुन्दर प्रसंगोंका वर्णन है।

देवता स्वभावतः इन्द्रियनिग्रहवाले नहीं हैं; क्योंकि वे अमृत पी चुके हैं, भोगप्रिय हैं। मनुष्योंका स्वभाव है कि वे अपने पास जो वस्तुएँ हैं, जिन वस्तुओंको अपना समझते हैं, उन्हें वे अन्योंको देना पसन्द नहीं करते। धनका अर्जन करते हैं, स्वार्थकी भावना बढ़ती है, अपने सुख-सन्तोषको ही प्रधान मानते हैं, अन्योंको भी हमारे अर्जित धनका भाग थोड़ा दिया जाना चाहिये, ऐसी प्रवृत्ति कम होती है—यह संकुचित मानसिक वृत्ति है और असुरोंकी बात करें तो, वे दयाहीन स्वभावके होते हैं, अहमहमिका वृत्ति अधिक होनेसे उनके स्वभावमें क्रूरता अधिक होती है तथा तामसिक क्रियाओंमें उनका मन अधिक रमता है। 'बृहदारण्यकोपनिषत्' (५।२)-में इससे सम्बन्धित एक रमणीय आख्यान है। ब्रह्मासे उपदेश पानेके लिये देवता, मनुष्य और असुर तीनों गये। तीनोंको उन्होंने एक ही प्रकारका उपदेश दिया, वह है 'द-द-द'। तीनोंने अपनी प्रवृत्तिके अनुसार उसका अर्थ समझा। देवताओंने 'दम' (दाम्यत) यह अर्थ स्वीकार किया, मनुष्योंने 'दान (दत्त)' यह अर्थ स्वीकार किया और असुरोंने 'दया'(दयध्वम्) यह अर्थ स्वीकार किया। इससे यह स्पष्ट है कि मर्त्यलोकमें दानकी विशिष्टता और अपार महिमा है। सृष्टिके प्रारम्भमें मनुष्यको यह शिक्षा दी गयी है कि वह इसे अपने जीवनका एक प्रमुख विचार माने और सदाचारसम्पन्न हो। दूसरे शब्दोंमें दान सदाचारका एक अंश है।

तैत्तिरीय शाखाकी महानारायणोपनिषद्में दानकी बहुत प्रशंसा की गयी है। इस संसारमें सभी प्राणी दानको ही श्रेष्ठ धर्म मानते हैं, दानसे बढ़कर दुष्कर कार्य नहीं है अर्थात् उसका आचरण दाताके मनोवैशाल्य और स्थिरबुद्धिपर आधृत है। अतएव लोग दानकी प्रशंसा करते हैं—**'दानमिति सर्वाणि भूतानि प्रशꣳसन्ति दानान्नाति-दुश्चरं तस्माद्दाने रमन्ते॥'**

निःस्वार्थ भावसे जो दान देता है, उसको आनन्द होता है और जो दान स्वीकार करता है, उसको भी आनन्द प्राप्त होता है। दोनोंको आनन्द या सन्तुष्टि होती है तो समझना चाहिये कि परमेश्वर भी सन्तुष्ट हैं। 'महानारायणोपनिषद्' में ही कहा गया है—**'दानं यज्ञानां वरूथं दक्षिणा लोके दातारꣳ सर्वभूतान्युपजीवन्ति, दानेनारातीरपानुदन्त, दानेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति, दाने सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्माद्दानं परमं वदन्ति।'**

अर्थात् यज्ञोंमें दक्षिणाके रूपमें दान देना यज्ञका रक्षक जैसा है; संसारमें सभी प्राणी दातापर आधृत रहते हैं, दानसे द्वेष और शत्रुता दूर हो जाती है, दानसे शत्रु भी मित्र होते हैं, दानमें सब कुछ स्थित है, अतएव दानको सबसे श्रेष्ठ कहते हैं।

यज्ञमें दक्षिणाकी प्रधानता है। दक्षिणाके बिना यज्ञ कैसे? सभी सत्कर्मोंमें भी दक्षिणारूपमें दान देनेका विधान है। यह कहा गया है कि दक्षिणाके बिना किये गये कर्मका फल नहीं मिलता। अग्निहोत्र, इष्टि, सोमयाग, वाजपेय, गरुडचयन आदि यज्ञ-यागोंमें यजमानका यह कर्तव्य होता है कि वह पुरोहित या आचार्य और ऋत्विजोंको भूरि दक्षिणा प्रदानकर उनके मनको सन्तुष्ट करे। पूजा-पाठ करानेवाले पुरोहितको दक्षिणादानद्वारा सन्तुष्ट करना चाहिये। श्रीगणेशव्रत, श्रीसत्यनारायणव्रत आदि सत्कर्मोंमें पण्डितजीको दक्षिणाके साथ फल-फूल-ताम्बूल आदि भी दिये जाते हैं, भगवान्‌को जो भक्ष्य-भोग चढ़ाते (नैवेद्य निवेदन करते)

हैं, वे जितनी संख्याके हैं, उनमें आधा व्रत करानेवाले पण्डितको दिया जाना चाहिये, इस प्रकारका उल्लेख व्रत-विधान या कथाओंमें मिलता है। अतएव यदि श्रुति बताती है कि सभी प्राणी दातापर आधृत रहते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं।

किसी व्यक्तिके प्राण-प्रयाणके बाद भी अन्त्यक्रियाके समय नाना प्रकारके दक्षिणा-दानका विधान है। गो-भू-तिल-हिरण्य आदिके साथ-साथ शय्या-छाता-पादुका आदि दान देनेका विधान प्राचीनकालसे प्रचलित है।

श्रीमद्रामायणमें महर्षि वाल्मीकिजीने श्रीरामके गुणगणोंका गान करते हुए कहा कि वे 'साम-दान-भेद-दण्डचतुर' हैं। ये चतुरोपाय राजनीतिसे सम्बन्धित हैं। पूर्वकालमें राजा-महाराजा इनका प्रयोग करते थे। ऊपर उल्लिखित श्रुतिवाक्यसे इसका आभास मिलता है। जो शत्रु हैं, उनको जीतनेका एक उपाय दान है, दानसे द्वेष दूर होता है, दानसे शत्रु मित्र बन सकता है। दान सभी प्राणियोंको आकृष्ट करनेवाला है। इतिहासमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जो दानकी महत्ताकी घोषणा करते हैं। सन्तुष्ट देवी-देवता तथा नरेश—प्रभु अपने भक्त और सेवकोंको ऐसे दान 'वरदान' के रूपमें देते हैं। इस प्रकारके 'वरदान' से व्यक्ति और समष्टिको लाभ होता है।

महाभारतमें कर्णकी दानशीलताका विशद वर्णन है। कर्णको दानशूर कहते हैं, उनके समान दान देनेवाले उस युगमें कोई नहीं थे। इसलिये लोग आज भी उनका नाम उदाहरणके रूपमें लेते हैं। इस समय कलियुगमें कोई उदारप्रकृतिका दानी है तो उसकी कर्णसे तुलना करते हैं। कुछ कवियोंने यहाँतक कह दिया कि 'महाभारत कर्णसे रसपूर्ण' है।

कर्ण-जैसे व्यक्तियोंकी महानता किंवा दानशीलताकी याद करानेके लिये सम्भवतः यह उक्ति प्रचलित हुई—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥

सैकड़ोंमें कोई एक शूर होता है, हजारोंमें कोई एक पण्डित होता है, वाग्मिता सबमें नहीं होती, लाखोंमें कोई सुन्दर ढंगसे बोलनेवाला होता है और दान देनेवाला कोई होता है या नहीं होता है? होता है तो उँगलियोंमें गिननेयोग्य होगा।

पुराणोंमें शिबि और दधीचिकी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। राजा शिबिने प्राणिमात्रपर दया करनेके स्वभावके कारण अपने शरीरके अंगोंको काटकर दानमें दिया। इन्द्रके याचना करनेपर महर्षि दधीचिने अपनी रीढ़की हड्डी दानमें दी। कितना महान् त्याग है! दधीचिकी रीढ़की हड्डीसे बने वज्रायुधसे ही इन्द्र असुरोंपर विजय पा सके।

बलिकी दानशीलताके विषयमें स्कन्दपुराण, विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवत-जैसे ग्रन्थोंमें विशदरूपसे वर्णन प्राप्त होता है। बलि चक्रवर्ती भक्त प्रह्लादके पोते होनेसे उनमें भी विष्णुके प्रति श्रद्धा और भक्तिभाव था, जिसके कारण उनकी कीर्ति अनन्त हो गयी। गुरु शुक्राचार्यद्वारा मना करनेपर भी बलिने अपनी दानशीलतासे विचलित न होकर एक अद्भुत और स्वार्थरहित कार्य सम्पन्न किया।

महर्षि जैमिनिप्रणीत 'जैमिनिभारत' में भी श्रीकृष्ण-भक्तोंके चरितोंके विस्मयकारी प्रसंगोंमें भक्तिके साथ-साथ दानशीलताका भी वर्णन है। इससे यह विदित होता है कि भगवत्प्राप्तिमें दानका विशेष महत्त्व है।

महाकवि कालिदासने रघुवंशमें रघुमहाराजके चरितका वर्णन करते समय एक उल्लेखनीय प्रसंग बताया है। विश्वजित् यज्ञमें उन्होंने बड़ी उदारतापूर्वक अपना सब कुछ दानमें दिया था। उस समय वरतन्तुके शिष्य कौत्स अपने गुरुको दक्षिणा देनेके निमित्त राजासे धनकी याचना करने आये तो देखते क्या हैं—राजाके पास देनेयोग्य वस्तुएँ नहीं हैं। उनका कोशागार खाली है। कौत्सको राजासे माँगनेकी हिम्मत न हुई। वे वहाँसे चलनेको तैयार थे; पर उनके आगमनका कारण जानकर राजाने उन्हें नहीं जाने दिया। रातमें उन्होंने सोचा कि एकमात्र कुबेर बचे हुए हैं, जिनपर आक्रमण किया जा सकता है। उन्होंने सुबह होते ही आक्रमण करनेका निश्चय किया, परंतु रातमें कुबेरने उनके कोशागारमें धनराशिकी वृष्टि की। अब आक्रमणकी समस्या नहीं रही। राजाने समस्त
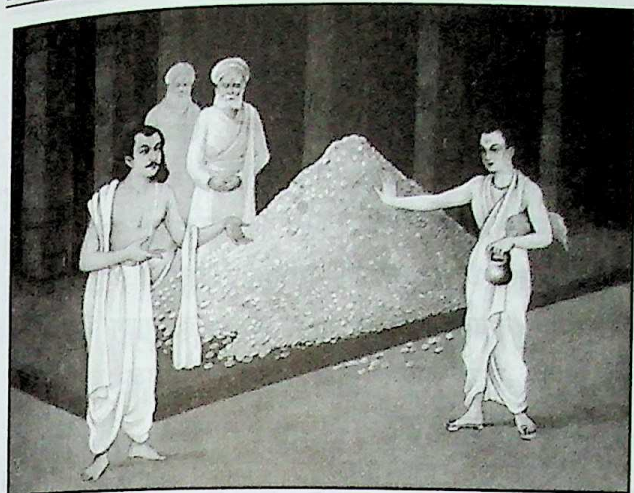
धनराशि कौत्सको दे दी। कौत्स उतना ही लेना चाहते थे, जितना उनको आवश्यक है, पर राजा नहीं माने, उन्होंने समस्त धनराशि ले जानेके लिये कौत्सको मनवाया। दान देनेवाले और लेनेवाले—दोनोंकी उदात्तताका कालिदासने वहाँ मार्मिक वर्णन किया है।

अनेक प्रकारके दानोंका जो उल्लेख किया गया है, उनमें निर्विवाद रूपसे प्राणदान महान् दान है। हर्षके 'नागानन्द' नाटकमें जीमूतवाहनके इस प्रकारके दानका आख्यान है, जो सर्पोंको गरुडसे बचाते हैं; उनके त्यागभावसे गरुड भी आकर्षित होकर अपने स्वभावको बदल देते हैं। महाकवि भासने 'कर्णभारम्' नाटकमें कर्णकी महानताका वर्णन करते हुए ठीक ही कहा है—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति॥

अर्थात् यज्ञ और दानसे अनिर्वचनीय विशिष्ट फल प्राप्त होता है। सीखी हुई विद्या अभ्यासके अभावसे भूल जाती है। बड़े-बड़े वृक्ष भी; जिनकी जड़ें मजबूत हैं, गिर जाते हैं। कुएँ आदिका पानी भी सूख जाता है, परंतु यज्ञ और दानकी ऐसी बात नहीं है। उसका फल नष्ट नहीं होता, वैसा-का-वैसा ही रहता है, यज्ञफलके जैसे दानके फलकी विशेषता है। दाताकी प्रशंसा होती है, दान-वैशिष्ट्यके आधारपर उसकी कीर्ति आचन्द्रार्क स्थिर रहती है।

श्रीभगवत्पाद शंकराचार्यके जीवन-चरितका वर्णन करते हुए मुनिवर्य विद्यारण्यजीने उग्रभैरवके प्रसंगमें लिखा है कि 'अनल्पदोषवाला', 'कल्पितसाधुवेषवाला' कोई कापालिक (उग्रभैरव) शंकराचार्यजीके पास आकर सशरीर कैलास जाकर वहाँ कैलासपतिके साथ सानन्द रहनेकी इच्छासे उन सर्वज्ञका सिर माँगता है। परोपकारकी महत्ता और जीवनकी क्षणिकता जाननेवाले शंकराचार्यजी यह कहते हुए कि—'जब मेरे शिष्य नहीं रहते और जब मैं समाधिस्थ रहूँगा, तब मेरा सिर ले जा सकते हो', ऐसा उसको वचन देते हैं। कापालिक उस समय आनन्दित होता है, परंतु विधि-विधानको कौन लाँघ सकता है? परमेश्वरके साथ छल-कपटकर कोई जीवित रह सकता है क्या? एकान्तमें समाधिस्थित शंकराचार्यजीके पास कापालिक तो अपना उद्देश्य पूर्ण करनेके लिये आता है, परंतु उसका आना श्रीनृसिंहमन्त्रोपासक पद्मपादको ज्ञात हो जाता है, तुरंत श्रीनृसिंहरूपसे वे उस दुष्टका वध कर देते हैं। इससे यह व्यक्त होता है कि दुष्टचित्तवाले दुष्टजनोंको अपनी दुष्टताका परिणाम भोगना ही पड़ता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें तीन प्रकारके दान बताये गये हैं—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥

इस व्यक्तिसे हमारा प्रयोजन सिद्ध होता है, इस प्रकारकी कोई भावना मनमें न रखकर देश-काल-पात्रके अनुसार जो दान दिया जाता है, वह सात्त्विक दान कहलाता है। प्रत्युपकारकी भावना और फलप्राप्तिकी अपेक्षासे जो दिया जाता है, वह राजस दान माना जाता है। पुण्यक्षेत्र, शुचिता, योग्यता आदिका विचार न करके जो दान दिया जाता है, वह तामस दान कहा जाता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस प्रकारके तामस दानसे विरत रहना श्रेयस्कर है। सामान्य व्यक्तियोंमें प्रायः राजसदानकी प्रवृत्ति रहती है। सर्वश्रेष्ठ दान तो सात्त्विक ही होता है।

फलकी अपेक्षाके बिना निर्मल मनसे जो दान दिया जाता है, वह उत्तरोत्तर श्रेयका मार्ग प्रशस्त करता है। दानमें श्रद्धाकी बहुत आवश्यकता है; अश्रद्धासे जो भी किया जाता है, वह व्यर्थ ही है। 'गीता' में कहा गया है—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

श्रद्धाहीन यज्ञ, दान और तपस्या इह और परमें 'असत्' होनेके कारण व्यर्थ ही हैं।

आधुनिक कालमें भी राजा-महाराजा, बड़े-बड़े धनवान् और विशाल चित्तवृत्तिवाले लोग अपनी दानशीलताका परिचय दे चुके हैं। मैसूरके महाराज कृष्णराज ओडेयर (चतुर्थ) (१८८२-१९४० एं०डी०) अपने समयके उदात्त प्रकृतिके नरेश माने जाते थे और लोग उनको राजर्षि कहते थे। उनके शासनकालमें भारतीय सद्विद्याका प्रसार हुआ और उनके दरबारमें विद्वानोंका बड़ा सम्मान होता था। उन्होंने श्रद्धापूर्वक गजाश्वादि अनेक दान दिये थे।

श्रीभगवत्पाद शंकराचार्यजीने कहा है कि धनार्जन त्यागके लिये होता है; 'मोहमुद्गर' में उन्होंने स्पष्ट रूपसे लिखा है—**'देयं दीनजनाय च वित्तम्।'**—दीनलोगोंको धन दिया जाना चाहिये अर्थात् पात्रापात्रको दृष्टिमें रखकर दान देना चाहिये। समाजके सब लोग सुखी रहें—हमारी इस कामनाका यह ज्वलन्त उदाहरण है। धर्मसे धनका अर्जन करना चाहिये और धर्मके लिये उसका विनियोग होना चाहिये। सुभाषित प्रसिद्ध है—

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च साधयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

'धर्ममाचरेत्' से ध्वनित है कि दान, दया आदि भावोंसे युक्त होना चाहिये। दानसे दयाका सम्बन्ध है। कृतयुगमें तपस्याकी, त्रेतामें ज्ञानकी, द्वापरमें यज्ञकी और कलियुगमें दानकी प्रशंसा होती है; कहा गया है—

कृते तपः प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानमेव च।
द्वापरे यज्ञमेवाहुः दानमेकं कलौ युगे॥

कलियुगमें ही दानसे प्राप्तव्यको प्राप्त किया जा सकता है। शक्ति-सामर्थ्य होते हुए भी जो दान नहीं करता और न अपने धनका उपभोग करता है, उसका धन तस्करादि ले जाते हैं या नष्ट हो जाता है; कहा गया है—

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

दान व्यष्टि और समष्टिका कल्याणकारी मार्ग है, जिसको अपनानेसे इहलोकका जीवन सुखमय और परलोक श्रेयस्कर होगा।

वेदवाणी

ऋग्वेद

दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते। (१।१२५।६)

'दानी अमरपद प्राप्त करते हैं।'

शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः॥ (१०।१८।२)

'शुद्ध और पवित्र बनो तथा परोपकारमय जीवनवाले होओ।'

न स सखा यो न ददाति सख्ये। (१०।११७।४)

'वह मित्र ही क्या, जो अपने मित्रको सहायता नहीं देता।'

पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ (५।५१।१५)

'हम दानशील पुरुषसे, विश्वासघातादि न करनेवालेसे और विवेक-विचार-ज्ञानवान्से सत्संग करते रहें।'

यजुर्वेद

तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा। (३१।१९)

'उस परमात्मामें ही सम्पूर्ण लोक स्थित हैं।'

भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनम्। (३०।१७)

'जागना (ज्ञान) ऐश्वर्यप्रद है। सोना (आलस्य) दरिद्रताका मूल है।'

वैश्वानरज्योतिर्भूयासम्। (२०।२३)

'मैं परमात्माकी महिमामयी ज्योतिको प्राप्त करूँ।'

सामवेद

यः सखा सुशेवः अद्वयुः। (६४९)

'जो उत्तम मित्र, उत्तम प्रकारसे सेवाके योग्य तथा अच्छा व्यवहार करनेवाला है, वह उत्तम होता है।'

ईडेन्यः नमस्यः तमांसि तिरः दर्शतः वृषा अग्निः सं इध्यते। (१५३८)

'जो प्रशंसनीय, नमस्कार करनेयोग्य, अन्धकारको दूर करनेवाला दर्शनीय और बलवान् है; उसका तेज बढ़ता है।'

अथर्ववेद

स एष एक एकवृदेक एव। (१३।५।२०)

'वह ईश्वर एक और सचमुच एक ही है।'

तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः। (१०।८।४४)

'उस आत्माको ही जान लेनेपर मनुष्य मृत्युसे नहीं डरता।'

शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त सं किर। (३।२४।५)

'सैकड़ों हाथोंसे इकट्ठा करो और हजारों हाथोंसे बाँटो।'

'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम'

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)

संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'दान' शब्द 'दा' धातुसे 'ल्युट्' प्रत्यय करनेपर अनादेशपूर्वक निष्पन्न होता है। संस्कृत-हिन्दीकोशमें इस शब्दके जिन अर्थोंका उल्लेख प्राप्त होता है, वे हैं—देना, स्वीकार करना, अध्यापन, सौंपना, समर्पण, उपहार, दान, पुरस्कार, उदारता, धर्मार्थ दानशीलता, धर्मार्थ पुरस्कार, मद, हाथीके मस्तकसे चूने वाला रस, रिश्वत, उपाय, काटना, बाँटना, रक्षा, पवित्रीकरण, स्वच्छ करना एवं अंग-स्थिति। भारतीय सनातन चिन्तन-परम्पराके अन्तर्गत दान शब्दके सम्प्रदान अर्थको अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। न केवल धर्मशास्त्रों, पुराणों, काव्यों, नीतिपरक ग्रन्थों, अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों, ब्राह्मणादि वैदिक साहित्य, धर्म, कल्प, श्रौत एवं गृह्यसूत्रोंमें ही इसे प्रतिष्ठा प्राप्त है, प्रत्युत इससे सम्बद्ध परवर्ती हेमाद्रि आदि विद्वानोंके द्वारा अनेक लब्धप्रतिष्ठ ग्रन्थोंकी रचना भी हुई है, जिन्हें विवाद आदिकी परिस्थितियोंमें प्रमाणभूत माना जाता है, जैसे—दानसागर, दानकल्पतरु एवं दानमयूखप्रभृति। दानको लोकमें प्रशासनके संचालनहेतु जहाँ राजाकी सामादि चार नीतियोंमें प्रमुख माना गया है, वहीं इसे बन्धु-बान्धव, कुटुम्बके सदस्यों, गुरु-शिष्य, पुरोहित-यजमान, परिजनों, मित्रों, शुभचिन्तकों एवं अन्य जनोंको संतुष्ट करने, अनुकूल बनाने, व्यवस्थाको सन्तुलित करने, पारस्परिक सन्तोष, सौहार्द, शान्ति एवं स्नेह-सम्बन्धके स्थापनका साधन भी स्वीकार किया गया है।

ऋतम्भराप्रज्ञाके तपःपूत मनीषियोंकी दृष्टिमें दान न केवल मान, यश, सम्पत्ति, पति, नारी, ऐश्वर्य, पुत्र-पौत्रादि ऐहिक उपलब्धियोंका आधार है, प्रत्युत इसके माध्यमसे पारलौकिक सिद्धियों तथा स्वर्ग, मोक्षकी प्राप्ति भी होती है। यही कारण है कि शब्दप्रमाणस्वरूप वेदोंमें भी दान-सम्बन्धी विधानोंका उल्लेख है। तदनुसार यदि पर्जन्य जलके द्वारा लोकको जीवन प्रदान करता है तो उषस्का प्रियतम सूर्य अपनी रश्मियोंसे सृष्टिकी रक्षा करता है। मण्डूक पर्यावरणको शुद्धकर लोक-जीवनको विशुद्धतर बनाता है तो अश्विनदेव संसारको स्वस्थ, अग्नि पवित्र, वरुण वर्षा, इन्द्र वृत्रादि अवांछित तत्त्वोंसे रक्षा एवं यम अनैतिकताके प्रतिबन्ध और सुचारु जीवनके निर्माणहेतु कठोर दण्डकी व्यवस्था करते हैं। इसीलिये यज्ञ-यागादिमें दानादिके द्वारा देवोंको सन्तुष्ट करने, अभीप्सित लक्ष्योंको पूर्ण करने, जड़-चेतनादिकी रक्षा करने तथा एतदर्थ लोगोंमें संस्कारोंका आधान करनेके उद्देश्यसे लघुसे लेकर बृहत्तर एवं स्वल्पसे लेकर सुदीर्घ कालखण्डोंतक सतत चलनेवाले यज्ञोंका विधान ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। वस्तुतः त्याग, समर्पण, निष्ठा, श्रद्धा, आत्मीयता, व्यष्टिका समष्टिकरण, वैश्विक भावना, जड़-चेतनमें अद्वैत-स्थापन एवं सर्वहित-सम्पादनप्रभृति लोकमंगलका भाव-समुच्चय ही यज्ञका उद्देश्य है। यहाँ दानविशिष्ट यज्ञोंमें मात्र किसी एक विश्वके हितकी चर्चा न होकर समूचे ब्रह्माण्डके कल्याणकी कामना की गयी है। इसीलिये यज्ञोंमें चन्द्र, मंगल, गुरु, बुध, शनि एवं तदतिरिक्त समग्र नक्षत्र-मण्डलका समावेश है—**'सर्वे ग्रहाः शान्तिकराः भवन्तु'** और इसीलिये ज्योतिष यज्ञोंका समय-निर्धारक तथा नक्षत्रादि विषयोंसे युक्त होनेके कारण वेदोंका नेत्र माना गया है—**'ज्योतिषामयनं चक्षुः।'** वह लोककल्याणकी ही भावना है, जिसके कारण पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें नारदजीद्वारा यह पूछे जानेपर कि शनिग्रहद्वारा प्रदत्त पीड़ाको दूर करनेके उपाय क्या हैं, महादेवजी महाराज दशरथ और शनिसे सम्बद्ध एक आख्यान सुनाते हुए कहते हैं कि—

एक ऐसा समय आया था, जब शनि कृत्तिकाके अन्तमें पहुँचकर रोहिणीका भेदन करनेवाले थे, जिसके परिणामस्वरूप वायुमण्डलके असन्तुलित हो जाने और संसारमें बारह वर्षोंतक दुर्भिक्ष होनेकी आशंका थी। सभी लोगोंने मिलकर महाराज दशरथसे रक्षाहेतु प्रार्थना की। अयोध्यानरेश महाराज दशरथने रोहिणीपृष्ठ सूर्यसे सवालाख

योजन ऊपर अगम्य नक्षत्र-मण्डलमें पहुँचकर अपने दिव्य
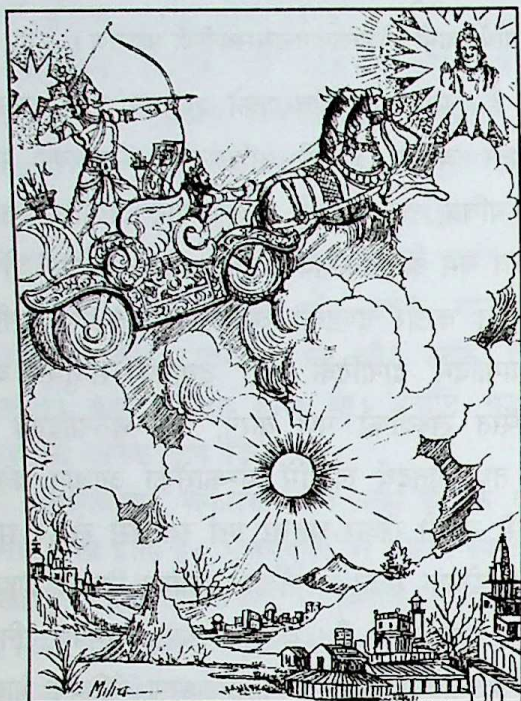
धनुष-बाणसे संधान किया। परिणामतः महाराजके पराक्रमपूर्ण साहससे प्रसन्न हुए शनिदेवने उन्हें तीन वर प्रदान किये—

१. जबतक नदियाँ, समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी स्थिर हैं, तबतक मैं रोहिणीका भेदन करके आगे नहीं बढ़ूँगा।

२. संसारमें कभी भी बारह वर्षोंतक अनवरत दुर्भिक्ष नहीं होगा।

३. यद्यपि देव, असुर, मानव, सिद्धादि सभीके जन्मचक्रमें मृत्यु, जन्मस्थान तथा चतुर्थ स्थानपर रहनेपर मैं जातकको कष्ट दे सकता हूँ, किंतु जो श्रद्धापूर्वक मेरी लौह प्रतिमाका शमीपत्रोंसे पूजन करके तिलमिश्रित उड़द, भात, लोहा, काली गौ या काला बैल ब्राह्मणको दान करेगा और शनिके दिन पद्मपुराणनिर्दिष्ट स्तोत्र* से मेरी पूजा और जप करेगा; उसे मैं कभी भी पीड़ा नहीं दूँगा।

ध्यातव्य है कि शनिद्वारा प्रदत्त वरदानके अनुसार तदुक्त तत्सम्बद्ध पूजन-सामग्रीसे पूजा करनेपर तथा तन्निर्दिष्ट वस्तुओंका दान करनेपर समग्र विश्व बारह वर्षोंके दुर्भिक्षसे मुक्त हो जाता है। अतः दान, जप, तप और यज्ञ-प्रभृतिकी व्यवस्था प्रभुने सृष्टिके मंगलार्थ की है। यह तथ्य प्रकृत प्रसंगमें महर्षि नारद और महादेवसे सम्बद्ध आख्यानके द्वारा भी प्रमाणित होता है। इसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार समय-समयपर अशरणशरण, अकारणकरुण, करुणावरुणालय सर्वेश्वर सच्चिदानन्दघन परमेश्वर—ब्रह्मा, शिव, राम, कृष्ण, वराह अथवा अन्य देव-देवीके रूपमें प्रकट होकर ऐहिक एवं आमुष्मिक द्विविध भयोंसे संसारकी सदा रक्षा करते हैं। वस्तुतः 'भीति' वहीं होती है, जहाँ आत्मीयता, अभेद, संश्लेष अथवा अद्वैत नहीं होता। वैयाकरण कहते हैं—**'अपायो विश्लेषः'** अर्थात् भीत और भीतिके हेतुमें जहाँ विश्लेष होता है, वहीं भय होता है। इसीलिये वहाँ अर्थात् भयके हेतुकी अपादान संज्ञा होती है—**'भीत्रार्थानां भयहेतुः।'** किंतु परमदयालु भगवान्‌की तो दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मैं सभी प्राणियोंकी भयसे रक्षा करूँगा। भय दो प्रकारके होते हैं—१. ऐहिक, २. पारलौकिक।

ऐहिकसे तात्पर्य है दरिद्रता, संततिहीनता, शत्रु, अयश, अप्रतिष्ठा, व्याधि, पति एवं पत्नीके अभाव तथा उनके होनेपर उनकी प्रतिकूलता, कार्यकी अपूर्णता, विफलता, किसीके क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, अवनति, प्रगतिहीनता, शक्तिहीनता, अधिकारविहीनता, इच्छाओंकी अपूर्ति एवं

---

* नमः कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च। नमः कालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नमः॥
नमो निर्मांसदेहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च। नमो विशालनेत्राय शुष्कोदरभयाकृते॥
नमः पुष्कलगात्राय स्थूलरोम्णे च वै पुनः। नमो दीर्घाय शुष्काय कालदंष्ट्र नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः। नमो घोराय रौद्राय भीषणाय करालिने॥
नमस्ते सर्वभक्षाय बलीमुख नमोऽस्तु ते। सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करेऽभयदाय च॥
अधोदृष्टे नमस्तेऽस्तु संवर्तक नमोऽस्तु ते। नमो मन्दगते तुभ्यं निस्त्रिंशाय नमोऽस्तु ते॥
तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च। नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नमः॥
ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे। तुष्टो ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात्॥
देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः। त्वया विलोकिताः सर्वे नाशं यान्ति समूलतः।
प्रसादं कुरु मे देव वरार्होऽहमुपागतः॥ (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ३४। २७—३५)

अन्य पापादिकर्मोंसे जन्य सांसारिक वस्तुओंसे प्राप्त भय।

इसी प्रकार आमुष्मिक भयसे तात्पर्य है स्वर्ग, मोक्षकी अप्राप्ति एवं पापोंके फलस्वरूप नरकजन्य यातनाओंकी प्राप्तिकी सम्भावना।

विचारणीय है कि लौकिक एवं पारलौकिक भयोंकी सूचीमें असंख्यासंख्य कारणोंका विपुल अम्बार है तथा सभी भयहेतुओंसे प्राप्त दुःखोंसे परेशान होकर प्रत्येकके पृथक्-पृथक् निरसनमें आनन्त्य एवं आत्यन्तिक दोष भी हैं। साथ ही सभीके द्वारा सभी कारणोंका निरसन सामर्थ्याभावात् सम्भव भी नहीं है। अतः मनमें ऐसे उपायकी अनुसन्धित्सा होनेपर 'दान' एवं प्रभुकी भक्ति ही ऐसे सरल मार्ग प्रतीत होते हैं, जिनपर चलकर सामान्यसे लेकर विशिष्ट, गरीबसे लेकर राजा-महाराजा एवं गृहस्थसे लेकर योगी-तपस्वीपर्यन्त सभी अपनी-अपनी स्थिति-परिस्थितिके अनुसार अपनी-अपनी सामर्थ्यसीमाके अन्तर्गत अपना-अपना गन्तव्य सुनिश्चित कर सकते हैं। यही कारण है कि भगवान् मनु, याज्ञवल्क्य, पुलस्त्य, नारद, भृगु, पराशर, शंख एवं गौतमादिसे लेकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश-पर्यन्त सभीने एक स्वरसे 'दान-अनुष्ठान' तथा भगवान्के चरणारविन्दमें अनुरक्तिको सभी प्रकारके भयोंसे मुक्तिका साधन स्वीकार किया है। इसीलिये शास्त्रोंमें बहुविध व्रतों, तीर्थों, पर्वों, कर्मकाण्डों, जप-तपादिपूर्वक 'दान' और भक्तिका विधान किया गया है।

यह सर्वविदित, सर्वसम्मत एवं निर्विवाद सिद्धान्त है कि सर्वविध 'दानविधानों' का पालन सभीके द्वारा सम्भव नहीं है। सम्भवतः इसीलिये गरीब-अमीर, ज्ञानी-भक्त, ब्राह्मण-क्षत्रिय, राजा-रंक, पण्डित-निरक्षर, स्त्री-पुरुष एवं देशकालपात्र और परिस्थितिके अनुसार सर्वविध जनसमुदायके लिये अनुष्ठान, दान और आराधनाकी व्यवस्थाके पृथक्-पृथक् निर्देश प्राप्त होते हैं। उदाहरणके लिये पद्मपुराणके अन्तर्गत जहाँ अन्नदान, जलदान, तडाग-निर्माण, वृक्षारोपण और संवत्सर-दीपदानकी महिमा और विधियाँ वर्णित हैं, वहीं भविष्योत्तरपुराणमें विद्यादान, अग्नीष्टिका, प्रपा (प्याऊ/पौंसला), तुलापुरुष, हिरण्यगर्भ और ब्रह्माण्डदानप्रभृतिके महत्त्व, फल और विधियोंको भी रेखांकित किया गया है। जैसे—जलपूर्ण घटदानके लिये कहा गया है—

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
अस्य प्रदानात् सफला मम सन्तु मनोरथाः॥

(भविष्यपुराण, उत्तरपर्व १७२। २१)

मनीषियोंका मत है कि इस मन्त्रके पाठपूर्वक जलपूर्णघटका दान करनेसे अथवा यदि यह न हो सके तो ग्रीष्मऋतुमें चार मास नित्य पीपलका सिंचन करनेसे तथा **'अश्वत्थरूपी भगवान् प्रीयतां मे जनार्दनः'** कहकर प्रदक्षिणापूर्वक नमस्कार करनेसे उसके सभी पाप दूर हो जाते हैं; क्योंकि जैसे सभी नदियाँ सागरमें मिलती हैं; वैसे ही सभी प्रणाम, भक्ति और दान प्रभुको प्राप्त होते हैं और उसीसे सभीकी रक्षा भी होती है।

तपस्वी विद्वानोंने प्रत्येक जनसमुदायकी रुचि एवं सामर्थ्यको ध्यानमें रखते हुए बहुविध दानका विधान किया है, जैसे—यदि कहीं वाग्दान, विद्यादान, कन्यादान, पिण्डदान, कल्पवृक्षदान, कल्पलतादान, गजरथदान, अश्वरथदान, कालपुरुषदान तथा सप्तसागरदानकी विधियों और फलोंका निर्देश दिया गया है तो अन्यत्र महाभूतघटदान, शय्यादान, मृतशय्यादान, आत्मप्रतिकृतिदान, हिरण्याश्वदान, हिरण्याश्वरथदान, कृष्णाजिनदान, हेमहस्तिरथदान, विश्वचक्रदान और यहाँतक कि नक्षत्रदान, तिथिदान, वराहदान, पर्वतदान, तिलशैलदान, सुवर्ण और गुडपर्वत-दान तथा लवणाचलदानका भी विधान देखा जा सकता है। धर्मशास्त्रके विधायक भगवद्रूपात्मक ऋषियोंको विश्वके सर्वविध समाजका भलीभाँति ध्यान था। उन्हें यह ज्ञात था कि स्वर्णराशि किंवा हिरण्यगर्भके दानसे दाता शत्रुओंको जीतनेवाला और जम्बूद्वीपका राजा बन जाता है (भविष्यपुराण अध्याय १७६)। किंतु यह दान सामान्यजनके लिये सम्भव नहीं है। इसीलिये सामान्यजनके लिये गरीब-असहायको भोजन कराना, पिपासु पथिकको जल पिलाना, स्वयं सदाचारका पालन करना, जप-तप करना तथा सत्य बोलना—दानसदृश ही फलदायी माने गये हैं। प्रपादान करनेवालेके लिये तो यहाँतक कहा गया है कि—

प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता॥
अस्याः प्रदानात् पितरस्तृप्यन्तु च पितामहाः।

(भविष्यपुराण, उत्तरपर्व १७२। ९-१०)

अर्थात् इस प्रपा (प्याऊ)-को मैंने सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये बनवाया है। इसके दानसे मेरे पितर तृप्त हो जायँ।

सामान्यतया विद्वान् बहुत लक्ष्मीवान् नहीं होता। इसलिये वह राजाकी भाँति भूमि, पर्वत आदिका दान भला कैसे कर सकता है? इसीलिये विद्यादानका माहात्म्योपस्थापन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरकी जिज्ञासाओंके समाधान-प्रसंगमें कहते हैं कि जो व्यक्ति विद्यादान करता है, उसे सहस्र वाजपेय यज्ञ, प्रतिदिन गौ, भूमि, स्वर्ण और वस्त्रदानका फल प्राप्त होता है। इसी तरह तुलापुरुष-दानका दाता भयंकर पापोंसे मुक्त हो जाता है। किंतु जिनके पास अपार सम्पत्ति नहीं है, ऐसे जन यदि सत्परायण होकर जप-तप भी करते हैं तो उन्हें भी पारमार्थिक पुण्य अवश्य मिलता है। यथा—

सत्यमेव परो मोक्षः सत्यमेव परं श्रुतम्।
सत्यं देवेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम्॥

× × × ×

सत्ये देवाः प्रतीयन्ते पितरो ऋषयस्तथा।
सत्यमाहुः परं धर्मं सत्यमाहुः परं पदम्॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २८। २०—२६)

अन्यत्र तपको भी दानकी भाँति व्यक्तिको मोक्षका दाता स्वीकार किया गया है, अर्थात् जिनके पास धन आदिके दानकी व्यवस्था नहीं है, उनकी रक्षा तपोधर्म करता रहेगा—'**धर्मो रक्षति रक्षितः।**' पद्मपुराण, उत्तरखण्डमें तपका वर्णन करते हुए कहा गया है—

तपो हि परमं प्रोक्तं तपसा विन्दते फलम्।
तपोरता हि ये नित्यं मोदन्ते सह दैवतैः॥

(२८। ३५)

भविष्यपुराण, उत्तर पर्वके अध्याय २०५ में युधिष्ठिरकी जिज्ञासाकी शान्ति और सर्वजनकी रक्षाके उद्देश्यसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वर्णाश्रमके आचार एवं धर्मका स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि तप, व्रत और दानके मूलमें प्रभुकी उपासना ही होती है, जो सदाचारीके लिये फलप्रद होती है, आचारहीनको नहीं, क्योंकि—

कपालस्थं यथा तोयं श्वदृतौ वा यथा पयः।
दुष्टं स्यात् स्थानदोषेण वृत्तहीने तथाशुभम्॥

इसलिये—

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति प्रयाति च।
अहीनो वित्ततो हीनो वृत्ततस्तु हतो हतः॥
एवमाचारधर्मस्य मूलं राजन् कुलस्य च।
आचाराद्धि च्युतो जन्तुर्न कुलीनो न धार्मिकः॥
न कुलेनोपदिष्टेन विपुलेन दुरात्मनाम्।
कृमयः किं न जायन्ते कुसुमेषु सुगन्धिषु॥
हीनजातिप्रसूतोऽपि शौचाचारसमन्वितः।
सर्वधर्मार्थकुशलः स कुलीनः सतां वरः॥
न कुलं कुलमित्याहुराचारः कुलमुच्यते।
आचारकुशलो राजन्निह चामुत्र नन्दते॥

(२०५। १८—२३)

दानशीलता भी सदाचारका अभिन्न अंग है, जिसका शुचिता और व्रतादिके साथ अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इस प्रसंगमें पद्मपुराणके अन्तर्गत व्यक्ति, समाज और राष्ट्रके उत्थानहेतु उसके दैनिक-जीवनसे सम्बद्ध आचार-पालनकी सुदीर्घ सूची भी प्रस्तुत की गयी है। सदाचार ऐश्वर्योंका जनक, आयुका वर्धक, दोषापहारक, ज्ञानवर्धक, मंगलाधायक एवं स्वर्गप्रदायक है।

वेदोंमें संकेतात्मक रूपसे उक्त तथ्योंको सभीके भयोंको दूर करनेके लक्ष्यसे पुराणोंमें उपबृंहित करते हुए बहुविध व्रतों, दानों और यज्ञोंके विधिविधानों और उनके समयका निर्धारण प्रभुरूप ऋषियोंद्वारा किया गया है। शास्त्रोंमें भगवान्, यमराज, शनि, शिव, ब्रह्मा और विष्णु भी भक्तोंको दान करते हैं, जिसे वरदान कहा जाता है। यदि भक्त नचिकेता पिताके हितचिन्तन एवं शास्त्रके नियमानुपालनहेतु न केवल स्वस्थ गायोंका दान करानेकी इच्छा करता है, अपितु एतदर्थ स्वयंको यमराजके लिये समर्पित भी कर देता है, तो दानी एवं त्यागशील नचिकेताकी तपश्चर्यासे यम इतने प्रभावित होते हैं कि उसके द्वारा सांसारिक वस्तुओंके परित्यागके पश्चात् भी उसे वे नचिकेताग्नि आदि वरदान प्रदान करते हैं। इसी प्रकार इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न महाराज रघुकी कथा भला कौन नहीं जानता, जो त्यागी गुरु वरतन्तुकी दक्षिणाहेतु द्वारपर आये हुए ब्रह्मचारी कौत्सको स्वर्णमुद्राएँ देनेके लिये कुबेरपर चढ़ाई करनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। कुबेर रात्रिमें रघुके घर अपार स्वर्णमुद्राएँ बरसाते हैं, सभी मुद्राएँ रघु कौत्सको देना चाहते हैं, किंतु ब्रह्मचारी कौत्सने गुरुके लिये देय स्वर्णमुद्राओंके अतिरिक्त अन्य कुछ भी स्वीकार

नहीं किया। इसी रघुकुलकी प्रशंसा करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है कि—

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
जिन्ह के लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं॥

(रा०च०मा० १।२३१।५, ७-८)

रघुवंशी राजाओंके द्वारसे भिक्षुक यथेच्छ दानके बिना कभी वापस नहीं जाता; क्योंकि दानादिद्वारा प्रभु सभीके भयको दूर करते हैं, ऐसी उनकी प्रतिज्ञा है।

यह वह वैदिक सनातन संस्कृति है, जहाँ पवित्र, स्वयंको पवित्रतर बनानेहेतु दान और गोसेवा करते हैं, जैसे—राम, रघु, श्रीकृष्णचन्द्र, शिबि, अज, दधीचि तथा राजा दिलीप आदि। यही कारण है कि पुराणों एवं अन्य प्रामाणिक ग्रन्थोंमें कहीं राजा हरिश्चन्द्र और सनत्कुमारका उपाख्यान वर्णित है तो कहीं त्रिस्पृशाव्रतपूर्वक दानसे गंगा स्वयं शुद्धिको प्राप्त होती हैं (पद्मपुराण ३५।६९—७२)। अपनी दानशीलताके कारण महाराज मोरध्वज, नृग, बलि आदिका स्थान यदि सर्वोपरि है तो विद्यादानी भगवान् परशुराम, द्रोणाचार्य, सांदीपनि, वसिष्ठ, वाल्मीकि और कृपाचार्यकी कीर्ति आज भी जन-जनके मुखका अलंकार है। प्रभुके दरबारमें दानकी कोई सीमा नहीं है, वे सद्भावना, सदाचार और भक्तिके पक्षधर हैं। वे कभी शबरीके जूठे बेर और विदुरके शाकपर प्रसन्न हो जाते हैं और कभी अहंमूर्ति राजा दुर्योधनके आतिथ्यको भी अस्वीकार कर देते हैं तथा कभी नीतिशिक्षाके ग्रहणार्थ न केवल लक्ष्मणको रावणके पास भेजते हैं, प्रत्युत उसकी विद्याका सम्मान करते हुए सेतुबन्धके अवसरपर रामेश्वरकी स्थापनाके समय रावणका आदर भी करते हैं। ध्यातव्य है कि भगवान्‌के इन आचारोंका अनुकरण प्रत्येक भयका विनाशक है।

यमके भयसे मुक्तिहेतु आप एक ओर श्रीमद्भागवत-सदृश अपनी वाङ्मयी मूर्तिकी लोकमें स्थापनाकर समूची सृष्टिके उद्धारकी व्यवस्था करते हैं तो दूसरी ओर उद्धवके ज्ञानाहंकारको सर्वथा विगलित करनेके उद्देश्यसे उन्हें अपने प्रति सर्वतोभावेन समर्पित गोपियोंके पास भेजते हैं। त्याग, करुणा, शील, सेवा, स्नेह, सौहार्द, परोपकार, धर्म और सुसंस्कार आदि सभी भयरक्षात्मक गुणोंका समुच्चयात्मक रूप है दान। किसी भी दानशीलके अन्तर्गत इन गुणोंका होना आवश्यक है अथवा यों कह सकते हैं कि इन गुणोंके अभावमें व्यक्ति सच्चा दानी बन ही नहीं सकता। यदि बनता भी है तो कठोपनिषद्के उशना वाजश्रवस्‌की भाँति चर्चाका विषय बन जाता है। तात्पर्य यह कि दानशीलता मन और कर्मकी निष्कपटता, निष्कलुषता, उदारता और पवित्रताकी अपेक्षा रखती है, इसके बिना वह अपूर्ण है।

भारतीय परम्परामें न केवल उशना वाजश्रवस् ही चर्चास्पद होते हैं प्रत्युत प्रतिदिन एक लाख गायोंका दान करनेवाले महाराज नृगको भी सामान्य दोषके कारण गिरगिट बनना पड़ता है। जबकि बाल्यावस्थामें ही अपनी भावनाओंकी निष्कपटता, भक्ति और प्रेमसे प्रभुके पाद-पद्मोंमें समर्पित होनेवाले नचिकेता, प्रह्लाद और ध्रुवसदृश पात्र भी न केवल सद्‌गतिको प्राप्त करते हैं, प्रत्युत यावच्चन्द्रदिवाकरौ समूची सृष्टिके आदर्श भी बन जाते हैं। परमार्थतस्तु समग्र संसारका ऐश्वर्य जिससे उत्पन्न हुआ है, उसी प्रभुको उन्हींका ऐश्वर्यांश प्रदानकर हम उन्हें भला प्रसन्न कैसे कर सकते हैं? यदि प्रभु मात्र धनके दानपर प्रसन्न होते तो अहल्या, शबरी, ध्रुव, हनुमान्, जाम्बवान्, सुग्रीव, अंगद, विभीषण, अनेक ऋषि-मुनि और गृध्र जटायुपर वे कैसे प्रसन्न होते? क्योंकि इनके पास तो कुछ भी नहीं था। हनुमान्‌जी विभीषणसे भगवान् श्रीरामके स्वभावका परिचय कराते हुए कहते हैं—

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

(रा०च०मा० ५।७।७-८, ५।३३।७, ५।७)

यही कारण है कि धर्मग्रन्थोंमें भगवान्‌के आदेशानुसार कहीं चौबीस एकादशी व्रतों, द्वादशी, सप्तमी और जयन्ती आदि अष्टमी व्रतोंका विधान दृष्टिगोचर होता है तो कहीं बहुविध दानोंकी परम्परा। किंतु यह सुनिश्चित है कि जिस प्रकार समूची सृष्टि आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन परमेश्वरसे निकली है और उन्हींमें विलीन हो जाती है **'यस्माज्जातं जगत्सर्वं तस्मिन्नेव प्रलीयते'** उसी प्रकार सभी धर्मशास्त्र,

व्रत, नियम, यज्ञ, जप, तप आदि उसी प्रभुकी संरचनाएँ हैं। सभी शास्त्र उन्हींके अंश हैं। उदाहरणार्थ—यदि भारतीय काव्यशास्त्रोंपर ही विचार करें तो प्रतीत होगा कि वही काव्य महाकाव्य है, जिसका नायक उदात्त, गुणयुक्त और शौर्यसम्पन्न हो तथा अंगीरस वीर या शृंगारमेंसे कोई एक हो। यहाँ शौर्यसम्पन्नतासे तात्पर्य वीरता (युद्धवीरता, दयावीरता, धर्मवीरता तथा दानवीरता आदि)-से है। ध्यातव्य है कि इस प्रसंगमें सूक्ष्मतासे विचार करनेपर नायककी युद्धवीरता, दयावीरता, धर्मवीरता और दानवीरता सभी परस्पर अभिन्न प्रतीत होते हैं; क्योंकि जो दानशील होगा अर्थात् राष्ट्र, समाज या मानवताकी रक्षाके लिये अपने तन, मन, धन और यहाँतक कि प्राणोंको न्यौछावर कर देनेवाला होगा, वह निश्चितरूपसे समग्र सृष्टिके प्रति दयालु, धर्ममर्यादाका रक्षक और युद्धकलामें प्रवीण होगा। भारतीय संस्कृतिने ऐसे ही व्यक्तित्वोंको अपना आदर्श स्वीकार किया है, जैसे—भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीराम एवं महाराज युधिष्ठिर आदि—'**पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः....**' इत्यादि।

अपनी विचारसरणिमें भगवान्ने स्वयं अपने सभी अवतारोंमें यज्ञयागादि, दुष्ट-संहार, सज्जन-रक्षा तथा आचारशीलताको महत्त्व दिया है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने यदि लोकरक्षाके लिये अश्वमेधादि यज्ञोंका आयोजन किया तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें स्वयं ब्राह्मणोंका पाद-प्रक्षालनकर लोकरक्षार्थ आदर्श प्रस्तुत किया। आपने अवतार ग्रहणकर कभी पृथ्वीका उद्धार किया, तो कभी भक्तोंकी रक्षा की, उन्हें प्राणदान दिया। जटायुसदृश गृध्र पक्षीकी सद्भावनाओंको देखते हुए आपने उसे न केवल मुक्ति प्रदान की, प्रत्युत उसे अपने पिता दशरथके समकक्ष स्थान दिया। आपने अपनी उदारताके कारण पशु-पक्षी, देव-किन्नर, गन्धर्व, मानव, राक्षस सभीकी रक्षा करते हुए अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया। यहाँतक कि हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण, कंस, दन्तवक्त्र, शिशुपाल, कुम्भकर्ण आदि सभीको मुक्ति प्रदानकर नरक जानेसे उनकी रक्षा की; उन्हें नरकके भयसे मुक्त किया; क्योंकि नकारात्मक ढंगसे ही सही; वे भी आपके भक्त थे, आपका स्मरण किया करते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी विनयपत्रिकामें कहते हैं—

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं॥

सम्पूर्ण युद्ध और वैरके बावजूद आप लंकाका राज्य विभीषणको, किष्किन्धाका सुग्रीवको और अयोध्याका राज्य भरतको देते हैं, राज्य स्वयं कभी स्वीकार नहीं किया। न केवल राम, कृष्णके रूपमें ही, प्रत्युत भगवान् शिवके रूपमें भी आपकी दानशीलता, सर्वहितचिन्तन एवं भयसे भक्तकी रक्षा अद्भुत है। तुलसीदासजी कहते हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकनको नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी॥

इस प्रकार वेदसे लेकर पुराणादि सभी शास्त्रोंके आख्यानों, सिद्धान्तों एवं उपदेशादिके माध्यमसे संसारको विविध प्रकारकी शिक्षाएँ प्रदान करते हुए भगवान् समूचे ब्रह्माण्डकी सर्वविध भयोंसे रक्षा करते हैं। यह सृष्टि उन्हीं प्रभुके कृपाकटाक्षके परिणामस्वरूप सुरक्षित है। यदि उनकी उपासना येन केनापि प्रकारेण की जाय तो अपनी प्रतिज्ञाके अनुरूप प्रभुकी अहैतुकी कृपा हम सभीके ऊपर सतत बनी रहती है। किंतु आवश्यकता है उनकी कृपाको देखने-समझनेके लिये एक सुयोग्य गुरुकी, जिसके बिना वह दिव्य दृष्टि किसीको प्राप्त नहीं होती, जिससे वह भगवत्कृपाका अवलोकन कर सके। अतः एक ओर जहाँ भगवान् अपने शक्तिस्वरूपके माध्यमसे यह बोध कराते हैं कि '**अस्माकं क्षेमलाभाय जागर्ति जगदम्बिका**', वहीं वे अपनी इस प्रतिज्ञाको बार-बार दोहराते हैं और इसका भक्तजनको बोध भी कराते रहते हैं कि '**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम**'; क्योंकि जब वे राक्षस, किन्नर, गन्धर्व तथा अपने साथ वैर करनेवाले लोगोंतकको स्वयंद्वारा एवं वेदशास्त्रादिनिरूपित सिद्धान्तों और शिक्षाओंके माध्यमसे अभय प्रदान करते हैं तो भला उनके भक्तजनको संसारमें कौन भयभीत कर सकता है? भागवतमें तो उनके नामका भूलसे भी स्मरण करनेवाला आत्मदेव ब्राह्मण मोक्षको प्राप्त करता है। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् अपनी प्रतिज्ञाके अनुरूप सभी प्राणियोंको अभय प्रदान करनेहेतु सतत कृतसंकल्प हैं और वे उसका अनवरत पालन भी करते हैं।

दानस्वरूपविमर्श

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)

देय वस्तु या व्यक्तिका पात्रके प्रति समर्पण 'दान' है। शोषणविहीन व्यक्ति और समाजकी संरचनाकी आधारशिला 'दान' है। दानशीलकी सद्‌गति तथा मुक्ति सुनिश्चित है। विचारशीलके द्वारा अनुष्ठित यज्ञ, दान और तप पवित्रकारक हैं। यह तथ्य '**यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥**' (श्रीमद्भगवद्गीता १८।५)—इस भगवद्वचनके अनुशीलनसे सिद्ध है। कर्मासक्ति, फलासक्ति, अहंकृतिको शिथिलकर धृत्युत्साहपूर्वक यज्ञ, दान, तप और अनशनादि व्रतके आलम्बनसे ब्रह्मवेदनकी तीव्र इच्छाका उदय सुनिश्चित है—'**तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन...।**' (बृहदारण्यक ४।४।२२)

ब्रह्मजिज्ञासुके प्रति ब्रह्मविद्याका दान सर्वोत्कृष्ट दान है। उससे शाश्वत अभयपदरूप मोक्षकी समुपलब्धि सुनिश्चित है।

सर्वपोषणकी सनातनविधा 'दान' है। सनातन धर्ममें इष्टापूर्तकर्मोंके द्वारा क्रमशः देवादि ऊर्ध्वलोकनिवासियोंके एवं मर्त्यलोकनिवासियोंके पोषणकी विधा प्रशस्त की गयी है। तद्वत् श्राद्ध, तर्पण, बलिवैश्वदेव आदि कृत्योंके द्वारा स्वयम्भू, मनसिज, जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्जसंज्ञक सर्वविध प्राणियोंके पोषणका मार्ग प्रशस्त किया गया है।

अन्न, जल, प्रकाश, पवन, आकाश, वस्त्र, आवास, शिक्षा, रक्षा, स्वास्थ्य, उत्सव-त्योहार, सेवा, न्याय तथा विवाहकी प्रशस्त परिपाटीके परिपालनके द्वारा सर्वलोक-परितोषकी सनातनविधा 'दान' है। सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवापरायण और स्वच्छ व्यक्ति एवं समाजकी संरचनाकी प्रथा 'दान' है।

वेदान्तप्रस्थानके अनुसार प्राणिमात्रकी सच्चिदानन्दरूपता सिद्ध है। यह जगत् सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरकी अभिव्यक्ति और उनका अभिव्यंजक संस्थान है। अतएव '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' के अनुरूप इसकी सुव्यवस्था आवश्यक है। तदर्थ मृत्यु, मूर्खता और दुःखके निवारणका उद्योग कर्तव्य है। आत्माको अखण्ड, अमृत, विज्ञान और आनन्दस्वरूप जान लेनेपर मृत्यु, मूर्खता तथा दुःखका आत्यन्तिक उच्छेद सुनिश्चित है।

व्यावहारिक धरातलपर सबको जीवनोपयोगी, बोधोपयोगी एवं सुखोपयोगी सामग्री प्रदान करना 'दान' है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष तथा तपके द्वारा शोषणरहित स्वस्थजीवनकी समुपलब्धि सम्भव है। स्वाध्यायके द्वारा सुबुद्धताकी समुपलब्धि सम्भव है। ईश्वरप्रणिधानके द्वारा सुखकी समुपलब्धि सम्भव है। अतः सबको स्वावलम्बी, सुबुद्ध और सुखी बनानेका उद्योग दानकी प्रशस्त परिभाषा है।

भगवन्नामसंकीर्तन और भगवत्कथामृत-वितरणके द्वारा तरु-लता-गुल्मादिमें भी अद्भुत चेतना और सुखका संचार सुनिश्चित है। उन्हें उनके अनुरूप अन्न, जल देकर उनकी जीवनीशक्तिका पोषण भी सुनिश्चित है। उन दानी वनस्पतियोंके परिपक्व स्वरूपके सेवनके द्वारा जीवनयापनमें मनुष्य अधिकृत है।

एक व्यक्ति जीवनमें कम-से-कम दस व्यक्तियोंको सुसंस्कृत, सत्यसहिष्णु, स्वावलम्बी, सुबुद्ध और सुखी बनानेका व्रत ले और उसका दक्षतापूर्वक पालन करे तो वैदिक वाङ्मयमें सन्निहित 'दान' के अद्भुत माहात्म्यका व्यावहारिक धरातलपर प्रत्यक्ष दर्शन सुलभ होना सुनिश्चित है।

पोषणके उपयुक्त विहित सामग्री 'देय' है। उसका प्रदान 'दान' है। निज वासनाकी निवृत्ति एवं स्वयंकी तथा अन्योंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिकी स्वस्थविधा 'दान' है।

भूख-प्यास, सर्दी तथा गर्मीरूप दो द्वन्द्वोंकी प्राप्ति तथा व्याप्ति स्थूल शरीरकी प्रधानतासे है। हर्ष-विषाद, हानि-लाभ, मान-अपमानादि द्वन्द्वोंकी प्राप्ति एवं व्याप्ति सूक्ष्मशरीरकी प्रधानतासे है। परम्पराप्राप्त निसर्गसिद्ध अभिमत अन्न, जल, वस्त्र, भवन, छाता, जूता, प्रकाश, पवनादिके द्वारा भूख-प्यास एवं सर्दी-गर्मीका शमन सम्भव है। अतः व्यक्तिगत तथा सामाजिक धरातलपर इनकी व्यवस्था 'दान' है। हर्ष-विषाद, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि द्वन्द्व

अविवेककी प्रगल्भतासे प्राप्त हैं, अत: इनके निवारणके लिये विवेक-प्रापक एवं वर्द्धक सत्संग, स्वाध्यायादिका प्रबन्ध 'दान' है।

जीवोंके जन्म-मरणादि संसृतिचक्र अनादि अविद्या और तत्सम्भव अन्यमें अन्य बुद्धिरूप अध्यासके कारण है, अत: अविद्या और अध्यासका निवारण सर्वोत्कृष्ट 'दान' है।

वस्तु और व्यक्तिका आदान-प्रदान व्यवहार है। इनकी शुद्धिसे परमार्थसिद्धिका मार्ग प्रशस्त होता है। इस दृष्टिसे स्वयंके और सबके भरण-पोषणकी स्वस्थ तथा प्रशस्त विधा 'दान' है।

यद्यपि आदान और प्रदान दोनोंमें 'दान' की अनुगति है, तथापि 'प्रदान' के अर्थमें ही 'दान' की अधिक प्रसिद्धि है।

'आदान' ग्रहण है। 'प्रदान' त्याग है। ज्ञानेन्द्रियोंसे शब्दादिविषयोंका आदान होता है। कर्मेन्द्रियोंसे शब्दादि-विषयोंका प्रदान होता है। यह तथ्य सर्वानुभवसिद्ध है। उदाहरणार्थ श्रोत्रसे शब्दका ग्रहण एवं वाक्से शब्दका विसर्जन दैनिक कृत्य है।

अन्नदान, जलदान, तेजोदान, गोदान, कन्यादान, अभयदानादिकी वैदिकवाङ्मयमें पर्याप्त विवेचना है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका आदान भी श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा और नासिका एवं इनके अधिपति दिक्, वायु, सूर्य, वरुण और अश्विनीकुमारोंके द्वारसे जीवको इनका प्रदान ही है।

अतएव अभ्युदय और नि:श्रेयसकी सिद्धिमें प्रयुक्त तथा विनियुक्त आदान-प्रदान 'दान' है।

देश, काल, वस्तु तथा व्यक्तिके दानमें देश, काल, वस्तु तथा पात्रकी देयरूपताका ध्यान आवश्यक है। क्षेत्रदान 'देशदान' है। समयदान 'कालदान' है। अन्न-नेत्रादिदान 'वस्तुदान' है। कन्यादान 'व्यक्तिदान' है। इन सबसे विलक्षण 'ज्ञानदान' है। अभयदानमें सर्व दानोंका सन्निवेश है। भूख, प्यास, शत्रु, मृत्यु, अज्ञता तथा दु:खादिजन्य भयसे त्राण 'अभयदान' है।

चिरकारी प्रशस्यते

चिरेण मित्रं बध्नीयाच्चिरेण च कृतं त्यजेत्। चिरेण हि कृतं मित्रं चिरं धारणमर्हति॥
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि। अप्रिये चैव कर्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते॥
बन्धूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च। अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्रशस्यते॥
चिरं वृद्धानुपासीत चिरमन्वास्य पूजयेत्। चिरं धर्मं निषेवेत कुर्याच्चान्वेषणं चिरम्॥
चिरमन्वास्य विदुषश्चिरं शिष्टान् निषेव्य च। चिरं विनीय चात्मानं चिरं यात्यनवज्ञताम्॥
ब्रुवतश्च परस्यापि वाक्यं धर्मोपसंहितम्। चिरं पृष्टोऽपि च ब्रूयाच्चिरं न परितप्यते॥

चिरकालतक सोच-विचार करके किसीके साथ मित्रता जोड़नी चाहिये और जिसे मित्र बना लिया, उसे सहसा नहीं छोड़ना चाहिये। यदि छोड़नेकी आवश्यकता पड़ ही जाय तो उसके परिणामपर चिरकालतक विचार कर लेना चाहिये। दीर्घकालतक सोच-विचार करके बनाया हुआ जो मित्र है, उसीकी मैत्री चिरकालतक टिक पाती है। राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापाचरण और किसीका अप्रिय करनेमें जो विलम्ब करता है, उसकी प्रशंसा की जाती है। बन्धुओं, सुहृदों, सेवकों और स्त्रियोंके छिपे हुए अपराधोंके विषयमें कुछ निर्णय करनेमें भी जो जल्दबाजी न करके दीर्घकालतक सोच-विचार करता है, उसीकी प्रशंसा की जाती है। दीर्घकालतक बड़े-बूढ़ोंकी सेवा करे। दीर्घकालतक उनका संग करके उनकी पूजा (आदर-सत्कार) करे। चिरकालतक धर्मका सेवन करे और दीर्घकालतक उसका अनुसन्धान करे। अधिक समयतक विद्वानोंका संग करके चिरकालतक शिष्ट पुरुषोंकी सेवामें रहे तथा चिरकालतक अपने मनको वशमें रखे। इससे मनुष्य चिरकालतक अवज्ञाका नहीं अपितु सम्मानका भागी होता है। धर्मोपदेश करनेवाले पुरुषसे यदि कोई प्रश्न करे तो उसे देरतक सोच-विचार कर ही उत्तर देना चाहिये। ऐसा करनेसे उसको देरतक पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता है।

(महाभारत, शान्तिपर्व, अ० २६६)

शुभाशंसा

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ कांचीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराज)

दानस्य वैभवैः युक्तं विशेषाङ्कं शुभावहम्।
तन्वतां मङ्गलं भूयाच्चन्द्रमौलेः कृपेक्षणात्॥

नास्त्यदेयं महात्मनामिति महाभारतोक्त्या महात्मानः स्वीयं सर्वस्वमपि परोपकाराय वितरन्ति। सामान्या अपि पुण्यफलकाङ्क्षिणः परेभ्यः ददति। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा इत्युपनिषद्वाक्यं मनसि निधाय सदोपकाराय यतन्ते साधवः। पुण्यकालेषु वितीर्यमाणं बहुफलप्रदं वरीवर्ति। अत एव स्मृतिग्रन्थाः अपि ब्राह्मणादिषु पात्रेषु न्यस्तव्यविषयं सूचयन्ति। धर्मेण अर्थोपार्जनं सत्पात्रेषु वितरणफलकमेव भवतीति नीत्यर्थशास्त्रग्रन्था अपि मुक्तकण्ठमामनन्ति। तदेतन्मनसि निधाय कल्याणाख्या पत्रिका दानमहिमाविशेषाङ्कम् आतनोतीति ज्ञात्वा नितरां मोमुद्यते चेतो नः। सोऽयं यत्नः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यम्बासमेतश्रीचन्द्रमौलीश्वरकृपया सफलो भवत्विति, अस्य सम्पादकाश्च ऐहिकामुष्मिकश्रेयोविलासैः समेधन्तामिति चाशास्महे। नारायणस्मृतिः।

दानकी महिमासे युक्त मंगलकारी विशेषांक चन्द्रशेखर भगवान् शंकरकी कृपादृष्टिसे मंगलका विस्तार करनेवाला हो।

महाभारतके कथनानुसार महात्माओंके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। अतः महात्मालोग अपने सर्वस्व (सम्पूर्ण वैभव)-को भी परोपकारके लिये वितरित कर देते हैं। पुण्यके फलकी आकांक्षा रखनेवाले सामान्य प्राणी भी दूसरोंको दान देते हैं। ईश्वरके द्वारा दी गयी सम्पत्तिका त्यागपूर्वक उपभोग करो, इस उपनिषद्वाक्यको मनमें धारण करके साधुजन सदा परोपकारके लिये प्रयत्नशील रहते हैं। पुण्यकाल (पर्वों)-पर दिया गया दान अत्यधिक फल प्रदान करनेवाला होता है। इसीलिये स्मृतिग्रन्थ भी ब्राह्मणादि योग्य पात्रोंको दान देना चाहिये—ऐसा सूचित करते हैं। धर्मपूर्वक अर्थोपार्जन सत्पात्रोंमें वितरणके लिये (दान देनेके लिये) ही होता है, इसका नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्रग्रन्थ भी मुक्तकण्ठसे अनुमोदन करते हैं।

अतः इस दानमहिमाको हृदयमें धारण करके कल्याण नामक पत्रिकाका **'दानमहिमा-विशेषाङ्क'** प्रकाशित किया जा रहा है—यह जान करके हमारा मन हर्षातिरेकसे बहुत ही आनन्दका अनुभव कर रहा है। आप सबका यह प्रयत्न जगदम्बा श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी और भगवान् श्रीचन्द्रमौलिकी कृपासे सफल हो और इसके सम्पादक महोदय भी इहलौकिक एवं पारलौकिक श्रेयके आनन्दसे आनन्दित हों, उत्तरोत्तर उन्नतपथपर अग्रसर हों, ऐसी हमारी शुभ कामना है। नारायणस्मृति।

काम-क्रोधादिको जीतनेके उपाय

असङ्कल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात्। अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात्॥
आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया। योगान्तरायान् मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया॥
कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना। आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया॥

धर्मराज! संकल्पोंके परित्यागसे कामको, कामनाओंके त्यागसे क्रोधको, संसारी लोग जिसे 'अर्थ' कहते हैं, उसे अनर्थ समझकर लोभको और तत्त्वके विचारसे भयको जीत लेना चाहिये। अध्यात्मविद्यासे शोक और मोहपर, सन्तोंकी उपासनासे दम्भपर, मौनके द्वारा योगके विघ्नोंपर और शरीर-प्राण आदिको निश्चेष्ट करके हिंसापर विजय प्राप्त करनी चाहिये। आधिभौतिक दुःखको दयाके द्वारा, आधिदैविक वेदनाको समाधिके द्वारा और आध्यात्मिक दुःखको योगबलसे एवं निद्राको सात्त्विक भोजन, स्थान, संग आदिके सेवनसे जीत लेना चाहिये। (श्रीमद्भा० ७।१५।२२—२४)

दानमेयोदय

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्दसरस्वतीजी महाराज)

यह विश्व सर्वेश्वरके द्वारा सृष्ट है। इसे व्यवस्थित रखनेका पवित्र दायित्व सुभद्र जीवोंको प्राप्त है। पुरुषार्थचतुष्टयके धारक तत्त्व इस विश्वके धारक मान्य हैं। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—ये पुरुषार्थचतुष्टय हैं। पुरुषार्थचतुष्टयके साधक हेतुओंमें कालका महत्त्व सर्वाधिक है। कालसहित पुरुषार्थचतुष्टय विश्वके धारक हैं। वसु और वासुकि अर्थके संवाहक हैं। अनन्त और कपिल मोक्षप्रदायक महर्षि हैं। अतएव धरणीधारक सात तत्त्वोंका समुल्लेख महाभारतमें सम्प्राप्त है—

धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च।
अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः॥

(महा० शान्ति० १५०।४२)

यज्ञादि सत्कृत्य पृथ्वीके धारक मान्य हैं। यज्ञादि कृत्योंके निर्वाहक गोवंश, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, निर्लोभी एवं दानशील हैं। अतएव ये सातों पृथ्वीके धारक मान्य हैं—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

(स्कन्दपु० काशी० २।९०)

महायन्त्रोंके आविष्कार और प्रयोगकी प्रचुरता धरणीधारक सात्त्विक तत्त्वोंके विलोपकी आधारशिला है। उदाहरणार्थ गोवंश, सदाचार-संयम और वेदविज्ञानविशारद ब्राह्मण, वेद, सती-साध्वी मातृशक्ति, सत्यवादी, अलुब्ध और दानशीलोंका द्रुतगतिसे विलोप विकासके नामपर भीषण अभिशाप सिद्ध है।

बृहदारण्यकोपनिषत् (५।२।३)-के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि मनोनिग्रह तथा इन्द्रिय-संयमरूप दम, सबमें आत्मीयभावोदयनिमित्तक दया एवं सत्पात्रको अपेक्षित सामग्रीका न्यायसम्मत दान—ये शीलत्रय हैं। इनमें दम देवताओंसे अपेक्षित शील है, दया दैत्यादिकोंसे अपेक्षित शील है और दान मानवोचित शील है। आदर्श देव, दानव और मानव दमशील, दयाशील और दानशील अवश्य होते हैं। महाभारत-शान्तिपर्व (१६०।१५-१६)-के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्यवादिता, सरलता, इन्द्रियविजय, दक्षता, कोमलता, लज्जा, स्थिरता, उदारता, क्रोधहीनता, सन्तोष, प्रियवादिता, सर्वप्राणिसुखप्रदता, अनसूयाका समवेतरूप दम है।

महाभारतमें उक्त तथ्यका प्रकाश प्रकारान्तरसे इस प्रकार किया गया है—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥

मन, वाणी और कर्मद्वारा सर्वप्राणियोंके साथ कभी द्रोह न करना तथा दया और दान—यह शीलसंज्ञक सनातनधर्म है। इसकी सब प्रशंसा करते हैं—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते॥

(महा० शान्ति० १२४।६६)

दरिद्रताको दूर करनेकी अमोघ विधा 'दान' है। दरिद्रताका मूल कारण निर्दयताके कारण दानविहीनता है। उसका अपनोदन दानके द्वारा सम्भव है। दानशीलमें अन्तर्यामित्वरूप सर्वभूतहृदयत्वका शनैः-शनैः संचार होता है। वह भूखे, प्यासे तिरस्कृतोंका पोषक बनकर निज सर्वात्मताको विकसित करनेमें समर्थ होता है।

दानं दरिद्रस्य विभोः क्षमित्वं यूनां तपो ज्ञानवतां च मौनम्।
इच्छानिवृत्तिश्च सुखोचितानां दया च भूतेषु दिवं नयन्ति॥

दरिद्रका दान, सामर्थ्यशालीकी क्षमा, नौजवानोंकी तपस्या, ज्ञानियोंका मौन, सुख भोगनेके योग्य पुरुषोंकी सुखेच्छा-निवृत्ति तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया—ये सद्गुण स्वर्गमें ले जाते हैं। (पद्मपु० पाताल० ९२।५८)

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यसिद्धान्तमें वैष्णवी मन्त्रदीक्षादानकी महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज)

भारतीय अनादि वैदिक सनातन संस्कृतिमें—श्रुति-पुराण-महाभारतादि शास्त्रोंमें दानकी असीम महिमा अतीव विस्तृत रूपमें परिवर्णित है। महाराज श्रीरन्तिदेव, महाराज श्रीहरिश्चन्द्र, दानवीराग्रगण्य परमबलशाली श्रीकर्ण आदि अनेकानेक दानवीरोंकी पवित्र गाथाओंसे सभी शास्त्र हमें प्रेरणा और दानकी महत्ताका परिज्ञान कराते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद्के इस श्रुति-वचनसे स्पष्ट परिलक्षित है—

'श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्।'

(तैत्तिरीयोपनिषद्-शीक्षावल्ली)

श्रद्धाभावपूर्वक दान दिया जाना चाहिये, यदि देनेकी श्रद्धा न भी हो तब भी दान देना अपेक्षित है तथा अपनी सम्पत्ति अर्थात् द्रव्यके अनुसार दान देना हितावह है। यदि किंचित् देनेमें किसी प्रकारका संकोच होता हो तब भी दान देना नितान्त आवश्यक है। विशिष्ट गुरुजनोंके भयसे दान देना श्रेयस्कर है। ज्ञानपूर्वक सत्पात्रको दान देना सदा ही हितकर है। पात्रापात्रका विचार करके दान देना सर्वदा मंगलकारक है।

इस प्रकार दान-महिमाका विवेचन शास्त्रोंमें सांगोपांग किया गया है। इन विविध दान-प्रसंगोंमें विद्यादान, उत्तम शिक्षाका दान, अन्नदान, वस्त्रदान, गोदान आदि अनेक हैं। उनमें वैष्णवादि सद्गुरुद्वारा वैष्णवपरक मन्त्रदीक्षादानका सर्वाधिक महत्त्व है, जिसके विषयमें शास्त्रोंमें नानाविध वचन हैं। सुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यके सिद्धान्तानुसार वैष्णवी मन्त्रदीक्षादान-सम्बन्धी कतिपय उद्धरण मननीय हैं—

ते नराः पशवो लोके किं तेषां जीवने फलम्।
यैर्न लब्धा हरेर्दीक्षा नार्चितो वा जनार्दनः॥

(स्कन्दपुराण)

जिन्होंने वैष्णवी दीक्षा प्राप्त नहीं की तथा भगवान् जनार्दन श्रीकृष्णकी अर्चना नहीं की, ऐसे मनुष्योंका जीवन निष्फल है और इस प्रकार इस संसारमें वे पशुतुल्य ही माने जाते हैं।

मन्त्रदीक्षादानमें पंच संस्कारोंका पुराणादि शास्त्रोंमें विधान विहित किया गया है। यथा—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो याज्ञश्च पञ्चमः।
अमी हि पञ्चसंस्काराः परमैकान्तहेतवः॥

(पद्मपुराण)

शंख-चक्रधारण, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलकधारण, नामकरण, मन्त्रदीक्षादान तथा तुलसी-कण्ठीधारण—ये पंचविध संस्कार कहे गये हैं, जो भगवत्प्राप्तिके परम साधनरूप हैं।

मन्त्रदीक्षादानका यथार्थतः क्या स्वरूप है, इस विषयक यह प्रेरणाप्रद वचन भी अवधारणीय है—

ददाति दिव्यभावं यत् क्षिणुयात्पापसन्ततिम्।
तेन दीक्षेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रपारगैः॥

(गोतमीयतन्त्र)

जिससे परमोत्तम दिव्य भावकी प्राप्ति हो और जन्मजन्मान्तरीय समग्र पापराशिका निवारण हो, उसे ही श्रुति-स्मृति-सूत्र-तन्त्र-पुराणादिके मर्मज्ञ मुनिजनोंद्वारा मन्त्र-दीक्षादान निरूपित किया गया है।

मन्त्रदीक्षादानार्थ परमोत्तम सद्गुरुकी अपेक्षा रहती है और बिना सद्गुरुद्वारा प्राप्त किये मन्त्रका जप करना भी शास्त्रोंमें निषिद्ध कहा गया है, अतः प्रशस्त श्रेष्ठ सद्गुरुद्वारा विधिवत् मन्त्रदीक्षा प्राप्त की जानी चाहिये। इसी भावका संकेत इन वचनोंसे और भी स्पष्ट हो जाता है—

न बिना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः कुतः।
गुरुः पारयिता तस्य ज्ञानं प्लवमिहोच्यते॥

(महाभारत मोक्षधर्मपर्व)

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयमुत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्॥

(श्रीमद्भागवत)

बिना सद्गुरु-आश्रयके ज्ञानार्जन सम्भव नहीं है। ज्ञानरूप नौकासे भगवत्प्राप्ति करानेवाले श्रीगुरुदेव ही हैं।

अतएव शास्त्रज्ञ श्रीभगवच्चरणानुरागी श्रीगुरुचरणोंका समाश्रय लेना अतीव आवश्यक है, इसीसे जिज्ञासुजनोंका परम कल्याण है और उससे श्रीभगवत्प्राप्ति भी सुगमतासे हो जाती है।

यह श्रुतिवचन भी इसी भावपरक है **'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।'** (मुण्डकोपनिषद् १। २। १२) जो शास्त्रज्ञ एवं श्रीभगवन्निष्ठ

हो, ऐसे उत्तम गुरुके निकट साधक समिधा लेकर पहुँचे और उनसे मन्त्रोपदेश प्राप्त करे।

श्रीसद्गुरुदेवद्वारा प्राप्त किया जानेवाला मन्त्र भी वैष्णवपरक होना परम अभीष्ट है—

सर्वेषां मन्त्रवर्गाणां श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते।
विशेषात्कृष्णमनवो भोगमोक्षैकसाधनम्॥

(वृहद्गोतमीय तन्त्र)

जितने भी मन्त्रमात्र हैं, उनमें वैष्णवपरक मन्त्र अतीव श्रेष्ठ हैं, उनमें भी भगवान् श्रीकृष्णविषयक मन्त्र समस्त अभिलषित मनोरथों एवं मोक्षको देनेवाला है। इनमें भी अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्रराज सर्वाधिक श्रेष्ठतम है। जिसे स्पष्ट रूपसे 'श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्र' श्लोक-१३८ में वर्णित किया गया है—यथा **'अष्टादशाक्षरो मन्त्रो व्यापको लोकपावनः।'** अर्थात् अष्टादशाक्षर श्रीगोपाल-मन्त्रराज समस्त प्राणिमात्रका कल्याण करनेवाला तथा पुराणादि शास्त्रोंमें सर्वत्र वर्णित है और यही मन्त्र श्रीनिम्बार्काचार्यपरम्परामें दीक्षार्थियोंको दिया जाता है, जो अक्षुण्णरूपेण अद्यावधि प्रचलित है। अतः वैष्णवपरक मन्त्रदीक्षादानकी असीम महिमा परिवर्णित की गयी है—

ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला
ये बाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचक्राः।
ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्रा-
स्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २२४।७१)

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च धन्या।
स्वर्गे स्थितास्तत्पितरोऽपि धन्या येषां कुले वैष्णवनामधेयम्॥

(पद्मपुराण)

जिन भगवज्जनोंके कण्ठप्रदेशमें तुलसी-कण्ठी सुशोभित हो तथा दोनों भुजाओंपर शंख-चक्रके चिह्न अंकित हों, ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण हो, ऐसे वैष्णव भक्त समस्त भूमण्डलको पवित्र करते हैं।

उनका कुल पवित्र हो जाता है, जन्मदात्री माता परम कृतार्थ हो जाती है, वहाँकी पृथ्वी सौभाग्यवती एवं धन्य हो जाती है, स्वर्गमें निवास करनेवाले उनके पितृजन भी स्वयंको धन्यतम मानते हैं, जिनके कुलमें वैष्णव हो जाता है।

इस प्रकार वैष्णवताकी अनन्त महिमा श्रुति-तन्त्र-पुराणादिमें निरूपित की गयी है। अतएव वैष्णवीय दीक्षादान अतीव महत्त्वशाली है।

कलियुगका कल्पवृक्ष—दान

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

धन्य है वह देश, धन्य है वह प्रदेश, धन्य है वह धरती और धन्य है वह भारतीय संस्कृति और रीति-नीति एवं जीवन-यापनकी पद्धति जहाँ धनसे अधिक धर्मको, भोगसे अधिक योगको, स्वार्थसे अधिक परमार्थको और धर्मके चार पादों—सत्य, तप, दया और दानमेंसे दानकी महिमाको सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है।

वेद प्रभुसम्मित भाषामें, स्मृतियाँ एवं पुराण सुहृद्सम्मित हितोपदेशकी वाणीमें, काव्य-ग्रन्थ कान्तासम्मित सरस सुझावके रूपमें दानकी गरिमा, दानकी महिमा, दानकी सत्ता, दानकी महत्ता, दानकी उपयोगिता और दानकी आवश्यकताका बड़े समारोहके साथ अनुमोदन और वर्णन करते हैं।

वेदोंका आदेश है—**श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।**

(तैत्तरीय० शीक्षा० एकादश अनु०)

अर्थात् श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये, बिना श्रद्धाके नहीं। आर्थिक स्थितिके अनुसार देना चाहिये, लज्जासे देना चाहिये। भयसे भी देना चाहिये और जो कुछ भी दिया जाय, वह सब विवेकपूर्वक देना चाहिये।

सन्तोंकी वाणी है—

चार वेद षट् शास्त्र में बात मिली है दोय।
सुख दीन्हे सुख होत है दुःख दीन्हे दुःख होय॥

और काव्यग्रन्थोंमें कहा गया है—

प्रभू कृपा से ही है पाया तुमने स्वर्ण रत्न धन मान।
फिर क्यों देने में कंजूसी उनकी वस्तु उन्हीं को दान॥

यह दानकी भावना नास्तिकको आस्तिक, भोगीको योगी, स्वार्थीको परमार्थी, कृपणको उदार और नीरसको सरस बनाकर मानव-जीवनके परम लक्ष्य—परमार्थ-पथपर अग्रसर करती है।

दीपक जहाँ जलता है, वहाँ प्रकाश अवश्य होता है, स्रोत जहाँ फूटता है, जलधार वहाँसे निश्चय ही बहती है, पुष्प

जहाँ खिलता है, सुगन्ध वहाँसे दूर स्थानतक फैलती ही है। इसी प्रकार दानकी भावनासे मानव-जीवनमें जनकल्याणकारी, लोकमंगलकारी आस्तिकता, आध्यात्मिकता, नैतिकता और धार्मिकताका प्रादुर्भाव अवश्य होता है, जिसे व्यष्टि और समष्टि सबके लिये अत्यन्त अपेक्षित और आवश्यक माना गया है।

नावका आश्रय लेकर तैरनेवाला कभी डूबता नहीं, श्रमित होनेपर नावको पकड़ लेता है। राजमार्गपर चलनेवाला मार्ग भूलता नहीं। इसी प्रकार सबको सुखी बनानेवाले दान-धर्मका आश्रय लेकर जीवनयापन करनेवाले दानदाताकी कभी भी दुर्गति नहीं होती। भगवान् श्रीकृष्णकी घोषणा है—

'न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।'

(गीता ६।४०)

वृक्षकी जड़को जलसे सींचनेपर शाखा, पत्ते, फल, फूल सभीको जल प्राप्त हो जाता है। समुद्रमें स्नान करनेसे सभी नदियोंमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार उचित देश, काल और पात्रको ध्यानमें रखकर दान करनेसे पुरुषार्थ-चतुष्टयकी उपलब्धि क्रमशः अपने-आप होने लगती है।

चाहे कोई आस्तिक हो या नास्तिक, ईश्वरवादी हो या अनीश्वरवादी, चाहे कोई जाना-माना विद्वान् हो अथवा हो निरक्षर, चाहे कोई अपार धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न धनी-मानी हो या हो पेटको पीठसे चिपकाये हुए अत्यन्त दीन-हीन धनहीन। प्रायः सभी इस दान-धर्मके महत्त्वको स्वीकार करते हैं।

निरुक्तकारने 'देव' शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा है—

'देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा।'

(दैवतकाण्ड १।५)

अर्थात् सभी पदार्थोंको देनेवालेको देवता कहा जाता है।

इस मानव-शरीरका निर्माण ही पंचमहाभूतोंके दानसे हुआ है। यथा—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा॥

इतना ही नहीं, सूक्ष्म शरीरकी रचना भी देवोंके द्वारा प्रदत्त दानसे ही हुई है—

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च', 'चन्द्रमा मनसो जातः।'

ज्योतिष-फलित-विचारसे—ये सूर्यदेवता आत्मशक्तिके, चन्द्रमा मनके, मंगल साहस-वीरताके, बुध वाक्शक्तिके, गुरु ज्ञानके, शुक्र संतान-प्रजननके, शनि अध्यात्मशक्तिके प्रदाता माने गये हैं। इसीलिये गीतामें भगवान्‌ने आदेश दिया है—

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

(३।११)

अर्थात् देवताओंने हम लोगोंको सब कुछ दिया है। अतः हम लोगोंको भी यज्ञद्वारा देवताओंकी भावपूर्ण उन्नतिका प्रयास करना चाहिये। इस प्रकारके आपसी सहयोगसे ही सब कल्याणको प्राप्त होंगे।

इस दानकी सत्ता-महत्ताको केवल भारतवासी या केवल हिन्दूधर्मावलम्बी ही नहीं, विश्वके प्रायः सभी धर्मावलम्बी, सभी देशवासी स्वीकार करते हैं।

दान की महत्ता विश्ववासियों ने जानी मानी,
युगों से दान सत्ता जन जन समानी है।
दान ही है भाव भक्ति दान ही है ज्ञान शक्ति,
दान कर्म योग की भी सुखद कहानी है॥
सबके कल्याण हेतु दान का प्रचार हुआ,
प्रेम सद्भाव इसकी पावन निशानी है।
लोक परलोक दोनों दानी के सुखद होते,
वेदों ने ऐसी महिमा दान की बखानी है॥

भूसी कूटनेसे चावलकी प्राप्ति नहीं हो सकती। जल-मंथनसे घृत और बालूको पेरनेसे तेल त्रिकालमें भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** और **'मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्'** की उच्च उदात्त लोककल्याणकारी भावनाओंको भुलाकर केवल अपने ही घर, मकान, दुकानके संकीर्ण स्वार्थमें चिपके रहनेसे देश, राष्ट्र, समाज और मानवताका भला नहीं हो सकता। इसीलिये शास्त्रोंमें **'पण्डिताः समदर्शिनः'** और **'सर्वभूतहिते रताः'** की मानवतावादी प्रकृति, प्रवृत्ति, चित्तवृत्ति अपनानेपर विशेष बल दिया गया है।

चित्तवृत्ति और चिन्तनके आधारपर दानदाता और ग्रहीताके कई भेद-प्रभेद किये गये हैं। यथा—

निकृष्ट मानवकी वृत्ति—'मेरा सो मेरा, तेरा भी मेरा।'

मध्यम मानवकी वृत्ति—'मेरा सो मेरा, तेरा सो तेरा।'

उत्तम मानवकी वृत्ति—'तेरा सो तेरा, मेरा भी तेरा।'

उत्तमोत्तम मानवकी वृत्ति—'यह झूठा झमेला, न मेरा न तेरा।'

मिष्टान्न-पक्वान-हविष्यान्नकी आहुति पाकर कड़ुआ

धुआँ भी सुगन्धित हो जाता है। संखिया-जैसा भयानक विष भी संशोधन करनेपर ओषधका कार्य करता है। समुद्रका खारा जल सूर्यकी किरणोंका संस्पर्श पाकर मधुरिमामें बदल जाता है, इसी प्रकार दान-धर्मका आश्रय लेकर जीवनयापन करनेवाले साधकके अन्तःकरणकी शुद्धि होकर भक्ति और मुक्तिकी ओर उसकी स्वाभाविक गति हो जाती है।

दानदाताओंकी कीर्ति अजर-अमर हो जाती है। उनके जीवनसे लोगोंको एक नयी शिक्षा, नयी दीक्षा, नया उपदेश, नया आदेश, नया सन्देश, नयी स्फुरणा, नयी प्रेरणा और नयी चेतना प्राप्त होती है। दानदाताओंका यशोगान, कीर्तिगान, गुणगान, जन्म-जन्मान्तर, कल्पकल्पान्तर, युगयुगान्तरतक चलता रहता है। तभी तो महादानी हरिश्चन्द्र आदिके सम्बन्धमें कहा गया है—

'प्रातः लीजै पाँच नाम हरि, बलि, कर्ण, युधिष्ठिर, परशुराम।'

दानकी सत्ता-महत्ताके सम्बन्धमें एक ग्रामीण लोकोक्ति अति प्रसिद्ध है—

'माघी नहाव चहै पूसी बिना दिये न मिलिहै भूसी।'

What we are now is the result of our past actions and what we shall be in future that entirely depends upon our present deeds. It is fundamental truth, that doer of good or giver of charity never comes to a grief.

एक कथानक है कि एक सेठने दानकी भावनासे प्रेरित होकर एक अन्न-क्षेत्र खोला, जिसमें निर्धन-भूखे लोगोंको नित्य भोजन दिया जाता था। कुछ दिनोंके पश्चात् सेठकी मनोवृत्तिमें लालच आया और वह सब सड़ा अन्न उस अन्न-क्षेत्रमें भेजने लगा। सेठकी बहू बड़ी विवेकवती थी। उसने इस सड़े अन्नदानके भयानक परिणामसे अपने श्वशुरको बचानेके लिये एक युक्ति सोची। अगले दिन उसने उसी सड़े अन्नकी एक रोटी सेठकी थालीमें रख दी। उस रोटीके खाते ही सेठ व्याकुल हो उठा और बहूसे पूछा कि क्या घरमें अच्छा अनाज नहीं है? बहूने बड़ी विनम्रतासे कहा कि पिताजी! अभीसे आप इस सड़े अन्नकी रोटी खानेका अभ्यास करें; क्योंकि आगे आपको इसी सड़े अन्नकी रोटियाँ ही मिलनी हैं। सेठको अपनी भूलका ज्ञान हुआ, बहूकी प्रशंसा की और उसी दिनसे अच्छे अन्नको अन्नक्षेत्रमें भेजने लगा।

ध्यान रहे, जैसे पर्वतसे नदियाँ निकलती हैं और सूर्यसे निकलता है प्रकाश, उसी प्रकार इस दान-धर्मके पालनसे सभी सद्गुणोंका प्रादुर्भाव होता है।

इसीलिये शास्त्रोंमें विवेकसे वासनाका, त्यागसे तृष्णाका, भक्तिसे ममताका, ज्ञानसे अहंताका, वैराग्यसे कामनाकल्पनाका, सन्तोषसे इच्छा-अभिलाषा, लालसाका और दानसे संग्रहकी संकीर्ण भावनाका परित्यागकर **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** में रमण-भ्रमण करते हुए अति सुखद जीवनयापनका मार्ग प्रशस्त किया गया है।

प्यासेको पानी न पिला पानेके कारण अतुल जलराशिके स्वामी समुद्रका स्थान (लेबिल-स्तर) सबसे नीचे हो गया है और ठीक इसके विपरीत थोड़े जलवाला हो करके भी सबकी प्यास बुझाकर सबको सुखी बनानेवाले दानदाता मेघको आकाशमें बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है।

यह दानकी भावना जनकल्याण, लोककल्याण, समाजकल्याण, राष्ट्रकल्याणकी भावनासे ओत-प्रोत मानी जाती है। यह दानकी भावना सभी पाप, ताप, सन्तापोंसे मुक्तकर सदाचार, सद्विचार, समता और मानवताकी राहपर चलाती है।

यह दानकी भावना सभी आधियों, व्याधियों और उपाधियोंसे मुक्तकर आत्मज्ञान, अध्यात्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, ब्रह्मज्ञानकी ओर अग्रसर करती है।

यह दानकी भावना भगवान्‌की साधना, आराधना और उपासनामें श्रद्धा, भक्ति तथा अनुरक्ति उत्पन्न करती है।

यह दानकी भावना नरको नारायणकी ओर, भक्तको भगवान्‌की ओर, आत्माको परमात्माकी ओर और जीवको ब्रह्मकी ओर उन्मुख करती है।

इस कलियुगमें **'दानमेकं कलौ युगे'** कहकर इस 'दानको कलियुगका कल्पवृक्ष' बताकर भक्ति, मुक्ति, शक्ति और शान्ति सभीकी प्राप्तिका सुगम उपाय माना गया है। इसीलिये अनेक प्रकारके दानोंकी चर्चा करते हुए कहा गया है—

भूखे को अन्नदान और प्यासे को जलदान,
रोगियों के हेतु औषधालय खुलाते हैं।
किंतु सब दानों में से श्रेष्ठ ज्ञानदान हेतु,
अधिकारी विद्वानों को सादर बुलाते हैं॥
ऐसे उदार दानदाताओं को है धन्य धन्य,
उनकी क्या गति होती सुनो तो बताते हैं।
और सब लोग भगवान् की खोज करते,
(किंतु) दानी की खोज भगवान् स्वयं कराते हैं॥

दान-दर्शन

(गीतामनीषी स्वामी श्रीवेदान्तानन्दजी महाराज)

दान शब्द 'दा' धातुसे बना है, जिसका अभिप्राय है देना। प्रश्न उठता है क्या देना? जो कुछ भी सर्वशक्तिमान् सर्वसमर्थ भगवान्ने हमें दिया है, उसे समाजकी सेवामें लगा देना ही दान कहलाता है। पुनश्च—

दूसरोंकी आवश्यकताको देखते हुए अपने पास रही वस्तुको तुरंत दे देनेकी वृत्तिको दान कहते हैं।

किसी वस्तुपरसे अपनत्वकी छाप हटाकर दूसरोंका स्वत्व जोड़ देना ही दान है।

निजी पुरुषार्थ तथा शुभ भावनासे अर्जित धनमेंसे कुछ बाँट देना भी दानके अन्तर्गत आता है।

कर्तव्य समझकर देश, काल और पात्रका भलीभाँति विचार करके निष्काम भावसे जो दिया जाता है अथवा वितरण किया जाता है, यही दानके नामसे पुकारा जाता है।

दानके मंगलकारी एवं सर्वहितकारी गुणपर विवेचन करनेसे पूर्व यह स्पष्ट कर देना नितान्त अनिवार्य है कि 'दान' शब्दका तात्पर्य केवल धनका दान ही नहीं, अपितु किसी भी आवश्यक वस्तुका अपने सामर्थ्यके अनुसार सुपात्रको देना भी दान कहलाता है। आधुनिक समाजमें प्रायः अधिकांश लोग धनके दानको ही दानकी संज्ञा देते हैं। यदि ऐसी बात होती तो इस दैवी गुणपर केवल धनाढ्य लोगोंका ही आधिपत्य होता। निर्धन एवं साधु-संत—जिनके पास धनका अभाव होता है, वे कभी भी इस गुणसे पूर्णरूपेण न्याय न कर पाते, परंतु ऐसी बात नहीं। दान तो किसी भी वस्तुका दिया जा सकता है। इसीलिये हमारी भारतीय संस्कृतिमें नाना प्रकारके दानोंका विवरण आता है। यथा भूदान, अन्नदान, जलदान, वस्त्रदान, विद्यादान, धनदान, औषधिदान, कलादान एवं जीवनदान आदि।

अतः श्रद्धालुजनोंको चाहिये कि वे दानका सीमित अर्थ न लेकर व्यापक अर्थ ही स्वीकार करें। यदि कोई धनवान् है तो धनका दान कर सकता है, यदि कोई निर्धन है, परंतु उसके पास कोई उच्चकोटिकी कला है तो वह उस कलाको दूसरोंको सिखाकर कलाका दान कर सकता है। किसान लोग अन्नका दान कर सकते हैं। तत्त्वदर्शी महापुरुष जो आत्मज्ञानके भण्डारी हैं, वे दूसरोंको ज्ञानका दान करके उन्हें शान्ति प्रदान कर सकते हैं।

स्मरण रहे कि दानोंमें सबसे श्रेष्ठ दान विद्याका दान होता है; क्योंकि अन्य वस्तुओंके दानसे पात्रकी कुछ समयके लिये तृप्ति एवं सन्तुष्टि हो पाती है, परंतु विद्याके दानसे वह सदा-सर्वदाके लिये दैवी गुणसे ओत-प्रोत होकर कृतकृत्य हो जाता है। इसीलिये परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज कहा करते थे—

सर्वोपरि श्रेष्ठ दान जो आप किसी मनुष्यको दे सकते हो, वह विद्या या ज्ञानका दान है। आप किसी भी मनुष्यको भोजन खिला दें, कल वह फिर उतना ही भूखा हो जायगा। आप उसको कोई कला सिखला दें तो वह जीवनपर्यन्त अपनी जीविका प्राप्त करनेके योग्य हो जाता है।

आत्मज्ञानके अतिरिक्त अन्य दान केवल प्राथमिक चिकित्सामात्र (First aid) ही हैं। दुःखोंमें बुरी तरह ग्रस्त मानवका यदि पूर्ण एवं सुयोग्य उपचार किया जा सकता है तो वह आत्मज्ञानके ही द्वारा। ज्ञान मानो वह श्रेष्ठ अस्पताल है, जहाँ रोगीको पूर्णतया उत्तम चिकित्सा प्रदान की जा सकती है और सर्वदाके लिये रोगकी जड़ काटकर रोगीको स्वास्थ्य-लाभ मिलता है। परंतु यह ध्यान रहे कि यदि कोई ज्ञानका दान करनेमें समर्थ नहीं हो तो वह अपनी समर्थता एवं योग्यताके अनुसार अन्य वस्तुओंका दान करनेमें रंचमात्र भी संकोच न करे। अन्यथा जो कृपण मानव परम कृपालु, परम दयालु प्रभुसे नाना प्रकारके पदार्थ लेकर उन्हें प्राणिमात्रकी सेवामें नहीं लगाता, बल्कि उनका अपने लिये संग्रह ही करता रहता है, उसे गीतागायक भगवान् श्रीकृष्ण स्तेन—चोरकी संज्ञा दे रहे हैं—

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥

(गीता ३। १२)

स्वार्थी एवं परिग्रही मानव जो केवल अपना ही पेट भरना जानता है, जीवनमें कभी भी शान्त नहीं रह सकता; क्योंकि वह तो अपने शरीर-पोषणके लिये ही नाना

प्रकारके भोगोंका उपार्जन करता है और अपने लिये ही उन्हें भोगता है। इस प्रकार स्वार्थपरिपूर्ण क्रियाओंसे अर्जित पदार्थोंका जब वह उपभोग करता है, उसका जीवन पापमय बन जाता है। कारण, उसका उपार्जन और उपभोग—दोनों ही पापमय होते हैं। श्रीगीतामें ऐसे पापी मनुष्योंका निरूपण इस प्रकार किया गया है—

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३। १३)

जो केवल अपने लिये पकाते हैं, वे पापी पापको भोगते हैं।

अब प्रत्येक श्रद्धालुजनको भगवान्‌के उपर्युक्त चेतावनीभरे शब्द अपने अन्तःस्तलपर अंकित कर लेने चाहिये, ताकि हम सही अर्थोंमें दानके गुणको क्रियात्मक रूप दे पायें।

गीतोक्त दानके कल्याणकारी गुणको आत्मसात् करनेसे पूर्व एक और रहस्यमयी बात हृदयंगम कर लेनी चाहिये, वह यह कि दान सदैव योग्य काल, योग्य पात्र तथा योग्य स्थान देखकर तथा विचारकर ही करना चाहिये।

अपात्रको दिया हुआ दान दानीको नरकमें ले जाता है—

अपात्रे दीयते दानं दातारं नरकं नयेत्।

इसलिये दान देते हुए दानीको सतर्क एवं सजग रहना चाहिये।

यहाँतक कहा जाता है कि जितनी सजगता एवं सतर्कतासे कन्यादान किया जाता है, उतनी ही सावधानीसे सब तरहका दान देना चाहिये। दाताको दान देते समय एक और बातका विशेष ध्यान रखना चाहिये कि उसे चर्चा एवं विज्ञापनका विषय न बनायें। गुप्तदान अत्यन्त कल्याणकारी होता है। दान देनेकी पद्धति सुन्दर है—***'दायाँ हाथ दान दे, बायेंको पता भी न चले।'***

परंतु आजका भौतिकवादी मानव मानप्रतिष्ठाका इतना भूखा है कि मन्दिरों आदिमें दान देकर दी हुई वस्तुपर अपना नाम या परिवारके किसी सदस्यका नाम अंकित करवाना चाहता है। यदि धनका दान दिया है तो वह अपना नाम समाचारपत्रोंमें बड़े-बड़े अक्षरोंमें छपा हुआ देखना चाहता है। स्मरण रहे—इस प्रकारका दिया हुआ दान मानवको प्रगतिकी ओर अग्रसर न करके उसे अवनतिकी ओर ले जाता है।

यह ध्यान रखना चाहिये कि दान कभी भी दुःखी एवं सन्तप्त मनसे नहीं देना चाहिये। दान देते हुए जब मनको कष्ट होता हो तो वह दान निरर्थक सिद्ध होता है।

अतः श्रद्धा एवं प्रसन्नचित्तसे दिया गया दान विशेष महत्त्व रखता है। भूलकर भी अश्रद्धासे दान नहीं देना चाहिये। दान सदैव श्रद्धापूर्वक, स्थितिके अनुसार, नम्रता तथा दयाभावसे और विवेकपूर्वक दिया जाना ही कल्याणप्रद एवं लाभप्रद सिद्ध होता है। यदि गहन मनन किया जाय तो मानव मृत्युके पश्चात् ले भी क्या जाता है। संग्रह की हुई प्रत्येक वस्तु यहीं रह जाती है। आजतक कोई भी मनुष्य चाहे वह कितना ही शूरवीर एवं प्रतापी हुआ हो, वह अपने साथ रंचमात्र भी इस संसारकी एकत्रित की हुई कोई वस्तु नहीं ले जा सका है। सन्त कबीरजी इसी भावको समक्ष रखते हुए कहते हैं—

कबीर यह तन जात है, सके तो राख बहोर।
खाली हाथों वे गये जिनके लाख करोर॥

सिकन्दर-जैसे नृप भी खाली हाथ चले गये। अनेक देशोंपर विजय प्राप्तकर धन-माल संचित करनेपर भी जब सिकन्दर इस अद्भुत संसारसे विदा होने लगा तो सब कुछ यही धरा रह गया। कहते हैं कि जब सिकन्दर महान् इस संसारसे कूच करने लगा तो उसने आयुभर एकत्रित की हुई सम्पत्तिको अपने सामने इकट्ठा करके रखा। उसे देखकर वह खूनके आँसू बहाने लगा। एक पैसा भी अपने साथ ले जानेमें असमर्थ राजा सिकन्दर अपने राज्यके मन्त्रियोंसे कहता है कि जब मेरी अर्थी निकाली जाय तो मेरे दोनों हाथ कफनसे बाहर निकाल देना ताकि लोगोंको यह विदित हो जाय—

न वो भी ले गये कुछ साथ जो मुल्कोंके वाली थे।
सिकन्दर जब गया दुनियासे दोनों हाथ खाली थे॥

अतः सिकन्दर महान्‌के शिक्षाप्रद दृष्टान्तको समक्ष रखकर प्रत्येक मानवको चाहिये कि वह यथाशक्ति दान करे, दान करे। इस लोकमें दिया एवं किया हुआ दान ही

मृत्युके समय साथ जाता है। इसीलिये दया और दानको मानवका आभूषण कहा गया है।

दान देते हुए यह भी ध्यान रखना चाहिये कि दानमें दी जा रही वस्तु शुद्ध, सुन्दर, समयोपयोगी एवं आवश्यक हो। अशुद्ध, जूठी, प्रयोगमें लायी हुई, गली-सड़ी अनावश्यक वस्तुका दान देना तो मानो दानके दैवी गुणसे परिहास करना ही है। साररूपमें जो वस्तु आपको उत्तम लगती है, उसीका दान देना चाहिये। जिस समाजमें दानकी भावना जितनी ज्यादा है, वह समाज उतना ही उन्नत एवं प्रगतिशील होता है।

स्रष्टाकी इस अद्भुत सृष्टिमें आये हुए मानवके लिये यह नितान्त अनिवार्य है कि वह प्रतिदिन कुछ दान अवश्य करे। दान मानो आधुनिक युगकी बैंकोंमें की जा रही सावधि जमाराशिके समान है, जहाँ जमा करवायी हुई धनराशि निश्चित समय पाकर दुगुनी हो जाती है। हमारे धर्मशास्त्र दो पग और आगे बढ़कर कहते हैं कि सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी भगवान्के नामपर दान की हुई वस्तु दस गुना बढ़ जाती है।

दान देना इसलिये भी आवश्यक है कि मनुष्यमात्रकी स्थिति सामाजिक प्राणीकी है। बिना लिये-दिये तो सामाजिक प्राणी एक पग भी नहीं बढ़ा सकता अर्थात् सामाजिक व्यवहार अस्त-व्यस्त हो जाता है। इसलिये मानवका यह कर्तव्य हो जाता है कि समाज एवं राष्ट्रके उत्थानके लिये अपनी योग्यता एवं समर्थताके अनुसार जो कुछ भी उसके पास है, उसे प्राणिमात्रकी सेवामें लगाये। यदि दार्शनिक दृष्टिसे अवलोकन किया जाय तो प्रकृतिका कण-कण दानकी उत्तम भावनाका सन्देश दे रहा है। वायु देवता सर्वत्र घूम रहे हैं तो प्राणियोंकी भलाईके लिये। सूर्यदेवता तपते हैं तो प्राणियोंके हितके लिये। चन्द्रमा ठण्डक पहुँचाते हैं तो जीवोंके लाभके लिये। नदियाँ कल-कल करती बहती हैं तो प्राणिमात्रके कल्याणके लिये। वसुन्धरा भगवती नाना प्रकारके पदार्थ उपजाती हैं तो प्राणियोंके मंगलके लिये। अतः देवताओंके सुन्दर एवं हितकारी गुणके अनुसार हमारा भी यह कर्तव्य बन जाता है कि हम भी अपने स्वत्वको यथाशक्ति प्राणिमात्रके हितके लिये लगायें।

यह दानका ही चमत्कार है कि जनता-जनार्दनकी सेवाकी भावनासे दिया हुआ दान मानवके अन्तःकरणको विमल एवं निर्मल करके उसे सर्वनियन्ता परमात्माके समीप पहुँचा देता है। यह दानका ही श्रेय है कि दानमें दी गयी वस्तुकी कमी कभी भी दानीको नहीं आती, प्रत्युत दिन-प्रतिदिन उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

सन्त कबीरदासजी महाराजने बड़े ही सरल-स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—

चिड़ी चोंच भर ले गयी, नदी न घटियो नीर।
दान दिये धन ना घटे, कह गये दास कबीर॥

अभिप्राय यह है कि जब भगवान्ने आपको दिया है तो आप भी दान करें। दानी कभी घाटेमें नहीं रहता। दान तो कई गुना बढ़ता है। डॉ० रवीन्द्रनाथ टैगोरने स्वरचित पुस्तक पुष्पांजलिमें एक सत्यकथाका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है कि एक बार एक सज्जन नगरके बाजारसे ज्वार खरीदकर ला रहे थे। मार्गके मध्य उनकी भेंट एक भिखारीसे हुई। भिखारीने हाथ फैलाकर कहा—बाबूजी! कुछ देते जाओ। उस भद्रपुरुषने उस ज्वारमेंसे एक दाना उठाया और भिखारीके हाथपर रख दिया। भिखारीने शुभ भावना देते हुए कहा—अच्छा बाबूजी, भगवान् आपको खूब दे। अनगिनत होकर मिले। घर पहुँचते ही उन सज्जनने ज्वार धर्मपत्नीके हाथों सौंप दी। जब वह उसे पकानेके लिये साफ करने लगी तो ज्वारके दानोंमें एक सोनेका दाना देखकर आश्चर्यचकित हो गयी। पत्नीने तुरंत अपने पतिसे कहा—आप जिस दूकानदारसे ज्वार खरीदकर लाये हैं, वह तो घाटेमें रहा। उसके साथ धोखा हुआ है। उसका एक सोनेका दाना गलतीसे इस ज्वारमें आया है। कृपया उसे लौटा आइये। पतिको मध्यमार्गमें मिले भिखारीकी स्मृति मनःपटलपर तुरंत आ गयी। पतिने माथेपर हाथ मारकर कहा—प्रिये! धोखा एवं घाटा उस दूकानदारको नहीं हुआ, धोखा तो मेरे साथ हुआ है। पत्नीने पूछा, वह कैसे? पतिने गम्भीर स्वरमें कहा—मैंने आते समय एक भिखारीके माँगनेपर एक ज्वारका

दाना दानमें दिया था, उसे ही भगवान्ने सोनेमें परिवर्तित कर दिया है। यदि मुट्ठीभर दे देता तो आज हमारी दरिद्रता दूर हो जाती।

अतः जब दान देनेका सुअवसर मिले तो दिल खोलकर उदारतापूर्वक दें। दान देकर जो सुखानुभूति होती है, उसका वर्णन शब्दोंद्वारा नहीं किया जा सकता। उस दिव्यानन्दकी अनुभूति उसे ही होती है, जो प्रेम एवं उदारतापूर्वक दान करता है।

इक हाथ से गर तू लुटायेगा खजाने।
सौ हाथ से मालिक तेरे भर देगा खजाने॥

सच्चे दानीके दर्शनोंके लिये भगवान् आतुर-अधीर रहते हैं।

दानके दैवी गुणका मुख्य तात्पर्य संग्रहकी निकृष्ट भावनाका परित्याग करके त्यागकी उत्कृष्ट भावनाको शोभन बुद्धि किंवा महत्त्वबुद्धि देनेसे है। विश्वजनीन दिव्य गीतादर्शनने स्थान-स्थानपर परिग्रहमात्रकी निन्दा करते हुए उसे त्यागनेकी शुभ मन्त्रणा और दान-जैसे उत्तम गुणको जीवनमें उतारनेकी मंगलकारी प्रेरणा दी है। संगृहीत धन-दौलतमेंसे कुछ निश्चितरूपसे निकालना दानके गुणकी ओर अग्रसर होना है।

स्मरण रहे, संग्रह करनेवालेकी अपेक्षा संग्रहका त्याग करनेवालेका महत्त्व अधिक है। जैसे जलका संग्रह करके उसका वर्षाके रूपमें दान करनेवाले मेघोंकी स्थिति केवल संग्रह करनेवाले समुद्रसे कई गुना अधिक है। मेघ अपनी दानवृत्तिके कारण गणनामें उच्च स्थान प्राप्त करते हैं और समुद्रकी स्थिति अपनी संग्रहवृत्तिसे नीचे अर्थात् निन्दनीय है। बादल ऊपर आकाशमें मँडराते हैं और समुद्र नीचे ही पड़ा रहता है।

अतः अपने जीवनको उच्च बनानेके लिये मानवको यथासम्भव दान-जैसे कल्याणकारी कर्मोंका त्याग नहीं करना चाहिये। यज्ञ, दान और तप इत्यादि कर्म तो मानवको पावन, पुनीत एवं पवित्र बना देते हैं। अकारणकरुणावरुणालय भगवान् अपनी अलौकिक वाणी श्रीगीताजीमें स्वयं कहते हैं—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

(गीता १८।५)

अर्थात् यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करनेके योग्य नहीं हैं, बल्कि वे तो आवश्यक हैं; क्योंकि यज्ञ, दान और तप—ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान् पुरुषोंको पवित्र करनेवाले हैं।

दान दो

भूखे जनको अन्न-दान दो, प्यासेको दो जलका दान।
वस्त्रहीनको वस्त्र-दान दो, मानहीनको सच्चा मान॥
भय-विह्वलको अभय-दान दो, शरणहीनको आश्रय-दान।
शोक-विकलको शान्ति-दान दो, आतुर जनको सेवा-दान॥
दुःख-पतितको धैर्य-दान दो, रोगी जनको औषध-दान।
पथ भूलेको मार्ग-दान दो, दो निराशको आशा-दान॥
ज्ञानहीनको ज्ञान-दान दो, संशयालुको श्रद्धा-दान।
धर्महीनको धर्म-दान दो, नास्तिकको ईश्वरका ज्ञान॥
जो, जिसको, जब आवश्यक हो, करो तभी उसको वह दान।
जो तुम कर सकते हो; पर मत करो कभी उसपर अहसान॥
मत समझो दाता अपनेको, करो न कुछ भी तुम अभिमान।
सविनय करो समर्पण प्रभुको, प्रभुकी वस्तु सहित सम्मान॥

अन्नदानात्परं दानं न भूतो न भविष्यति

[अन्नदानसे श्रेष्ठ दूसरा दान नहीं]

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी)

भारतीय संस्कृति उत्सर्गप्रधान संस्कृति है। सम्पूर्ण विश्वमें इसके औदार्यकी, सौशील्यकी प्रशंसा की जाती है। भारतमें अवतरित होकर अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीमन्नारायणने भी इस वसुन्धराकी प्राणभूता अनुपम संस्कृतिका मान बढ़ाया। हमारी ये सनातन संस्कृति पारमार्थिक भावसे भरी है, जहाँ तुच्छ स्वार्थको त्यागकर औरोंके लिये जीनेका पाठ स्तन्यपान करते-करते शिशुओंको शैशवमें ही प्राप्त हो जाता है। भारतका मानव ही नहीं पशु-पक्षीतक भी परोपकारमयी उत्सर्गोन्मुखी उदात्त संस्कृतिके संरक्षणमें—परिपालनमें सदैव सजगतापूर्वक प्रवृत्त रहा है। जटायु, सम्पाती, कपोत, मृगी, गौ इत्यादिके आख्यान पुराणोंमें बहुधा प्राप्त होते हैं। 'दान' भारतीय सनातन संस्कृतिका स्वभाव है (धर्म है)। जैसे व्यक्तिके, पदार्थके स्वभाव (अग्निमें दाहकता, जलमें शीतलता आदि)-के बिना उस व्यक्तिका, पदार्थका अस्तित्व सम्भव नहीं, ठीक वैसे ही दानके बिना भारतीय संस्कृतिका अस्तित्व संदिग्ध हो जायगा। औपनिषत्-आख्यानोंमें दानकी महिमाका वर्णन विस्तारसे प्राप्त होता है। महानारायणोपनिषत्‌में कहा गया है—**'सर्वाणि भूतानि प्रशꣳसन्ति दानान्नातिदुश्चरं तस्मात् दाने रमन्ते···· सर्वभूतानि उपजीवन्ति दानेन आरातीरपानुदन्त दानेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति दाने सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात् दानं परमं वदन्ति।'** (खण्ड २१)

अर्थात् दानकी प्रशंसा सब प्राणी करते हैं, किंतु भगवत्कृपाके बिना दान करनेकी प्रवृत्ति दुष्कर ही है। सभी जीव दानसे उपजीवित हो रमण करते हैं। दानके द्वारा शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। द्वेष-भाव दूर हो जाता है। सब कुछ दानमें ही प्रतिष्ठित है, अतः दानको श्रेष्ठ कहा गया है।

१. आयका दशांश भगवत्प्रीत्यर्थ—मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये शास्त्रोंने उपदेश किया कि न्यायद्वारा उपार्जित वित्तसे दशांश भाग निकालकर भगवत्प्रीत्यर्थ उसका विनियोग करना चाहिये [प्रदर्शन आदिके लिये नहीं]—

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥

पितामह ब्रह्माजीने हिंसा-प्रवृत्तिवाले दैत्योंको दयाकी शिक्षा दी, भोगवादी-प्रवृत्तिवाले देवताओंको इन्द्रियसंयमरूप दमनकी शिक्षा दी तथा लोभाभिभूत मानसिकतावाले मनुष्यको आत्मोद्धारार्थ दानकी शिक्षा प्रदान की।

२. दानकी अवश्यकर्तव्यता—श्रद्धापूर्वक देना चाहिये, अश्रद्धापूर्वक नहीं। पवित्र देशमें (तीर्थ आदिमें), पवित्र समयमें (पूर्णिमा, संक्रान्ति आदि), पवित्र सच्चरित्र पात्रको (वेदवेत्ता ब्राह्मण न मिले तो जात्या ब्राह्मणको ही) दान देना चाहिये।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।
(गीता १७।२०)

'श्रद्धया देयम् अश्रद्धयादेयम्।'

स्वसामर्थ्यानुसार देना चाहिये, उदारतापूर्वक देना चाहिये **[श्रिया देयम्]**, विनम्रतापूर्वक [प्रत्युपकारकी भावनासे नहीं] देना चाहिये **[ह्रिया देयम्]**, दान नहीं करूँगा तो परलोकमें प्राप्त नहीं होगा—इस भयसे देना चाहिये। अथवा भगवान्‌ने मुझे आवश्यकतासे अधिक कुछ भी धरोहरके रूपमें समाज-कल्याणके लिये पात्र मानकर दिया है, तो औरोंको दूँ, अन्यथा भगवान्‌को क्या मुख दिखाऊँगा—इस भयसे देना चाहिये **[भिया देयम्]**। ज्ञानपूर्वक विधिपूर्वक देना चाहिये। प्रमादसे या उपेक्षापूर्वक नहीं **[संविदा देयम्]**। आदरपूर्वक, उदारतापूर्वक देना चाहिये, चाहे जैसे दो किंतु देना चाहिये। (तैत्तिरीयोपनिषत्, शीक्षावल्ली)

३. दाताकी भावना—जिस प्रकार एक किसान अपने खेतकी सफाई करके उसमें हल चलाकर उसे तैयार करके बीज बोता है, पानी-खाद देता है, रक्षा भी करता है, ठीक उसी प्रकार दाताको बड़े पवित्र मनसे विश्वासपूर्वक

दान करना चाहिये। आवश्यकता खेतको नहीं किसानको है, वह थोड़ा देकर अधिक पाना चाहता है। किसान खेतपर उपकार नहीं करता, अपने लाभके लिये उत्सर्ग करता है; क्योंकि खेत माँगता नहीं। दानी भी दान करके उपकार नहीं करता अपितु दानी किसान है, लेनेवाला खेत है, आवश्यकता लेनेवालेकी न समझी जाय। हम जो दे रहे हैं, ये हमारी आवश्यकता है। हम अपने हितके लिये देते हैं। नहीं देंगे तो नहीं पा सकेंगे। अतः देना ही चाहिये। जैसे खेतमें बीज नहीं बोयेंगे तो नहीं पा सकते। उचित समयपर, उचित खेतमें, उचित बीज बोनेसे फसल (पर्यावरण-देशकालानुसार) अच्छी होती है, ठीक वैसे ही देश-काल-पात्रका विचार करें। उपेक्षापूर्वक अवज्ञापूर्वक प्रमादवश दिया दान व्यर्थ चला जाता है।

४. दया और दान—दया कभी भी, कहीं भी, किसीपर भी, कोई भी, कैसे भी कर सकता है। यहाँ देश, काल, पात्र और विधि अपेक्षित नहीं है। दयाके लिये सभी स्थान, सभी व्यक्ति [प्राणीमात्र], सभी समय उपयोगी हैं, अनुकूल हैं। किंतु दानके विषयमें ऐसा नहीं है, कुदेशमें, कुसमयमें और कुपात्रको दिया गया दान तामस होता है—

'अदेशकाले यद्दानं अपात्रेभ्यश्च दीयते।'

(गीता १७। २२)

दया पानेके अधिकारी सब हैं, किंतु दान पानेके अधिकारी केवल ब्राह्मण ही हैं। अपात्रको दिया दान विनाशका कारण बन सकता है।

जब भूमिमें डाला गया बीज व्यर्थ नहीं जाता, तब गौ-ब्राह्मणके मुखमें दी गयी आहुति, विप्रके हाथमें दिया गया विधिपूर्वक दान कैसे व्यर्थ जा सकता है? इसमें शंकाकी तो जगह ही नहीं है। कोई कहे कि हम तो निष्काम भावसे देते हैं, तो विधि वहाँ आवश्यक नहीं है। देश, काल, पात्रका झंझट नहीं है। तब उनसे निवेदन होगा कि निष्काम भावसे करनेमें विधि आवश्यक नहीं—ऐसा कहाँ लिखा है? विधिपूर्वक करनेसे निष्काम कर्म शीघ्र निर्वृत्ति प्रदान करता है, किंतु इसे दानका नाम न दिया जाय। अन्यथा अभिमानरूपी अहि (सर्प) कर्तृत्व-विषदंशसे डस लेगा, जिसका परिणाम अशान्ति—विकलता ही होगी।

५. दानके भेद—अन्न, घृत, मधु, तिल, स्वर्ण, गौ, हाथी, अश्व, अभय, विद्या, कन्या, शय्या, तुला, भूमि-भवन, उपवन तथा तडागदान आदि—ये सभी दान यद्यपि अपने-अपने स्थानपर श्रेष्ठ हैं, किंतु इन सबका आधार जीवनाधायक दान है—अन्नदान।

६. अन्नदान—जबतक दाता-प्रतिग्रहीता [देने-लेनेवाले]-को भूख-भावका अनुभव है, तबतक सकल प्रपंचमें अन्नदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। भूमि, स्वर्ण, वस्त्र आदिको पानेके बाद भी प्राप्तकर्ताके मनमें प्राप्तिकी प्रसन्नता क्षणभर भी नहीं ठहरती, अधिक पानेकी इच्छा, और अच्छा पानेकी इच्छा उसको और अधिक व्याकुल बना देती है, प्रसन्नताकी झीनी-सी चादरसे ढकी ये लालसा अधिक बलवती होकर इस प्रसन्नताको ही निगल जाती है।

सभी दान देश, काल और पात्रकी अपेक्षा करते हैं, किंतु अन्नदानके लिये समागत-अभ्यागत अतिथि चाहे जो हो, वह भगवान्‌का प्रतिनिधि नहीं, अपितु भगवान् ही होता है, **[अतिथिदेवो भव]** अतः बिना नाम-गाँव-जाति-कुल पूछे ही उनका आदरपूर्वक पूजन करे, अन्न [भोजन]-दान करे। वही सर्वश्रेष्ठ पात्र है, जब वे पधारें तभी सर्वश्रेष्ठ समय है, जहाँ वे पधारें वही सर्वश्रेष्ठ देश हो जाता है। भोजनसे तृप्त भोक्ताकी सुतृप्त सन्तुष्ट दृष्टिरूपी सुरसरितामें अवगाहन करके अपने मनको तृप्त करके देखें, जैसा आनन्द वहाँ मिलेगा, वैसा अन्यत्र नहीं मिल सकेगा।

७. अन्नदान सर्वश्रेष्ठ है—(१) अन्य दानोंके पानेपर प्रचुरताकी तृष्णाजन्य आकुलता बढ़ती है, जबकि अन्नदानसे तृप्त्यनुकूल वितृष्णा बढ़ती है।

(२) प्राणिमात्रके जीवनका आधार होनेसे सर्वश्रेष्ठ है।

(३) अन्नदान ब्रह्मदानके समान ही पुण्यप्रद है **[अन्नं ब्रह्मत्वात्]**।

(४) श्रवण, मनन, निदिध्यासन, यज्ञ, योग, तप, भक्ति, ज्ञान, विचार, त्याग, वैराग्य, सत्संग, स्वाध्याय, उपासना, समाज-सेवा आदिका आधार होनेसे अन्नदान सर्वश्रेष्ठ है।

(५) सभी दानोंका आधार अन्नदान ही है।

(६) विश्व-प्रपंचका आधार अन्नदान है।

अन्नदान सद्यः लोकोत्तर तृप्तिकी अनुभूति करानेकी क्रियात्मक साकार उपासना है, किंतु यह उपासना निरभिमानपूर्वक सेवक-भावसे की जाय, स्वामी-भावसे नहीं, स्वयंको कृतकृत्य मानते हुए की जाय। हमारे पुण्यवर्धनके लिये ही सन्त-अतिथि-याचक हमारे द्वारकी शोभा बढ़ाने आते हैं, हमारी सेवाको स्वीकार करके वे हमपर उपकार करते हैं।

यदि कोई सोचे कि पर्याप्त धनधान्यसम्पन्न होनेपर ही दान करेंगे तो शास्त्र कहते हैं, अरे भाई! अपने एक ग्रासमेंसे भी आधा ग्रास देनेमें प्रसन्नता समझो और उद्यत रहो; क्योंकि इच्छानुरूप सम्पदा कब किसको मिल सकेगी—

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किन्न दीयते।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥

(व्यासस्मृति)

८. अन्नदान-महिमा—भारतमें ब्राह्मणको अन्नदान करनेवाला दाता अन्नकणोंके प्रमाणवर्षोंतक शिवलोकमें निवास करता है, ब्राह्मण ही क्या मनुष्यमात्रको अन्नदान करनेवाला शिवलोक पाता है। तीनों कालोंमें अन्नदानसे बढ़कर कोई और दान नहीं। इस दानमें देश-काल-पात्रकी परीक्षाका नियमतक नहीं है—

अन्नदानं च विप्राय यः करोति च भारते।
अन्नप्रमाणवर्षं च शिवलोके महीयते॥
अन्नदानं महादानमन्येभ्योऽपि करोति यः।
अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति।
नात्र पात्रपरीक्षा स्यात् न कालनियमः क्वचित्॥

(श्रीमद्देवीभागवत ९।३०।२—४)

जिस अन्नदानीका अन्न वेदपाठद्वारा पचाया जाता है, उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं—

कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं वेदाभ्यासेन जीर्यति।
तारयेत् पूर्वजान् तस्य दशपूर्वान् दशापरान्॥

९. अन्नमहिमा—अन्न ही प्रजापति है, अन्नसे ही देहसारसर्वस्वभूत रेत बनता है, उसीसे ये प्रजा उत्पन्न होती है—'**अन्नं वै प्रजापतिः ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्तः।**' (प्रश्नोप० १।१४) तपसे ब्रह्म, ब्रह्मसे अन्न उत्पन्न होता है, अन्नसे प्राण, मन, सत्य स्वर्गादि लोक, यज्ञादि कर्म तथा अमृत होता है। यह ब्रह्म ही नामरूपात्मक अन्नरूपसे उत्पन्न होता है। '**तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नं अभिजायते। अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्॥ ""तस्मात् एतत् ब्रह्म नामरूपं अन्नं च जायते॥**' (मुण्डकोपनिषद् १।१।९)

१०. उपाख्यान—पद्मपुराणमें महाराज श्वेतका वर्णन है। उन्हें तपके प्रभावसे ब्रह्मलोक मिला, सकल-सुख साधन मिले, किंतु अन्नजल नहीं मिला, क्षुधा-पिपासासे पीड़ित राजाके पूछनेपर ब्रह्माजी बोले—राजन्! तुमने अन्नजलका दान न करके केवल देहपोषणमात्र किया, अतः अब अपना वह शरीर ही खाओ, भूखके मारे राजा प्रतिदिन भारतमें आकर अपना मृत शरीर खाते थे। एक दिन अगस्त्यऋषिकी कृपासे उन्हें मुक्ति मिली।

जिन्होंने अन्नदान नहीं किया, वे परलोकमें भूखे ही रहते हैं—

'**बुभुक्षिताः यान्ति अनन्नदाः।**' (बृहस्पतिस्मृति)

अन्नदानसे बढ़कर सद्गतिका अन्य कोई उपाय नहीं—

'**अन्नदानात् परं नास्ति प्राणिनां गतिदायकम्॥**'

११. अन्नदानसे ब्रह्मप्राप्ति—महाराज रन्तिदेवकी कथा शास्त्रसिद्ध है, लोकप्रसिद्ध है, उन्होंने स्वयंकी परवाह किये बिना जीवनके आधार अपने भोजन और जलतकको कातर होकर दूसरोंको दे दिया, परिणामतः उसी समय उन्हें भगवान् मिल गये।

पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें राजा विनीताश्वका प्रसंग है—उन्होंने सब कुछ दान किया, किंतु अन्नको उपेक्षित मानकर अन्नदान नहीं किया। अतः उन्हें स्वर्गमें सबकुछ मिला, पर अन्न नहीं मिला। भूख-प्याससे त्रस्त विनीताश्वको भारत आकर शरीर खानेको विवश होना पड़ा। अपने पुरोहितके कृपा-प्रसादसे उन्होंने तिलधेनु, घृतधेनु, रसधेनुका दान किया। फलतः उन्हें स्वर्गमें अन्न मिला। पुरोहितने कहा—हे राजन्! तुमने अपने जीवनमें तुच्छ मानकर अन्नदान नहीं किया था—

'न अन्नं दत्तं तेन किञ्चित्
स्वल्पं मत्वा यथा त्वया।'
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ३६। १२९)

श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें भगवान् विष्णु सनकादिकोंसे कहते हैं, 'मैं ब्राह्मणोंके मुखमें जाती हुई सरस घृताप्लुत आहुतियोंसे जितनी तृप्तिका अनुभव करता हूँ, उतनी तृप्ति मुझे अग्निकुण्डमें प्रदत्त आहुतिसे भी नहीं होती।' (श्रीमद्भा० ३।१६।८)

लोकोक्ति भी है **'मधुरान्नप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।'** इहलोक और परलोक—उभयविध लोकसुख-सौविध्यप्राप्तिका साधन अन्नदान है। अतः प्राणिमात्रको यथाशक्ति अन्नदान अवश्य करना चाहिये।
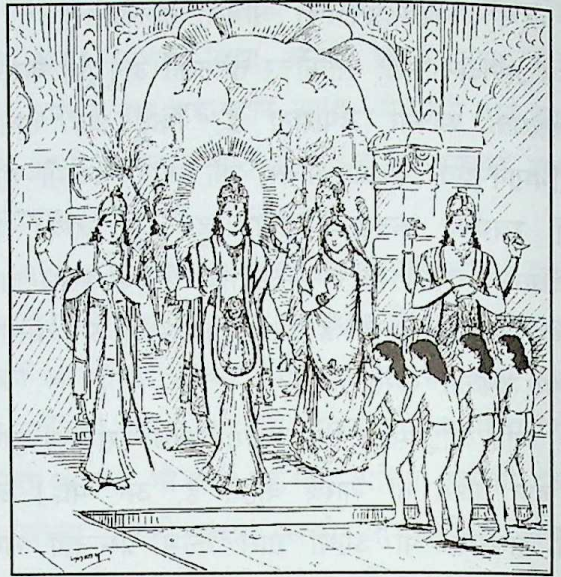
प्रेरक-प्रसंग—

गरीबके दानकी महिमा

गुजरातकी प्रसिद्ध राजमाता मीणलदेवी बड़ी उदार थी। वह सवा करोड़ सोनेकी मोहरें लेकर सोमनाथजीका दर्शन करने गयी। वहाँ जाकर उसने स्वर्ण-तुलादान आदि किये। माताकी यात्राके पुण्य-प्रसंगमें पुत्र राजा सिद्धराजने प्रजाका लाखों रुपयेका लगान माफ कर दिया। इससे मीणलके मनमें अभिमान आ गया कि मेरे समान दान करनेवाली जगत्में दूसरी कौन होगी! रात्रिको भगवान् सोमनाथजीने स्वप्नमें कहा—'मेरे मन्दिरमें एक बहुत गरीब स्त्री दर्शन करने आयी है, तू उससे उसका पुण्य माँग।'

सबेरे मीणलदेवीने सोचा, 'इसमें कौन-सी बड़ी बात है। रुपये देकर पुण्य ले लूँगी।' राजमाताने गरीब स्त्रीकी खोजमें आदमी भेजे। वे यात्रामें आयी हुई एक गरीब ब्राह्मणीको ले आये। राजमाताने उससे कहा—'अपना पुण्य मुझे दे दे और बदलेमें तेरी जितनी इच्छा हो, उतना धन ले ले।' उसने किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया। तब राजमाताने कहा—'तूने ऐसा क्या पुण्य किया है, मुझे बता तो सही।'

ब्राह्मणीने कहा—'मैं घरसे निकलकर सैकड़ों गाँवोंमें भीख माँगती हुई यहाँतक पहुँची हूँ। कल तीर्थका उपवास था। आज किसी पुण्यात्माने मुझे जैसा-तैसा थोड़ा-सा बिना नमकका सत्तू दिया। उसके आधे हिस्सेसे मैंने भगवान् सोमेश्वरकी पूजा की। आधेमेंसे आधा एक अतिथिको दिया और शेष बचे हुए से मैंने पारण किया। मेरा पुण्य ही क्या है! आप बड़ी पुण्यवती हैं; आपके पिता, भाई, स्वामी और पुत्र—सभी राजा हैं। यात्राकी खुशीमें आपने प्रजाका लगान माफ करवा दिया, सवा करोड़ मोहरोंसे शंकरजीकी पूजा की। इतना पुण्य कमानेवाली आप मेरा अल्प-सा दीखनेवाला पुण्य क्यों माँग रही हैं? मुझपर कोप न करें तो मैं निवेदन करूँ।'

राजमाताने क्रोध न करनेका विश्वास दिलाया। तब ब्राह्मणीने कहा—'सच पूछें तो मेरा पुण्य आपके पुण्यसे बहुत बढ़ा हुआ है। इसीसे मैंने रुपयोंके बदलेमें इसे नहीं दिया। देखिये—१. बहुत सम्पत्ति होनेपर भी नियमोंका पालन करना, २. शक्ति होनेपर भी सहन करना, ३. जवान उम्रमें व्रतोंको निबाहना और ४. दरिद्र होकर भी दान करना—ये चार बातें थोड़ी होनेपर भी इनसे बड़ा लाभ हुआ करता है।'

ब्राह्मणीकी इन बातोंसे राजमाता मीणलदेवीका अभिमान नष्ट हो गया। शंकरजीने कृपा करके ही ब्राह्मणीको भेजा था।

दानदर्शनकी मीमांसा

(एकराट् पं० श्रीश्यामजीतजी दूबे 'आथर्वण')

देनेकी प्रक्रियाका नाम दान है। स्वेच्छया दूसरेको देना—स्वत्वको त्यागकर परार्थ समर्पित करना दान है। अपने अधिकारकी वस्तुको संकल्पपूर्वक देना दान है। आत्मकल्याणार्थ देना दान है। विचारपूर्वक देना दान है। प्रसन्न मनसे देना दान है। लेनेवाला प्रसन्न मनसे उसे स्वीकार करे तो वह दान है। दाता और ग्रहीताके बीच जो क्रिया है, वह दान नामसे जानी जाती है। दानकी यह शर्त है कि दाता देकर तुष्ट हो तथा ग्रहीता पाकर पुष्ट हो। इस प्रकार दान प्रसन्नताका जनक है। दान आह्लादका स्रोत है। नीतिशास्त्रके अनुसार शत्रुको जीतने या अपने अधिकारमें रखनेके चार उपायोंमेंसे एक उपाय दान है। **दा ददाति+ल्युट्=दानम्**। यह नपुंसकलिंग शब्द है। देना, समर्पण करना, सौंपना, स्वीकार करना, अपनाना आदि इसके अर्थ हैं।

दानः—यह पुंलिंग शब्द है। यहाँ दानका अर्थ है—रक्षा-साधन, सुरक्षित होनेका उपाय, पापको छेदने या काटनेकी विधि, दुरितनाशका उपाय, पुण्य-संग्रहकी प्रविधि, सबल होनेका मार्ग, निर्विघ्न जीवन जीनेका अमोघ कर्म, प्राणप्रद, बलद, सुखद, शंकर, शुभंकर।

वैदिक परम्परा एवं साहित्यमें दानका पर्याय दक्षिणा है। यह स्त्रीलिंग शब्द है। इसे यज्ञ (दान)-की पत्नी कहा गया है। बिना दक्षिणा (दान)-के यज्ञ (अग्निमें आहुति डाला जाना) अपूर्ण होता है। जिससे बलकी प्राप्ति हो और इस प्राप्त बलसे दुःखकी निवृत्ति हो, सुखका सृजन हो, वह दक्षिणा है।

दानके अन्तर्गत दो क्रियाएँ एक साथ घटित होती हैं। जैसे—लेना-देना, रखना-हटाना, भरना-निकालना, पूरा करना-रिक्त करना, आगमन-निगमन, पोषण-शोषण, ग्रहण-निग्रहण, भावन-अभावन, प्राप्त करना-त्यागना, खादन-उत्सर्जन, बढ़ना-क्षीण होना, उठना-दबना, उभरना-धँसना, उन्नति-अवनति, उदय-अस्त। यह सब प्राकृतिक है और दान-क्रियाका युगल पक्ष है। सूर्य अपनी सहस्र रश्मियोंसे भूजलका शोषणकर पुनः उसे वर्षाके जलके रूपमें भूमिपर गिराता है। सूर्यके दान-धर्मके दो पक्ष हैं—अन्धकार-प्रकाश, शीत-ताप, रात्रि-दिन, निद्रा-जागरण, सायं-प्रातः, पोषण-शोषण, उत्पादन-नाशन, उठना-गिरना, छिपना-प्रकट होना, बाँधना-मुक्त करना, प्रसाद-विषाद, सुकुमारता-क्रूरता। लग्न (शरीर तथा आत्मा)-का कारक सूर्य है। इसलिये सूर्यके ये सभी धर्म जातकमें घटित होते हैं। सूर्य महादानी है तो जातक भी सीमित दानी है। यदि जातक अपने इस सहज दान-धर्मका पालन नहीं करता तो वह मृत्यु (दुःख)-को प्राप्त होता है, जबकि जातकका परम स्वरूप परमात्मा सूर्य सतत दान-धर्मपर चलते रहनेके कारण शाश्वत (अमर्त्य) है।

दान (दिया जाना) तथा आदान (लिया जाना) प्राकृतिक एवं समवेत है। आदान-प्रदान सहज है। यह प्रकृतिमें हो रहा है। हम यह समझते हैं कि हम इसे कर रहे हैं, यह झूठ है। ऐसा हो रहा है, यही सच है। हम साँस ले रहे हैं तथा साँस निकाल रहे हैं, यह असत्य है। हमारी साँस चल रही है या आ-जा रही है, यही सत्य है; क्योंकि साँसके लेने एवं निकालनेमें हमें प्रयत्न नहीं करना होता। इसी प्रकार शरीरमें रक्तका परिवहन हो रहा है (रक्त आ-जा रहा है, हृदयका संकोच एवं प्रसार हो रहा है)। ऐसे ही मस्तिष्क या मनमें विचार चल रहे हैं (विचार उठते, उदित होते तथा गिरते, अस्त होते हैं)। सूर्य प्रकाश दे रहा है, अन्धकार ले रहा है—यह प्रातःकालीन घटना है। सूर्य अन्धकार फैला रहा है, प्रकाश समेट रहा है—यह सायंकालीन घटना है। इस लेन-देनका कर्ता कौन है? लोकमें हम अपनेको या अन्य किसीको कर्ता मानते हैं, किंतु यह जिसमें एवं जिससे घटित हो रहा है, वह अनिर्वाच्य है।

लोकमें दान-प्रक्रिया तभी सम्पन्न होती है, जब लेनेवाले एवं देनेवाले दोनों विद्यमान हों। हाथसे लिया जाता है। हाथसे दिया जाता है। हाथ दो हैं। एक हाथसे लिया जाता है, दूसरे हाथसे दिया जाता है। हाथ भगवान् है। इसमें वेद प्रमाण है। **'अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।'** (अथर्ववेद ४।१३।६) यह मेरा एक हाथ भगवान् है। यह मेरा दूसरा हाथ भगवान्से भी बढ़कर है। जिस हाथसे लिया जाता है, वह भगवान् है। जिस हाथसे दिया जाता है, वह भगवान्से भी बढ़कर है। लेनेवाला श्रेष्ठ/उत्तम है तो देनेवाला श्रेष्ठतर/उत्तमतर है। लेने और देनेवाले दोनों महत्त्वपूर्ण एवं आदरणीय हैं।

सृष्टि महिमामयी है। इसका हर अवयव (जीव या पदार्थ) महिमामण्डित है। इसलिये काल एवं पात्रके अनुसार सब कुछ देय है। यह सृष्टि विधाताका दान है।

दानका सरल अर्थ है—त्याग। जो अकिंचन किंवा दरिद्र है, वह क्या त्याग करेगा? जिसके पास होता है, वही त्याग करता है। दानके लिये आवश्यक है कि दाता सम्पन्न, संयुक्त, आढ्य, श्रीमान्, श्रीधर हो। हर व्यक्ति आपन्न है। हर व्यक्तिमें अभाव भी है। भाव एवं अभावके मध्य सन्तुलन स्थापित करनेके लिये जो क्रिया की जाती है, उसका नाम दान है। देनेके लिये सबके पास बहुत कुछ है। अतः देना अनिवार्य मानकर देते रहना चाहिये। देनेसे कई गुना अधिक बिना प्रयास ही प्राप्त होता है; बल्कि देनेमें तो प्रयास करना पड़ता है। देनेसे धनकी शुद्धि होती है। देनेके बाद जो बचता है, वह धन पवित्र होता है। उदाहरणार्थ—कुएँसे हम जल निकालकर उपयोगमें लाते हैं। इससे कुआँ कभी सूखता नहीं। यदि कुएँका जल न निकालें तो जल कालान्तरमें दूषित होकर अपेय हो जाता है। निकालते रहनेसे कुएँमें शुद्ध जल स्वतः आकर इकट्ठा हो जाता है। यह प्राकृतिक व्यवस्था है—सायास देनेसे अनायास आता है। बुद्धिमान् देता है। मूर्ख देना नहीं चाहता। इसलिये दाताको पण्डित तथा अदाताको मूढ़ कहते हैं।

धनका दान किया जाता है। धन दो प्रकारका है—चर और अचर। अन्न, वस्त्र, रस, पशु, देह, मन, प्राण आदि चर धन हैं। भूमि, भवन, वृक्ष आदि अचर धन हैं। जो दिया जाता है, कालान्तरमें वही मिलता है। जब हम किसीको सुख देते हैं तो हमें सुख मिलता है। सुखका दान करते ही हमारा दुःख स्वतः भाग जाता है। दुःखका चला जाना ही सुखकी प्राप्ति है। जब हम किसीको दुःख देते हैं तो बदलेमें हमें दुःख मिलता है। इसलिये कहा गया है—

जो तोको काँटा बुवै ताहि बोउ तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं वाको हैं तिरसूल॥

हम जो देते हैं, वही पाते हैं। यह एक सुनिश्चित सिद्धान्त है। कहावत है—***'बोया पेड़ बबूल का आम कहाँ से खाय।'*** इसलिये हमें चाहिये कि जो हमें पाना हो, उसीका दान करें। प्रकृतिमें जो दिया जाता है, वह उस दिये हुएको कई गुना करके दाताको देती है। इसी प्रकार महापुरुषोंको जो दिया जाता है, वे भी उसे कई गुना करके दाताको लौटाते हैं। सत्पुरुषोंको दिया दान कभी विफल नहीं होता। दाता जिसे देता है, वह उसके पाप वा पुण्यको स्वतः प्राप्त करता है। यदि हम पुण्यात्माको देंगे तो उसका पुण्य हमें मिलेगा। यदि हम पापात्माको देंगे तो उसका पाप हमें प्राप्त होगा। अतएव देते समय पात्र-अपात्रका विचार किया जाता है। शास्त्रवचन है—

पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत्।
(महाभारत)

दाताके पापोंको जलानेकी जिसमें शक्ति हो, उसे ही दान ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा दान लेनेवालेकी दुर्गति निश्चित है। यही नहीं उसके पुत्रादि भी दानके दुष्प्रभावको भोगते हैं। दान लेना तो ब्राह्मणका धर्म है। तपी एवं याज्ञिक ब्राह्मण तज्जन्य दुष्प्रभावको समाप्त कर देते हैं। दान लेनेवालेको दान देते रहना चाहिये। दानसे प्राप्त संचित धन संचयकर्ताको खा जाता है। इस सम्बन्धमें एक जैन मुनिने यह उपदेश दिया है—संचय पाप है, आवश्यकतासे अधिक रखना पाप है, अपरिग्रह धर्म है। अधिक होनेपर हमें धन लुटाना चाहिये। बाँटनेके लिये धनार्जन करना चाहिये। कुण्डलीका दूसरा भाव धन है तथा दूसरा भाव

मारक भी है। इसलिये धनका आधिक्य एवं संग्रह मृत्यु (आपत्तिका केन्द्र) है। मृत्युसे बचनेके लिये धन (अन्नका तुलादान) देना पथ्य है। यक्षने युधिष्ठिरसे प्रश्न किया—
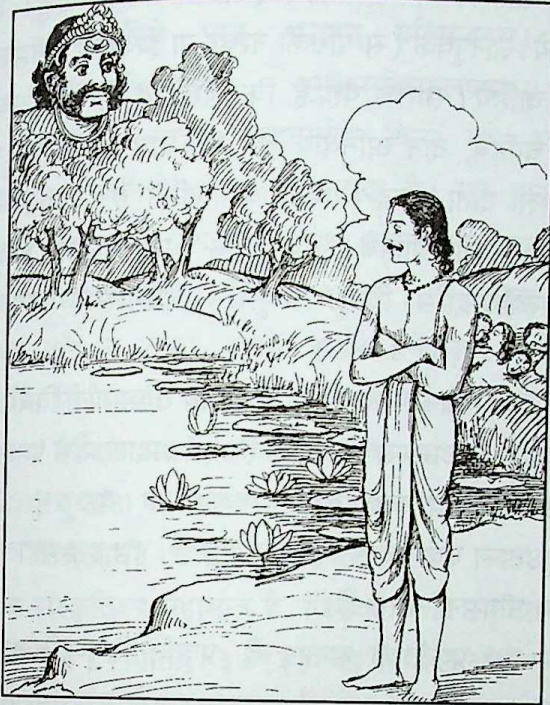
'किंस्विन् मित्रं मरिष्यतः ?' (महा० वनपर्व ३१३। ६३)

मृत्युके समीप पहुँचे हुए पुरुषका मित्र कौन है? युधिष्ठिरने उत्तर दिया—

'दानं मित्रं मरिष्यतः' (महा० वनपर्व ३१३। ६४)

सद्यः मरनेवाले मनुष्यका मित्र है, दान।

मृत्युके मुखमेंसे जातकको निकालनेके लिये दान एकमात्र विकल्प है। संकटनिवारणार्थ दान एक अमोघ उपाय है। आपत्तिको टालने, मिटाने एवं हटानेका विश्वस्त साधन है, दान। मनुष्यके कल्याणका प्रशस्त मार्ग है, दान। प्राणके संकटमें पड़नेपर दान अचूक शर है। धन देनेसे प्राणकी रक्षा होती है, भय दूर होता है, शुभका सृजन होता है। कथन है—

पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

आधिदैविक, आधिभौतिक, आधिदैहिक आपत्तियोंसे छुटकारा पानेका सरल साधन है—दान। समस्त प्रकारके भयोंका नाश या निवारण दानसे हो जाता है। जब घरमें जातकका जन्म होता है तो उसके अरिष्टकी शान्तिके लिये दान दिया जाता है। जब घरमें किसीका निधन होता है तो और्ध्वदैहिक दान दिया जाता है।

संकल्पपूर्वक देनेसे दान पुष्ट एवं अभीष्ट फलवाला होता है। कर्तव्य-बोधसे देनेपर सर्वमंगलकर होता है। चाहे जैसे भी दिया जाय, दानसे कल्याण होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजका कथन है—***'जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥'***

सकाम भावसे दान देनेपर व्यक्ति पुण्यके बन्धनसे बँधता है। दातापनके अभिमानसे च्युत होकर निष्काम भावसे देनेपर वह बँधता नहीं। दान न लेनेवाला बन्धनसे मुक्त रहता है तथा दान लेनेवाला बन्धनको प्राप्त होता है। कहते हैं—

'आदानाद् बध्यते जन्तुर्निरादानात् प्रमुच्यते।'

(हरिवंशपुराण, भविष्यपर्व १७। ६८)

इसलिये देते रहना चाहिये, कभी याचना (दान लेनेकी इच्छा) नहीं करनी चाहिये। **'दद्यान्न च याचेत् कदाचन॥'** (महाभारत, आदिपर्व ८७। १३)

ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको ही प्रतिग्रह (दान) लेनेका अधिकार है—**'ब्राह्मणो ब्रह्मविच्च प्रतिग्रहे वर्तते।'** (आदिपर्व ९२। १२)

—यह वाक्य उस राजा ययातिका है, जिन्होंने दानसे स्वर्गको जीत लिया था। दान देना बहुत बड़ा कार्य है। **'दानं हि महती क्रिया॥'** (अनु० पर्व ९। २६) दान देनेसे बढ़कर पृथ्वीपर कोई कठिन काम नहीं। **'दानान्न दुष्करं तात पृथिव्यामस्ति किञ्चन।'** (वनपर्व २५९। २८) पात्र-अपात्रका परिज्ञान न होनेसे दान-धर्मका पालन भी कठिन है। कहा गया है—

'अर्हानर्हापरिज्ञानाद् दानधर्मोऽपि दुष्करः॥'

(शान्तिपर्व २६। ३०)

ब्राह्मणोंको धर्मार्थ, नटनर्तकोंको यशके लिये, नौकरों-सेवकोंको नियन्त्रणमें रखनेके लिये तथा भय-निवृत्तिके लिये राजा (शासक)-को दान देना चाहिये—यह नीति है।

धर्मार्थं ब्राह्मणे दानं यशोऽर्थं नटनर्तके।
भृत्येषु संग्रहार्थं च भयार्थं चैव राजसु॥

सदैव प्रयोजनरहित होकर योग्य व्यक्तिको दान देना चाहिये। धर्मबुद्धि (कर्तव्यभाव)-से दिया गया धर्मदान दाताको मुक्त कर देता है—

पात्रेभ्यो दीयते नित्यं अनपेक्षप्रयोजनम्।
केवलं धर्मबुध्या तु धर्मदानं प्रमुच्यते॥

दानके फल और महत्त्वका प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—

दानेन भूतानि वशीभवन्ति दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैर्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥

अर्थात् दानसे सभी प्राणी वशमें होते हैं। दानसे शत्रुता मिट जाती है। दानसे पराया भी भाई बन जाता है। दानसे सभी संकट दूर होते हैं।

दानकी महत्ताका प्रतिपादन करनेवाला यह मन्त्र द्रष्टव्य है—

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः॥

(ऋग्वेद १।१२५।६)

दक्षिणावन्तः = दानवताम् = दान देनेवालोंके। चित्रा = नानाधनानि। सूर्यासः = कीर्तिः। भजन्ते = **सेवन्ते। प्र तिरन्त** (ते) = प्रवर्धयन्ति।

इस मन्त्रका अर्थ है—दान देनेवाले हर प्रकारके धन (भोग) प्राप्त करते हैं। दानीजन विश्वव्यापी कीर्ति अर्जित करते हैं और सूर्यकी तरह चमकते हैं। दान करनेवाले अमृत (आनन्द) प्राप्त करते हैं। दक्षिणा देनेवाले दीर्घायुष्य प्राप्त करते हैं। अतएव यश, भोग, आनन्द एवं आयुष्य (आरोग्य)-के लिये दान करना चाहिये।

दानके दो सूत्र हैं—१. **'दानं परं किञ्च सुपात्रदत्तम्,'** २. **'देयं दीनजनाय च वित्तम्।'** (शंकराचार्य)

प्रश्न—सबसे उत्तम दान क्या है?

उत्तर—जो सुपात्रको दिया जाय।

प्रश्न—किसे देना चाहिये?

उत्तर—दीन (विनम्र)-को धन देना चाहिये। दीनका अर्थ निर्धन नहीं है।

दान देनेके विषयमें शास्त्रका यह स्पष्ट निर्देश है—

श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्॥ (तैत्तिरीय उपनिषद्)

कहनेका भाव यह है आदरके साथ देना चाहिये, बिना सम्मानके देना चाहिये, धनाढ्य होनेसे (के कारण) देना चाहिये। लज्जाके कारण (लोकलाजको रखते हुए) देना चाहिये। भयके कारण (आपत्ति-निवारणहेतु) देना चाहिये। ज्ञानपूर्वक (सम्पत्तिको नश्वर या ईश्वरकी समझकर) देना चाहिये। सारांश यह है कि जैसे भी हो हमें अवश्य देना चाहिये, दान अनिवार्य धर्म है। दान लेनेवालेसे दान देनेवाला दाता (इन्द्र/स्वामी) बड़ा होता है। दाताका हमें सम्मान करना चाहिये। वाक्य है—**'भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम्॥'** (अथर्ववेद १३।४।४७)

इस मन्त्रका भाव है कि शचीपति रश्मिमाली किरणवान् सूर्य दाता है, अन्य सभी अदाता हैं। इन अदाताओंसे दाता सूर्य श्रेष्ठ है। यह प्राणदाता है। यह व्यापक है। यह प्रभू (बार-बार उत्पन्न एवं प्रच्छन्न रहनेवाला) है। हम इस महात्माकी नित्य उपासना करते हैं।

हम प्रकृतिकी सन्तान हैं, प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। अतएव दान त्रिगुणात्मक है। सत्के दानसे सुख मिलता है। रजस्के दानसे सुख एवं दुःख दोनों मिलते हैं। तमस्के दानसे केवल दुःख प्राप्त होता है। तीन गुण (सत्-रज-तम) होनेसे तीन प्रकारके पदार्थ, तीन प्रकारके दान, दाता, ग्रहीता एवं परिणाम हैं। ज्ञान देना सात्त्विक दान है। अज्ञान परोसना तामस दान है। भौतिक पदार्थोंको भोगार्थ देना राजस दान है। सत्संगसे सात्त्विक दानकी सिद्धि है। पद-प्रतिष्ठाका मिलना राजस दानका फल है। मादक द्रव्योंकी प्राप्ति एवं हिंसाका होना तामस दानका परिणाम है। व्यक्ति अपने स्वभावके अनुसार दान देता एवं लेता है। देने एवं लेनेमें रसका होना अनिवार्य है। रसहीन दान व्यर्थ है। दान देनेमें जिन्हें रस (आनन्द) मिलता है, वे निश्चय ही महान् हैं।

दान पवित्र कर्म है। दानसे धन शुद्ध होता है, मन प्रसन्न रहता है, बुद्धिमें विवेक आता है। वे धन्य हैं, जो दानरत हैं। आदान-प्रदान-अनुदान तथा अवदानके चतुर्व्यूहसे यह संसार चल रहा है। प्रत्येक लौकिक समस्याका निदान है—दान। अपने इष्टको अपना मन देना ध्यान है। ध्यानसे शान्ति मिलती है—यही दानका लक्ष्य है।

दानतत्त्वविमर्श

(आचार्य श्रीशशिनाथजी झा)

कूर्मपुराण उपरिविभाग (२६। २)-में कहा गया है—

अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥

अर्थात् सत्पात्रमें श्रद्धापूर्वक किये गये अर्थका प्रतिपादन (विनियोग) दान कहलाता है। यह दान इस लोकमें भोग और परलोकमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

आद्यवेद ऋग्वेद (१०। ११७। ६)-के अनुसार जो मनुष्य दान न देकर अपने अर्थका केवल अपने ही स्वार्थके लिये खर्च करता है, वह पापको ही खाता है—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

'केवलाघो भवति केवलादी'—यह त्यागमूलक वैदिक संस्कृतिका महामन्त्र है, जिसका वर्णन स्मृतिग्रन्थोंमें भी मिलता है। गीता (३। १३)-का निम्न श्लोक पूर्वोक्त मन्त्रकी लोकप्रिय व्याख्या तथा अक्षरशः अनुवाद है—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

अर्थात् यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापीलोग अपने शरीरका पोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं।

मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक ही अर्थका उपार्जन करे; क्योंकि न्यायसे उपार्जित अर्थका ही दान सफल होता है। श्रीमद्देवीभागवत (३। १२। ८)-में कहा भी गया है—

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥

अन्यायके द्वारा उपार्जित किये गये धनसे यदि पुण्यकार्य किया जाता है तो इस लोकमें यशकी प्राप्ति नहीं होती और परलोकमें भी उसका कोई फल नहीं मिलता है।

महाभारतके वनपर्व (२५९। २८)-में कहा गया है कि पृथ्वीपर दानसे ज्यादा मुश्किल कार्य कोई नहीं है—

दानान्न दुष्करं तात पृथिव्यामस्ति किञ्चन।

अनेक कष्टों एवं विभिन्न प्रयासोंसे प्राप्त धनका त्याग करना यथार्थमें कठिन काम है, लेकिन मनुष्य जो दान दूसरेको देता है, वास्तवमें वही धन उसका है।

अतः अथर्ववेद (३। २४। ५) हमें आदेश देता है कि सैकड़ों हाथोंसे इकट्ठा करो और हजारोंसे बिखेरो यानी दान करो—**'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।'**

महर्षि वेदव्यासजी भी कहते हैं कि विशेष गुणसम्पन्न व्यक्तिके लिये जो कुछ तुम देते हो, प्रतिदिन स्वयं जो खाते-पीते हो, उसी धनको मैं धन कहता हूँ और जो केवल धन संचित करता है, वह तो केवल दूसरोंके लिये धन जुटाता है। सैकड़ों प्रयाससे प्राप्त, प्राणोंसे भी अधिक प्रिय धनकी केवल एक ही उत्तम गति है—दान, इससे भिन्न तो विपत्ति ही है—

यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने।
तत्ते वित्तमहं मन्ये धृतं कस्यापि रक्षसि॥
आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः।
एकैव गतिरर्थस्य दानमन्या विपत्तयः॥

विश्ववन्द्य वेद कहता है कि दान देनेवालेकी सम्पदा घटती नहीं; बढ़ती है। अर्थात् सत्कार्योंमें लगाया धन बढ़ता ही रहता है—

उतो रयिः पृणतो नोप दस्यति।
(ऋक्० १०। ११७। १)

धरतीमाता सात तत्त्वोंपर टिकी हैं, जिनमें एक तत्त्व दानशीलता भी है—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

ऐसा विचारकर श्रद्धा और भक्तिके साथ पुण्यप्रदेशमें, पुण्यकालमें, पुण्यात्माको यथासाध्य दान देना चाहिये। गीता (१७। २०)-में कहा गया है कि दान देना ही शुभकर्म है, ऐसा मानकर जो दान देश, काल और पात्रका विचार करके प्राप्त होनेपर उपकार न करनेवालेके प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहलाता है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

गोस्वामी तुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया कि जिस किसी भी प्रकारसे दान दिया जाय, वह कल्याण ही करता है—

जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

(रा०च०मा० ७।१०३ ख)

भर्तृहरिने भी **'दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो'** आदि कहकर दानकी महत्ता एवं उसकी प्राथमिकताको ही सिद्ध किया है।

शातातप ऋषिका कथन है कि प्रतिग्राहीके पास स्वयं जाकर जो दान देता है तथा बिना माँगे किसी सत्पात्रको दान देता है, सागरान्त हो जाता है, पर उस दानका अन्त नहीं होता—

अभिगत्य तु यद्दानं यच्च दानमयाचितम्।
विद्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव विद्यते॥

ऋषि संवर्तकी उक्ति है कि श्रोत्रिय, दरिद्र, विशेषकर जिसे आवश्यकता हो ऐसे ब्राह्मणके लिये जो दान दिया जाता है, वह दान शुभकारक होता है—

श्रोत्रियाय दरिद्राय अर्थिने च विशेषतः।
यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम्॥

दानके सम्बन्धमें महर्षि व्यासजीका यह कथन कि माता-पिता, भाई-बहन, बेटी-बेटा और पत्नीप्रभृतिको जो दान दिया जाता है, वह अन्तहीन स्वर्गका मार्ग प्रशस्त करता है। तरस खाकर किसी अपात्रको भी जो दान दिया जाय, गरीबों, अन्धों और असहायोंको दिया जाय, वह दान अनन्तकालीन फलदायक होता है—

मातापितृषु यद्दानं भ्रातृस्वसृसुतादिषु।
जायात्मजेषु यद्दानं सोऽनन्तः स्वर्गसंक्रमः॥
दयामुद्दिश्य यद्दानमपात्रेभ्योऽपि दीयते।
दीनान्धकृपणेभ्यश्च तदानन्त्याय कल्प्यते॥

जो दान न कम हो और न ज्यादा, वह अभ्युदयकारक होता है। श्रद्धा और शक्तिके अनुसार दिया गया दान विकासका आवास होता है। प्रयोजनकी अपेक्षा किये बिना केवल धर्मबुद्धिसे जो सत्पात्रको दान दिया जाता है, वही असली धर्म है—

नाल्पत्वं वा बहुत्वं वा दानस्याभ्युदयावहम्।
श्रद्धाशक्तिश्च दानानां वृद्धिक्षयकरं हि ते॥
पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम्।
केवलं धर्मबुद्ध्या यत् तच्च धर्मः प्रचक्षते॥

(देवल)

ऋग्वेद (१।१२५।६)-में आया है कि दानी अमरत्व पाते हैं और दीर्घायु प्राप्त करते हैं—**'दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः॥'**

वसिष्ठस्मृति (२९।१)-में भी कहा गया है कि दान-धर्मका पालन करनेसे सभी कामनाओंकी प्राप्ति हो जाती है—**'दानेन सर्वकामानवाप्नोति।'**

कूर्मपुराण उपरिविभाग (२६।५७)-में कहा गया है कि स्वर्ग, आयु तथा ऐश्वर्यकी अभिलाषा और पापकी शान्तिके इच्छुक तथा मोक्षार्थी पुरुषको चाहिये कि ब्राह्मणोंको भरपूर दान करे—

स्वर्गायुर्भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये।
मुमुक्षुणा च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यस्तथाऽन्वहम्॥

ऋग्वेद (१०।११७।७) भी न कमानेवाले त्यागीसे कमाकर दान करनेवालेको अच्छा मानता है—

'पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात्॥'

महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है कि अन्य वर्णोंकी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसमें भी जो कर्मनिष्ठ ब्राह्मण हैं, वे श्रेष्ठतर हैं। उन कर्मनिष्ठोंमें भी विद्या तथा तपस्यासे युक्त ब्रह्मतत्त्ववेत्ता श्रेष्ठतम हैं। गाय, भूमि, तिल, सोना प्रभृति सत्पात्रकी पूजाकर उन्हें दानमें देना चाहिये। अपना कल्याण चाहनेवाले तत्त्वज्ञ व्यक्ति अपात्रको दान नहीं देते। जो ब्राह्मण विद्वान्, धर्मनिष्ठ, तपस्वी, सत्यवादी, संयमी, ध्यानी और जितेन्द्रिय हों, वे ही दानके पात्र होते हैं—

गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम्।
नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता॥
विद्यावन्तश्च ये विप्राः सुव्रताश्च तपस्विनः।
सत्यसंयमसंयुक्ता ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः॥

विद्यासे हीन ब्राह्मणको दान नहीं लेना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मणका निष्कारण धर्म होता है, वेद-वेदांग पढ़ना—**'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो**

ज्ञेयश्च' (महाभाष्यकार पतंजलि)। अतः अविद्यावान् ब्राह्मणके द्वारा दान लेनेपर वह प्रदाता और स्वयंको अधोगामी बना देता है। अथर्ववेद (२०।८२।१) भी कहता है कि कुपात्रोंको दान मत दो—**'न पापत्वाय रासीय॥'**

श्रीमद्देवीभागवत (९।३३।१४)-में लिखा है कि दूसरोंके सरोवरमें जो अपना सरोवर बनाता है और दुर्भाग्यसे यदि उसे वह दान कर दे तो दाता मरणोपरान्त मूत्रकुण्डमें गिरता है—

परकीयतडागे च तडागं यः करोति च।
उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः॥

शिवपुराण (उमासंहिता १२।१)-में कहा गया है कि जलका दान समस्त दानोंमें श्रेष्ठ दान है। यह सदा सभी जीवोंको पूर्ण तृप्त करनेवाला, जीवन देनेवाला होता है—

पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा।
सर्वेषां जीवपुञ्जानां तर्पणं जीवनं स्मृतम्॥

गरुडपुराण (आचारकाण्ड ५१।२२-२३)-में कहा गया है कि जलदानसे तृप्ति, अन्नदानसे अक्षयसुख, तिलदानसे अभीष्ट सन्तान, दीपदानसे उत्तम नेत्र, भूमिदानसे समस्त अभिलषित पदार्थ, सुवर्णदानसे दीर्घायु, गृहदानसे उत्तम भवन तथा रजतदानसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है—

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥

मनु महाराजने भी कहा है कि जलका दान यानी प्यासेको पानी देनेवाला पूर्ण तृप्तिको प्राप्त करता है। भूखेको अन्नका दान करनेवाला अक्षय सुखकी प्राप्ति करता है। तिलोंका दान करनेवाला मनचाही सन्तान पाता है और दीपकका दान करनेवाला उत्तम नेत्र पाता है—

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥
(मनु० ४।२२९)

भविष्यपुराण (१५१।१८)-में कहा गया है कि दानोंमें तीन दान अत्यन्त श्रेष्ठ हैं—गोदान, पृथ्वीदान और विद्यादान। ये दुहने, जोतने और जाननेसे सात पीढ़ीतक पवित्र कर देते हैं। विद्यादान तो सर्वोत्कृष्ट दान है ही; क्योंकि चोर इसे चुरा नहीं सकता, न ही कोई इसे नष्ट कर सकता है। यह निरन्तर बढ़ता ही रहता है और लोगोंको स्थायी सुख देता है, यानी विद्यासे जीवनपर्यन्त तृप्ति मिलती है।

गो, भूमि, तिल, स्वर्ण, घी, वस्त्र, धान्य, गुड़, चाँदी और नमकके दानको पण्डितोंने दस दान कहा है—

गोभूतिलहिरण्याज्यं वासो धान्यं गुडानि च।
रौप्यं लवणमित्याहुः दशदानानि पण्डिताः॥

शास्त्रोंका कथन है कि पूर्वमुख होकर दान दें, उत्तरमुख दान स्वीकार करें। देय द्रव्य देवताका नामकीर्तन करते हुए अपना नाम एवं गोत्रका उच्चारणकर उत्तरमुख ब्राह्मणको देकर अन्तमें स्वस्ति कहलवाना चाहिये—

दद्यात्पूर्वमुखं दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः।
नामगोत्रे समुच्चार्य प्राङ्मुखौ देवकीर्तनात्।
उदङ्मुखाय विप्राय दत्त्वान्ते स्वस्ति वाचयेत्॥

कलियुगमें गृहस्थधर्मके अन्तर्गत दान ही एक सबसे श्रेष्ठ कर्म कहलाता है—**'दानमेकं कलौ युगे॥'** (मनु० १।८६) इसलिये जितनी शक्ति हो उतना दान अवश्य करना चाहिये। दानधर्मसे बढ़कर श्रेष्ठ धर्म संसारमें प्राणियोंके लिये दूसरा नहीं है। यशकी इच्छासे कभी दान न दें, न भयभीत होकर दें और न ही पूर्वोपकारीको दें; क्योंकि यह बदला चुकानेके समान होगा, पुण्य कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। गौ, ब्राह्मण, देवताको दिये जानेवाले दानसे जो मनुष्य मोहवश दूसरोंको रोकता है, वह तिर्यक् (पक्षी) योनिको प्राप्त करता है।

अथर्ववेद (३।२०।५)-में कहा गया है कि **'रयिं दानाय चोदय'** अर्थात् दान देनेके लिये धन कमाओ। संग्रह करने या विलासिताके लिये धन नहीं है। इस प्रकार दान देना मनुष्यका परम पुनीत कार्य है। इसे कर्तव्य समझकर दिया जाना चाहिये। यही कारण है कि धर्मशास्त्रोंमें प्रत्येक पुण्यतिथि-पर्वपर स्नान आदिके बाद दानका विधान मिलता है।

अतः ऐहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याणके लिये यथाशक्ति दान अवश्य करना चाहिये।

सम्पत्तिको विपत्ति बननेसे बचाता है—दान

(श्रीबालकविजी वैरागी)

महात्मा संत कबीरके अध्येता और शोधकर्ता ही इस प्रचलित दोहेके बारेमें प्रामाणिक तौरपर कुछ कह सकते हैं कि यह दोहा कबीर साहबका है या पाठान्तर, रूपान्तर अथवा अवान्तरसे चल रहा है। जो भी हो मौलिकतापर बहस किये बगैर हम दोहेको मर्म, धर्म और कर्मसे समझ लें तो बहुत बड़ी बात होगी। दोहा है—

चिड़ी चोंच भर ले गई नदी घट्यो नहिं नीर।
दान दिये धन ना घटे कह गये दास कबीर॥

अपने प्रकट और प्रचलित लोकार्थके मामलेमें दोहा किसीका मोहताज नहीं है। पंक्तियोंका मर्म, धर्म, कर्म और अर्थ स्पष्ट है। दान देनेसे धन घटता नहीं है। चिड़ियाकी चोंचमें समाता ही कितना है? चोंचमें समायी इस एक बूँदसे नदीका नीर, उसका प्रवाह, उसकी गति, उसका धर्म, उसका कर्म, उसकी प्रांजलता रत्तीभर भी कम नहीं होती। अपने सागर-लक्ष्यसे वह भटकती भी नहीं। उसकी दिशा और दशा नहीं बदलती। अपने रास्तेपर अपनी गतिसे वह सतत, अनवरत और निरन्तर बढ़ती जाती है। चिड़ियाको जीवन और नदियोंको अपना लक्ष्य मिल जाता है। दानकी यही महिमा है। इस महिमाका एक अप्रकट अर्थ और भी है। यह निहितार्थ अत्यन्त गम्भीर है। दोहेको पढ़नेवाले इस गम्भीर निहितार्थतक नहीं पहुँचते। निहितार्थ यह है कि जो बूँद चिड़ियाकी चोंचमें गयी, बस वही मीठी रही; शेष नदी, सागरमें जाकर अपनी मिठास, अपना मूल स्वाद खो बैठी—खारी हो गयी। धन-सम्पत्ति और सम्पदा उतनी ही सार्थक है, जो किसीकी धर्मरक्षा और प्राणरक्षामें काम आये। शेषको तो अन्ततः निरर्थक होना ही है। महाराजा भर्तृहरिने अपने नीतिशतकमें धनकी तीन गतियाँ सदियों पहले स्पष्ट कर दी हैं। ये स्थितियाँ अज्ञात नहीं, सर्वज्ञात हैं—(१) दान, (२) भोग और (३) नाश। प्रारब्ध और पुरुषार्थके बलपर प्राप्त सारा राज-वैभव भोगनेके बाद भर्तृहरिने धनकी पहली गति लिखी और सुझायी वह है—'दान'। दूसरे क्रमपर रखा 'भोग' को और तीसरेपर जगह दी 'नाश' को। सृष्टिमें जबसे 'सम्पत्ति' शब्द आया, तभीसे उसका सहोदर शब्द भी हमारे सामने बैठा है। वह शब्द है 'विपत्ति'। सचमुच सम्पत्तिसे बड़ी कोई विपत्ति नहीं होती। सबसे बड़ी विपत्तिका नाम है—सम्पत्ति। अध्ययन करके देख लो, शोध कर लो; यदि सम्पत्तिका सदुपयोग नहीं है तो वह विपत्ति है। इस विपत्तिसे निबटनेकी पहली सीढ़ी है—'दान'।

संसारके हर धर्म और हर भूभागमें दानका अपना स्थान है। उसकी अपनी शैली है। हर जगह दानकी अपनी आचरण-संहिता है। अपनी महिमा है। भारत इस मुकामपर भी अकेला है। भारत ही वह देश है, जहाँ दाताको समझाया गया है कि जिसे भी दो, उसे इस तरह दो कि उसकी कृतज्ञता चेतन है कि अचेतन—इसका आभासतक किसीको नहीं हो। तुम जानो, लेनेवाला जाने और तीसरा बस तुम्हारा अन्तर्यामी ईश्वर जाने। तुम्हारे बाँये हाथको भी यह पता नहीं चले कि तुम्हारे दाहिने हाथने किसको, कब और कितना तथा कैसा-क्या दिया। इसके इतर दिया हुआ उपहार, भेंट या पुरस्कार पाखण्डमें स्थान पायेगा। दान नहीं होगा। 'दान' तुम्हें मोक्षतक ले जायगा। भेंट, पुरस्कार और उपहार तुम्हें यशका स्वाद चखा सकते हैं। वे 'दान-दर्शन' के दायरेसे बाहरके द्वारपाल हैं। यशलिप्सा मनुष्यको पाखण्डकी गलियोंका पदयात्री बना देती है। आपकी अपनी बस्तीमें इसके पचासों उदाहरण आपके आस-पास बिखरे पड़े हैं। यहाँ-वहाँ लगे लाखों पत्थर, छोटे-बड़े द्वार, ऊँचे-नीचे शिलापट्ट और न जाने क्या-क्या आप देखते हैं, पढ़ते हैं, पर भारतीय दान-दर्शनने उन्हें दान नहीं माना है। वे हमारी यशैषणाके स्मारक हैं। हमारी यशेच्छा उन्हें प्रेरक और प्रोत्साहक मान सकती है, पर भारतकी आत्मा उन्हें दान नहीं मानती। अपनी सम्पत्ति, अपने धन और अपनी लक्ष्मीका सदुपयोग माननेतक बात गले उतर जायगी, पर दानकी श्रेणीमें इस लिप्साको नहीं रखा जायगा।

दानकी महिमाके करोड़ों उदाहरण भारतमें घर-घर

पढ़ी जानेवाली पोथियोंके पृष्ठोंपर फैले पड़े हैं। एक-से-एक बढ़कर चौंकाने और चकित करनेवाले प्रकरण हमारे सामने हैं। प्रायः अविश्वसनीय, किंतु सत्य। तब फिर महाकवि रहीमका वह दोहा सैकड़ों साल पीछे घूमकर ढूँढ़नेका मन करता है, जिसमें रहीमने दानकी महिमाको व्याख्यायित किया था। उनसे किसीने पूछा—'महाकवि! आप अपने सामने आनेवाले जरूरतमन्दको चुपचाप इतना सारा दे देते हो, फिर भी आपकी नजरें नीची क्यों रहती हैं?' रहीमने उत्तर दिया—देनेवाला कोई और है,. लेकिन लोग मेरा नाम धरते हैं, इससे मेरी आँखें और नजरें नीची रहती हैं।' दान और दाताका तात्त्विक अर्थ यहाँ आकर समझमें आता है।

'दान' के सन्दर्भमें यदि किसी एक संज्ञाका सर्वाधिक अपमानजनक दुरुपयोग हमारे आस-पास प्रतिदिन हो रहा है तो वह संज्ञा है 'भामाशाह'। महाराणा प्रताप और भामाशाहका प्रसंग विश्वविख्यात है। क्या महाराणा प्रतापको भामाशाहने कोई दान दिया था? क्या मेवाड़के सूर्यने भामाशाहसे कोई दान माँगा था? नहीं, कदापि नहीं। वह देशभक्ति और राष्ट्ररक्षाका एक अद्भुत युद्ध-प्रसंग था। स्वप्रेरित भामाशाहने युद्धरत प्रतापको अपना जीवन-संचित सर्वस्व जीवन अर्पित ही नहीं किया, बल्कि उनके संकल्पपर न्यौछावर कर दिया था। क्या वह दान था? नहीं, वह राष्ट्ररक्षाके बलियज्ञका हविष्य था। आज क्या हो रहा है? 'भामाशाह अलंकरण' कौन दे रहा है और कौन ले रहा है? देनेवाले और लेनेवाले दोनोंकी तस्वीरें विज्ञापनोंमें देखकर आप हँस रहे हैं। प्रताप और भामाशाहकी आत्माएँ क्या कह रही हैं—यह आपके अनुमानका विषय है।

दानमें दी गयी वस्तु या धन या राशिका न तो हिसाब माँगा जाता है न वापस ली जाती है, किंतु भारतीय उपनिषद्-सम्पदामें कठोपनिषद् वह शास्त्र है, जिसमें पिता उद्दालक ऋषिद्वारा क्रोध और आवेशमें आनेपर अपने पुत्र नचिकेताको दानमें दे दिया गया था। दान भी किसे? साक्षात् 'यम' को। मृत्युके मठाधीशको। क्या यमराजने यह दान माँगा था? उत्तर है 'नहीं'। तब भी दान दी गयी वस्तु—उद्दालक-पुत्र नचिकेता सशरीर यमलोक जा पहुँचा। यम अपने लोकसे बाहर भ्रमणपर थे। तीन दिनतक नचिकेता यमलोकके द्वारपर खड़ा रहा भूखा-प्यासा। यमके आनेपर स्वागत-सत्कार सब हुआ और फिर हुआ यम-नचिकेताका उपनिषदीय संवाद। नचिकेता अपने तीन प्रश्नोंके उत्तर और चतुराईभरे वरदान लेकर अपने पितृगृह लौट आता है। सकुशल और सशरीर। हमारी अध्यात्म-सम्पदाको कठोपनिषद्-जैसा उपनिषद् मिलता है। हम धन्य हो जाते हैं। यह एक अकेला प्रकरण है, जहाँ दानमें गयी हुई वस्तु जैसी-की-तैसी वापस उसीको मिल जाती है, जिसने कि दानमें दी थी। उद्दालक भी सहर्ष उसे स्वीकार कर लेते हैं। दानके महिमागानमें इस तरहका यह अकेला छन्द है, जिसके सुर, ताल और लयमें कहीं कोई बेसुरापन नहीं है। न छन्ददोष है, न अलंकारभंग। यह कोई पौराणिक चमत्कार नहीं है, अपितु आध्यात्मिक सत्य है।

दानकी महिमासे दीप्त दिव्य देश भारतमें दान, अवदान, प्रतिदान-जैसे गरिमापूर्ण शब्दोंमें एक शब्द और शामिल हुआ है, वह शब्द है 'मतदान'। प्रक्रिया और अर्थ दोनों धरातलोंपर यह शब्द सम्मान और श्रद्धा दोनोंसे दूर होता जा रहा है। व्यावहारिक तौरपर इस शब्दने दानकी महिमा, गरिमा और भावना—तीनोंका कितना निर्वाह किया है, यह एक विचारणीय विषय है। दान सशर्त शब्द नहीं है। मतदान शत-प्रतिशत एक सशर्त शब्द है। इस शब्दकी परछाईंने दान-जैसे ईश्वरीय शब्दको भी चिन्ता और बहसमें डाल दिया है।

वस्तुतः दान; जिसे हम मोक्षप्रदाता कर्म मानते हैं, एक जीवन और जन्म-कल्याणकी खेती है। जितना बोओगे, उसका कई गुना अधिक पाओगे। जितना बाँटोगे, उतना बढ़ेगा। यह पुण्यप्राप्तिका एक कृषि-कर्म है। पुनर्जन्मसे मुक्तिका सरलतम और आसान रास्ता। इसके लिये किसीका प्रवचन और किसीका उपदेश सुननेकी भी आवश्यकता नहीं है। बस, अपने अन्तर्यामीसे बात करो और बीज बोना शुरू कर दो।

'दानमेकं कलौ युगे'

(श्रीकुलदीपजी उप्रेती)

यद्यपि विश्वके सभी प्रमुख धर्मों एवं सम्प्रदायोंमें दानकी महत्ताको स्वीकार करते हुए अपने अनुयायियोंको जीवनमें स्वयंकी आमदनीसे सामर्थ्यानुसार कुछ हिस्सा जरूरतमन्दोंको देनेहेतु प्रेरित किया गया है, किंतु विश्वकी प्रथम संस्कृतिके रूपमें मान्य भारतीय संस्कृति '**सा प्रथमा सँस्कृतिर्विश्ववारा।**' (यजुर्वेद ७। १४)-ने तो दानको मानवमात्रके लिये अनिवार्य आचरणीय कृत्य मानते हुए इसे नैत्यिक कर्मकी श्रेणीमें सम्मिलित किया है। 'सौ हाथोंसे धन अर्जित करो और हजार हाथोंसे उसका दान करो' कहकर वेदने दानके महत्त्वको जनमानसके समक्ष उद्घाटित किया है—'**शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।**' (अथर्ववेद ३। २४। ५)

भारतीय संस्कृतिमें दातव्यताकी गौरवशाली परम्परा अनादिकालसे ही चली आ रही है। सनातन धर्मरूपी भव्य प्रासाद जिन महत्त्वपूर्ण स्तम्भोंपर अविचल खड़ा है, उनमें 'दानशीलता' एक प्रमुख स्तम्भ है। भारतीय वाङ्मय इसका साक्षी है। वैदिक ऋचाओं, उपनिषदोंके पावन मन्त्रों, पौराणिक ग्रन्थों, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामचरितमानस आदि सत्-शास्त्रों एवं अनुभवसिद्ध सन्तोंकी वाणियोंमें दानके विषयमें विस्तृत विवेचन मिलता है। ये सभी समवेत रूपसे दानके तत्त्वको जानने, इसकी महिमाको मानने और जीवनमें इसे अपनानेके लिये मनुष्यको निरन्तर प्रबोधन प्रदान कर रहे हैं।

'दान' की महिमा अपार होनेसे इसका क्षेत्र भी बहुविस्तृत है, दानशीलताके सम्बन्धमें किसी सीमारेखाका निर्धारण सहज नहीं है; क्योंकि इसका जुड़ाव धर्म, संस्कार, सभ्यता, नैतिकता एवं मानवता इत्यादिसे इतना अधिक गहरा है कि इसको इनसे सर्वथा पृथक् नहीं किया जा सकता।

श्रीआदिशंकराचार्यजीने दानको अन्नादि जीवनोपयोगी वस्तुओंका समाजमें सम्यक् विभाजन माना है—'**दानं अन्नादीनां यथाशक्ति संविभागः।**' श्रीरामानुजाचार्यके अनुसार न्यायोपार्जित धनको सत्पात्रके प्रति देनेका नाम दान है—'**दानं न्यायार्जितधनस्य पात्रे प्रतिदानम्।**' कूर्मपुराणमें उदित अर्थात् वेदवेदांगाध्ययनशील प्रशस्त पात्रमें अर्थके श्रद्धापूर्वक प्रतिपादनको दान कहा गया है—'**अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्।**' (कू०पु० उपरिविभाग २६। २) वहीं वृन्द कविने दीन व्यक्तिको दान दिये जानेकी वकालत की है—'***दान दीनको दीजिये, मिटे दरिद्रकी पीर। औषध ताको दीजिये, जाके रोग शरीर॥***' प्राणीविशेषके अतिरिक्त निःस्वार्थ भावसे लोक-कल्याणमें निरत कोई संस्था भी 'दान' ग्रहण करनेके लिये पात्र हो सकती है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें दानकी विशद विवेचना की गयी है। श्रीगीताजीके अनुसार प्रत्युपकार और फलकी किंचिन्मात्र भी इच्छा न रखकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी शुद्ध कमाईका हिस्सा सत्पात्रको देनेका नाम 'दान' है। भगवान् श्रीकृष्णने दानकी क्रमशः सात्त्विक, राजस और तामस तीन श्रेणियाँ बतायी हैं।

भविष्यपुराणमें महाराज युधिष्ठिरद्वारा दानकी महिमाके सम्बन्धमें पूछे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें जो उपदेश दिये, वे प्रसंगवश उल्लेखनीय हैं। भगवान् श्रीकृष्ण धर्मराज

युधिष्ठिरके समक्ष दानके वैशिष्ट्यका वर्णन करते हुए

कहते हैं कि—महाराज! मृत्युके उपरान्त धनादि वैभव व्यक्तिके साथ नहीं जाते, व्यक्तिद्वारा सुपात्रको दिया गया दान ही परलोकमें पाथेय बनकर उसके साथ जाता है। हृष्ट-पुष्ट बलवान् शरीर पानेसे भी कोई लाभ नहीं है, जबतक कि किसीका उपकार न करे। उपकारहीन जीवन व्यर्थ है। इसलिये एक ग्राससे आधा अथवा उससे भी कम मात्रामें किसी चाहनेवाले व्यक्तिको दान क्यों नहीं दिया जाता? इच्छानुसार धन कब और किसको प्राप्त हुआ या होगा? **'ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते। इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥'** (भ०पु०उ०प० १५१।६) इसी भावनाको अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए किसी सन्तने कहा—*'देह धरेका फल यही, देह देह कछु देह। देह खेह हो जायगी, कौन कहेगा देह॥'* सन्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने भी मानवके लिये 'दान' को आवश्यक कार्य माना है, वे देनेकी भावनाको वस्तुकी मात्रासे अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं—*'तुलसी जग में आय के कर लीजे दो काम। देने को टुकड़ा भला लेने को हरिनाम॥'*

धर्म और दान परस्पर घनिष्ठ रूपसे जुड़े हुए हैं। दानके सम्बन्धमें जितना आग्रह हमारे वैदिक धर्ममें किया गया है, अन्य किसी धर्ममें इसके प्रति शायद ही इतना आग्रह किया गया हो। इस धर्मप्रधान संस्कृतिकी एक खास विशेषता रही है कि दान-दक्षिणाके बगैर यहाँ किसी भी सत्कार्यकी पूर्णता नहीं मानी जाती। विश्वके प्रथम ज्ञानस्रोत ऋग्वेदने 'दान' के महत्त्वको प्रतिपादित करते हुए दाताकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ऋग्वेदमें उल्लेख मिलता है—दक्षिणा देनेवाले दानशील मनुष्य स्वर्गमें ऊँची स्थितिको प्राप्त करते हैं। जो अश्वदाता हैं, वे सूर्यके साथ रहते हैं। जो सुवर्णका दान देनेवाले हैं, वे अमरता पाते हैं। वस्त्रदाता लोग सोमलोकमें निवास पाते हैं। सभी दीर्घ आयुवाले होते हैं। देवोंको आदर-सत्कारसे दिया जानेवाला द्रव्यादिका दान पुण्यकर्मकी पूर्ति करनेवाला है, वह देवपूजाका श्रेष्ठ साधन है। जो देवोंको प्रसन्न-तृप्त करते हैं और यज्ञादिमें अन्न-द्रव्य आदिका दान करते हैं, वे सप्त होताओंकी मातृभूत दक्षिणा प्राप्त करते हैं। दाताको सबसे पहले बुलाया जाता है, वह प्रमुख माना जाता है। दक्षिणावान्, दानशील ग्रामाध्यक्ष सबसे आगे चलता है। उसे ही मैं सबका पालक राजा मानता हूँ, जो सबसे पहले मनुष्योंके बीचमें दक्षिणा देता है, उस दक्षिणाके दाताको ही ऋषि—तत्त्वार्थदर्शी और उसीको ही ब्रह्मा कहते हैं। उसीको यज्ञका नेता, सामका गान करनेवाला और वेदवचनोंका स्तोता कहते हैं। दान करनेवाले उदार लोग निकृष्ट गतिको, दारिद्र्यको प्राप्त नहीं होते; वे उदार दाता क्लेश-दुःखको प्राप्त नहीं होते। (ऋग्वेद १०।१०७)

हमारे पौराणिक ग्रन्थोंमें कहा गया है कि भूखसे पीड़ित मनुष्यको भोजनके लिये अन्न अवश्य देना चाहिये। उसको देनेसे महान् पुण्य होता है तथा दाता अमृतका उपभोग करता है। मनुष्यको अपने वैभवके अनुसार प्रतिदिन दान करना चाहिये। **'ग्रासमात्रं तथा देयं क्षुधार्ताय न संशयः। दत्ते सति महत्पुण्यममृतं सोऽश्नुते सदा॥ दिने दिने प्रदातव्यं यथाविभवसम्भवम्।'** (पद्म० भूमि० १३।११-१२) अथर्ववेद तो यहाँतक कहता है कि व्यक्तिको दान देनेके लिये धन कमाना चाहिये, व्यर्थ संग्रहके लिये नहीं—**'रयिं दानाय चोदय।'** (अथर्ववेद ३।२०।५)

दान न करनेवाले व्यक्तियोंकी शास्त्रोंमें घोर निन्दा की गयी है। वेदोंमें कृपणकी सम्पत्तिको व्यर्थ माना गया है। केवल अपने लिये सम्पदा अर्जित करनेवालेकी भर्त्सना करते हुए वेद कहता है कि जो न देवोंको हवि अर्पित करता है और न अपने समान पोष्य मित्रको देता है, केवल स्वयं खाता है, वह केवल पाप ही प्राप्त करता है। **'मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥'** (ऋग्वेद १०।११७।६) ऐसे व्यक्तिकी गतिका उल्लेख करते हुए स्कन्दपुराणमें कहा गया है कि जो दान नहीं करते, वे दरिद्र, रोगी, मूर्ख तथा सदा दूसरोंके सेवक होकर दुःखके भागी होते हैं। जो धनवान् होकर दान नहीं करता और दरिद्र होकर कष्टसहनरूप तपसे दूर भागता है, इन दोनोंको गलेमें बड़ा भारी पत्थर बाँधकर जलमें छोड़ देना चाहिये। **'दरिद्रा व्याधिता मूर्खाः परप्रेष्यकराः सदा। अदत्तदाना जायन्ते दुःखस्यैष हि भाजनाः॥ धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्।**

उभावम्भसि मोक्तव्यौ गले बद्ध्वा महाशिलाम्॥' (स्क०मा०कुमा० २।६८-६९)

दान वास्तवमें प्राप्तिका ही दूसरा नाम है। सामर्थ्यके अनुसार दान करनेसे व्यक्ति दरिद्री नहीं होता। इस सम्बन्धमें शास्त्रोंकी स्पष्ट घोषणा है कि 'दूसरोंको दान देनेवाले, पोषण करनेवालेका धन कभी कम नहीं होता और दूसरोंको न पालनेवाले अदाताको कोई सुखी नहीं कर सकता—वह किसीसे भी सुख नहीं पाता।' **'उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते॥'** (ऋग्वेद १०।११७।१) प्रकृतिके शाश्वत नियमके अनुसार अपनी शक्तिके अनुरूप दान देनेसे धन-सम्पदा आदि वस्तुएँ घटती नहीं, अपितु परिणाममें कई गुना बढ़कर दाताके पास लौटती हैं। पारमार्थिक अथवा लौकिक किसी भी दृष्टिसे देखा जाय, व्यक्ति जो कुछ देता है वही उसका है; शेष तो देर-सवेर नाशको ही प्राप्त होता है। भविष्यपुराण उत्तरपर्वमें कहा गया है कि अनेक प्रकारके कष्टोंको सहकर प्राणोंसे भी अधिक प्रिय जो धन एकत्र किया जाता है, उसकी एक ही सुगति है—दान। शेष भोग और नाश तो प्रत्यक्ष विपत्तियाँ ही हैं। **'आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः। गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः॥'** (उ०प० १५१।११) श्रीरामचरितमानस उत्तरकाण्डमें भी दानमार्गमें लगनेवाले धनको ही धन्य मानते हुए कहा गया है—***'सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥'***

दानशीलता मनुष्यके लौकिक और आध्यात्मिक अभ्युदयका सशक्त साधन है। इससे आत्मतुष्टिके साथ ही उदात्त जीवन जीनेकी प्रेरणा भी प्राप्त होती है। गहनतापूर्वक विचार करके देखा जाय तो सम्पूर्ण सृष्टिका सन्तुलन भी इस दानतत्त्वपर आधारित है। सूरज समुद्रसे जलको ग्रहण करता है और पुनः वर्षाके रूपमें लौटाकर समग्र विश्वको परितृप्त कर देता है। पेड़-पौधे विषाक्त वायु (कार्बन-डाईऑक्साईड)-को लेकर उसे प्राणवायु (ऑक्सीजन)-के रूपमें परिवर्तित करके हमें जीवन प्रदान करते हैं। जो भी अन्नादि बीजरूपमें हम भूमिपर बोते हैं, धरतीमाता उनमें अनन्तगुना वृद्धि करके हमें प्रत्यावर्तित कर देती हैं। इस प्रकार जीवनके लिये आधारभूत तत्त्वोंको निष्काम भावसे उदारतापूर्वक देकर प्रकृति निरन्तर हमारे पोषणमें सहायक बनती है। इस ओर हम सबका ध्यान आकृष्ट करते हुए स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं कि इस बातको आप कभी भी न भूलें कि आपका जन्म देनेके लिये है, लेनेके लिये नहीं। इसलिये आपको जो कुछ देना हो, वह बिना आपत्ति किये, बदलेकी इच्छा न रखकर दे दीजिये, नहीं तो दुःख भोगने पड़ेंगे। प्रकृतिके नियम इतने कठोर हैं कि आप प्रसन्नतासे न देंगे तो वह आपसे जबरदस्ती छीन लेगी। आप अपने सर्वस्वको चाहे जितने दिनोंतक छातीसे लगाये रहें, एक दिन प्रकृति आपकी छातीपर सवार हो उसे लिये बिना न छोड़ेगी। प्रकृति बेईमान नहीं है। आपके दानका बदला वह अवश्य चुका देगी; परंतु बदला पानेकी इच्छा करेंगे तो दुःखके सिवा और कुछ हाथ न लगेगा। इससे तो राजी-खुशी देना ही अच्छा है।

सूर्य समुद्रका जल सोखता है तो उसी जलसे पुनः पृथ्वीको तर भी कर देता है। एकसे लेकर दूसरेको और दूसरेसे लेकर पहलेको देना सृष्टिका काम ही है। उसके नियमोंमें बाधा डालनेकी हमारी शक्ति नहीं है। इस कोठरीकी हवा जितनी बार बाहर निकलती रहेगी, बाहरसे उतनी ही ताजी हवा पुनः इसमें आती जायगी और इसके दरवाजे आप बन्द कर देंगे तो बाहरसे हवा आना तो दूर रहा, इसीमेंकी हवा विषाक्त होकर आपको मृत्युके अधीन कर देगी। आप जितना अधिक देंगे, उससे हजार गुना प्रकृतिसे आप पायेंगे, परंतु उसे पानेके लिये धीरज रखना होगा।

विवेकानन्दजी दानकी महत्ताके सम्बन्धमें आगे कहते हैं—'एक दाताके आसनपर खड़े होकर और अपने हाथमें दो पैसे लेकर यह मत कहो—'ऐ भिखारी! ले, यह मैं तुझे देता हूँ।' परंतु तुम स्वयं इस बातके लिये कृतज्ञ होओ कि तुम्हें निर्धन व्यक्ति मिला, जिसे दान देकर तुमने स्वयंका उपकार किया। धन्य पानेवाला नहीं होता, देनेवाला होता है। इस बातके लिये कृतज्ञ होओ कि संसारमें तुम्हें अपनी दयालुताका प्रयोग करने और इस प्रकार पवित्र होनेका अवसर प्राप्त हुआ। समस्त भले कार्य हमें शुद्ध बनने तथा पूर्ण होनेमें सहायता करते हैं।'

भूदान एवं सर्वोदय आन्दोलनके प्रणेता तथा प्रसिद्ध विचारक और सन्त विनोबा भावेने दानकी महिमाका वर्णन करते हुए लिखा है कि शास्त्रकारोंने भी दानकी महिमा कलियुगके लिये कही है। 'कलियुग' माने क्या? कलियुग माने दिलकी कमजोरी। दुर्बलहृदय द्रव्यके लोभको पूरी तरह छोड़ नहीं सकता, इसलिये उसके मनकी उड़ान अधिकसे अधिक दानतक ही हो सकती है। त्यागतक तो उसकी पहुँच नहीं हो सकती। लोभी मनको तो त्यागका नाम सुनते ही जाने कैसा लगता है। इसलिये उसके सामने शास्त्रकारोंने दानके ही गुण गाये हैं। त्याग तो बिलकुल जड़पर ही आघात करनेवाला है, दान ऊपर-ही-ऊपरसे कोंपले खोंटने-जैसा है। त्याग पीनेकी दवा है, दान सिरपर लगानेकी सोंठ है। त्यागमें अन्यायके प्रति चिढ़ है, दानमें नामका लिहाज है। त्यागसे पापका मूलधन चुकता है और दानसे पापका ब्याज। त्यागका स्वभाव दयालु है, दानका ममतामय। धर्म दोनोंमें ही पूर्ण है। त्यागका निवास धर्मके शिखरपर है, दानका उसकी तलहटीमें।

विनोबाजीके अनुसार हमें दान देनेसे पूर्व बुद्धि एवं भावनाका प्रयोग करना चाहिये। उनका मानना है कि हम जो दान करें वह ऐसा हो, जिससे समाजको सौ गुना फायदा पहुँचे। वह दान ऐसा हो, जो समाजको सफल बनाये। हमें यह विश्वास होना चाहिये कि उस दानकी बदौलत समाजमें आलस्य, व्यभिचार और अनीति नहीं बढ़ेगी। आपको इस बातका विचार करना चाहिये कि आपके दिये हुए दानका सदुपयोग होता है या दुरुपयोग। अगर आप इसका ख्याल न रखेंगे तो आपकी दान-क्रियाका अर्थ होगा किसी चीजको लापरवाहीसे फेंक देना। हम जो दान देते हैं, उसकी तरफ हमारा पूरा-पूरा ध्यान होना चाहिये।

धर्मग्रन्थोंमें दानके अनेक प्रकार बताये गये हैं। इनमें अन्नदान, जलदान, भूमिदान, धनदान, वस्त्रदान, विद्यादान, अभयदान, क्षमादान, गोदान, गृहदान, दीपदान, सुवर्णदान, रजतदान, औषधिदान, वरदान एवं कन्यादान प्रमुख हैं। रक्तदान, श्रमदान, समयदान, वाक्‌दान, सद्‌भावदान भी विशिष्ट कोटिके दान हैं। इनके अतिरिक्त अपने पास उपलब्ध वस्तुओंको सामर्थ्यके अनुसार परोपकारमें उपयोगमें लाना भी दानकी श्रेणीमें सम्मिलित है।

शास्त्रोंमें व्यक्तिद्वारा किये गये विभिन्न प्रकारके दानके फलोंका वर्णन किया गया है। गरुडपुराण (आचारकाण्ड ५१। २२—३०)-के अनुसार जलदानसे तृप्ति, अन्नदानसे अक्षय सुख, तिलदानसे अभीष्ट संतान, दीपदानसे उत्तम नेत्र, भूमिदानसे समस्त अभिलषित पदार्थ, सुवर्णदानसे दीर्घ आयु, गृहदानसे उत्तम भवन तथा रजतदानसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है। वस्त्र प्रदान करनेसे चन्द्रलोक तथा अश्वदान करनेसे अश्विनीकुमारोंके लोककी प्राप्ति होती है। अनडुह् (बैल)-का दान देनेसे विपुल सम्पत्तिका लाभ और गोदानसे सूर्यलोक प्राप्त होता है। यान और शय्याका दान करनेपर भार्या तथा भयार्त (भयभीत)-को अभय प्रदान करनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। धान्य-दानसे शाश्वत (अविनाशी) सुख तथा वेदके दान (वेदाध्यापन)-से ब्रह्मका सांनिध्य-लाभ होता है। वेदविद् ब्राह्मणको ज्ञानोपदेश करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति तथा गायको घास देनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। ईंधन (अग्नि प्रज्वलित करने)-के लिये काष्ठ आदिका दान करनेपर व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। रोगियोंकी रोगशान्तिके लिये औषधि, तेल आदि पदार्थ एवं भोजन देनेवाला मनुष्य रोगरहित होकर सुखी और दीर्घायु हो जाता है। छत्र और जूतेका दान करनेवाला मनुष्य प्रचण्ड धूपके कारण तीक्ष्ण तापवाले तथा तलवारके समान तीक्ष्ण धारवाली नुकीली पत्तियोंसे परिव्याप्त असिपत्रवन नामके नारकीय मार्गोंको पार कर जाता है। जो मनुष्य परलोकमें अक्षय सुखकी अभिलाषा रखता है, उसे अपने लिये संसार या घरमें जो वस्तु अभीष्टतम है तथा प्रिय है, उस वस्तुका दान गुणवान् ब्राह्मणको करना चाहिये।

दान (सद्वस्तुके अर्पणकी वृत्ति) सामाजिक जीवनको स्वस्थ रखनेके लिये महत्त्वपूर्ण है। प्रसिद्ध सन्त बालकोवाजीने सत्य ही कहा है कि 'जिस समाजमें दानवृत्ति क्षीण हो जाती है, वह अधिक नहीं टिक सकता। दानवृत्ति कम होनेका अर्थ है, स्वार्थवृत्तिका बढ़ना। स्वार्थवृत्तिसे किसी समाजका कल्याण नहीं होता।' दान एक दैवी सम्पदा है। इसलिये भगवती श्रुतिने स्पष्ट घोषणा की है कि—व्यक्तिको श्रद्धापूर्वक देना चाहिये, अश्रद्धासे नहीं देना

चाहिये, आर्थिक स्थितिके अनुसार देना चाहिये, लज्जासे देना चाहिये, भयसे देना चाहिये, सहानुभूतिसे विवेकपूर्वक देना चाहिये—'**श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।**' (तैत्तिरीयोपनिषद् १। ११। २) आशय इतना ही है कि मनुष्यको देना नहीं छोड़ना चाहिये। उल्लेख्य है कि कतिपय सन्तोंने '**अश्रद्धयादेयम्**' का अर्थ '**अश्रद्धया देयम्**'-श्रद्धा न होनेपर भी देना चाहिये—ऐसा किया है।

'दान' की आवश्यकता, उपादेयता तथा प्रासंगिकता पूर्वापेक्षा आज और अधिक बढ़ गयी है। कलियुगके प्रभावसे मानवीय अन्त:करणमें मलिनता बढ़ी है, इसलिये कलिकालमें येन-केन-प्रकारेण किया गया दान भी व्यक्तिके कल्याणका साधन माना गया है—*'जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥'* (रा०च०मा० ७। १०३ ख)

'दान' धर्मके प्रमुख उपादानोंमेंसे एक है, इस कारणसे प्रत्येक युगमें इसका महत्त्व रहा है। भोगप्रधान इस कलियुगमें तो इसकी महत्ता और अधिक बढ़ गयी है। त्रिकालद्रष्टा ऋषियों-महर्षियोंद्वारा इसलिये ही सतयुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें एकमात्र दानकी प्रशंसा की गयी है—'**तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानकर्म च। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥**' (प०पु०सृ०ख० १८। ४३७) कलिकालमें मनुष्यकी आयु कम हो गयी है, शारीरिक शक्तिका भी निरन्तर ह्रास हो रहा है, मन-बुद्धि मलिनतासे भरे पड़े हैं। यम-नियमका पालन भी अत्यधिक कठिन हो गया है; योग, यज्ञ, तप, ज्ञान-ध्यानादि साधन कलियुगी व्यक्तिके लिये सुगम नहीं हैं। द्रव्यशुद्धिका निरन्तर अभाव होता जा रहा है। समयके प्रभावसे उत्पन्न तमाम विषम स्थितियोंको दृष्टिगत रखते हुए दूरदर्शी सन्तों एवं सद्ग्रन्थोंने दानयुक्त जीवनचर्यापर विशेष बल दिया है। अस्तु, इस कलिकालमें अपनी सामर्थ्यानुसार भगवत्प्रीत्यर्थ दानशीलताकी वृत्तिको अपनाना श्रेयस्कर है। नि:सन्देह प्रत्येक मानवके लिये यह एक अमोघ कल्याणकारी साधन है। ध्यातव्य है कि दानशीलता अपनानेके लिये व्यक्तिको वैभवसम्पन्न होना ही जरूरी नहीं। भगवान्ने प्रत्येक व्यक्तिको कोई न कोई योग्यता, किसी न किसी प्रकारकी सामर्थ्य प्रदान की है। अतएव व्यक्ति अपनी योग्यता एवं सामर्थ्यके अनुसार दानरूपी श्रेयपथका वरण करके आत्मकल्याणके साथ ही संसारका हित भी कर सकता है। किसी सुधी विचारकका कथन प्रसंगवश उल्लेख करनेयोग्य है कि—'दान कोई मामूली चीज नहीं है। न उसके आकारसे मतलब होता है, न उसके प्रकारसे। यहाँतक कि अनाथके सिरपर प्रेमपूर्वक हाथ रखना भी बहुत बड़ा दान है।'

आजके तथाकथित सभ्य समाजमें 'दान' की गौरवपूर्ण वृत्तिका निरन्तर ह्रास हो रहा है, जिसके अनेक गम्भीर दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं; जो समूची मानवताके लिये अनिष्टकारी साबित हो रहे हैं। दानसे उदारताका विस्तार तथा सेवा-सहायताकी भावना विकसित होती है, जिससे सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवनमें सुख-शान्तिका आविर्भाव होता है—'**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**' (श्रीमद्भगवद्गीता १२। १२)। किसी भी प्रकारसे धन-सम्पत्तिका अर्जन करना आजके मनुष्यका एकमात्र उद्देश्य रह गया है। उपनिषद्के दिव्य सन्देश '**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।**' (ईशावास्योपनिषद्)-को मानव निरन्तर विस्मृत करता जा रहा है।

दानका अपरिग्रहसे अविच्छिन्न सम्बन्ध है। दानमें त्यागकी प्रधानता होनेसे यह लोभ, कृपणता, परिग्रह इत्यादि दुष्प्रवृत्तियोंका शमन करता है। परिग्रहकी वृत्ति व्यक्तिको लोभी-लालची बना देती है। लोभी आदमी स्वार्थान्ध होकर उचित-अनुचितका अन्तर नहीं देखता और विवेकशून्य हो निरा पशु बन जाता है। भगवद्गीता (१६। २१)-में भगवान्ने '**त्रिविधं''' नाशनमात्मनः**' कहकर इसका त्याग करनेका निर्देश दिया है। आसुरी-सम्पदान्तर्गत सम्मिलित 'लोभ' सभी अनर्थोंके मूलमें समाविष्ट है।

अस्तु, बिना समय गँवाये 'दान' के स्वरूप और माहात्म्यको समझ-बूझकर उसे अंगीकृत करना परमावश्यक हो गया है। गौरवमयी भारतीय संस्कृतिके आलोकमें हम भी 'दान' की महिमाको हृदयंगम करें। अपने सामाजिक दायित्वका पालन करते हुए इस यज्ञीय कार्यमें दिन-प्रतिदिन अपने धनादि साधनोंकी यथाशक्ति आहुतियाँ देकर विषाक्त वातावरणको शोधित करनेमें हम भी अपनी भूमिका अर्पित करें और आत्मकल्याणके साथ ही विश्वकल्याणके भागी भी बनें।

दान ही साथ जायगा

(आचार्य श्रीब्रजबन्धुशरणजी)

पौराणिक कथा है—एक बार देवता, दानव और मानव ब्रह्माजीके पास गये और उनसे कहा—'भगवन्! हम प्रगति करें, सुखी रहें और यशस्वी बनें—इसके लिये हमें उपदेश दीजिये, हम क्या करें?'

ब्रह्माने कहा—'द'।

पुनः उन्होंने हँसकर कहा—समझ गये? देवता बोले—हमें दमन करना चाहिये। दानवोंने कहा—हमें दया करनी चाहिये। मानव बोले—हमें दान करना चाहिये।

देवताओंकी प्रवृत्ति भोगमयी होती है, अतः उन्हें दमन करना चाहिये। दानव हिंसक होते हैं, इसलिये उन्हें दयाका व्यवहार करना चाहिये और मनुष्योंकी प्रवृत्ति अतिसंग्रहकी है, अतः उनके लिये दान ही उचित है।

एक बारकी बात है, एक महात्मा नदीके किनारे प्रकृतिकी शोभा निहार रहे थे। तभी नदीके पानीमें बहता हुआ एक शव किनारेकी झाड़ियोंमें अटक गया। स्वामीजीकी नजर उस शवपर पड़ी। चेहरा जाना-पहचाना था। इतनेमें जंगलसे एक सियार उस शवको खानेके लिये आ गया। स्वामीजीने सियारसे कहा—

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ
नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ।
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वोद्धतं मस्तकं
रे रे जम्बुक मुञ्च मुञ्च सहसा नीचस्य निन्द्यं वपुः॥

'ओ सियार! मैं जानता हूँ, तू अपना भोजन देखकर यहाँ आया है, किंतु यह शरीर निन्दनीय है। एक नीचका है, अतः तेरे खानेयोग्य नहीं है। इसे छोड़ दे, छोड़ दे।'

सियार महात्माजीकी वाणीका रहस्य नहीं समझ सका। वह स्वामीजीको आश्चर्यसे देखने लगा। उसने पूछा—इसका कोई भी अंग खानेयोग्य क्यों नहीं है? तब स्वामीजीने विस्तारसे सुनाया—

'हस्तौ दानविवर्जितौ'

अर्थात् इसके हाथ इसलिये खानेके योग्य नहीं हैं; क्योंकि इन हाथोंसे कभी भी किसी भूखे-नंगेको भोजन, वस्त्र, रोगीको दवा, मन्दिर, पाठशाला, आश्रम, अस्पताल एवं आकस्मिक विपत्तिग्रस्त व्यक्तिको कुछ भी दान नहीं दिया गया। इसके हाथने लेना ही सीखा। संग्रह ही सीखा, कभी वितरण करना नहीं सीखा।

किसीके दुःखसे पसीजकर ये हाथ कभी भी किसीकी सेवाके लिये, परिश्रमके लिये, आगे बढ़े ही नहीं। इन्होंने केवल शोषण ही किया है, अतः पूर्ण अपवित्र हैं और आहारके योग्य नहीं हैं।

सियारने पूछा—क्या कान खा लूँ? इसपर कहा गया—

'श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ'

अर्थात् इन कानोंने परनिन्दा सुननेमें, शृंगार और कौतुक कथाओंमें, कामुक वार्ता सुननेमें, अश्लील संगीतमें तो रात-दिन समय बिताया, परंतु सच सुननेमें, भागवत-रामायण और शास्त्र सुननेमें, सन्तोंका यश सुननेमें, भक्ति-संगीतमें कभी भी थोड़ा-सा भी समय नहीं बिताया, अतः तू इन अपवित्र कानोंको भूलकर भी मत खा।

'तो नेत्रोंको खा लूँ? सियारने पूछा।' स्वामीजीने उसका कारण भी उसे समझाया—

'नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते'

इसकी आँखोंने परायी नारियोंको बुरी नजरसे देखा है। दूसरोंकी बुराइयाँ ही देखीं। कभी भी सन्तों, गुरुजनोंके दर्शन नहीं किये। देव-मूर्तियोंके दर्शनसे भी इसके नेत्र रहित हैं। इसलिये इसके नेत्र भी तुम्हारे लिये खानेके योग्य नहीं हैं।

सियारने पूछा—'क्या पैरोंको खानेमें कठिनाई है?' महात्माजीने कहा—

'पादौ न तीर्थं गतौ'

इसके पैर कभी भी पवित्र तीर्थोंमें नहीं गये। सेवाके लिए, देशरक्षाके लिये, सन्त-दर्शनके लिये इसने कभी भी यात्रा नहीं की। केवल स्वार्थ और शोषणमें ही इसने अपने पैरोंको आगे बढ़ाया। ये आवारा घूमते रहे। इसलिये ये भी पापमय हैं और खानेके योग्य नहीं हैं और सुन, इसका उदर भी खानेयोग्य नहीं है; क्योंकि—

'अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरम्'

इसने मेहनतसे, ईमानदारीसे अपना पेट नहीं भरा।

दूसरोंके पेटपर लात मारकर, उनका हक छीनकर, औरोंकी मजबूरीका लाभ उठाकर ही सदा अपना पेट भरा, इसलिये इसका उदर भी खानेयोग्य नहीं है और पापमय है।

तो क्या इसका मस्तक खाऊँ?

इसपर महात्माजी बोले—

'गर्वोद्धतं मस्तकम्'

इसका मस्तक सदैव घमण्डसे भरा रहता था। इसे रूप-सौन्दर्यका, जवानीका, पैसेका, पदका, जातिका, ज्ञानका घमण्ड-ही-घमण्ड था। यह माता-पिता, सन्त, गुरुजन, वृद्धजनके आगे कभी विनम्रतासे झुका ही नहीं, कभी भी इसने दूसरोंको विनम्रतासे प्रणाम नहीं किया। अतः यह भी खानेके योग्य नहीं है।

इस प्रकार सन्तके समझानेपर सियार शवको बिना खाये भूखा ही वहाँसे चला गया।

कथानकका सारांश यही है कि हाथोंकी शोभा दान है, इसी प्रकार मुखकी शोभा भगवान्का नाम है, चिकनी-चुपड़ी बातें नहीं। नयनोंकी शोभा सन्त-दर्शन है, काजल नहीं। कानोंकी शोभा शास्त्र-श्रवण है, कुण्डल नहीं। पैरोंकी शोभा तीर्थयात्रा है, इधर-उधर भटकना नहीं। शरीरकी शोभा शील है, शृंगार नहीं। तात्पर्य यह है कि—जो अपनी इन्द्रियोंका उपयोग परमार्थमें करता है, उसीका जीवन सार्थक है। दानके दो फल इस प्रकार बताये गये हैं—१. लोकमें अभ्युदय और २. परलोकमें कल्याण।

दानके चार प्रकार कहे गये हैं—

१. ध्रुव—चिकित्सालय, विद्यालय, अनाथालय, प्याऊ, बाग, धर्मशाला, मन्दिर आदि सर्वजनके हितकारी कार्य।

२. त्रिक—पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणापूर्ति अर्थात् पुत्रकी इच्छा, धनकी इच्छा और लोककी इच्छासे दिया जानेवाला दान।

३. काम्य—वैभवपूर्ण पदार्थोंकी प्राप्तिकी इच्छासे दिया जानेवाला दान।

४. नैमित्तिक—नित्य प्रति नियमपूर्वक दिया जानेवाला दान। विशेष गुण, अवसर एवं बिना अग्निहोत्रका दान।

दानके तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ।

दानका नाश करनेवाले तीन कारण माने गये हैं—

१. दान देकर पछताना।

२. कुपात्रको दान देना।

३. श्रद्धा बिना दान देना।

आइये, अब दानका श्रेष्ठ रूप क्या है?

—इसपर थोड़ा विचार कर लें—

१. पात्र और कार्य देखकर—पात्र जितना श्रेष्ठ हो और कार्य जितना श्रेष्ठ हो, उसके अनुसार ही दान देना चाहिये। महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय जब बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाहेतु राजाओं और सेठोंके पास गये तो उन्होंने उनकी सच्चरित्रता और कार्यकी श्रेष्ठता जानकर मुक्त हस्तसे दान किया। ध्रुव कार्योंके लिये अधिकाधिक दें।

२. अपनी स्थिति (आर्थिक स्तर) देखकर जितना अधिक-से-अधिक दे सकें, देना चाहिये।

३. दान निर्विकार भावसे देना चाहिये। दूसरेकी राशि देखकर हम उससे अधिक दें और गर्व, ईर्ष्या, अपमान, लोभ आदि विकारोंसे ग्रस्त न हों—यही श्रेष्ठ दान है।

४. कर्तव्य मानकर, आत्मसन्तोषहेतु, प्रभुसेवा मानकर जो दान दिया जाय, वह फलीभूत होता है, श्रेष्ठ है।

५. निर्भय होकर दान दें। भयसे नहीं कि लेनेवाला हमें नुकसान पहुँचायेगा या देनेपर या देते रहनेपर दरिद्रता आ गयी तो हमारा क्या होगा?

याद रखिये, मौतका क्या भरोसा, कब अचानक आ जाय। सब यहीं धरा रह जायगा। अतः स्वार्थसे ऊपर उठकर सबमें सीतारामको देखकर दीन-दुःखियोंको दान दीजिये, निःस्वार्थ दानी बनिये, उदार बनिये। याद रखिये—अन्तमें कोई साथ नहीं जायगा, केवल दान ही साथ जायगा।

कीर्तिर्भवति दानेन तथाऽऽरोग्यमहिंसया। द्विजशुश्रूषया राज्यं द्विजत्वं चापि पुष्कलम्॥
पानीयस्य प्रदानेन कीर्तिर्भवति शाश्वती। अन्नस्य तु प्रदानेन तृप्यन्ते कामभोगतः॥

(महा० अनु० ५७। १९-२०)

दानसे यश, अहिंसासे आरोग्य तथा ब्राह्मणोंकी सेवासे राज्य एवं अतिशय ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है। जल-दान करनेसे मनुष्यको अक्षय कीर्ति प्राप्त होती है तथा अन्नदान करनेसे मनुष्यको काम और भोगसे पूर्णतः तृप्ति मिलती है।

दानीको मिलनेवाले प्रतिदानका सूक्ष्म विज्ञान

(श्रीअशोकजी जोषी, एम०ए०, बी०एड०)

दान शब्द महान् है। इसे दक्षिणाके अर्थमें नहीं समझना चाहिये। हमारे वेद, पुराण आदि दानकी महिमासे भरे पड़े हैं। दान न तो पुरस्कार या वेतन है, न कोई अर्पण या प्रदान है। बदलेमें कुछ लेनेकी भावनासे कुछ दिया जाय, वह तो सौदा है, दान नहीं। ग्रन्थोंमें एक-से-एक बड़े कई तरहके दानोंका वर्णन मिलता है। जीवन-दानका अर्थ है किसी सेवाकार्यहेतु अपना जीवनभरका समय अर्पण कर देना। प्राणदानका अर्थ है शरीरके प्राणोंकी आहुति दे देना। वैसे ही ज्ञानदान, श्रमदान, समयदान, सम्पत्तिदान, अन्नदान आदि कई तरहके दान हैं। सर्वमेधयज्ञ करनेवाला अपना सर्वस्व दान कर देता है। समर्पणका अर्थ है—अपना सर्वस्व इष्टके चरणोंमें समर्पित कर देना। गोदान, सुवर्णदान, भूमिदान, ग्रामदान, पृथ्वीदान, कन्यादान, विद्यादान, वस्त्रदान, वस्तुदान आदिका भी वर्णन प्राप्त होता है।

इस जगत्‌का निर्वाह पारस्परिक दान—आदान-प्रदानपर ही टिका हुआ है। कुछ पाना है तो कुछ देना भी पड़ता है। संचय करनेवाला यदि समुद्र-जैसा विशाल हो, तब भी महान् नहीं माना जाता। देते रहनेवाला यदि बादलकी तरह छोटा एवं हलका हो, फिर भी महान् तथा उच्च माना जायगा। कहा भी है—

स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः।

जल—बरसात देनेवाले बादलोंका स्थान उच्च स्तरपर है और संचय-संग्रह करनेवाले समुद्रका स्थान निम्न स्तरपर देखा जाता है।

हमारे यहाँ दानका अत्यधिक महत्त्व क्यों है? स्पष्ट है, दैवी संस्कृतिमें त्याग एवं दान मुख्य है। आसुरी प्रकृतिमें भोग एवं संग्रह-परिग्रह प्रधान है। अतः हमारे वाङ्मयमें दानका गुणगान सहज है।

वैसे स्वर्गमें रह रहे सूक्ष्म देहवाले जीवोंको भूख-प्यास नहीं लगती और न वहाँ भोज्य पदार्थोंका अभाव ही रहता है। पर एक राजा, जिसने कभी अन्नका दान नहीं किया था, अन्य सत्कर्मोंके कारण वह स्वर्ग तो पा गया था, पर उसकी सूक्ष्म देहको वहाँ भूख सताती रहती थी। भूख मिटानेके लिये उसे प्रायः पृथ्वीपर अपने लगवाये उपवनमें जाना पड़ता था। सूक्ष्म देहधारी वह राजा अपने उपवनसे कुछ भी खा नहीं पाता था, न तो कोई पशु-पक्षी-जीव-जन्तु ही उस उपवनमें खाने-पीने-रहने आते दिखायी देते। उस भूखे सूक्ष्म देहवाले राजाको उस उपवनमें अपना हृष्ट-पुष्ट शरीर मृत हालतमें सुरक्षित पड़ा दिखता रहता था। क्षुधातुर राजा उस मृत शरीरसे ही मांस खा लेता और पुनः स्वर्ग लौट जाता। यह क्रम सुदीर्घ कालतक चला। बुभुक्षाकी शान्तिहेतु इस बीभत्स कृत्यको सहते रहनेका न कहीं ओर दिखता था न छोर। अन्तमें एक बार राजाको अगस्त्यजीके दर्शन हुए। राजाने उन्हें अपने कण्ठसे निकालकर माला दानमें दे दी तथा अपनी कहानी सुना दी। अगस्त्यजीने उस जीवके उद्धार—कल्याणहेतु मालाका दान स्वीकृत कर लिया। उसी क्षण उस राजाकी मुक्ति हो गयी। अतः अन्य पुण्यकर्मोंसे स्वर्ग भले ही मिल जाय, किंतु अन्न-दान दिये बिना लोकान्तरमें भी बुभुक्षा बनी रहती है। जैसे दर्पण बिम्बके प्रतिबिम्बको दिखाता है, वैसे ही यह सृष्टि दानका प्रतिदान देती रहती है। जैसे बीज भूमिमें चले जाते हैं तथा अवसरपर उग निकलते हैं, वैसे ही दान देनेसे, किसीको तृप्त करनेके संस्कार-बीज दानीके भीतर सूक्ष्म देहमें चले जाते हैं तथा अवसरपर लोकान्तरमें भी उसे परितृप्त रखते हैं। लेन-देनके इस सूक्ष्म विज्ञानको समझनेवाले ऋषियोंने ही दान तथा त्यागपर इतना अनुराग जताया है।

याचकको देनेमें किंचिन्मात्र संकोच न करनेवाले दानीको दानवीर कहते हैं। ऐसे महान् दानियोंमें सूर्यपुत्र कर्णका नाम बड़े आदरसे लिया जाता है।

कानोंसे लगे जन्मजात कुण्डलोंको तथा वक्ष-संलग्न जन्मजात कवचको जिसने क्षणमात्रमें क्षुरिकासे चीर-काट,

उधेड़-उखाड़कर माँगनेवाले विप्ररूपधारी इन्द्रको अर्पित

कर दिया, उस दानवीरके अन्तरालमें जो परितृप्ति उपजी होगी, उसकी कल्पना कर पाना हर किसीके वशकी बात नहीं। ऐसी दानशीलताके दर्शन एक सूर्यपुत्रमें होना सहज है। देखिये, सूर्य अविरत, अनवरत जीवसृष्टिको देते ही रहते हैं, तभी तो देव या भगवान् कहलाते हैं तथा पूजे जाते हैं।

सूर्यसे एक सच्चे निष्काम कर्मयोगीकी, एक सच्चे संन्यासीकी तुलना की जाती है। देते रहनेपर भी ये कभी खाली नहीं होते, घिसते नहीं, थकते नहीं। अपरिमेय परितृप्ति पाते रहनेसे ये अन्तरालमें ऊर्जस्वी संस्कार-सम्पदा, दैवी-पात्रता संवर्धित हुई प्रतीत करते हैं।

भले ही अपनी क्षमताके अनुसार, पर दान अवश्य करना चाहिये। सामर्थ्यानुसार—क्षमतानुसार दिया गया दान दानीके तेजकी वृद्धि करता है, पात्रताकी वृद्धि करता है। इसके सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रभावको भी विस्मृत नहीं करना चाहिये।

दान—आत्मोत्सर्गकी विधि

(डॉ० श्रीमहेन्द्रजी मधुकर, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)

भारतीय संस्कृति पुरुषार्थको प्रधानता देती है। सहज साधन ही पुरुषार्थ है; जिसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके रूपमें निरूपित किया गया है। इस संस्कृतिका सूत्र परम्परामें ढूँढ़ा गया है। परम्परा गतिका सूचक शब्द है। परम्परा अर्थात् श्रेष्ठसे भी आगे श्रेष्ठ तत्त्वोंकी खोज। इस निरन्तरताके कारण ही इसका प्रवाह सनातन रहा है। इसलिये कहा जाता है कि भारतमें कोई चीज पुरानी नहीं होती और कोई चीज नयी नहीं होती। किसी भी वस्तु या विचारकी नवीनता उसके बार-बार पैदा होनेमें होती है—**'नवो नवो भवति जायमानः'** शायद यही संस्कार पुनर्जन्मके सिद्धान्तके रूपमें भारतमें प्रकट हुआ है। पुनर्जन्मके इस सिद्धान्तके पीछे एक जबर्दस्त आशावाद काम करता दिखायी देता है। सम्भवतः इसी कारण भारतीय वाङ्मयमें कामदी (कामेडी) और पाश्चात्य साहित्यमें त्रासदी (ट्रेजेडी)-को महत्त्व मिला है। हमारे यहाँ चिन्तनकी बुनियादमें ही आशावाद है, तभी तो दुःखोंके अनेक थपेड़े सहकर अन्ततः काव्य या नाटक सुखान्तमें बदल जाते हैं।

पुरुषार्थके द्वारा हम जो प्राप्त करते हैं, उसे बाँटकर ही सच्चा सुख मिलता है। आदानके साथ प्रदान जुड़ा हुआ है। हमारी उपलब्धियोंपर दूसरोंका भी अधिकार है। हम अकेले जी नहीं सकते। मनुष्यको एक बृहत् समाज चाहिये। मनुष्य केवल मनुष्यसे ही तृप्त नहीं होता। उसे पशु-पक्षी, जीव-जन्तुओंसे भरी-पूरी प्रकृति चाहिये। इस विराट् प्रकृतिके सहयोगसे ही मनुष्य महान् बनता है। हम सबसे कुछ-न-कुछ लेते और सीखते हैं। हर आघात हमारे भीतर एक संगीत पैदा करता है—***'आघातेर पर आघात कर, उठलि उठि छे जखन वासना, जगते तखन किसेर डर!'*** (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) हम कुछ भी प्राप्त इसलिये करते हैं कि उसे दूसरोंको दे सकें—**'आदानं हि विसर्गाय।'** भारतीय परम्पराकी उद्घोषणा है कि हम जो आहुति दे रहे हैं, वह हमारे भीतर बैठे हुए परब्रह्मको ही समर्पित है—**'इदमग्नये इदं न मम।'** यह मेरा नहीं

है—यही अनासक्ति भाव है। हम वस्तुओंके बीच रहें, मगर वस्तुएँ हमें स्पर्श नहीं करें, हमारा चित्त उनसे अछूता रहे। कवि दिनकरने उर्वशीकी भूमिकामें लिखा है कि 'पानीपर चलो और पानीका दाग न लगे।' इसी भावको इस तरह समझाया गया है कि कमलका पत्ता पानीमें रहकर भी पानीके ऊपर तैरता रहता है—**'पद्मपत्रमिवाम्भसा।'** यही ऋषि-संस्कार या ऋषित्व है। सामान्य व्यक्ति संसारके सागरमें डूबता-उतराता रहता है, पर ऋषि इस संसार-सागरसे ऊपर होनेकी कला जानता है। कहते हैं, युधिष्ठिरका चक्का पृथ्वीसे चार अंगुल ऊपर चलता था। इस कथाका यही रहस्य है, चाहे युधिष्ठिर हों या विदेहराज जनक—सभी देहसे विदेहकी ओर चलना सिखाते हैं।

मनुष्यमें सबसे बड़ा गुण है—देनेका भाव। यहाँ वस्तु भी भावका प्रतिनिधित्व करती है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुरने कहा है—***'दान न चाइ चाइए दाता।'*** अर्थात् मैं दान नहीं चाहता, मैं दाताको चाहता हूँ। तुमने क्या दिया, कौन-सा पदार्थ दिया, कितना मूल्यवान् दिया, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्व इस बातका है कि तुमने कैसे दिया? कुछ देते समय तुम्हारी आँखें अश्रुसे कितनी बोझिल हुईं? तुम्हारे हृदयमें कितने ज्वार उठे, तुम्हारी आत्मा कितनी स्पन्दित हुई। आत्माके इसी संगीतकी तालपर जो प्रकम्पित दान तूने दिया, वही महान् और सर्वोत्तम दान है।

दानभाव आत्मोत्सर्गकी एक विधि है। यह अपने सुखको विस्तृत बनानेका एक साधन है। अपने अकेलेपनसे जूझनेके लिये दान एक प्रकाशस्तम्भ है, जो हमें बड़ा और व्यापक बनाता है, दूसरोंकी आँखोंके आँसू पोंछता है, सुख-दुःखमें शरीक होता है तभी तो भारतीय संस्कृति घोषणा करती है कि सब कुछ प्राप्त करो, ताकि सब कुछ छोड़ सको। इसलिये मोक्ष भी परम पुरुषार्थ है। मनुष्यका जीवन-क्रम भी इसी बातकी ओर संकेत करता है। उसका शैशव याचना करता है, यौवन अर्जित करता है, वानप्रस्थ धीरे-धीरे छोड़ना सिखाता है और संन्यास जीवन्मुक्त करता है। मुक्तिकी सीख अर्थात् सभी वस्तुओंसे अलग और ऊपर हो जानेका भाव।

दानका भाव परदुःखकातरताका भी भाव है, अपने चित्तको दूसरेके चित्तमें रखकर दूसरेकी पीड़ासे विगलित होनेका भाव है। परचिन्ताको स्वभाव बना देना दानकी भूमिका है। पदार्थमें जब परमार्थका भाव जुड़ जाता है तो वह वस्तु देनेयोग्य हो जाती है। वस्तुसत्य (कंक्रीट) भावसत्य (एब्सट्रैक्ट)-में परिणत हो जाता है। उस स्थितिमें वस्तु वास्तविक नहीं होती, वह एक दैवी भावके रूपमें प्रकट होती है। महर्षि अरविन्दके शब्दोंमें कहें तो वह हमारे अतिमानस (सुपर कान्शसनेस)-का अंग बना जाती है। तब हमारे दानमें आत्माका अंश रच-बस जाता है। हमारे प्राणतत्त्व और देहगत भाव अर्थात् अश्रु और रोमांचसे जुड़कर यह दान एक मानव-धर्म और कल्याणका रूप ले लेता है।

कहते हैं कि एक बार देवता, दानव और मनुष्य ब्रह्माजीके पास आशीर्वादकी याचनाके लिये गये तो ब्रह्माजीने केवल 'द' अक्षरका उच्चारण किया। देवताओंने 'द' का अर्थ लिया—'इन्द्रियोंका दमन' अर्थात् आत्मसंयम। दानवोंने समझा कि उन्हें क्रूरताके बदले दया दिखानी चाहिये और मनुष्यको लगा कि उसे दान देना चाहिये। यह पौराणिक कथा एक आध्यात्मिक सीख देती है और उसका प्रभाव समस्त मानव-जातिके लिये कल्याणकारी बन जाता है। तभी तो इलियटने अपने प्रसिद्ध काव्य 'वेस्टलैंड' का उपसंहार बृहदारण्यकोपनिषद्के इसी उद्धरणसे लिया है—

दत्त। दयध्वम्। दमयत।
शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

यह उपसंहार साभिप्राय है। इसमें युगीन समस्याओंका समाधान भी दिखायी देता है। आजकी सभ्यतामें स्वार्थ, द्वेष और भोगवादी प्रवृत्ति रखनेकी जो प्रबलता होती जा रही है, उसीका कुपरिणाम युद्ध, उन्माद, ध्वंस और आतंकवादके रूपमें दिखायी दे रहा है। इससे तभी बचा जा सकता है, जब स्वार्थके स्थानपर त्याग, द्वेषके स्थानपर प्रेम और भोगके स्थानपर संयम आये। 'दत्त' अर्थात् दो, केवल अपने लिये संग्रह न करो। 'दयध्वम्' अर्थात् दया

करो, सभी प्राणियोंसे प्रेम करो, समाजके कल्याणकी चिन्ता करो। 'दमयत' अर्थात् इन्द्रियोंका दमन आवश्यक है; क्योंकि अबाध भोग विनाशकी ओर ले जाता है। अतः शान्तिके तीन सूत्र हैं—दान, दया और इन्द्रियदमन।

समाजशास्त्रीय दृष्टिसे दो मूल्य प्रधान होते हैं—आनन्दवादी मूल्य और कल्याणवादी मूल्य। दान ऐसा दिव्य कर्म है, जिससे हमें आनन्द भी मिलना चाहिये और दूसरेका कल्याण भी होना चाहिये। दान देकर पछताना महान् अधर्म है। तभी तो कहावत प्रचलित है—***'नेकी कर दरियामें डाल।'*** यह एक सामाजिक शर्त होती है कि दानी व्यक्ति दान देकर भूल जाय और दान ग्रहण करनेवाला व्यक्ति इसे सदा स्मरण रखे अर्थात् कृतज्ञ रहे। भारतीय समाजमें दान केवल कल्याणवादी मूल्य नहीं है, वह आनन्दित होनेकी कला है। अपना सर्वस्व लुटाकर प्रसन्नताका अनुभव करना एक आध्यात्मिक अनुभव है। इसलिये भारतीय दृष्टि आनन्द और कल्याण—दोनों भावोंसे दानका सम्बन्ध जोड़ती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करनेपर दान-भाव एक रेचन-प्रक्रिया (कैथारसिस) है। हम जब किसीको दुःखमें देखते हैं तो हमारे मनपर एक प्रभाव पड़ता है। इस तनावसे मुक्ति पानेके लिये हम कष्ट सहकर भी दूसरेका उपकार करना चाहते हैं। इस दृष्टिसे दान भी एक प्रकारकी आत्मतुष्टि है। देखा जाय तो उपनिषदोंने भी आत्मिक प्रसन्नताको प्रियताका विषय माना है—'**आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।**' महाराज रघु, हरिश्चन्द्र और कर्ण आदि भारतीय दानवीरोंकी कथाएँ इस बातका प्रमाण हैं। वास्तवमें कोई भूखा अतिथि द्वारपर आ जाय और आप अपनी परोसी हुई थाली उसे दे दें और फिर रातको इस सत्कृतिका स्मरण हो तो देखिये, मनको कितना आनन्द होता है। आचार्य विनोबा भावेने इस अनुभवको 'आत्माकी आवाज' कहा है, जिसमें हमें परम तृप्तिका अनुभव होता है। ऐसी स्थितिमें ही हम भोगमय जीवन छोड़कर नैतिक जीवनकी भूमिकामें आ खड़े होते हैं।

सच पूछिये तो दान एक प्रकारकी सेवा ही है। स्वामी वल्लभाचार्यजीने सेवाके तीन प्रकार बताये हैं—वित्तजा सेवा, तनुजा सेवा और मनसा सेवा। हमारे द्वारा धनका किया गया दान वित्तजा सेवा है। किसी बीमार, अपाहिज या दुःखी व्यक्तिकी शारीरिक सेवा करना तनुजा सेवा है और शुद्ध मनसे मनुष्य या परमात्माके विषयमें सोचना मनसा सेवा है। हम जब किसी मन्दिरका निर्माण करते हैं तो बहुत सारा धन अपेक्षित होता है, बहुत-से कारीगरोंका श्रम वहाँ सार्थक होता है, पर मनसा सेवा इतनी समृद्ध एवं ऐश्वर्ययुक्त होती है कि उसमें जब चाहा, जहाँ चाहा मन्दिर निर्मित हो जाता है, प्रभुकी प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है, हीरे-मोती और स्वर्णका शृंगार सज जाता है, मोतियोंकी झालरें झूलती हैं, चारों ओर ऐश्वर्यशाली परमात्माकी विभूति प्रकट हो जाती है—यह सब मनसा अर्थात् मानसिक सेवाकी बदौलत होता है।

सांसारिक जीवनमें मनुष्य केवल परमात्मासे याचना करना जानता है। हम अकसर भगवान्‌की प्रतिमापर अपना दुःख चढ़ाते हैं और बदलेमें सुख माँगते हैं, विष देते हैं और अमृत माँगते हैं। सकाम भक्ति सदा कुछ-न-कुछ याचना करती है। मगर निष्काम भक्ति निःस्वार्थ है। वह गंगाकी सहज प्रसन्न धारा है, उसमें कोई विक्षेप नहीं होता, आकांक्षाका कोई ताप नहीं होता, केवल आत्मसमर्पण और शरणागतके द्वारा प्रभुके चरणोंमें लोट जानेवाली भावना होती है। जहाँ भक्तका चित्त दलित द्राक्षाकी तरह प्रियके चरणोंमें निवेदित हो जाता है। यह भक्ति और प्रेमका अद्भुत मिश्रण ही है कि जहाँ प्रेमीको उसका प्रियपात्र कभी नहीं मिलता, पर वह यही चाहता है कि प्रियपात्र मिले या न मिले उसकी प्रियता मिलती रहनी चाहिये। तभी तो सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय और सभी भाषाओंके साहित्यमें मिलनसे ज्यादा विरहको महत्त्व मिला है।

भक्त और भगवान्‌के बीच प्रेमानुरक्तिका सम्बन्ध होता है। ऐसा नहीं है कि भक्त परमात्माके आगे केवल दुःख या चिन्ता का ही प्रकाशन करता है, बल्कि कभी-कभी परमात्माको ही याचक बना देता है। राजा बलि और भगवान् वामनकी कथा प्रसिद्ध है, जहाँ भगवान्‌को भी तीन पग भूमिकी याचना बलिसे करनी पड़ी थी। रहीम

खानखानाके नामसे एक प्रचलित श्लोक मिलता है, जिसमें भक्त भगवान्‌को कुछ देना चाहता है, मानो वह उनपर उपकार करना चाहता है। भक्तिमें डूबा हुआ वह छन्द इस प्रकार है—

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
आभीरवामनयनाहृतमानसाय
दत्तं मनो यदुपते कृपया गृहाण॥

भाव यह है कि भक्त भगवान्‌को कुछ देना चाहता है। पर वह क्या दे—इस चिन्तामें पड़ा रहता है। वह निवेदन करता है कि रत्नोंका भण्डार समुद्र आपका घर है, साक्षात् लक्ष्मी आपकी धर्मपत्नी हैं। आप जगत्‌के नाथ हैं तो आपको दिया जाय तो क्या दिया जाय? हाँ, एक चीजकी आपके पास कमी है। भगवती राधाने आपका मन चुरा लिया है, तो आपके पास मनकी कमी है। अतः मैं अपना मन आपको अर्पित करता हूँ, कृपया ग्रहण कीजिये।

मानव-जातिके लिये मुख्य तीन ऋण बताये गये हैं—देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण। विचारकोंने एक चौथे ऋणको भी गिना है—वह है नर-ऋण अर्थात् समाजका ऋण। दान इन ऋणोंसे हमें मुक्त करता है। यह मात्र परोपकार नहीं होता या अपने हिस्सेको काटकर कुछ दूसरेको देना दान नहीं होता बल्कि अपना हिस्सा दूसरेको लौटाना दान कहलाता है। आचार्य विनोबा भावेके शब्दोंमें 'परोपकार कहते हैं दूसरोंसे कुछ न लेकर की गयी सेवाको, परंतु यहाँ तो हम समाजसे भरपूर ले चुके हैं। समाजके इस ऋणसे मुक्त होनेके लिये जो सेवा की जाय, वही दान है। मनुष्य-समाजको आगे बढ़नेमें सहायता करना दान है। सृष्टिकी हानि पूरी करनेके लिये मन, धन तथा अन्य साधनोंसे जो सहायता की जाती है, वह दान है।'

मूलतः देखा जाय तो यज्ञ, दान और तपमें बहुत अन्तर नहीं होता। गीताके चौथे अध्यायमें द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ आदिका यज्ञके व्यापक अर्थमें प्रयोग किया गया है। किसी भी कर्ममें जब मनुष्य अपना चित्त उड़ेल देता है, तो वह कर्म यज्ञ बन जाता है। इसलिये परमात्माको 'यज्ञपुरुष' कहा गया है।

दूसरोंके लिये अर्पित की गयी हमारी क्रिया दान बन जाती है। चाहे वह धन हो, हमारा श्रम हो या और कुछ। असली बात आत्मदानकी आकुलता है, जिसमें हम दूसरोंके साथ सम्यक् बोध करते हैं; जहाँ सब अपने होते हैं, कोई भी पराया नहीं होता।

ऋग्वेदमें दानकी इस महत्ताको अनेक ऋचाओंमें व्यक्त किया गया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अहं भूमिमददामार्यायाऽहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन्॥

(ऋग्वेद ४। २६। २)

मैंने सत्पुरुषोंके निमित्त भूमि प्रदान की तथा दानी मनुष्योंके निमित्त जल बरसाया है। ध्वनि करते हुए जल-प्रवाहोंको मैंने ही आगे बढ़ाया था। अतः समस्त देवता मेरे संकल्पका अनुसरण करें—

'एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः।'

(ऋग्वेद ४। २८। ५)

हे सोमदेव! यह सच है कि आप और इन्द्रदेवने महान् अश्वों तथा गौओंके झुण्डका दान किया था।

दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि। भूरिदा असि वृत्रहन्॥

(ऋग्वेद ४। ३२। १९)

हे इन्द्रदेव! हम आपके स्वर्णसे पूर्ण दस कलशोंको प्राप्त करते हैं। हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव! आप प्रचुर दान प्रदान करनेवाले हैं।

भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन्। आ नो भजस्व राधसि॥

(ऋग्वेद ४। ३२। २१)

हे वृत्रहन्ता, शूरवीर इन्द्रदेव! आप अत्यधिक ऐश्वर्य-प्रदाताके रूपमें अनेक मनुष्योंमें प्रसिद्ध हैं। आप अपने ऐश्वर्यमें हमें भागीदार बनायें।

भारतीय साहित्यमें सर्वत्र दानकी महिमाके सूत्र मिलते हैं। कालिदासके मेघदूतमें यक्ष मेघसे प्रार्थना करता है। कविकी उक्ति है कि—श्रेष्ठ व्यक्तियोंसे की गयी याचना निष्फल होकर भी सफल होती है, पर नीच व्यक्तियोंसे प्राप्त कुछ भी व्यर्थ और निष्फल होता है—**'याच्ञामोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा'** (मेघदूत ६)।

तुलसीदासजीने विनय-पत्रिकामें ***'तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी'***-जैसा प्रयोग किया है। १७वीं

से १९वीं शताब्दीके बीच हिन्दीकी रीति-कवितामें आश्रयदाताओंके निकट रहनेवाले कवियोंने अपनी कविताईसे राजाओंकी दान-भावनाको उकसाया है। लोकप्रसिद्धि है कि बिहारी-सतसईके एक-एक दोहेपर राजा जयसिंहकी ओरसे एक-एक अशरफी कविको प्रदान की जाती थी। प्राय: सभी रीतिकालीन कवियोंने दानको कीर्ति और प्रशस्तिके लिये महत्त्वपूर्ण साधन सिद्ध किया। इस दानका प्रभाव इतना बढ़ गया कि शृंगारिक चेष्टाओं और क्रियाओंमें भी यह 'दान' शब्द प्रयुक्त होने लगा।

कवि पद्माकरने अपनी पुस्तक 'जगद्विनोद' में दानका चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है। राजाको हाथियोंका दान देनेका अभ्यास है। हाथियोंके दानकी कीर्ति इतनी फैल जाती है कि माता गिरिजा भवानी अपने प्रिय पुत्र गजाननको गोदमें छिपाये घूमती हैं। उसे गिरिसे, गलेसे और अपनी गोदसे उतारतीतक नहीं हैं कि हाथीके धोखेमें राजा उनके पुत्र गजाननका दान नहीं कर दे—

संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि
तुरत लुटावत विलम्ब उरधारौ ना।
कहै 'पद्माकर' सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के बितरि बिचारै ना।
गंज-गज-बकस महीप रघुनाथ राव
याहि गज धोखे कहूँ काहू देई डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही
गिरि तें, गरे तें, निज गोद तैं उतारै ना॥

(पद्माकर, जगद्विनोद, छन्द ६९५)

कवि दिनकरने भी 'रश्मिरथी' में कर्णकी दानशीलता और दानभावका उल्लेख किया है।

हिन्दी कवि अज्ञेयकी एक प्रसिद्ध कविता 'सम्राज्ञीका नैवेद्य दान' दान-भावकी महत्ताको दर्शाता है। जापानमें सम्राज्ञी कोमियो प्राचीन राजधानी नाराके बुद्ध-मन्दिरमें जाते समय असमंजसमें पड़ गयी थी कि चढ़ानेको क्या ले जायँ और फिर खाली हाथ गयी थी। यही घटना कविताका आधार है—

हे महाबुद्ध!
मैं मन्दिर में आई हूँ
रीत हाथ
फूल मैं ला न सकी।
औरों का संग्रह
तेरे योग्य न होता!.....

भारतीय चिन्तकोंकी ज्ञानधारा और विचारधारामें यह दान भाव और कर्मका विषय है। आत्मिक स्तरपर किया गया दान भी दान और दाताको महिमामय करता है।

अपरिमित है दानकी महिमा

(डॉ० श्रीराजारामजी गुप्ता)

'दान' शब्दका सीधा अर्थ है—देना, प्रदान करना। किसी व्यक्ति, संस्था, समाज या देशके जीवनको सँवारने, उसके विकास, उत्कर्ष, उत्थान एवं कल्याणहेतु नि:स्वार्थ भावसे पूर्ण समर्पण एवं विनम्रतासे किसी वस्तु, साधन, धन, धान्य, भूमि आदिको प्रेमपूर्वक देना 'दान' कहलाता है।

दान धनकी सर्वोत्तम गति एवं सर्वश्रेष्ठ उपयोग है। हमारी संस्कृतिमें दानको परोपकारका श्रेष्ठ साधन माना गया है। हमारे देशमें तो अनादि कालसे दान देनेकी परम्परा रही है और इसे एक पुनीत कर्तव्य माना गया है। परंतु कलियुगमें तो दानको धर्मके चार पदों (सत्य, दया, तप और दान)-में से सर्वाधिक कल्याणकारी माना गया है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

(रा०च०मा० ७। १०३ख)

अर्थात् कलियुगमें दानकी बड़ी महिमा है। किसी भी रूपमें दिया गया दान दानदाताका कल्याण करता है।

दानके अनेक प्रकार हैं—धनदान, अन्नदान, गोदान, भूमिदान, स्वर्णदान, विद्यादान, ग्रन्थदान आदि।

हमारे देशमें कर्ण एवं दधीचि-जैसे महादानी हुए हैं। कर्णने तो इन्द्रके छलको जानने-समझनेके बावजूद भी

अपने व्रतके अनुसार कवच-कुण्डल दान कर दिये थे। दधीचिने देवताओंकी विजयके लिये जीते-जी अपने शरीरकी अस्थियाँ दानमें दे दी थीं।

दानकी बड़ी महिमा है। दिया गया दान दान पानेवालेका तो भला करता ही है, दानदाताका भी कल्याण करता है। दानसे अर्जित धन पवित्र होता है। कहा गया है—*'तन पवित्र सेवा किये धन पवित्र किये दान।'* दिया गया दान जहाँ हमारे ममताके बन्धनोंको काटता है, वहीं संकटके समय हमारी रक्षा भी करता है।

दान देते समय दाताके मनमें तनिक भी अहंभाव नहीं आना चाहिये। दान पूर्ण सम्मान एवं विनम्र भावसे दिया जाना चाहिये। महान् दानदाता कविवर रहीम दान देते समय अपनी दृष्टि नीचेकी ओर रखते थे। उनकी इस विनम्र रीतिके बारेमें कवि गंगने जब सुना तो उन्होंने रहीमके पास ये दोहा लिखकर भिजवाया—

सीखे कहाँ नवाबजू ऐसी देनी देन॥
ज्यों ज्यों कर ऊँचो करौ त्यों त्यों नीचे नैन।

रहीमने इसका बहुत सुन्दर उत्तर भिजवाया—

देनहार कोउ और है देत रहत दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरैं याते नीचे नैन॥

—देनेवाला तो परमात्मा है, वही भेजता रहता है। जो दे रहा हूँ, वह मेरा नहीं है। इसी कारण मैं नीची निगाह करके दान देता हूँ। तात्पर्य यह है कि दान इतनी ही विनम्रता एवं निरभिमानितासे दिया जाना चाहिये।

दिया गया दान समाज एवं राष्ट्रकी रक्षामें अप्रतिम भूमिका अदा करता है। महाराणा प्रताप मुगलोंके खिलाफ संघर्ष करते-करते जब धनाभाव एवं साधनोंके अभावमें टूट रहे थे तब भामाशाह-जैसे महान् राष्ट्रभक्त आगे आये और उन्होंने अपना सर्वस्व लगाकर (दानकर) राणाप्रतापके संघर्षमें योगदान किया। फलस्वरूप महाराणा देशकी आन-बान और शानकी रक्षा करनेमें सफल हुए।

दानकी महिमाको शब्दोंमें व्यक्त करना सम्भव नहीं है। यदि हम गम्भीरतासे विचार करें तो पाते हैं कि किसी समाज या देशका विकास एवं उत्थान केवल शासनके भरोसे नहीं हो सकता। राष्ट्रके चहुँमुखी विकासके लिये जन-भागीदारी आवश्यक है।

आज हम जो बाग-बगीचे, सर-सरोवर, कुएँ-बावड़ी, सरिताओंके तटोंपर निर्मित सुन्दरघाट, विशाल धर्मशालाएँ, भव्य मन्दिर, विश्वविद्यालय, अस्पताल तथा बड़े-बड़े ग्रन्थालय आदि देख रहे हैं, उनमेंसे अधिकांश उदारमना दानदाताओंके सहयोगसे निर्मित हैं और ये सब भवन, संस्थाएँ एवं उनके लोककल्याणकारी कार्य उनकी दान-महिमाका बखान कर रहे हैं। दानकी महिमा शब्दातीत है, वर्णनातीत है।

दान-महिमासे सम्बन्धित एक प्रेरक एवं रोचक आख्यानका उल्लेख करना यहाँ समीचीन होगा। महामना पं० मदनमोहन मालवीयने देशमें एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाका सपना सँजोया और काशीमें इसे स्थापित करनेका संकल्प ले लिया। उनके पास न तो कोई जमीन थी और न कोई पूँजी, पर मालवीयजीको भारतकी दान-परम्परापर भरोसा था। वे एक सुबह पहुँचे काशीनरेशके दरबारमें। काशीके महाराजा सबसे पहले आये याचकको मुँहमाँगा दान देते थे। उस सुबह पंक्तिमें वे सबसे आगे खड़े थे। मालवीयजीने महाराजाको अपना संकल्प बताया। काशीनरेशने खुश होकर मालवीयजीको काशीमें मनचाही भूमि एवं पर्याप्त धन दिया। हिन्दू विश्वविद्यालयका निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो गया। मालवीयजीने देश-विदेशके उदारमना दानदाताओंसे सहयोग लेकर विश्वविख्यात काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापितकर दुनियाको दानकी शक्तिका दिग्दर्शन कराया। यह विश्वविद्यालय दान-महिमाका एक जीता-जागता उदाहरण है। अद्भुत है दानकी महिमा।

आजकी सामाजिक स्थितिको देखते हुए तीन प्रकारके दानोंको भी लोकप्रिय बनाये जानेकी आवश्यकता है। ये तीन दान हैं—श्रमदान, मानदान एवं विचारदान। इन तीनों दानोंमें न तो कोई धन लगता है और न कोई विशिष्ट साधन। केवल परोपकारके भाव एवं मनके शुभ संकल्प की आवश्यकता होती है।

यदि सभी लोग नियमित रूपसे थोड़ा-थोड़ा श्रमदान

करें तो गाँव-कस्बों एवं नगरोंमें स्वच्छता लायी जा सकती है। बाग-बगीचों, नदी-तालाबोंकी स्थितिको सुधारकर प्रदूषणमुक्त किया जा सकता है। हरियालीमें वृद्धि की जा सकती है।

दूसरा दान है—मानदान। समाजमें प्रेम एवं सद्भाव स्थापित करनेमें सहायक होता है मानदान। हर व्यक्ति दूसरेसे तो सम्मान चाहता है, परंतु स्वयं दूसरोंको मान देनेमें कंजूसी करता है। यदि हर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको समुचित—यथोचित मानदान देनेका व्रत ले ले तो फिर किसी प्रकारके अहंका टकराव नहीं रहेगा और एक स्वस्थ, शान्ति एवं सद्भावपूर्ण वातावरण परिवार एवं समाजमें निर्मित हो जायगा, जो कि आजकी सबसे बड़ी आवश्यकता है।

विचारदान भी एक महत्त्वपूर्ण दान है। सद्विचारों, जीवनोत्थानके सूत्रोंको प्रदान करना, इन्हें जन-जनतक पहुँचाना विचारदान है। व्यक्तियोंके गिरते नैतिक स्तर, चारित्रिक अवमूल्यन एवं संस्कारोंके हो रहे लोपको विचारदानद्वारा रोका जा सकता है। सुविचारों, सूक्तियों एवं जीवन-निर्माणमें सहायक सूत्रोंको सार्वजनिक स्थानोंकी दीवारोंपर लिखवाना, इनके स्टिकर बँटवाना, सत्साहित्य निःशुल्क वितरित करवाना आदि विचारदानके विविध रूप हैं।

स्पष्ट है कि वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास तथा उत्थानमें सभी प्रकारके दानोंकी महती भूमिका है। दानके अभावमें विकास अवरुद्ध होता है, सामाजिक उत्थानमें रुकावट आती है और जरूरतमन्द व्यक्ति मददसे वंचित रह जाते हैं। अतएव हर एक व्यक्तिको यथाशक्ति दान करना चाहिये। दान राष्ट्र-निर्माणका सबल आधार-स्तम्भ है।

आइये, हम सब अपनी शक्तिके अनुसार दान करनेका व्रत लें और सामाजिक उत्थान एवं राष्ट्रके विकासमें योगदान करें।

त्याग और दान

(श्रीओम नमो चतुर्वेदीजी)

हमारे धर्मग्रन्थोंने जीवनमें त्यागकी अपार महिमाका बखान किया है। ऋग्वेदका मन्त्र है—

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्॥

(ऋग्वेद १०।११७।३)

अर्थात् अन्न चाहनेवाले गरीब याचकको जो अन्न देता है, यथार्थमें वही दाता है। ऐसे व्यक्तिको यज्ञका सम्पूर्ण फल मिलता है तथा वह अपने शत्रुओंको भी मित्र बना लेता है।

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

(शु०यजु० ४०।१)

ब्रह्माण्डमें जड़, चेतन सभी ईश्वरीय है। उसी ईशको स्मरण करते हुए (प्राप्तका) त्यागपूर्ण उपभोग करो। आसक्ति नहीं रखो; क्योंकि धन आदि भोगपदार्थ भला हमेशा किसके रहे हैं?

कठोपनिषद् (१।१।८)-का मन्त्र है—

आशाप्रतीक्षे संगतꣳ सूनृतां च
इष्टापूर्ते पुत्रपशूꣳश्च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे॥

जिस घरमें ब्राह्मण (अतिथि) बिना भोजन किये रहता है, उस घरके स्वामीके सभी सत्कर्म-फल एवं पारिवारिक सुख नष्ट हो जाते हैं।

अनादिकालसे त्यागपूर्ण जीवनको ही अच्छा माना गया है। पौराणिक गाथाओंमें त्यागके अनेक आदर्श कथानक हैं। महाराज शिबिने एक कबूतरकी प्राणरक्षामें क्षुधातुर बाजके लिये अपने अंग-प्रत्यंगके मांसको काट-काटकर तौल दिया। महर्षि दधीचिने देवताओंके हितमें अपने प्राणोंका उत्सर्गकर अपनी हड्डियाँ दे दीं। महाराज हरिश्चन्द्र अपने राज्यको त्याग स्वयं पत्नी और पुत्रके साथ काशीके बाजारमें बिक गये। भगवान् श्रीराम और भरतजीका त्याग

कौन नहीं जानता ! अयोध्यापति चक्रवर्ती सम्राट्का वैभवसम्पन्न राज्य श्रीराम और भरतके मध्य लुढ़कता फिरता था। पिताके वचनोंकी रक्षामें जहाँ श्रीराम सिंहासनका परित्यागकर वनमें चले गये, वहीं भैया भरतने उन वचनोंको राजाकी विवशता माना और राजसिंहासनपर बैठना अस्वीकारकर भैयाको मनाने वनमें गये। कैसा भ्रातृप्रेम था, कैसा राज्य-लक्ष्मीके प्रति निर्लोभ था, कैसा उत्कृष्ट त्याग था! आज तो छोटी-सी सम्पत्तिके लिये भाईकी हत्या करनेमें भी भाई संकोच नहीं करता। रन्तिदेव, महाराज युधिष्ठिर, महान् दानी कर्ण आदिका त्यागपूर्ण जीवन किससे छुपा है। स्वदेश-रक्षामें महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, झाँसीकी महारानी लक्ष्मीबाई, सिखगुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्द सिंह, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल, बाल गंगाधर तिलक, सुभाषचन्द्र बोस एवं चन्द्रशेखर आजाद आदिका त्याग भुलाया नहीं जा सकता।

त्यागके सम्बन्धमें एक सुन्दर आख्यान आया है—साग-पात एवं खेतमें गिरे अन्नके दाने बटोरकर अपनी पत्नीके साथ जीवन-निर्वाह करनेवाला एक गरीब व्यक्ति था। भगवान्ने उसकी परीक्षा नदीके तटपर कुछ नवीन वस्त्र रखकर ली, किंतु वे नवीन वस्त्र उस गरीबके मनमें लोभ न जगा सके। अल्प मूल्यके कारण सम्भवत: वस्त्र छोड़ दिये हों—यह विचार अब प्रभुने गूलरके फलमें स्वर्णमुद्राएँ भरकर मगध देशके उसी निर्जन स्थानपर रख दीं, जहाँ वह प्रतिदिन स्नान करने आता था। उस फलको देख वह निर्धन समझ गया कि वह कृत्रिम है। अलोभवृत्ति नष्ट न हो, यह विचारकर उसने फल ग्रहण नहीं किया। भगवान् ज्योतिषीका रूप ले उसके घर गये। उस निर्धनकी स्त्रीने अपना हाथ दिखाते हुए अपनी निर्धनताका कारण जानना चाहा। ज्योतिषीरूपधारी भगवान्ने उसके पतिके साथ हुई घटना बता, उसके त्यागको ही निर्धनताका कारण बताया। पुन: निर्धनके साथ भगवान्का जो प्रश्नोत्तर हुआ वह विचारणीय है।

ज्योतिषी—धन मिलनेपर भी तुमने ग्रहण क्यों नहीं किया?

निर्धन—धन संसारके बन्धनमें डालनेवाला जाल है। लाभसे लोभ जन्म लेता है और लोभग्रस्त व्यक्ति नरकगामी होता है।

ज्योतिषी—धनसे दान किया जा सकता है और दान स्वर्ग-पथको प्रशस्त करता है। धनसे भाई-बहनका प्रेम झलकता है और मित्रोंकी संख्या बढ़ती है। कुल, शील, पाण्डित्य, रूप, भोग, यश एवं तीर्थाटन धनसे ही सम्भव है। रोग-निवारणके उपचार तथा शत्रुओंपर विजयके लिये धन आवश्यक है।

निर्धन—धनी व्यक्ति परिवारके अन्य व्यक्तियोंमें ईर्ष्याको जन्म देता है। धनलोलुप व्यक्ति धनीके शत्रु बन जाते हैं। धन अभिमानको जन्म देता है एवं अधिक धन-संग्रहकी इच्छा पैदा करता है। धनकी प्राप्तिमें कठिनाई, रक्षामें भय और जानेमें शोक होता है। सन्तोष स्वयंमें उत्तम धन है। अहिंसा बड़ी सिद्धि है। उपवास उत्तम तपस्या है। कामनाओंके त्यागसे सभी व्रत सम्पन्न हो जाते हैं। क्रोधके त्यागसे तीर्थाटनका फल मिलता है। प्राणिमात्रपर दया सुन्दर जपके समान है। यह भी आवश्यक नहीं है कि दान प्रचुर मात्राके धनका ही किया जाय। निर्धन व्यक्तिके लिये कौड़ियोंका दान भी वही फल देता है, जो धनीको प्रचुर धनदानसे प्राप्त होता है।

निर्धन व्यक्तिके विचारोंसे भगवान् सन्तुष्ट हो गये। देवताओंने साधुवादके साथ पुष्पोंकी वर्षा की। तभी एक सुन्दर विमान आया। भगवान् बोले—मैं विष्णु तुमसे प्रसन्न हुआ, इस विमानमें अपने परिवारके साथ बैठकर स्वर्गको जाओ।

इस आख्यानसे स्पष्ट होता है कि वैभवपूर्ण जीवनसे त्याग एवं सहजतापूर्ण जीवन श्रेष्ठ है। किंतु प्रश्न उठता है कि क्या उद्यमशील, परिश्रमी, उत्पादनकर्ताका समाजमें महत्त्व नहीं है? क्या धनका रखना पाप है? नहीं। ऐसे आख्यानोंका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता। यदि उपार्जन ही न होगा तो त्याग किसका किया जायगा? धन और त्याग जल और धाराके समान है। जलके बिना धारा कैसे? और रुका हुआ, बँधा हुआ जल विकृत हो जाता है एवं कालान्तरमें सूख जाता है, अत: जिस धनमें प्रवाह है वही अच्छा है, रुका हुआ धन एक दिन नष्ट हो जाता है। उपर्युक्त आख्यान धनके प्रति निर्लिप्तताका उपदेश करता है, धनका विरोध नहीं।

धर्मके चार चरण बताये गये हैं। कलिकालमें केवल दानकी ही प्रधानता है—**'दानमेकं कलौ युगे।'**

श्रीरामचरितमानसके अनुसार भी—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

(रा०च०मा० ७।१०३ ख)

'*येन केन विधि*' से तात्पर्य है कहींपर, कभी भी न्यूनाधिक अपनी सामर्थ्य एवं सुविधाके अनुसार दिया गया दान भी कल्याणप्रद है। यहाँ त्याग शब्दके स्थानपर 'दान' शब्दका प्रयोग किया गया, जो स्पष्ट करता है कि ये दो शब्द पर्यायवाची नहीं हैं। अतः दानके सम्बन्धमें जानकारी करना आवश्यक हो जाता है। महाभारतके शान्तिपर्वमें दानके लिये त्याग-भावना, प्रिय वचन, अमानीभाव एवं क्षमाशीलताका होना बताया है।

कोई भी दान त्यागकी श्रेणीमें आता है, किंतु सभी प्रकारके त्याग दान नहीं हैं। दानमें याचनाका स्थान नहीं। दानदाता स्वयंको दान-ग्रहणकर्ताके प्रति अनुग्रहीत मानता है, किंतु हर त्यागमें यह आवश्यक नहीं। दान परोपकार नहीं है। यह दानदाताके स्वयंके हितमें है। दान उपार्जित धनकी शुद्धि एवं आत्म-सन्तुष्टिका उत्तम साधन है। कन्यादानके अतिरिक्त दान लेनेका अधिकार हमारे शास्त्रोंने केवल कर्मनिष्ठ ब्राह्मणको ही दिया है। श्रीरामचरितमानसकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे।

× × × × ×

बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे । .... ॥

× × × × ×

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए। बिबिध दान महिदेवन्हि पाए॥

× × × × ×

भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥
पाय पखारि सकल अन्हवाए। पूजि भली बिधि भूप जेवाँए॥
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे॥

× × × × ×

सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम॥

× × × × ×

सबिधि सितासित नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने॥

दान-कर्मकी एक वैदिक विधि है, जो कर्मनिष्ठ ब्राह्मणद्वारा करायी जाती है।

पुराणोंमें दान ग्रहण करनेवाले ब्राह्मणके भी छः गुणोंको बताया गया है। यथा—वह दयालु, पवित्र, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सरल, योनि-कर्मसे शुद्ध, यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन करनेवाला तथा दान-प्रतिग्रही हो।

श्रीमद्भगवद्गीतामें दानकी तीन श्रेणियाँ बतायी गयी हैं—१-सात्त्विक दान २-राजस दान तथा ३-तामस दान।

तीन बातें साधन-फलका विनाश करनेवाली कही गयी हैं—१. दानके बाद पश्चात्ताप, २. अपात्रको दान एवं ३. अश्रद्धाके साथ दान।

मथुराके विश्रामघाटपर बना एक तुला-स्मृति-चिह्न ओरछाके दानवीर राजा वृषंगदेव तथा उनके तीर्थपुरोहित चतुर्वेदी ब्राह्मणकी निर्लोभताकी गाथाको सुनाता रहता है। अपने नौ पुत्रोंमें राज्यको बाँटकर नरेश तीर्थ-सेवनके लिये मथुरा आये हुए थे। यहाँ एक राजाको नौ मन सुवर्णसे तुलादान करते देख धर्मात्मा राजाके मनमें भी इच्छा जग गयी। उन्होंने अपने नौ पुत्रोंको सन्देश भेज दिया। सभी पुत्रोंने नौ-नौ मन सोना भेज दिया। इक्यासी मन सुवर्णकी ढेरी यमुनाजीके तटपर रखी गयी। चतुर्वेदी ब्राह्मण पुरोहितने दानके लिये संकल्प पढ़ा, तभी राजमद बोल उठा! ***'चौबे! कबू पहलेहू काऊ नै इतनौ बड़ौ दान दियौ है?'*** नहीं राजन्! पहले भी नहीं और भविष्यमें भी सम्भावना नहीं है—कहते हुए पुरोहितने अपनी अँगूठी उतारकर सुवर्णकी ढेरीपर रख दी और कहा—राजन्! तुम्हारा यह दान अभिमानकी छायासे कलुषित हो गया है। यह अँगूठी तुलसी-पत्रके समान है। अब इसे किसी अन्य ब्राह्मणको दे दो, इसे ग्रहण करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

धन्य है दानवीर! तुम्हारी इतनी बड़ी दान करनेकी त्यागशक्ति और धन्य है चतुर्वेदी ब्राह्मणकी निर्लोभता। जिस सुवर्णके लिये अनेक राजघराने कालकवलित हो गये, उस सुवर्णकी ढेरीके त्यागमें थोड़ा भी विचार न किया और उसी सुवर्णके प्रति तुम्हारे पुरोहितके मनमें ढूँढ़नेपर भी रंचमात्र लालच न मिला। दान और त्यागकी अनूठी गाथाकी साक्षी माँ यमुनाकी धाराके तटपर उन दोनोंके कर्मकी धर्मध्वजा आज भी विश्रामघाटके गुंबदोंकी शोभा बढ़ा रही है।

यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि हमें जो कुछ प्राप्त है, वह पूर्वमें किये गये त्याग एवं दान-धर्मका ही परिणाम है। शुद्ध एवं स्वच्छ थोड़ा भी अर्पण किया जाय तो सच्चिदानन्द ठाकुर आनन्दकी अनुभूति प्रदान करते हैं। ठाकुरकी प्रसन्नता ही दानकी फलश्रुति है।

दान—क्यों, कब और किसको ?

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

राजा बलदेवदास बिरलाने ५५ वर्षकी अवस्थामें काशीवास कर लिया था और ४० वर्षोंतक यहाँ रहकर काशीलाभ प्राप्त किया। राजासाहब दान बहुत दिया करते थे। एक दिन एक पण्डितजीने उनसे शिकायत की कि राजासाहब! आप दान बहुत देते हैं, लेकिन न पात्रका ध्यान रखते हैं, न कुपात्रका और न सुपात्रका। जिसको चाहे जितना दे देते हैं, तो राजासाहबने जो जवाब दिया, वह ध्यान देनेयोग्य है। उन्होंने कहा—पण्डितजी! आपने ठीक ही कहा, लेकिन दान देनेका अभ्यास बना रहेगा तो कभी-न-कभी सुपात्र आ ही जायगा। राजासाहबका यह उत्तर बड़े महत्त्वका है एवं मननीय है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानस (७। १०३ ख)-में कहा है—***जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान।*** यानी जिस विधिसे भी दान दिया जाय, दान हमेशा कल्याणकारी होता है।

राष्ट्रसंत श्रीविनोबा भावेने कहा था कि दान देना अन्न बोनेके समान है, यानी जैसे एक दाना बोते हैं तो उससे हजार दाना पैदा होता है। आजके सन्दर्भमें दानका महत्त्व अत्यधिक बढ़ता जा रहा है। जो परमार्थी होगा, उसीकी दान देनेकी प्रवृत्ति बनी रहेगी। विनोबाजीने दानके अनेक प्रकार प्रचलित किये। जैसे—भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान, कूपदान, श्रमदान, ज्ञानदान आदि। दानका मूल अर्थ है दूसरेकी सहायता करना। सहायता अनेक प्रकारसे हो सकती है। मेरे पास अमुक वस्तु है और दूसरेको उसकी जरूरत है तो वह दे देना दान कहा जायगा। मैं डॉक्टर हूँ तो रोगियोंकी सेवा करूँगा और शिक्षक हूँ तो ज्ञान दूँगा। इंजीनियर हूँ तो मैं घर बना दूँगा। तालाब, पुल बना दूँगा। यह उपकार करना दानकी श्रेणीमें आता है। इसी प्रकार धन, घर, जमीन आदि जो भी सम्पत्ति पासमें हो, वह जब दूसरोंको दी जाती है तो वह भी दान कहलाती है। दान देते समय यह समझना चाहिये कि दान करनेमें मेरा ही कल्याण है; क्योंकि मुझमें जो धनकी तृष्णा है, वह उससे क्षीण होगी। भोगवृत्ति नहीं बढ़ेगी। इसलिये दान करना मेरा आवश्यक और पवित्र कर्तव्य है। ऐसी कर्तव्यभावना होनी चाहिये, उपकारकी भावना कत्तई नहीं।

गीता (१७। २०—२२)-में दानके सात्त्विकादि तीन प्रकार बताकर भगवान् श्रीकृष्णने दानकी विशद व्याख्या की है।

सन्त-महात्मा बताते हैं कि अन्न, जल, वस्त्र एवं औषध—इन चारोंके दानमें पात्र-कुपात्र आदिका विशेष विचार नहीं करना चाहिये। इनमें केवल दूसरेकी आवश्यकताको ही देखना चाहिये। इसमें भी देश, काल और पात्र मिल जाय तो उत्तम बात है और न मिले तो भी कोई बात नहीं। हमें तो जो भूखा है उसे अन्न देना है, जो प्यासा है उसे जल देना है, जो वस्त्रहीन है उसे वस्त्र देना है और जो रोगी है उसे दवा देनी है। इसी प्रकार कोई किसीको अनुचित रूपसे भयभीत कर रहा है, दुःख दे रहा है तो उससे उसको छुड़ाना और रक्षा-दान देना हमारा कर्तव्य है।

हाँ, कुपात्रको अन्न-जल इतना नहीं देना चाहिये कि वह पुनः हिंसा आदि पापोंमें प्रवृत्त हो जाय।

एक प्रचलित कहावत है कि ***'नेकी कर दरियामें डाल'*** यानी दान देनेवालेको भी दान देनेका अहंकार नहीं करना चाहिये। इस्लामधर्ममें जकात, खैरात, इत्यादिको बड़ा पुण्यका काम माना गया है। जकात (एक प्रकारके दान)-को मुसलमानोंका फर्ज करार दिया है। जकातका अर्थ है कि जिसके पास एक नियत राशिमें धन-सम्पत्ति हो, वह हिसाब लगाकर ईमानदारीपूर्वक उसका चालीसवाँ भाग निर्धनोंपर या अन्य नेकीके कामपर व्यय करे। लेकिन हदीसमें यह भी उल्लेख है कि आप किसी गरीब या लाचारकी मदद इस प्रकार करें, जैसे वह आपका फर्ज हो। यानी दायें हाथसे दान करें तो बायें हाथको भी पता नहीं चलना चाहिये कि दायेंने क्या दिया। मनमें यह अहंकार कभी नहीं आना

चाहिये कि मैंने किसीकी मदद कर दी, इसलिये बदलेमें अल्लाह मुझे मरनेपर जन्नत (स्वर्ग) देगा। अत: दान करे तो किसीको दिखाकर या ढिंढोरा पीटकर नहीं, बल्कि शुद्ध मनसे ही करे।

इस्लाममें अपनी प्रतिष्ठाके लिये दान-पुण्य करना घोर पाप है। इस्लामकी बुनियादी शिक्षाओंमें ईमान (कलमा) और नमाजके बाद जकातका स्थान है यानी जकात इस्लामका तीसरा फर्ज है।

दान करनेवाले व्यक्तिका हृदय प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहता है, गरीबोंको उससे प्रेम होता है और वह उनका भला चाहता है। समाजमें ऐसे ही लोगोंको सम्मान, प्रेम और सहानुभूति भी प्राप्त होती है।

हमारे देशके इतिहासमें कर्णको महान् दानी माना गया है, जिसके दरवाजेसे याचक इच्छित वस्तु प्राप्त किये बिना कभी वापस नहीं जाता था। कर्ण ऐसा दानी था, जिसके पास देनेको कुछ नहीं था तो भी अपने दाँतमें लगे स्वर्णको ही पत्थरकी चोटसे निकालकर दे डाला। किसीने सूखी चन्दनकी लकड़ी माँगी और कहीं न मिलनेपर अपने दरवाजे एवं चौखटतक उखाड़कर दे दिये।

दधीचि, शिवि, भामाशाह आदिका दान सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि धनकी तीन गतियाँ होती हैं—दान, भोग और नाश। यानी धनकी सबसे बढ़िया गति दान है। दान देनेके कारण हमारा धन पात्रके पास पहुँच गया, जिसे उसकी आवश्यकता है। अगर दान नहीं देंगे तो हम उसका भोग करेंगे, यानी आवश्यक-अनावश्यक कार्योंमें खर्च। वह भी नहीं करेंगे तो उसका नाश होना निश्चित है; जैसे जूएमें हार जाना, चोरी हो जाना आदि। इन तीनों ही गतियोंमें धन अपना नहीं रह जाता, लेकिन सर्वोत्तम है दान देना, ताकि जिसे उसकी आवश्यकता है उसे वह प्राप्त हो जाय।

इस प्रकार दान देना हमारा कर्तव्य कर्म है—यह समझकर देना चाहिये। जहाँ, जब एवं जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, तब दिया जाय एवं देश, कालका ध्यान रखते हुए सुपात्रको दिया जाय।

राजा जानश्रुति अपने समयके महान् दानी थे। एक शाम वे महलकी छतपर विश्राम कर रहे थे, तभी सफेद हंसोंका जोड़ा आपसमें बात करता आकाशमार्गसे गुजरा। हंस कह रहा था—अरी अंधी, क्या तुझे राजा जानश्रुतिके शरीरसे निकल रहा यश:प्रकाश नहीं दीख पड़ता? बचकर चल, नहीं तो इसमें झुलस जायगी।

हंसिनी मुसकरायी और बोली—प्रिय! मुझे आतंकित क्यों करते हो? क्या राजाके समस्त दानों-सत्कार्योंमें यशलिप्सा निहित नहीं है, जबकि संत रैक्व एकान्तसाधनामें लीन हैं?

जानश्रुतिके हृदयमें हंसोंकी बातचीत काँटेकी तरह चुभी। उन्होंने सैनिकोंको संत रैक्वका पता लगानेका आदेश दिया। बहुत खोजनेपर किसी एकान्त स्थानमें वे संत अपनी गाड़ीके नीचे बैठे मिले। जानश्रुति राजसी वैभवसे अनेक रथ, घोड़े, गौ और सोनेकी मुद्राएँ लेकर रैक्वके पास
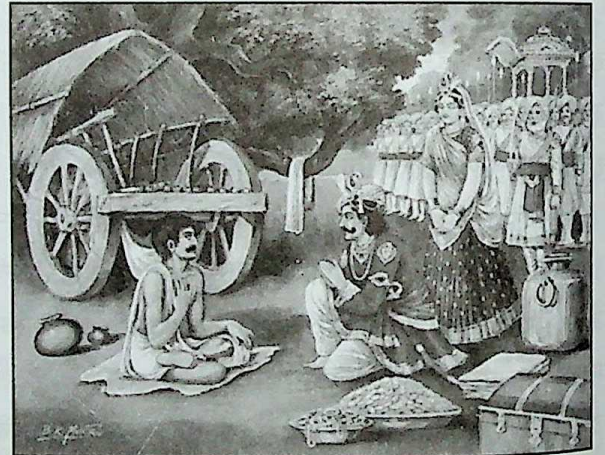
पहुँचे। रैक्वने बहुमूल्य भेंटोंको अस्वीकार करते हुए विरक्त स्वरमें कहा, राजन्! यह सब और शत-सहस्र राज्य भी हमारे सामने तुच्छ हैं। ज्ञानका व्यापार नहीं होता।

राजा लज्जित होकर लौट आये। कुछ दिन बाद वह खाली हाथ, जिज्ञासुकी तरह रैक्वके पास पहुँचे। रैक्वने राजाकी जिज्ञासा देखकर उपदेश किया—दान करो, किंतु अभिमानसे नहीं उदारतासे। उन्मुक्त भावसे दान करो, यशलिप्सासे नहीं। राजा जानश्रुतिको बोध हुआ। वे दार्शनिक रैक्वको प्रणामकर सन्तुष्ट हो राजधानी लौट आये।

धार्मिक विचारोंवाले एक राजाके पास कोई तपस्वी मिलने आये। राजाका मन मुदित हो गया। भावविभोर होकर

राजाने तपस्वीसे कहा—मेरी इच्छा है कि आज आपके मनकी कोई मुराद पूरी करूँ, बताइये क्या उपहार दूँ?

तपस्वीने द्वन्द्वमें पड़े बिना कहा—राजन्, आप स्वयं अपने मनसे अपनी कोई प्रिय वस्तुका उपहार मुझे दे सकते हैं, मैं क्या माँगूँ? राजाने कुछ विकल्प तपस्वीके समक्ष पेश किये। यहाँतक कि अपने राज्यके समर्पणकी इच्छा जाहिर की तो तपस्वीने बताया कि वह तो जनताका है, आप तो उसके संरक्षकमात्र हैं। राजाको तपस्वीकी बात जँची और उन्होंने दूसरा विकल्प रखा कि महल, सवारी इत्यादि तो मेरे ही हैं, आप इन्हें स्वीकार कर लें। तपस्वीने हँसते हुए कहा कि ये भी जनताके ही हैं और आपको राजकाज चलानेमें सुविधाके लिये उपलब्ध कराये गये हैं। राजाने तीसरे विकल्पके तौरपर अपना शरीर दानमें देनेकी पेशकश रखी। अब तपस्वीने कहा कि शरीर भी आपका कहाँ है, वह तो आपके बाल-बच्चोंका है, इसे आप कैसे दे पायेंगे। राजाका असमंजस बढ़ गया था। फिर तपस्वीने ही मार्ग सुझाया कि आप अपने मनके अहंकारका दान कर दें, अहंकार ही सबसे सख्त बन्धन है। अगले दिन राजाने अहंकार त्याग दिया। उसके बाद उसने पाया कि उसे गहरी मानसिक शान्ति प्राप्त हुई।

एक दिन एक व्यक्ति महात्मा गांधीके पास अपना दुखड़ा लेकर पहुँचा। उसने गांधीजीसे कहा, बापू! यह दुनिया बड़ी बेईमान है। आप तो यह अच्छी तरह जानते हैं कि मैंने पचास हजार रुपये दान देकर धर्मशाला बनवायी थी पर अब उन लोगोंने मुझे ही उसकी प्रबन्धसमितिसे हटा दिया है। धर्मशाला नहीं थी तो कोई नहीं था, पर अब उसपर अधिकार जतानेवाले पचासों लोग खड़े हो गये हैं।

उस व्यक्तिकी बात सुनकर बापू थोड़ा मुसकराये और बोले—भाई, तुम्हें यह निराशा इसलिये हुई कि तुम दानका सही अर्थ नहीं समझ सके। वास्तवमें किसी चीजको देकर कुछ प्राप्त करनेकी आकांक्षा दान नहीं है। यह तो व्यापार है। तुमने धर्मशालाके लिये दान तो दिया, लेकिन फिर तुम व्यापारीकी तरह उससे प्रतिदिन लाभकी उम्मीद करने लगे। वह व्यक्ति चुपचाप बिना कुछ बोले वहाँसे चलता बना। उसे दान और व्यापारका अन्तर समझमें आ गया।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन राज्यसभाके सदस्य थे, तबकी बात है। एक बार अपने भत्तेका चेक लेनेके बाद वे राज्यसभा-कार्यालयमें गये। समीप खड़े एक सज्जनसे उन्होंने फाउण्टेन पेन लेकर वह चेक लोकसेवामण्डलके नाम लिख दिया। इन महोदयने जो देखा तो उनसे रहा न गया और बोले—टण्डनजी! आपको भत्तेके मुश्किलसे चार सौ रुपये मिले हैं, उन्हें भी आपने लोकसेवामण्डलको दे डाला?

पेन वापस करते हुए टण्डनजी कहने लगे, देखो भाई, मेरे हैं सात लड़के और सातों अच्छी तरह कमाते हैं। मैंने प्रत्येकपर सौ रुपयेका कर लगा रखा है। इस प्रकार प्रतिमाह मुझे सात सौ रुपये मिल जाते हैं। इनमेंसे मुश्किलसे तीन-चार सौ रुपये व्यय होते हैं। शेष रकम भी मैं लोकसेवामण्डलको भेज देता हूँ। इन पैसोंका मैं करूँगा भी क्या?

हमारे दानमें अहंकार न हो, पुण्य प्राप्त करनेकी आकांक्षा न हो, लोकप्रतिष्ठा बढ़े—ऐसी अभिलाषा न हो और जो दयनीय हैं, उनपर उपकार करनेका भाव न हो—यही सच्चा दान है।

त्याग

त्याग तो आपको सर्वोत्तम स्थितिमें रखता है; आपको उत्कर्षकी स्थितिमें पहुँचा देता है।

त्याग निश्चय ही आपके बलको बढ़ा देता है; आपकी शक्तियोंको कई गुना कर देता है; आपके पराक्रमको दृढ़ कर देता है; नहीं—आपको ईश्वर बना देता है। वह आपकी चिन्ताएँ और भय हर लेता है। आप निर्भय तथा आनन्दमय हो जाते हैं।

स्वार्थपूर्ण और व्यक्तिगत सम्बन्धोंको त्याग दो; प्रत्येकमें और सबमें ईश्वरत्वको देखो; प्रत्येकमें और सबमें ईश्वरके दर्शन करो।

त्यागका आरम्भ सबसे निकट और सबसे प्रिय वस्तुओंसे करना चाहिये। जिसका त्याग करना परमावश्यक है, वह है मिथ्या अहंकार अर्थात् 'मैं यह कर रहा हूँ', 'मैं कर्ता हूँ', 'मैं भोक्ता हूँ' यही भाव हममें मिथ्या व्यक्तित्वको उत्पन्न करते हैं—इनको त्याग देना होगा। [स्वामी रामतीर्थ]

दान स्वर्ग-सोपान है

(डॉ० श्रीओइम् प्रकाशजी द्विवेदी)

दानम्=(दा+ल्युट्)-के कई अर्थ हैं, जैसे (क) देना, (ख) सौंपना, (ग) उपहार, पुरस्कार, (घ) उदारता, (ङ) विजय प्राप्त करनेके चार उपायोंमेंसे एक इत्यादि।

सामान्यतः दान निम्न प्रकारके हैं—

१-भौतिक वस्तुओंके दान (सामान्य दान),

२-बौद्धिक वस्तुओंका दान (क्लिष्ट दान),

३-आध्यात्मिक दान (जो सर्वोपरि है)।

दान एवं दानीकी महिमा उद्धृत करते हुए अनेक प्रसंग शास्त्रोंमें वर्णित हैं, किंतु उसी दानकी प्रशंसा होती है, जो पवित्र, सात्त्विक मनसे, श्रद्धासे दिया जाय।

राजा हरिश्चन्द्रकी दानशीलता विश्वप्रसिद्ध है। महाराज रघुकी दानशीलता भी सर्वोच्च श्रेणीमें प्रसिद्ध है। गुरुदक्षिणासे मुक्त होनेके लिये वरतन्तु ऋषिके शिष्य कौत्स रघुके पास जाते हैं—महाराज रघुने विश्वजित् यज्ञ किया था, जिसमें उन्होंने अपना सर्वस्व प्रजाओंमें बाँट दिया था, अपने लिये अवशेष कुछ भी नहीं छोड़ा था। यह प्रसंग रघुवंश महाकाव्यके पाँचवें सर्गके प्रथम श्लोकमें वर्णित है—

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं
निःशेषविश्राणितकोशजातम् ।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी
कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः॥

कौत्स राजाकी स्थितिको देखकर वापस जा रहे थे कि रघुने बुलाया और आनेका कारण पूछा। कौत्सने कहा—गुरुदक्षिणासे उऋण होनेहेतु आपसे स्वर्णमुद्राएँ लेने आया हूँ। राजाने कुछ समय माँगा। रघु कुबेरकी राजधानीपर आक्रमण करने ही वाले थे कि पुण्यफलस्वरूप राजकोष-गृहपर स्वर्णमुद्राओंकी वृष्टि हुई।

महाराज रघुने कौत्ससे सब राशि ले जानेकी प्रार्थना की, किंतु कौत्स गुरुप्रदेय राशिसे कुछ भी अधिक ले जानेको तैयार नहीं हुए। राजा तपोबल एवं पुरुषार्थसे प्राप्त इस धनराशिको छूना नहीं चाहते थे। भारतवर्षका यह निर्लोभ आचरण—दाता एवं दानप्राप्तकर्ताका उदाहरण आश्चर्यचकित करनेवाला है, जो विश्वके इतिहासमें अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। यह **'श्रद्धया देयम्'** का अप्रतिम उदाहरण है।

कौत्स भी पीछे नहीं रहे। दानशीलतामें बिना माँगे राजाकी मनोभावना समझकर अपने तपोबलसे अर्जित पुण्यको काटकर राजाको आशीर्वादस्वरूप दीर्घजीवी प्रतापी पुत्र प्रदान किया। यह उदाहरण है—आध्यात्मिक दानका, जहाँ देनेवाला और प्राप्त करनेवाला—दोनों अभिमानरहित रहे।

परशुरामजीने पृथ्वीको कई बार जीतकर ब्राह्मणोंको दानमें दे दिया—ये सब उदाहरण हैं—निर्लोभ दानशीलताके।

पुराणोंमें राजा अम्बरीषका चरित्र आया है, ये अद्भुत दानी थे। अत्यन्त नम्र होकर प्रजामें अन्न, वस्त्र, धनका

प्रतिदिन दान किया करते थे।

परम धार्मिक उक्त सभी भाग्यशाली राजाओंने अपने तप, बल, दान-पुण्यके फलस्वरूप अन्तमें श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त किया।

भागवतमें आया है कि सारी पृथ्वी, पहाड़, नदी, सागर, वृक्ष, सम्पूर्ण प्रकृति, सूर्य, चन्द्र, मलयानिल, जल (स्रोत) इत्यादि सभी वस्तुएँ भगवान्‌के शरीर हैं **'हरेः शरीरम्।'** ये हमें परम सुख देती हैं। प्रातः सूर्य-रश्मियाँ, पक्षियोंका कलरव, शीतल-मन्द-सुगन्धित प्राणप्रद वायु, वृक्ष, पुष्प, नदी इत्यादि प्रकृतिकी वस्तुएँ हमें भगवान्‌की कृपाका दान करती हैं, हमें आनन्द प्रदान करती हैं। देवगण हमारी रक्षा करते हैं। हमारा

कर्तव्य भी उनके प्रति हो जाता है कि हम स्वयंको उनके चरणोंमें अर्पित कर दें—'**त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।**' यह हमारी उनके प्रति कृतज्ञता होगी। मनुष्य अमृतपुत्र है। प्रभुसे जो वह पाता है, उसका कर्तव्य है कि वह भी देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिये अपना सब कुछ चाहे श्रद्धासे, चाहे भयसे, चाहे लज्जासे दान देनेके लिये सदैव तत्पर रहे।

हमारे महादेव आशुतोष अवढरदानी भगवान् शंकरजीने समुद्र-मन्थनके समय विषपानकर सबको अभय प्रदान किया। भगवान् शिवके पास जो आया, सुर-असुर सबको मुक्त हस्तसे अभयदान देते रहते हैं। रावणको स्वर्णकी लंका, भस्मासुरको अद्भुत वरदान उनकी उदारताके कतिपय उदाहरण हैं।

भगवान् रामकी प्रतिज्ञा है कि जो भी मेरी शरणमें आयेगा, उसे मैं अभयदान अवश्य दूँगा। रावण भी आये तो उसे भी अभय प्रदान करूँगा।

यह संसार परोपकारी, दानशील, उदारमना श्रेष्ठ पुरुषोंसे सुरक्षित है, शास्त्रवचन है—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

अर्थात् गौ, ब्राह्मण, वेद, सती, सत्यवादी, निर्लोभी और दानशील—इन सातोंने पृथ्वीको धारण कर रखा है।

महात्मा विदुरने कहा है आठ गुण पुरुषोंकी शोभा बढ़ाते हैं—

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥
इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥

(विदुरनीति ३।५२, ५६)

आठ गुण पुरुषकी शोभा बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, दम, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, बहुत न बोलना, यथाशक्ति दान देना और कृतज्ञ होना।

यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ—ये धर्मके आठ प्रकारके मार्ग बताये गये हैं।

दानकी महिमाका सर्वत्र वर्णन है, जिसके पालन न करनेसे मनुष्य दरिद्र हो जाता है। दरिद्रता पापको जन्म देती है, इस प्रकार बार-बार जन्म-मरणके चक्करमें मनुष्य पड़ा रहता है।

अदत्तदानाच्च भवेद् दरिद्रो
दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान्नरके प्रयाति
पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥

(गरुडपुराण, प्रेतखण्ड ५।५६)

दानकी महिमा भारतीय संस्कृतिमें सर्वत्र बहुप्रशंसित है। दानके अनेक रूपोंमें आत्मदानका बहुत महत्त्व है। आत्मदान अर्थात् सम्पूर्ण रूपसे प्रपत्ति, समर्पण।

महाभारतके महावीरों, दानवीरोंकी प्रशंसा करते हुए श्रीमैथिलीशरण गुप्तने लिखा है—

आमिष दिया अपना जिन्होंने श्येन भक्षण के लिये,
जो बिक गये चांडाल के घर सत्य-रक्षण के लिये!
दे दीं जिन्होंने अस्थियाँ परमार्थ-हित जानी जहाँ,
शिवि, हरिश्चन्द्र, दधीचि-से होते रहे दानी यहाँ॥

मनुष्य अपने सुन्दर धार्मिक कृत्योंसे ऊर्ध्वगामी बनता है, निन्दित कर्मोंसे अधोगामी बनता है। अतः हमें सदा कल्याणकारी, परोपकारी विचारोंका तत्परतासे पालन करते रहना चाहिये। गुप्तजीका एक और छन्द दानवीरोंके प्रसंगमें द्रष्टव्य है—

क्षुधार्त रन्तिदेवने दिया करस्थ थाल भी।
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थि जाल भी।
उशीनर क्षितीश ने स्वमांस दान भी दिया।
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर चर्म भी दिया।
अनित्य देह के लिये अनादि जीव क्या डरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये जिए॥

दान देनेकी परम्परा बन्द न करो। अपने पास जो कुछ ज्ञान, बल, योग्यता, धन इत्यादि है, उसे दूसरोंके हितमें लगाओ, इसी क्रममें वेदमें कहा गया है कि सौ हाथोंसे कमाओ, हजार हाथोंसे दान दो; क्योंकि धन किसी व्यक्तिका नहीं सम्पूर्ण राष्ट्रका है। अतः त्यागसहित भोग करो। श्रेष्ठ ऐश्वर्यके कार्योंमें धन लगाओ।

किसी भी पर्वोत्सवपर, कष्टके आनेपर दान देनेकी प्रथा सनातन है। गृहस्थोचित शिष्टाचारमें शास्त्रका उपदेश है—

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः॥

अर्थात् अहिंसा, सत्य बोलना, सब प्राणियोंपर दया करना, मन इन्द्रियोंपर काबू रखना तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान देना गृहस्थ-आश्रमका उत्तम धर्म है। माता-पिता, गुरुकी सेवा करते हुए यज्ञ, दान, तपका अनुष्ठान करते हुए हम अपने जीवनको दिव्य बना सकते हैं।

महाभारतमें यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद है। यक्षने युधिष्ठिरसे पूछा कि मरनेके बाद साथ क्या जाता है? युधिष्ठिरने कहा कि मरनेके बाद दान ही साथ जाता है—'**दानं मित्रं मरिष्यतः।**' दान ही मरनेवालेका सच्चा मित्र है।

दानके विषयमें भगवान् शंकराचार्यजी कहते हैं—धर्ममें निष्ठा हो, मुखमें मधुर वाणी हो, दान देनेमें उत्साह हो—इन नीतियोंके पालनसे जीवनमें विजयश्रीकी प्राप्ति होती है।

आजके युगमें धार्मिक उन्नतिहेतु दानकी प्रथाको आगे बढ़ाते रहना चाहिये, ताकि हमारा ऐहिक एवं पारलौकिक जीवन सफल बने। दानकी प्रक्रियाको ईश्वरकी सेवा समझकर निःस्वार्थ भावसे आकांक्षारहित होकर करते रहना चाहिये। इसीमें हमारा परम कल्याण है। विद्वान् अपने ज्ञानद्वारा, धनवान् धनद्वारा, शक्तिमान् शक्तिद्वारा सबकी सेवा करे, रक्षा करे। समाजकी सेवा सभी लोग मिल-जुलकर करें। इस पुनीत कार्यसे लोकमें सुयश एवं परलोकमें सद्गतिकी प्राप्ति होगी। यह ध्रुव सत्य है।

मनुष्यका सबसे बड़ा आभूषण है—दान

(आचार्य श्रीपौराणिकजी महाराज)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने कलियुगमें (वर्तमान समयमें) दानकी प्रशंसा करते हुए श्रीरामचरितमानस (७।१०३ ख)-में कहा है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

मृत्युके अनन्तर परलोकमें एकमात्र दान ही हमसे मित्रता निभाता है। अगर आप चाहते हैं कि मरनेके बाद भी संसार हमें भूले नहीं, तो आप एक काम करें—दान देना सीखें। काल नामको नहीं खा सकता और नाम केवल दानीका ही अमर रह सकता है। भामाशाह जो पाँच सौ वर्ष पहले हुआ, उसका नाम हम आज भी सम्मानपूर्वक लेते हैं और भामाशाहके नामको काल भी नहीं मिटा सका। कारण, भामाशाहने अपना सम्पूर्ण धन और अपनी समस्त विभूति देश-धर्मकी रक्षाके निमित्त न्यौछावर कर दी।

देना सीखें, जो देता है, वह देवता है और जो रखता है, वह राक्षस है। जब आपके मनमें देनेका भाव जगे तो समझना चाहिये कि पुण्य उदय हुआ है। अपने होश-हवासमें कुछ दान दे डालें; क्योंकि जो दे दिया जाता है, वह सोना हो जाता है और जो बचा लिया जाता है, वह मिट्टी हो जाता है। हमको वही सब, उतना ही तथा वैसा ही मिलता है, जितना और जैसा हमने दिया था। जो देंगे, वही पायेंगे, जैसा देंगे, वैसा ही लेंगे।

दान दिया संग लगा खाया पिया अंग लगा,
और बाकी बचा जंग लगा।

बड़ा आदमी वह नहीं, जिसके पास कई नौकर, गाड़ी और बँगले हैं; बल्कि वास्तवमें सच्चा बड़ा वह होता है, जो समयपर किसी जरूरतमंदकी सेवाको तैयार रहता है और किसी गरीबका हक नहीं छीनता। बड़ा आदमी वही है, जो अपने सीमित साधनोंके बलपर हरदम दीन-दुःखियोंकी सेवामें तत्पर रहता है और जो हर्षित-हृदय हो प्रसन्नमुखसे अपने अर्थको सेवामें लगाकर परमार्थ सफल कर लेता है—

तन से सेवा कीजिये मन से भले विचार।
धन से इस संसार में कर लो पर उपकार॥

शास्त्र कहते हैं कि धनको पवित्र करना है तो दान देना सीखें—

तन पवित्र सेवा किये धन पवित्र किये दान।
मन पवित्र हरिभजन कर सब विध हो कल्यान॥

दान देना है तो पवित्र भावनासे, निःस्वार्थ भावसे दें। जो वस्तु हमको ही अच्छी न लगे, उसका दान नहीं करना चाहिये। दान प्रेमसे दें, जहाँ आवश्यकता हो, वहीं दान दें तभी धनका सदुपयोग होता है।

दानी ही इस संसारमें सबसे बड़ा होता है। कारण, इतने कष्टसे कमाया हुआ धन दूसरोंको देना प्रत्येकके वशकी बात नहीं, तभी याचक छोटा होता है और दाता बहुत बड़ा होता है। भगवान् भी जब महाराज बलिसे दान लेने गये तो छोटेसे वामन बनकर ही गये।

दान कई प्रकारके होते हैं यथा—जलदान, अन्नदान, वस्त्रदान,शिक्षादान, प्रेमदान, अभयदान, मानदान, धर्मदान आदि।

डरे हुए को अभय दान दो भूखे को अनाज का दान।
प्यासे को जलदान करो अपमानित को दो सम्मान॥
विद्यादान करो अनपढ़ को, विपदग्रस्त को आश्रय दान।
वस्त्रहीन को वस्त्रदान दो रोगी को औषध का दान॥
धर्मरहित को धर्म दान दो, शोकातुर को धीरज दान॥
भूले को तुम राह दान दो, गृहहीन को दो गृहदान॥

दान देनेसे वास्तवमें धन बढ़ता है, घटता नहीं। रुपया कमाना कोई बड़ी बात नहीं। रुपया तो एक वेश्या, एक चोर, पापी भी कमा लेता है, लेकिन दान हर कोई नहीं दे सकता। दान देना ही इस संसारमें सबसे कठिन कार्य है और सबसे बड़ा पवित्र कार्य भी है। दानी भी हर कोई नहीं कहला सकता।

आप अपने जीवनको सुखमय बनाना चाहते हैं तो दान देना सीखें और सबसे बड़ा दान है—प्रेमदान। गरीबको, दु:खीको प्रेमदान दें। सबसे प्रेम करना सीख लें, सबको गले लगाना सीखें, अपने-आप ही सर्वत्र आनन्दकी वर्षा होने लग जायगी। लड़ाई-झगड़े सब मिट जायँगे। प्रेमदानमें क्षमादानका भाव भी निहित है। सबको अपनाना सीखें, अपना बनाना सीखें तो इसी पृथ्वीपर सुन्दर स्वर्गकी रचना सम्भव हो सकती है। निन्दा करना, द्वेष करना छोड़ें, प्रेम करना सीखें। इसमें तो धन भी नहीं खर्चना पड़ता।

नम्र और नि:स्वार्थ भाव से दो, कुछ भी न करो तुम अहसान।
सबको ईस्वर मानो सबको दो उनका स्वत्व पहचान॥

हमारा तो यही कहना है—

नि:स्वार्थ भाव से इस जग में पड़ा रहूँ मैं हे भगवान।
दीन दुखी दुर्बल की खातिर, हो जाऊँ हँस-हँस बलिदान॥

[प्रे०—श्रीगोपालजी शर्मा]

दानकी महिमा

(श्रीरमेशचन्द्रजी बादल, एम०ए०, बी०एड०, विशारद)

स्मृतियोंमें दानकी बड़ी महिमा बतायी गयी है, मनुस्मृति (१।८६)-के अनुसार—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

अर्थात् सत्ययुगमें तप, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञकर्म तथा कलियुगमें केवल एक कार्य—दान ही श्रेष्ठ है। अतएव कलियुगमें मनुष्यको दान अवश्य करना चाहिये। कलियुगमें दान ही श्रेष्ठ धर्म है। दान देनेवाला और दान पानेवाला—दोनों ही व्यक्ति मानसिक रूपसे शान्ति और सुखका अनुभव करते हैं। भूखे व्यक्तिको भोजन, प्यासेको पानी और जिसके पास शरीर ढकनेके लिये वस्त्र न हो, उसे वस्त्र (कपड़े), रोगी, बीमार और दु:खी व्यक्तिको चिकित्सा उपलब्ध कराना ही मानवता है और धनका भी यही सदुपयोग है। यही वास्तविक धर्म है।

भूदान-आन्दोलनके प्रणेता संत विनोबाने कहा है—संस्कृतमें धनको द्रव्य कहा गया है अर्थात् बहनेवाला। यदि वह स्थिर रहा तो रुके हुए पानीकी तरह उसमें भी बदबू आने लगेगी। अर्थात् धन एक ही स्थानपर सदैव न तो रहता ही है और न रहेगा। अतएव बुद्धिमानी तो यही है कि अपनी उचित आवश्यकताओंकी पूर्तिके बाद अतिरिक्त धनका सदुपयोग दान आदि परहितके कार्योंमें अवश्य ही करना चाहिये, अन्यथा संग्रह किया हुआ धन संकट उत्पन्न कर सकता है।

हितोपदेशकी एक सूक्ति है—**धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते।** अर्थात् उस धनसे क्या लाभ जो न तो जरूरतमंदोंके काम आ सके और न ही उसका कोई सदुपयोग ही हो सके। तात्पर्य यही है कि धन वही सार्थक है, जिससे दूसरोंकी भलाई हो सके।

नारायण कविकी शिक्षा है—

नारायन पर लोक मैं वह दो आवत काम।
देना मुट्ठी अन्न को लेना भगवत नाम॥
बाँट खाय हरि को भजै तजै सकल अभिमान।
नारायन ता पुरुष को उभय लोक कल्यान॥

उक्त दोहोंमें कविने मनुष्योंको सीख दी है कि भूखेको अन्न देना और भगवान्‌के नामका स्मरण करना परलोकमें काम आता है। अत: सभी तरहके घमण्ड (अभिमान)-को छोड़कर उक्त दोनों कार्य करना श्रेयस्कर है।

हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रन्थोंमें दानको मनुष्यका सबसे बड़ा मित्र एवं श्रेष्ठ कर्तव्य माना गया है। दान मनुष्यके चरित्रका एक विशेष महत्त्वपूर्ण अंग है। दानकी महिमाका वर्णन जितना ही किया जाय, वह थोड़ा है। यहाँ दानमहिमासे सम्बद्ध कुछ वचन दिये जा रहे हैं—

अत्रिस्मृति—अत्रिस्मृतिमें बताया गया है कि वेदसे बड़ा कोई शास्त्र नहीं है, मातासे बड़ा संसारमें कोई गुरु नहीं है और दानसे बढ़कर कोई हितकारी मित्र नहीं है। इस लोक और परलोक दोनोंहीमें दानसे कल्याण एवं हित होता है—

नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नास्ति मातु: परो गुरु:।
नास्ति दानात् परं मित्रमिह लोके परत्र च॥

(अत्रिस्मृति २।१४८)

व्यासस्मृति—महर्षि वेदव्यासजी कहते हैं कि केवल अपने ही आमोद-प्रमोदमें तत्पर रहनेवाले पशु भी अपना पेट भरकर जीवित रहते हैं। जो अपना ही उदर भरनेमें परायण रहे, ऐसे बलवान् और अधिक समयतक जीवित रहनेवाले शरीरसे क्या लाभ है?

जितना भी अपने पास हो उसमेंसे कुछ-न-कुछ दान देना चाहिये। एक ग्रासमेंसे आधा ग्रास याचकोंको देना उचित है। यों तो अपनी इच्छाकी पूर्ति करनेवाला धन-वैभव किसीके पास भी नहीं होता—

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्य: किं न दीयते।
इच्छानुरूपो विभव: कदा कस्य भविष्यति॥

(व्यासस्मृति श्लोक २३)

बृहस्पतिस्मृति—बृहस्पतिस्मृतिमें कहा गया है—**'धनं फलति दानेन'** अर्थात् धन दानसे ही फलप्रद होता है।

ऋग्वेद (१०।१०७।८)-का कहना है—दानी पुरुष अमर हो जाते हैं और उनकी योजनाएँ कभी असफल नहीं होतीं—**'न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयु:।'** ऋग्वेदका ही कथन है कि दानी मनुष्य (अमृत) अमरत्व पाते हैं और उनकी आयु बढ़ जाती है।

अथर्ववेद (३।२०।५)-की सूक्ति है—**'रयिं दानाय चोदय।'** अर्थात् दान देनेके लिये धन कमाओ, संग्रहके लिये नहीं।

एक अन्य सूक्तिमें कहा गया है कि दान देनेवालेकी सम्पदा घटती नहीं; बढ़ती है। **'उतो रयि: पृणतो नोप दस्यति।'** (ऋक्० १०।११७।१) जो दूसरोंकी भलाईके लिये दान करता है, उसका धन कम नहीं होता अपितु बढ़ता ही है।

अथर्ववेद (३।२४।५)-का उपदेश है—**शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर॥** अर्थात् सैकड़ों हाथोंसे धन अर्जित करो और हजार हाथोंसे उसे दान करो। वेदकी इस शिक्षाका आशय यही है कि अधिक धनके संग्रहमें ही अपना पूरा जीवन व्यतीत न कर दो बल्कि दोनों हाथोंसे दूसरोंके हितमें दान भी करते रहो।

दानके सन्दर्भमें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

मरुस्थल्यां यथा वृष्टि: क्षुधार्ते भोजनं यथा।
दरिद्रे दीयते दानं सफलं तत् पाण्डुनन्दन॥

हे अर्जुन! मरुस्थल (सूखे प्रदेश)-में जैसे वर्षा तथा भूखे व्यक्तिको भोजन कराना सफल एवं सार्थक होता है, वैसे ही निर्धन, असहाय दरिद्रको जो दान दिया जाता है, वह सफल होता है।

विदुरनीति—महामति विदुरने धृतराष्ट्रसे कहा—राजन्, ये दो प्रकारके पुरुष स्वर्गके ऊपर स्थान पाते हैं—शक्तिशाली होनेपर भी क्षमा करनेवाला और निर्धन होनेपर भी दान देनेवाला—

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठत:।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्॥

(विदुरनीति १।६३)

मत्स्यपुराण—मत्स्यपुराण (२२४।१)-में भगवान् मत्स्य राजर्षि मनुसे कहते हैं कि राजन्! दान सभी उपायोंसे सर्वश्रेष्ठ है। प्रचुर दान देनेसे मनुष्य दोनों

लोकोंको जीत लेता है—

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्।

सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित्॥

गरुडपुराण—भगवान् श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! भूमिदान करनेवाले प्राणीका अभिनन्दन सूर्य-चन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु और भगवान् त्रिशूलधारी शिव करते हैं। इस संसारमें भूमिदानके समान दान नहीं है। भूमिके समान दूसरी निधि नहीं है—

नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति भूमिसमो निधिः।

गरुडपुराणमें कहा गया है—

अदत्तदानाच्च भवेद् दरिद्रो दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।

पापप्रभावान्नरके प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥

अर्थात् जो मनुष्य दान नहीं करता, वह दरिद्र होता है, दरिद्रताके कारण पाप करता है, पापके प्रभावसे नरकगामी होता है और बार-बार पापकर्म करता है।

दानके अनेक प्रकार हो सकते हैं। दान चाहे जिस रूपमें हो, वस्तु, श्रम, भूमि, ज्ञान, अन्न, वस्त्र, पानी, शीतल छाया, चिकित्सा-सेवा आदि मनुष्यको त्याग करनेकी शिक्षा देता है। प्रत्येक मनुष्यके लिये यह आवश्यक है कि वह यथासम्भव दान करनेमें उत्साहयुक्त रहे। तन-मन-धन जिस प्रकार भी हो, दान करनेका भाव रखिये और जरूरतमंदोंकी सहायता कीजिये।

वीरता चार प्रकारकी मानी जाती है—युद्धकी वीरता, धर्मकी वीरता, दयाकी वीरता तथा दानकी वीरता। इन चारोंमें दानकी वीरता सबसे श्रेष्ठ है। दान करनेके लिये भी वीर होना आवश्यक है। कंजूस—कृपण दान नहीं कर सकता। दान देनेके साथ ही यह भी आवश्यक है कि दानदाता निःस्वार्थ भी हो। उसमें किसी प्रकार भी दानका यश-प्रशंसा पानेकी कामना न हो और न ही दान देनेका लेशमात्र भी गर्व हो तो वह महान् दान है। दानदाताके अन्दर यही भाव होना चाहिये कि सब कुछ परमात्माका है और मेरा अपना कुछ भी नहीं है। ईश्वरकी कृपासे ही यह पुण्य कार्य हो रहा है। यही भावना प्रत्येक दानदातामें होनी चाहिये।

कुछ दानदाता गुप्त रूपसे दान करते हैं। वे अपना नाम गुप्त रखना चाहते हैं। यह भी श्रेष्ठ दान कहा गया है। इस सम्बन्धमें कहा गया है कि दान ऐसे दो कि बायें हाथसे दिया गया दान दाहिने हाथको भी पता नहीं चले।

चाणक्यनीति—चाणक्यनीति (१०।७)-के अनुसार विद्या, तप, ज्ञान, दान, चरित्र, गुण एवं धर्म (कर्तव्य)-से विहीन व्यक्तिको पृथ्वीका भार बताया गया है। ऐसे व्यक्ति मानो मृगरूपमें घूम रहे हैं—

येषां न विद्या न तपो न दानं

ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।

ते मृत्युलोके भुवि भारभूता

मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

मनुष्यके लिये उक्त गुणोंका होना आवश्यक है।

दानशीलताका एक उदाहरण—जनश्रुतिके अनुसार धारा नगरीके सम्राट् भोज अपनी दानशीलताके लिये प्रसिद्ध थे। उनके एक मन्त्रीने सम्राट् भोजकी दानशीलताको देखकर कहा—**आपदर्थे धनं रक्षेद्।** अर्थात् समयका भरोसा नहीं, आपातकालके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये। राजाने उत्तर दिया—**श्रीमतामापदः कुतः?** अर्थात् भाग्यशालीको आपत्ति कहाँ? मन्त्रीने उत्तर दिया—'**कदाचित् कुपितो दैवः?**' यदि भाग्य रूठ जाय तो? राजाने कहा—'**सञ्चितमपि विनश्यति।**' अर्थात् तब तो संचित धन भी नष्ट हो सकता है। राजाके इस उत्तरसे मन्त्री निरुत्तर हो गया और फिर उसने राजाको दान करनेसे नहीं रोका।

हमारे देशमें राजा भोजकी तरह अनेक दानवीर हो चुके हैं, जैसे—दानवीर कर्ण, राजा शिवि, महर्षि दधीचि, महाराज बलि, एकलव्य आदि। आज भी अनेक महापुरुष दिल खोलकर दान करते हैं और निःशुल्क औषधालय, भोजनालय, विश्रामगृह, अनाथालय, वृद्धाश्रम, विकलांग लोगोंको रोजगार और चिकित्सा, शीतल पानीकी व्यवस्था (गर्मियोंके दिनोंमें), विद्यालय आदिकी व्यवस्था करते हैं। आज भी अनेक संस्थाएँ दानवीर लोगोंके सहयोगसे संचालित हो रही हैं, जिनसे जरूरतमन्द निर्धनोंको सहायता मिल रही है और उसके साथ ही समाजमें दान करनेकी प्रेरणाका प्रसार हो रहा है। कई लोग देखकर ही प्रभावित होते हैं और आगे बढ़कर इन संस्थाओंमें अपना आर्थिक योगदान करते हैं।

शंकराचार्यजी कहते हैं—'**देयं दीनजनाय च वित्तम्**' अर्थात् गरीबोंको दान देना चाहिये—जो देता है वह देवताके समान है।

कविवर रहीमने भी शिक्षा दी है—

यों रहीम सुख होत है उपकारी के अंग।
बाँटन वारे को लगे ज्यों मेंहदी का रंग॥

अर्थात् दूसरोंको तन-मन-धनसे जो भी सेवा दे सकें, यथाशक्ति देते रहना चाहिये। हम जो भी देते हैं, वह वास्तवमें नष्ट नहीं होता बल्कि दोगुना-चौगुना होकर हमें मिलता है। दानको एक प्रत्यक्ष लाभका व्यापार कहा गया है। जो दूसरोंके लिये मेंहदी बाँटता है उसे स्वयं मेंहदी लगानेकी आवश्यकता नहीं रहती, उसके हाथ स्वतः रच जाते हैं। यह प्रत्यक्ष लाभका एक उदाहरण है।

दानका एक और अपूर्व उदाहरण—एक समय भयंकर अकाल पड़ा था। महाकवि माघके पास दानके लिये जब कुछ शेष नहीं रह गया तब उन्होंने अपने स्वरचित काव्यके बदलेमें धन प्राप्त करनेका विचार किया। माघ कविने अपनी पत्नीको स्वरचित काव्यके बदलेमें धन प्राप्त करनेहेतु राजा भोजके पास भेजा और प्राप्त धनको अकालपीड़ितोंमें बाँट दिया।

तात्पर्य यह है कि जब हम अपने दो हाथोंसे जरूरतमंदों-पीड़ितोंकी सहायता करते हैं, तब ईश्वर भी हजार हाथोंसे हमारी कठिनाईको आसान कर देता है।

पुराणोंमें कहा गया है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

अर्थात् जितनेमें पेट भर जाता है, उससे अधिकमें जो अधिकार मानता है, वह चोर है, दण्डका भागी है।

जीवनमें दान देना एक नित्यकर्म माना गया है। '**श्रद्धया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्।**' दान चाहे श्रद्धासे दे अथवा लज्जासे दे या भयसे दे, परंतु दान अवश्य ही देना चाहिये। दान देना परम आवश्यक है।

दानका एक अनुपम उदाहरण—एक दिन किसी बुढ़ियाने एक दरवाजेपर भीखके लिये याचना की। एक बालकने आकर बुढ़ियाकी दयनीय दशा देखकर माँसे कहा—माँ! एक गरीब बुढ़िया मुझे बेटा कहकर कुछ माँग रही है। माँने कहा—कुछ चावल दे दो। पर बालकने हठ करते हुए कहा—माँ! चावलसे क्या होगा? तुम जो अपने हाथमें सोनेका कंगन पहने हो, वही दे दो न। मैं बड़ा होकर तुम्हें दो कंगन बनवा दूँगा। माँने बालकके इच्छानुसार सोनेका कंगन दे दिया। बालकने अत्यन्त प्रसन्नताके साथ वह कंगन भिखारिनको दे दिया। भिखारिनने कंगन प्राप्तकर बालकको हृदयसे अनेक आशीर्वाद दिये। वह बालक बड़ा होकर एक विद्वान् बना और उसकी प्रसिद्धि दूर-दूरतक फैल गयी। एक दिन वह माँसे बोला—माँ, तुम अपने हाथका नाप दे दो, मैं कंगन बनवा दूँ। उसे बचपनका कहा याद था। माँने कहा—उसकी चिंता छोड़। मैं इतनी बूढ़ी हो गयी हूँ कि अब मुझे कंगन शोभा नहीं देंगे। हाँ, कलकत्तेमें गरीबोंके लिये तू एक विद्यालय और चिकित्सालय खुलवा दे, जहाँ निःशुल्क पढ़ाई और चिकित्साकी व्यवस्था हो सके। माँके उस पुत्रका नाम था—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर। दान कभी निष्फल नहीं जाता। दान और उसके फलस्वरूप प्राप्त आशीर्वादोंसे व्यक्ति अक्षय यश प्राप्त करता है।

विश्वके लगभग सभी धर्मोंमें दान देना, निर्धनोंकी सहायता करना, परोपकारके कार्य करना आदिको आवश्यक माना गया है।

ईसाई धर्ममें लोग क्रिसमसके अवसरपर निर्धनोंकी अनेक प्रकारसे सहायता करते हैं। धर्मग्रन्थ बाइबिलके अनुसार तीन गुण आशा, विश्वास और दानको सबसे उत्तम बताया गया है।

मुस्लिमधर्मग्रन्थ कुरान शरीफके अनुसार वयु अतुज्जकात अर्थात् जकात (दान) देना चाहिये। जकात समाजके कमजोर वर्गोंकी सहायताके लिये कुरआनद्वारा दी गयी अद्वितीय मिसाल है।

रोजोंके दिनोंमें ईदके अवसरपर जकात-खैरात दिया जाता है।

हिन्दूलोग अनेक पर्वोंपर दान देना पवित्र कर्तव्य मानते हैं। प्याऊ, धर्मशालानिर्माण, धनदान, वस्त्रदान आदि अत्यन्त पुनीत कार्य हैं। अन्तमें महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजीका यह दोहा स्मरण रखकर दानकार्यमें पीछे न रहें—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

(रा०च०मा० ७। १०३ ख)

मानवका उत्कर्ष-विधायक अमोघ साधन—दान

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०, डी०एस-सी०)

मानवको भूमाका वरदान अथवा अमृतपुत्र—'**अमृतस्य पुत्राः**' कहा जाता है। जैसे प्रत्येक पिता अपने आत्मजको अधिकाधिक सुखी और कीर्तिवान् देखना चाहता है, वैसे ही अमृतरूप प्रभु भी अपने आत्मजको यशस्वी और यथार्थ अमृतपुत्ररूपमें देखना चाहते हैं, इसलिये उन्होंने अन्यान्य गुणोंके साथ ऐसे उपाय भी शास्त्रोंके माध्यमसे उसके लिये प्रस्तुत किये हैं, जो उसे शाश्वत कीर्तिका भाजनकर सही अर्थोंमें अन्वर्थक अमृतपुत्र बना देते हैं। ऐसे ही उपायोंमें अन्यतम है—दान।

दान विश्वके सभी देशों, सभी मानवसमुदायोंमें मान्य है। सन्त कबीरके नामसे प्रचलित यह दोहा अकसर कहा-सुना जाता है—

चिड़ी चोंच भर ले गयी, घट्यो न सरवर नीर।
दान दिये धन ना घटे, कह गये दास कबीर॥

प्रदेयार्थक दान शब्दका हिन्दी-संस्कृतमें एक ही अर्थ है—देना। उर्दू, फारसी आदि भाषाओंमें दानके लिये 'खैरात' शब्दका प्रयोग होता है। इस शब्दका प्रथम भाग खैर-कल्याण अथवा भलाईका सूचक होनेसे कर्मके उद्देश्यको स्वयं अभिव्यंजित कर देता है। अंग्रेजीमें दानका अर्थ है—Giving away as charity. गिविंग अवे ऐज चेरिटी; इसका भाव है—पुण्यार्थ देना। इसी प्रकार विश्वकी अन्यान्य भाषाओंमें अपने-अपने ढंगसे इसका प्रचलन होता चला आ रहा है। देववाणी संस्कृतमें अमरकोषके अनुसार दान शब्दके लिये पर्यायवाचीरूपमें प्रयुक्त होनेवाले तेरह शब्द और हैं—

त्यागो विहापितं दानमुत्सर्जनविसर्जने।
विश्राणनं वितरणं स्पर्शनं प्रतिपादनम्॥
प्रादेशनं निर्वपणमपवर्जनमंहतिः।

(२।७।२९-३०)

त्याग, विहापित, दान, उत्सर्जन, विसर्जन, विश्राणन, वितरण, स्पर्शन, प्रतिपादन, प्रादेशन, निर्वपण, अपवर्जन तथा अंहति—ये तेरह शब्द भी दानके वाचक हैं।

दान यूँ तो किसी भी वस्तुका किया जा सकता है, परंतु कुछ मुख्यदान इस प्रकार हैं—

मानवजीवनको सभ्य और सुसंस्कृत तथा ज्ञानवान् बनानेवाला दान है—विद्यादान। इसे सर्वश्रेष्ठ दान प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—**सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं विशिष्यते।**

'**धन्यो गृहस्थाश्रमः**' इस कथनको अन्वर्थक बनानेवाला दान है—कन्यादान।

कन्यादानसे पूर्व वाग्दानका क्रम आता है। इसमें कन्याके पिताके प्रतिनिधि कन्याके उपयुक्त युवकको यह वचन देते हुए उसका वररूपमें वरण करते हैं कि यथासमय कन्याके पिता यज्ञाग्निकी साक्षीमें तुम्हें अपनी कन्या समर्पित करेंगे।

स्वर्गसुख, वाहनसुख, ग्रह-शान्तिके लिये गज, अश्व, शिविका आदिका दान दिया जाता है।

विभिन्न ग्रहोंके प्रीत्यर्थ भिन्न-भिन्न वस्तुओंका दान किया जाता है।

पितृ-मोक्षप्राप्ति, वैतरणीतरण, यमयातनाको दूर करने एवं सर्वविध कल्याणप्राप्तिके लिये गोदानका विधान है। ग्रहीत दानके दोषका परिहार भी इसके द्वारा किया जाता है।

राज्य तथा ऐश्वर्य आदिकी प्राप्तिकी कामनासे किया जानेवाला दान भूदान है। इनके अतिरिक्त यमप्रीतिसम्पादनार्थ दीपदान; तापतृषा, जन्मकष्ट-मुक्तिहेतु किया जानेवाला दान—घटदान और किसीकी क्षुधानिवृत्तिके लिये अन्नादि भक्ष्य पदार्थोंका दिया जानेवाला दान है—अन्नदान। अपराधको क्षमा कर देना—क्षमादान है, मृत्युदण्डके पात्रकी याचनापर दिया जानेवाला दान प्राणदान है, ऐसे पितृपरितोषार्थ पिण्डदान, शय्यादान आदि दानके विविध रूप हैं।

वस्तुतः सही दान वही है, जिससे क्षुधा, तृषा, शीत, आतप, पीड़ा आदिसे मुक्त होकर दान लेनेवाला परितोषका अनुभवकर दाताको अन्तःकरणसे आशीर्वाद दे।

दान मोक्षप्राप्ति एवं अक्षय कीर्तिप्राप्तिका अमोघ साधन है। रन्तिदेव, मोरध्वज, शिबि, हरिश्चन्द्र, दानवीर कर्ण आदि अनेक पुण्यश्लोकजन दानके कारण ही अनेक युग बीत जानेपर भी यशःशरीरसे हमारे स्मृतिपथके अतिथि बने हुए हैं।

शास्त्रोंके अनुसार दिया हुआ दान ही परलोकमें भोग्य-पदार्थके रूपमें प्राप्त होता है।

दान जहाँ कल्याणका परम साधन है, वहीं यदि इसमें किसी प्रकारकी त्रुटि हो जाय तो यह कर्ताको कठोर दण्डका भागी भी बना देता है। राजा नृगकी भागवतीय कथा इसका ज्वलन्त प्रमाण है, जिसके अनुसार दानवीर राजा नृगको दस हजार वर्ष गिरगिटकी योनिमें केवल इसलिये रहना पड़ा; क्योंकि उन्होंने एक बार दानमें दी गयी गौको भूलसे दुबारा दूसरे ब्राह्मणको दान कर दी थी।

दान देते समय न अहंभाव मनमें होना चाहिये, न कृपणता। दानदाताका उदार होना आवश्यक है। कणभर दानकर मनभर यशप्राप्तिकी कामना उचित नहीं, पर आज यही प्रवृत्ति विशेषकर परिलक्षित हो रही है।

सनातनधर्म और उसके मान्य आर्षग्रन्थोंमें दानकी महिमा गायी गयी है। भगवान् वेदके इसी निर्देशको अंगीकृतकर सन्तोंने लोकवाणीमें कहा है—

पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

दान देनेका अधिकार किसे है? इस सम्बन्धमें भी शास्त्र मौन न रहकर स्पष्ट कहता है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—तीनों वर्णोंके प्राणी अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान देनेके अधिकारी हैं। ब्राह्मण दान देने और लेने दोनोंका पात्र है। भगवान् मनुने कहा है—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

अर्थात् अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना—ये छः कर्म ब्राह्मणके लिये बताये गये हैं।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

अर्थात् प्रजाकी रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, विद्याध्ययन करना, विषयोंमें आसक्त न होना; संक्षेपमें यही पाँच मुख्य कर्म क्षत्रियोंके हैं।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदञ्च वैश्यस्य कृषिमेव च॥

(मनुस्मृति १।९०)

गौ आदि पशुओंकी रक्षा करना, दान देना, वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन करना, यज्ञ करना, व्यापार करना, ऋण देकर ब्याज वसूल करना तथा खेती करना—ये सात कर्म वैश्योंके हैं।

श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार दान जीवन और सम्पद्को पावन करनेवाला अमोघ साधन है।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

(१८।५)

यहाँ मनीषी शब्दका प्रयोग विशेष उद्देश्यसे किया गया है। मनीषी वेदज्ञ विद्वान्को कहते हैं। वेदज्ञ विद्वान् पूतात्मा होता है। यहाँ इस प्रयोगद्वारा पावनको पावनतर बना देनेकी क्षमताके निदर्शनार्थ किया गया है और देश, काल, व्यक्ति-भेदसे यह पावनकर्ता साधन राजस, तामस आदिवाला होकर फल-भेद उत्पन्न कर देता है।

श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार सात्त्विक दान वह है, जो दान देना ही चाहिये—इस निश्चयात्मक भावसे पुण्यक्षेत्र, शास्त्रविहित संक्रान्ति आदि पुण्यकाल तथा दान देनेके योग्य ऐसे पात्रके उपलब्ध होनेपर, जिसने कभी दाताको किसी प्रकारके उपकारद्वारा उपकृत न किया हो अर्थात् जो सर्वथा अपरिचितप्राय हो, उसे निरपेक्ष भावसे दिया जाता है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

(गीता १७।२०)

दान दयासे प्रेरित होकर आत्मकल्याणार्थ किया जाता है, अतः मनीषियोंने इसका परिगणन दयाभावके छः रूपोंके अन्तर्गत इस प्रकार किया है—

परोपकारो दानं च सर्वदा स्मितभाषणम्।
विनयो न्यूनताभावस्वीकारः समतामतिः॥

अर्थात् परोपकार, दान, सदा मुसकराते हुए बात करना, विनय, स्वयंको सबसे छोटा समझना तथा समत्वबुद्धि—ये दयाके छः रूप हैं।

दान परिवारके सदस्यों, आश्रितोंको दुःखी कर नहीं देना चाहिये। उनको दुःखी रखकर किया गया दान दाताको सदैव दुःखी रखता है—

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च॥

(मनु० ११।१०)

दानदाताद्वारा स्वयं सत्पात्रके पास जाकर दिया गया दान उत्तम, अपने यहाँ बुलाकर दिया गया दान मध्यम, माँगनेपर दिया गया दान अधम एवं सेवाके बदले दिया गया दान निकृष्ट होता है—

अनिगम्योत्तमो दानमाहूयैव तु मध्यमम्।
अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम्॥

(स्कन्द० प्रभास० २२३। ४९)

अतः आत्मकल्याण, श्रीमन्नारायणप्रीत्यर्थ अथवा उत्तम फल चाहनेवालेको स्वयं सत्पात्रके पास जाकर ससम्मान दान देना चाहिये।

दीन, हीन, असहाय, अनाथ, अपंगादिको दयारूपसे दिया गया दान अनन्त फल देनेवाला माना गया है—

दीनान्धकृपणानाथवाग्विहीनेषु यत्तथा॥
विकलेषु तथान्येषु जडवामनपङ्गुषु।
रोगार्तिषु च यद्दत्तं तत्स्याद् बहुधनं फलम्॥

(विष्णुधर्मोत्तर० ३। ३००। ३०-३१)

यमलोकके मार्गको सुगम बनानेके लिये अन्न, जल, अश्व, गौ, वस्त्र, शय्या, छत्र तथा आसन—इन आठ वस्तुओंका दान प्रशस्त माना गया है—

अन्नपानाश्वगोवस्त्रशैयाच्छत्रासनानि च।
प्रेतलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः॥

(शिवपु० उमा० ११। ५०)

गौ, सोना, चाँदी, रत्न, विद्या, तिल, कन्या, हाथी, घोड़ा, शय्या, वस्त्र, भूमि, अन्न, दूध, छत्र तथा आवश्यक सामग्रीसहित घर—इन सोलह वस्तुओंके दानको महादान कहा जाता है—

गावः सुवर्णं रजतं रत्नानि च सरस्वती।
तिलाः कन्या गजोऽश्वश्च शैयावस्त्रं तथा मही॥
धान्यं पयश्च च्छत्रं च गृहं चोपस्करान्वितम्।
एतान्येव महादेवि महादानानि षोडश॥

(स्क० प्रभास० २०२। ११-१२)

मानवका सर्वविध हित अथवा आत्यन्तिक कल्याण दानमें परिलक्षितकर ही सनातनधर्ममें करणीय कर्तव्यके रूपमें दानका विधान किया गया है, जिसे मानना, करना मानवका पुनीत कर्तव्य है।

दानका माहात्म्य

(डॉ० पुष्पाजी मिश्रा, एम०ए०, पी-एच०डी०)

ऋग्वेदके दशम मण्डलका ११७वाँ सूक्त जो कि धनान्नदानसूक्त कहलाता है, दानकी महत्ता प्रतिपादित करता है। सूक्तसे यह स्पष्ट होता है कि लोकमें दान तथा दानीकी अपार महिमा है और धनीके धनकी सार्थकता उसकी कृपणतामें नहीं, वरन् दानशीलतामें है—

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः॥

(ऋक्० १०। ११७। ५)

अर्थात् जो याचकको अन्नादिका दान करता है, वही धनी है। उसे कल्याण (श्रेय)-का शुभ मार्ग प्रशस्त दिखायी देता है। वैभव-विलास रथके चक्रकी भाँति आते-जाते रहते हैं। किसी समय एकके पास सम्पदा रहती है तो कभी दूसरेके पास।

योग्य पात्रको श्रद्धापूर्वक धनका अर्पण करना 'दान' कहलाता है। वस्तुतः धनका फल है दान और उपभोग। अतः जो भी पदार्थ अपनेको प्रिय हो, वही पदार्थ सुपात्रको दानमें देना चाहिये। श्रीवामनपुराण (१४। १०८) एवं महाभारत (अनु० ५९। ७)-के अनुसार—

यद् यदिष्टतमं किंचिद् यच्चास्य दयितं गृहे।
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥

अर्थात् संसारमें जो भी पदार्थ अभिलषित एवं प्रिय हो, उसकी अक्षयताकी कामना करते हुए गुणवान् पात्रको दान देना चाहिये।

दान चार प्रकारका कहा गया है—नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा विमल—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते।
चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥

(पद्मपुराण स्वर्ग० ५७। ४)

जिसका अपने ऊपर कोई उपकार न हो, ऐसे ब्राह्मणको कामनारहित होकर प्रतिदिन जो कुछ भी दिया जाता है, वह नित्यदान कहलाता है। जो पापोंकी शान्तिके लिये विद्वानोंको अर्पण किया जाता है, वह नैमित्तिक दान कहलाता है। जो सन्तान, विजय, ऐश्वर्य और सुख-भोग-प्राप्तिके उद्देश्यसे दिया जाता है, उसे 'काम्य' कहा जाता है तथा जो भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये धर्मयुक्त चित्तसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषको अर्पण किया जाता है, वह 'विमल' (सात्त्विक) दान कहलाता है। यह दान सभी दानोंसे श्रेष्ठ है।

सुयोग्य पात्रको अपनी शक्तिके अनुसार दान अवश्य देना चाहिये। कुटुम्बको भोजन-वस्त्र आदि प्रदान करनेके बाद जो कुछ अवशेष धन रहे, उसीका दान करनेका शास्त्रोंमें आदेश है। कुटुम्बका भरण-पोषण किये बिना जो कुछ भी दान दिया जाता है, वह निष्फल होता है। श्रुति कहती है—

श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्।

(तैत्ति० उप० १।११।१)

जो कुछ भी वस्तु दानमें दी जाय श्रद्धापूर्वक दी जाय। अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहिये; क्योंकि बिना श्रद्धाके किये हुए दान असत् माने गये हैं—'**अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥**' (गीता १७।२८) लज्जापूर्वक देना चाहिये चूँकि सारा धन तो भगवान्‌का ही है तथा उनकी सेवामें धन लगाना मेरा कर्तव्य है। जो कुछ मैं दे रहा हूँ वह थोड़ा है, इस संकोचसे दान देना चाहिये। अपनी आर्थिक स्थितिके अनुसार देना चाहिये। भयसे भी देना चाहिये। परंतु जो कुछ भी दिया जाय विवेकपूर्वक, निष्काम भावसे कर्तव्य समझकर देना चाहिये। '**दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।**' (गीता १७।२०) इस प्रकार दिया गया दान भगवत्प्रेम एवं श्रेय (कल्याण)का साधन हो जाता है। वही अक्षय फल देनेवाला है।

'भूदान' सभी दानोंमें उत्तम—पृथ्वी अचल और अक्षय है। वस्त्र, रत्न, पशु, अन्न आदि नाना प्रकारके उपयोगी पदार्थ पृथ्वीसे ही प्राप्त होते हैं, अतः भूदान करनेवाला मनुष्य सदा समस्त प्राणियोंमें सबसे अधिक अभ्युदयशील होता है। इस जगत्‌में जबतक पृथ्वीकी आयु है, तबतक भूदान करनेवाला मनुष्य समृद्धिशाली रहकर सुख भोगता है। अतः भूदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। जो भूदान करता है, वह पुरुष पितृलोकमें रहनेवाले पितरों तथा देवताओंको भी तृप्त कर देता है। कूर्मपुराण उपरिविभाग (२६।१५)-के अनुसार—

भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन।
अन्नदानं तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम्॥

अर्थात् इस संसारमें भू-दानकी बहुत बड़ी महिमा है। इस दानसे बड़ा कोई दान नहीं है। अन्नदान भी उत्तमदान है, परंतु विद्यादान उत्तमोत्तम है।

अन्नदान—अन्न ही शरीरको बल देता है तथा उसीके आधारपर प्राण टिका हुआ है। इसलिये कल्याण चाहनेवालोंको अन्नदान करना चाहिये। जो मनुष्य देवताओं, पितरों, ऋषियों, अतिथियों तथा भिक्षा माँगनेवालेको अन्नदान करता है, वह महान् पुण्यके फलका भागी होता है। अन्नका दान ही एक ऐसा दान है, जो दाता-भोक्ता दोनोंको प्रत्यक्ष रूपसे सन्तुष्ट कर देता है। अन्य सभी दानोंका फल अप्रत्यक्ष (परोक्ष) है।

जलका दान—मनु महाराजका कथन है कि जलका दान सब दानोंसे बढ़कर है। इसलिये पूर्तकर्म यथा कूप, बावली, तालाब, पौंसले आदि बनवाने चाहिये। जलसे ही अन्न उपजते हैं, जिससे मनुष्यकी क्षुधा तृप्त होती है। स्नान, तृषा-निवारण, पितरोंका तर्पण और दुर्गन्धका नाश यह सब जलके द्वारा ही होता है। प्रत्येक कार्यमें जलको पवित्र माना गया है। जलाशयका जीर्णोद्धार करनेसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है।

मृत्युके उपरान्त धन व्यक्तिके साथ नहीं जाता, परंतु सुपात्रको दिया गया दान परलोक मार्गपर पाथेय बनकर साथ जाता है। कष्टोंको सहकर प्राणोंसे भी प्रिय जो धन एकत्र किया गया है, उसकी एक ही सुगति है—दान। शेष भोग और नाश तो महान् विपत्तियाँ हैं। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीका कथन है—

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी।
धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥

(रा०च०मा० ७।१२७।४)

वह धन धन्य है, जिसकी पहली गति 'दान' होती है। वही बुद्धि धन्य है, जो पुण्यमें लगी हुई है।

कन्यादान—जो मनुष्य विवाहयोग्य कन्याको अलंकृतकर ब्राह्मविधिसे सुयोग्य वरको दान करता है, वह सात पूर्व और सात आनेवाली पीढ़ियोंको तथा अपने कुलके सभी सदस्योंको तार देता है। शुल्क लेकर कन्याका दान करनेवाला नरकगामी होता है। अनाथ कन्याका विवाह करानेवाला स्वर्गमें पूजित होता है। **'अनाथां कन्यकां दत्त्वा नाकलोके महीयते।'** जो मनुष्य कन्यादानके साथ स्वर्णका दान करता है, वह द्विगुणित कन्यादानका फल प्राप्त करता है।

विद्यादान—

तुल्यनामानि देयानि त्रीणि तुल्यफलानि च।
सर्वकामफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती॥

(महाभारत अनु० ६९।४)

अर्थात् गाय, भूमि और सरस्वती (विद्या)—ये समान नामवाली हैं। इन तीनों वस्तुओंका दान करना चाहिये। इन तीनोंके दानका फल एक समान है, ये तीनों मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करती हैं।

जो मनुष्य शान्त, पवित्र और धर्मात्मा ब्राह्मणको विधिपूर्वक विद्याका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

सात्त्विक दान ही सर्वश्रेष्ठ है

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी, एम० कॉम०)

दानका अर्थ—धर्मकी दृष्टिसे या दयावश किसीको कोई वस्तु देनेकी क्रिया दान है। परहितकी दृष्टिसे उदारतापूर्वक दुःखियोंकी सहायता करना भी दान कहलाता है। साधारण अर्थोंमें प्रेम, परोपकार तथा सद्भावनाको दान माना जाता है। आध्यात्मिक दृष्टिसे सार्वभौम प्रेम तथा ईश्वरके प्रति अनन्य श्रद्धा एवं सबके प्रति सद्भाव यह महान् दान है। अपनी सम्पत्तिमेंसे शुद्ध भावसे बिना किसी फलकी कामनासे जो दिया जाय, उसे दान कहते हैं। लोभको जीतनेका एकमात्र साधन है—दान। यदि लोभ भी हो तो वह दान करनेका हो। बृहदारण्यकोपनिषद्‌में प्रजापतिने अपनी तीन संतानों, देवताओंको दम (अपनी इन्द्रियों और इच्छाओंका दमन करो) यानी संयमका, मनुष्योंको दान तथा असुरोंको दया करनेका उपदेश दिया है। धर्मके चार चरणोंमें एक चरण कलियुगमें विशेष रूपसे धारण करनेयोग्य है—दान। दान किसी प्रकारसे किया जाय कल्याणकारी ही है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

दुनियाके सभी पदार्थ फेंकनेसे नीचेकी ओर जाते हैं किंतु दान ही एक ऐसी चीज है जो कि फेंकनेसे ऊपरकी ओर उठती है। पर दान देकर उसका स्मरण नहीं करना चाहिये। कमरेकी खिड़कियाँ बन्द रखनेसे हवा बन्द हो जाती हैं। इसी प्रकार धनका संग्रह कर लेनेसे एवं दानरूपी खिड़कियाँ बन्द कर लेनेसे हवारूपी धनका आना बन्द हो जाता है। चन्द्रमा समुद्रसे बोला 'सारी नदियोंका पानी आप अपने पेटमें जमा करते हैं, ऐसी तृष्णा भी किस कामकी है?' समुद्रने उत्तर दिया—'जिनके पास अनावश्यक है, उनसे लेकर बादलोंद्वारा सर्वत्र न पहुँचाऊँ तो सृष्टिका क्रम कैसे चले?' यदि सब एकत्र ही करते रहेंगे तो औरोंको कैसे मिलेगा? यही दान देनेकी भावनाका रहस्य है, जो सनातन कालसे चला आ रहा है।

दानके भेद—मुख्य रूपसे दानके दो भेद बताये गये हैं—(१) निष्कामदान और (२) सकामदान।

(१) निष्कामदान—जो दान बिना किसी कामना, फल या इच्छाके दिया जाता है, जिसमें दिखावेकी भावना बिलकुल नहीं होती, वह निष्कामदान होता है। निष्कामदान, गुप्तदान और सात्त्विक दानसे ही प्रभु प्रसन्न होते हैं और यही दान फलित होता है। सात्त्विक दान ही सर्वश्रेष्ठ तथा उत्कृष्ट है। इसे निम्न दृष्टान्तसे अच्छी तरह समझा जा सकता है—

एक बार कुम्भके मेलेमें बहुत-से धनी लोग, महन्त आदि गये। सबने बड़े-बड़े अन्नक्षेत्र लगाये, बड़ा भारी

पुण्य किया। एक गरीब घास खोदनेवालेके मनमें आया कि मैं आज भोजन नहीं करूँगा, आजकी घासका पैसा मैं भी दान कर दूँ। बस, घास बेची तो चार आने आये, यही उसकी पूरे दिनकी आमदनी थी। चार आनेमें तो आता ही क्या? स्नान करके चार आनेके चने लिये और एक भूखेको खिला दिये। जब सभी दानी लौटे तो साथ वह भी था, चार आनेवाला दानी। बड़ी कड़ी धूप पड़ रही थी, उसके पुण्यके प्रतापसे बादलकी छाया सबके साथमें ऊपर चलने लगी, सभी बड़े प्रसन्न होकर बोले—हमारा दान सफल हो गया, परमात्माने छाया कर दी है। इतनेमें इस गरीबको प्यास लगी और पीछे पानी पीने रह गया, छाया बादलकी जो साथ चल रही थी, उसीके ऊपर रह गयी। सब धूपमें चलने लगे, सबने सोचा कि किसी हवाके अनुकूल होनेसे छाया साथ चल रही थी। रुख बदलनेसे छाया दूर चली गयी है, किंतु जब यह चार आनेवाला दानी पानी पीकर आया तो छाया उसके साथ फिर आ गयी और साथ-साथ चलने लगी। तब सब समझ गये कि इस भक्तकी ही महिमा है; क्योंकि छाया इसीके साथ चलती है। सभी उससे पूछने लगे कि तुमने ऐसा क्या दान किया है, जो छाया तुम्हारे साथ चलती है? तब भक्तने कहा—महाराज! दान तो आप सबने किया है, मुझ गरीबके पास क्या है? आज चार आनेकी घासके पैसोंके चने दे दिये हैं एक भूखेको और तो कुछ किया नहीं, बस उसीका फल है।

(२) सकामदान—जो दान किसी फलकी इच्छासे किया जाता है, वह सकामदान कहलाता है। यदि कोई दान समाजमें अपनी प्रतिष्ठा, सम्मान बढ़ानेके लिये दिया जाता है, अपने धन-वैभवके प्रदर्शनहेतु दिया जाता है, दाताके मनमें दानकी भावना नहीं होती तो ऐसे दान देनेवाले व्यक्तिको दानके सच्चे फलकी प्राप्ति नहीं होती। यह दान नहीं आडम्बरमात्र है। इसे हम निम्न उदाहरणसे समझ सकते हैं—

एक भक्तको प्रभुकृपासे एक दिव्य स्वप्नमें स्वर्ग और नरक दोनोंका दृश्य देखनेका अवसर मिला। स्वर्गमें उसे ऐसे व्यक्ति दिखायी पड़े, जो पूर्वजन्ममें निर्धन और निर्बल थे और नरकमें ऐसे व्यक्ति दिखायी दिये, जो पहले धनी या बड़े दानी थे। नरकमें एक अमीरको, जो प्रसिद्ध दानी था; मलिन रूपसे बैठा देखकर भक्तने उससे पूछा कि तुम महान् दानी होनेके बावजूद यहाँ क्यों भेजे गये? उसने ठण्डी साँस भरकर जवाब दिया 'मैंने जो लाखों रुपये परोपकारके कार्योंमें दान दिये, उसके पीछे मेरी इच्छा लोक-प्रशंसा तथा राजाको प्रसन्न करनेकी लगी हुई थी। इसलिये वह दान सही अर्थोंमें पारमार्थिक नहीं था। मैंने दान दूसरोंको दिखानेहेतु दिया, दीन-दुःखियोंकी सहायताके लिये नहीं, इससे यह कष्ट भोग रहा हूँ।'

दान किसे और कैसे?

दान सुपात्रको ही दिया जाय, पात्र सच्चरित्र तथा जरूरतमन्द होना चाहिये। ऐसे माँगनेवाले आजकल बहुत हैं, जो दिनभर तो माँगते हैं तथा रात्रिमें उस राशिको शराब, जुआ, नाच-गाने आदिमें खर्च करते हैं। ऐसे व्यक्तियोंको दिया गया दान ऐसी दुष्प्रवृत्तियोंको बढ़ाता है, जिससे समाजमें व्यभिचार तथा भ्रष्टाचार फैलता है। अतः दान देनेवाले व्यक्तिको बहुत सोच-विचारकर पात्रका चयन करना चाहिये, अन्यथा उसे दानका फल कदापि नहीं मिल सकता।

दानीको अपनी हैसियतके अनुसार ही दान देना चाहिये, किसीके आग्रहसे अपनी क्षमतासे ज्यादा देना, कष्ट सहकर दान देना कभी नहीं फलता। अपनी क्षमताके अनुसार हर्ष एवं उल्लासके साथ दान करें किंतु उसका प्रदर्शन नहीं करें। दान देते समय अभिमान न हो, लज्जासे विनम्र होकर दान करें।

किसी वस्तु या सेवाका दान बड़ा या छोटा नहीं होता है। दान भले ही किसी भी वस्तुका हो, उसे देनेसे पात्रको संतुष्टि एवं आनन्द प्राप्त होवे तथा उसकी आवश्यकताकी पूर्ति करे, वही श्रेष्ठ होता है। विकलांग, बौने, गूँगे, अनाथ, निर्धन, अन्धे, भूखे, रोगीको दिये गये दानका महान् फल मिलता है। भूकम्प, आपदा, बाढ़ या अकाल आदिके समय आपदाग्रस्त प्राणीको एक मुट्ठी चना दान देना भी सर्वोत्तम है। जैसे-भूखेको अन्न, प्यासेको जल, रोगीको औषधि, वस्त्रहीनको वस्त्र, अशिक्षितको शिक्षा, निराश्रयीको आश्रय एवं जीविकाहीनको जीविकोपार्जनमें सहयोग देना अत्यन्त उत्तम दान है।

दानमें थोड़े या बहुतकी भी कोई सीमा नहीं होती है। बहुत दान भी थोड़ा हो सकता और थोड़ा दान भी

बहुत हो सकता है। देनेवालेकी स्थितिपर निर्भर करता है कि वह कितना दे सकता है। अगर एक करोड़पति एक लाखका दान देता है तो भी कुछ नहीं है और सामान्य व्यक्ति एक हजारका दान दे तो भी यह उसके लिये महत्त्वपूर्ण होता है। इस सम्बन्धमें एक कथा है—पट्टनके राजाके महामन्त्री उदयन थे। उदयन वृद्धावस्थाके कारण अन्तिम साँस गिन रहे थे, ऐसेमें उन्होंने अपने पुत्र बाहड़को बुलाया और कहा—'पुत्र! मेरी एक इच्छा अपूर्ण रह गयी है, उसे तुम कर सको तो पूर्ण करना।' बाहड़ बोला—अवश्य पिताजी! आप मुझे आदेश दीजिये। उदयनने कहा—'शत्रुंजय तीर्थका जीर्णोद्धार करवाना है' इतना कहते-कहते उदयनने अपने नश्वर शरीरका त्याग कर दिया। कुछ समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् बाहड़ जो अब महामन्त्री बन चुके थे, उन्होंने यतिवर्यसे शत्रुंजय तीर्थके जीर्णोद्धारका शुभ मुहूर्त निकलवाया और मुहूर्तानुसार निर्माण-कार्य शुरू कर दिया गया।

जब कार्य शुरू हो गया तो जनताने कहा कि मन्त्री महोदय! आप तो स्वयं समर्थ हैं, अतः आप अकेले ही इस कार्यको पूर्ण करा देंगे, किंतु हमारी इच्छा है कि इस पुनीत कार्यमें आम जनताका भी सहयोग लिया जाय, हमें भी इस पुण्य कार्यमें सहभागी बननेका अवसर प्रदान करें। लोगोंकी बातें सुनकर महामन्त्रीको भी यह उचित लगा और जनताकी बात उन्होंने स्वीकार करते हुए कहा कि जो जितना चाहे उतना ही योगदान करे, अपनी-अपनी स्वेच्छा एवं शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार ही दान दे।

अब जीर्णोद्धार पूर्ण हो जानेपर भगवान् आदिनाथकी भव्य मूर्ति विराजितकर प्राण-प्रतिष्ठाका भव्य आयोजन किया गया। आयोजनकी पूर्णतापर महामन्त्रीने कहा—इस पुण्य कार्यमें जिन-जिन लोगोंने दान दिया है, उनकी नामावलीकी मैं घोषणा करता हूँ। यह कहकर मन्त्री बाहड़ने सबसे प्रथम नाम बोला—भीमका, जो एक मजदूर था। उसने सात पैसेका दान दिया था। जिन लोगोंने लाखों रुपये दानमें दिये थे, वे विस्मयमें पड़ गये। उनके भाव-विचारको महामन्त्रीने समझा और बोले—आप सभीने और मैंने भी जो दान दिया है, तीर्थोद्धारमें जो भी सहयोग किया है, वह अपने धनका मात्र दसवाँ भाग ही है, लेकिन भीम-जैसे मजदूरको रोजाना दो पैसे मजदूरी मिलती है, उस दो पैसेमेंसे घरका खर्च चलाकर वह जो बचा पाया, वह कुल सात पैसे थे, उसने वही सात पैसे जो उसकी कुल सम्पत्ति है, वह दानमें दी है, भीमने अपना सर्वस्व दान कर दिया है। उसके दानसे बड़ा दान और कोई नहीं हो सकता, इसलिये भीमका नाम सर्वप्रथम रखा गया है। इतना कहकर महामन्त्री बोले—यदि निर्णय करनेमें मुझसे कोई भूल रह गयी हो तो मैं क्षमायाचना करते हुए भूल सुधारनेको तैयार हूँ। सभीने अपने मस्तक झुकाकर सम्मति व्यक्त कर दी, किसीने भी विरोध नहीं किया।

श्रीमद्भगवद्गीता उसी दानको सात्त्विक दानकी संज्ञा देती है, जो फलकी कामनाके बिना दिया जाता है। यथा—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

अर्थात् सात्त्विक दान वह है, जो बिना किसी फलाकांक्षाके केवल दानके उद्देश्यसे ही योग्य पात्रको, सही समय और सही स्थानपर दिया जाता है। राजस दान वह है, जो कि बदलेमें या फलको ध्यानमें रखकर दिया जाता है और तामस दान वह है, जो अयोग्य व्यक्तिको सही देश और सही समयका विचार किये बिना ही अनादरपूर्वक दिया जाता है। (गीता १७। २०—२२)

सात्त्विक दानका लोक और परलोकमें बहुत महत्त्व है। बसन्त आनेसे पूर्व पतझड़में पेड़ अपने समस्त पल्लव झाड़ देते हैं, तभी तो नये पत्तोंसे पल्लवित—पुष्पित होते हैं। इसीलिये कवि बिहारीने कहा है—

ऋतु बसंत आयो लखि डारि दिये द्रुम पात।
ताते नव पल्लव भया दिया दूर नहीं जात॥

सात्त्विक दान-धर्मसे मनकी क्षुद्रता नष्ट होती है। दान-धर्म तो ईश्वरकी सेवा है। जिस कुलमें दान-धर्म नहीं होता, उस कुलमें अपंग, मतिमंद, कुछ कमीवाले बालक जन्म लेते हैं। प्रेम, करुणा, विनम्रता एवं निरभिमानी भावसे दिया गया दान सात्त्विक दानकी श्रेणीमें आता है। इसमें दाता स्वयंको अपनी सम्पत्तिका न्यासी मानता है। जो भगवान्ने उसे दी है, उसके स्वामी स्वयं भगवान् हैं। सात्त्विक दान यशकी इच्छासे नहीं, अपितु आत्मतोष ही उसका प्रतिफल है। स्वयं जाकर दिया गया दान उत्तम और अपने यहाँ बुलाकर दिया गया दान अधम होता है।

दान देनेसे जीवन शुद्ध और श्रेष्ठ होता है

(श्रीशिवरतनजी मोरोलिया, शास्त्री, एम०ए०)

भारतीय संस्कृतिने परहितको ही सर्वश्रेष्ठ धर्म निर्धारित किया है। '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' के पावन सिद्धान्तपर ही हमारी गौरवशाली प्राचीन संस्कृति आधारित है। महर्षि वेदव्यासजीने भी दो-एक शब्दोंमें अठारहों पुराणोंका निचोड़ व्यक्त करते हुए कहा है—'**परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥**' अर्थात् परोपकारसे पुण्य होता है और दूसरेको कष्ट देनेसे पाप होता है।

मनुष्ययोनि कर्मयोनि होनेके कारण ये सदा लोभवश कर्म करने और अर्थसंग्रहमें ही लगे रहते हैं। इसलिये प्रजापतिने लोभी मनुष्योंको 'द' के द्वारा इनके कल्याणके लिये 'दान' करनेका उपदेश दिया है। अतः मानवको अपने अभ्युदयके लिये दान अवश्य करना चाहिये।

हमारे पास जो धन-सम्पत्ति है, सुख है, सुविधाके साधन हैं, सब भगवान्‌के दिये हुए हैं। भगवान्‌ने उन्हें इसलिये दिया है कि हम उनके द्वारा अभावमें पड़े हुए, दुःख भोगते हुए और असुविधाओंमें फँसे प्राणियोंकी सेवा करें। हमारी सम्पत्तिपर, सुख-सुविधापर प्राणिमात्रका अधिकार है। वे इसके भागीदार हैं, इसलिये उनका हिस्सा दे देना ही हमारा परम कर्तव्य है।

कलियुगमें किसी भी प्रकार दिये जानेपर भी 'दान' कल्याणकारी है। पुराणोंमें तो दानके महत्त्वको यहाँतक बताया गया है कि जितनेसे पेट भर जाता है, उतनेमें ही मनुष्यका अधिकार है, उससे अधिक जो अधिकार मानता है, वह चोर है तथा दण्डका भागी है।

यदि दानके पीछे यशकी लिप्सा है या अहंभाव है तो वह दान श्रेष्ठदान नहीं कहा जा सकता। दान देनेमें अभिमान नहीं होना चाहिये। सब कुछ प्रभुका है मेरा कुछ भी नहीं है, यह अनुभूति दानको सात्त्विक बनाती है।

जो व्यक्ति दान देता है, उसे यह नहीं समझना चाहिये कि वह मानवताकी महान् सेवा कर रहा है। बल्कि उसे यह समझना चाहिये कि मैं अपने कर्तव्यका निर्वाह कर ले रहा हूँ, यह भगवान्‌की कृपा है। अपनी स्थितिके अनुसार ही करनेकी महिमा है। उपार्जित धनका दान ही उसकी रक्षा और वृद्धिका कारण बनता है। दान एक प्रकारका नित्यकर्म है। मनुष्यको प्रतिदिन यत्किंचित् दान अवश्य करना चाहिये।

शास्त्रोंमें दानके लिये स्थान, काल और पात्रका विस्तृत वर्णन किया गया है। किसी शुभ स्थान, शुभ काल अथवा शुभ मुहूर्तमें सत्पात्रको दान देनेका अधिक महत्त्व होता है। जिस पात्रको जिस वस्तुकी बहुत आवश्यकता है, उसे वह वस्तु दानमें देनेका अपना विशेष महत्त्व है। विशेष आपत्कालमें पीड़ित समुदायको तत्क्षण अन्न, आवास, भूमि आदिकी जो सहायता प्रदान की जाती है, उस दानका अपना एक वैशिष्ट्य है। पुण्यकाल, एकादशी, अमावस्या, संक्रान्ति और व्यतीपात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहणमें किये गये दानका विशेष फल प्राप्त होता है। कुछ दान बहुजनहिताय, बहुजनसुखायकी भावनासे सर्वसाधारणके हितमें करनेकी परम्परा है। देवालय, विद्यालय, औषधालय, अन्नक्षेत्र, गोशाला, बावड़ी, धर्मशाला आदिका निर्माण या जीर्णोद्धार इसी प्रकारका दान कहा गया है।

सेवाका मनुष्य-जीवनमें बड़ा महत्त्व है। मनुष्य-जीवनकी सार्थकता इसीमें है कि हम दूसरोंकी सेवा करें। सेवाकी आदत तभी जागेगी, जब हम दूसरोंके अन्दर परमात्माको देखेंगे; क्योंकि सभी भूत-प्राणियोंमें अविनाशी परमात्माका तत्त्व समाविष्ट है। यदि कोई अपने लिये ही जीता है तो उसका जीवन श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। जो कुछ भी हमारे पास है सब समाजका है, अतः हम उसको समाजको देते रहें। सेवा तथा दया धर्म है, जिसके पालनसे परम शान्तिकी प्राप्ति सहज ही सम्भव है। दयाके सागर महर्षि दधीचिने देवताओंकी रक्षाके लिये अपनी हड्डियाँ हँसते-हँसते दान कर दी थीं। महाभारतमें महात्मा विदुरजीद्वारा स्पष्ट कहा गया है कि जो आश्रितोंको बाँटकर स्वयं थोड़ा ही खाकर रह जाता है, उस आत्मज्ञानीको अनर्थ कभी स्पर्श नहीं कर सकते। शान्ति-सुख त्यागमें ही है, भोगमें कदापि नहीं। भोग तथा भोगकी आकांक्षा मनुष्यको असुर, पिशाच, राक्षस बनाकर पतनके गर्तमें गिरा देती है।

जीवनकी मूल प्रेरणा है परमार्थ और लोक-कल्याणके लिये भावभरा आत्मार्पण। संसारको आलोकित

करनेके लिये सूर्यदेव निरन्तर तपा करते हैं। मेघोंका अभाव कहीं जीवन ही न सुखा डाले, इसके लिये सागर सतत बड़वानलमें जला करते हैं। अपने हर श्वासमें जहर पीने और बदलेमें अमृत उड़ेलनेका पुरुषार्थ वृक्षोंने कभी बन्द नहीं किया। सितारे हर रोज चमकते हैं, ताकि मनुष्य अपनी अहंतामें ही न पड़ा रहकर विराट् ब्रह्मकी प्रेरणाओंसे पूरित बना रहे। परोपकारकी पुण्य-प्रक्रियाको जारी रखनेके लिये ही नदियाँ राहमें पड़नेवाले पत्थरोंकी ठोकरें सहकर भी सबको जलदान करती रहती हैं। वायु जमानेभरकी दुर्गन्धका बोझ सहकर भी नित्य चलती है और प्राणदीपोंको प्रज्वलित रखनेका कर्तव्य-पालन करती रहती है। फूल हँसते और मुसकराकर कहते हैं, काँटोंकी चुभनकी परवाह न करके संसारमें सुगन्ध भरने और सौन्दर्य बढ़ाते रहनेमें ही जीवनकी शोभा है। दीप जितना अधिक अपनेको जलाता है, ज्योति उतनी ही अधिक प्रखर होती है। जीवनको आधार और ऊर्जा प्रदान करनेवाला प्रत्येक घटक इसी पुण्य-परम्परामें संलग्न है। ऐसेमें स्वयंको जीवित ही नहीं, समझदार भी समझनेवाला मनुष्य अपने समाजकी उपेक्षा कर दे, परमार्थसे मुँह मोड़ ले, उसकी श्रीवृद्धि और सौन्दर्य निखारनेका प्रयत्न न करे, इससे बढ़कर लज्जा और आपत्तिकी बात उसके लिये क्या हो सकती है!

दान देनेवालेका धन नष्ट नहीं होता

(श्रीप्रेमबहादुरजी कुलश्रेष्ठ 'बिपिन', बी०एस-सी०, एम०ए०, बी०एड०)

'दान' धर्मकी धुरी या कर्तव्यपालनका प्राथमिक अंग है। विश्वमें प्रचलित सभी सम्प्रदायों तथा सभी पन्थोंके सभी पीर-पैगम्बरों, ऋषि-मुनियों तथा धर्मोपदेशकोंने दानको प्रमुख स्थान दिया है।

दानका अर्थ—अपने अधिकृत पदार्थपरसे अपना अधिकार समाप्तकर अभावकी पूर्तिहेतु दूसरेके अधिकारमें दे डालना ही दान है।

दान करनेवालेका धन नष्ट नहीं होता—दानी दानकर उत्तम भोगोंकी खेती करता है, जिसे वह जन्म-जन्मान्तरोंमें काट-काटकर धन-धान्य और अनेक ऐश्वर्योंको प्राप्त करता है। अदानीको संसारमें दरिद्रका जन्म प्राप्त होता है।

दानकी अनिवार्यता—दान ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रमोंका आधार है; क्योंकि इन तीनों आश्रमोंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति गृहस्थियोंके दानद्वारा ही होती है। अतः दान देना शुभ कर्मोंकी श्रृंखलामें अपना एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ऋग्वेद (१०। ११७। ४)-में कहा है—**'न तदोको अस्ति'** अर्थात् अदाता गृहस्थका घर घर नहीं होता है। सभी प्रकारके सुख चाहनेवालेको दान अवश्य करना चाहिये।

दान देना परमावश्यक है। यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करनेयोग्य नहीं हैं, अपितु वे तो अवश्यकर्तव्य हैं; क्योंकि ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान् मनुष्योंको पवित्र करनेवाले हैं। भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

(गीता १८। ५)

दान न देनेवाले मनुष्यको महात्मा विदुरने संज्ञेय दण्डका अपराधी कहा है—

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्॥

(विदुरनीति १। ६५)

अर्थात् दान न करनेवाले धनी तथा परिश्रम न करनेवाले दरिद्रको गलेमें दृढ़ पत्थर बाँधकर डुबो देना चाहिये; क्योंकि धनका उत्तम उपयोग दान, मध्यम उपयोग भोग और निकृष्ट उपयोग नाश होता है।

सर्वश्रेष्ठ दानदाता—प्रश्न उठता है कि सर्वश्रेष्ठ दानदाता कौन है? सृष्टिके समस्त धनोंका स्वामी परमात्मा है। उसने अपना समस्त धन जीवोंको दानमें दे रखा है। वह यज्ञरूप हो दिन-रात, हर घड़ी, हर पल—निरन्तर यज्ञमें संलग्न है। जो मनुष्य उसके यज्ञमें आहुति (जीवोंके हितार्थ)—दान करता है, वह मनुष्य उस परमात्माके विशाल यज्ञको आगे बढ़ाता है एवं विस्तृत करता है। वही

मनुष्य वास्तवमें उसका सच्चा प्रिय पुत्र या पुत्री है; अथर्ववेद (३।३०।२)-में कहा भी है—'**अनुव्रतः पितुः पुत्रो।**'

पुत्र अपने पिताके द्वारा प्रारम्भ किये हुए उत्तम कर्मको उत्तम प्रकारसे चलाये। ऐसे सुपुत्रके लिये वह पिता धनके द्वार खोल देता है, उससे कुछ भी नहीं छुपाता।

धन किसीका नहीं—धन, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य आदि चंचल स्वभावके हैं। ये सदा किसी एकके पास स्थायी रूपसे नहीं रहते। धनी व्यक्तियोंको चाहिये कि वे याचना करनेवालेको धन दें और व्यवहार तथा परमार्थके दीर्घतम मार्गको देखें।

दान यथायोग्य फलदाता—दानदाता जिस प्रकारका दान करता है, कर्मफल भोगरूपमें उसी प्रकारका तथा किये दानकी मात्रामें भोग प्राप्त करता है, जैसे—किसी जीवके प्राणोंकी रक्षा करनेपर भोगरूपमें दीर्घायु प्राप्त होती है। इसके विपरीत जीवोंकी हत्या करनेवाले व्यक्तिकी आयु अत्यल्प ही होती है, वह भी दुःखरूप ही होती है।

अन्नदानसे अन्न, धनदानसे धन, सेवादानसे सेवा, बुद्धिदानसे बुद्धि, विद्यादानसे विद्या, मधुर वचनदानसे मधुर वचन एवं सम्मानदानसे सम्मान प्राप्त होता है।

मनुस्मृतिके अनुसार प्यासेको पानी पिलानेवाला सन्तोष तथा तृप्ति, भूखोंको भोजन खिलानेवाला अक्षय सुख, तिल देनेवाला उत्तम सन्तान, पथमें दीपक जलानेवाला उत्तम आँखोंको पाता है।

भूमि, सोना, घर और रुपया दान करनेवाला क्रमशः भूमि, दीर्घायु, उत्तम घर और उत्तम रूप पाता है। सवारी, शय्या एवं वेदका ज्ञान देनेवाला क्रमशः स्त्रीधन, अक्षय सुख तथा ब्रह्मलोकके तुल्य पदको प्राप्त करता है। जो जिस प्रकार दान देता है, वह उसी प्रकार प्राप्त करता है।

अगले जन्मोंका साथी दान—जीवनमें किया हुआ दान अगले जन्मोंमें उपयोगी तथा सुख एवं आनन्द देनेवाला होता है। मनु महाराजने कहा है—

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥

(मनुस्मृति ४।२४२)

मनुष्य अपने सहायतार्थ धर्म अर्थात् दान आदि कर्तव्य-कर्मोको नित्य करता रहे; क्योंकि धर्मकी सहायतासे वह भवसागरसे पार हो जाता है।

दानसे धन नष्ट नहीं होता—दानशील मनुष्यद्वारा दानमें दिये धनकी पूर्ति किसी-न-किसी माध्यमसे अवश्य हो जाती है; क्योंकि वेदोंमें कहा है—'**उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते**' (ऋक्० १०।११७।१) अर्थात् धन देनेवालेका धन नष्ट नहीं होता और न देनेवालेको सुख देनेवाला प्राप्त नहीं होता। जैसे—समुद्रका जल सूर्यकी तीक्ष्ण ऊष्मायुक्त किरणोंद्वारा वाष्प बनकर मेघों (बादलों)-को प्राप्त होता है। मेघ इस प्राप्त जलको अपने पास न रखकर वर्षाके रूपमें पृथ्वीको प्रदान कर देते हैं, जो नदियोंद्वारा पुनः समुद्रको प्राप्त हो जाता है। इसके विपरीत वर्षाका जल नदियोंमें न जाकर इधर-उधर बहकर गड्ढोंमें इकट्ठा हो जाता है, जो कुछ समय बाद सड़कर बदबू पैदा करता है। न देनेवालेका धन भी एक स्थानपर संचित रहनेपर उसके कष्टका कारण बनता है। चोर-डाकुओंके भयसे उसकी नींद उड़कर रात्रिभर उसे जगाती है।

दानके लिये धन ही आवश्यक नहीं—धनका दान ही केवल दान नहीं, अपितु धनके अलावा अनेक ऐसे अभौतिक द्रव्य उपलब्ध हैं, जो कि संसारके प्रत्येक मनुष्यके स्वाधिकारमें हैं; जिन्हें धनसे रहित होने या जीवननिर्वाहके लिये अनिवार्य धनसे अधिक धन न होनेकी दशामें भी मुक्त हाथोंसे देकर दानका फल प्राप्त किया जा सकता है। जैसे—

१-प्यार (स्नेह)—इसे स्वजनों या पास-पड़ोसको ही नहीं, अपितु हर जीवको बाँटो। जिसके आप सम्पर्कमें आते हैं या जिसे उसकी जरूरत है। माता, पिता, गुरु एवं बुजुर्गोंके प्रति आदर रखें, उनसे प्रिय व्यवहार और मीठी स्नेहयुक्त वाणी बोलें।

२-सेवा-शुश्रूषा—आपके पास परमात्माका दिया हुआ अपना शरीर है, इससे आप दीन-दुःखी, रोगी-असहाय आदि जिसको आपकी आवश्यकता है, मनसे सामर्थ्यानुसार सेवा-शुश्रूषा करें, जो धनके दानसे भी बढ़कर दान है।

३-प्रिय वचन—आपके पास जिह्वा है, इससे मधुर

वचन बोलें। मधुर वचनोंका उच्चारण तथा सम्मानयुक्त व्यवहार मनुष्यमात्रकी आत्माको प्रिय तथा आनन्दकी अनुभूति करानेवाला होता है। जिस मनुष्यके साथ ऐसा व्यवहार होता है, उसकी आत्मा गद्गद हो आनन्दसे परिपूर्ण हो जाती है। किसी कविने ठीक ही कहा है—

तन से सेवा कीजिये, मन से भले विचार।
धन से इस संसार में, करिये पर उपकार॥

दान देनेसे पूर्व पात्र-अपात्रका विचार—व्यक्ति-विशेष या सार्वजनिक लोकोपचारके क्षेत्रमें दान देनेसे पूर्व पात्र-अपात्रपर विचार अवश्य करना चाहिये।

दानके पात्र—धार्मिक, सदुपदेशक और सन्तोषी मनुष्य, असहाय, घायल, अंगभंग, विकलांग, बीमार, रोगी, अन्धे, पागल या भूखसे पीड़ित मनुष्योंको अथवा जीवोंको तथा ऐसे मनुष्योंको जो परिस्थितियोंसे विवश हों, भरपूर क्षमतासे परिश्रम करनेके उपरान्त भी अपनी अनिवार्य आवश्यकताओंको पूरा करनेमें असमर्थ हों—दानके उचित पात्र हैं।

दानके अपात्र—शारीरिक एवं मानसिक रूपसे पूर्ण स्वस्थ होते हुए भी आलसी, कुमार्गी, लम्पट, बहानेबाज, दुष्ट, अनाचारी, नशेबाज, दुर्व्यसनी, अत्याचारी, धोखेबाज, अविद्वान्, अधार्मिक, पाखण्डी मनुष्यों और राष्ट्र या समाजका अहित करनेवाली संस्थाओंको दिया गया दान दानदाताको पापका भागी बनाता है। अतः ये सभी दानके अपात्र हैं।

दान देनेयोग्य पदार्थ—अन्न या जलका दान तो कहीं भी, कैसा भी भूखा-प्यासा मिले, उसे देना चाहिये। दानमें दिया गया पदार्थ कितना उपयोगी एवं लाभकारी है, वह कहीं बेकार, खराब या प्रयोगमें आनेके अयोग्य तो नहीं है। दानमें दिये पदार्थपर दानदाताका कितना न्यायोचित अधिकार है—इसपर विचार किये बिना दिया गया दान अकारथ ही जाता है। चोरी, रिश्वत, भ्रष्टाचार आदि अनैतिक साधनोंसे प्राप्त धनका दान दान नहीं कहलाता।

निष्काम, निःस्वार्थ तथा मनोरथपूर्तिकी इच्छासे रहित होकर दिया गया दान दानदाताको परमात्माका सखा, मित्र बनाता है; क्योंकि परमात्मा स्वयंमें निष्कामभावसे यज्ञरूप होकर प्राणीमात्रका जीवनाधार बन महान् दानदाता है, संसारके समस्त धन, ऐश्वर्योंका वही एकमात्र स्वामी है।

दानवृत्ति—दानकी वृत्ति तो अखण्ड दीपकी ज्योतिके समान होती है, जो निरन्तर प्रकाशमान रहती है।

दानका शास्त्रीय स्वरूप

(आचार्य श्रीबनवारीलालजी चतुर्वेदी, एम०ए०)

मनुष्यका जीवन कर्मप्रधान है और कर्मेन्द्रियोंमें हाथका महत्त्वपूर्ण स्थान है; क्योंकि मनुष्यजीवनमें अधिकांश कार्य हाथसे ही सम्पादित होते हैं और इन हाथोंकी वास्तविक शोभा किसमें है, इस बातका विचार किया जाय तो नीतिशास्त्रोंके अनुसार हाथकी शोभा मात्र आभूषण पहनना न होकर दानशील बने रहना है—

'दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।'

दानके बारेमें विचार किया जाय तो देखते हैं कि दान एक सामान्य क्रिया अथवा परम्परा नहीं है, अपितु दान वह तत्त्व है, जिसके द्वारा धनकी उसी प्रकार शुद्धि होती है, जिस प्रकार स्नानसे शरीरकी शुद्धि। इसीलिये स्मृतिकारोंने गृहस्थोंके लिये मुख्य कर्मके तौरपर दानको उल्लिखित किया है—

यतीनां तु शमो धर्मस्त्वनाहारो वनौकसाम्।
दानमेकं गृहस्थानां शुश्रूषा ब्रह्मचारिणाम्॥

(हेमाद्रि)

इस बातकी शिक्षा स्वयं भगवान्ने मनुष्य-अवतार धारण करके भी दी है। भगवान् श्रीकृष्णका अवतरण भले ही कारागारकी विषम परिस्थितियोंमें हुआ हो, परंतु भगवान्के जन्मोत्सवकी प्रसन्नतामें वसुदेवजी (कारागारके बन्धनके कारण दान करनेमें असमर्थताके कारण) दस हजार गायोंके दानका मनमें ही संकल्प करते हैं—

'कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृशन्
मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम्॥'

(श्रीमद्भा० १०।३।११)

गोदानके इस मानसिक संकल्पको वे कंसवधके पश्चात् पूरा करते हैं। महामति वसुदेवजीने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके जन्म-नक्षत्रमें जितनी गौएँ मन-ही-मन संकल्प करके दी थीं, उन्हें कंसने अन्यायसे छीन लिया था, अब उनका स्मरण करके उन्होंने ब्राह्मणोंको वे फिरसे दीं—

याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः।
ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः॥

(श्रीमद्भा० १०।४५।२८)

व्रजमें श्रीकृष्णजन्मोत्सवके निमित्त नन्दरायजीने भी अपार दान किया और वस्त्र तथा आभूषणोंसे सुसज्जित दो लाख गौएँ दानमें दीं—

'धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कृते।'

(श्रीमद्भा० १०।५।३)

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी द्वारकामें रहते हुए नित्यप्रति दान करते थे, जिसका वर्णन श्रीशुकदेवजी महाराजने श्रीमद्भागवत (१०।७०।९)-में किया है—

ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह।
अलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वं बद्वं दिने दिने॥

अर्थात् वे ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके रेशमी वस्त्र, मृगचर्म और तिलके साथ प्रतिदिन तेरह हजार चौरासी ऐसी गायोंका दान करते थे, जिनकी सींगें सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े होते थे।

इसी प्रकार देवर्षि नारद जब भगवान्‌की गृहस्थलीलाके दर्शनके लिये द्वारका आते हैं तो वे श्रीकृष्णको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित गौओंका दान करते हुए देखते हैं—

'कुत्रचिद् द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलङ्कृताः।'

(श्रीमद्भा० १०।६९।२८)

स्वयं भगवान्‌की उपर्युक्त दिनचर्यासे स्पष्ट है कि दान करना मनुष्यमात्रके लिये परम आवश्यक कर्म है, निर्धन व्यक्ति यदि अभावके कारण दान नहीं कर पाये तो बात दूसरी है, किंतु धनवान्‌को तो प्रतिक्षण दानशील बने रहना चाहिये। महाभारतके अनुसार तो उस धनवान् व्यक्तिको जो दान नहीं करता और उस दरिद्रको जो परिश्रम नहीं करता; गलेमें दृढ़ पत्थर बाँधकर डुबो देना चाहिये—

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्॥

(विदुरनीति १।६५)

स्मृतियोंके अनुसार भी धार्मिक जीवनके प्रमुख रूपमें दानको कलियुगमें विशेष रूपसे महत्त्व प्राप्त है—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

(मनुस्मृति १।८६)

अर्थात् सत्ययुगमें तप, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलिमें केवल दानको महर्षियोंने प्रधान धर्म कहा है।

दानकी चर्चा करते हुए यहाँ एक बातका उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि शास्त्रोंमें जहाँ दानका विधान विस्तारसे दिया है, वहाँ कुछ वर्जनाओंका भी उल्लेख प्राप्त होता है। संक्षेपमें उनपर दृष्टिपात करना समीचीन ही होगा, उनमें कुछ इस प्रकार हैं—

अधिकार—कोई भी कार्य तभी करना चाहिये जब उसका अधिकार (शास्त्रीय दृष्टिमें) प्राप्त हो, अतः बिना अधिकारके कोई कार्य नहीं करना चाहिये। यही बात दानके सन्दर्भमें भी कही गयी है। शास्त्रोंमें अनधिकार दानको अप्रामाणिक दानके नामसे भी उल्लिखित किया गया है। अप्रामाणिक दानमें कुछ प्रमुख हैं—भावावेश (अत्यधिक प्रसन्नता या क्रोधके कारण उत्पन्न विचारहीनताकी स्थिति), भयभीत होकर, रुग्णावस्थामें, अल्पावस्थामें, मूर्खतावश, नशेकी स्थितिमें या पागलपनकी अवस्थामें दानका अधिकार नहीं है—

'क्रुद्धहृष्टभीतार्तलुब्धबालस्थविरमूढमत्तोन्मत्तवाक्यान्यनृतान्यपातकानि।' (गौतमधर्मसूत्र ५।२)

इसी प्रकार अपने परिवारके भरण-पोषणका विचार किये बिना दान देनेका भी स्पष्ट निषेध है।

दान लेनेके अधिकारी—दानकी सफलता-असफलतामें दानग्रहीताके पात्र-कुपात्र होनेका भी बहुत बड़ा योगदान होता है। अतः दान देनेके सम्बन्धमें शास्त्रोंने अनधिकारीके लिये दानका स्पष्ट निषेध ही नहीं किया, अपितु कई स्थलोंपर तो अनधिकारीके लिये दिये दानसे पुण्यके स्थानपर पापका उल्लेख प्राप्त होता है—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन्।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ॥

(मनुस्मृति ४।१९४)

अर्थात् जिस प्रकार पानीमें पत्थरकी नावसे तैरता हुआ व्यक्ति उस नावके साथ ही डूब जाता है, उसी

प्रकार मूर्ख दान लेनेवाला तथा दानकर्ता—दोनों नरकमें डूबते हैं।

इसी प्रकार धूम्रपानरत व्यक्तिको दान देनेके फलके विषयमें कहा गया है कि देनेवालेको नरककी प्राप्ति होती है और ग्रहीता ब्राह्मण ग्रामशूकर होता है—

'दाता तु नरकं याति ब्राह्मणो ग्रामसूकरः।'

दानके ग्रहण करनेवाले व्यक्तिके द्वारा दानसे प्राप्त धनके उपयोगके आधारपर भी शुभत्व-अशुभत्व निर्भर है। जैसे शराबी-जुआरी आदिको दिया हुआ दान सत्कर्म न होकर उनको शराब या जुआ आदि दुष्कर्ममें लगानेमें साधक होनेके कारण दाताको उक्त दुष्कर्ममें सहायताका दोष प्राप्त होता है। अतः दान देते समय दानके निमित्त सत्पात्रका विचार अवश्य करना चाहिये। इसी भावनाके आधारपर श्रीमद्भागवतमें तीर्थके विधानमें भी उन्हीं तीर्थोंका विधान किया गया है, जहाँ सत्पात्र प्राप्त होते हैं—**'स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते।'** अतः दान सत्पात्रको ही देना चाहिये, कुपात्रको नहीं; क्योंकि सत्पात्रको दिया दान जहाँ अनन्त फलदायी है, वहीं कुपात्रको दिया दान पूर्णतः निष्फल होता है। स्मृतियोंमें दानके निमित्त अपात्र-कुपात्रोंकी काफी बड़ी सूची प्राप्त होती है, जिसमें प्रमुख इस प्रकार हैं—धूर्त, वन्दना करनेवाले, चाटुकार, मल्ल (कुश्ती लड़नेवाले), कुवैद्य, जुआरी, वंचक, चोर, सन्ध्या-गायत्रीविहीन, शराबी, धूम्रपायी, असद् व्यवसाय करनेवाले आदि।

इसी बातको आगे बढ़ाते हुए मनुस्मृतिमें अविद्वान् ब्राह्मणके लिये यह विधान कहा है कि उसे स्वर्ण, भूमि, घोड़ा, गाय, अन्न, वस्त्र, तिल, घृत आदिका दान नहीं लेना चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेपर वह काष्ठकी भाँति भस्म हो जाता है—

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम्।
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत्॥

(मनुस्मृति ४।१८८)

दानके अपात्रके सम्बन्धमें प्रामाणिक दानमें ब्राह्मणेतर (ब्राह्मणके अतिरिक्त दूसरे वर्ण)-के लिये दानका स्पष्ट निषेध मिलता है।

दान देनेके अनधिकारी—शास्त्रोंमें दानके नियमोंकी चर्चामें दान देनेका अधिकार सभीको दिया है, किंतु इसमें कुछ अनधिकारी भी हैं, जिनमेंसे कुछ निम्नवत् हैं—

जो सम्पत्ति स्वयंकी है ही नहीं, जो धन न्यायार्जित नहीं है, जो व्यक्ति स्वयंमें ऋणी है और ऋण चुकानेकी क्षमता होते हुए भी ऋण नहीं चुकाता, जो धन पहलेसे ही किसीको दिया हुआ है तथा उधारकी सम्पत्तिके स्वामी आदि।

उपर्युक्तके अतिरिक्त क्लीब, वेश्या, पतित, नीच व्यक्ति तथा नीच कार्योंको प्रोत्साहित करनेवालोंको दानका अधिकार नहीं है और यदि वे दान देते हैं तो ब्राह्मणको उसे अस्वीकार कर देना चाहिये।

दानके लिये आवश्यक तत्त्व—दानकी क्रियाके लिये मात्र दाता, ग्रहीता एवं देयपदार्थ ही नहीं, अपितु एक मुख्य तत्त्व और है—श्रद्धावान् हृदयका होना; क्योंकि श्रद्धा वह तत्त्व है, जिसके बिना सम्पूर्ण पृथ्वीका दान भी निरर्थक है। वहीं श्रद्धाके साथ मुट्ठीभर शाक-पात भी पूर्ण फल देनेवाले होते हैं। दानके लिये श्रद्धा एवं समर्पण ऐसा हो कि दाताके सामने कितनी भी बड़ी परिस्थिति आ जाय, किंतु मन तनिक भी विचलित न हो, जैसे राजा बलिकी अडिग श्रद्धा। (श्रीमद्भा० ८।२०।१०-११)

इसी प्रकार देयपदार्थोंमें वस्तु सांसारिक मूल्योंके आधारपर छोटी अथवा बड़ी नहीं होती, अपितु देश (स्थान), काल (समय-परिस्थिति), पात्र (दाता-ग्रहीता), मनकी भावना, दाताकी समर्थता एवं उसके द्वारा धनार्जनके ढंग (न्याय-अन्याय)-पर निर्भर है।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट है कि दान एक सामान्य क्रिया न होकर वह शास्त्रानुमोदित कार्य है, जो स्वयं ईश्वरके द्वारा भी किया गया। इसकी श्रेष्ठता इस कार्यमें आवश्यक विधि-निषेध आदिसे भी सिद्ध होती है और इसी बातको लक्ष्य करते हुए महर्षि वेदव्यासजीने कहा कि दानी व्यक्ति (शास्त्रानुमोदित दाता)-की स्थिति शूर, विद्वान् तथा वक्ता आदिके मुकाबलेमें अत्यन्त दुर्लभ है—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेष्वपि पण्डितः।
वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥

दानसे कल्याण

(साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम० ए०)

सनातन हिन्दू-संस्कृतिमें मानवके आत्मकल्याणके लिये जप, तप, यज्ञ, ध्यान, अर्चना, सेवा, वन्दना, स्वाध्याय आदि कई साधन ऋषि-मुनियोंने शास्त्रोंमें वर्णन किये हैं, परंतु कलियुगमें दानयज्ञको सबसे सुगम साधन बतलाया गया है। श्रीतुलसीदासजी महाराजने श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

(रा०च०मा० ७।१०३ (ख))

कलियुगमें दान देनेमात्रसे कल्याण हो जाता है। दान देनेवाले सबसे बड़े दाता परमात्मा हैं। परमात्मा जीवको सबसे श्रेष्ठ मानव-योनि देते हैं—

पहिले दाता हरि भया तिनते पाई जिंद।
पीछे दाता गुरु भया जिन दाखे गोविंद॥

गोस्वामीजी कहते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(रा०च०मा० ७।४४।६)

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(रा०च०मा० ७।४३।७)

गीतामें भगवान् कहते हैं—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५।२९)

भगवान् प्राणिमात्रके सुहृद् (बिना हेतु हित करनेवाले) हैं। इस भावको जो जान लेता है अर्थात् इस भावके अनुसार प्राणिमात्रका बिनाहेतु हित करता है, उसको परम शान्ति मिलती है अर्थात् परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। उस मानवका सदाके लिये कल्याण हो जाता है।

परमात्मा जीवमात्रकी गर्भकालमें एवं शिशु-अवस्थामें रक्षा एवं भरण-पोषण करते हैं। मानवको भी सबकी रक्षा एवं पालन-पोषण करनेके लिये दया-भाव रखना जरूरी है—

दया धर्म का मूल है नरक मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाँड़िये जब लागि घट में प्रान॥

ज़ब प्राणिमात्रके प्रति हितकी भावना तथा परपीड़ासे करुणाविगलित हृदयमें त्यागभाव आयेगा तो उससे दान देनेकी प्रवृत्ति हो जायगी। दाण् दाने दा धातु दान अर्थात् देनेके अर्थमें होती है। दान मानवका स्वाभाविक कर्तव्य है, उसका उसे सदा पालन करना चाहिये।

दान दिया जानेवाला धन स्वयंद्वारा उपार्जित हो तथा टैक्स-चोरी इत्यादि दोषोंसे रहित हो एवं शुद्ध कमाईका हो। ऐसा दान निष्काम भावसे देनेपर ही कल्याण करनेवाला होता है। **'देशे काले च पात्रे च'** का भाव है—अकाल, अतिवृष्टि, भूकम्प, अग्निप्रकोप, रोगादिका प्रकोप, भूखा, रोगी, अतिवृद्ध आदि अवस्थामें अन्न, जल, वस्त्र, औषध, आवास, अन्य आवश्यक सामग्री जैसे—जूता, छाता, सुई-डोरा, टार्च, यष्टिका आदि द्रव्योंको दानमें देना चाहिये। अन्न, जल, औषधमें पात्र-कुपात्र नहीं देखना चाहिये। गरीब परिवारकी कन्याका विवाह करना, गरीब छात्रोंको पुस्तक, विद्यालय-फीस, वस्त्र आदि देना, गरीब वृद्धोंकी अन्न-जल, वस्त्र, औषध आदिसे सेवा करना, त्यागी, संत-महात्मा, ब्राह्मण, गौ आदिकी सेवा करना, ऋणी व्यक्तिका निष्काम भावसे ऋण चुकाकर ऋणमुक्त करवाना चाहिये।

विद्यालय, औषधालय, वाचनालय, गोशाला, धर्मशाला, कुआँ, तालाब, प्याऊ, सत्संग-भवन, सामाजिक-भवन, तीर्थोंमें घाट आदिका निर्माण कराना चाहिये। बगीचा, वृक्ष आदि लगाना, भागवतकथा, सत्संग, नाम-जप, भगवन्नाम-संकीर्तन, धार्मिक साहित्यका प्रचार आदि समाजमें कराकर लोगोंको भगवान्के सम्मुख करना चाहिये। शास्त्रके अनुसार ब्राह्मणोंको दान देना, भोजन कराना, प्रेतमुक्तिके लिये गया-पिण्डदान, गंगा-यमुना आदि क्षेत्रोंमें दान देना, कुम्भ-ग्रहण आदि पर्वोंपर तीर्थोंमें दान देना, जप-अनुष्ठान कराना आदि सभी दान शुद्ध कमाईसे तथा निष्काम भावसे करे। दानमें भूमिदान, गोदान, अन्नदान एवं जलदानकी बहुत महिमा महाभारतमें कही गयी है। भीष्मपितामह युधिष्ठिरसे कहते हैं—

यावद् भूमेरायुरिह तावद् भूमिद एधते।
न भूमिदानादस्तीह परं किञ्चिद् युधिष्ठिर॥

(महा० अनु० ६२।४)

अर्थात् इस जगत्‌में जबतक पृथ्वीकी आयु है, तबतक भूमिदान करनेवाला मनुष्य समृद्धिशाली रहकर सुख भोगता है। अतः यहाँ भूमिदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है।

दानका महत्त्व—

भवन्ति नरकाः पापात्पापं दारिद्र्यसम्भवम्।
दारिद्र्यमप्रदानेन तस्माद्दानपरो भवेत्॥

अर्थात् पापके कारण नरक भोगना पड़ता है, निर्धनताके कारण पापका जन्म होता है, दान नहीं देनेसे निर्धनता आती है, अतः सदा दानपरायण होना चाहिये।

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न यच्छसि।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥

अर्थात् घरमें माँगने आये याचकको अपने ग्रासमेंसे भी आधा दे देना चाहिये; क्योंकि अपने मनके अनुकूल धन कब किसके पास हो अथवा न हो। अतः धन होनेपर दान करूँगा; ऐसा सोचना मनुष्यकी भूल है; क्योंकि भविष्यमें शरीर तथा देनेका भाव रहे अथवा न रहे, धन भी मनके अनुसार हो अथवा न हो।

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य सञ्चयात्।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः॥

अर्थात् धनका संग्रह करनेसे गौरव नहीं बढ़ता है, बल्कि दान देनेसे गौरव बढ़ता है, जल देनेवाले मेघका स्थान ऊँचा है, परंतु जलका संचय करनेवाला सागर नीचे ही रहता है।

दातव्यं भोक्तव्यं सति विभवे सञ्चयो न कर्तव्यः।
पश्येह मधुकरीणां सञ्चितमर्थं हरन्त्यन्ये॥

अर्थात् यदि सम्पत्ति हो तो दान करना चाहिये तथा उसका उपभोग करना चाहिये, परंतु उसका संग्रह नहीं करना चाहिये; कारण कि मैं देखता हूँ कि मधुमक्खियोंके द्वारा एकत्र किया गया मधु दूसरे लोग ले जाते हैं।

दानेन भूतानि वशीभवन्ति
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै-
र्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥

अर्थात् दान देनेसे सभी प्राणी वशीभूत होते हैं, दान करनेसे शत्रुओंकी शत्रुता भी समाप्त हो जाती है, दान करनेसे पराये लोग भी अपने बन जाते हैं, इस प्रकार दान सभी कष्टोंको हर लेता है।

अभयदान—

अमित्रमपि चेद् दीनं शरणैषिणमागतम्।
व्यसने योऽनुगृह्णाति स वै पुरुषसत्तमः॥

अर्थात् शत्रु भी यदि दीन होकर शरण पानेकी इच्छासे घरपर आ जाय तो संकटके समय जो उसपर दया करता है, वही मनुष्योंमें श्रेष्ठ है।

अभयं सर्वभूतेभ्यो व्यसने चाप्यनुग्रहः।
यच्चाभिलषितं दद्यात् तृषितायाभियाचते॥

भाव यह है कि सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देना, संकटके समय उनपर अनुग्रह करना अभयदान है। जैसे—हिंसक पशु व्याघ्र आदिसे गाय, हिरण आदिको बचाना, बलवान् मनुष्य निर्बल मनुष्यको भयसे उत्पीड़ित करे तो उसे भयसे मुक्त कराना—अभय प्रदान करना है। इच्छानुसार याचकको दान देना तथा प्यासेको जल देना उत्तम दान है।

सन्तोंने दान-महिमामें कहा है—

चिड़ी चोंच भर ले गई नदी न घटियो नीर।
दान दिये धन ना घटे कह गये दास कबीर॥
हरिया दीया हाथ का आड़ा आसी तोय।
रामनाम कुँ सिवँरता सबै का सिद्ध होय॥
रामा माया राम की आड़ी मत दे पाल।
आवे ज्यूँ ही जाणदे परमारथ के खाल॥
हरि भज जीवन साफला पर उपकार समाय।
दादू मरणा जहाँ भला तहाँ पशु-पक्षी खाय॥
दादू दीया है भला दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये जे कर दिया न होय॥

श्रीदादूजी महाराज कहते हैं—सभीको दान देना चाहिये, दान देना श्रेष्ठ है। दान देनेसे सभीका भला होता है। यदि दान नहीं देंगे तो संसारमें सब वस्तुएँ होनेपर भी पुण्यके अभावमें नहीं मिलेंगी, जैसे रात्रिको घरमें सभी वस्तुएँ रखी रहती हैं, परंतु हाथमें दीपक न होनेसे प्रकाशके अभावमें वस्तुएँ होनेपर भी नहीं मिलती हैं।

सबसे बड़े दानी भगवान् तथा उनके भक्त हैं। भक्तके भावके वशमें होकर भगवान् भक्तको उसके भावके अनुसार अपने-आपको भी दे देते हैं। जैसे—सखूबाईके यहाँपर स्वयं सखूबाई बनकर रहे। एकनाथजीके

यहाँ भी श्रीखण्डिया नौकर बन गये।

भगवान्‌के भक्त भी परम उदार होते हैं; क्योंकि वे साधकका अज्ञान दूर करके भगवान्‌का दर्शन करा देते हैं। दुःखनिवृत्ति करके सदाके लिये परम सुखी बनाकर परमानन्द देकर कल्याण कर देते हैं।

भागवतमें गोपियोंने कहा है—

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

(१०।३१।९)

हे प्राणेश्वर! तुम्हारी लीला-कथा अमृतमयी है। वह आपकी विरह-ज्वालामें जलते हुए प्राणियोंको जीवनदान देती है, बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी कवियोंने उसका गान किया है, उसके श्रवण-कीर्तनसे सब पापोंका नाश होता है। जो श्रवणमात्रसे ही प्रेमरूपी परम सम्पत्तिका दान करती है, ऐसी अत्यन्त विस्तृत कथाका पृथ्वीपर जो कीर्तन-गान करते हैं, वे जगत्‌में सबसे बड़े दानी लोग हैं। यह तुम्हारी लीला-कथाकी महिमा है। तुम्हारे दर्शनकी महिमा तो अवर्णनीय है।

अतः मानवको जगत्‌के हित एवं आत्मकल्याणार्थ शास्त्रके अनुसार एवं सन्तोंके वचनानुसार अपना कर्तव्य समझते हुए निष्काम भावसे अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रतिदिन दान करते रहना चाहिये।

सौ हाथोंसे कमाओ और हजार हाथोंसे दान करो

(श्रीभगवतप्रसादजी विश्वकर्मा)

आजका युग अर्थप्रधान हो गया है। हर तरफ पैसा कमानेकी होड़-सी लगी हुई है। विश्वके बड़े देशोंमें भी भ्रष्टाचारका खेल हो रहा है। लोगोंके पास धन-सम्पत्तिका अम्बार लगता जा रहा है। चारों ओर झूठ, बेईमानी, लूटपाट, धोखाधड़ी, हत्याका साम्राज्य छाया हुआ है। परंतु बेईमानीसे कमायी हुई धन-दौलत तो यहीं छोड़कर जाना होगा, इस बातका ज्ञान किसीको नहीं है।

वास्तवमें धनका उपयोग कैसे किया जाय—यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। पहलेके समयमें लोग अपने धनका उपयोग कुआँ, बावली, धर्मशाला, तालाब, मन्दिर आदि बनवाकर महाशयता प्राप्त करते थे और धनका सही उपयोग भी हो जाता था, परंतु आज व्यक्ति धन जोड़नेमें लगा है और अधिक-से-अधिक कमाकर रखना चाहता है; ताकि उसकी सात पीढ़ी उस धनको खाती रहे। वास्तवमें बात यह है कि ज्यों-ज्यों लाभ होता है, त्यों-त्यों लोभ लगातार बढ़ता ही जाता है—*'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।'*

मनुष्यको अपने जीवननिर्वाहहेतु पैसा कमाना तो आवश्यक है। इसके अभावमें आदमीका गुजारा नहीं हो सकता। देशमें ऐसे कितने गरीब तबकेके लोग हैं, जो रोज कुआँ खोदते हैं और रोज पानी पी पाते हैं अर्थात् बड़ी मुश्किलसे गुजारा हो पाता है। रुपया-पैसा साधनमात्र है, साध्य नहीं।

आजकल लोग करोड़ों रुपये कमाते हैं, परंतु एक कौड़ी भी धर्मकार्योंमें लगानेकी सोचतेतक नहीं। हमारे यहाँ भी पाश्चात्य संस्कृतिका प्रभाव पड़ रहा है। लोगोंके द्वारा ऐशो-आराममें, दिखावेमें आमदनीका काफी पैसा फूँका जा रहा है। अनैतिक ढंगसे कमाये धनका परिणाम भी देखनेमें आता है कि जगह-जगह छापा पड़ रहा है; क्योंकि वहाँ अनुपातसे अधिक धन, सम्पत्ति, जवाहरात आदि पाया जाता है। इससे यही सिद्ध होता है कि आयसे अधिक रुपया-पैसा, सोना-चाँदी लोगोंने बटोर रखा है। दूसरी ओर गरीब तबकेके लोगोंको खानेके लाले पड़े हुए हैं। इस तरह अमीर और अधिक अमीर होता जा रहा है और गरीबोंके आँसू पोंछनेवाला कोई नहीं है।

भोगमें सुख तो है, पर रस नहीं है। जो रस उदारतामें है, वह भोगमें नहीं है। उदार होनेके लिये हमें हृदयके द्वार खोलकर देखना होगा कि हम क्या कर सकते हैं। वैसे भी मनुष्यको अपनी शुद्ध कमाईका दस प्रतिशत तो दान कर ही देना चाहिये। एक अंग्रेज कवि वाल्टेयरने भी ठीक

ही कहा है—भाग्यवान् वह है, जिसका धन गुलाम होता है और अभागा वह है, जो धनका गुलाम है। अर्थात् धन अपने ढंगसे व्ययकर बताना होगा कि धनकी गुलामी पसन्द नहीं।

जब व्यक्तिमें उदारताका गुण आ जायगा तो व्यक्ति सेवाभावी होकर दोनों हाथोंसे धन व्यय करेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। वैसे भी आवश्यकतासे अधिक धनका साथ सब बुराइयोंकी जड़ है। अतएव धनको दानके द्वारा पुण्यकार्यमें लगाया जा सकता है। मान लीजिये एक गरीब व्यक्ति है, उसका परिवार बड़ा है और आमदनी सीमित है तो हम उसकी मददकर परोपकारी कहला सकते हैं। परंतु कोई भी परोपकार नाम या यश कमानेके उद्देश्यसे नहीं करना चाहिये। हमें सेवाभावसे यह परोपकार करते हुए जगन्नियन्ताको अर्पण कर देना होगा, तभी यह कार्य पुण्यकी श्रेणी—सत्कर्मकी श्रेणीमें आयेगा।

धनके उपयोगकी तीन गतियाँ हैं—दान, भोग और नाश। भोग और नाश तो देखनेको मिलता है। परंतु दान-पुण्य विरले ही लोगोंमें देखा जाता है। अथर्ववेद (३।२०।५)-में दानके बारेमें कहा गया है—'**रयिं दानाय चोदय**' अर्थात् दान देनेके लिये कमाओ। संग्रह करने अथवा विलासिताके लिये धन नहीं है।

'दानशीलता' एक ऐसा गुण है, जो मनुष्यमें सोनेकी-सी चमक पैदा करता है। मनुष्यकी सारी बुराइयाँ स्वयं दूर हो जाती हैं। ऋषि दधीचिने अपने शरीरकी हड्डियाँतक दान कर दी थीं। पुराने जमानेके राजा-महाराजाओंकी दानशीलताकी मिसालें आज भी सुननेको मिलती हैं।

वास्तवमें सात्त्विक त्याग ही श्रेष्ठ त्याग है। त्यागमें ही शान्ति छिपी हुई है। दान भी त्यागका ही एक अंश है, परंतु मनुष्यको दान एक कर्तव्य समझकर निःस्वार्थ भावसे करना चाहिये। कई लोग तो गुप्तदान भी करते हैं।

आदर्श मानव वही है जो दम, दान और यमका पालन करता है। संतशिरोमणि श्रीकबीरने दानकी महिमा इस प्रकार बतायी है—

दान किये धन ना घटै, नदी ना घटै नीर।
अपनी आँखों देखिये, यों कथि गये कबीर॥

दान-महिमा

(श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, वरिष्ठ धर्माधिकारी)

सनातन धर्ममें धर्मके आठ प्रकार कहे गये हैं—१. यज्ञ करना (कराना), २. अध्ययन (अध्यापन), ३. दान, ४. तप, ५. सत्य, ६. धृति (धैर्य), ७. क्षमा और ८. लोभराहित्य।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥

इसमें दान देना एक विशिष्ट धर्म कहा गया है और लाख काम छोड़कर दान देना चाहिये—

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा शिवं भजेत्॥

दानसे यश एवं कीर्तिकी प्राप्ति होती है। अतः दान देकर यशस्वी बननेका प्रयत्न करना चाहिये—

दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं यशः।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरुच्चार एव सः॥

दान मरणोपरान्त भी मित्रका कार्य करता है, दानसे अर्जित पुण्य मृत्युके बाद भी साथ रहता है। यक्षने राजा युधिष्ठिरसे प्रश्न किया कि '**किंस्विन्मित्रं मरिष्यतः**' अर्थात् मृत्युके समीप पहुँचे हुए पुरुषका मित्र कौन है? इसपर युधिष्ठिरने कहा—'**दानं मित्रं मरिष्यतः**' (महा० वन० ३१३।६४) अर्थात् मरनेवाले मनुष्यका मित्र 'दान' है।

दान, भोग तथा नाश—ये धनकी तीन गतियाँ कही गयीं हैं, जो न दान देता है, न उपयोग करता है, उसके धनकी तीसरी गति (नाश) ही होती है—

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

धनको देवकार्यमें अथवा ब्राह्मणोंको दानमें अथवा भाई-बन्धु-कुटुम्बियोंकी सहायतामें लगाना चाहिये, अन्यथा कृपणतासे छिपाये रखनेवालेका धन या तो अग्निमें जल जाता है या चोर चुराकर ले जाते हैं अथवा राजा छीन लेता है। अतः धनका सदुपयोग करते रहना चाहिये—

न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने।
कृपणस्य धनं याति वह्नितस्करपार्थिवैः॥

जहाँ धनका न तो दान दिया जाता है और न उपभोग किया जाता है, उस धनसे क्या लाभ है?

'धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते।'

जिसका जीवन, दान और भोगसे रहित है, वह लुहारके भाथेके समान साँस लेता और छोड़ता हुआ मृतवत् ही है—

दानभोगविहीनाश्च दिवसा यान्ति यस्य वै।
स कर्मकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥

इन सब वचनोंसे दान देनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है, अतः दान देकर धर्म अर्जन करना चाहिये। दानकी परम्परा सृष्टिके प्रारम्भसे प्रचलित है, भगवान्‌ने स्वयं मनुष्यावतार धारणकर दान-धर्मका आदर्श प्रस्तुत किया। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने राज्याभिषेकके समय ब्राह्मणों एवं याचकोंको खूब दान दिया—

बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥

दान-धर्मकी बड़ी महिमा है, दान देनेपर जहाँ दानग्रहीताको दानकी वस्तु प्राप्त होती है, वहीं दानदाताको दानके अनुरूप पुण्यफलकी प्राप्ति होती है।

दान देनेकी परम्परा देवों, असुरों तथा मानवोंमें सदासे प्रचलित है।

त्रिपाद-पृथ्वीके दानसे भगवान् वामनने बलिको पाताललोकका राजा बना दिया और उसकी दानवृत्तिसे प्रसन्न होकर उसके यहाँ भगवान् गदाधर द्वारपाल बन गये। अतः दानकी बड़ी महिमा है।

दिये गये दानका फल अवश्य प्राप्त होता है, परंतु दानकी वस्तु परिश्रमसे उपार्जित होनी चाहिये एवं दानग्रहीता सुशील होना चाहिये—

धान्यं श्रमेणार्जितवित्तसंचितं विप्रे सुशीले च प्रयच्छते यः।
वसुन्धरा तस्य भवेत् सुतुष्टा धारां वसूनां प्रति मुञ्चतीव॥

(महा० वन० ४१। २००)

अर्थात् जो परिश्रमसे उपार्जित और संचित धन-धान्यको सुशील ब्राह्मणको दान करता है, उसके ऊपर वसुन्धरादेवी अत्यन्त सन्तुष्ट होती हैं और उसके लिये धनकी धारा-सी बहा देती हैं।

स्मरणीय है, यह पृथ्वी सात स्तम्भोंके सहारे टिकी है, उनमें दानदाता भी एक स्तम्भ है—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

दान सच्चा मित्र है

(डॉ० श्रीशिव ओमजी अम्बर)

भारतीय संस्कृति, धर्म और नीतिके विश्वकोष तथा ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारतके सार्वकालिक महत्त्वके प्रसंगोंमेंसे एक है—यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद। उसमें एक श्लोक आया है, श्लोकमें एक सूक्ति आयी है, जिसका अर्थ है, मुमूर्षु का मित्र है—दान। पूरा श्लोक इस प्रकार है—

सार्थः प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य भिषङ् मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः॥

(महा० वन० ३१३। ६४)

अर्थात् सहयात्री प्रवासीका मित्र है, पत्नी गृहवासीकी मित्र है, वैद्य रोगीका मित्र है और दान मृत्युपथगामीका मित्र है। तात्पर्य यह है कि दान ही मनुष्यका सच्चा मित्र है।

इस मरणधर्मा संसारमें एक ही बात सुनिश्चित है और वह है मृत्यु। इस मृत्युका पल कौन-सा होगा, इसे अधिकारपूर्वक नहीं कहा जा सकता, अतः क्रान्तदर्शी कवियोंका सन्देश है कि हर पलको अन्तिम पल मानते हुए सजगतापूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये। हम उम्रके किसी भी सोपानपर हों, घरमें हों, मार्गमें हों, स्वस्थ हों, अस्वस्थ हों, जाने-अनजाने हम एक ही दिशाकी ओर बढ़ रहे हैं, एक ही स्थानकी तरफ प्रस्थान कर रहे हैं और वह स्थान है—मृत्यु—यह समझकर हर पल सावधान रहनेकी जरूरत है। परलोकका भय रहेगा तो इहलोक भी सुधर जायगा, अतः जीवनके प्रत्येक क्षण, प्रत्येक श्वासको सार्थक बना लेनेकी कोशिश करनी चाहिये। मृत्यु कब आ जाय कोई ठीक नहीं, अतः जो भी जीवन मिला है, उसमें अच्छा ही कर्म करना चाहिये। अपनी प्राप्तसम्पत्ति आदिका सदुपयोग ही करना चाहिये। विशेष रूपसे मरणधर्मा मनुष्यके लिये दान देना उसकी उत्तम गति प्राप्त करानेमें सहायक है, इसीलिये जो इस भवसागरसे पार उतरना

चाहता है, पुनः कर्मबन्धनमें नहीं पड़ना चाहता, दुःखमय संसारमें जन्म लेना नहीं चाहता, उसे दानद्वारा अपने इस जन्मको सुधार लेना चाहिये। हर व्यक्तिका सार्वभौमिक सार्वकालिक मित्र एक ही है—दान।

दान वस्तुतः चित्तकी द्रवणशीलताका क्रियात्मक स्थूल रूप है। जो **'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति'** की भावधारासे जुड़कर समग्र सृष्टिमें एक ही चेतना-शक्तिके स्पन्दनका अनुभव करने लगता है, वह अनायास सबकी पीड़ासे संयुक्त हो जाता है और पापी-से-पापीके प्रति भी जुगुप्सासे नहीं भरता। ईशावास्योपनिषद्‌की भाषामें—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।

अर्थात् जो निरन्तर आत्मामें ही समस्त भूतसमुदायको देखता है और समस्त भूतसमुदायमें आत्मतत्त्वको देखता है, वह किसीके प्रति भी विजुगुप्साभावसे युक्त नहीं होता।

फिर स्वभावतः उसकी यह सर्वसंयुक्ति हृदयमें संवेदना, दृष्टिमें शुभकामना और क्रियामें दान बनकर परिलक्षित होती है। अपनेको न्योछावर करके बिना किसी प्रत्याशाके परोपकारमें स्वयंको निःशेष करके उसे प्रसन्नता होती है। सच पूछा जाय तो वह परोपकार नहीं आत्मोपकार ही करता है; क्योंकि वह दूसरेको दूसरे रूपमें देखता ही नहीं है।

दान स्वयंको सर्वके लिये सहज समर्पित करनेका वह भावोन्मेष है, जिसके कोष्ठकमें अध्यात्मके सारे सूत्र समाहित हो जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता (१८।५)-में भगवान्‌का निश्चयात्मक अभिकथन है—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

यज्ञ, दान और तपरूपी कर्म (किसी भी अवस्थामें) त्यागनेयोग्य नहीं हैं, उन्हें किया ही जाना चाहिये। ये यज्ञ, दान और तप मनीषियोंको पवित्र करनेवाले हैं।

लोककल्याणके लिये किये जानेवाले निष्काम कर्म यज्ञ तथा उस परमेश्वरके प्रीत्यर्थ किये जानेवाले कर्मानुष्ठान तप कहलाते हैं। इसी प्रकार समग्र सृष्टिके साथ समान अनुभूतिको जीते हुए उसके हितके लिये हृदयके उच्छलनसे आविर्भूत कर्म दान कहे जायँगे। फिर परिस्थिति तथा समयानुकूल उनके विभाग बहुतेरे हो सकते हैं। कहीं अन्नदान महादान हो जाता है, तो कहीं विद्यादान महत्त्वपूर्ण दीखता है, कहीं किसी भयावह उपेक्षितको मित्रताभरी मुसकान दे देना भी अतुलनीय दानकी श्रेणीमें आ सकता है। हाँ, देनेवालेके चित्तमें अब्दुर्रहीम ख़ानख़ानाकी तरह वास्तविक दाताकी स्मृति बनी रहनी चाहिये, उसकी आँखोंमें दर्पकी धूप नहीं, विनम्रताकी चन्द्रिका होनी चाहिये।

शास्त्रोंके सन्दर्भमें दान-ग्रहीताकी पात्रता

(श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल, एम०ए०, बी०एड०)

दान महान् है, किंतु दान देनेमें भी एक प्रक्रिया है और उस प्रक्रियाके कुछ घटक हैं और उन घटकोंके औचित्यपर ही दानका औचित्य निर्भर करता है। इसी प्रकारका एक घटक है—दानका सुपात्र कौन? अनेक मनीषियोंने दानको बीज बोनेकी संज्ञा दी है, लेकिन हम जानते हैं कि बीज चाहे कितना ही अच्छा हो, किंतु बंजर जमीनमें बोनेपर कुछ फल नहीं देगा और तो और यदि उस बीजको हम घरकी नींवके किनारे ही बो दें तो वही बीज जब वृक्ष बनेगा तो उसकी जड़ें हमारे घरकी नींवको हिला सकती हैं। सार यह कि बीज कहाँ बोया जाय, दान किसे किया जाय, इसपर भी विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

इसी सन्दर्भमें एक बोधकथा प्रसंगानुकूल बैठती है—एक सेठजीने एक साधुमहाराजसे उपदेश देनेका अनुरोध किया तो साधुमहाराजने अगले दिन उपदेश देनेको कहा। अगले दिन साधुमहाराज आये और अपना दान-पात्र सेठजीके आगे कर दिया। सेठजी उसमें कुछ डालने ही वाले थे कि उन्होंने देखा कि दानपात्रमें कूड़ा भरा है। वे रुक गये और साधुमहाराजकी अनुमति पाकर उस दान-पात्रको स्वच्छ करके उसमें भिक्षा रख लाये। जब साधु-महाराज चलने लगे तो सेठजीने उपदेशकी बात याद दिलायी। तब वे बोले—यही तो उपदेश था कि कुछ अच्छा पानेके लिये पहले चित्तका कूड़ा हटाकर उसे निर्मल बनाओ—सत्पात्र बनो, तभी कुछ पानेके अधिकारी बनोगे, अन्यथा दाताद्वारा दी गयी चीज भी व्यर्थ हो जायगी।

उक्त बोधकथाके आधारपर विचार करें तो यदि हम

दान देते समय पात्रतापर विचार नहीं करते तो ऐसा दान व्यर्थ हो सकता है और पुण्यदायी होना तो दूर, अनेक बार दाताको पापका भागीदार भी बना सकता है; क्योंकि ऐसा दान उस दुर्गुणरूपी कूड़ेके साथ मिलकर उस दुर्गुणको और अधिक शक्तिशाली बनानेका हेतु भी बन सकता है। उदाहरणके लिये यदि किसी शरावी व्यक्तिको हम मात्र उसका उच्चवर्ण देखकर ही दान करें और वह उन दानके पैसोंसे शराबका सेवन या कोई अन्य कुकर्म करे तो हम भी उसके उस पापमें जाने-अनजानेमें भागीदार बन जायँगे। महाभारतमें कहा गया है कि नेकीसे कमाये हुए धनके दो दुरुपयोग हैं—१-अयोग्यको दान देना, २-योग्यको न देना। स्पष्ट है कि हमारे धर्मशास्त्रोंमें दानमहिमाके गुणगानके साथ-ही-साथ अयोग्यको दान न देनेपर भी विशेष बल दिया गया है ताकि दानधर्मका मुख्य ध्येय भी अक्षुण्ण रहे और उसकी आड़में अधर्मको बढ़ावा न मिल सके।

इसी सन्दर्भमें आगे कुछ शास्त्रोक्त वचन दिये जा रहे हैं, जिनके प्रकाशमें हमें दानके सत्पात्रों और अपात्रोंके विषयमें स्पष्ट मार्गदर्शन प्राप्त हो सकेगा—

अक्रोधः सत्यवचनमहिंसा दम आर्जवम्।
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा दमः शमः॥
यस्मिन्नेतानि दृश्यन्ते न चाकार्याणि भारत।
स्वभावतो निविष्टानि तत्पात्रं मानमर्हति॥

(महा० अनु० ३७। ८-९)

अर्थात् क्रोधका अभाव, सत्यभाषण, अहिंसा, इन्द्रिय-संयम, सरलता, द्रोहहीनता, अभिमानशून्यता, लज्जा, सहनशीलता, दम और मनोनिग्रह—ये गुण जिनमें स्वभावतः दिखायी दें और धर्मविरुद्ध कार्य दृष्टिगोचर न हों, वे ही दानके उत्तम पात्र और सम्मानके अधिकारी हैं।

दरिद्रान् वित्तहीनांश्च प्रदानैः सुष्ठु पूजय।
आतुरस्यौषधैः कार्यं नीरुजस्य किमौषधैः॥

(महा० आश्व० अ० ९२)

अर्थात् धनहीन दरिद्र ब्राह्मणोंको दान देकर उनकी भलीभाँति पूजा करो; क्योंकि रोगीको ही औषधिकी आवश्यकता है, नीरोगको औषधिसे क्या प्रयोजन?

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥

(गीता १७। २२)

अर्थात् देश, काल और पात्रका विचार किये बिना, बिना मानके, तिरस्कारसे दिया हुआ दान तामसी कहलाता है।

ये तु धर्मं प्रशंसन्तश्चरन्ति पृथिवीमिमाम्।
अनाचरन्तस्तद्धर्मं संकरेऽभिरताः प्रभो॥
तेभ्यो हिरण्यं रत्नं वा गामश्वं वा ददाति यः।
दश वर्षाणि विष्ठां स भुङ्क्ते निरयमास्थितः॥

(महा० अनु० २२। २०-२१)

अर्थात् जो लोग इस पृथ्वीपर धर्मकी प्रशंसा करते हुए घूमते-फिरते हैं, परंतु स्वयं उस धर्मका आचरण नहीं करते, वे ढोंगी हैं और धर्मसंकरता फैलानेमें लगे हैं। ऐसे लोगोंको जो सुवर्ण, रत्न, गौ अथवा अश्व आदि वस्तुओंका दान करता है, वह नरकमें पड़कर दस वर्षोंतक विष्ठा खाता है।

बृहद्यममें भी उल्लिखित है—वेद बेचनेवाले (पहलेसे शुल्क निश्चित करके वेद पढ़ानेवाले) ब्राह्मणोंको न तो श्राद्धमें बुलाना चाहिये और न उन्हें दान देना चाहिये।

पुनः बृहद्यममें ही बताया गया है कि निकृष्ट कर्म करनेवाले, लोभी, वेद, सन्ध्या आदि कर्मोंसे हीन, ब्राह्मणोचित धर्मोंसे च्युत, दुष्ट एवं व्यसनी ब्राह्मणोंको दान नहीं देना चाहिये।

मनुस्मृति (४। १८८)-में मनुमहाराजने स्वयं अपात्रोंको ही कठोर शब्दोंमें चेताया है—अविद्वान् ब्राह्मणको सोने, भूमि, अश्व, गाय, अन्न, वस्त्र, तिल एवं घृतका दान नहीं लेना चाहिये, यदि वह लेगा तो लकड़ीकी भाँति भस्म हो जायगा (अर्थात् नष्ट हो जायगा)—

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम्।
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत्॥

और तो और मनुमहाराजने दानके सुपात्रोंको भी सावधान किया है—दान लेनेका पात्र या अधिकारी होनेपर भी बार-बार दान न ले; क्योंकि उससे ब्रह्मतेज नष्ट हो जाता है।

इसके अतिरिक्त अपने विवेक (जिसके कारण मानव-

योनिको सर्वश्रेष्ठ योनि माना जाता है)-से भी विचार किया जाय तो मानना होगा कि जिस कारणसे दानधर्मकी व्यवस्थाका निर्माण हमारे मनीषियोंने किया था, उसमें दानके सत्पात्रका निःस्वार्थ त्याग-तपोमय जीवन मुख्य प्रेरक और उसकी आवश्यकता-पूर्ति मुख्य हेतु था। ऐसेमें दानकी सत्पात्रतापर हमें उसी आलोकमें विचार करना होगा।

विनोबा भावेजीने कहा है—जो दान अनीति और आलस्यको बढ़ाता है, वह दान ही नहीं है, वह तो अधर्म है। उदाहरणके लिये यदि कोई पर्याप्त स्वस्थ व्यक्ति त्यागी—तपोनिष्ठ जीवन जीना तो दूर, उल्टे सारा दिन मौज-मस्तीमें गँवाकर भोजनके समय अन्नसत्रमें जाकर भूख मिटाने लगे तो ऐसा अन्नदान उस व्यक्तिकी सेहत, आत्मसम्मानकी दृष्टिसे हानिकारक होकर उसकी आदत ही बिगाड़ेगा और इस प्रकार कल्याणकारी न होकर व्यक्ति समाजमें विकारका हेतु बन जायगा। इसलिये दान देते समय हमें उसकी पात्रताको उसके तपोमय जीवन अथवा वास्तविक आवश्यकताकी कसौटीपर अवश्य कसना चाहिये। ऐसेमें यदि कोई ब्राह्मण सुपात्र हमें मिलता है तो यह हमारे सौभाग्यकमलके खिलनेकी भाँति ही परम सुखद और परम कल्याणकारी है और यदि ऐसा नहीं होता है तो भी आवश्यकताकी कसौटीपर तो हमें दानके सत्पात्र जीवनमें पग-पगपर दिखते ही हैं तो क्यों न हम इसी कसौटीपर सुपात्रको परखकर दान-धर्मका निर्वहन करें। जैसा कि विष्णुधर्मोत्तरमें कहा गया है—भोजन एवं वस्त्रके दानमें मनुष्यकी आवश्यकता देखनी चाहिये न कि उसकी जाति। क्या किसी भूखेको अन्नदान करना किसी भी महादानसे कम पुण्यकारी, कम मानवतावादी या कम सन्तोषवादी हो सकता है?

अन्तमें यही कहा जा सकता है कि दान-जैसे महान् धर्मका निर्वहन करते समय हमें बहुत सावधान रहना चाहिये, विशेषकर नैतिक मूल्योंके क्षरणके वर्तमान युगमें; क्योंकि सत्पात्रको दिया गया दान जहाँ महान् पुण्यफलदायी होता है, वहीं अपात्रको दिया गया दान दाता, ग्रहीता और सम्पूर्ण समाजके लिये हानिकारक भी हो सकता है।

दान—दिव्य अनुष्ठान

(श्रीमती मृदुला त्रिवेदी एवं श्री टी०पी०त्रिवेदी)

'दान' का शब्दार्थ है 'देना' और भावार्थ है परोपकार अथवा कल्याणके उद्देश्यसे आर्थिक अथवा श्रमसम्बन्धी सहायता करना। दानकी महिमाको सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता और न ही दानके कारण प्राप्त होनेवाले पुण्य-प्रतापकी सही-सही व्याख्या ही की जा सकती है। दानसे प्राप्त होनेवाले पुण्यसे देवताओंके सिंहासनका अस्तित्व भी प्रकम्पित हो जाता है। तभी तो जब कोई महान् दानवीर दान प्रदान करनेकी उदारताके कारण असीम पुण्य-प्रतापसे संयुक्त होने लगता है, तो दानके प्रति उसकी सत्यनिष्ठा, असीमित आस्थाका प्रकाशन करनेहेतु ईश्वरको भी अवतार लेकर पृथ्वीपर आना पड़ा है। राजा बलिकी दान-परम्पराके यशोगानसे हमारे शास्त्र आज भी आलोकित हैं। महाप्रतापी दानवीर राजा हरिश्चन्द्रकी भी कठोरतम परीक्षा विश्वामित्रने ली और उन्हें अपने ही पुत्र रोहितके शवको बिना कर दिये अग्निदाहकी अनुमति न प्रदान करनेहेतु विवश होना पड़ा। अपने कार्यके प्रति असीम सत्यनिष्ठा तथा दान देनेके अद्भुत साहसका ही यह परिणाम था। दानवीर कर्णकी वीरगाथा तो विश्रुत है ही। इस प्रकार शास्त्रोंमें दानकी अत्यन्त महिमा है। यहाँ दानमहिमाके कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

दान-महिमा

मत्स्यपुराणमें राजर्षि मनुसे मत्स्यभगवान् कहते हैं—राजन्! दान सभी उपायोंमें सर्वश्रेष्ठ है। प्रचुर दान देनेसे मनुष्य दोनों लोकोंको जीत लेता है। राजन्! ऐसा कोई नहीं है, जो दानद्वारा वशमें न किया जा सके। दानसे देवता लोग भी सदाके लिये मनुष्योंके वशमें हो जाते हैं—

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्।
सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित्॥
न सोऽस्ति राजन् दानेन वशगो यो न जायते।
दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्॥

(मत्स्यपु० २२४। १-२)

नृपोत्तम! सारी प्रजाएँ दानके बलसे ही पालित होती हैं। दानी मनुष्य संसारमें सभीका प्रिय हो जाता है। यद्यपि निर्लोभ तथा समुद्रके समान गम्भीर स्वभाववाले मनुष्य स्वयं दानको स्वीकार नहीं करते, तथापि वे भी (दानी व्यक्तिके) पक्षपाती हो जाते हैं—

दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम।
प्रियो हि दानवाँल्लोके सर्वस्यैवोपजायते॥
यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमाः।
न गृह्णन्ति तथाप्येते जायन्ते पक्षपातिनः॥

(मत्स्यपु० २२४। ३, ५)

दान पुरुषोंका कल्याण करनेवाला तथा परम श्रेष्ठ है। लोकमें दानशील व्यक्तिकी सर्वदा पुत्रकी भाँति प्रतिष्ठा होती है। दानपरायण पुरुषश्रेष्ठ केवल एक भूलोकको ही अपने वशमें नहीं करते, प्रत्युत वे अत्यन्त दुर्जय देवराज इन्द्रके लोकको भी, जो देवताओंका निवास-स्थान है, जीत लेते हैं—

दानं श्रेयस्करं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम्।
दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा॥
न केवलं दानपरा जयन्ति भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः॥

(मत्स्यपु० २२४। ७-८)

उपर्युक्त कथनोंका तात्पर्य यह है कि दानसे अधिक महान् कोई अन्य पुण्य नहीं है। दानकी महिमा, गरिमा तथा उपयोगिताका उल्लेख तो दान प्राप्त करनेवाले व्यक्तिके नेत्रोंसे प्रस्फुटित हो उठनेवाली जलधारा ही व्यक्त कर सकती है। क्षुधाके कारण क्रन्दन करते हुए परिवारका रुदन जब दानके फलस्वरूप उल्लास तथा हर्षमें रूपान्तरित हो उठता है तो उस अमूल्य क्षणमें दान प्राप्त करनेवाले परिवार अथवा व्यक्तिके हृदयमें उपजनेवाली भावनाओंकी अन्तरंगता, अनन्तता एवं अनवरतताका उल्लेख करनेहेतु शब्दोंकी संरचना ही नहीं हुई है। प्रेमकी भावनाओंकी अनुभूतिको तो कदाचित् शब्दोंमें व्याख्यायित किया जा सकता है, परंतु दानसे प्राप्त होनेके पश्चात् संताप तथा संत्रासके विलयके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाले अन्तरंग आभासको शब्दोंकी परिधिमें बाँधना सम्भव नहीं है।

राजर्षि मनुने दानकी महिमाकी व्याख्या करते हुए कहा है कि सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ तथा कलियुगमें मात्र दानका ही महत्त्व है—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

(मनु० १। ८६)

अतः अच्छे पात्रको पाकर अपने विभवके अनुसार पूर्णरूपेण सन्तुष्ट होकर, जो कुछ भी बन सके दान देना चाहिये। कलियुगमें मात्र दान ही एक ऐसा दिव्य अनुष्ठान है, जिसके निर्मल और स्वार्थरहित अनुसरणसे समस्त संकट, कष्ट, विपत्ति, विपदा तथा समस्याओंका उपयुक्त समाधान शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।

दानकी महिमामें कहा गया है कि जो दान बिना किसीके बुलाये हुए, बिना किसीके माँगे हुए, पूरी श्रद्धा एवं आस्थाके साथ बिना किसी स्वार्थके दिया जाता है, उस दानके फलका कभी अन्त नहीं होता। चाहे युग समाप्त हो जाय, जीवन समाप्त हो जाय, परंतु इस प्रकारसे निःस्वार्थ भावनासे किये जानेवाले दानके शुभ फल स्थायी होते हैं—

अनाहूतेषु यद्दानं यच्च दत्तमयाचितम्।
भविष्यति युगस्यान्तः तस्यान्तो न भविष्यति॥

दानके विषयमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और ज्ञातव्य तथ्यको महर्षि वेदव्यासजीने अग्रांकित श्लोकमें उद्घाटित किया है, जिसमें कहा गया है दानकी मात्रा कम या अधिक अभ्युदयमें हेतु नहीं होती, बल्कि श्रद्धा और शक्तिके अनुसार दिया गया दान ही कल्याणकारक होता है। निष्काम भावसे केवल धर्मबुद्धिसे जो सत्पात्रको दान दिया जाता है, वही असली धर्म है—

नाल्पत्वं वा बहुत्वं वा दानस्याभ्युदयावहम्।
श्रद्धाशक्तिश्च दानानां वृद्धिक्षयकरे हि ते॥
पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम्।
केवलं धर्मबुद्ध्या यत् तच्च धर्मः प्रचक्षते॥

जो प्रतिग्राहीके पास स्वयं जाकर दान देता है तथा बिना माँगे किसी सत्पात्र को दान देता है, उसका तो दानफल अनन्त हो जाता है। सागरका तो अन्त है, पर उस दान का अन्त नहीं होता। ऐसे पुण्य-प्रतापसे व्यक्ति सदा

प्रफुल्लित, आनन्दित, आह्लादित, प्रतिष्ठित, समृद्ध तथा नीरोग रहता है और अपने कुटुम्बजनोंमें सम्मानित एवं प्रशंसित होता है।

उल्लेखनीय है कि परिश्रमद्वारा अर्जित धनके दानकी महिमा शास्त्रोंमें बतायी गयी है। यदि अन्यायद्वारा अर्जित धनका दान किया जाय, तो पुण्यफल नहीं प्राप्त होता, इसके विपरीत यदि श्रद्धा और निष्ठाके साथ कुछ भी, कितना भी अल्प दान दिया जाय, तो भी समृद्धि और सुखका आधार निर्मित होता है। श्रद्धा और भक्तिके साथ किसी सत्पात्रको मुट्ठीभर साग ही यदि दानमें दिया जाय, तो वह दानप्रदाताके लिए हर तरहकी समृद्धिका कारण बन जाता है—

प्रदाय मुष्टिशाकं वा श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
महते पात्रभूताय सर्वाभ्युदयमाप्नुयात्॥

दान ईश्वरको प्रसन्नता प्रदान करता है और जो व्यक्ति इस रहस्यसे परिचित हैं, वे दान देनेमें कदापि संकोच नहीं करते। जो व्यक्ति धनवान् होनेपर भी कृपण हैं, उनकी कभी प्रशंसा नहीं होती।

प्रत्येक धर्मप्रबन्धमें दान प्रदान करनेकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। स्कन्दपुराणके माहेश्वर-कुमारिकाखण्ड (२। ६३)-में उल्लेख है—

मूर्खो हि न ददात्यर्थानिह दारिद्र्यशङ्कया।
प्राज्ञस्तु विसृजत्यर्थानमुत्र तस्य शङ्कया॥

अर्थात् अज्ञानी व्यक्ति ही दरिद्रताके भयके कारण दान नहीं करते, जबकि बुद्धिमान् व्यक्ति दान देनेमें किंचित् भी संकोच नहीं करते हैं, ताकि वे जन्म-जन्मान्तरतक प्रसन्नता और समृद्धिसे सम्पन्न हो सकें।

महाभारतके अनुशासनपर्वके १४५वें अध्यायमें स्पष्ट किया गया है कि (पूर्वजन्मके) किन कार्योंके कारण शुभ अथवा अशुभ फल प्राप्त होते हैं। वहाँ उमा-महेश्वर संवादमें दान एवं दक्षिणाके महत्त्वका भी वर्णन किया गया है। उमा पूछती हैं—'हे प्रभो! कृपया मुझे बतायें कि धनाढ्य व्यक्तियोंमें कुछ ऐसे हैं, जो समस्त वैभव, सम्पदा होते हुए भी उनका उपभोग नहीं कर पाते? इसका क्या कारण है—

मानुषेष्वथ ये केचिद् धनधान्यसमन्विताः।
भोगहीनाः प्रदृश्यन्ते सर्वभोगेषु सत्स्वपि॥
न भुञ्जते किमर्थं ते तन्मे शंसितुमर्हसि॥

महेश्वर बोले—देवि! जो व्यक्ति स्वेच्छासे शुभ कार्य नहीं करते बल्कि दूसरोंके कहनेपर करते हैं और दान भी बिना किसी विश्वाससे करते हैं तथा बादमें उसके लिये रोते हैं, पश्चात्ताप करते हैं, वे व्यक्ति जब पुनः जन्म लेते हैं, तब उन सुविधाओंका उपभोग नहीं कर पाते। वे केवल कोषके सैनिकोंकी भाँति अपनी सम्पत्तिकी रक्षा करते हैं और उसमें वृद्धि करते रहते हैं—

परैः संचोदिता धर्मं कुर्वते न स्वकामतः।
धर्मश्रद्धां बहिकृत्य कुर्वन्ति च रुदन्ति च॥
तादृशा मरणं प्राप्ताः पुनर्जन्मनि शोभने।
फलानि तानि सम्प्राप्य भुञ्जते न कदाचन॥
रक्षन्तो वर्धयन्तश्च आसते निधिपालवत्॥

उमाने पुनः पूछा—महेश्वर! अनेक व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो निर्धन होनेके उपरान्त भी सुख-सुविधाओंका भोग करते हैं। इसका क्या कारण है? कृपया मुझे बतायें—

इसपर महेश्वर बोले—देवि! वे व्यक्ति, जो धनी न होनेपर भी दान तथा परोपकारके कार्य करनेको तत्पर रहते हैं, वे पुनः जन्म लेनेपर निर्धन होनेपर भी सुखोंका उपभोग करते हैं—

नित्यं ये दातुमनसो नरा वित्तेष्वसत्स्वपि।
कालधर्मवशं प्राप्ताः पुनर्जन्मनि ते नराः॥
एते धनविहीनाश्च भोगयुक्ता भवन्त्युत॥

उमाने पूछा—हे देव! तीन प्रकारके व्यक्ति होते हैं। पहले वे, जो बिना किसी परिश्रमके सर्वोत्तम स्थान, सम्पन्नता एवं धन प्राप्त करते हैं। दूसरे वे, जो परिश्रम करके यह सब प्राप्त करते हैं तथा तीसरे वे, जो अत्यधिक परिश्रम करके भी कुछ नहीं प्राप्त कर पाते। यह किन कर्मोंका फल है? कृपया बतायें।

महेश्वर बोले—देवि! वे व्यक्ति, जो दान करनेको इच्छुक रहते हैं तथा बिना अपना परिचय दिये हुए दान प्राप्त करनेयोग्य व्यक्तियोंको दान देकर—उन्हें प्रसन्नता प्रदान करते हैं। उस प्रकारके व्यक्ति अपने पिछले जन्मके शुभ कर्मोंका उपभोग अपने अगले जन्ममें बिना परिश्रम किये प्राप्त करते हैं।

दूसरे व्यक्ति उस प्रकारके होते हैं, जो माँगनेपर ही दान करते हैं। उन व्यक्तियोंको परिश्रम करके ही अपने पूर्वजन्मके शुभ कर्मोंका फल प्राप्त होता है। ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जो कहे जानेपर भी दान नहीं करते। उनकी अन्तरात्मामें लोभ व्याप्त होता है और वे दूसरेकी कमियाँ निकालते हैं। उस प्रकारके व्यक्तियोंको पुन: जन्म प्राप्त होनेपर परिश्रम करनेके उपरान्त भी कुछ प्राप्त नहीं होता है। अत: यह निश्चित है कि हमें वही प्राप्त होता है, जो हम देते हैं—

'यद् यद् ददाति पुरुषस्तत् तत् प्राप्नोति केवलम्॥'

(महा० अनु० अ० १४५)

हमारे धर्मग्रन्थोंमें दानके महत्त्वकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है और वह आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना अनादिकालमें था। किसीको दान देना, किसी असहाय व्यक्तिकी सहायता करना, अपने अगले जन्मके लिये पुण्य संचित करनेके समान है।

विष्णुपुराणमें दानके महत्त्वका स्पष्ट उल्लेख है कि जो व्यक्ति दान प्रदान किये बिना भोजन करता है, वह भोजन विषके समतुल्य होता है। अत: दान करनेके पश्चात् ही भोजन ग्रहण करना चाहिये।

मनुस्मृतिमें कितना सत्य कथन है कि दान देनेसे शत्रुताका भी अन्त हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्दने सच ही कहा है कि सर्वोत्तम दान आध्यात्मिक ज्ञानका दान है। इसीलिये विद्याके दानको श्रेष्ठ माना गया है। जो शक्ति साधनाके सम्पादनके फलस्वरूप अर्जित की जाती है, उस शक्तिका उपयोग दूसरेके कल्याणके लिये करनेसे बड़ा कोई अन्य दान नहीं है।

समस्त सम्प्रदायों तथा धर्मोंमें दान-श्रेष्ठताकी अभिव्यक्ति उपलब्ध है। दानके विषयमें जैन पंचतन्त्रमें लिखा गया है कि यदि कुछ अधिक दान देना सामर्थ्यमें समाहित नहीं है, तो अपने नेवालेमेंसे ही आधा नेवाला क्यों नहीं दे देते? अर्थात् कुछ न हो, तो अपने भोजनका आधा भाग ही दान कर देना चाहिये। हजरत मोहम्मदने भी कहा है कि दान देनेसे सम्पत्ति कम नहीं होती।

दानके विषयमें शेख सादीने कहा है कि 'जो भाग्यवान् है, वह दानशीलता अपनाता है तथा दानशीलतासे ही व्यक्ति भाग्यवान् होता है।'

रहीम खानखानाने भी दानके विषयमें कितनी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति अग्रांकित दोहेमें की है—

तब ही लगि जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमें न रुचै रहीम॥

अर्थात् तभीतक जीना अच्छा है, जबतक दान देना कम न हो। बिना दान दिये जीवित रहना हमको अच्छा नहीं लगता।

कबीर-जैसे सूफी सन्तने भी दानके महत्त्वके सम्बन्धमें लिखा है—

पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥

अर्थात् जिस प्रकारसे नाव में जल बढ़नेसे यदि उसे बाहर उलच न दिया जाय, तो नाव डूब जाती है। उसी प्रकारसे यदि अधिक धन हो तथा उसका दान न किया जाय, तो उस धनका नाश हो जाता है।

दादूने निम्न दोहेमें दानके सम्बन्धमें अभिव्यक्ति करते हुए स्पष्ट लिखा है कि दूसरोंको देना भला है। सभी को देना चाहिये। जहाँ दूसरोंको दिया नहीं जाता, वहाँ घरमें भी कुछ शेष नहीं रह जाता है—

दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइए, जो कर दिया न होय॥

हमारे मार्गदर्शक तुलसीदास, कबीरदास, रहीमदास आदि सभीने दानके महत्त्वकी अभिव्यक्ति अपने-अपने शब्दोंमें की है। दान देनेकी प्रशंसापर ही नहीं बल दिया गया है, बल्कि दान देनेकी अनिवार्यताको गम्भीर रूपसे स्वीकारा गया है। संतोंके वचन द्रष्टव्य हैं—

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरण करो॥

× × × ×

साईं इतना दीजिए, जा में कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

× × × ×

रहिमन वे नर मर चुके, जो कहुँ माँगन जाहिं।
उनसे पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥

ऐसे व्यक्तिको देना चाहिये, जो दानके उपयुक्त हो। किसी करोड़पति व्यक्तिको दान देनेका कोई औचित्य नहीं है। जिस प्रकार किसी स्वस्थ व्यक्तिको औषधि देनेसे कोई लाभ नहीं, उसी प्रकारसे धनवान् व्यक्तिको दान देनेसे कोई प्रयोजन नहीं सिद्ध होता है। न ही दान देनेका पुण्य प्राप्त होता है। वृन्दने इस विषयमें लिखा भी है—

दान दीन को दीजिए, मिटे दरिद्र की पीर।
औषध ताको दीजिए, जाके रोग शरीर॥

दान करनेसे गौरव प्राप्त होता है, धन संचय करनेसे नहीं। यही कारण है कि जलका दान करनेवाले मेघकी स्थिति सबसे ऊपर होती है और जलका संचय करनेवाले समुद्रकी स्थिति सबसे नीचे होती है।

सरोवर अथवा बावली खुदवानेका पुण्य— ब्रह्मवैवर्तपुराणमें उद्धृत है कि सरोवर खुदवानेसे परम पुण्य प्राप्त होता है; क्योंकि सरोवर अथवा जलाशयसे न जाने कितने प्यासे व्यक्तियोंकी तृप्ति होती है तथा कितनोंको जीवन मिलता है। सरोवर अथवा जलाशय खुदवानेसे निश्चित रूपसे अपार पुण्य प्राप्त होता है।

ब्रह्मवैवर्तके प्रकृतिखण्डमें लिखा है—दूसरोंके सरोवरमें जो अपना सरोवर बनाता है और दुर्भाग्यसे यदि उसे वह दान कर दे, तो दाता मरणोपरान्त मूत्रकुण्डमें गिरता है। इसके अतिरिक्त तालाब खुदवानेका जो फल होता है, उतना ही फल किसीके तालाबसे कीचड़ निकलवानेपर मिलता है। इसी तरह किसीकी बावलीसे कीचड़ निकलवानेपर उसे बावली खुदवानेका फल मिलता है—

परकीयतडागे च तडागं यः करोति वै।
उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः॥
यत्फलं च तडागेन पङ्कोद्धारेण तत्फलम्।
पङ्कोद्धारेण वाप्याश्च वापीतुल्यफलं लभेत्॥

मत्स्यपुराणमें कहा गया है—बावली, कुँआ, तालाब एवं देवमन्दिरोंका जो पुनरुद्धार करवाता है, उसे मौलिक फल मिलता है अर्थात् उसे नये बावली आदि बनवानेका जो फल होता है, वही मिलता है।

दान सर्वदा सम्पूर्ण आस्था एवं विश्वासके साथ खुले हाथसे करना चाहिये। दान प्रचुर होना चाहिये तथा दान प्रसन्नचित्तसे किया जाना चाहिये।

दान तो इस धरतीकी सर्वाधिक प्राचीन परम्परा है, जो कई बार त्रैलोक्यके इतिहासका आधारभूत सत्य सिद्ध हुई है। दानवोंका वध करनेहेतु जब देवताओंके समस्त अस्त्र विफल हो गये, तो देवताओंने महर्षि दधीचिसे उनकी अस्थियोंका दान प्राप्त किया। महर्षि दधीचिके अतिरिक्त दानवीर कर्ण, महादानी बलि आदि भी दान प्रदान करनेवाले महापुरुषोंमें सदा प्रशंसित तथा उल्लेखनीय रहेंगे।

हमारे यहाँ तुलादान देनेकी भी परम्परा है। तुलादानमें तुलाके एक पलड़ेपर दानकर्ताको रखा जाता है तथा दूसरे पलड़ेपर उसके भारके समतुल्य सुवर्ण आदि द्रव्य रखा जाता है। अर्थात् जिस व्यक्तिके लिये तुलादान दिया जाना है, उसके भारके बराबर स्वर्ण अथवा रजत अथवा रत्न या अन्न आदि दिया जाता है।

प्रत्येक व्यक्तिको दान अवश्य देना चाहिये। चाहे वह अल्प हो अथवा अधिक। दान देनेका पुण्य-प्रताप प्राप्त करनेका अवसर सभीको उपलब्ध है, उसका लाभ अपनी क्षमताके अनुरूप सबको प्राप्त करना चाहिये।

श्रेष्ठ दान—गुप्त दान— ज्ञातव्य है कि गुप्त दान श्रेष्ठ स्वीकारा गया है, जबकि एक ही वस्तुके पुनर्दानको अनर्थका कारण कहा गया है—

अदृष्टमश्रुते दानमुक्त्वा दानं न दृश्यते।
पुनरागमनं नास्ति पुनर्दानमनर्थकम्॥

जिस दानके सम्बन्धमें कहीं भी स्मृति अंकित न हो, जो दान विद्याशून्य हो अर्थात् जिसमें किसी प्रकारकी गणित न लगायी जाय तथा जिसका कहीं उल्लेख न किया जाय तथा जिस दानको किसीने देखा अथवा दिखाया नहीं, जिसकी चर्चा नहीं की जाती, वही दान श्रेष्ठ होता है, परंतु दान की हुई वस्तुका पुनः दान देना, भले ही वह त्रुटिवश हो, अत्यन्त अनर्थक और पापप्रदायक होता है। इस तथ्यका अवश्य ही ध्यान रखना चाहिये कि कहीं दान देनेमें पुनर्दान-जैसी कोई स्थिति न हो।

ध्यान रखनेयोग्य तथ्य है कि दान देनेवाला व्यक्ति यदि स्वयं दान लेनेवाले व्यक्तिके पास जाकर दान दे, तो सर्वश्रेष्ठ फल प्राप्त होता है। इस सन्दर्भमें अग्रांकित श्लोक उद्धरणीय है—

अभिगम्योत्तमं दानमाहूतं चैव मध्यमम्।
अधमं याचमानं स्यात्सेवादानं तु निष्फलम्॥

किसीके घरपर जाकर देना उत्तम दान है, बुलाकर देना मध्यम, माँगनेपर देना अधम है और सेवा करनेपर दिया गया दान निष्फल होता है।

निष्काम भावसे दान प्रदान करना सर्वश्रेष्ठ धर्म है तथा एक ऐसा पुण्य है जो कभी क्षीण नहीं होता, परंतु दान देनेवालेके हृदयमें किसी प्रकारका किंचित् भी विकार अथवा अभिमान कदापि नहीं आना चाहिये।

दानके विषयमें तो बहुत कुछ लिखा गया है, परंतु एक श्लोकमें तो यहाँतक कहा गया है कि पाप अथवा अन्यायसे अर्जित समूची धरतीका दान दिया जाय, तो भी कोई फल नहीं मिलता। अतः दानादि सत्कर्म न्यायोपार्जित द्रव्यसे ही करने चाहिये।

दान किसी भी रूपमें किया जाय। वह पुण्यफल तो प्रदान करता ही है। यह अनुभूत सत्य है कि निश्छल और निर्मल मनसे दान प्रदान करनेसे व्यक्तिपर आयी विपत्तिका शमन होता है, समस्याओंका समाधान प्राप्त होता है, विपदाएँ दूर होती हैं तथा अभीष्टकी संसिद्धि होती है।

दान-दोहावली

(श्रीसुरेशजी, साहित्यवाचस्पति)

दीनों पर करुणा करें यथा शक्ति दें दान। दूना देंगे जगत्पति जो हैं कृपानिधान॥
शिबि दधीचि का यह जगत करता है गुणगान। दीं दधीचि ने अस्थियाँ जनहित का धर ध्यान॥
धन की होती तीन गति कहते वेद-पुरान। पहली गति उत्तम परम सदा दीजिये दान॥
मध्यम गति उपभोग को, इसका रखिये ध्यान। तब भी धन यदि बचे तो उसका भी दें दान॥
कहा गया है, अन्यथा, क्षय होगा धन-धान्य। नाश तीसरी गति बने जग में हो अपमान॥
दानी की शोभा बढ़े जग में हो सम्मान। दान प्राप्त कर प्राणि जन देते आशिष मान॥
कलियुग में तप यज्ञ या हो न सकेगा ध्यान। राम नाम हरि-कीर्तन से ही हो कल्यान॥
प्यासे प्राणी को सदा कीजै जल का दान। पितरों का तर्पण करें, करें सदा जलदान॥
सरिता का जल ना घटे पशु पंछिन के पान। दान किये से धन बढ़े, बढ़े कीर्ति-सम्मान॥
शोभा बढ़ती हाथ की जो करते हैं दान। कंगन बाजूबन्द से बढ़े न कर का मान॥
करते जों हरि नाम जप या करते जो दान। लोभ, मोह, मद, गर्व का होता है अवसान॥
कीजै दान सुपात्र को, देश-काल कर ध्यान। पुण्य अपरिमित मिले औ जग में हो सम्मान॥
दान परम सर्वोत्तम गो विद्या भू दान। बने लोक परलोक दोउ बरनैं वेद-पुरान॥
लाल वस्त्र, मणिक, शकर, ताम्र, स्वर्ण कर दान। सूर्य देव करते कृपा दें विद्या यश मान॥
मुक्ता, चावल, श्वेत, फल, दूध, रजत का दान। खुश होते शंकर सहित सदा चन्द्र भगवान्॥
लाल वस्त्र, मूँगा, शकर, लाल गाय का दान। होते मंगल ग्रह मुदित, महावीर हनुमान्॥
पन्ना, सोना, मूँग या हरे वस्त्र का दान। गौ को घास खिलाइये खुश हों बुध भगवान्॥
पीत वसन, चन्दन सुवर्ण का सदा कीजिये दान। मोदक, केसर पुष्पराज से खुश हों गुरु महान्॥
हीरा, चाँदी, दूध, घी, श्वेत वस्त्र का दान। नेष्ट शुक्र भी मुदित हों शुक्राचार्य महान्॥
नीलम, नीला वस्त्र, तिल, शमी, तेल का दान। इससे खुश होते शनि न्यायाधीश महान्॥
सात्त्विक, राजस, तामस तीन तरह का दान। सात्त्विक है सर्वोत्तम तीनों में परधान॥
देश, काल औ पात्र का कर विचार दें दान। प्रतिफल की आशा बिना वही सात्त्विक दान॥
अभिप्राय की पूर्ति हित यदि नर करता दान। यह मध्यम गति दान की कहते राजस दान॥
घृणा तिरस्कृत भाव से यदि नर करता दान। देश काल संज्ञान बिनु होइ तामसी दान॥
अन्न, गऊ, जल, स्वर्ण, तिल, भू, घृत कीजै दान। कहैं शास्त्र इन सबहिं से विद्या दान महान्॥
मनुज योनि में सहज है ईश नाम जप, दान। किंतु दान का कभी मत कीजै गर्व बखान॥
पापकर्म के शमन का केवल इक उपमान। गौशाला, गुरुकुल अरु दीन-दुखी को दान॥
धन की केवल तीन गति नाश, भोग अरु दान। सदुपयोग से बचे जो, धन का कीजै दान॥
कवनेहु बिधि हरि नाम जप, सदा करै कल्यान। कलि में सबही बिधि हितू, सदा कीजिये दान॥
परहित पर उपकार सत्त्व है कहते बेद-पुरान। हरी नाम संकीर्तन, सदा कीजिये दान॥

प्रतिग्रह-विचार

शास्त्रोंमें दानको जहाँ सच्चा मित्र, परलोकका बन्धु और सबको वशमें करनेवाला बताया गया है, वहीं असद्दान लेनेका क्या फल होता है, यह भी स्पष्ट रूपसे निर्दिष्ट किया गया है। जहाँ दानदाताकी बड़ी प्रशस्ति आयी है, वहीं निन्दित दानके ग्रहीताकी बड़ी निन्दा भी आयी है।

ब्राह्मणका स्वरूप कितना शुद्ध, निर्मल, पवित्र और तपःपूर्ण होता है—यह शास्त्रोंमें वर्णित है। तपस्या, गायत्री-उपासना, स्वाध्याय और आत्मज्ञान—यही ब्राह्मणका श्रेष्ठ धर्म है। शास्त्रोंमें यद्यपि अध्ययन करना-कराना, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना—ये ब्राह्मणके मुख्य वर्ण-धर्म बताये गये हैं, तथापि इनमें भी त्यागवृत्ति एवं सन्तोषपूर्वक रहना उसका मुख्य लक्षण निर्दिष्ट किया गया है। ब्राह्मणके लिये किंचित् भी धनसंचय न करके उसे असंग्रही होनेका निर्देश है; क्योंकि धन-सम्पत्ति आदि तपस्या—साधनारूपी कल्याणकारी मार्गमें प्रबल बाधक है। धर्मशास्त्रोंमें यह आज्ञा है कि ब्राह्मण प्रतिग्रह (दान लेने)-में समर्थ होनेपर भी, प्रतिग्रहके लिये योग्य पात्र होनेपर भी लोभके वशीभूत हो किसीसे दान न ले। इससे उसका ब्रह्मतेज नष्ट हो जाता है—

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत्।
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशुः ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति॥

(मनु० ४। १८६)

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत्।
प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्रह्मतेजो विनश्यति॥

(मदनरत्न-दानविवेकोद्योतमें विष्णुधर्मोत्तरपुराणका वचन)

महर्षि याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि जो ब्राह्मण प्रतिग्रह लेनेमें समर्थ है अर्थात् दान ग्रहण करनेकी पात्रतासे सब प्रकारसे सम्पन्न है, उसे भी चाहिये कि वह दान न ले, इस दान न लेनेके प्रभावसे वह अनायास ही उन लोकोंको प्राप्त कर लेता है, जिन लोकोंको श्रेष्ठ दानी प्राप्त करते हैं—

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम्।
ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति पुष्कलान्॥

(याज्ञ०स्मृति आ० २१३)

धनके लोभमें पड़कर यदि वह दान लेता है, तो निर्विष सर्पकी तरह तेजोहीन, सत्त्वहीन हो जाता है; विद्या, विवेक, बुद्धि तथा ज्ञानसे हीन हो जाता है। उसका पुण्य भी नष्ट हो जाता है। अतः उसे अत्यन्त अपरिग्रही होकर शास्त्रकी मर्यादाका पालन करना चाहिये। इसीमें ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व है। ब्राह्मणको तो उपवास, जप, तप एवं धर्माचरणमें ही निरत रहना चाहिये। त्यागके कारण ही ब्राह्मणकी पूज्यता है। ब्राह्मणके लिये प्रतिग्रह (दान लेना) ऊपरसे मधुके समान मीठा जान पड़ता है, किंतु परिणाममें वह विषके समान अनर्थकारी हो जाता है, जबकि दाताके लिये वह पुण्यजनकत्वका हेतु ही होता है। तात्पर्य यह है कि दाताको तो धर्मरूपी फल मिलता है, किंतु ग्रहीता ब्राह्मणके लिये वह दान विषग्रहणके समान होता है—

प्रतिग्रहः काश्यपेय मध्वास्वादो विषोपमः।
ब्राह्मणाय भवेन्नित्यं दाता धर्मेण युज्यते॥

(अरुणस्मृति ३)

याज्ञवल्क्यजी बताते हैं कि जो ब्राह्मण विद्या और तपसे हीन हो, उसे चाहिये कि वह प्रतिग्रह ग्रहण न करे; क्योंकि यदि वह दान लेता है, तो दाताको तथा अपनेको अधोगति (नरक)-में ले जाता है—

विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः।
गृह्णन् प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च॥

(याज्ञ०स्मृति आ० २०२)

अतः ब्राह्मणको प्रतिग्रह ग्रहण करनेमें बहुत विचार करना चाहिये।

मनुजी बताते हैं कि जो ब्राह्मण दान ग्रहण करनेकी विधि नहीं जानता है, उसे चाहिये कि वह दान न ले। सुवर्ण, भूमि, अश्व, गौ, अन्न, वस्त्र, तिल तथा घीका दान लेनेवाला मूर्ख ब्राह्मण उसी प्रकार भस्म हो जाता है, जिस प्रकार अग्निसे काष्ठ भस्म हो जाता है—

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान् घृतम्।
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत्॥

(मनु० ४। १८८)

अतः मूर्ख ब्राह्मणको दान लेनेसे हमेशा डरना चाहिये—**'तस्मादविद्वान् बिभियात् यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात्॥'** (मनु० ४। १९१)

अरुणस्मृतिने बताया है कि प्रतिग्रहसे ब्राह्मणोंका ब्रह्मतेज (ब्राह्मणत्व) नष्ट हो जाता है, इसलिये प्रतिग्रह लेनेपर उसे प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये—

प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति।
अतः प्रतिग्रहं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥

(अरुण० २६)

दोषयुक्त दान लेनेसे ब्राह्मण दाताके दोष-पापका भागी बन जाता है। यहाँतक कि भिक्षाका जो अन्न ब्राह्मण ग्रहण करता है, उसके लिये भी उसे गायत्री आदि पुण्यप्रद मन्त्रोंका जप करना चाहिये, तभी दोष-पापकी शान्ति होती है—

दुष्टप्रतिग्रहं कृत्वा विप्रो भवति किल्बिषी।
अपि भिक्षागृहीते तु पुण्यमन्त्रमुदीरयेत्॥

(अरुण० २७)

विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि प्रथम तो वह प्रतिग्रह ले ही न, यदि ले भी तो शरीरकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे, तप करे, होम करे—'**प्रतिग्रहेषु सर्वेषु जपहोमादिकं भवेत्**' (अरुण० २८)। प्रतिग्रहके धनमेंसे दान करे, उसे गायोंकी सेवामें लगाये, दीन-दुःखियोंको बाँटे—ऐसा करनेसे वह प्रतिग्रहजन्य दोष-पापसे मुक्त हो जाता है—

तस्मात् प्रतिग्रहं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥
प्रायश्चित्ते कृते विप्रो मुच्यते दुष्परिग्रहात्।*

(अरुण० ४१, ४३)

प्रतिग्रहका धन स्थिर भी नहीं रहता, वह समूल नष्ट हो जाता है—

प्रतिग्रहार्जितं द्रव्यं सर्वं नश्यति मूलतः।

(अरुण० ७३)

अतः ऐसे धनको सत्कार्योंमें व्यय करना चाहिये—

प्राज्ञः प्रतिग्रहं कृत्वा तद्धनं सद्गतिं नयेत्॥

(अरुण० १३९)

अरुणस्मृतिमें विद्यादान, भूमिदान तथा कपिला गौके दानको प्रतिग्रह नहीं बतलाया गया है और न उसके लेनेमें कोई दोष बताया गया है। ये तीनों अतिदान कहे गये हैं। ये तीनों प्रतिग्रहमें लेनेपर भी परोपकार ही करते हैं, अतः इनमें दोष नहीं है। कपिला गायके गव्य पदार्थोंका यज्ञ आदि कार्योंमें उपयोग होकर सबका कल्याण होता है। गायसे प्राप्त पंचगव्य महान् उपयोगी है, गायका बछड़ा कृषिका कार्यकर सबको अन्न प्रदान करता है। गौका पालन, दर्शन, स्पर्श, उसकी सेवा सबके लिये उपयोगी होती है। गौ घरमें रहनेसे सबका कल्याण करती है। अतः गोदानको प्रतिग्रह नहीं माना गया है। ऐसे ही विद्यादानसे सभीका भला होता है। भूमि दानमें लेनेसे उस भूमिसे प्राप्त अन्नसे न केवल मनुष्योंका, अपितु पशु-पक्षी आदि तिर्यक् प्राणियोंका भी भरण-पोषण होता है। अतः इसके प्रतिग्रहमें दोष नहीं, अपितु पुण्यजनकता ही है। भूमिदानके विषयमें कहा गया है कि भूमि देनेवाला तथा लेनेवाला दोनों पुण्यके भागी होते हैं और स्वर्गलोकमें निवास करते हैं—

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ॥

(अरुण० ८९)

दुष्टप्रतिग्रहग्रहणकी तो बहुत निन्दा आयी है। उसके विषयमें कहा गया है कि जो ब्राह्मण असद्दान ग्रहण करता है, उसके साथ सम्भाषण नहीं करना चाहिये, उसका मुख नहीं देखना चाहिये। मुख देखनेपर प्रायश्चित्त करना पड़ता है—

नाभिभाषेत तं दृष्ट्वा मुखं च न विलोकयेत्।
मुखावलोकनेनैव प्रायश्चित्ती भवेद् द्विजः।

(अरुण० ५६-५७)

दुष्टप्रतिग्रह क्या है—दानचन्द्रिकामें बताया गया है कि दुष्टप्रतिग्रह चार प्रकारसे हो सकता है—'**दातृकालदेशप्रतिग्राह्यदोषभेदात्**' अर्थात् (१) दाताके दोषसे, (२) कालके दोषसे, (३) देशके दोषसे तथा (४) ग्रहण की जानेवाली वस्तुके दोषसे।

१-चाण्डाल, पतित आदि व्यक्तिसे दान लेना दाताके दोषसे दुष्टप्रतिग्रह है—'**चाण्डालत्वपतित्वादयो दातृदोषाः।**' अतः दान देनेवाला कौन है, कैसा है, उसका भाव कैसा है इत्यादिपर खूब विचार करके ही दान लेना चाहिये।

२-चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण आदि समयोंमें दान ग्रहण करना कालजन्य दुष्टप्रतिग्रह है—'**चन्द्रसूर्योपरागादयः कालदोषाः।**'

३-कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंमें दान ग्रहण करना देशजन्य

* अरुणस्मृतिमें प्रतिग्रहजन्य दोष-पापोंके प्रायश्चित्तका निरूपण विस्तारमें किया गया है।

दुष्टप्रतिग्रह है—'**कुरुक्षेत्रत्वादयो देशदोषाः।**'

दानचन्द्रिकामें बताया गया है कि प्राणोंके कण्ठगत होनेपर भी तीर्थमें प्रतिग्रह ग्रहण नहीं करना चाहिये—

न तीर्थे प्रतिगृह्णीयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि।

४-उभयतोमुखी गौ, मेषी आदि द्रव्योंका दान ग्रहण करना द्रव्यजन्य दुष्टप्रतिग्रह है—'**उभयोमुखीत्वमेषीत्वादयो देयदोषाः।**'

मनुस्मृतिमें असत्प्रतिग्रहके प्रायश्चित्तके विषयमें बताया गया है कि ब्राह्मण तीन हजार गायत्री जपकर तथा एक मासतक गोशालामें केवल दुग्धाहारकर असत्प्रतिग्रहके दोषसे छूट जाता है—

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात्॥

(मनु० ११।१९४)

असत्परिग्रहीके लिये गोसेवा भी आवश्यक कर्म बताया गया है। उपर्युक्त विवेचनसे यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मण असत् दान ग्रहण न करे। जबकि शास्त्रोंमें दान लेना उसका वर्णधर्म है तो तात्पर्य यही प्रतीत होता है कि दाताके लिये जैसे पात्रापात्रपर विचार करनेकी बात आयी है, वैसी ही बात दानग्रहीता ब्राह्मणको द्रव्यशुद्धि, कालशुद्धि, देशशुद्धि आदिपर विचार करनेकी आयी है। ग्रहीता ब्राह्मणको लोभसे सदा दूर रहना चाहिये। दाताको चाहिये कि वह दानशील बना रहे और ग्रहीता ब्राह्मणको चाहिये कि वह दान ग्रहण करनेमें अर्थात् दान लेनेमें शास्त्रीय मर्यादाकी सावधानी बरते। तपश्चर्या तथा गायत्रीमन्त्रके जप आदिके द्वारा दान लेनेके दोषकी निवृत्ति भी होती है। अतः अपने वर्णधर्मका पालन करते हुए दानमें प्राप्त वस्तुका कुछ अंश स्वयं भी दान करना चाहिये अथवा परोपकारमें व्यय करना चाहिये।

दानदाताका भी कर्तव्य है कि वे यथासाध्य इस प्रकारके सत्पात्र ब्राह्मणको ही दान दें। इससे दानदाता तथा ग्रहीता दोनोंका कल्याण है।

पंचमहायज्ञों तथा बलिवैश्वदेवमें दानका स्वरूप

(सुश्री रजनीजी शर्मा)

गृहस्थाश्रममें रहते हुए नित्य पाँच प्रकारके पाप प्राप्त होते रहते हैं। उनकी निवृत्तिके लिये पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान करना आवश्यक है। मनुजीने कहा है—

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥

(मनु० ३।६८)

गृहस्थके यहाँ चूल्हा, चक्की, बुहारी, ओखली, जलका घड़ा—ये पाँच हिंसाके स्थान बताये गये हैं। इनके प्रयोग करनेपर कुछ हिंसा होनेकी सम्भावनाएँ रहती हैं, जो गृहस्थोंको पापसे बाँधती हैं। इसके साथ ही प्रत्येक मनुष्यपर पाँच प्रकारके ऋण होते हैं—देव-ऋण, पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण, भूत-ऋण, मनुष्य-ऋण। उन सबसे निस्तार पानेके लिये महर्षियोंने गृहस्थोंके लिये पाँच महायज्ञ करनेका विधान किया है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

(मनु० ३।७०)

वेद पढ़ना-पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ, श्राद्ध-तर्पण करना पितृयज्ञ, हवन करना देवयज्ञ, बलिवैश्वदेव करना भूतयज्ञ और अतिथियोंकी सेवा करना मनुष्ययज्ञ है।

जो गृहस्थ इन पाँच महायज्ञोंको यथाशक्ति नहीं छोड़ता, वह घरमें रहते हुए भी नित्य होनेवाले हिंसादोषोंसे लिप्त नहीं होता तथा पंच ऋणोंसे मुक्त होता है। जो देवता, अतिथि, सेवक, पितर और आत्मा—इन पाँचोंको अन्न नहीं देता, वह मृतकके समान ही है।

यदि श्रौत या स्मार्तविधिके अनुसार नित्य अग्निहोत्र न हो सके तो बलिवैश्वदेव तो अवश्य करना चाहिये। बलिवैश्वदेव करनेसे गृहस्थ सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गीता (३।१३)-में कहा गया है—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। जो लोग अपने शरीरपोषणके लिये अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं।

गृहस्थको सत्य और न्यायपूर्वक धनोपार्जन करके आत्मकल्याणके लिये पितरों, देवताओं और यावन्मात्र

प्राणियोंकी निष्कामभावसे सेवा करनी चाहिये। सबको अन्न देकर अन्न-जल ग्रहण करना चाहिये, यही मनुष्यके लिये कल्याणकारी है। तर्पणमें क्रमशः देवताओं, ऋषियों और पितरोंको तथा यावन्मात्र प्राणियोंको जो जल दिया जाता है, उसका पहले सूर्यद्वारा शोषण होता है, फिर वर्षाके रूपमें वह जल सब प्राणियोंको प्राप्त हो जाता है। वैश्वदेवका तात्पर्य सारे विश्वको बलि (भोजन) देना है। अग्निमें दी जानेवाली आहुति सूर्यको प्राप्त होकर सूर्यद्वारा वर्षारूपमें समस्त विश्वके प्राणियोंको प्राप्त हो जाती है। मनुजीने कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥
(मनु० ३। ७६)

वेदोक्त विधिसे अग्निमें दी हुई आहुति सूर्यको प्राप्त होती है, सूर्यसे मेघद्वारा वर्षा होती है, वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है, अन्नसे प्रजा उत्पन्न होती है तथा सभी प्राणियोंकी तृप्ति और वृद्धि होती है। अतः बलिवैश्वदेव करना सारे विश्वको जीवन देना है। गृहस्थ इस प्रकार अपने कर्तव्य कर्मोंके पालनमें लगा रहे और काम, क्रोध, मोह, लोभ, द्वेष, दम्भ और नास्तिकता आदि दुर्गुणोंका परित्याग करके सदा मन, इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए सदाचारमें स्थिर रहे। विवाहित गृहस्थ पुरुष पूर्वोक्त विधिसे सदा पंचयज्ञोंको करता रहे, उनका कभी त्याग न करे। गृहस्थाश्रममें रहकर मनुष्य अन्य तीनों आश्रमोंके लोगोंका भरण-पोषण करता है, इसलिये गृहस्थाश्रम सबसे श्रेष्ठ कहा गया है।

बलिवैश्वदेवयज्ञकी पूर्णता घरोंमें गृहिणियोंद्वारा भी सूक्ष्मरूपमें होती है, उसके अनुसार वे भोजन बनाते हुए प्रथम पंचग्रास चूल्हेकी अग्निमें होम देती हैं और चुल्लूभर जल चारों ओर छोड़ देती हैं। इसके साथ ही गोग्रास आदि पंचबलि निकालनेकी भी विधि है। बलिवैश्वदेव यज्ञकी यह बहुत ही सूक्ष्मरूपसे अपनायी हुई विधि है, जिसको करनेमें कोई अधिक प्रयास भी नहीं करना पड़ता। विधि एवं क्रियाका लोप न हो—इस तात्पर्यसे इसे एक तरहसे उचित कहा जा सकता है। इससे भोजन-संस्कार भी सम्पन्न हो जाता है।

आपके हाथों दानकी परम्परा चलती रहे

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०, पी-एच०डी०)

भारतीय संस्कृति परमार्थ और परोपकारको प्रचुर महत्त्व देती है। जब अपनी सात्त्विक आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाय, तो लोक-कल्याणके लिये दूसरोंकी उन्नतिके लिये दान देना चाहिये। प्राचीन कालमें ऐसे निःस्वार्थी लोक-हित-निरत ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, पुरोहित, योगी, संन्यासी होते थे, जो अपना समस्त जीवन लोकहितके लिये दे डालते थे। सदा दूसरोंकी सेवा-सहायता करते रहते थे। कुछ विद्यादान, पठन-पाठनमें ही आयु व्यतीत करते थे। उपदेशद्वारा जनताकी शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, सहयोग, सुख, सुविधा, विवेक, धर्मपरायणता आदि सद्गुणोंको बढ़ानेका प्रयत्न किया करते थे। मानवीय स्वभावमें जो सत् तत्त्व है, उसीकी वृद्धिमें वे अपने अधिकांश दिन व्यतीत करते थे। ये ज्ञानी उदार महात्मा अपने-आपमें कल्याणकी जीवित संस्थाएँ थे, यज्ञरूप थे। जब ये जनताकी इतनी सेवा करते थे तो जनता भी अपना कर्तव्य समझकर इनके भोजन, निवास, वस्त्र, सन्तानके पालन-पोषणका प्रबन्ध करती थी। जैसे लोकहितकारी संस्थाएँ आज भी सार्वजनिक चन्देसे चलायी जाती हैं, उसी प्रकार ये ऋषि-मुनि, ब्राह्मण भी दान-पुण्य, भिक्षा आदिद्वारा निर्वाह करते थे। प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियोंका व्यक्तित्व इतना उच्च, पवित्र और प्रवृत्ति इतनी सात्त्विक होती थी कि उनके सम्बन्धमें किसी प्रकारके सन्देहकी कल्पनातक नहीं की जा सकती थी; क्योंकि उन्हें पैसा देकर जनता उसके सदुपयोगके विषयमें निश्चिन्त रहती थी। हिसाब जाँचनेकी आवश्यकतातक न समझती थी। इस प्रकार हमारे पुरोहित, विद्यादान देनेवाले ब्राह्मण, मुनि, ऋषि दान-दक्षिणाद्वारा जीवन-निर्वाह करते हुए जनताकी सर्वतोमुखी उन्नतिका प्रबन्ध किया करते थे। दानद्वारा उनके जीवनकी आवश्यकताएँ पूरी करनेका विधान उचित था, जो परमार्थ और लोकहितके लिये जनताकी सेवा-सहायतामें इतना तन्मय हो जाय कि अपने व्यक्तिगत लाभकी बात सोच ही न सके, उसके भरण-पोषणकी चिन्ता जनताको करनी ही चाहिये।

इस प्रकार दान देनेकी परिपाटी चली। कालान्तरमें उस

व्यक्तिको भी दान दिया जाने लगा जो अपंग, अन्धा, लँगड़ा, लूला, अपाहिज या हर प्रकारसे लाचार हो, जीविकोपार्जन न कर सके। उन्हें भिक्षा ग्रहण भी करनी चाहिये; क्योंकि जीवन धारण करनेके लिये अन्य कोई साधन ही शेष नहीं रहता। इस प्रकार दो रूपोंमें दूसरोंको देनेकी प्रणाली प्रचलित रही है—१-मुनियों, ब्राह्मणों, पुरोहितों, आचार्यों, संन्यासियोंको दी जानेवाली आर्थिक सहायताका नाम रखा गया 'दान' एवं २-अपंग, लँगड़े, लूले—कुछ भी कार्य न कर सकनेवाले व्यक्तियोंको दी जानेवाली सहायताको 'भिक्षा' कहा गया। दान और भिक्षा दोनोंका ही तात्पर्य दूसरेकी सहायता करना है। पुण्य, परोपकार, सत्कार्य, लोककल्याण, सुख-शान्तिकी वृद्धि, सात्त्विकताका उन्नयन तथा समष्टिकी—जनताकी सेवाके लिये ही इन दोनोंका उपयोग होना चाहिये।

दूसरोंको देनेका क्या तात्पर्य है? भारतीय दानपरम्परा और कुछ नहीं, उधार देनेकी एक वैज्ञानिक पद्धति है। जो कुछ हम दूसरोंको देते हैं, वह हमारी रक्षित पूँजीकी तरह जमा हो जाता है। अच्छा दान वह है, जो अभावग्रस्तोंको दिया जाता है। बिना जरूरतमन्दको देना कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता। कुपात्रोंको धन देना व्यर्थ है। जिसका पेट भरा हुआ हो, उसे और भोजन कराया जाय तो वह बीमार पड़ेगा और अपने साथ दाताको भी अधोगतिके लिये घसीटेगा। भारतीय संस्कृतिके अनुसार दान देना बहुत ही उत्तम धर्मकार्य है। जो अपनी रोटी दूसरोंको बाँटकर खाता है, उसको किसी बातकी कमी नहीं रहेगी। जो अपने पैसेको जोड़-जोड़कर जमीनमें गाड़ते हैं, उन पाषाणहृदयोंको कैसे पता लगे कि दान देनेमें कितना आत्मसन्तोष, कितनी मानसिक तृप्ति मिलती है! आत्मा प्रफुल्ल हो जाती है। मृत्यु बड़ी बुरी लगती है, पर मौतसे बुरी बात यह है कि कोई व्यक्ति दूसरेको दु:खी देखे और उसकी किसी प्रकार भी सहायता करनेमें अपने-आपको असमर्थ पाये। हिन्दूशास्त्र एक स्वरसे कहते हैं कि मनुष्यजीवनमें परोपकार ही सार है। हमें जितना भी सम्भव हो, सदैव परोपकारमें रत रहना चाहिये। किंतु यह दान अभिमान, दम्भ, कीर्तिके लिये नहीं, आत्मकल्याणके लिये ही होना चाहिये। मेरे कारण दूसरोंका भला हुआ है, यह सोचना उचित नहीं है। दान देनेसे स्वयं हमारी ही भलाई होती है। हमें संयमका पाठ मिलता है। यदि आप दान न भी दें, तब भी संसारका काम तो चलता ही रहेगा। परमात्मा इतना विपुल भण्डार लुटा रहे हैं कि हमारी छोटी-सी सहायताके बिना भी जनताका कार्य चल ही जायगा। आप यदि न देंगे, तो कोई भिखारी भूखा नहीं मर जायगा। किसी प्रकार उसके भोजनका प्रबन्ध हो ही जायगा; किंतु आपके हाथसे दूसरोंके उपकार करनेका एक अवसर जाता रहेगा। आपकी उपकार-भावना कुण्ठित हो जायगी। दानसे जो मानसिक उन्नति होती, आत्माको जो शक्ति प्राप्त होती, वह दान लेनेवालेको नहीं, वरं देनेवालेको प्राप्त होती है। दूसरोंका उपकार करना मानो एक प्रकारसे अपना ही कल्याण करना है। किसीको थोड़ा-सा पैसा देकर भला हम उसका कितना भला कर सकते हैं। किंतु उसकी अपेक्षा हम अपना भला हजार गुना कर लेते हैं। हमारी उदारताका विकास हो जाता है। आनन्दस्रोत खुल जाता है।

दान आत्माका दिव्य गुण है। दानशीलताकी सात्त्विक भावना जिस पुरुषके अन्त:करणमें प्रवेश करती है, उसे उदार बना देती है। उसे प्रकाशका पुंज बना देती है। दान रुपये-पैसे या रोटी-भोजन-कपड़ेका ही नहीं, श्रमका भी हो सकता है। सच्चा दानी लोकोपकारको प्रमुखता देता है। वह दधीचिकी तरह अपनी हड्डियाँ लोकोपकारके लिये दान दे देता है। व्यासजीकी तरह अपनी आयु सद्ग्रन्थोंकी रचनामें लगा देता है। द्रोणाचार्यकी तरह शस्त्र-विद्याकी प्रतिष्ठा करता है। पाणिनिकी तरह व्याकरण बनाता है, बुद्धकी तरह अहिंसा और प्रेम-धर्मका उपदेश देता है। इस प्रकार सच्चा दानी समय और देशकी आवश्यकताओंके अनुसार अपनी बुद्धि, योग्यता, कला, प्रतिभा, शक्तियोंका दान करता रहता है।

यह तो दान देनेवालेके पक्षका विवेचन हुआ। अब लेनेवालेके पक्षको देखिये। भिक्षावृत्ति या दान लेना एक बड़ा उत्तरदायित्व है, जिसका भार उठानेका साहस बहुत कम व्यक्तियोंमें होता है। शास्त्रकारोंने भिक्षाकी उपमा अग्निसे दी है। जैसे अग्निका प्रयोग बड़ी सावधानीसे करना चाहिये, अन्यथा वह बड़ी हानि और उत्पात कर सकती है; इसी प्रकार भिक्षा या दान लेनेसे पूर्व खूब सोच-समझ लेना चाहिये। जिससे आप कुछ भी दान लेते हैं, उसको अपने श्रम या बुद्धिद्वारा दुगुने रूपमें लौटानेको प्रस्तुत रहना चाहिये। अपनी आवश्यकताएँ बहुत ही कम रखनी चाहिये। दाताकी सेवा, सहायता, कठिनाइयाँ हल करनेका उद्योग करना चाहिये या सद्भावना और आशीर्वादके रूपमें बहुमूल्य उपदेश देते रहना चाहिये।

भिक्षाके दो प्रयोजन हैं—एक तो यह कि दान देनेसे देनेवालेको त्यागका, परोपकारका आत्मसन्तोष प्राप्त होता है। दूसरा यह कि उन ऋषिकल्प ब्राह्मणोंको अपने अभिमान और अहंकारका परिमार्जन करते रहनेका अवसर प्राप्त होता है। प्राचीन कालमें लोक-सेवक, परोपकारी तथा महात्मा अहम्मन्यता उत्पन्न न होने देनेके लिये भिक्षुककी तुच्छ स्थिति ग्रहण करते थे। ऐसे भिक्षुकोंको दान देते हुए देनेवाले अपना मान अनुभव करते थे और लेनेवाले निरभिमान बनते थे। उससे उन दोनोंके बीच सुदृढ़ सौहार्द बढ़ता था। भिक्षावृत्ति करनेवालेकी अपेक्षा देनेवालेको ही अधिक लाभ रहता था। इस परमार्थकी भावनासे ब्रह्मजीवी महात्माओंके लिये भिक्षाका विधान किया गया था। यथार्थमें यह भिक्षा उचित भी थी, शास्त्रसम्मत भी।

आजकल दान-वृत्तिसे अनुचित लाभ उठानेवाले अनेक अकर्मण्य भिखमंगे, ठग, दुष्ट व्यक्ति लोगोंको ठगते फिरते हैं। वे स्वयं तो परिश्रम करना नहीं चाहते, मुफ्तका माल उड़ाना चाहते हैं। इनमें कष्ट-पीड़ितोंकी संख्या तो अल्प होती है, अधिकतर तो वे ही व्यक्ति होते हैं, जो दूसरोंके श्रमका अनुचित लाभ उठाते हैं; धर्मके नामपर नाना प्रकारके आडम्बर, घृणित मायाचार और असत्य व्यवहारकर भिक्षावृत्ति करते हैं। इससे समाजमें विषैला, अनिष्टकारी वातावरण फैलता है। ऐसा करनेसे झूठ, पाखण्ड, ढोंग, नशेबाजी फैलती है। अतः हमारा यह कर्तव्य है कि धर्मके नामपर मुफ्तका माल उड़ानेवाले इन ठगोंसे सावधान रहें।

सत्पात्रको, जरूरतमंदको, अपंग, अपाहिज, कुछ काम न कर सकनेवाले बीमारको अवश्य दान करें। जितना सम्भव हो, जैसे सम्भव हो, सहायता करें। हमारे यहाँ कहा गया है—

दानशूरो विशिष्यते।

'दानवीर पुरुष ही अन्य सब पुरुषोंसे विशिष्ट है।'

पाणिनिके 'चतुर्थी सम्प्रदाने' सूत्रका रहस्य

(श्रीउदयनाथजी अग्निहोत्री)

वैय्याकरण-शिरोमणि महर्षि पाणिनिने अष्टाध्यायीमें सूत्रोंका सृजन करके देववाणीको सुसंस्कृत किया है। लाखों वर्षोंपूर्व सृजित पाणिनि-व्याकरण अद्यावधि अपरिवर्तनीय है। उन्हीं सूत्रोंमें '**चतुर्थी सम्प्रदाने**' एक सूत्र है। कारक-प्रकरणमें इस सूत्रका सामान्य अर्थ यही है कि सम्प्रदानकारकमें चतुर्थी विभक्ति हो।

परंतु इस सूत्रका बहुत बड़ा गूढ़ रहस्य है। सम्प्रदान शब्दमें सम् तथा प्र उपसर्ग हैं, जिनका अर्थ है—सम्यक् तथा प्रकृष्ट। महर्षि पाणिनिने आध्यात्मिक अर्थके गूढ़ रहस्यको इंगित करते हुए बताया है कि सम्यक् और प्रकृष्ट दानसे ही चतुर्थी अवस्था प्राप्त होती है।

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय—ये चार अवस्थाएँ होती हैं। तुरीय (चतुर्थी) अवस्था सम्यक् और प्रकृष्ट दानसे ही प्राप्त होती है। सम्यक्-प्रकृष्ट दानका अर्थ है कि सम्यक् साधनाद्वारा प्रकृष्ट मन, इन्द्रियों और प्राण को बुद्धिमें लय कर देना, अर्थात् प्राणमय, मनोमय कोषको विज्ञानमय कोषको दान करना। फिर विज्ञानमय कोषको आनन्दमय कोषको दान कर देना—केवल चेतनमात्र रहना चतुर्थीप्राप्ति है। तुरीय-अवस्था—संवित्‌को प्राप्तकर उसीमें निमग्न रहना चतुर्थी सम्प्रदानेका गूढ़ अर्थ है।

सम्यक् सर्वथा प्रकृष्ट अपनी बाह्य वस्तु—धनधान्य-भूमि-भवनादि सम्पत्तिका दान करके अन्तर्मुखी वृत्तिमें रहना चतुर्थीकी प्राप्ति है।

प्रणवके अकार, उकार, मकारको अर्धचन्द्राकार विशुद्ध चेतन बिन्दुमें लय करना चतुर्थीकी प्राप्ति है। इत्यादि कई गूढ़ रहस्योंका संकेत इस 'चतुर्थी सम्प्रदाने' में प्राप्त होता है।

दान (त्याग)-के बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते, अतः बाह्य वस्तुओं और आभ्यन्तरिक दूषित संस्कारोंका दान (परित्याग) बहुत आवश्यक है।

सबसे बड़ा दान अपने 'अहं' का दान है, जहाँ जीवत्व समाप्त होकर '**अहं ब्रह्माऽस्मि**' का स्वरूप प्राप्त होता है।

ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी पराकाष्ठा सर्वोपरि दान है, जिससे चतुर्थ तत्त्व—साकार चेतन राम, कृष्ण, शिव, शक्ति आदि सघन साकार चेतन तत्त्वका साक्षात्कार होता है। अतः चतुर्थी सम्प्रदानेमें दानकी विशेष महिमा बतायी गयी है।

दानधर्मके आदर्श चरित एवं प्रेरक-प्रसंग

भगवान्‌द्वारा प्रदत्त दानके कुछ रोचक प्रसंग

(स्वामी डॉ० श्रीविश्वामित्रजी महाराज)

शास्त्रोंमें दानकी अपार महिमाका प्रतिपादन है। दान यदि कर्तृत्वाभिमानसे रहित होकर दिया जाय, तो अन्तःकरण पवित्र होता है, इसीलिये दानको आत्मशुद्धिका श्रेष्ठ साधन बताया गया है। किसी अभावग्रस्तको—जरूरतमन्दको उसके अभाव या आवश्यकताकी आंशिक अथवा पूर्णपूर्तिके लिये कुछ देना दान कहलाता है। इसका दयासे, संवेदनशीलतासे तथा उदारतासे गहरा सम्बन्ध है। देनेका सामर्थ्य होनेपर भी हरेकका स्वभाव देनेका नहीं होता। गाँवमें तोतोंको यह बोलना सिखाया जाता था—

'लटपट पंछी चतुर सुजान, सब का दाता श्री भगवान।'

रहीमजी किसी जरूरतमन्दको देकर सिर झुका लेते। किसीने कारण पूछा? कहा—

देनहार कोउ और है देत रहत दिन रैन।
लोग भरम मो पै करें या ते नीचे नैन॥

कबीर साहिबकी वाणी भी ऐसा ही सन्देश देती है—

न कुछ किया न कर सका न कुछ किया शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया कहत कबीर कबीर॥

(१)

भगवान् अपनी दयालुताके कारण जीवको सदा कुछ देते ही रहते हैं और समर्थ मनुष्यको यह सन्देश देते हैं कि तुम भी लाचार और विवश प्राणियोंको तन-मन और धनसे कुछ देकर उनके इस कार्यमें सहभागी बनो, यहाँ इसी भाव-बोधकी कुछ घटनाएँ प्रस्तुत हैं—

बहुत समय पहलेकी बात है—एक सन्त अन्य साथियोंके साथ बदरीनाथजीके दर्शनार्थ जा रहे थे। मार्गमें पाचन बिगड़ गया, कई बार मल-त्यागके लिये रुकना पड़ता। साथियोंको असुविधा होने लगी, धीरे-धीरे वे साथ छोड़ आगे बढ़ने लगे। सन्त प्रतिदिन दुर्बल होते गये। अन्ततः जंगलमें एक छोटी-सी गुफामें गिर गये। इतना कष्ट होते हुए भी रामनाम-स्मरण सतत चलता रहा। मन-ही-मन प्रभुसे अरदास की—'यदि यही तेरी इच्छा है तो यही पूर्ण हो, रोग-रूपमें तेरा हार्दिक स्वागत है।' फरियाद करते-करते आँख लग गयी। अगले दिन सुबह ही एक वृद्ध हाथमें दही-भातका कटोरा और दूसरेमें दवाईकी पुड़िया लिये पधारे, बोले—'यह खा लो, जल्दी ठीक हो जाओगे।' सन्तने वृद्धकी ओर ध्यानसे देखा, पहचाननेकी कोशिश की, पर निष्फल। भारी कमजोरीके कारण दृष्टि धुँधली थी। दवा-दही-खिचड़ी खा ली। वृद्धने कहा—'कल फिर आऊँगा, तीन दिनकी अवधि है, पूरा कर लो तो पूर्णतया स्वस्थ हो जाओगे।' सन्त निरन्तर राम-राम भी जपते रहते तथा सोचते भी रहते—यहाँ सेवा-दान करनेवाला कौन है यह? आखिर पूछ ही लिया—'कौन हैं आप?' 'पहले ठीक हो जाओ, फिर पूछना—लो, दवाई खा लो।' 'नहीं, पहले बताओ।' 'न बताऊँ तो?' 'मैं दवाई न खाऊँ तो?' 'मत खाओ, मैं जाता हूँ,' ऐसा कहकर वृद्ध चले गये। थोड़ी देर बाद लौट आये कहा, 'तुम दवा खा लो तो मैं जाऊँ।' सन्तने कहा—'आप मेरे प्रश्नका उत्तर दो तो मैं दवा खाऊँ।' मधुर वार्तालापपर वृद्ध मुसकराये और चतुर्भुजरूपमें प्रकट हो गये। सन्त श्रीचरणोंपर मस्तक नवाकर बोले, 'इतने सुनसान, निर्जन वनमें आपके अतिरिक्त कौन आ सकता है? हे प्रभु! क्या आप स्वयं दौड़-दौड़कर इसी प्रकार भक्तोंको सेवा-दान देते हैं?' 'प्रिय भक्त! जब कोई मिल जाता है, तो उसके मनमें सेवाकी प्रेरणा भर देता हूँ, परंतु यदि कोई नहीं मिलता तो स्वयं सेवाके लिये उपस्थित हो जाता हूँ।' मनमोहक, रोचक वार्तालाप, जीवनको परमानन्दसे परिपूरित करके प्रभु अन्तर्धान हो गये। परमेश्वरके इस आश्वासनसे तथा सन्त रहीम एवं कबीरके उक्त कथनोंसे यही सुस्पष्ट होता है—

दाता एक राम, भिखारी सारी दुनिया।
नाम एक औषधि, दुखारी सारी दुनिया।
राम एक देवता, पुजारी सारी दुनिया॥

(२)

पुरानी बात है, एक सेठ थे; नाम था मलूकचन्दसेठ। मलूकचन्दकी कोठीके पास एक मन्दिर था। एक रात्रि किसी विशेष उत्सवपर देरतक भजन-कीर्तन होता रहा, सेठ रात्रिभर सो न सके। प्रातः पुजारीको खूब डाँटा—'नींद न आये तो दिनको कमाना कैसे? न कमाये तो खाये कहाँ से?' 'भगवान् बैठे हैं खिलानेवाले सेठजी! तब क्या चिन्ता? निमित्त होता है पतिका कमाना, पत्नीका भोजन बनाना, सबका दाता-पालनहार तो वह 'राम' ही है।' 'क्या वह एक-एकको आकर खिलाता है? हम नहीं खाते उसका दिया, स्वयं कमाके खाते हैं। यदि वह खिलाता है तो उसे बोलो—मुझे खिलाके दिखाये। यदि २४ घण्टेके अन्दर-अन्दर न खिलाया तो तुम्हारी गरदन कटवा दूँगा।' पुजारी आँखें मूँद परमेश्वरसे करबद्ध प्रार्थना करते हैं—'हे राम! अपने नामकी एवं मेरी लाज रखना।' कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णको एकबार भोजनके लिये देरी हो गयी। रुक्मिणीने कारण पूछा? कहा—'कोई एक भोजन खानेवाला रह गया था।' 'क्या आपने सबका पेट भरनेकी जिम्मेदारी ले रखी है?' 'हाँ' रुक्मिणीको विश्वास न हुआ, एक कीड़ा पकड़कर उसे अपनी सिन्दूरकी डिब्बीमें बन्द कर दिया। अगले दिन प्रभु भोजन करने लगे तो पूछा—'क्या सबको खिला आये?' 'हाँ, खिला आया'—द्वारकाधीशने उत्तर दिया। पर क्या तुम्हें विश्वास नहीं? 'नहीं' डिबिया उठा लायी, खोली देखा तो कीड़ेके मुखमें चावलका दाना। चावलका वह दाना डिबिया बन्द करते समय रुक्मिणीजीके तिलकसे डिबियामें जा पड़ा था। भगवान् मुसकराये कहा—'रुक्मिणी! जो केवल मुझपर निर्भर है, उसके भोजनका क्या, सब कुछका दायित्व मुझपर है।'

सेठ मलूकचन्द घोर जंगलमें विशाल पेड़की ऊँची डालपर जा बैठा। कुछ समय बाद एक यात्री आया, थोड़ा आराम किया वृक्षके नीचे, चलते समय अपना थैला भूल गया। थोड़ी देर बाद पाँच डाकू आये। एकने कहा—'देखो तो थैलेमें क्या है? ओ! स्वादु भोजन!' दूसरेने कहा—'पुलिसका षड्यन्त्र है या किसी व्यक्तिका?' पेड़पर व्यक्ति दिखा, निश्चय हुआ, इसीकी चाल है। नीचे उतरनेको कहा, पूछा—क्या भोजन तूने रखा है? 'नहीं' जबरदस्ती नीचे उतारा, 'ले, भोजन खा।' 'नहीं खाऊँगा।' डाकुओंने सेठको थप्पड़-मुक्के मारे, भोजन खाना पड़ा। स्वीकारते हुए कहा—'मान गये मेरे बाप!' चाहे किसी रूपमें खिला—पत्नी, भक्त या चोरोंके रूपमें—खिलानेवाला तू ही है। भागा पुजारीके पास धन्यवाद किया और कहा—पुजारी! जिसने खिलाया, उसे खोजूँगा। सेठ मलूकचन्द बन गये सन्त मलूकदास। इन सन्तके दर्शनमात्रसे कइयोंके जीवन बदले, सत्संगसे हजारों तर गये। गाया करते—*'कहत मलूकदास, छोड़ तैं झूठी आस, आनँद मगन होइ कै, हरि गुन गाव रे॥'* अपना अमूल्य अनुभव गुनगुनाया करते—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

इसका अर्थ यह नहीं कि हम पुरुषार्थ न करें। अजगर भी भोजन तलाश करता है, पंछी भी दाना चुगने जाता है, पर उतना ही ग्रहण करता है, उतना ही एकत्रित करता है, जितना मिल जाय तथा जितना आवश्यक हो। यह तो मनुष्य ही है, जिसने अपनी झोली फैला रखी है कि जीवनभर भरता रहता है तो भी नहीं भरती—लोभके कारण—

सब जग मारा लोभ ने द्रोह द्वेष ने जान।
इन्हीं को मारे जो जन वही सूरमा मान॥

(भक्तिप्रकाश)

लोभ-जैसी दुर्जेय वृत्तिको शिथिल करने तथा इसपर विजय प्राप्त करनेका सर्वश्रेष्ठ साधन है 'दान'।

सन्त मलूकदासकी गाथा एवं अन्य सन्तोंके कथन भलीभाँति स्पष्ट करते हैं कि भगवान् ही एकमात्र दाता हैं। वे जिससे दिलवाना चाहें, वही देगा और जिसको दिलवाना चाहें, उसीको मिलेगा। यह तथ्य निम्नलिखित दृष्टान्तसे भी पुष्ट होता है—

(३)

मध्य भारतके सुलतान निजामुद्दीनके लिये प्रसिद्ध

था कि कोई उसके यहाँसे खाली हाथ न लौटता। दाता होनेका अभिमान चरम सीमापर। लोग प्रशंसामें कहते—*'जिसे न दे भगवान् उसे देता है सुलतान।'* इस चापलूसीसे प्रसन्न होकर सुलतान इतना देता कि याचकको दुबारा माँगना न पड़ता। बाबा मस्तराम रोज भिक्षा माँगकर खाते, किसीने कहा—'बाबा! एक बार सुलतानसे माँगो और रोज-रोज माँगनेका चक्कर खत्म करो।' बस, उसके द्वारपर इतना ही कहना—*'जिसे न दे भगवान् उसे देता है सुलतान।'*

बाबा जोरसे ठहाका मार हँसे और कहा—पागल है वह, घमण्डी कहींका, वह है कौन किसीको देने वाला? अरे! *जिसे न देते भगवान्, उसे क्या देगा, कैसे देगा सुलतान?* बात सुलतानतक पहुँची, बुरी लगी, योजना बनायी। सुलतान एक ग्रामीणके वेशमें बैलगाड़ीमें तरबूज भरकर उसी मार्गपर बैठ गया जिधरसे बाबा नित्य निकलते। जैसे ही बाबा दिखे, झटसे एक बढ़िया तरबूज बाबाको दे दिया। वापस लौट, ध्यानमें बैठ गये बाबा। एक यात्री आया, उसके पास भी तरबूज था, पर छोटा। परिवारवाला था, अत: मनमें विचार आया, बाबा अकेले इतने बड़े तरबूजका क्या करेंगे? छोटा ले लें। बाबा तुरंत बोले—'भाई! यह तरबूज आप ले जाओ, छोटा इधर रख जाओ। मैं अकेला, तुम अनेक।' बाबाने तरबूज काटा अति मीठा। उधर घर जाकर यात्रीने भी काटा, तरबूज भीतर हीरे-मोतियोंसे भरा हुआ था। अति प्रसन्न; अकस्मात् पूँजी पाकर धनवान् हो गया। बाबाकी जय, सब उनकी कृपाका प्रताप है। अगले दिन बाबा पुन: भिक्षाके लिये निकले। देखकर सुलतान चकित—'इतना धन पाकर अब भीख माँगनेकी क्या जरूरत?' 'कौन-सा धन?' 'वही जो कल तरबूजमें भरकर दिया था।' बाबा खूब जोरसे हँसे बोले—'सुलतान! *जिसे न दे भगवान् उसे क्या देगा सुलतान?* घमण्ड छोड़ो, देनेवाला मात्र ईश्वर है, सुलतानकी क्या हस्ती कि वह बिना रामेच्छा किसीको कुछ दे दे? यदि तुम देते हो तो रामेच्छासे और जिसके लिये दिया है रामने उसीके पास जाता है।' सारी घटना सुनायी। सुलतानके मुखसे सहसा निकला *'दाता रामकी जय हो।'*

(४)

एक गृहस्थका नियम था कि किसी महात्माको खिलाकर ही स्वयं खाते। एक दिन जो महात्माजी आये, उन्होंने भोजनसे पूर्व गोग्रास नहीं रखा, भगवान्‌को भोग भी नहीं लगाया। गृहस्थके याद दिलानेपर साधुने कहा—'बहुत दिनोंतक उसे ढूँढ़नेकी चेष्टा की, अब समझमें आया कि भगवान् है ही नहीं। अत: मैं भोगादि नहीं लगाता।' गृहस्थने परोसी हुई थाली ली और कहा—'आप-जैसे नास्तिकको खिलाकर मैं पाप-संग्रह नहीं करना चाहता।' उसी समय आकाशवाणी हुई—'अरे! यह तो बहुत समयसे मुझे नहीं मानता, पर अबतक मैं इसे रोज भोजन खिलाता रहा और तुम मुझे माननेवाले होकर एक दिन भी इसे नहीं खिला पाये। यह कैसी नासमझी है?'

(५)

एक चोरने चोरी की, कुछ न मिला, भारी वर्षा, पुलिस पीछा कर रही है। भागता-भागता चोर एक सन्त-कुटीरपर पहुँचा, दस्तक दी। भीतरसे पूछा—'कौन है?' सन्तके साथ झूठ नहीं बोलना चाहिये, अत: सच-सच कहा—'चोर हूँ।' 'भाग यहाँसे।' 'बाबा! क्या यह सच बोलनेका दण्ड है?' 'कुछ भी समझो, मैं कुटियामें घुसने नहीं दूँगा।' पुलिस पीछे लगी है, चोर रोने लगा, तभी आकाशवाणी हुई—'तुम्हें आज पता चला, मुझे तो कबसे पता है कि यह चोर है, फिर भी मैंने इसे अपने संसाररूपी घरसे निकाला नहीं, धरतीपर रहने दे रहा हूँ, तू एक रात रख लेता तो तेरा क्या बिगड़ जाता? मैं कबसे इसे सपरिवार पेटभर भोजन दे रहा हूँ।' इसका अर्थ स्पष्ट है—राम देते समय आस्तिक-नास्तिक, अच्छा-बुरा, पापी-पुण्यात्मा है, नहीं देखते, प्रेमपूर्वक सबको बाँटते हैं। ऐसा प्रेम यदि हमारे हृदयमें भी हो तो प्रभु राम हमपर अति प्रसन्न हों।

(६)

बाल्यावस्थाके सखा सुदामा अपने प्रिय मित्र द्वारकाधीशके दर्शनार्थ पधारे हैं। दरिद्र हैं, अत: द्वारपाल भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेसे रोकता है, परंतु 'सुदामा' शब्द सुनते ही प्रभु भागे और उन्हें अपने साथ लाकर सिंहासनपर आसीन कर लिया। पूछा—'भाभीने क्या भेजा

है मेरे लिये?' रानियाँ उपहास करें—यह क्या लायेगा? बगलमेंसे पोटली छीन, उसमेंसे तन्दुल (चिउड़े) चबाकर

मित्रकी दरिद्रताका भक्षण कर लिया। मस्तकपर लिखे कुलेख—'श्रीक्षय' अर्थात् दारिद्र्यको सुलेखमें बदल दिया—'यक्षश्री' कर दिया। 'सुदामा! तेरे पास इतनी पूँजी-सम्पत्ति होगी, जितनी कुबेरके पास।' सुदामापुरी भी वैसी ही भव्य एवं सुन्दर जैसी द्वारकापुरी। कैसे विलक्षण दाता हैं श्रीभगवान्!

(७)

यह सर्वविदित है, सर्वमान्य है तथा सभीका अनुभव भी है कि बन्देके देनेसे अल्पकालिक राहत तो मिलती है, परंतु स्थायी शान्ति तो तभी मिलती है, जब परमात्मा अपनी मंगलमयी कृपासे स्वयं देते हैं। इस रोचक एवं सुन्दर आख्यायिकासे यह यथार्थता भलीभाँति निरूपित होती है—

एक मारवाड़ी सेठका विपुल सम्पत्ति छोड़कर निधन हुआ। इकलौता पुत्र दुराचारी निकला, कुव्यसनों एवं कुकृत्योंमें सारा धन बरबाद कर दिया। कंगाल-सा हो गया, घरमें भोजनके लिये भी कुछ न बचा। एक दिन पत्नीने कहा—'स्वामिन्! कुछ मैं करती हूँ, कुछ आप करें तो दो समयकी रोटी हमें मिल जाया करेगी।' स्त्रीने सूत कातने, आटा पीसने एवं धान कूटनेका काम शुरू किया और पति जंगलसे घास-लकड़ी काटने तथा मजदूरी करने लगा। कड़ी मेहनतका तनिक भी अभ्यास नहीं था, एक दिन थका-माँदा, भाग्यके ऐसे क्रूर परिवर्तित हथकण्डे देखकर फूट-फूटकर रोने लगा। उसी समय श्रीभगवान् लक्ष्मीजीके संग विचरते हुए निकले। बिलखते हुए युवकको देख लक्ष्मीजीने कहा—'प्रभु! देखो, मेरे बिना जीवका कैसा हाल होता है, जब पास थी, तब क्या था, अब नहीं हूँ, तब क्या है?' श्रीनारायणने कहा—'नहीं लक्ष्मी! ये दुर्दशा तेरे कारण नहीं, मेरी कृपा सिरसे उठ जानेके कारण है। यदि तू नहीं मानती तो इसे पुनः धनी बनाकर देख ले।' लक्ष्मीने बोझ उठाये युवकके आगे दो लाल (माणिक) फेंके, युवकने उन्हें जेबमें डाला, रास्तेमें प्यास बुझानेके लिये नदी-किनारे झुका, लाल पानीमें गिर गये। खानेवाली वस्तु समझ मछली उन्हें निगल गयी। खाली हाथ घर, पत्नीसहित पश्चात्ताप। अगले दिन पुनः जंगलमें, आज माँ लक्ष्मीने मोतियोंकी माला फेंकी, उठाकर पगड़ीमें रखी, स्नानके लिये नदीमें उतरते समय पगड़ी उतारकर रख दी, हारसहित पगड़ी चील उठाकर उड़ गयी। पुनः खाली हाथ घर। तीसरे दिन फिर वनमें, आज अशर्फियोंकी थैली रखी माँने, उठायी और सीधे घर। पत्नी घर नहीं, थैली रखकर उसे बुलाने गया। देर लगी, पड़ोसिन उठाकर ले गयी। पुनः खाली, चौथे दिन जंगलमें घास काटते देख लक्ष्मीने कहा—'हे प्रभो! मैं हार गयी, अब आप ही कुछ करें।' भगवान्ने ताँबेके दो सिक्के फेंके, युवकने माथेपर लगाये। घर लौटते समय मछुआरेसे एक पैसेकी मछली खरीदी। एक पेड़पर चढ़ा, सूखी लकड़ीकी टहनी काटने लगा, तो एक घोंसला दिखा, उसमें हार-सहित अपनी पगड़ी दिखी, उठायी, प्रसन्नतापूर्वक घर पहुँचा, ऊँचे स्वरसे पुकारा—'सुलक्षणी, सुलक्षणी! जो खोई थी, मिल गयी।' पड़ोसिनने आवाज सुनी, अपमान-दण्डसे भयभीत, मिलनेके बहाने आयी और थैली वापस रख गयी। दोनों प्राणी अपार हर्षित, भोजनकी तैयारी, मछली काटी, पेटसे लाल निकले। आनन्द-ही-आनन्द छा गया। परमेश्वर-कृपाका चमत्कार।

संसारसे तो भीख मिलती है, वस्त्र मिलते हैं, भोजन मिलता है, धन-भूमि एवं अन्य पदार्थ मिलते हैं। संसारी दान तो दे सकते हैं, परंतु दीनता-दरिद्रता नहीं मिटा सकते, जन्म-जन्मकी भूख-प्यास नहीं मिटा सकते, वह राम-कृपासे सब कुछ दे सकनेवाले उस दाताके देनेसे ही मिटेगी। अतएव माँगना है तो भगवान्से माँगो, अन्यत्र माँगोगे तो माँगनेकी आदत पड़ जायगी, भिखमंगे बन जाओगे। भीख माँगना व्यवसाय बन जायगा। प्रभुसे माँगोगे तो माँगनेकी इच्छा ही मिट जायगी।

दानके प्रेरक प्रसंग

१. अहंकारका दान

एक महात्मा किसी धार्मिक राजाके महलमें पहुँचे। उन्हें देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'आज मेरी इच्छा है कि मैं आपको मुँहमाँगा उपहार दूँ।' महात्माने कहा 'आप स्वयं ही अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तु मुझे दान कर दें, मैं क्या माँगूँ?' राजाने कहा—'मैं आपको राजकोष अर्पित करता हूँ।' महात्माने कहा—'वह तो प्रजाजनोंका है, आप तो मात्र संरक्षक हैं।' राजाने दूसरी बार कहा—'महल-सवार आदि तो मेरे हैं, आप इन्हें ले लो।' महात्मा हँस पड़े और बोले, 'राजन्! आप क्यों भूलते हैं, यह सब प्रजाजनोंका ही है, आपको कार्यकी सुविधाके लिये दिये गये हैं।' अब राजाने कहा—'मैं यह शरीर दान कर दूँगा, यह तो मेरा है।' महात्माने कहा—'यह भी आपका नहीं है, एक दिन आपको इसे भी छोड़ना होगा। यह पंचतत्त्वमें विलीन हो जायगा, इसलिये इसे आप कैसे दे पायेंगे?' अब राजा चिन्तामें पड़ गया। महात्माने कहा—'राजन्! मेरी एक बात मानें। आप अपने अहंकारका दान कर दें। अहंकार ही सबसे बड़ा बन्धन है।' अहंकार दानमें देकर राजा दूसरे दिनसे अनासक्त योगीकी भाँति रहने लगा, उसके जीवनमें नये आनन्दकी वर्षा होने लगी।

२. सबसे बड़ा दान

पट्टन साम्राज्यके महामन्त्री उदयनके पुत्र बाहड़ शत्रुंजय तीर्थका पुनरुद्धार कराना चाहते थे ताकि दिवंगत पिताकी अपूर्ण इच्छा पूरी कर सकें। तीर्थोद्धारका कार्य प्रारम्भ हुआ तो जनताने भी मन्त्रीसे अनुरोध किया, 'आप समर्थ हैं, लेकिन हमें भी इस पुण्यकार्यमें भाग लेनेका अवसर प्रदान करें।'

जनताकी प्रार्थना स्वीकार हो गयी। सबने अपनी-अपनी शक्ति और श्रद्धाके अनुसार धन दिया। धीरे-धीरे तीर्थका उद्धार हो गया। अन्तमें आर्थिक सहायता देनेवालोंकी नामावली घोषित की गयी। नामावली देखकर लाखों मुद्रा देनेवाले अत्यन्त चकित हुए; क्योंकि सहायता देनेवालोंमें भीम नामक एक मजदूरका नाम सबसे पहले था। उसने केवल सात पैसेकी सहायता दी थी। मन्त्रीने सम्पन्न लोगोंका रोष लक्षित कर लिया और सहज भावसे बोले—'भाइयो! मैंने स्वयं और आप सबने तीर्थके उद्धारमें जो कुछ दिया है, वह हमारे धनका महज एक ही भाग है। लेकिन भीम, पता नहीं कितने दिनोंके परिश्रमके बाद ये सात पैसे बचा पाया था, उसने तो अपना सर्वस्व दान कर दिया है, अतः मेरे विचारसे उसका दान ही सबसे बड़ा दान है। इसलिये यह निर्णय करनेमें मुझसे भूल तो नहीं हुई?' निर्णयसम्बन्धी इस विवेचनके बाद कोई ऐसा नहीं था, जो आपत्ति उठा सकता।

३. दानका फल

गर्मीके दिन थे, धूप तेज थी, पृथ्वी जल रही थी, महाराज भोजके राजकवि किसी आवश्यक कार्यको सम्पन्न करके नगरकी ओर लौट रहे थे, मार्गमें उन्होंने देखा एक दुर्बल मनुष्य नंगे पैर लड़खड़ाता हुआ चल रहा है। उसके पैरोंमें सम्भवतः छाले पड़ गये थे, बार-बार दीर्घ श्वास लेता और दौड़नेका प्रयत्न करता, किंतु अपनी दुर्बलताके कारण चल नहीं पाता। कविके सुकुमार हृदयसे यह देखा नहीं गया। आज वे भी पैदल ही थे, परंतु उस पुरुषके पास जाकर उन्होंने अपने जूते उतार दिये और बोले—'तुम इन्हें पहन लो।' कभी नंगे पैर चलनेका अभ्यास नहीं था, कविको लगा कि वे मार्गमें ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ेंगे। उनके पैरोंमें शीघ्र ही छाले पड़ गये, परंतु वे एक दुःखी प्राणीकी सेवा करके प्रसन्न थे। उसी समय राजाके हाथीको महावत उधरसे लेकर आ रहा था। राजकविको वह पहचानता था, उसने उन्हें हाथीपर बैठा लिया। संयोग ऐसा हुआ कि उसी समय राजा भोज भी नगरमें निकले थे। नगरमें प्रवेश करते ही कवि और
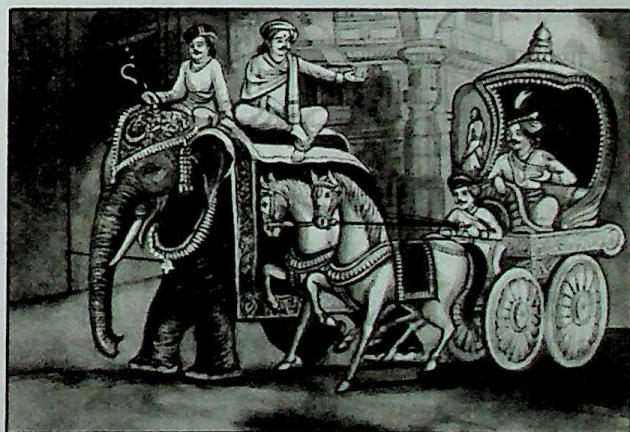
नरेशकी भेंट हो गयी। नरेशने हँसते हुए पूछा—'आपको मेरा यह हाथी कहाँ मिल गया?' कविने उत्तर दिया—

'राजन्! किसी जरूरतमन्दके लिये मैंने अपने पुराने जूते उतार दिये, उस पुण्यसे इस हाथीपर बैठा हूँ। जिस द्रव्यका दान नहीं हुआ, उसे तो व्यर्थ ही नष्ट हुआ समझें।' कविकी यह वाक्पटुता उन्हें अच्छी लगी। उदार नरेशने हाथी कविको ही दे दिया।

४. दानका महत्त्व

गौतम बुद्धने मगधकी राजधानीमें कई दिन उपदेश दिये। जब वे मगधसे आगे बढ़ने लगे तो कई भक्तगण उन्हें भेंट देनेके लिये आये। एक वृक्षके नीचे बने हुए ऊँचे चबूतरेपर शान्तचित्त बुद्ध बैठ गये। वे हर भक्तकी भेंट स्वीकार कर रहे थे, उसी समय धोती लपेटे एक वृद्धा आयी। उसने काँपती हुई आवाजमें कहा—भगवन् मैं एक गरीब बुढ़िया हूँ, मेरे पास आपको भेंट देनेके लिये अधिक कुछ भी नहीं है, मुझे आज एक छोटा-सा आम मिला, तभी पता चला कि तथागत आज दान ग्रहण करेंगे। अतः मैं वह आम आपके चरणोंमें भेंट करने आयी हूँ। भगवन्! यही मेरी एकमात्र सम्पत्ति है। कृपाकर इसे आप स्वीकार करें। गौतम बुद्धने अपनी अंजलिमें वह छोटा-सा आम इस प्रकार प्रेम और श्रद्धासे रख लिया, मानो कोई बहुत बड़ा रत्न हो। वृद्धा सन्तुष्ट भावसे लौट गयी। मगधके राजा बिम्बसार यह देखकर चकित रह गये। उन्हें समझमें नहीं आया कि भगवान् बुद्ध वृद्धाका आम प्राप्त करनेके लिये आसन छोड़कर नीचेतक हाथ पसारकर क्यों आये? उन्होंने भगवान् बुद्धसे पूछा—भगवन्! इस वृद्धामें और इसकी भेंटमें ऐसी क्या विशेषता है? बुद्ध मुसकुराते हुए बोले—राजन्! इस वृद्धाने अपनी सम्पूर्ण संचित पूँजी मुझे भेंट कर दी है, जबकि आप लोगोंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिका केवल एक छोटा भाग ही मुझे भेंट किया है, वह भी दानके अहंकारमें डूबे हुए आप अपनी बग्घी-घोड़ेमें चढ़कर आये और देखिये उसके मुखपर कितनी करुणा, कितनी नम्रता थी। युगों-युगोंके बाद ऐसा दान मिलता है राजन्!

[प्रेषिका—सुश्री उमा ठाकुर]

प्रेरक-प्रसंग—

दानकी साधना

एक नगरमें एक सन्त रहते थे। वे प्रसन्न रहते और सात्त्विक जीवन जीते थे। अपनी जीविका चलानेके लिये टोपियाँ सिलकर बेचते और जो भी आमदनी होती, उसमेंसे एक पैसेकी बचत करके दान कर दिया करते थे।

सन्तकी कुटियाके सामने ही एक सेठजी रहते थे। सन्तको इस तरह दान करते देख सेठजीके मनमें भी एक बात आयी और उन्होंने भी अपनी कमाईसे कुछ राशि निकालकर अलग रखनी शुरू कर दी। जब कुछ राशि जमा हो गयी तो उन्होंने सन्तसे जाकर पूछा—'महाराज! मैं राशिका क्या करूँ?' सन्त बोले—'इसे दीन-दुःखियोंको बाँट दो।'

सन्तके कहे अनुसार सेठजीने वह राशि एक गरीब दुर्बल व्यक्तिको दे दी। सेठजीको आशीर्वाद देता हुआ वह चला गया। सेठजीने वह दान सहज रूपसे नहीं दिया था, केवल सन्तको दान देते देखकर उनके मनमें ऐसी भावना जाग्रत् हुई थी। इसलिये सेठजी उस व्यक्तिके पीछे यह देखने चल पड़े कि आखिर वह व्यक्ति मेरे दिये हुए पैसोंको किस तरह खर्च करता है। सेठजीने देखा कि उस व्यक्तिने उन रुपयोंको गलत वस्तुओंके खरीदनेमें खर्च किया। सेठजीने जब अपनी राशिका इस तरह दुरुपयोग होते देखा तो उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने पूरी बात सन्तको आकर बतायी। तब सन्तने उन्हें अपनी आमदनीका एक पैसा देकर कहा—जाओ, इसे किसी आवश्यकतावालेको दे देना और कल अपनी बातका उत्तर लेकर आना। सेठजीने वह एक पैसा भिक्षा माँग रहे एक व्यक्तिको दे दिया और परिणाम जाननेके लिये वे उत्सुकतासे उसके पीछे चल दिये। उन्होंने देखा कि उस व्यक्तिने अपनी झोलीसे एक चिड़िया निकाली एवं उसे खुले आसमानमें छोड़ दिया और उस एक पैसेसे चने खरीदकर खाये। सेठसे रहा न गया, आगे बढ़कर उन्होंने उस भिखारीको रोका और पूछा 'तुमने ऐसा क्यों किया?' वह भिखारी बोला—'मैं भूखा था, आज कुछ भिक्षा न पाकर मैं चिड़िया पकड़कर लाया था कि भूनकर खा लूँगा, लेकिन जब मुझे एक पैसा मिल गया तो मैंने सोचा कि मैं हत्या क्यों करूँ?' यह पूरी घटना भी सेठजीने सन्तको सुना दी और दोनों घटनाओंका समाधान जानना चाहा। सन्तने कहा—'वत्स! महत्ता केवल दान देनेकी नहीं होती। हमने

जो दान दिया है, वह किस साधनासे प्राप्त किया है, यह भावना भी धनके साथ जुड़ जाती है। तुम्हारी अनीतिकी कमाई और बिना परिश्रमका पैसा पाकर उस व्यक्तिने उसे अनीतिके कार्योंमें लगा दिया और इसमें तुम्हें भी उसका भागीदार होना पड़ेगा और मेरा मेहनतका पैसा जिसके पास गया, उसने उस धनका उचित उपयोग किया। दान करना एक पुण्य कार्य है। दान वह है, जो दानदाता विनम्र और नि:स्वार्थ होकर देता है। अपने यशके लिये दिया गया दान, दान न होकर एक व्यवसाय होता है।' (मानस वन्दन) **[प्रेषक—श्रीजगदीशचन्द्रजी सोनी]**

दानसम्बन्धी कुछ प्रेरक आख्यान

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

भारतीय सनातन संस्कृति त्याग, सेवा, सहायता और परोपकारको सर्वोपरि धर्म निरूपित करती रही है, वेदमें कहा गया है—**'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर'** सैकड़ों हाथोंसे धन अर्जित करो और हजारों हाथोंसे उसे बाँटो। सद्गृहस्थों, शासकों तथा किसी भी वर्गके धनाढ्यके लिये कहा गया है कि यथाशक्ति प्रतिदिन दान करना चाहिये। **'दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्।'** दान ऐसा सशक्त साधन है कि उससे देवता भी वशमें हो जाते हैं।

ब्राह्मणों, असहायों, दरिद्रों, बीमारोंके हितार्थ दान देनेकी प्रेरणा दी गयी है। दान लेना ब्राह्मणका शास्त्रसम्मत अधिकार बताया गया है, किंतु साथ ही यह भी कहा गया है कि सत्पात्रको ही दान देना चाहिये, जो उसका दुरुपयोग न करे। ब्राह्मणके लिये धर्मशास्त्रोंमें यह भी कहा गया है—

वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेन्नेहेत धनविस्तरम्।
धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते॥

ब्राह्मणको भी आवश्यकतापूर्ति होनेलायक धनका ही दान लेना चाहिये, धन-संग्रहके लोभमें आसक्त ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाता है। मनमें दान लेनेकी प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये। मात्र जीवन-निर्वाहके लिये ही धन ग्रहण करना चाहिये।

हमारे धर्मप्राण भारतमें ऐसे असंख्य परम विरक्त त्यागी तपस्वी ब्राह्मण हुए हैं, जिन्होंने दान न लेकर उलटे विद्यादान-ज्ञानदानमें अपना जीवन खपा डाला। ऐसे असंख्य मनीषियों, त्यागी-तपस्वियों, ज्ञान-विद्यादानियोंके कारण ही भारत विश्वमें जगद्गुरुका सम्मान प्राप्त कर सका है। विभिन्न प्रकारके दानोंके पुण्य और उनके न करनेसे प्राप्त होनेवाली पापयोनियोंसे सम्बन्धित कुछ कथाएँ यहाँ दी जा रही हैं—

(१)
विद्यादान न करनेसे ब्रह्मराक्षसकी योनि मिली

पुराणोंमें यह भी कहा गया है कि प्रत्येक विद्वान् तथा शास्त्रज्ञ ब्राह्मणका परम धर्म है कि वह अपने ज्ञानका, विद्याका दान करता रहे। जो विद्वान् ब्राह्मण अपने इस धर्मका, कर्तव्यका पालन नहीं करता, उसे ब्रह्मराक्षस बनना पड़ता है।

श्रीरामानुजाचार्य श्रीयादवप्रकाश नामक परम विद्वान् तथा विरक्त गुरुके चरणोंमें बैठकर विद्याध्ययन करते थे। उन्हीं दिनों कांचीनरेशकी पुत्री अचानक प्रेतबाधासे पीड़ित हो गयी। अनेक मन्त्रज्ञ बुलाये गये, किंतु उसे प्रेतसे मुक्ति नहीं मिली। नरेशको पता चला कि पण्डितराज यादवप्रकाशजी यदि कृपा करें तो राजकुमारीको प्रेतबाधासे मुक्ति मिल सकती है। राजाने उन्हें आदरसहित कांची बुलवाया। अपने शिष्य रामानुजको साथ लेकर वे राजमहल पहुँचे। पण्डितजीने मन्त्र-प्रयोग किया। प्रेत बोला—'मैं सामान्य प्रेत नहीं हूँ, तू यदि जीवनभर भी मन्त्र-प्रयोग करे तो भी मेरा कुछ न बिगाड़ पायेगा।' श्रीरामानुजाचार्यको देखकर प्रेत मुसकराया। रामानुजजीने मन्त्र पढ़ा। उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मणवेशधारी राक्षस सामने है। उन्होंने पूछा—'ब्रह्मन्! आप तो ब्राह्मण हैं, विद्वान् हैं; फिर यह योनि क्यों भोगनी पड़ी?' ब्रह्मराक्षसने रोते हुए कहा—'मैंने शास्त्रोंका आदेश न मानकर विद्वान् होते हुए भी जीवनमें कभी विद्यादान नहीं किया। शास्त्रोंके वचनकी अवहेलनाके कारण ही मृत्युके बाद मुझे राक्षसयोनि मिली है। यदि आप मेरे मस्तकपर आशीर्वादका हाथ रख देंगे तो मैं इस योनिसे मुक्त हो जाऊँगा, रामानुजजीने

जैसे ही राजकुमारीके सिरपर हाथ रखा कि ब्रह्मराक्षस उस योनिसे मुक्त हो गया। राजकुमारी पूरी तरह स्वस्थ— सामान्य हो गयी।

(२)

भूखोंको अन्नदानसे सरस्वतीजी प्रसन्न हुईं

दक्षिण भारतके तिरुकलि क्षेत्रमें एक धनाढ्य विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उनकी पुत्री कुमुदवल्लभी अत्यन्त सुन्दरी तथा भगवान् विष्णुकी परम भक्त थी। वह प्राणिमात्रमें भगवान्‌का रूप देखती थी। इसलिये दु:खी व्यक्तिको देखते ही उसका हृदय करुणासे भर जाता था। प्रतिदिन भूखे व्यक्तियोंको भोजन करानेके बाद ही वह भगवान्‌का भोग लगाकर भोजन ग्रहण करती थी।

विवाहयोग्य आयु होनेपर पिताने वर ढूँढ़ना शुरू किया। कुमुदवल्लभीने शर्त रखी—'मैं उसीसे विवाह कर सकती हूँ, जो परम सात्त्विक एवं भगवान् विष्णुका भक्त हो तथा प्रतिदिन कुछ गरीबोंको भोजन करानेकी सामर्थ्य रखता हो।'

चोलनरेशका युवा सेनानायक तिरुमंगैयालवार परम धार्मिक तथा भगवद्भक्त था। उसके युद्धकौशलसे प्रभावित होकर राजाने उसे बहुत-सी भूमि दानमें दी थी। उसने कुमुदवल्लभीकी शर्त सुनी तो उसके पिताके पास पहुँचा। उसने दोनों शर्तें स्वीकार कर लीं। पिताने दोनोंका विवाह कर दिया। विद्वान् पत्नीकी प्रेरणासे तिरुमंगैयालवार विष्णु-भक्तिके पद रचने लगे। पति-पत्नी भूखोंको भोजन करानेके बाद भोजन करते। उन्होंने राजासे प्रार्थना करके सेनापति-पदसे मुक्ति पा ली।

देखते-ही-देखते जहाँ उन्हें सरस्वतीकी अनूठी कृपा प्राप्त हुई, वहीं लक्ष्मी रूठने लगीं। भूमिपर कुछ दुष्ट वृत्तिके लोगोंने अधिकार कर लिया। आयका साधन समाप्त हो गया। इसके बावजूद उन्होंने भूखोंको भोजन करानेका नियम भंग नहीं होने दिया। एक दिन आभूषण बेचकर जैसे ही भूखोंको भोजन कराया कि भगवान् विष्णु सामने खड़े दिखायी दिये। वे बोले—'भूखोंको भोजन करानेवाला कभी दरिद्र नहीं होता। तुम्हारे रचे पदोंसे लोग युग-युगोंतक भक्तिकी प्रेरणा लेंगे।'

आलवार कवि आज भी तिरुमंगैयालवाररचित पद गाते हैं तो भाव-विभोर हो उठते हैं।

(३)

नाम एवं यशके लिये दिया गया दान तामसिक होता है

धर्मशास्त्रोंमें यश अथवा अन्य सांसारिक कामनाके लिये किये गये दानको तामसिक तथा निम्न कोटिका बतलाया गया है।

सुगन्धपुरके राजा वज्रबाहुने धर्मशास्त्रोंमें लिखित सेवा-परोपकारके कार्योंमें धन लगाने और दान देनेके महत्त्वको जानकर राज्यमें खुलकर सेवा-परोपकारके कार्य शुरू करा दिये। उन्होंने राज्यके गाँवों तथा कस्बोंमें खुलकर धन खर्च करके तालाबों, कुँओं, औषधालयोंका निर्माण कराया। राजाके मन्त्रीने राजाको खुश करनेके लिये जगह-जगह अंकित करा दिया—'दानवीर राजा वज्रबाहुने इसका निर्माण कराया है।' चारों ओर राजाकी दानशीलताका डंका बजने लगा।

एक बार एक परम विरक्त संत धर्मप्रचार करते हुए सुगन्धपुर राज्यमें पधारे। उन्होंने जगह-जगह राजा वज्रबाहुकी दानशीलताकी प्रशंसाके वाक्य अंकित देखे।

राजा संतोंके सत्संगके लिये हर क्षण उत्सुक रहा करते थे। उन्हें पता चला तो मन्त्रीको रथ लेकर उनके पास भेजा। मन्त्रीने संतजीसे प्रार्थना की—आप राजमहल पधारकर राजपरिवारको आशीर्वाद देनेकी अनुकम्पा करें। संत परम विरक्त थे। उन्होंने कहा—शास्त्रोंके अनुसार साधुको किसीके घर नहीं जाना चाहिये। हम यहींसे उनके परिवार तथा राज्यकी जनताकी सुख-समृद्धिकी कामना करते हैं।

राजा संतकी विरक्तिसे और प्रभावित हुए। वे सपरिवार वनमें पहुँचे तथा साष्टांग प्रणामकर संतजीके चरणोंमें बैठ गये। उन्होंने कहा—'महाराज! मैंने दानकी महिमा जाननेके बादसे राज्यमें जगह-जगह कुएँ, तालाब, धर्मशालाएँ और औषधालय बनवाये हैं। हर क्षण प्रजाकी भलाईमें लगा रहता हूँ, फिर भी मन अशान्त रहता है।'

संतजीने कहा—'राजन्! जब मैं भिक्षा माँगने शहरमें आया तो मैंने देखा कि जगह-जगह दीवारोंपर, मन्दिरोंपर, शिलापट्टोंपर तुम्हारा नाम अंकित है। तुम्हारे नामका डंका बज रहा है। तुमने धन खर्च करके, दान करके सात्त्विक कार्य तो किया किंतु अपनेको 'दानवीर' दरशाकर, अहंकार प्रदर्शितकर अपने पुण्योंको क्षीण कर डाला है। नामकी, यशकी आकांक्षाने

तुम्हें बन्धनोंमें जकड़े रखा है, मुक्ति तथा शान्ति नहीं मिलने दी है। यही अशान्तिका मुख्य कारण है।

संतजीने उपदेश देते हुए कहा—धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है कि सात्त्विक दान वही होता है, जिसके पीछे कोई आकांक्षा न हो। नाम तथा कीर्तिकी आकांक्षासे मुक्त होते ही शान्ति मिल जायगी।

राजाने अपने नामके सभी पट्ट हटवानेका आदेश दे दिया।

(४)

दान स्वीकारनेवाला धन्यवादका पात्र है

पुराणोंमें लिखा है कि जो व्यक्ति किसीका दान स्वीकार करता है, सहायता स्वीकार करता है, वह उलटे दानदातापर कृपा ही करता है। यह मानना चाहिये कि उसने दान स्वीकार करके उसे पुण्य अर्जित करनेका, सेवाका सुअवसर दिया है।

बंगालके सुविख्यात विद्वान् पं० श्रीविश्वनाथ तर्कभूषणजीकी पावन स्मृतिमें उनके सुयोग्य पुत्र श्रीभूदेव मुखोपाध्यायजीने अपनी एक लाख साठ हजारकी सम्पत्ति दान करके 'विश्वनाथ-ट्रस्ट' की स्थापना की। इस ट्रस्टसे देशके सदाचारी विद्वान् ब्राह्मणोंका चयन करके बिना आवेदनके ही उन्हें मनीआर्डरसे पचास-पचास रुपये भेजे जाते थे।

ट्रस्टके बाबूने वृत्ति पानेवालोंकी सूची बनायी। उसमें अंकित था—'इस वर्ष जिन-जिन अध्यापकों तथा विद्वानोंको विश्वनाथवृत्ति दी गयी, उनकी नामावली।'

पं० श्रीभूदेव मुखोपाध्याय स्वयं परम शास्त्रज्ञ विद्वान् थे। वे जानते थे कि वृत्ति स्वीकार करनेवालोंके नामका उल्लेख आदरके साथ किये जानेमें ही दानकी सार्थकता है। उन्होंने बाबूसे कहा—इस सूचीके ऊपर लिखो—'इस वर्ष जिन अध्यापकों, विद्वानोंने विश्वनाथवृत्ति स्वीकार करनेकी कृपाकर हमारे ट्रस्टको धन्य किया, उनकी नामावली।'

इस प्रकार दान तथा सहायता लेनेवालोंके प्रति भी कृतज्ञताकी भावना रखनेमें ही दानकी सार्थकता है।

(५)

सेनानायककी अनूठी दानशीलता

एक राज्यका शासक ब्राह्मणवर परम धर्मात्मा तथा प्रजापालक था। वह गरीब तथा जरूरतमन्दोंको खुले हाथों दान देता था। वह प्रजाके लोगोंसे कहा करता था कि दूसरेकी सेवा-सहायतामें खर्च किया गया धन कभी समाप्त नहीं होता। दान किया धन कई गुना बढ़कर मिल जाता है।

राजाकी सेनाका उपनायक सत्त्वशील भी परम भगवद्भक्त था। वह निःसन्तान था। अपना तमाम वेतन धर्म-कार्यों तथा परोपकारपर खर्च कर देता था। एक बार उसे जंगलमें घूमते समय सोनेकी अशर्फियाँ मिलीं। वह उन्हें भी गरीबोंकी सहायताके काममें खर्च करने लगा। किसी ईर्ष्यालुने राजाके कान भर दिये कि उपसेनापति सत्त्वशीलको जंगलमें धन मिला था, उसे नियमानुसार राज्यके खजानेमें जमा किया जाना चाहिये था, किंतु सत्त्वशीलने ऐसा न करके उसे अपने पास रख लिया तथा वह उसे खुले हाथों बाँट रहा है। राजाने सत्त्वशीलको बुलवाया। पूछा—क्या तुम्हें जंगलमें स्वर्णमुद्राएँ मिलीं? उनका तुमने क्या किया? सत्त्वशील राजाको गरीबोंकी झोपड़ियोंमें ले गया। राजासे कहा—'आप इनसे पूछ लीजिये कि क्या मैंने उनकी कुछ सहायता की है?' गरीबोंने उत्तर दिया—'इन्होंने हमें वस्त्र, बर्तन एवं अनाज दिया था और कहा था कि राजाने अपनी ओरसे भिजवाया है।'

राजा समझ गया कि सत्त्वशीलने इस दानका स्वयं श्रेय न लेकर राज्यको श्रेय दिया है। राजाने उसकी ईमानदारी एवं दानशीलता देखकर उसे उपसेनापतिसे मुख्य सेनापति बनाकर उसका वेतन दोगुना कर दिया।

(६)

हरामकी कमाई ठीक नहीं

मुस्लिम संत अबू अली शफीक खुदाकी इबादतमें डूबे रहते थे। वे कहा करते थे—'मनुष्यको ईमानदारीसे खून-पसीनेकी कमाईसे ही अपना एवं परिवारका भरण-पोषण करना चाहिये। समाजपर भार नहीं डालना चाहिये।' उनकी कथनी-करनी एक थी। वे स्वयं कुछ समय मजदूरी करते थे और उससे हुई आयसे ही अपना भोजन तैयार करते थे।

एक धनाढ्य उनके उपदेशों तथा त्यागमय जीवनसे बहुत प्रभावित था। उसने एक दिन उन्हें मजदूरी करते देखा तो हतप्रभ रह गया। वह सायंकाल उनकी कुटियामें पहुँचा।

उसने कुछ वस्त्र, कुछ अनाज तथा खजूर उनके सामने पेश किये तथा बोला—'आप-जैसे महान् फकीरको मेहनत-मजदूरी करके पेट भरना पड़े, यह हमारे लिये शर्मनाक है। मैं आपके आशीर्वादसे मालदार हूँ। मेरी सेवा स्वीकार करें।'

संत अबू अलीने विनम्रतासे कहा—बिना परिश्रम किये, दूसरेके धनसे अपना काम चलानेवाला कभी हृदयकी सत्य बात नहीं कह सकता। जिसका दिया अन्न वह खायेगा, उसके प्रति पक्षपातकी भावना उसे निष्पक्ष नहीं रहने देगी। हरामकी कमाईसे किया गया भोजन किसी-न-किसी रूपमें पतनका कारण अवश्य बनता है। इसलिये जबतक मेरे हाथ-पैर काम करनेलायक हैं, मुझे कमाई करके काम चलाने दो।

संतजीने अमीरकी तमाम वस्तुएँ वापस कर दीं। उन्होंने उसे भी उपदेश दिया—प्रतिदिन हाथसे ऐसा काम किया करो, जिससे यह महसूस न हो कि हरामकी कमाई खा रहा हूँ।

दानके कुछ प्रेरक प्रसंग

(श्रीराहुलजी कुमावत, एम०ए०, बी०कॉम०)

(१)

रीवाँनरेशद्वारा दान

अब्दुर्रहीम खानखाना मुगल बादशाह अकबरके दरबारके नौ रत्नोंमेंसे एक थे, परंतु जहाँगीरके समयमें उनपर विभिन्न आरोप लगाकर उनकी सारी जागीर-सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उन्हें जेलमें डाल दिया गया। दान देना इनका स्वाभाविक गुण था, अतः जेलसे छूटे तो याचक पुनः इनके पास पहुँचने लगे, पर उनपर तो उस समय दरिद्रताका साया था।

एक दिन एक दीन-हीन याचक रहीमके पास पहुँचा और आर्थिक सहायताके लिये गुहार लगाने लगा। रहीमने उसे एक दोहा लिखकर दिया और कहा कि इसे रीवाँनरेशको जाकर दे दो। दोहा यों था—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवधनरेस।
जापर विपदा परत है, सो आवत एहि देस॥

रहीमकी इस दोहा-संस्तुति-सिफारिशपर रीवाँनरेशने उस याचकको एक लाख रुपये दान देकर ससम्मान विदा किया।

(२)

महाकवि माघकी पत्नीकी उदारता

संस्कृतके महाकवियोंमें कालिदास, भारवि तथा भवभूतिकी श्रेणीमें महाकवि माघका नाम भी खूब आलोकित है। उनका शिशुपालवध महाकाव्य संस्कृत-साहित्यका अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है। अपने असाधारण जीवनमें उन्हें अपनी पत्नीका भरपूर साथ मिला। यह घटना उस समयकी है, जब वे अपने महाकाव्यकी रचना कर रहे थे। एक दिन अपने छोटे-से कक्षमें महाकवि काव्यरचनामें तल्लीन थे। सामने एक छोटा-सा दीपक टिमटिमा रहा था। किसीने द्वारपर दस्तक देकर उनकी तन्मयता भंग की। वे उठे, द्वार खोला और देखा कि एक दीन-हीन व्यक्ति हाथ जोड़े खड़ा है। वह बोला—'आपकी उदारता सुनकर आशा लेकर आया हूँ। बेटा बहुत बीमार है, पर उसके उपचारके लिये मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। कृपा करके मेरी सहायता करें।'

महाकविके सामने धर्मसंकट खड़ा हो गया। पासमें कुछ भी तो नहीं, जो दिया जा सके। क्या करें? याचक करबद्ध खड़ा है। कैसे मदद की जाय? तभी उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने सोई हुई पत्नीपर नजर डाली। धीरे-धीरे पग रखते उसके पास पहुँचे और चुपके-से उसके हाथसे सोनेका एक कंगन निकाल लिया। याचक यह सब देख रहा था। महाकवि उस कंगनको याचकको देनेके लिये आगे बढ़े ही थे कि पीछेसे आवाज गूँजी—ठहरिये। महाकविने पीछे मुड़कर देखा। उनका शरीर सिहर उठा—कहीं उनकी पत्नी इनकार न कर दे और याचकको दुत्कार न दे। वे कुछ सफाई देने ही लगे थे कि पत्नीने उस निर्धन व्यक्तिकी ओर मुखातिब होते हुए कहा—भाई! ठहरो, इन्हें तो व्यावहारिक ज्ञान है ही नहीं। एक कंगनसे आपके बेटेका उपचार नहीं हो पायेगा। इसीलिये दूसरा कंगन भी

लेते जाओ। यह कहकर उनकी पत्नीने अपना दूसरा कंगन भी उसे दे दिया।

(३)

दानका फल

प्रतिष्ठानपुरनरेश सातवाहन आखेटको निकले और सैनिकोंसे पृथक् होकर वनमें भटक गये। वनमें भटकते भूखे-प्यासे राजा सातवाहन एक भीलकी झोंपड़ीपर पहुँच गये। भील उन्हें पहचानता नहीं था, फिर भी उसने अतिथि समझकर उनका स्वागत किया। भीलकी झोंपड़ीमें धरा ही क्या था, मात्र सत्तू था उसके पास। राजाने वह सत्तू खाकर ही क्षुधा दूर की। रात्रि हो चुकी थी, भीलकी झोंपड़ीमें ही वे सो रहे।

रात्रि शीतकालीन थी। शीतल वायु चल रही थी। भील स्वयं झोंपड़ीके बाहर सोया और राजा सातवाहनको उसने झोपड़ीमें सुलाया। रात्रिमें वर्षा भी हुई। भील भीगता रहा। उसे सर्दी लगी और उसी सर्दीसे रात्रिमें ही उसकी मृत्यु हो गयी।

प्रात:काल राजाके सैनिक उन्हें ढूँढ़ते पहुँचे। सातवाहनने बड़े सम्मानके साथ भीलका अन्तिम संस्कार कराया। भीलकी पत्नीको उन्होंने बहुत-सा धन दिया। यह सब करके भी नरेशको शान्ति नहीं हुई। वे नगर लौट तो आये, किंतु उदास रहने लगे। उनका शरीर दिनोंदिन दुर्बल होने लगा। मन्त्री तथा देशके विद्वान् क्या करते? राजाको चिन्ताका रोग था और उसकी दवा किसीके पास नहीं थी।

'बेचारे भीलने मुझे सत्तू दिया, मुझे झोंपड़ीमें सुलाकर स्वयं बाहर सोया और उसकी मृत्यु हो गयी। दान और अतिथिसत्कारका ऐसा ही फल होता हो तो कौन दान-पुण्य करेगा।' राजाको यही चिन्ता सता रही थी।

कई महीने बीत गये, अन्तमें भगवती सरस्वतीके कृपापात्र पण्डित वररुचि प्रतिष्ठानपुर पधारे। राजाकी चिन्ताका समाचार पाकर वे राजभवन पधारे और राजाको लेकर नगरसेठके घर गये। नगरसेठके नवजात पुत्रको राजाके सामने लाया गया। पण्डितजीके आदेशसे वह अबोध बालक सहसा बोल उठा—'राजन्, मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। आपको सत्तू देनेके फलसे भीलका शरीर छोड़कर मैं नगरसेठका पुत्र हुआ हूँ और उसी पुण्यके प्रभावसे मुझे पूर्वजन्मका स्मरण भी है।'

दानके प्रेरणास्त्रोत

(डॉ० श्रीरमेशचन्द्रजी चवरे)

धरतीपर भक्त, शूरवीर और दानदाताको श्रेष्ठ माना गया है। किसी संतके उपदेश इस लोकोक्तिमें अभिव्यक्त हैं—

'जननी जने तो भक्त जने, कै दाता कै सूर।'

जो अन्न देकर क्षुधा शान्त करे, वही दाता है। दाताका धन कभी नहीं घटता, उसे ईश्वर देता है, जिस प्रकार पक्षियोंके पीनेसे नदीका जल-स्तर कम नहीं होता, उसी प्रकार दान करनेसे दाताका धन भी कम नहीं होता। महादाता—ईश्वरके स्रोतसे दान करनेके लिये धन प्राप्त होता रहता है—

तुलसी पंछिन के पिये घटे न सरिता नीर।
दान किये धन न घटे जो सहाय रघुबीर॥

इस संसारमें धन, यौवन और प्राण कभी-न-कभी जानेवाले ही हैं, स्थिर नहीं हैं, केवल किया हुआ दान-धर्म ही स्थिर है। वह मनुष्यके जीवनकालमें तथा मरणोपरान्त साथ रहता है।

जो याचकको अन्नादि दान करता है, वही धनी है। वैभव रथ-चक्रकी भाँति आता-जाता रहता है, स्थिर नहीं रहता। आज एकके पास है, तो कल दूसरेके पास—

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्। ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त राय:॥ (ऋग्वेद १०। ११७। ५)

दान वैदिक-कर्मका एक भाग है। प्रत्येक पुराणमें दानका महत्त्व एवं फल बताया गया है, जैसा दान किया जायगा, दाताको वैसा ही फल प्राप्त होगा। शुद्ध भोजन, स्वच्छ जल, स्वादिष्ट ताजे फल, सवत्सा गौके दानका फल अतिशुभ होता है। अशुद्ध भोजन, अस्वच्छ जल, सड़े-गले फल, दुर्बल अशक्त गौका दान करनेसे फल भी

उसी प्रकारका प्राप्त होता है।

धर्मशास्त्रोंमें अपनी आयका दसवाँ अंश दान देनेका निर्देश है। यदि किसी परिवारकी आय कम है, तो यथाशक्ति दान देनेका प्रावधान है।

वेदोंमें दान देनेकी प्रेरणा देनेके लिये प्रार्थना की गयी है। मनुष्यको चाहिये कि दान तथा अन्य सत्कर्म करनेके लिये भगवान् तथा देवताओंसे प्रार्थना करे। अन्नके अधिष्ठाता देवतासे अन्नदानकी प्रेरणा देनेके लिये इस प्रकार प्रार्थना की गयी है—

'वाजो नो अद्य प्र सुवाति दानं वाजो देवाँ२ ऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्॥' (यजुर्वेद १८। ३३)

यजुर्वेदमें दीन-दुःखी, याचकों एवं ब्राह्मणोंको दिये गये दान, दक्षिणा तथा श्रेष्ठ कार्योंमें व्यय किये द्रव्य-दानके पुण्यको स्वर्गलोकके देवताओंतक पहुँचानेके लिये अग्निदेवसे इस प्रकार प्रार्थना की गयी है—

यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत्॥

(यजुर्वेद १८। ६४)

सवत्सा गौ (दुधारू गाय) जो ओढ़नी और सुवर्णयुक्त वस्त्रोंसे भूषित हो, उसके दानसे दानदाता श्रेष्ठ स्वर्गलोकको जाते हैं—

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम्।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये॥

(अथर्ववेद ९। ५। २९-३०)

सच्चे दानदाताके हृदयमें भगवान् निवास करने लगते हैं। जब भगवान्‌का वास हो जाता है तो उनका सांनिध्य तथा दिव्यलोक प्राप्त होना सहज हो जाता है—

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥

× × × ×

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥

(रा०च०मा० २। १२८। ३, २। १२९। ७)

अथर्ववेदसंहिताके आपःसूक्त (१। ३३। १ से ४) में आपः (जल) देवताको व्याधियोंको दूर करनेवाला; तेज, शुद्धता, सुख और शक्ति प्रदान करनेवाला कहा गया है। अतः जलदान अवश्य करना चाहिये। प्रसंगवश यहाँ आपबीती एक घटनाका उल्लेख किया जा रहा है—

मेरे घरमें एक चिड़ियाका बच्चा पानीकी टंकीमें मरा हुआ मिला, जिससे हमें बड़ा कष्ट हुआ। दूसरे दिन मिट्टीके दो पात्र मँगाये गये। जल भरकर एक पात्र रस्सीके छींकेकी सहायतासे वृक्षपर तथा दूसरा जमीनपर रख दिया गया, जिनसे चिड़िया, कौवे, कोयल, चूहा, बिल्ली, गिलहरी आदि पशु-पक्षी पानी पीकर चले जाते। एक सप्ताह बाद गौओंके लिये एक छोटी-सी सीमेण्टकी टंकी गेटके पास बनवा दी गयी, जिसमें गाय तथा दूसरे जानवर पानी पीते और चले जाते। यह क्रम चलता रहा। उन्हीं दिनों एक आवश्यक कार्यसे मुझे मुम्बई जाना पड़ा। उन दिनों विशेष रेलगाड़ी मुम्बई खाली जाती थी। उसमें डिब्बे खाली मिलते थे, मुश्किलसे पूरी रेलगाड़ीमें पचास यात्रीसे अधिक नहीं होते थे। अतः ठंडे पानीकी बोतल बेचनेवाले भी नहीं आते थे। मुम्बईसे चलनेवाली गाड़ीमें आरक्षण होता था। अतः उसमें खाने-पीनेकी सुविधाएँ भी उपलब्ध रहती थीं। खंडवा स्टेशनसे मुम्बईकी ओर जानेवाली गाड़ीमें मुझे बैठा दिया गया। मईका महीना, दोपहरकी यात्रा। रेलगाड़ी एक गाँवके पैसेंजर स्टेशनपर रुकी। पासकी झोपड़ियोंके बच्चोंने मेरी बाटलमें मटकेका ठंडा पानी लाकर दिया। आवश्यकता होनेपर मुझे जगह-जगह ठंडा पानी मिलता गया। नासिक स्टेशनपर फ्रूटी बेचनेवालेने यात्रियोंको पैसे देनेपर भी बर्फ देनेसे मना कर दिया और मुझे बिना पैसे दिये बर्फका एक किलोका टुकड़ा दे दिया। यह देख मेरे सामनेकी बेंचपर बैठे हुए तिवारीजीने फ्रूटीवालेसे कहा—'मेरे पैसे देनेपर भी मुझे बर्फ देनेसे क्यों मना किया, फिर इन्हें कैसे दे दिया?' फ्रूटीवालेने जवाब दिया—'मेरी आत्माने कहा, इसलिये मैंने इन्हें बर्फ दे दिया। अब व्यर्थकी बातें मत करो।' तिवारीजीको मैंने आधा बर्फ दे दिया। मुम्बईसे घर लौटते समय मैंने देखा कि घरके गेटके पास रखे हुए पानीकी टंकीमें एक दुर्बल गाय पानी पी रही है। मेरी समझमें आ गया कि यह गायको जलदानका फल है। हम जिस स्थानपर रहे, हमारी आवश्यकतापूर्ति एवं गौओंकी आवश्यकता-पूर्तिहेतु पानी

मिलता रहा और आज भी मिल रहा है। यद्यपि मैंने कोई गाय नहीं पाली है, परंतु इस धर्मकार्यहेतु पर्याप्त पानी मिलता है।

जिस व्यक्तिके पास जिस वस्तुका अभाव हो, उस वस्तुका दान न करे। जिस वस्तुका अभाव न हो, उसका दान करे। धनहीन द्रव्यदान न करें, वे श्रमदान तथा सेवादान करें। रोगी और अशक्त श्रम-दान, सेवा-दान न करें, वे द्रव्यदान, अन्नदान, जलदान अथवा अन्य प्रकारका दान करें।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आयके अनुरूप दान करनेमें सक्षम है, दरिद्र व्यक्ति भी निराश न हो, किसी-न-किसी रूपमें वह भी दान कर सकता है। प्याऊ खुलवाना, गौओंके लिये पानीकी टंकी बनवानेका कार्य नहीं कर सके तो पक्षियोंके लिये मिट्टीके पात्रमें पानी और अन्नके दाने, चीटियोंको आटा डालनेका दान-कार्य तो वह कर सकता है। यह भी सम्भव न हो तो श्रमदान या सेवादान कर सकता है।

शराबीको द्रव्यदान, व्यभिचारीको कन्यादान, क्रोधीको दीपदान, आलसीको श्रमदान, चोर एवं हत्यारेको आश्रय-दान, बधिकको गोदान, राक्षसोंको संजीवनी-विद्या-दान, अकारण वैर रखनेवालेको भूमिदान नहीं देना चाहिये। अतिलोभी, क्रूर तथा घमण्डीको जलदानके सिवाय कोई दान नहीं देना चाहिये।

दयालुको गोदान, श्रद्धालुको विद्यादान, दरिद्रको द्रव्यदान, सदाचारीको कन्यादान, भूखेको अन्नदान, परोपकारीको प्राणदान, प्यासेको जलदान, मरणासन्नको गंगाजलदान, रोगीको औषधिदान, शीतग्रस्तको वस्त्रदान, देव-प्रतिमाको दीपदान, सूर्यको अर्घ्यदान, शंकरजीको जलधारा-दान, पितरोंको तर्पण तथा पिण्डदान, देवताओंको हविष्य-दान अवश्य करना चाहिये।

गुरु, गौ, विवाहिता बहन, भानजा-भानजी, विवाहित पुत्री, नाती-नातिनको उनकी आवश्यकता देखते हुए सदैव दान देते रहना चाहिये।

माता-पिता, गौ, गुरुको सेवा-दान करना अनिवार्य है। इससे यह लोक तो सुखमय होता ही है, ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति तथा दिव्यलोकका साक्षात्कार भी सहज हो जाता है।

'जीवनदान' की अमर कहानी

(डॉ० श्रीविद्यानन्दजी 'ब्रह्मचारी' पी-एच०डी०, विद्यावाचस्पति, डी०लिट०)

'दान' के प्रसंगमें एक प्राचीन कथा है। आजसे लगभग हजार वर्ष पूर्वकी बात है, भारतका स्वर्ग कहलानेवाले सुन्दर प्रदेश कश्मीरके महाराज जयापीड़की सेनाने राज्य-विस्तारहेतु नेपालके महाराज अमरमूरिपर आक्रमण किया था। इस सत्य कहानीके माध्यमसे 'जीवनदान' सम्बन्धी एक रोचक और हृदयग्राही घटनाका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

सन्ध्याका समय था। नेपालकी तराईमें कश्मीरके महाराज जयापीड़की सेना पड़ाव डालकर पड़ी हुई थी। महाराज जयापीड़ अपने खेमेमें लेटे-लेटे विचारमग्न थे। इसी समय द्वारपालने आकर खबर दी कि सेनापति आपसे मिलना चाहते हैं। जयापीड़ने उन्हें अन्दर ले आनेकी आज्ञा दी। सेनापति आये और महाराजको प्रणाम करके एक ओर बैठ गये।

महाराजने कहा—'क्यों सेनापति, क्या खबर है?'

सेनापति बोले—'महाराज! हमलोगोंने बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ी हैं, अनेक स्वतन्त्र राज्योंको अपने अधीन किया है, हमारे सैनिक वीर हैं, युद्ध-सामग्रीकी भी हमारे पास कमी नहीं है, लेकिन इन पहाड़ी लोगोंसे लोहा लेनेमें हमें कठिनाई पड़ेगी। नदीके दूसरे पार नेपालके महाराज अमरमूरिकी सेना हमारी प्रतीक्षा कर रही है। पहाड़ी मार्गोंमें हमें भुलाकर वह हमपर हमला करेगी। अब जैसी आज्ञा दें, वैसा किया जाय।'

महाराज जयापीड़ थोड़ी देरतक चुपचाप सोचते रहे। एक बार उन्होंने सेनापतिसे पूछा—'सेनापति, नदीमें कितना पानी है, इसका पता लगवाया है?'

'हाँ महाराज।'

'कितना है?'

'घुटनोंसे कुछ ऊपर।'

'तब तो कोई दिक्कत नहीं,' महाराजने जैसे एक

निश्चयपर पहुँचकर कहा—'सेनापति, थोड़ी रात बीतते-न-बीतते सेनाको उस पार ले चलो। अँधेरेमें ही हम लोग नेपालकी सेनापर अचानक हमला करेंगे और बात-की-बातमें उन्हें हरा देंगे। विजयलक्ष्मी हमारे साथ है सेनापति! तुम चिन्ता न करो।'

सेनापतिने सैनिकोंको तैयार होनेकी आज्ञा दी। थके-माँदे सैनिक अपने अस्त्र-शस्त्र सँभालने लगे। देखते-देखते सभी सामान लाद दिया गया। सैनिक तैयार होकर आज्ञाकी प्रतीक्षामें रहे।

धीरे-धीरे रात हो आयी। आसमानमें असंख्य तारे चमकने लगे। महाराज जयापीड़ आगे आये। सैनिकोंने तलवारें तानकर उनका अभिनन्दन किया। महाराजने कूचकी आज्ञा दी।

सेना आधी नदी पारकर चुकी थी कि अचानक तेज आँधी चलने लगी। बादल घिर आये। बिजली चमकने लगी। मूसलाधार पानी पड़ने लगा। देखते-ही-देखते बरसाती नदीमें बाढ़ आ गयी। जयापीड़की सारी सेना साज-सामानसहित पलक-झपकते नदीकी तेज धारामें अदृश्य हो गयी। महाराज किसी तरह डूबते-उतराते उस पार पहुँचे।

उस पार पहुँचे तो, लेकिन पहुँचनेकी अपेक्षा न पहुँचना ही अच्छा था। वे अकेले थे, निःशस्त्र थे और दुश्मनोंके पंजेमें थे। भागकर जाते भी कहाँ? अमरमूरिके सैनिकोंने उन्हें कैद कर लिया। नेपाल महाराजकी आज्ञासे वे एकान्त पहाड़ी किलेमें कैद कर दिये गये। किसी तरह खबर कश्मीर पहुँची। नगरवासियोंपर शोककी छाया उमड़ आयी। राजमन्त्री देवशर्माने सबको शान्त किया। कहा—'जैसे भी होगा, मैं महाराजको छुड़ा लाऊँगा—चाहे इसके लिये 'जीवनदान' ही क्यों न देना पड़े।'

एक-एक करके कई दिन बीत गये। आखिर महाराजके छुटकारेका उपाय उन्होंने सोच ही निकाला। नेपालके महाराज अमरमूरिके पास उन्होंने एक दूत भेजा। दूतके हाथ एक पत्र दे दिया। पत्रमें लिखा था—'महाराज जयापीड़ने अनेक युद्धोंमें बहुत-से प्रदेशोंको जीता था; लेकिन बार-बारके युद्धोंमें उनकी सैनिक-शक्ति क्षीण हो गयी थी। बची-खुची सेना लेकर वे नेपाल गये थे। वहाँ वह सेना भी नष्ट हो गयी और स्वयं महाराज भी आपकी कैदमें हैं। ऐसी स्थितिमें कश्मीर तथा कश्मीरके अधीन अन्य प्रदेशोंके लोग उपद्रव मचा रहे हैं। सेनाबलसे हीन हम उनका शासन करनेमें असमर्थ हैं, अतः हम यह विशाल राज्य आपको सौंप देना चाहते हैं। आप जैसा भी उचित समझें, उसका प्रबन्ध करें। यहाँ इसमें किसीको आपत्ति नहीं होगी।'

पत्र लेकर दूत नेपालके दरबारमें पहुँचा। महाराज अमरमूरिने पत्र पढ़ा। उन्हें लगा, जैसे यह सपनेकी बात हो। जयापीड़ने जिस राज्यका शासन किया तथा कितनी लड़ाइयोंके बाद जिन प्रदेशोंपर अधिकार किया, वे आज बिना माँगे ही मिल रहे हैं। लोभने उनका विवेक नष्ट कर दिया। उन्होंने शीघ्र ही राजमन्त्रीको मिलनेके लिये बुलावा भेजा।

यथासमय राजमन्त्री देवशर्मा नेपाल आये। दरबारमें उनका बड़ा स्वागत हुआ। राजाने अपने बराबर आसनपर उन्हें बैठाया, आदर-सत्कार किया।

इसी तरह आनन्द-उत्सवमें कई दिन बीत गये। अमरमूरि कश्मीर जाकर राजसत्ता हाथमें लेनेके लिये अधीर हो रहे थे; इधर राजमन्त्री भी अपना काम बनानेकी फिक्रमें थे। इन थोड़े ही दिनोंमें राजमन्त्री अमरमूरिके बड़े प्रियपात्र बन गये थे। एक दिन मौका देखकर उन्होंने ही बात छेड़ी। बोले—'महाराज, अब विलम्ब किस बातका है?'

महाराजने कहा—'विलम्ब कैसा महामन्त्री! मैं तो आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ। सुना है, कश्मीर बड़ा सुन्दर देश है। मैं तो बड़ी उत्सुकतासे वहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य अपनी आँखोंसे देखनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

देवशर्मा बोले—'जैसा सुन्दर, वैसा ही समृद्ध भी है, महाराज! प्रकृतिने उस देशको नदियों, पहाड़ों और झीलोंसे जिस तरह सजाया है, उसी तरह धन-धान्यसे भी आभूषित किया है। मैं तो आपको वहाँ ले जानेके लिये ही आया हूँ।'

अमरमूरिने शंका की, 'लेकिन वहाँकी प्रजा यदि अधीनता स्वीकार न करे? यदि विद्रोह करना चाहे।'

'नहीं महाराज, इसकी तो आप चिन्ता ही न करें।

मैंने सब प्रबन्ध पहलेसे ही कर रखा है। प्रजा तो आपको सिर-आँखोंपर लेगी। केवल एक बात.......।'

अमरमूरिने बीचमें ही बात काटी—'क्या बात?'

देवशर्मा—'जवाहरातकी पेटीका पता महाराज जयापीड़को ही है। हमलोगोंमेंसे किसीको नहीं मालूम कि वह कहाँ रखी है। मैं चाहता था, उनसे मिलकर उसका भी पता लगा लूँ।'

अमरमूरिने कहा—हाँ-हाँ, इसमें हर्ज ही क्या है? लेकिन वे बताने क्यों लगे?

देवशर्मा बोले—'महाराज मुझपर बड़ा विश्वास करते हैं। मुझे वे अवश्य बता देंगे। लेकिन उन्हें इस बातका पता नहीं लगना चाहिये कि मैं आपका अतिथि हूँ। मैं उनसे कहूँगा कि मैं छिपकर मिलने आया हूँ। बस, हमारा काम बन जायगा।'

अमरमूरि तो लोभमें अन्धे हो रहे थे। भला-बुरा उन्हें कुछ नहीं सूझा। उन्होंने देवशर्माको जयापीड़से मिलनेकी आज्ञा दे दी। यह प्रबन्ध भी कर दिया कि एक आदमी उन्हें किलेतक पहुँचाकर चुपचाप वापस लौट आये।

देवशर्मा इतने दिनोंके बाद महाराजसे मिलने चले।

सूने किलेके एक एकान्त कमरेमें महाराज जयापीड़ बैठे हुए थे; चिन्तित, उदास। उनके कपड़े मैले हो गये थे, दाढ़ी बढ़ गयी थी। मानसिक चिन्ताओंकी छाया आँखोंमें स्पष्ट दीख रही थी।

जयापीड़ बैठे-बैठे पिछले दिनोंकी याद कर रहे थे। नन्दन वनको भी लजानेवाला देश था, धन-जनसे भरा हुआ, उसके वे स्वामी थे। शतसहस्र प्रजा उनके सम्मुख आदरसे सिर झुकाती थी। निकटवर्ती राज्य उनके प्रतापसे काँपते थे। सुख-सौभाग्य उनकी सेवा करते थे और आज वे बन्दी हैं—पत्थरोंकी इस छोटी-सी सीमामें कैद हैं। आसपास जनमानवका निशान भी नहीं। इसी निःसंगतामें उन्हें जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ बितानी पड़ेंगी—स्वदेशसे दूर, स्वजनोंसे अलग।

सोचते-सोचते आवेश और क्रोधसे जयापीड़ दाँत पीसने लगे, किंतु व्यर्थ। लोहेके पिंजड़ेमें बन्द वनकेसरीका आस्फालन व्यर्थ ही होता है।

इतनेमें बाहरका फाटक खुलनेकी आवाज सुन पड़ी। क्षणभरके बाद ही महामन्त्री देवशर्मा महाराजके सम्मुख खड़े थे।

जयापीड़को अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हुआ। आनन्द और आश्चर्यके कारण उनके मुँहसे बोली नहीं निकली। इधर देवशर्मा भी महाराजकी दयनीय दशा देखकर स्तब्ध खड़े रहे। क्षणभर किसीके मुँहसे कोई बात नहीं निकली। अन्तमें अश्रु-गद्गद कण्ठसे महाराजने पुकारा—'मन्त्री!'

हाँ महाराज! 'देवशर्माकी आँखोंसे भी आँसू बहने लगे थे। महाराजने कहा—'मैं जानता था कि मन्त्री तुम आओगे; आज हो या कल, तुम मुझे भूल नहीं सकोगे। लेकिन यहाँतक तुम पहुँच कैसे गये?''

देवशर्मा बोले—'अधिक बातें करनेका समय नहीं है। महाराज! मैं अमरमूरिसे यह कहकर आया हूँ कि आपसे जवाहरातोंका पता पूछने जा रहा हूँ। अब आप समय नष्ट न कीजिये। नदीके उस पार आपकी सेना आपकी प्रतीक्षा कर रही है। नदी पार करके आप उससे जा मिलिये और आगेका प्रबन्ध कीजिये।'

राजाकी नसोंका सोया हुआ खून एक बार फिर खौल उठा। एक बार फिर वे स्वतन्त्र होकर नेपालपर कब्जाका सपना देखने लगे। लेकिन तुरंत ही एक आशंका उनके मनमें जाग उठी। उनका सारा उत्साह जाता रहा। दुःखी होकर उन्होंने कहा—'मन्त्री, अपनी जान बचानेके लिये मैं तुम्हें संकटमें नहीं डाल सकता। अमरमूरिको जब मेरे भागनेकी खबर मिलेगी, तो वह अवश्य ही तुम्हें मार डालेगा। तुम्हारे बिना राज्य लेकर क्या करूँगा, नहीं मन्त्री, यह मुझसे न होगा।'

देवशर्माने जयापीड़को ढाढ़स बँधाया। कहा—'महाराज, आप ऐसी हारी-हारी बातें क्यों करते हैं? अमरमूरि इस समय निश्चिन्त है। आप अपनी सेनाके साथ अचानक उसपर हमला करें तो आपकी विजय निश्चित है। उस समय आप मुझे भी छुड़ा सकेंगे। अब बातचीतमें समय न खोइये। तुरंत नदी पार करके अपनी सेनासे जा मिलिये।'

देवशर्माकी बात जयापीड़की समझमें आ गयी। उन्होंने खिड़कीसे बाहर देखा, शामका गाढ़ा अँधेरा धीरे-धीरे चारों ओर फैल रहा था, नदीमें बाढ़ आ रही थी, हर-हर करती जलकी धारा भयंकर वेगसे बह रही थी, ऐसेमें तैरकर नदीको पार करना सम्भव नहीं था। राजाने कहा—'देवशर्मा, भाग्य शायद हमारे अनुकूल नहीं है। तुम्हारा सारा किया-कराया मिट्टी होना चाहता है। नदीमें बाढ़ आ रही है। इस समय नदी पार करना मनुष्यकी शक्तिके बाहरकी बात है। अगर एक मशक होती, तो शायद मैं नदी पार कर सकता।'

राजाने एक गहरी उसाँस ली। निराशा-भरी आँखोंसे बाहरकी ओर देखा और चुपचाप बैठे रहे।

मन्त्रीने क्षणभर कुछ सोचकर कहा—'मशक लानेका ख्याल तो मुझे नहीं आया महाराज! लेकिन खैर, मैं कुछ उपाय करूँगा। आप जरा देरके लिये दूसरे कमरेमें चले जायँ, तबतक मैं कुछ प्रबन्ध कर रखता हूँ।'

राजाकी समझमें न आया, मन्त्री क्या प्रबन्ध कर सकेंगे; लेकिन उनकी बुद्धिमानीपर उन्हें पूरा भरोसा था। वे दूसरे कमरेमें चले गये। इधर मन्त्रीने अपनी एक उँगली काटी, खूनसे एक चिटपर लिखा—'मेरे शवको मशक बनाकर आप झटपट नदीके पार चले जायँ। मेरे लिये शोक करनेका समय नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि मेरा 'जीवनदान' व्यर्थ चला जाय' और अपनी पगड़ी गलेमें बाँधकर छतकी कंदीलसे लटक गये। थोड़ी ही देरमें उनका शरीर निर्जीव होकर लटकने लगा।

कुछ देर बाद राजा उस कमरेमें वापस आये। वहाँ आकर उन्होंने जो दृश्य देखा, उससे उनका हृदय फटने लगा, आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होंने सोचा ऐसे स्वामिभक्त मन्त्रीको खोकर जो मुक्ति और राज्य मिले, उसे धिक्कार है। हाय, मैं राज्य लेकर क्या करूँगा? जीकर ही कौन-सा सुख भोगूँगा। क्यों मैंने मन्त्रीकी बात मानी? क्यों मैं उन्हें अकेला छोड़कर गया? मेरी बुद्धि क्यों इस तरह मारी गयी थी?

क्षणभर राजाका हृदय इन्हीं भावनाओंसे कसकता रहा। सामने मन्त्रीका निर्जीव शरीर झूल रहा था। राजाने उसकी ओर देखा, अनन्त शान्ति और कर्तव्यपालनका सन्तोष उसके मुँहपर चमक रहा था। राजाको ऐसा जान पड़ा, मानो मन्त्रीका शव कह रहा हो—'महाराज विलम्ब न कीजिये, मेरे बलिदानको व्यर्थ न बनाइये। मैं तो अपना कर्तव्य-पालन कर चुका, आप अपने कर्तव्यसे विमुख न होइये।'

राजाके शरीरमें बिजलीका-सा तेज चमक उठा। उन्होंने अपने-आप ही कहा—'मन्त्री, तुम धन्य हो, तुम्हारा जीवन और तुम्हारी मृत्यु भी धन्य है। तुमने अपने देश और अपने राजाकी रक्षाके लिये अपना 'जीवनदान' दिया है। तुम्हारे इस अमर बलिदानकी कहानी दुनिया कभी न भूल सकेगी।'

उसके बाद वे एक क्षण भी वहाँ न ठहरे। मन्त्रीके शवको लेकर वे नदीमें कूद पड़े और तेजीके साथ दूसरे किनारेकी ओर बढ़ने लगे।

उधर अमरमूरिको न तो जयापीड़के भागनेकी ही खबर थी और न मन्त्रीकी साजिशकी ही। वे जिस समय सुखकी नींद सोकर कश्मीरके राज्य और धनरत्नोंका सपना देख रहे थे, उस समय जयापीड़की सेना दूने उत्साहके साथ नदी पार कर रही थी। सवेरा होते-न-होते तो जयापीड़की सेनाने प्रचण्ड हमला कर दिया। नेपालकी सेना इस हमलेके लिये बिलकुल तैयार न थी। वह भाग खड़ी हुई। देखते-देखते जयापीड़ने नेपालपर कब्जा कर लिया। अमरमूरि कैद कर लिया गया। मरनेसे बची सेना और प्रजाने जयापीड़की अधीनता स्वीकार कर ली।

जयापीड़की जीत हुई सही, लेकिन देवशर्माको खोकर उन्हें यह जीत हारसे भी ज्यादा दुःखदायी मालूम हुई। वे एक बार फिर उस किलेमें गये, जहाँ इतने दिनोंतक कैद थे। मन्त्रीकी यादसे उनका हृदय हाहाकार कर उठा। वे बच्चोंकी तरह चिल्लाकर रो उठे। उस सूने किलेमें मन्त्रीकी सन्तुष्ट और विजयी आत्मा मानो राजाको धीरज बँधाने लगी।

आज न राजा जयापीड़ हैं और न मन्त्री देवशर्मा ही; लेकिन उनके बलिदानकी कहानी आज भी कश्मीरके घर-घरमें गायी जाती है। जिनका जन्म होता है, उनकी मृत्यु भी निश्चित है; लेकिन देवशर्माकी तरह अमर मृत्यु कितनोंकी किस्मतमें होती है!

महादानी दैत्यराज बलि

आचार्य शुक्र अपने महामनस्वी शिष्यपर अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्होंने 'सर्वजित् यज्ञ' कराया था और उस यज्ञमें अग्निने प्रकट होकर बलिको रथ, अश्व, धनुष, अक्षय भोग तथा अभेद्य कवच दिये थे। इन दिव्य उपकरणोंसे सन्नद्ध बलिने असुर-सेनाके साथ जब स्वर्गपर आक्रमण किया, तब देवताओंको अपना घर-द्वार छोड़कर भाग जाना पड़ा। इन्द्र उस समय तेज:सम्पन्न बलिके सामने पड़नेका साहस नहीं कर सकते थे।

शतक्रतु इन्द्र होता है, यह सृष्टिकी मर्यादा है। सौ अश्वमेध यज्ञ किये बिना जो शक्तिके बलसे अमरावती अधिकृत कर लेगा, सृष्टिका संचालक उसे वहाँ टिकने नहीं देगा। बलिने स्वर्गपर अधिकार कर लिया तब शुक्राचार्यको अपने शिष्यका वैभव स्थायी बनानेकी चिन्ता हुई। स्वर्गलोक कर्मलोक नहीं है। अत: बलिको समस्त परिकरोंके साथ लेकर आचार्य नर्मदाके उत्तर तटपर आये और उससे अश्वमेध यज्ञ कराना प्रारम्भ किया। निन्यानबे अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हो गये और अन्तिम सौवाँ यज्ञ चलने लगा।

इसी कालमें देवमाता अदितिकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उनके यहाँ वामनरूपसे अवतार ग्रहण किया। उपनयन सम्पन्न हो जानेपर मौंजी-मेखला पहने, छत्र, दण्ड तथा जलपूर्ण कमण्डलु लिये भगवान् वामन बलिकी यज्ञशालामें पधारे। उन सूर्योपम तेजस्वीको देखकर सब ब्राह्मण तथा असुर उठ खड़े हुए। बलिने उनको आसन देकर चरण पखारे और चरणोदक मस्तकपर चढ़ाया। पूजाके अनन्तर बलिने कहा—'विप्रकुमार! मुझे लगता है कि ऋषियोंकी सम्पूर्ण तपस्या आपके रूपमें मूर्तिमान् होकर मुझे सनाथ करने आज मेरे यहाँ आयी है। आप अवश्य किसी प्रयोजनसे पधारे हैं। अत: जो इच्छा हो, बिना संकोचके माँग लें।'

वामनने बलिके कुल-पुरुषोंके शौर्य-पराक्रम, दानशीलताकी प्रशंसा करके अन्तमें कहा—'विरोचननन्दन! जिसकी भूमिपर कोई तप, साधनादि करता है, उस भूमिके स्वामीको भी उस तप आदिका भाग प्राप्त होता है। इसलिये मैं अपने लिये अपने पैरोंसे तीन पदमें जितनी भूमि माप सकूँ, उतनी भूमि आपसे चाहता हूँ।'

बलि हँसे। नन्हेसे वामन, नन्हे-नन्हे सुकुमार चरण। बलिको लगा कि ये भला, भूमि कितनी माप सकेंगे! वे बोले—'आप अभी बालक हैं, भले आप कितने भी विद्वान् हों। मैं त्रिलोकीका स्वामी हूँ। मेरे पास आकर आपको भूमि ही माँगनी है तो कम-से-कम इतनी भूमि लीजिये कि उससे आपकी आजीविका भली प्रकार चल सके।'

वामन बड़ी गम्भीरतासे बोले—'राजन्! तृष्णाका पेट भरा नहीं करता। मैं यदि थोड़ी भूमिपर सन्तोष न करूँ तो सप्तद्वीपवती पृथ्वी तो क्या—त्रिलोकी भी क्या तृष्णाको तुष्ट कर सकेगी? अत: अपने प्रयोजनसे अधिक मुझे नहीं चाहिये।'

'अच्छा लो! जितनी चाहते हो, उतनी भूमि दूँगा।' बलिने कहा और भूमिदानके लिये संकल्प करनेको कमण्डलु उठाया।

'ठहरो!' शुक्राचार्य इतने समयतक बड़े ध्यानसे वामनको देख रहे थे। उनकी दृष्टिने श्रीहरिको इस छद्मरूपमें भी पहचान लिया। अत: वे बोले—'बलि! मुझे तो लगता है कि दैत्यकुलपर महान् संकट आ गया है। ये विप्रकुमार नहीं, साक्षात् विष्णु हैं। तुमने दानका संकल्प किया तो पृथ्वी इनके एक पदको होगी। दूसरा पद ब्रह्मलोक पहुँचेगा और तीसरे पदको स्थान नहीं होगा। अपनी जीविकाका उच्छेद करके दान नहीं किया जाता। तुम इन्हें यह भूमिदान मत दो।'

'आपकी बात मिथ्या नहीं हो सकती।' दो क्षण सोचकर बलिने कहा। 'परंतु यज्ञके द्वारा जिन यज्ञपुरुषकी आराधना आप मुझसे करा रहे हैं, वे ही मेरे यहाँ भिक्षुक बनकर पधारें तो क्या मैं उन्हें निराश कर दूँ?' 'दूँगा' कहकर प्रह्लादका पौत्र अस्वीकार कर दे, यह नहीं होगा। सत्पात्रके आनेपर उसे अर्थदान न करना, युद्धमें प्राण देनेसे भी कठिन है। ये कोई हों और कुछ भी करें, मैं इन्हें कृपण बनकर दानसे वंचित नहीं करूँगा।'

'तू अब भी मेरी बात नहीं मानता, इसलिये तत्काल ऐश्वर्यभ्रष्ट होगा।' क्रोधमें आकर शुक्राचार्यने शाप दे दिया; किंतु बलिको उससे दु:ख नहीं हुआ। उन्होंने प्रसन्न

मनसे वामनको भूमिदानका संकल्प किया। संकल्प लेते ही भगवान् वामनने विराट्रूप धारण कर लिया।

'तुझे गर्व था कि तू त्रिलोकीका स्वामी है। पृथ्वी मेरे एक पदसे तेरे सामने माप ली गयी और मेरा दूसरा पद तू देखता है कि ब्रह्मलोकतक पहुँच गया है।' विराट्स्वरूप भगवान्ने कृत्रिम क्रोध दिखलाते हुए कहा। अब मैं तीसरा पद कहाँ रखूँ? तूने मुझे ठगा है। जितना तू दे नहीं सकता, उतनेका संकल्प कर दिया तूने। अत: अब तुझे कुछ काल नरकमें रहना होगा।'

'देव! सम्पत्तिसे सम्पत्तिका स्वामी बड़ा होता है। यदि आप समझते हैं कि मैंने आपको ठगा है तो यह ठीक नहीं। मैं अपना वचन सत्य करता हूँ। यह मेरा मस्तक है। आप अपना तीसरा पद इसपर रखें!' स्वस्थ, प्रसन्न, दृढ़ स्वरमें बलिने कहा और मस्तक झुका दिया।
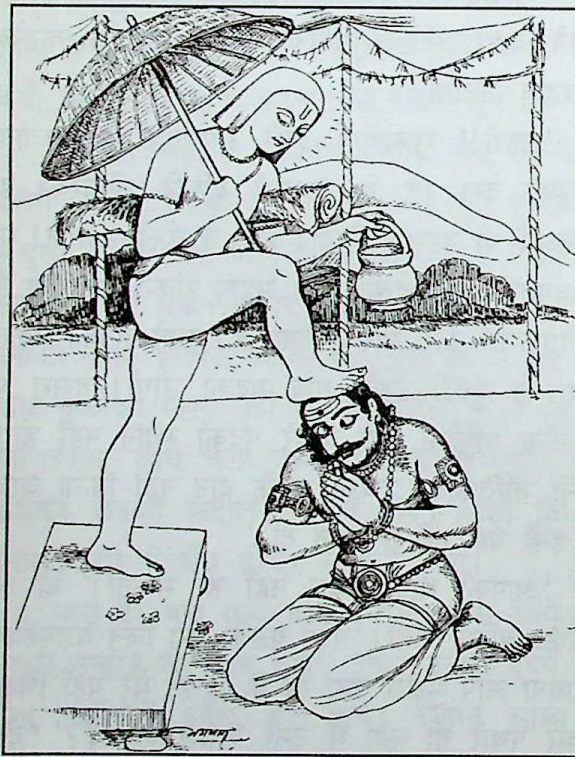
भगवान्ने बलिके मस्तकपर अपना पद रखा। बलि निहाल हो गये। बलिके न चाहनेपर भी असुरोंने वामनपर आक्रमण करनेकी चेष्टा की; किंतु भगवान्के पार्षदोंने उन्हें मारकर भगा दिया। भगवान्के संकेतपर बलिको गरुडने बाँध दिया। प्रह्लादजी पधारे और उन्होंने बलिके ऐश्वर्य-ध्वंस होनेको भगवत्कृपा माना; वे बोले—'प्रभो! धन तथा पदके मोहसे विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं। आपने इसके धन-वैभवको छीनकर इसका महान् उपकार किया है।'

किंतु सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी व्याकुल हो गये। उपस्थित होकर, हाथ जोड़कर उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो! बलिको बन्धन प्राप्त होगा तो धर्मकी मर्यादा नष्ट हो जायगी। आपके श्रीचरणोंमें श्रद्धापूर्वक चुल्लूभर जल तथा दो तुलसीदल देनेवाला आपका धाम प्राप्त कर लेता है और बलिने तो आपको शत्रुपक्षका जानकर भी अव्यग्र चित्तसे त्रिलोकीका राज्य आपके चरणोंमें चढ़ाया है।'

'ब्रह्माजी! प्रह्लादका यह पौत्र मुझे बहुत प्रिय है।' भगवान्ने कहा। 'मैं जिसपर कृपा करता हूँ, उसका धन-वैभव छीन लिया करता हूँ; क्योंकि जब मनुष्य धनके मदसे मतवाला हो जाता है, तब मेरा तथा सब लोगोंका तिरस्कार करने लगता है। जिसको कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदिका घमण्ड न हो, समझना चाहिये कि उसपर मेरी बड़ी कृपा है। यह बलि मेरा ऐसा ही कृपापात्र है। गुरुके शाप देने, धन छीने जाने और मेरे द्वारा कृत्रिम रोषसे भी आक्षेप किये जानेपर यह विचलित नहीं हुआ। धर्मकी यह दृढ़ता इसे मेरे अनुग्रहसे प्राप्त है। अब यह सुतलका राज्य करेगा और अगले मन्वन्तरमें मैं इसे इन्द्र बनाऊँगा। तबतक सुतलमें इसके द्वारपर गदा लिये मैं स्वयं द्वारपाल बनकर उपस्थित रहूँगा।'

'प्रभो! दयाधाम! मुझ अधम असुरपर यह अनुग्रह?' बलिका कण्ठ गद्गद हो गया। 'मुझसे कहाँ आपकी अर्चना हुई? मैंने तो केवल आपके चरणोंमें प्रणाम करनेका प्रयत्नमात्र किया था।'

'आपके शिष्यके यज्ञमें जो दोष रह गये, जो त्रुटि है, उसे अब आप दूर करा दें, भगवान्ने शुक्राचार्यको आदेश दिया।'

'जहाँ यज्ञपुरुष स्वयं सन्तुष्ट होकर विराजमान हैं, वहाँ त्रुटि कैसी? यज्ञिय त्रुटि तो आपके नामकीर्तनमात्रसे दूर हो जाती है। फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।' शुक्राचार्यने यज्ञका अपूर्ण कार्य यह कहकर सम्पूर्ण कराया।

बलि असुरोंके साथ सुतल चले गये। इन्द्रको स्वर्गका राज्य मिला। बलिके इस महादानके कारण संसारमें उत्कृष्ट त्यागको बलिदान कहा जाने लगा।

दानके तीन आख्यान

(पं० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दूबे)

(१)

दानवीर भक्त मनकोजी बोधला

मनकोजी बोधला भगवान् पाण्डुरंगके प्रसिद्ध भक्त हो गये हैं। उनका जन्म बरार प्रान्तके धामनगाँवमें हुआ था। उनके पास धनकी कमी न थी। वे दीन-दुःखियोंकी खुले हृदयसे सहायता करते थे। उनके हृदयमें दयाका सागर लहराता रहता था। वे सदा भगवान् पाण्डुरंगसे यही प्रार्थना किया करते थे कि प्रभो! संसारमें कोई भी दुःखी न रहे, सब आनन्दपूर्वक अपना-अपना जीवन बितायें। बोधलाजीकी धर्मपत्नी सती मामाताई भी अपने पतिका अनुसरण करती थीं। उनके हृदयमें भी प्राणिमात्रके लिये अपार करुणा थी।

एक बार बरार-प्रदेशमें भयंकर अकाल पड़ा। लोग दाने-दानेके लिये मोहताज हो गये। बोधलाजीके पास जितना अन्न था, उन्होंने सब भूखे मनुष्योंको बाँट दिया। अन्नके समाप्त हो जानेपर उन्होंने अपनी सम्पत्ति बेचकर दूर-दूरके देशोंसे अन्न मँगाया और भूखोंको भोजन दिया। पतिके इस शुभकार्यमें मामाताई बड़े उत्साहसे उनका हाथ बँटाती थीं। उन्होंने अपने सारे आभूषण बेच दिये और दिन-रात भूखे-नंगोंकी सेवामें जुटी रहतीं। दान करते-करते बोधलाजी दरिद्र हो गये। अब उनके पास अपने खानेतकके लिये एक दाना भी न रहा। अन्तमें वे दूसरे देशमें जाकर मजदूरी करने लगे और अपने परिवारका पालन करते रहे। इस अवस्थामें पहुँचकर भी उन्हें जो आत्मसन्तोष प्राप्त होता, वह अनिर्वचनीय है।

बोधलाजी प्रत्येक एकादशीको पण्ढरपुर जाकर पाण्डुरंगका पूजन करते थे, उनका यह नियम था। पूजन करनेके अनन्तर वे भूखे ब्राह्मणोंको अन्नदान दिया करते थे। इस बार भी एकादशी आयी, किंतु बोधलाजीके पास तो कुछ भी शेष नहीं रह गया था। फिर भी वे अपने व्रतसे न डिगे। वे पण्ढरपुर गये और वहाँ मजदूरी करके उन्होंने कुछ पैसे कमाये। उन पैसोंसे उन्होंने भगवान्के पूजनकी सामग्री खरीदी और बाकी बचे पैसोंसे ब्राह्मणोंको दान देनेके लिये आटा खरीदा। भगवान्का पूजन करनेके बाद वे नदीके तीरपर ब्राह्मणकी प्रतीक्षामें खड़े हो गये, किंतु खाली सूखे आटेको देखकर उनसे दान लेने कोई भी ब्राह्मण नहीं आया। वे सोचने लगे ठीक ही तो है, खाली सूखा आटा लेकर ब्राह्मण क्या करें, मेरे पास न नमक है, न तरकारी और न घी है, न दाल।

बोधलाजी यह सोच ही रहे थे कि इतनेमें भक्तकी प्रेमपूरित भेंट लेनेके लिये स्वयं भगवान् बूढ़े ब्राह्मणके वेशमें प्रकट हो गये, बोधलाजीने बड़े आदरसे ब्राह्मणदेवताको अपना आटा अर्पण कर दिया। भगवान् उस कच्चे आटेको बड़े आनन्दसे फाँकने लगे—अहा! धन्य है प्रभुकी भक्तवत्सलता! उन्हें तो प्रेमसे अर्पित किया हुआ एक तुलसीका पत्ता ही बड़ा प्रिय होता है। उन्होंने स्वयं गीतामें कहा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

अर्थात् पत्र, पुष्प, फल, जल जो कुछ भी भक्त प्रेमपूर्वक अर्पण करता है। उस प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पदार्थ मैं स्वयं प्रकट होकर भोग लगाता हूँ।

प्रभुको सूखा आटा फाँकते देख लक्ष्मीजीसे न रहा गया, वे भी वृद्धा ब्राह्मणीका वेश बनाकर आ गयीं और हाथ जोड़कर बोलीं—देव! यदि आप आज्ञा दें तो अभी यह दासी आपके लिये आटा गूँथकर बाटियाँ बना दे। प्रभुने अनुमति दे दी। बोधलाजी झटसे आग ले आये और बाटियाँ बनने लगीं, जब बाटियाँ बन गयीं तो परम कौतुकी दयालु
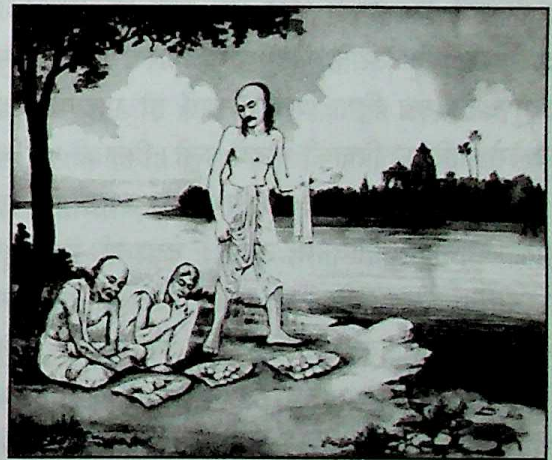
भगवान् भी वृद्धा ब्राह्मणी बनी लक्ष्मीजीके साथ बैठ गये। प्रभुने बड़े चावसे भोग लगाया। धीरे-धीरे दोनों लोग सब बाटियाँ चट कर गये, केवल एक बाटी पत्तलमें छोड़ दी।

बोधलाजी सुबहके भूखे थे। चलते-चलते प्रभु उनसे कह गये—पत्तलमें जो एक बाटी बची है, उसे तुम खा लेना, यदि नहीं खाओगे तो मैं तुमपर अप्रसन्न हो जाऊँगा। बोधलाजीने ब्राह्मणके आज्ञानुसार पत्तलमें बची हुई बाटी खा ली। उस बाटीके खाते ही पत्तलमें दूसरी बाटी आ गयी। यह देख बोधलाजीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, भूखे तो थे ही, उन्होंने वह बाटी भी खा ली। उस बाटीके खाते ही दूसरी बाटी फिर पत्तलमें आ गयी। इस प्रकार बोधलाजीने भरपेट भोजन कर लिया, फिर भी पत्तलकी बाटी समाप्त न हुई। यह देख उन्हें विश्वास हो गया कि ब्राह्मणवेशधारी साक्षात् प्रभुने ही और माता जगज्जननीने ही मुझपर कृपा की है। प्रभुका स्मरण करते ही उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। वे मन्दिरमें पहुँचे, प्रेमावेशमें पाण्डुरंगजीकी मूर्तिके समीप चले गये और चरणोंमें गिर पड़े। प्रभुने प्रकट होकर उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया—

तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र कर दान।
मन पवित्र हरिभजन कर, त्रिबिध होत कल्यान॥

(२)

दीपदानका प्रताप

सत्ययुग समाप्त हो रहा था। उस समय मायापुरी (हरिद्वार)-में एक परम आस्तिक, धर्मज्ञ, भगवद्भक्त ब्राह्मण निवास करते थे। उनका जन्म अत्रिगोत्रमें हुआ था और नाम था देवशर्मा। वे रोज अतिथियोंकी सेवा, हवन और सूर्यभगवान्‌की पूजा किया करते थे, इसीलिये सूर्यकी तरह तेजस्वी थे। उनके कोई पुत्र नहीं था, केवल एक सुन्दर कन्या थी। उसके सद्‌गुणोंके कारण पिताने उसका नाम गुणवती रख दिया था। शैशवमें ही माताका देहान्त हो जानेसे बालिका पिताकी गोदमें पली। पिताकी धार्मिकता एवं भगवद्भजनका उसपर पूर्ण प्रभाव पड़ा। उसने पिताके धार्मिक कार्योंको जीवनमें उतारा। देवशर्मा नियमपूर्वक एकादशीव्रत करके भगवान्‌का पूजन करते, रात्रिमें जागरण करते हुए भगवान्‌का भजन-कीर्तन करते थे। प्रतिवर्ष कार्तिकमासभर ब्राह्ममुहूर्तमें स्नान करते तथा समय-समयपर फलाहार करके व्रत रहते। कार्तिकमासभर वे विधिपूर्वक भगवान् श्रीहरि, भगवती तुलसी एवं आँवलेकी पूजा करते थे। बालिका गुणवतीने भी पिताके इन एकादशी तथा कार्तिकव्रतोंका विधिपूर्वक पालन किया, वह दीपदान भी करती थी।

देवशर्माके कोई दूसरी सन्तति नहीं थी। उन्होंने अपने एक सुयोग्य तथा धार्मिक विद्वान् शिष्य चन्द्रके साथ गुणवतीका विवाह कर दिया। चन्द्रके माता-पिता नहीं थे। वे देवशर्माको पिताके समान मानते तथा उनकी सेवा करते। गुणवती सच्चे हृदयसे पतिकी सेवामें तत्पर रहती।

भाग्यका विधान देवशर्मा और चन्द्र एक साथ ही यज्ञार्थ समिधा एकत्र करने वनमें गये थे। एक भयंकर राक्षसने उन दोनोंका भक्षण कर लिया। रोती, विलाप करती गुणवती समाचार पाकर वनमें बहुत भटकी। बेचारीको सती होनेके लिये पतिके शरीरकी एक अस्थि भी नहीं मिली। राक्षसने दोनों ब्राह्मणोंको पूरा निगल लिया था, विवश होकर गुणवती लौटी। उसने पिताकी पूरी सम्पत्ति दीन पुरुषोंमें वितरित कर दी। गौएँ ब्राह्मणोंको दे दीं और भवन भी एक दीनहीन विप्रको दान कर दिया।

पतिहीना स्त्रीके लिये भोगोंका क्या उपयोग? उसने वल्कल धारण किया और वह पर्णकुटी बनाकर रहने लगी। वन्य कन्द-मूल ही उसकी आजीविकोपार्जनके साधन बने। रात्रिको वेदीपर कुश बिछाकर सो जाती। तीनों समय स्नान करके पतिदेवका ध्यान करती। समय पाकर उसने शरीर छोड़ा और दीर्घकालतक स्वर्गमें रही। द्वापरमें ब्राह्मण देवशर्माने यदुकुलमें सत्राजित्‌के रूपमें जन्म लिया। गुणवती उन्हीं महाभाग सत्राजित्‌की पुत्री सत्यभामा हुई।

अपने कार्तिकमासके दीपदान तथा अन्य दानरूपी पूर्वपुण्यके प्रतापसे पतिरूपमें उसने साक्षात् श्रीकृष्णको प्राप्त किया। चन्द्रशर्मा अक्रूर हुए।

भारतकी इस पावन भूमिमें ऐसी अनेक आदर्श नारियाँ हो गयी हैं, जिन्होंने दान-पुण्यको जीवनमें अपनाकर महनीय उपलब्धि प्राप्त की। [पद्मपुराण]

(३)

'दान इस लोकमें भोग और परलोकमें कल्याण देनेवाला है'

मनुष्यके जीवनमें दानका अत्यधिक महत्त्व है। यह एक प्रकारका नित्यकर्म है। मनुष्यको प्रतिदिन कुछ दान अवश्य करना चाहिये। दान चाहे श्रद्धासे दे अथवा लज्जासे दे या भयसे दे, पर दान किसी भी प्रकारसे अवश्य देना चाहिये। दानके बिना मानवकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। प्रायः अधिकांश लोग लोभवश कर्म करने और अर्थ-संग्रहमें ही लगे रहते हैं। वे किसी प्रकारका दान नहीं करते, यहाँ एक कंजूस लोभी सेठजीका दृष्टान्त दिया जा रहा है—

किसी गाँवमें एक सेठजी रहते थे, वे बड़े कंजूस थे। कभी किसीको दान, दक्षिणा, भिक्षा कुछ नहीं देते थे। एक दिन प्रातः स्नान करनेके लिये वे नदीपर पहुँचे। इतनेमें लीलापुरुषोत्तम भगवान्ने सेठजीका रूप बनाया और घर आकर उसकी गादी (बैठक)-पर बैठ गये। घरके लोगोंने सोचा कि सेठजी आज जल्दी ही स्नान करके लौट आये हैं। इतनेमें ही थोड़ी देर बाद असली सेठजी स्नान करके घर लौटे और अपनी ही शक्लका दूसरा रूप देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन दूसरे नकली रूपधारी सेठजी (भगवान्)-से बोले—अरे! तुम मेरा रूप बनाकर यहाँ धोखा देनेके लिये आ गये हो, यहाँसे निकल जाओ। बहुत विवाद हुआ, दूसरे आसपासके लोग भी इस रहस्यको नहीं जान सके, अन्ततः मामला कोर्टमें गया। कोर्टमें न्यायाधीशने दोनोंसे मकानके बारेमें अलग-अलग पूछताछ की। असली सेठजीसे पूछा—'तुम बता सकते हो इस मकानमें कितने ईंट, पत्थर लगे और कब-कब कितना पैसा खर्च हुआ, कितने मजदूर लगे थे? सेठजी अन्दाजसे सब बातें बताने लगे, कहाँ-कहाँसे किसकी दुकानसे सामान आया था, यह भी ठीकसे नहीं बता सके। अब छद्मवेशधारी सेठजी (भगवान्)-से पूछा गया, उन्होंने सब बातें ठीकसे बता दीं। कोर्टने फैसला दिया कि असली जिनका मकान है, वे छद्मवेशधारी (भगवान्) सेठ ही हैं और जो असली सेठ मालिक थे, उनको झूठा बनावटी बताया गया। अब क्या था, असली सेठको मकान छोड़ना पड़ा। जब वे जाने लगे, तब भगवान् उनको दूर एकान्तमें ले गये और बोले—'थोड़ा दान-पुण्य गरीबोंको करा कर और जा अपने घरमें सुखसे रह, इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।'

दान इस लोकमें भोग और परलोकमें मोक्ष—कल्याण प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक ही अर्थका उपार्जन करे; क्योंकि न्यायसे उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है। फलकी आशा न रखकर प्रत्युपकारकी भावनासे रहित होकर ब्राह्मणको प्रतिदिन जो दान दिया जाता है, वह नित्यदान है। ईश्वरकी प्रसन्नताको प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मवित् सत्त्ववृत्तिसे युक्त चित्तवाले मनुष्यके द्वारा जो दान दिया जाता है, वह विमलदान है। यह दान कल्याणकारी है। दान देनेका अभिमान तथा लेनेवालेपर किसी प्रकारके उपकारका भाव न उत्पन्न हो, इसका पूर्ण रूपसे ध्यान रहे। सत्पात्रको विद्या प्रदान करनेवाला ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। गृहस्थके द्वारा गौ, भूमि, धान्य और स्वर्ण आदिका दान सत्पात्रको उसका पूजन करके दिया जाना चाहिये। उपार्जित धनके दशमांश दानका शास्त्रोंमें विधान है। भोजनकी आशासे घरपर आये अतिथिका विधिवत् सत्कार करना चाहिये, गरीबों, दीन-दुःखियोंको दान आदिसे सेवा करनी चाहिये।

दानं श्रेयस्करं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम्। दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा॥
अल्पेनापि हि वित्तेन स्वहस्तेनात्मने कृतम्। तदक्षय्यं भवेद्दानं तत्कालं चोपतिष्ठति॥

दान पुरुषोंका कल्याण करनेवाला तथा परम श्रेष्ठ है। लोकमें दानशील व्यक्तिकी सर्वदा पुत्रकी भाँति प्रतिष्ठा होती है। अपने हाथसे अपने कल्याणके लिये दिया गया अल्पवित्तवाला वह दान भी अक्षय होता है और उसका फल भी तत्काल प्राप्त होता है।

दानवीर दधीचि

(डॉ० श्रीहरिनन्दनजी पाण्डेय)

गिरिराज हिमालयके तुषारमण्डित धवल शिखरकी तलहटीमें संसारके कोलाहलसे दूर पुण्यसलिला भागीरथीके तटपर महर्षि दधीचिकी पर्णकुटी थी। आश्रममें आनन्द एवं शाश्वत शान्तिका साम्राज्य था। दु:ख, दैन्य, ईर्ष्या, क्रोध, छल-प्रपंच आदिका प्रवेश निषिद्ध था। चतुर्दिक् प्रेम-भावकी निर्मल निर्झरिणी प्रवाहित होती रहती थी। पर्णकुटीको पुष्प-लताओंने आच्छादित कर रखा था। साथ ही सघन पादप-पुंज अपने अमृतोपम सुस्वादु एवं सुपक्व फलोंसे आश्रमवासियोंकी क्षुधाकी तृप्ति करते। विविध विहंगावलियाँ अपने काकली-स्वरोंसे उस तपोवनके अणु-अणुको मुखरित किये रहतीं। रसलोलुप मधुप अपने हृदयमें अपरिमित उल्लास लिये फूल-फूलपर अठखेलियाँ करते। आश्रममें समरसता थी और कोई भेदभाव नहीं था। आश्रमवासियोंको न तो सुखसे आनन्दकी अनुभूति होती थी और न दु:खसे पीड़ा। न निन्दासे क्रोध होता था और न स्तुतिसे प्रसन्नता ही। यही कारण था कि विधाताने इस भू-भागपर स्वर्गिक सौन्दर्य बिखेर रखा था। साथ ही आश्रम ऋषियों एवं शिक्षार्थियोंके कलकण्ठसे नि:सृत **'हरिः ॐ तत्सत्'** की कर्णप्रिय ध्वनिसे सदैव प्रतिध्वनित होता रहता था। सुदूर प्रान्तोंके ज्ञान-पिपासु व्यक्ति महर्षिके श्रीचरणोंमें बैठकर अध्यात्मकी शिक्षा प्राप्त करते थे। महर्षि आगत ज्ञान-पिपासुओंसे यही कहते थे कि जगत्में सिवा ब्रह्मके और कुछ नहीं है; ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है। उनका यह भी कहना था कि इस शून्य जगत्में सत्य ही शाश्वत है; जो शिव भी है और सुन्दर भी। आप यह भी कहते थे कि जिस भाँति पेड़ पाषाण आदिसे प्रताड़ित होकर भी आक्रामकको अपना सुस्वादु फल भेंट करते हैं और जिस भाँति दीपक स्वयं जलकर दूसरेको प्रकाश देता है, उसी भाँति मानवका भी पावन कर्तव्य है कि वह प्राणिमात्रकी सेवाके हेतु अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दे; क्योंकि परोपकारी जीवोंके हाथों मृत्यु सर्वथा पराजित होती रही है।

ऐसी ही सुनहली सीख भारतका वह तप:पूत विश्वको देता था। इस महाप्राणके त्याग, प्रकाण्ड पाण्डित्य, अलौकिक दानशीलता एवं नि:स्वार्थ सेवाके समक्ष मानव-जातिकी कौन कहे, स्वयं देवराज नतमस्तक रहते थे। यों तो अमरपुत्रोंकी नगरी होनेके कारण स्वर्ग नाना भाँतिकी सम्पदाओंसे परिपूर्ण था, परंतु उस महामानवकी उस वन-स्थलीकी अलौकिक सुन्दरताके आगे वह (स्वर्ग) श्रीहीन प्रतीत होता था।

(२)

अमरपुत्र वासना, कर्तव्यहीनता, निष्क्रियता और विविध दूषणोंके वशीभूत हो चले थे। भोगोंके व्यामोहमें पड़कर वे कर्तव्यच्युत होते जा रहे थे। स्वार्थ-सिद्धिमें ही उनका समय बीतने लगा। नन्दनपुरीके निवासी विषयोंके सेवनमें ही अपने जीवनकी सार्थकताका अनुभव करने लगे।

उधर दानवोंने जब देखा कि अमरपुत्र पथ-भ्रष्ट हो रहे हैं; अपने धर्मसे विमुख हो चले हैं, तो एक दिन उन्होंने युद्धकी घोषणा कर दी। युद्ध-घोषसे अमरपुत्र थर्रा उठे। फिर क्या था, विधवाके कष्टपूर्ण जीवनके समान यह देव और दानवका युद्ध अनन्त कालतक चलता रहा। अमरपुत्रोंकी पराजय-पर-पराजय होने लगी और एक दिन आत्म-समर्पणकी घड़ी भी आ पहुँची। निदान, भगवान् शचीपति व्याकुल होकर पितामह (ब्रह्मा)-की शरणमें गये और करबद्ध प्रार्थना करने लगे—'हे जगत्पते! आज दानवोंके समक्ष हमारा अस्तित्व लुप्त होने जा रहा है। आज हमें इसका भान हुआ है कि हम कितने दुर्बल, कितने व्यसनी और कितने अधार्मिक हो गये हैं। फिर भी हम आपके हैं और आप हमारे हैं। प्रभो! सुरगणोंकी लज्जा अब आपके हाथमें है। हे दयासिन्धु! आप रक्षा करें।' दूसरे ही क्षण सुरराजके नेत्र आर्द्र हो उठे।

विधाताने किंचित् क्रोधपूर्ण वाणीमें कहा—'मुझे दु:ख है कि इस लोकमें किसीमें भी इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह दानवोंको पराजित कर सके। मैं विवश हूँ।'

इसपर देवराजने साश्चर्य पूछा—'यह मैं क्या सुन रहा हूँ, जगत्पते! आप तो निखिल विश्वके सृजनहार हैं,

फिर ऐसा क्यों बोल रहे हैं?'

'मैं सत्य कहता हूँ, सुरेश! दानवोंको पराजित करनेका मात्र एक ही मार्ग है और इसके लिये तुम्हें मर्त्यलोककी शरण लेनी पड़ेगी। मानवीय साहाय्यके अभावमें अमरपुत्रोंकी विजय कठिन ही नहीं, असम्भव भी है।'

'समझमें नहीं आ रहा है कि आज आप क्या बोल रहे हैं, भगवन्! भला जिस कार्यको अमरपुत्र नहीं कर सकते, उसे करनेकी क्षमता मानवोंमें कैसे होगी?'

'देवराज! कोई जन्म लेनेसे ही उच्च नहीं होता, कर्तव्यसे ही महानताकी प्राप्ति होती है। यदि मर्त्यलोकके एक नश्वर मानवमें दयाशीलता, परोपकारिता, दानशीलता और बन्धुत्वकी भावना हो, तो वह इन गुणोंसे रहित अमरपुत्रोंसे कहीं महान् है, कहीं पूज्य है। प्रमाणस्वरूप, उसे देखो। हिमालयकी तलहटीमें वह जो हाड़-मांसका पुतला दृष्टिगोचर हो रहा है न, उस महामानवमें हमसे अधिक शक्ति सन्निहित है।'

'देवेन्द्र! शारीरिक शक्ति आत्मशक्तिके समक्ष तुच्छ होती है। जिसके पास आत्म-बल है, वही बली है। शारीरिक शक्ति तो पशुओंमें भी होती है। तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि आज निखिल विश्व उस महाप्राणकी आत्मिक शक्तिके समक्ष नतमस्तक है। अतः उसकी अस्थिसे यदि अस्त्रका निर्माण किया जाय, तो देवताओंकी विजय हो सकती है। क्या तुम उस महामानवकी अस्थि प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकते हो?'

'कार्य तो कठिन है, महाप्रभु! फिर भी मैं यथाशक्ति प्रयास निश्चय ही करूँगा। आप आशीर्वाद दें, यही कामना है।' इन्द्रने निवेदन किया।

'भगवान् देवाधिदेव तेरी सहायता करें।'

(३)

'श्रीचरणोंमें मेरा प्रणाम स्वीकार हो, महामुने!' 'कौन? क्या देवराज इन्द्रकी वाणी है?' महर्षिने जिज्ञासा की।

'हाँ! आपका अनुमान अक्षरशः सत्य है, महर्षि! परंतु, देवराज आज महाप्रभुके चरणोंमें एक याचकके

रूपमें उपस्थित हैं। जो हाथ हमेशा देते ही रहे हैं, वे ही आज श्रीमान्‌के समक्ष झोली लिये खड़े हैं।'

इन्द्रकी इस याचनासे भूतलके कण-कणमें 'जय दधीचि' 'जय भारत' का उद्घोष लगने लगा।

सुरेशने पुनः प्रार्थना प्रारम्भ की—'दानवीर! यह तो विदित ही होगा कि दानवोंके अत्याचार और पापाचारसे सत्यका ह्रास प्रारम्भ हो गया है, निखिल विश्वमें हाहाकार मचा हुआ है, सुरपुरमें घोर आतंक व्याप्त है और हिंसाकी भीषण ज्वालामें तप और पुण्य धू-धू कर जल रहे हैं।'

'मुझे ज्ञात है, देवराज! परंतु, इसका निराकरण कैसे होगा, इसपर भी आपने सोचा है?' महर्षिने गम्भीर होकर पूछा।

'हाँ! एक ही सम्बल शेष है। पापियोंके विनाशार्थ एवं धर्म-संस्थापनार्थ एक महामानवको अपने जीवनकी आहुति देनी होगी। बस, यही निराकरणका एकमात्र उपाय है।'

वह कौन भाग्यवान् मानव है, जिसकी बलिसे अमरपुत्रोंकी एवं धर्मकी रक्षा हो सकती है, सुरराज!' महर्षिने गद्गद होकर तत्क्षण जिज्ञासा की।

'वह महामानव महर्षि दधीचि हैं, जिनकी अस्थिसे वज्र प्रस्तुत किया जायगा, जो दानवोंका संहार करेगा। महात्मन्! बस, इसीमें जन-हित सन्निहित है। इसी लोकहिताय भावनाने श्रीचरणोंके दर्शन कराये हैं।' तत्पश्चात् इन्द्र अपलक नेत्रोंसे महर्षिके मुखपटपर अंकित होनेवाले मनोभावोंका सूक्ष्म अन्वेषण करने लगे।

सुरराजके वचनोंपर महर्षि मुसकराये, फिर दृढ़ स्वरमें बोले—'सुरेश! वह तन धन्य है, जो किसीके काम आये। शरीर तो नश्वर है ही, फिर इसके लिये चिन्ता कैसी? विषाद कैसा? मानव-शरीरकी सार्थकता इसीमें है कि यह दूसरेके हितमें उत्सर्ग हो जाय। पुष्प क्या अपने लिये खिलते हैं? पादप क्या अपने फलोंको स्वयं भक्षण करते हैं? क्या सर-सरिताएँ अपने जलका स्वयं पान करती हैं? जब जड-पदार्थोंमें इतनी जन-हितकी भावनाएँ हैं, तो हम मानव इससे वंचित क्यों हों? देवराज! मेरा यह पार्थिव शरीर सादर एवं सप्रेम समर्पित है। अपने इस शरीरको मैं स्वयं ही त्याग देता हूँ—

स्वं चापि देहं स्वयमुत्सृजामि॥

(महा० वन० १००।२१)

फिर दूसरे ही क्षण दानवीरने यौगिक-क्रियाद्वारा श्वास रोक लिया और उनका नश्वर शरीर तत्क्षण भू-लुण्ठित हो गया।

महर्षि दधीचिके इस अनुपम त्याग, उनकी अलौकिक दानशीलता, उनकी परहितभावना आदि गुणोंको स्मरणकर देवताओंने आकाशसे पुष्प-वर्षा की और वसुन्धराके अणु-अणु 'दानवीर दधीचिकी जय' बोल उठे।

दानवीर कर्ण

[एकाङ्की नाटक]

(श्रीशिवशंकरजी वाशिष्ठ)

पात्र-परिचय

श्रीकृष्ण—द्वारकाधीश भगवान्।

अर्जुन—पाँच पाण्डवोंमेंसे एक।

कर्ण—दुर्योधनके सेनापति, अंगनरेश।

प्रथम दृश्य

[अस्ताचलकी ओर गमन करनेवाले भगवान् भास्करकी अन्तिम किरणें कुरुक्षेत्रकी विशाल रक्तरंजित भूमिपर पड़े हुए घायल योद्धाओंकी ओर दीनभावसे देख रही हैं। महादानवीय राज्य-लालसाकी युद्ध-आहुतिमें अनेक भारतीय वीरोंकी बलि हो चुकी है। महाभारतकी महाविनाशकारी ज्वाला भारतके कण-कणसे प्रज्वलित हो अन्तर्राष्ट्रीय प्रदेशोंतक अपना धुआँ पहुँचा चुकी है। युद्धका पन्द्रहवाँ दिन बीत चला है। दिवाकरकी सुनहली किरणोंके साथ आजके युद्धकी इतिश्री हो चुकी है। दोनों पक्षोंके शेष योद्धा अपने-अपने शिविरोंमें रात्रि बिताने जा चुके हैं। कुरुक्षेत्रकी रक्तवर्ण धरा नरमुण्डों, मानवीय लोथों, जर्जरित मृतपशुओं, अस्त-व्यस्त घायलों और कटे-छटे अस्त्र-शस्त्रोंकी उत्पादिका-सी बनी बीभत्स सृष्टिकी अवतारणा कर रही है। चारों ओर नीरवताका साम्राज्य छाया हुआ है। कभी श्वानोंके रोनेकी ध्वनि, सियारोंकी चीत्कार, चील और गिद्धोंके पंखोंकी फड़फड़ाहट एवं किसी घायल वीरकी कराह उस चहुँदिशिव्यापिनी नीरवताको भंग कर देती है। इसी समय अपने भारी पगचापोंको मुखरित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और पाण्डव वीर अर्जुन बीभत्स सृष्टिके एक छोरसे आते दिखायी देते हैं।]

अर्जुन—केशव, कहाँ ले आये आप!

श्रीकृष्ण—भय लगता है?

अर्जुन—नहीं। जबतक अर्जुनके हाथोंमें गाण्डीव है और मधुसूदन उसके सहायक हैं, वह त्रैलोक्यमें किसीसे भी नहीं डरता।

श्रीकृष्ण—तब यहाँ आनेपर आश्चर्य क्यों?

अर्जुन—आश्चर्य नहीं, मधुसूदन खेद!

श्रीकृष्ण—खेद!

अर्जुन—हाँ, अपने प्रियजनोंकी इस अवस्थापर खेद ही तो होना चाहिये। ये हाथ पितामह भीष्मको वेध सकते हैं, गुरु द्रोणका सिर काट सकते हैं, महावीर कर्णको धराशायी बना सकते हैं और नेत्र उनका अवलोकन भी कर सकते हैं, किंतु यहाँका यह दृश्य""मुझसे नहीं देखा जायगा। मधुसूदन!""नहीं देखा जायगा।

श्रीकृष्ण—भावनामें न बहो अर्जुन! भावनासे कर्तव्य श्रेष्ठ है। भूल गये गीताके वे अमूल्य वाक्य।

अर्जुन—याद हैं, और उसी प्रकार स्मृति-पटपर अंकित हैं, जैसे आपके इस सेवकके गाण्डीवकी टंकोर शत्रुओंके कलेजेपर अपनी स्थायी छाप जमाये हुए है।

श्रीकृष्ण—फिर इस मोहका कारण?

अर्जुन—मोह! मोह, नहीं केशव! इस दृश्यको देखनेसे हृदयमें नाशवान् जीवनकी क्षणभंगुरता और उसके प्रति विरक्तिका प्रादुर्भाव हो रहा है और अगर मैं इस वातावरणमें कुछ देर और रहा तो निस्सन्देह अपनी इस भावनापर विजय प्राप्त नहीं कर सकूँगा।

श्रीकृष्ण—[मन्द स्मितिसे] विरक्ति! तुम जिसे विरक्ति कह रहे हो पार्थ! वह चंचल प्रवृत्तिकी एक विकृत रूप-रेखा है, जो अपनी अनुकूल परिस्थितियोंमें हृदयमें स्थित संचारी भावोंकी प्रेरणासे उद्बुद्ध होकर मानवीय विचारशृंखलाकी कड़ियोंको जर्जरित कर देती है और प्रतिकूल परिस्थितियाँ होते ही दामिनीकी दमकके समान स्वयं लुप्त हो जाती है।

अर्जुन—[आश्चर्यसे] केशव!

श्रीकृष्ण—हाँ, अर्जुन! आओ चलें।

अर्जुन—किंतु कहाँ……।

श्रीकृष्ण—उस स्थानपर जहाँ महारथी दानवीर कर्ण-सरीखे योद्धा क्षत-विक्षत अवस्थामें पड़े मृत्युका आवाहन कर रहे हैं।

अर्जुन—'महारथी!' 'दानवीर!' केशव! आपके मुखसे ये शब्द कर्णके लिये शोभायमान नहीं प्रतीत होते।

श्रीकृष्ण—क्यों! क्या तुम कर्णको महारथी नहीं समझते! उनको दानवीर नहीं मानते।

अर्जुन—कर्ण महावीर हो सकते हैं; किंतु महारथी नहीं। दानवीर और वह भी सूतपुत्र! यह मैं स्वप्नमें भी नहीं सोच सकता केशव!

श्रीकृष्ण—तुम भूल रहे हो पार्थ! कदाचित् तुमने युद्धमें कीचड़में धँसे रथके पहियेको निकालनेमें प्रयत्नशील, शस्त्रहीन कर्णको अपने तीव्र बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया। सम्भव है, इसी अभिमानवश तुम उन्हें महारथी नहीं समझते; किंतु तुम्हें विदित नहीं, कि कर्णको धराशायी बनानेमें अकेले तुमने ही नहीं, कुछ अन्य शक्तियोंने भी कार्य किया है और इन सबके बाद कर्णकी पराजयका मूल कारण है, उनकी दानवीरता……।

अर्जुन—मुझे विश्वास नहीं होता।

श्रीकृष्ण—प्रत्यक्षको प्रमाणकी आवश्यकता नहीं। आओ धनंजय! हम तुम्हें कर्णके महान् व्यक्तित्वका परिचय करायें।

[पटाक्षेप]

द्वितीय दृश्य

स्थान—कुरुक्षेत्रकी रक्तरंजित धरा।

समय—वही सायंकाल।

[दो साधुओंका प्रवेश]

अर्जुन—केशव! इस वेशमें तो हमें माता कुन्ती भी नहीं पहचान सकतीं। बिलकुल याचक जँच रहे हैं।

श्रीकृष्ण—हाँ अर्जुन! सावधान! वह देखो सामने अंगराज कर्ण पड़े हैं।

[कर्णके समीप जाते हैं]

दोनों—अंगनरेशकी जय।

कर्ण—[दोनोंकी ओर देखते हुए क्षीण स्वरमें] आप! आप कौन हैं महानुभावो?

श्रीकृष्ण—हम याचक हैं।

कर्ण—[उठनेकी असफल चेष्टा करते हुए] धन्य भाग्य! जीवनकी अन्तिम वेलामें भी कर्ण याचकोंके दर्शनसे कृतार्थ हुआ; किंतु आप यहाँ……इस वातावरणमें कैसे पधारे?

अर्जुन—याचकोंका कार्य याचना करना होता है, समय-असमय देखना नहीं अंगराज! आप अपनी दानशीलताके कारण देश-देशान्तरोंमें प्रसिद्ध हैं। अतएव कुछ पानेकी इच्छासे हमलोग समीपके ग्रामसे यहाँ चले आये। पता चला आप आजके युद्धमें आहत होकर कुरुक्षेत्रकी पवित्र भूमिमें पड़े हुए हैं। दानवीर कर्णके अन्तिम दर्शनोंकी लालसाको हम याचक न रोक सके और इस युद्धभूमिमें भयानक दृश्योंको देखते, डरते-डराते हम आपतक आ ही पहुँचे।

कर्ण—[धीमे स्वरमें] अत्यन्त कृपा! बोलिये, इस स्थानपर मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

श्रीकृष्ण—हमें जौभर स्वर्ण चाहिये अंगनरेश!

कर्ण—स्वर्ण! स्वर्ण यहाँ कहाँ याचक? [कराहते हुए] यहाँ तो चारों ओर रुधिर……आप देख ही रहे हैं। आप मेरे मित्र दुर्योधनके पास चले जायँ, वहाँ आप जो

कुछ चाहेंगे, जो माँगेंगे, वह सब आपको मिल जायगा।

श्रीकृष्ण—चिन्ता न करो अंगराज! हम तो केवल आपके दर्शनोंके लिये आये थे। जब आपने हमारी इच्छा पूछी तो बता दी; नहीं तो कोई याचनाकी बात नहीं थी। अब जौभर स्वर्णके कारण कौन कौरव-शिविर जाय और व्यर्थ आपके मित्रोंको कष्ट दे।

अर्जुन—अच्छा, आज्ञा अंगनरेश।

[चलनेका उपक्रम करते हैं]

कर्ण—ठहरो याचक! कर्णसे माँगनेवाला आजतक निराश नहीं लौटा, तुम भी नहीं लौटोगे। मैं अपने मुखके इस स्वर्णदन्तसे तुम्हारी याचना पूर्ण करूँगा।

[घूँसा मारकर दाँत तोड़ते हैं, मुखसे रुधिरकी तीव्र धार बह निकलती है]

कर्ण—[दाँत याचकोंकी ओर करते हुए] लो याचक! कर्णके जन्मका यह अन्तिम चिह्न, अन्तिम वेलामें, अन्तिम बार कर्णके हाथसे ले लो……आज मैं प्रसन्न हूँ……अति प्रसन्न।

श्रीकृष्ण—छिः छिः राजन्! बुद्धिमान् होकर यह मुखका जूठा पदार्थ ब्राह्मणको दानमें देते हो। यदि देना ही है तो इसे जलसे धोकर शुद्ध करके दो।

कर्ण—जल……जल भी नहीं……तब…… मैं ……मैं क्या करूँ? बाणगंगा……हाँ यही……यही। याचक! कष्ट तो होगा, तनिक उधर पड़ा हुआ वह धनुष-बाण उठाकर मुझे दे सकते हो?

श्रीकृष्ण—वह धनुष-बाण……नहीं राजन्! नहीं, वह रुधिरमें सना पड़ा है। हम उसे स्पर्शकर अपने हाथोंको दूषित नहीं करेंगे।

कर्ण—अच्छा! तुम अपने हाथोंको दूषित न करो। कर्ण स्वयं उठा लेगा।

[भूमिपर घिसटते हुए जाकर धनुष-बाण उठाते हैं और एक हाथसे धनुष पकड़कर दूसरेसे बाण धन्वापर चढ़ाकर, जोरसे पृथ्वीतलपर मारते हैं। एक तीव्र जलधार निकलती है। उस स्वर्णदन्तको कर्ण उसमें धोकर याचकोंकी ओर बढ़ाते हैं]

कर्ण—लो याचक! तुम्हारी याचना पूरी हुई।

अर्जुन—हाँ, कर्ण! हमारी याचना पूर्ण हुई और साथ ही तुम्हारे प्रति मेरे अविश्वासकी कालिमा भी धुल गयी।

कर्ण—[आश्चर्यसे] कौन? तुम अर्जुन……और तुम……तुम श्रीकृष्ण! [नमस्कार करता है]

श्रीकृष्ण—हाँ कर्ण! हम अर्जुनको तुम्हारी पवित्र शूरता और दानवीरताका आदर्श दिखलाने लाये थे। धन्य हो तुम और धन्य है मातृ वसुन्धरा, जिसके अंकमें तुम-जैसे दानवीरका जन्म हुआ।

[श्रीकृष्ण और अर्जुन कर्णकी ओर विह्वल दृष्टिसे देखते हैं और तभी अन्धकारमयी निशाका प्रथम तारा टूटकर उत्तरकी ओर गिरता है।] **[पटाक्षेप]**

मयूरध्वजका बलिदान

जिन दिनों महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञका उपक्रम चल रहा था, उन्हीं दिनों रत्नपुराधीश्वर महाराज मयूरध्वजका भी अश्वमेधीय अश्व छूटा था, इधर पाण्डवीय अश्वकी रक्षामें श्रीकृष्ण-अर्जुन थे, उधर ताम्रध्वज। मणिपुरमें दोनोंकी मुठभेड़ हो गयी। युद्धमें भगवदिच्छासे ही अर्जुनको पराजित करके ताम्रध्वज दोनों अश्वोंको अपने पिताके पास ले गया। पर इससे महाराज मयूरध्वजके मनमें हर्षके स्थानपर घोर विषाद ही हुआ। कारण, वे श्रीकृष्णके अद्वितीय भक्त थे।

इधर जब अर्जुनकी मूर्च्छा टूटी, तब वे घोड़ेके लिये बेतरह व्यग्र हो उठे। भक्त-परवश प्रभुने ब्राह्मणका वेष बनाया और अर्जुनको अपना चेला। वे राजाके पास पहुँचे। राजा मयूरध्वज इन लोगोंके तेजसे चकित हो गये। वे इन्हें प्रणाम करने ही वाले थे कि इन लोगोंने 'स्वस्ति' कहकर उन्हें पहले ही आशीर्वाद दे दिया। राजाने इनके इस कर्मकी बड़ी भर्त्सना की। फिर इनके पधारनेका कारण पूछा। श्रीकृष्णने कहा—'मेरे पुत्रको सिंहने पकड़ लिया है। मैंने उससे बार-बार प्रार्थना की कि वह मेरे एकमात्र पुत्रको किसी प्रकार छोड़ दे। यहाँतक कि मैं स्वयं अपनेको उसके बदलेमें देनेको तैयार हो गया, पर उसने एक न मानी। बहुत अनुनय-विनय करनेपर उसने यह स्वीकार किया है कि राजा मयूरध्वज पूर्ण प्रसन्नताके साथ

अपने दक्षिणांगको अपनी स्त्री-पुत्रके द्वारा चिरवाकर दे सकें तो मैं तुम्हारे पुत्रको छोड़ सकता हूँ।'

राजाने ब्राह्मणरूप श्रीकृष्णका प्रस्ताव मान लिया। उनकी रानीने अर्धांगिनी होनेके नाते अपना शरीर देना चाहा, पर ब्राह्मणने दक्षिणांगकी आवश्यकता बतलायी। पुत्रने अपनेको पिताकी प्रतिमूर्ति बतलाकर अपना अंग देना चाहा, पर ब्राह्मणने वह भी अस्वीकार कर दिया।

अन्तमें दो खम्भोंके बीच 'गोविन्द, माधव, मुकुन्द' आदि नाम लेते महाराज बैठ गये। आरा लेकर रानी तथा
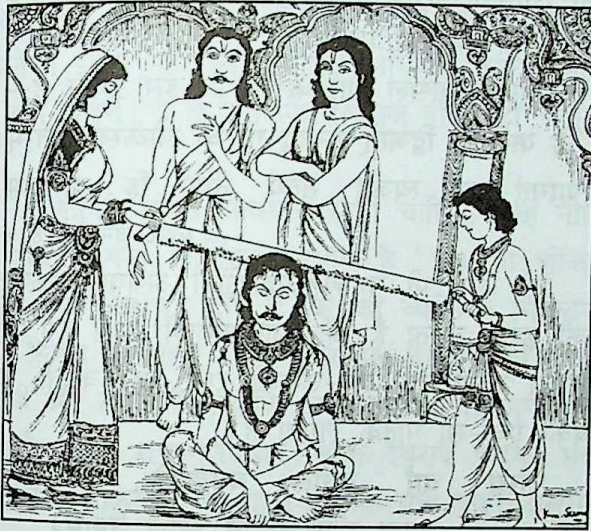
ताम्रध्वज चीरने लगे। जब महाराज मयूरध्वजका सिर चीरा जाने लगा, तब उनकी बायीं आँखसे आँसूकी बूँदें निकल गयीं। इसपर ब्राह्मणने कहा—'दुःखसे दी हुई वस्तु मैं नहीं लेता।' मयूरध्वजने कहा—'आँसू निकलनेका यह भाव नहीं है कि शरीर काटनेसे मुझे दुःख हो रहा है। बायें अंगको इस बातका क्लेश है—हम एक ही साथ जन्मे और बढ़े, पर हमारा दुर्भाग्य जो हम दक्षिणांगके साथ ब्राह्मणके काम न आ सके। इसीसे बायीं आँखमें आँसू आ गये।'

अब प्रभुने अपने-आपको प्रकट कर दिया। शङ्ख-चक्र-गदा धारण किये, पीताम्बर पहने, सघन नीलवर्ण, दिव्य ज्योत्स्नामय श्रीश्यामसुन्दरने ज्यों ही अपने अमृतमय करकमलसे राजाके शरीरको स्पर्श किया, वह पहलेकी अपेक्षा भी अधिक सुन्दर, युवा तथा पुष्ट हो गया। वे सब प्रभुके चरणोंपर गिरकर स्तुति करने लगे। प्रभुने उन्हें वर माँगनेको कहा। राजाने प्रभुके चरणोंमें निश्चल प्रेमकी तथा भविष्यमें 'ऐसी कठोर परीक्षा किसीकी न ली जाय'—यह प्रार्थना की। अन्तमें तीन दिनोंतक उनका आतिथ्य ग्रहणकर घोड़ा लेकर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन वहाँसे आगे बढ़े। (जैमिनीय अश्वमेध, अध्याय ४४ से ४७)

शरणागतरक्षक महाराज शिबि

देवराज इन्द्रने उशीनर-नरेश शिबिकी धर्मनिष्ठाकी प्रशंसा स्वर्गमें सुनी और उनके मनमें तेजोद्वेष जागा। शिबिकी परीक्षा लेनेका उन्होंने निश्चय किया। इन्द्र स्वयं बाज बने और अग्निदेवको कपोत बननेको प्रस्तुत कर लिया। पूरा कार्यक्रम बनाकर वे पृथ्वीकी ओर चले। देवताओंके नरेश तथा सर्वपूज्य हव्यवाह अग्नि पक्षी बने; किंतु जिसमें पक्षपात है, वही तो पक्षी है और देवता धर्मके पक्षपाती हैं। धर्मनिष्ठाकी परीक्षा लेनेका संकल्प उनके लिये अशोभन नहीं है।

महाराज शिबि अपने राजसदनमें प्रातःकालीन सन्ध्या-पूजन समाप्त करके सुखपूर्वक बैठे थे। इतनेमें एक कबूतर डरा-घबराया बड़े वेगसे उड़ता आया और उनकी गोदमें बैठकर उनके वस्त्रोंमें छिप जानेकी चेष्टा करने लगा। कबूतर काँप रहा था। महाराजने उसे स्नेहसे कर-स्पर्श दिया तो वह अपने आपमें सिकुड़कर दुबक गया। इतनेमें ही एक बाज उड़ता आया और सामने बैठकर स्पष्ट मनुष्य-भाषामें बोला—'यह मेरा आहार है। प्रजापालकको किसीका आहार नहीं छीनना चाहिये। आप इसे मुझे दे दें।'

नरेश बोले—'यह मेरी शरण आया है। शरणागतकी रक्षा करना धर्म है। इसका त्याग मैं नहीं कर सकता।'

'मैं क्षुधातुर हूँ और पक्षी मेरा नैसर्गिक भोजन है।' बाजने कहा। 'आप मेरा आहार छीनकर मुझे मृत्युके मुखमें देनेका पाप कर रहे हैं। मैं इतना थक गया हूँ कि अब

दूसरा शिकार भी नहीं कर सकता।'

'आवश्यक नहीं है कि तुम इस पक्षीका ही भोजन करो।' शिबिने उत्तर दिया। 'तुम्हारे आहारकी व्यवस्था की जा सकती है।'

'आप जानते हैं कि मैं मांसाहारी प्राणी हूँ। फल, अन्न, शाक या दूध मेरा भोजन नहीं है।' बाज बोला। 'मुझे भोजन देनेके लिये किसी प्राणीको आप मरवायेंगे ही और वह भी आपके राज्यका, आपका रक्षणीय प्राणी ही होगा। तब इस कपोतसे ही आपको क्यों मोह है? मैं मृत प्राणीका अपवित्र मांस तो खाता नहीं हूँ।'

'किसी अन्य प्राणीका मांस मैं तुम्हें नहीं दूँगा।' शिबिके स्वरमें निष्कम्प निश्चय था। 'तुम मेरे मांससे अपनी क्षुधा-तृप्ति कर सकते हो! मैं जीवित हूँ और मेरा मांस अपवित्र है, यह तुम नहीं मानते होगे।'

'आपका शरीर सम्पूर्ण प्रजाके लिये आवश्यक है। अतः आपका यह निर्णय समझदारीका नहीं है।' बाजने कहा। 'फिर भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आप इस कपोतकी तौलके बराबर मांस मुझे दे दें। अधिकका लोभ मैं नहीं करता और इससे कममें मेरा काम नहीं चलेगा।'

काँटा-तराजू मँगाया गया। कबूतर एक पलड़ेपर बैठा। दूसरा कोई महाराजके शरीरपर आघात करनेका साहस भला कैसे करता, स्वयं नरेशने ही तलवार उठायी और अपना

बायाँ हाथ भुजासहित काटकर पलड़ेपर रख दिया; किंतु आश्चर्य, कबूतर बहुत भारी था। राजाने क्रमशः दोनों पैर घुटनोंतक और फिर कटिसे नीचेतक दोनों जाँघें काटकर पलड़ेपर रख दीं; किंतु कबूतर अब भी भारी ही बना रहा।

'यह सब व्यर्थ है!' उनका अवशिष्ट धड़ रक्तसे लथपथ हो रहा था। उन्होंने एक हाथसे आभूषण तथा वस्त्र, मुकुट आदि उतारे और बोले—'तुम मेरे पूरे शरीरको यथेच्छ खाकर अपनी क्षुधा मिटा लो!'

शिबि स्वयं किसी प्रकार लुढ़ककर पलड़ेपर चढ़ गये थे। उन धर्मप्राणकी तुलना करने—समता करनेकी शक्ति भी उस छद्म-कपोतमें नहीं थी। कपोतका पलड़ा हल्का पड़कर ऊपर उठ गया।

'राजन्! आपका कल्याण हो!' सहसा बाज और कपोत देवराज इन्द्र तथा अग्निके रूपमें प्रकट हो गये। राजा शिबिका शरीर स्वस्थ, सर्वांगपूर्ण हो गया। इन्द्रने कहा—'आपका धर्म महान् है!'

शरणागतवत्सल शिबिके उद्गार इस प्रकार हैं—

यो हि कश्चिद् द्विजान् हन्याद् गां वा लोकस्य मातरम्।
शरणागतं च त्यजते तुल्यं तेषां हि पातकम्॥

(महा० वन० १३१।६)

जो कोई भी मनुष्य ब्राह्मणोंकी अथवा लोकमाता गौकी हत्या करता है और जो शरणमें आये हुए दीन प्राणीको त्याग देता है—उसकी रक्षा नहीं करता; इन सबको एक-सा पातक लगता है।

नास्य वर्षं वर्षति वर्षकाले
नास्य बीजं रोहति काल उप्तम्।
भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे
न त्राणं लभेत् त्राणमिच्छन् स काले॥
जाता ह्रस्वा प्रजा प्रमीयते
सदा न वासं पितरोऽस्य कुर्वते।
भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे
नास्य देवाः प्रतिगृह्णन्ति हव्यम्॥

(महा० वन० १९७।१२-१३)

जो मनुष्य अपनी शरणमें आये हुए भयभीत प्राणीको उसके शत्रुके हाथमें सौंप देता है, उसके देशमें वर्षाकालमें वर्षा नहीं होती, उसके बोये हुए बीज नहीं उगते और कभी संकटके समय वह जब अपनी रक्षा चाहता है, तब उसकी रक्षा नहीं होती। उसकी सन्तान बचपनमें ही मर जाती है, उसके पितरोंको पितृलोकमें रहनेको स्थान नहीं मिलता। (वे स्वर्गमें जानेपर नरकोंमें ढकेल दिये जाते हैं) और देवता उसके हाथका हव्य ग्रहण नहीं करते।

दैत्यराज विरोचन

दैत्यराज भक्तश्रेष्ठ प्रह्लादके पुत्र थे विरोचन और प्रह्लादके पश्चात् ये ही दैत्योंके अधिपति बने थे। प्रजापति ब्रह्माके समीप दैत्योंके अग्रणीरूपमें धर्मकी शिक्षा ग्रहण करने विरोचन ही गये थे। धर्ममें इनकी श्रद्धा थी। आचार्य शुक्रके ये बड़े निष्ठावान् भक्त थे और शुक्राचार्य भी इनसे बहुत स्नेह करते थे।

अपने पिता प्रह्लादजीका विरोचनपर बहुत प्रभाव पड़ा था। इसलिये ये देवताओंसे कोई द्वेष नहीं रखते थे। सन्तुष्टचित्त विरोचनके मनमें पृथ्वीपर भी अधिकार करनेकी इच्छा नहीं हुई; स्वर्गपर अधिकार करना, भला वे क्यों चाहते। वे तो सुतलके दैत्यराज होकर ही सन्तुष्ट थे।

'शत्रुकी ओरसे सावधान रहना चाहिये,' यह नीति है और सम्पन्न लोगोंका स्वभाव है 'अकारण शंकित रहना।' अर्थका यह दोष है कि वह व्यक्तिको निश्चिन्त और निर्भय नहीं रहने देता। असुरों एवं देवताओंकी शत्रुता पुरानी और सहज है; क्योंकि असुर रजोगुण-तमोगुणप्रधान हैं और देवता सत्त्वगुणप्रधान। अत: देवराज इन्द्रको सदा यह भय व्याकुल किये रहता था कि यदि कहीं असुरोंने अमरावतीपर आक्रमण कर दिया तो परम धर्मात्मा विरोचनका युद्धमें सामना करना देवताओंकी शक्तिसे बाहर है, उस समय पराजय ही हाथ लगेगी।

शत्रु प्रबल हो, युद्धमें उसका सामना सम्भव न हो तो उसे नष्ट करनेका प्रबन्ध पहले करना चाहिये। इन्द्र आक्रमण करके अथवा धोखेसे विरोचनको मार दें तो शुक्राचार्य अपनी संजीवनी-विद्याके प्रभावसे उन्हें जीवित कर देंगे और आजके प्रशान्त विरोचन क्रुद्ध होनेपर देवताओंके लिये विपत्ति बन जायँगे। अतएव देवगुरु बृहस्पतिकी मन्त्रणासे इन्द्रने अपने लक्ष्य-साधनहेतु ब्राह्मणका वेश बनाया और सुतल पहुँचे।

विरोचनने अभ्यागत ब्राह्मणका स्वागत किया। उनके चरण धोये, पूजा की। इसके पश्चात् हाथ जोड़कर बोले—'मेरा आज सौभाग्य उदय हुआ कि मुझ असुरके सदनमें आपके पवित्रतम चरण पड़े। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

इन्द्रने विरोचनकी दानशीलताकी बहुत-बहुत प्रशंसा की और विरोचनके आग्रहपर बोले—'मुझे आपकी आयु चाहिये।'

दैत्यराजका सिर माँगना व्यर्थ था; क्योंकि गुरु शुक्राचार्यकी संजीवनी कहीं गयी नहीं थी। किंतु विरोचन किंचित् भी हतप्रभ नहीं हुए। उन्होंने प्रसन्नतासे कहा—'मैं धन्य हूँ। मेरा जन्म लेना सफल हो गया। मेरा जीवन स्वीकार करके आपने मुझे कृतकृत्य कर दिया।'

विरोचनने अपने हाथमें खड्ग उठाया और मस्तक

काटकर दूसरे हाथसे ब्राह्मणकी ओर बढ़ा दिया। वह मस्तक लेकर इन्द्र भयके कारण शीघ्र स्वर्ग चले आये। विरोचनको तो भगवान्ने अपना पार्षद बना लिया।

हो पुण्य में तू रत सदा, दे दान तू सन्मान से। उत्साह से सुख मान कर, दे दान मत अभिमान से॥
हैं वस्तु सब विश्वेश की, अभिमान तेरा है वृथा। निज स्वार्थ तज कर कार्य कर, बादल करें वर्षा यथा॥
अभिमान मत कर द्रव्य का, अभिमान तज दे गेह का। अभिमान कुल का त्याग दे, अभिमान मत कर देह का॥
कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, सब ईश को ही मान रे। मन बुद्धि शिव को अर्प दे, शिव का सदा कर ध्यान रे॥

—स्वामी श्रीभोलेबाबाजी

महादानी महाराज रघु

सूर्यवंशमें जैसे इक्ष्वाकु, अजमीढ आदि राजा बहुत प्रसिद्ध हुए हैं, उसी प्रकार महाराज रघु भी बड़े प्रसिद्ध पराक्रमी, धर्मात्मा, भगवद्भक्त और पवित्रजीवन हो गये हैं। इन्हींके नामसे 'रघुवंश' प्रसिद्ध हुआ। इसीलिये सच्चिदानन्दघन परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके रघुवर, राघव, रघुपति, रघुवंशविभूषण, रघुनाथ आदि नाम हुए। ये बड़े धर्मात्मा थे। इन्होंने अपने पराक्रमसे समस्त पृथ्वीको अपने अधीन कर लिया था। चारों दिशाओंमें दिग्विजय करके ये समस्त भूमिखण्डके एकच्छत्र सम्राट् हुए। ये प्रजाको बिलकुल कष्ट नहीं देना चाहते थे, 'राज्यकर' भी ये बहुत ही कम लेते थे और विजित राजाओंको भी केवल अधीन बनाकर छोड़ देते थे, उनसे किसी प्रकारका कर वसूल नहीं करते थे।

एक बार ये दरबारमें बैठे थे कि इनके पास कौत्स नामके एक स्नातक ऋषिकुमार आये। अपने यहाँ स्नातकको देखकर महाराजने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया।
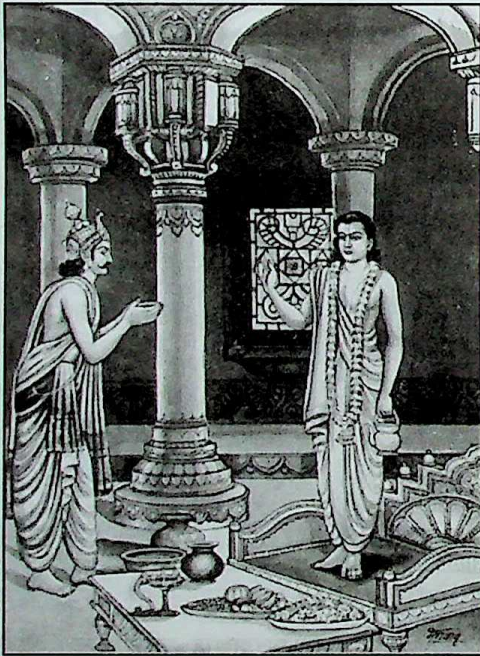
पाद्य-अर्घ्यसे उनकी पूजा की। ऋषिकुमारने विधिवत् उनकी पूजा ग्रहण की और कुशल-प्रश्न पूछा। थोड़ी देरके अनन्तर ऋषिकुमार चलने लगे, तब महाराजने कहा—'ब्रह्मन्! आप कैसे पधारे और बिना कुछ अपना अभिप्राय बताये आप लौटे क्यों जा रहे हैं?'

ऋषिकुमारने कहा—'राजन्! मैंने आपके दानकी ख्याति सुनी है, आप अद्वितीय दानी हैं। मैं एक प्रयोजनसे आपके पास आया था; किंतु मैंने सुना है कि आपने यज्ञमें अपना समस्त वैभव दान कर दिया है। यहाँ आकर मैंने प्रत्यक्ष देखा कि आपके पास अर्घ्य देनेके लिये भी कोई धातुका पात्र नहीं है और आपने मुझे मिट्टीके पात्रसे अर्घ्य दिया है, अतः अब मैं आपसे कुछ नहीं कहता।'

राजाने कहा—'नहीं, ब्रह्मन्! आप मुझे अपना अभिप्राय बताइये; मैं यथासाध्य उसे पूरा करनेकी चेष्टा करूँगा।'

स्नातकने कहा—'राजन्! मैंने अपने गुरुके यहाँ रहकर सांगोपांग वेदोंका अध्ययन किया। अध्ययनके अनन्तर मैंने गुरुजीसे गुरुदक्षिणाके लिये प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'हम तुम्हारी सेवासे ही सन्तुष्ट हैं, मुझे और कुछ भी दक्षिणा नहीं चाहिये।' गुरुजीके यों कहनेपर भी मैं बार-बार उनसे गुरुदक्षिणाके लिये आग्रह करता ही रहा। तब अन्तमें उन्होंने झल्लाकर कहा—'अच्छा तो चौदह कोटि सुवर्ण-मुद्रा लाकर हमें दो।' मैं इसीलिये आपके पास आया था।'

महाराजने कहा—'ब्रह्मन्! मेरे हाथोंमें धनुष-बाणके रहते हुए कोई विद्वान् ब्रह्मचारी ब्राह्मण मेरे यहाँसे विमुख जाय तो मेरे राज-पाट, धन-वैभवको धिक्कार है। आप बैठिये, मैं कुबेर-लोकपर चढ़ाई करके उनके यहाँसे धन लाकर आपको दूँगा।'

महाराजने सेनाको सुसज्जित होनेकी आज्ञा दी। बात-की-बातमें सेना सज गयी। निश्चय हुआ कि कल प्रस्थान होगा। प्रातःकाल कोषाध्यक्षने आकर महाराजसे निवेदन किया कि महाराज! रात्रिमें सुवर्णकी वृष्टि हुई और समस्त कोष सुवर्ण-मुद्राओंसे भर गया है। महाराजने जाकर देखा कि सर्वत्र सुवर्णमुद्राएँ भरी हैं। वहाँ जितनी सुवर्णमुद्राएँ थीं, उन सबको महाराजने ऊँटोंपर लदवाकर ऋषिकुमारके साथ भेजना चाहा। ऋषिकुमारने देखा, ये मुद्राएँ तो नियत संख्यासे बहुत अधिक हैं, तब उन्होंने राजासे कहा—

'महाराज! मुझे तो केवल चौदह कोटि ही चाहिये। इतनी मुद्राओंका मैं क्या करूँगा, मुझे तो केवल कामभरके लिये चाहिये।' इस त्यागको धन्य है।

महाराजने कहा—'ब्रह्मन्! ये सब आपके ही निमित्त आयी हैं, आप ही इन सबके अधिकारी हैं, आपको ये सब मुद्राएँ लेनी ही होंगी। आपके निमित्त आये हुए

द्रव्यको भला, मैं कैसे रख सकता हूँ?'

ऋषिकुमारने बहुत मना किया, किंतु महाराज मानते ही नहीं थे, अन्तमें ऋषिको जितनी आवश्यकता थी, वे उतना ही द्रव्य लेकर अपने गुरुके यहाँ चले गये। शेष जो धन बचा, वह सब ब्राह्मणोंको दानमें दे दिया गया। ऐसा दाता पृथ्वीपर कौन होगा, जो इस प्रकार याचकोंके मनोरथ पूर्ण करे! अन्तमें महाराज अपने पुत्र अजको राज्य देकर तपस्या करने वनमें चले गये। अजके पुत्र महाराज दशरथ हुए, जिन्हें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीरामचन्द्रके पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्रीकृष्णभक्त कवि रहीमजीकी दानशीलता

(श्रीजगदीशप्रसादजी त्रिवेदी, एम०ए० (हिन्दी), बी०एड०)

भारतवर्षमें सन् १५५६ ई०से सन् १६०५ ई०तक महान् मुगलसम्राट् अकबरका शासन रहा था। यह काल हिन्दी भक्ति-काव्य-सृजनका स्वर्णयुग था। सगुण-भक्तिधारा दो शाखाओंमें विभक्त हो गयी थी। प्रथम रामभक्तिशाखा, जिसके प्रमुख भक्तकवि तुलसीदासजी थे। द्वितीय कृष्णभक्तिशाखा, जिसके प्रमुख भक्तकवि सूरदासजी थे। अन्य श्रीकृष्णभक्त कवियोंमें नन्ददास, मीराँबाई, रसखान और रहीम भी बहुत विख्यात थे। कवि रहीम (जन्म संवत् १६१० विक्रमी)-का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। वे बादशाह अकबरके अभिभावक बैरम खाँके सुपुत्र थे। शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करनेके पश्चात् रहीमने सम्राट् अकबरके शासनकालमें राजमन्त्री, सेनाध्यक्ष और प्रशासकके पदोंपर रहकर राजकार्य किया था।

कवि रहीम बहुभाषाविद्‌के रूपमें संस्कृत, फारसी, अरबी आदिमें पारंगत थे। उन्होंने अवधीभाषामें बरवै-नायिका-भेद और व्रजभाषामें रहीम-दोहावलीकी रचना की थी। मुस्लिम ग्रन्थोंके पठनके साथ-साथ उन्होंने हिन्दू धर्मशास्त्रों और पुराणोंका भी अध्ययन किया था, जिससे उनके हृदयपर भारतीय संस्कृति, दर्शन और धर्मका गहरा प्रभाव पड़ा, अतः इससे वे भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिकी ओर अग्रसर होकर उनके भक्तिभावमें निमग्न रहने लगे। फलस्वरूप वे श्रीकृष्णके अनन्य भक्त कहलाये—

तैं रहीम मन आपनौ कीन्हौं चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यौ रहे, कृष्णचन्द्र की ओर॥

रहीमकी प्रभुपर अपार श्रद्धा, प्रीति और आस्था थी तथा उनका पूर्ण विश्वास था कि मानवजीवनमें घटित समस्त कार्यकलाप भी भगवान्‌की देन और कृपापर निर्भर होते हैं।

दैन चहैं करतार जिन्हैं सुख, सो तो रहीम टरैं नहिं टारे।
उद्यम पौरुष कीने बिना, धन आप ही आवत हाथ पसारे।
देव हँसैं मन ही मन में विधिना के प्रपंच लखैं कछु न्यारे।
पूत भयो वसुदेव के भौंन औ नौबत बाजत नंद के द्वारे।

भक्तकवि रहीम मानते थे कि दानकी महिमा महान् है। रहीम स्वयं महादानी थे। वे अनाथों, असहायों और आश्रितोंके स्वामी थे। अस्तु, उनको युगका दानवीर कर्ण कहा गया है। जिस प्रकार दया धर्मका मूल है, उसी प्रकार दान भी भक्तिका एक स्वरूप है। इसीलिये रहीमने निज जीवनमें परोपकार और दान-दक्षिणाको विशेष महत्त्व दिया था। वे कहते थे कि पृथिवीपर दानी और परोपकारी पुरुष होने चाहिये, जो दीन-दुःखियोंकी सुध लेते रहें। उनका प्रसिद्ध दोहा प्रस्तुत है—

दीन सबन को लखत है, दीनहि लखे न कोय।
जो रहीम दीनहि लखे, दीनबन्धु सम होय॥

मानवता इसीमें ही है कि मनुष्य दूसरोंके लिये भी जीवनयापन करना सीखे। प्रस्तुत है उदाहरणार्थ दोहा—

तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहि न पानि।
कह रहीम पर काज हित, सम्पति सुचहि सुजानि॥

सज्जनोंकी सम्पत्ति और विभूति परोपकारके लिये ही होती है। अतएव रहीम अपने जीवनमें जी भी सम्पत्ति अर्जित करते थे, उसमेंसे अधिकांश धनराशि दीन-दुःखियोंको दानके रूपमें देते रहते थे। उनके द्वारसे कोई

भी याचक रिक्त हाथ नहीं लौटता था। यहाँ अत्यधिक प्रसिद्ध जनश्रुतिका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है—

एक दीन ब्राह्मण अर्थाभावके कारण अपनी सुपुत्रीका विवाह करनेमें असमर्थ था। वह आर्थिक सहयोगके लिये गोस्वामी तुलसीदासजीकी सेवामें उपस्थित हुआ। महाकवि तुलसीदासजीने पत्रमें निम्न पंक्ति लिखकर उस ब्राह्मणको वह पत्र देते हुए भक्तकवि रहीमके पास भेज दिया—

'सुर तिय, नर तिय, नाग-तिय अस चाहत-सब कोय।'

महादानी रहीमने ब्राह्मणको आशासे भी अधिक धनराशि देकर सन्तुष्ट किया तथा पत्रोत्तरके रूपमें तुलसीदासजीकी प्रशंसा और सम्मानमें निम्न पंक्ति लिखकर वह पत्र ब्राह्मणको दे दिया—

गोद लिए हुलसी फिरें, तुलसी सो सुत होय।

इस प्रकार रहीमके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनमें दान एवं परोपकारका अत्यन्त महत्त्व था। वे जानते थे कि इनसे उनको आत्मबल, आत्मविश्वास, आत्मसुख और शुभ पुण्य प्राप्त होता है, साथ ही मनमें सन्तोष, शान्ति, प्रसन्नता और आनन्दकी वृद्धि होती है।

दानवीर रहीमके मानवतासे परिपूर्ण व्यक्तित्वके विषयमें विदित एक विशेष जनश्रुति उल्लेखनीय है। एक सीधा-सादा ग्रामीण व्यक्ति निर्धनताके कारण अत्यन्त दुःखी था। वह येन-केन-प्रकारेण महादानी रहीमजीकी हवेलीके द्वारपर पहुँच गया। उसने द्वारपालसे कहा, मैं रहीमजीका साढ़ू हूँ। उनसे मिलनेके लिये आया हूँ। कृपया उन्हें मेरे आगमनकी सूचना दे दें। द्वारपालने रहीमजीको तुरंत सूचित कर दिया। कविवर रहीम हवेलीके द्वारपर आये और उस व्यक्तिको ससम्मान अपने कक्षमें ले गये। सर्वप्रथम उन्होंने जलपान कराकर स्वागत-सत्कार किया। फिर रहीमने उससे पूछा—महोदय, आप और मैं किस प्रकार, किस रिश्तेसे साढ़ू हैं? उस ग्रामीण व्यक्तिने विनम्रतासे उत्तर दिया—श्रीमान् सम्पत्ति और विपत्ति दो सगी बहनें हैं। सम्पत्ति आपके घरमें है और विपत्ति मेरे घरमें है। यह सुनते ही रहीमजीके नेत्रोंमें प्रीति, श्रद्धा और करुणाके आँसू छलक आये। उन्होंने मुद्राओंसे भरी थैली और अनेक नवीन वस्त्र उस व्यक्तिको सहर्ष भेंट किये तथा घोड़ेपर बैठाकर उन्हें विदा किया एवं साथमें गाँवतक एक नौकर भी भेजा।

महादानी रहीमकी दानशीलता, विनम्रता, उदारता तथा निरभिमानिता-जैसे गुणोंके सम्बन्धमें महाकवि गंगने निम्न दोहा लिखकर उनके पास भेजा था—

सीखे कहाँ नवाब जू, ऐसी देनी दैन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचो करें, त्यों त्यों नीचे नैन॥

कृष्णभक्त कवि रहीमने इसका उत्तर निम्न प्रकार दिया था—

देनहार कोई और है, देत रहे दिन रैन।
लोग भरम मो पर करें, यातें नीचे नैन॥

इस प्रकार रहीमके तन-मनमें दानशीलता और विनम्रता हृदयकी सच्ची प्रेरणाके रूपमें थी। यश और प्रशंसाकी कामनासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। भक्तकवि रहीम जानते थे कि दान भक्तिका क्रियात्मक भाव है। अस्तु, वे भगवान्‌को ही दान-देनहार मानते थे। साथ ही वे भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिमें सदैव तल्लीन रहा करते थे। वे कहते थे कि माखन-चाखनहार कृष्ण ही पत-राखनहार हैं। वे वृन्दावनमें भी जाते रहते थे।

सम्राट् अकबरके निधनके पश्चात् जहाँगीर भारतके बादशाह हुए। जहाँगीरने रहीमको किसी कारणवश अपराधी मान लिया और उनकी समस्त सम्पत्ति तथा जागीर छीन ली। रहीमको अत्यधिक दुःख अर्थाभावका तब होता था, जब याचक उनके द्वारसे खाली हाथ लौट जाता था।

तब ही लौं जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम॥

रहीमने अपने जीवनमें सुख-दुःख और उतार-चढ़ाव देखे थे। सेनाध्यक्ष रहीम कभी हाथीपर बैठे और कभी उन्हें नंगे पैर पैदल भी चलना पड़ा। उन्होंने अपार धन-राशि याचकोंको दान कर दी। द्वार-द्वार जाकर मधुकरी भी माँगनी पड़ी।

इस प्रकार रहीमको अपने जीवनमें इस संसारका गहन अनुभव हो गया था तथा उनको जो भी अच्छी-बुरी अनुभूति हुई, उसे दोहोंके माध्यमसे अभिव्यक्त

किया था। यथा—

कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गये पछिताय।
सम्पति के सब जात है, विपति सबै लै जाय॥
रहिमन चुप हो बैठिये, देख दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइ हैं, बनत न लगि हैं देर॥

रहीमको भगवान्, भक्ति और भाग्यपर अटूट आस्था थी। उनका अवतारवादमें भी अत्यन्त विश्वास था। अत: उन्होंने कृष्णभक्तिसे ओत-प्रोत विनयके पदोंकी रचना की और वे दैन्यभावसे प्रतिदिन सस्वर पाठ करने लगे। कहा जाता है कि बादशाह जहाँगीरने रहीमको उनकी जागीर लौटा दी थी।

कवि रहीमको विपदावस्थाके साथ-साथ वृद्धावस्थाका भी सामना करना पड़ा और वे चित्रकूट चले गये। यहाँ प्रस्तुत है उनका यह दोहा—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देस॥

कठोपनिषद्के नचिकेतोपाख्यानमें प्रतिपादित दानका स्वरूप

(डॉ० श्रीश्यामसनेहीलालजी शर्मा, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)

दानके स्वरूपके विषयमें कठोपनिषद् बहुत ही स्पष्ट धारणा व्यक्त करता है। वहाँ स्पष्ट कहा गया है—**'अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्॥'** अर्थात् अनुपयोगी और महत्त्वहीन पदार्थोंका दाता सुखरहित (**अनन्दाः**) लोकों (शूकर-कूकरादि निम्न योनियों और नरकादि लोकों)-को प्राप्त करता है। इससे स्पष्ट है कि दाताको दान देते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि वह सर्वदा उत्तम, उपयोगी और सार्थक पदार्थ ही दानमें दे। दान-जैसे पवित्र कर्मको करता हुआ व्यक्ति यदि निरर्थक, अनुपयोगी तथा दुःखदायिनी चीजोंका दान करता है तो ऐसे दानसे दानदाताका कोई भला नहीं होता है, अपितु अनिष्ट और अमंगल ही होता है।

दानके उक्त स्वरूपकी स्थापनाके लिये कठोपनिषद्ने नचिकेतोपाख्यानका सहारा लिया है। कथा सुविदित है—एक बार गौतमवंशीय उद्दालक ऋषिने विश्वजित् नामक यज्ञ किया। इस यज्ञमें उन्होंने अपना सारा धन (गोधन) दान कर दिया। उद्दालकके घरमें गोधनकी प्रचुरता थी और वे उसी गोधनको होतादि ऋत्विजोंको दानमें देकर अपना मंगल चाह रहे थे। जिस समय ये गौएँ दक्षिणाके रूपमें देनेके लिये लायी जा रही थीं, उस समय उद्दालकका पुत्र नचिकेता उनको देख रहा था। उसने देखा कि उसके पिता जिन गौओंको दानमें दे रहे हैं वे गौएँ अत्यन्त दयनीय स्थितिमें हैं। वे दानमें देनेयोग्य नहीं हैं; वे **'पीतोदकाः'** हैं अर्थात् जो अन्तिम बार जल पी चुकी हैं और अब उनमें झुककर जल पीनेकी शक्ति नहीं रही है, **'जग्धतृणाः'** हैं अर्थात् जो अन्तिम बार तृणादि खा चुकी हैं, अब उनके मुखमें घास चबानेके लिये दाँत नहीं रह गये हैं, **'दुग्धदोहाः'** हैं अर्थात् जिनका दूध अन्तिम बार दुहा जा चुका है, अब इनके थनोंमें तनिक भी दूध नहीं बचा है। इतना ही नहीं, वे गौएँ **'निरिन्द्रियाः'** भी हैं अर्थात् जिनकी इन्द्रियोंने काम करना छोड़ दिया है, अब इनमें गर्भधारण करनेतकका भी सामर्थ्य नहीं है। यह सब देखकर बालक नचिकेता सोचने लगा—

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्॥

(कठोपनिषद् १।१।३)

ऐसी अनुपयोगी और निरर्थक गौओंका दान करके पिताका कौन-सा भला होनेवाला है। ऐसी गौओंका दान तो दानके बहाने अपने भारको उतारने-जैसा है और दान ग्रहण करनेवालेको छलना है। इस प्रकारके दानसे दाताको 'अनन्द' लोक ही प्राप्त होता है, जहाँ सुख लेशमात्र भी नहीं होता। ऐसे दानसे पिताका अकल्याण होगा—यह सोचकर नचिकेता व्यथित हो गया।

दान या दक्षिणामें दी जानेवाली जो वस्तु दानदाताके स्वयंके लिये उपयोगी नहीं है, महत्त्वपूर्ण नहीं है, सुखकर नहीं है, प्रिय नहीं है और सार्थक नहीं है, वह दान ग्रहण करनेवालेके लिये कैसे उपयोगी, महत्त्वपूर्ण, सुखद और प्रिय हो सकती है? वह उसके लिये भी सर्वदा निरर्थक

है। ऐसी वस्तुको सर्वस्व-दानके नामपर देनेवाले अपने पिताको अनिष्टकारी परिणामसे बचानेके लिये नचिकेताने पितासे कहा—

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति।

(कठोपनिषद् १।१।४)

हे तात! आप मुझे किसको देते हैं? उत्तर न मिलनेपर यही बात उसने दुबारा-तिबारा कही—'**द्वितीयं तृतीयं तꣳ होवाच**'—पिताजी, आप मुझे किसको देते हैं? नचिकेताके बार-बार पूछनेसे आवेशमें आये पिताने कह दिया कि—'**मृत्यवे त्वा ददामीति।**' (कठोपनिषद् १।१।४) तुझे मृत्युको देता हूँ। यह सुनकर नचिकेता पुनः सोचने लगा—

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः।
किꣳ स्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति॥

(कठोपनिषद् १।१।५)

अर्थात् मैं बहुत-से शिष्यों या पुत्रोंमें तो प्रथम श्रेणीके आचरणपर चलता आया हूँ (गुरु या पिताका मनोरथ समझकर उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा किये बिना ही जो उनकी रुचिके अनुरूप कार्य करने लगते हैं, वे प्रथम श्रेणी अर्थात् उत्तम आचरणपर चलनेवाले हैं।) और बहुतोंमें मध्यम श्रेणीके आचरणपर चलता हूँ (जो आज्ञा पानेपर कार्य करते हैं, वे मध्यम श्रेणीके आचरणवाले हैं।) नचिकेताका मन्तव्य यह है कि वह उत्तम और मध्यम श्रेणीका तो है पर अधम श्रेणीका नहीं जो पिताके मनोरथको जान लेने और स्पष्ट आदेश सुन लेनेके बाद भी तदनुसार कार्य नहीं करते। आज्ञा मिले और सेवा न करूँ ऐसा तो मैंने कभी किया ही नहीं। फिर पिताने मुझे ऐसा क्यों कहा? मृत्युदेवताका (यमस्य=यमका) भी ऐसा कौन-सा प्रयोजन है, जिसे आज मेरे द्वारा (मुझे देकर) पिताजी पूरा करेंगे। उसे लगा कि पिताजी क्रोधके आवेशमें ऐसा कह गये हैं और अब पश्चात्ताप कर रहे हैं तथापि पिताका वचन तो सत्य करना ही है। ऐसा विचार करके वह पिताके पास एकान्तमें पहुँचा और उनकी शोकनिवृत्तिके लिये आश्वस्तपूर्ण वचनोंसे प्रयास करने लगा। उसकी सत्यपरायणता देखकर उद्दालकने उसे यमराजके पास भेज दिया।

नचिकेतोपाख्यानके आरम्भमें ही दानका जो स्वरूप स्थिर हुआ है, उसका सार निम्नलिखित है—

(१) दाताको दानमें उत्तम पदार्थ ही देने चाहिये।

(२) अनुपयोगी और निरर्थक वस्तुओंके दानसे अनन्दलोक (दुःखप्रदलोक) ही मिलते हैं।

(३) दाताको दान निःस्पृह भावसे देना चाहिये। फलकी इच्छासे दिया गया दान सार्थक नहीं होता, जैसा कि उद्दालकने विश्वजित् यज्ञमें निरर्थक गौओंका दान किया। ऐसा दान कभी भी कल्याणकारी नहीं है।

(४) दानदाता और दानग्रहीताका दानविषयक प्रयोजन स्पष्ट और उत्तम होना चाहिये।

नचिकेता मृत्युके द्वारपर पहुँचा। कठोपनिषद्में इसे ही 'यम' कहा गया है। वेदोंमें आचार्यको मृत्यु कहा गया है—'**आचार्यो वै मृत्युः**' (अथर्ववेद ११।५।१४) अतः मृत्युसे अभिप्राय 'यम' नामक आचार्यसे है। आचार्यको मृत्यु इसलिये कहते हैं कि वह गुरुकुलमें प्रवेशार्थी बालकके पूर्वजन्मको बिलकुल ही तिरोहित करके विद्यासमाप्तिके पश्चात् उसे नया जन्म एवं वर्ण प्रदान करता है।

जिस समय नचिकेता मृत्युरूप यमाचार्यके द्वारपर पहुँचा, उस समय आचार्य घरपर नहीं थे। वह तीन दिन-रात अन्न-जल ग्रहण किये बिना आचार्यकी प्रतीक्षामें द्वारपर बैठा रहा। मृत्युके द्वारपर पहुँचनेका उसका प्रयोजन स्पष्ट था। वह अपने पुरातन संस्कारोंके प्रति मर जाना चाहता था। वह जीवनकी उस उलझनको सुलझा लेना चाहता था, जिसके लिये उसके पिता प्रेरक बने थे।

यमाचार्यके घर लौटनेपर आचार्य-पत्नीने उनसे कहा कि हे सूर्यपुत्र! स्वयं अग्निदेवता ही ब्राह्मण-अतिथिके रूपमें गृहीके घरमें प्रवेश करते हैं और साधुजन उनकी अर्घ्य-पाद्य-आसनादिके द्वारा शान्ति किया करते हैं, अतः आप उनके पाद-प्रक्षालनादिके लिये जल ले जाइये। जिसके घरमें ब्राह्मण-अतिथि बिना भोजन किये निवास करता है, उस मन्दबुद्धि मनुष्यको न तो वे इच्छित पदार्थ मिलते हैं, जिनके मिलनेकी उसे पूरी आशा थी और न वे ही पदार्थ उसे मिलते हैं, जिनके मिलनेका उसे निश्चय था और यदि कभी कोई पदार्थ मिल भी गया तो उससे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। उसकी वाणीमेंसे सौन्दर्य, सत्य और माधुर्य निकल जाते हैं, अतः सुन्दर वाणीसे मिलनेवाला सुख भी उसे नहीं मिलता। उसके यज्ञ-दानादि इष्टकर्म और कूप, सरोवर,

धर्मशाला आदिके निर्माणरूप पूर्तकर्म तथा उनके फल नष्ट हो जाते हैं। यही नहीं, अतिथिका असत्कार उसके पूर्वपुण्यसे प्राप्त पुत्र और पशु आदि धनको नष्ट कर देता है। (कठोपनिषद् १।१।७-८) आचार्यपत्नीका उक्त प्रबोध अतिथि-सत्कारमें दानके महत्त्वको प्रतिपादित करता है।
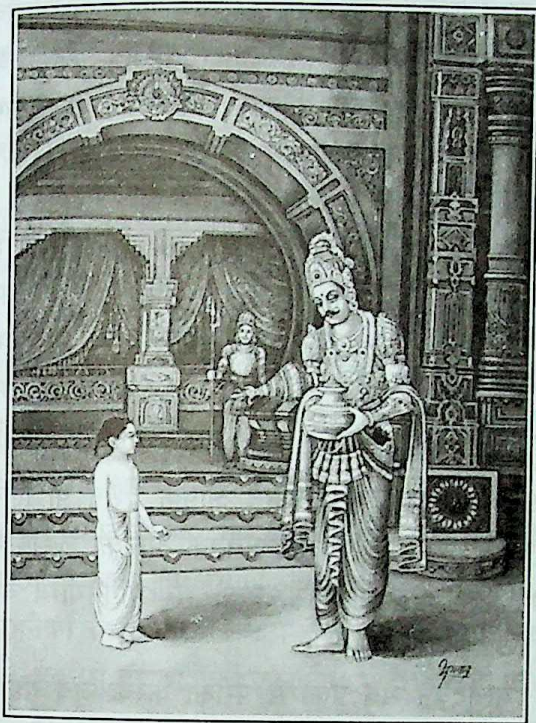
धर्ममूर्ति यमाचार्य तुरन्त नचिकेताके पास गये और विधिवत् सत्कारकर मधुर वाणीमें कहने लगे—हे ब्राह्मणदेवता! आप नमस्कार करनेयोग्य अतिथि हैं, आपको नमस्कार हो। हे ब्राह्मण! मेरा कल्याण हो। आपने तीन रात्रियोंतक मेरे घरपर बिना भोजन किये निवास किया है। इसलिये आप उन तीन रात्रियोंके बदले मुझसे तीन वरदान माँग लीजिये—

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे
अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु
तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व॥

(कठोपनिषद् १।१।९)

यमाचार्यने नचिकेताको दिये तीन वरदान— कठोपनिषद्का नचिकेतोपाख्यान एक ओर जहाँ अतिथि-सत्कारके महत्त्वपर प्रकाश डालता है, वहीं प्रायश्चित्तव्रतमें दानकी उपयोगिताको भी प्रतिपादित करता है। नचिकेताकी प्रतीक्षामें यमाचार्यका कोई दोष न था, तथापि नचिकेता यमाचार्यके घरपर निराहार रहा, इसलिये गृहपतिको घरसे दूर होनेपर भी दोष लगेगा। इस दोषका परिहार यमाचार्य वर देकर करना चाहते हैं तथा इसके बदले **'स्वस्ति मेऽस्तु'** कहकर अपने कल्याणकी कामना करते हैं। इसका भाव यह है कि यदि स्वयंकृत या अन्य किसी भी कारणसे अतिथिकी उपेक्षा हो जाती है तो गृहपतिको तुरंत ही उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये, अन्यथा महान् अनर्थ होगा। अतिथि-यज्ञका इतना महत्त्व होनेके कारण ही इसकी गणना पंच महायज्ञोंमें की गयी है। यमाचार्य नचिकेताको केवल प्रणाम (**अतिथिर्नमस्यः**) करके ही सन्तुष्ट नहीं होते, अपितु वे उसके तीन दिन निराहार रहनेके बदले तीन वर देना चाहते हैं और जाने-अनजाने हुए अतिथि-निरादरके दोषके निवारण तथा अपने कल्याणके निमित्त ऐसा अनिवार्य समझते हैं।

यमका पहला वरदान—यमाचार्यने नचिकेताको इच्छित तीन वर माँगनेके लिये कहा था। नचिकेताने प्रथम वरके रूपमें याचना की कि मेरे पिता क्रोधके आवेशमें मुझे आपके पास भेजकर अब अशान्त और दुःखी हो रहे हैं, वे मेरे प्रति क्रोधरहित, शान्तचित्त और सर्वथा सन्तुष्ट हो जायँ और जब आपके द्वारा अनुमति दिये जानेपर मैं घर ज़ाऊँ तब वे मुझे अपने पुत्र नचिकेताके रूपमें पहचानकर मेरे साथ पूर्ववत् बड़े स्नेहसे बातचीत करें (कठोपनिषद् १।१।१०)। नचिकेता जानता है कि यदि सन्तानके कारण उसका पिता दुःखी या क्रोधित होता है तो ऐसी सन्तानका कल्याण नहीं हो सकता। इसीलिये वह अन्य प्रलोभनोंको त्यागकर सर्वप्रथम अपने पिताकी प्रसन्नता एवं शान्तिका ही वर माँगता है और यमाचार्य उसे यह वरदान देते हैं—

यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत
औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः।
सुखꣳ रात्रीः शयिता वीतमन्यु-
स्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्॥

(कठोपनिषद् १।१।११)

अर्थात् तुमको मृत्युके मुखसे मुक्त देखकर मेरी प्रेरणासे तुम्हारे पिता अरुणपुत्र उद्दालक पूर्ववत् 'यह मेरा पुत्र नचिकेता ही है' ऐसा विश्वास करके दुःख और क्रोधसे रहित हो जायँगे और सुखपूर्वक रात्रिशयन करेंगे। एक पुत्रद्वारा पिताके कल्याणके निमित्त किया गया यह

सर्वोत्तम पितृयज्ञ है।

यमका दूसरा वरदान—नचिकेता द्वितीय वरके रूपमें स्वर्गके साधनभूत अग्निविद्याका उपदेश सुननेकी इच्छा प्रकट करता है; क्योंकि वह जानता है कि मृत्युदेव उस अग्निको यथार्थ रूपसे जानते हैं और वह यह भी जानता है कि स्वर्गके साधनभूत उस अग्निविद्याको जानकर लोग स्वर्गलोकमें रहकर अमरत्व (देवत्व)-को प्राप्त होते हैं। (कठोपनिषद् १।१।१३) यमाचार्य नचिकेताके लिये उस स्वर्गप्रदायिनी अग्निविद्याको सम्यक् प्रकारसे बतलाते हैं। यमाचार्यका यह अग्निविद्यादान उपदेशामृतदानका सर्वोत्तम रूप है। यमने इस विद्याको अविनाशी लोकोंकी प्राप्ति करानेवाली और उसकी आधारस्वरूप बतलाते हुए उसे बुद्धिरूप गुहामें छिपी हुई कहा—**'विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम्।'** (कठोपनिषद् १।१।१४) यमने उस विधि-विधानकी भी चर्चा की जो अग्निविद्याके लिये आवश्यक है, साथ ही नचिकेताकी बुद्धि और स्मृतिकी परीक्षाके लिये उससे विद्याज्ञानको भी सुना। नचिकेता आचार्यके द्वारा सुनी गयी देवयज्ञविधिको ज्यों-की-त्यों सुना देता है। वे उसकी विलक्षण स्मृति और प्रतिभाको देखकर प्रसन्न होते हैं और उसे देवत्वकी सिद्धिके लिये अनेक रूपोंवाली विविध यज्ञविज्ञानरूपी रत्नोंकी माला प्रदान करते हैं। (कठोपनिषद् १।१।१६) उस अग्निविद्याका फल बतलाते हुए यमाचार्य कहते हैं कि इस अग्निका तीन बार अनुष्ठान करनेवाला तीन कर्मोंको करेगा। ये तीन कर्म यज्ञ, दान और तपरूप हैं। इन तीन कर्मोंको निष्काम भावसे करनेवाला जन्म-मृत्युसे तर जाता है। वह ब्रह्मासे उत्पन्न सृष्टिको भलीभाँति जाननेवाले स्तवनीय इस अग्निदेवको जानकर इसका निष्कामभावसे चयन करके उस अनन्त शान्तिको प्राप्त हो जाता है, जो मुझको प्राप्त है—

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं
त्रिकर्मकृत् तरति जन्ममृत्यू।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा
निचाय्येमाꣳ शान्तिमत्यन्तमेति॥

(कठोपनिषद् १।१।१७)

यमका तीसरा वरदान—इस लोकके कल्याणके लिये पिताकी सन्तुष्टिका वर तथा परलोकके कल्याणके लिये स्वर्गप्राप्तिका साधन अग्निविद्याका वर पाकर नचिकेताने तीसरे वरमें ब्रह्मवेत्ता आचार्य यमसे आत्माका यथार्थ स्वरूप और उसकी प्राप्तिका उपाय बतानेकी प्रार्थना की, किंतु यमने उसे आत्मतत्त्वको अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व निरूपित करते हुए उसकी याचनाको अस्वीकार कर दिया तथा अन्य वर माँगनेके लिये कहते हुए उसे पहले पृथ्वीलोकके समस्त भोगों, पुनः दिव्य भोगोंका वर्णनकर उन्हें वरण करनेका प्रलोभन दिया, किंतु नचिकेताने इन समस्त भोगोंको ठुकराते हुए आचार्यसे कहा—

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत् त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं
वरस्तु मे वरणीयः स एव॥

(कठोपनिषद् १।१।२७)

अर्थात् हे मृत्युदेवता! धनसे मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता। अब जबकि हमने आपके दर्शन पा लिये हैं तब धन तो पा ही लेंगे और जबतक आपका शासन रहेगा तबतक हम जीते भी रहेंगे, अतः मेरे माँगनेयोग्य वर तो वह (आत्मज्ञान) ही है।

मृत्युदेवने सब प्रकारसे परीक्षा करके जब यह जान लिया कि नचिकेता परम वैराग्यवान् एवं दृढ़निश्चयी है और ब्रह्मविद्याका वास्तविक तथा उत्तम अधिकारी है, तब उसे ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया। आत्माका क्या स्वरूप है? परमात्मा कहाँ रहता है? उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? परमात्माको प्राप्त करनेका फल क्या है? इत्यादि प्रश्नोंपर यमाचार्य स्वयं ही प्रकाश डालते हैं। परमात्मदर्शनके पश्चात् व्यक्तिको जिस आनन्दकी प्राप्ति होती है, उसका वर्णन उपनिषद्में इस प्रकार है—

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥

(कठोपनिषद् २।२।१३)

अर्थात् उस अपने अन्दर रहनेवाले सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वरको जो ज्ञानी निरन्तर देखते हैं, उन्हींको सदा स्थिर रहनेवाली सनातनी परम शान्ति मिलती है, अन्योंको नहीं।

यह ब्रह्म किसे तथा किस प्रकार प्राप्त होता है, इस विषयमें कहा गया है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

(कठोपनिषद् १।२।२४)

दुश्चरित्र, अशान्त तथा असमाहित (वह जिसका मन, इन्द्रियाँ संयत नहीं हैं) व्यक्ति ब्रह्मको प्राप्त नहीं कर सकता।

इसके अतिरिक्त यह ब्रह्म प्रवचन, श्रवण, तर्कबुद्धि आदिसे भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। (कठोपनिषद् १।२।२३) यह स्वयं जिसे स्वीकार कर लेता है, उसीके द्वारा प्रापणीय होता है।

वैराग्य और मनकी एकाग्रताके बिना आत्मज्ञान सम्भव नहीं है, अतः साधकको इन दोनोंका अभ्यास करना चाहिये। यमाचार्यके उपदेशदानका यही तात्पर्य है। अतः सर्वप्रथम शुभ गुणसम्पन्न बनो, ईश्वरपूजा आदि शुभ कर्म करो, परमात्माके सुन्दर रूपका ध्यान करो, उसका सतत स्मरण करो और इन सबके द्वारा अपने मनको शुद्ध करो। उपासनाका भी अभ्यास करो। निष्काम सेवा और उपासनासे मनके विक्षेप दूर होते हैं और मन क्रमशः शुद्ध होता जाता है। तब निश्चय ही आत्मज्ञान होगा। आत्मज्ञान प्राप्तकर आत्मभावमें ही रहनेका अभ्यास करो। कठोपनिषद्‌के नचिकेतोपाख्यानको सुनने-पढ़नेसे इन बातोंकी जानकारी भलीभाँति हो जाती है।

दानका स्वरूप—कठोपनिषद्‌के नचिकेतोपाख्यानके तीन सन्दर्भोंमें दानका वास्तविक स्वरूप प्राप्त होता है।

पहला सन्दर्भ उद्दालक ऋषिद्वारा सम्पादित विश्वजित् यज्ञमें सर्वस्व दानका है, जिसमें वे फलकी कामनासे विश्वजित् यज्ञ करते हैं और सर्वस्व दानके नामपर जराजीर्ण तथा दूध न देनेवाली गौओंको दानमें देते हैं। उसके पुत्र नचिकेताको पिताका यह सकाम यज्ञ और अनुपयोगी गौओंका दान पिताके लिये अनिष्टकारी परिणामवाला लगता है। इस प्रसंगमें अनुपयोगी तथा महत्त्वहीन पदार्थोंको दानमें देनेका निषेध किया गया है और माना गया है कि ऐसी वस्तुओंका दाता अनन्द (सुखरहित) लोकोंको प्राप्त करता है। इसलिये दानदाताको सर्वदा उत्तम पदार्थ ही दानमें देने चाहिये, वह भी निष्काम भावसे; क्योंकि दानका तो अर्थ ही है—इच्छाओंका क्षय (अवसादन)।

दूसरा सन्दर्भ अतिथि-सत्कारमें दानके महत्त्वको प्रतिपादित करता है। नचिकेता मृत्युके द्वारपर तीन दिनतक निराहार प्रतीक्षा करता रहा; क्योंकि यमाचार्य घरपर नहीं थे और जब मृत्युदेवता वापस घर आये तब उन्हें अतिथिके घरपर तीन दिनोंतक अन्न-जल ग्रहण किये बिना प्रतीक्षारत रहनेकी बात पता चली। यमने तत्काल अतिथिका यथोचित सत्कारकर उनसे तीन वर माँग लेनेके लिये कहा। यमाचार्यने अतिथि-आगमनके समय घरपर अपनी अनुपस्थितिको एक दोष माना और दोषके परिहार तथा अपने कल्याणके लिये अतिथिको तीन वरदान दिये। इस प्रसंगमें अतिथि-सत्कारके रूपमें अर्घ्य-पाद्य-आसन आदि प्रदान और प्रणामपूर्वक सम्मान-दानका रूप प्राप्त होता है। यह सन्दर्भ दोषपरिहार और आत्मकल्याणके निमित्त वरदानके स्वरूपकी भी पूर्वपीठिका प्रस्तुत करता है।

तीसरा सन्दर्भ नचिकेताद्वारा मृत्युदेवतासे तीन वरोंकी याचना और मृत्युदेवद्वारा वे वर प्रदान करनेसे सम्बन्धित है। इस सन्दर्भमें स्वर्गप्राप्तिकी साधनभूत अग्निविद्या तथा आत्मज्ञान-विषयक तत्त्वविवेचनमें आचार्यद्वारा उपदेशामृत-दानका सर्वोत्तम रूप देखनेको मिलता है।

नचिकेतोपाख्यानमें प्रतिपादित दानकी स्वरूपविवेचनामें उपनिषद् प्रतिग्रहीताकी योग्यतापर भी प्रकाश डालता है। मृत्युदेवताने नचिकेताको वरदान देनेसे पूर्व उसके सत्संकल्प, उसकी दृढ़ता एवं जिज्ञासुवृत्तिको परख लिया था। आचार्यको घरपर न पाकर जो बिना अन्न-जल ग्रहण किये तीन दिनतक उनके आगमनकी प्रतीक्षा करता रहा, ऐसे जिज्ञासुको भला अपनी अभीष्ट-प्राप्तिसे कौन रोक सकता है? ब्रह्मविद्याका उपदेश प्राप्त करनेसे पूर्व भी आचार्यद्वारा प्रदर्शित तमाम दिव्यातिदिव्य भोगोंका प्रलोभन ठुकराकर नचिकेताने अपनी सुपात्रता और उत्तम प्रतिग्रहीताका आदर्श प्रस्तुत किया था और तभी यमाचार्यने उसे उपदेशामृतका दान करते हुए आत्मतत्त्वका दर्शन करवाया।

आख्यानमें दान-प्रसंगके अन्तर्गत प्रतिग्रहीताके दान-प्रयोजनपर भी प्रकाश पड़ा है। नचिकेताने लोककल्याणके लिये पिताकी सन्तुष्टिका तथा परलोककल्याणके लिये अग्निविद्याका वर माँगा था। तीसरे वरके रूपमें उसे आत्मतत्त्वका उपदेश मिला; क्योंकि आत्मतत्त्वको जाने बिना व्यक्तिका वास्तविक कल्याण सम्भव नहीं है।

इस प्रकार कठोपनिषद्का नचिकेतोपाख्यान दानके उत्तम स्वरूप, प्रतिग्रहीताकी योग्यता और प्रतिग्रहीताके प्रयोजनकी उत्तमतापर सम्यक्‌रूपसे प्रकाश डालता है।

क्षमा-दानका प्रेरणास्पद प्रसंग

(श्रीमती चेतनाजी गुप्ता)

अपराधी कौन नहीं है—जगज्जननी सीताकी दृष्टिमें 'अपराधी कौन नहीं है'—यह प्रश्न नहीं; बल्कि एक दर्शन है, एक विचार है।

'न कश्चिन्नापराध्यति'—यह वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डके ११३वें सर्गके ४५वें श्लोककी अर्धपंक्ति है। जगज्जननी सीताने अपने लाडले पुत्र पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जीको अपने विचार बताये हैं कि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिससे कभी अपराध होता ही न हो। अपराधी कौन नहीं है, सभी अपराधी हैं—एक मार्मिक प्रसंग है। मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामके बाणोंसे दशग्रीव रावणका वध हो गया और उनकी आज्ञासे उनके अनुज श्रीलक्ष्मण और श्रीहनुमान्‌जीने
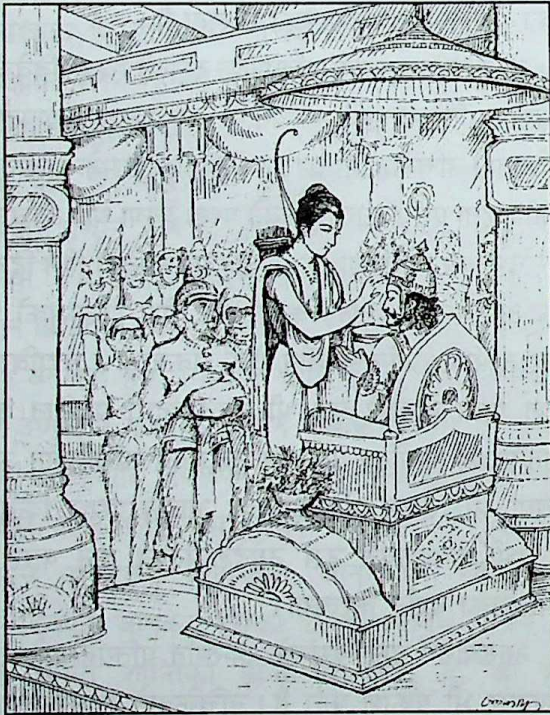
सबके साथ श्रीविभीषणका लंकाधिपतिके पदपर राज्याभिषेक कर दिया। विजयसन्देश भगवती भूमिजाको सुनानेका गौरव प्रभुने श्रीहनुमान्‌जीको दिया। यह उनका स्वत्व था। उन्होंने ही रावणकी अशोकवाटिकामें राक्षसियोंसे घिरी, त्रस्त, शोकमग्ना, कृशकाया अपनी अम्बा मैथिलीके प्रथम दर्शन किये, अपने प्रभु श्रीरामकी कथा एवं उनका सन्देश कहकर उन्हें सान्त्वना दी और उनसे भरपूर आशीर्वाद लिये—

तुम अजर, अमर, निर्विकार देह, अनन्त बल-पौरुष तथा पराक्रमसे युक्त और विद्या-बुद्धिशाली हो जाओ। सब सिद्धियाँ तुम्हें सहज ही प्राप्त रहें। सब सद्‌गुण तुममें नित्य निवास करें। तुम्हारा स्मरण प्राणीको आपत्तिमें परित्राण दे और उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करे। प्रभु श्रीराम सदैव तुमपर सानुकूल रहें। आशीर्वादको सुनकर श्रीहनुमान्‌जीके प्राण परितृप्त हो गये, अपने दोनों करोंसे उनके श्रीचरण पकड़ लिये, उनपर मस्तक रख दिया और आनन्दाश्रुओंने उन पादपद्मोंको प्रक्षालित कर दिया। पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके मानसमें कहे गये माँ सीताके इन्हीं आशीर्वादोंने उन्हें उनका ज्येष्ठ पुत्र बना दिया—

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥

(रा०च०मा० ५।१७।३)

प्रभु श्रीरामजीने श्रीहनुमान्‌जीसे कहा—तुम वैदेहीस्नेह-भाजन हो। उनको रावणवधका समाचार तथा मेरा कुशल सुनाओ।

अशोकवाटिकामें श्रीहनुमान्‌जीसे प्रभुका सन्देश सुनकर सीताजी आनन्दविभोर हो गयीं—'वत्स! सीताके पास इस संवादका पारितोषिक देनेयोग्य कुछ नहीं है। कभी कुछ होगा भी नहीं। यह सदा तुम्हारी ऋणी रहेगी। प्रभु तुमपर सदैव प्रसन्न रहें और उनके पादपद्मोंकी अविचल भक्ति तुम किसीको भी देनेमें समर्थ रहो।'

वे कहने लगे—अम्ब! सानुज मेरे प्रभु समरविजयी तथा सकुशल हैं, यही महान् पुरस्कार है।

भयानकाकार राक्षसियोंको सीताजीके पास देखकर क्रोधावेशमें श्रीहनुमान्‌जी कहने लगे—अम्ब! आप अनुमति दे दें। आपको दिन-रात सन्त्रस्त करनेवाली इन राक्षसियोंको मार दूँ। यह सुनकर श्रीसीताजी डाँटने लगीं, भर्त्सना करने लगीं—नहीं, मर्यादापुरुषोत्तमके सेवक होकर ऐसी बातें करते हो, यह प्रभुके उज्ज्वल यशके अनुरूप होगा? सेवकका कर्तव्य समझो, तुम भी तो सेवक हो। ये जिसकी सेविकाएँ थीं, उसके अनुसार चलनेको ये विवश थीं। अब

मेरे प्रति इनकी विनम्रता, दीनता और सेवा-तत्परता भी देखो। क्या ये ही अपराधिनी हैं? कहते-कहते उन करुणामयीके नेत्र अरुण हो गये। अत्यन्त रोषपूर्ण स्वर सुनकर महाशक्ति सर्वेश्वरीके सम्मुख मस्तक झुकाये श्रीहनुमान्‌जी प्रथम बार भयभीत होकर काँपने लगे और कातर होकर अपनी अम्बाके चारु चरणोंपर गिर गये। 'क्षमा अम्ब! मैं अपराधी हूँ किंतु आपका पुत्र हूँ, क्षमा!' वत्स! हनुमन्त! उठो। मैं तो रावणकी इन बेचारी दासियोंको भी क्षमा करती हूँ। हनुमन्त! सज्जनलोग पापके बदले पाप नहीं करते; क्योंकि सदाचार ही उनका आभूषण है—'**सन्तश्चारित्रभूषणाः।**'

श्रीहनुमान्‌जीने पुनः चरण-वन्दना की—अम्ब! आप मेरे शरणागतवत्सल प्रभुकी भार्या हैं, उनकी अभिन्न शक्ति हैं। आप क्षमा तथा करुणाकी प्रतिमूर्ति हैं। आपके अनुरूप ही आपके ये सद्विचार हैं। हे करुणामयी अम्ब! आप अपराधियोंको क्षमा करती हैं, उन्हें अपनी शरणमें लेकर उन्हें अभयदान देती हैं। अम्ब! आपका वात्सल्य, करुणा एवं शरण्य सदैव स्मरणीय है।

सत्कर्ममें श्रमदानका अद्भुत फल

बृहत्कल्पकी बात है। उस समय धर्ममूर्ति नामक एक प्रभावशाली राजा थे। उनमें कुछ अलौकिक शक्तियाँ थीं। वे इच्छाके अनुसार रूप बदल सकते थे। उनकी देहसे तेज निकलता रहता था। दिनमें चलते तो सूर्यकी प्रभा मलिन हो जाती थी और रातमें चलते तो चाँदनी फीकी पड़ जाती थी। उन्होंने कभी पराजयका मुख नहीं देखा था। इन्द्रने उनसे मित्रता कर ली थी। इन्होंने कई बार दैत्यों और दानवोंको हराया था। इनकी पत्नी भानुमती भी इतनी सुन्दर थी कि उस समय तीनों लोकोंमें कोई नारी उसकी बराबरी नहीं कर सकती थी। वह जितनी रूपवती थी, उतनी ही गुणवती भी थी।

राजाका सबसे बड़ा सौभाग्य यह था कि उनके कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ थे। एक दिन उन्होंने बड़ी विनम्रतासे गुरुजीसे पूछा—गुरुदेव! मेरे पास इस समय जो सब तरहकी समृद्धियाँ एकत्रित हैं, इसका कारण बहुत बड़ा पुण्य होगा। उस पुण्यकर्मको मैं जानना चाहता हूँ। जिससे उस तरहका कोई पुण्य मैं पुनः कर सकूँ, जिसके फलस्वरूप अगले जन्ममें मुझे इसी तरहकी सुख-सुविधा प्राप्त हो।

महर्षि वसिष्ठने बतलाया—पूर्वकालमें लीलावती नामकी एक वेश्या थी। वह शिवभक्तिमें लीन रहती थी। एक बार उसने पुष्करक्षेत्रमें चतुर्दशी तिथिको लवणाचल (नमकके पहाड़)-का दान किया था। उसने सोनेका एक वृक्ष भी तैयार करवाया था, जिसमें सोनेके फूल और सोनेकी ही देवताओंकी प्रतिमाएँ लगी थीं। इस स्वर्णवृक्षके निर्माणमें तुमने निष्कामभावसे उसकी सहायता की थी। उस समय तुम उस वेश्याके सेवक थे। सोनेके वृक्ष और फूल बनानेमें तुम्हें अतिरिक्त मूल्य मिल रहा था, किंतु तुमने उस वेतनको यह समझकर नहीं लिया कि यह धर्मका कार्य है। तुम्हारी पत्नीने उन फूलों और मूर्तियोंको तपा-तपाकर भलीभाँति चमकाया था। तुम दोनों आज जो कुछ हो, वह केवल उसी श्रमदानका फल है। उस जन्ममें तुम्हारे पास पैसे नहीं थे, इसलिये लीलावतीकी तरह तुमने कोई दान-पुण्य नहीं किया था। इस जन्ममें तुम राजा हो, अतः अन्नके पहाड़का विधि-विधानके साथ दान करो। जब केवल श्रमदानसे तुम सातों द्वीपोंके अधिपति हो गये हो और तुम्हारी पत्नी तीनों लोकोंमें अप्रतिम रूपवती और गुणवती बन गयी है, तब इस अन्नके पहाड़के दानका क्या फल होगा, इसे तुम स्वयं समझ सकते हो। देखो, इस लवणाचलके दानसे वेश्या भी शिवलोकको चली गयी और उसके सब पाप जलकर खाक हो गये थे। धर्ममूर्तिने बड़े उत्साहके साथ अपने गुरुकी आज्ञाका पालन किया। (ला०बि०मि०)

और्ध्वदैहिक दानका महत्त्व

[राजा बभ्रुवाहनका आख्यान]

मृतात्माकी सद्गतिहेतु पिण्डदानादि श्राद्धकर्म अत्यन्त आवश्यक है। पुन्नामक नरकसे पिताको बचानेके कारण ही आत्मज पुत्र कहा जाता है। पुत्रका मुख देखकर पिता पैतृक ऋणसे छूट जाता है और पौत्रके स्पर्शमात्रसे यमलोक आदिका उल्लंघन कर जाता है। ब्राह्म-विवाहद्वारा परिणीता पत्नीसे उत्पन्न पुत्र ऊर्ध्व—स्वर्गलोकादिमें पहुँचाता है। यहाँ एक निःसन्तान व्यक्तिके मरणोपरान्त प्रेत होनेकी कथा प्रस्तुत है, जो राजाद्वारा दिये गये पिण्डदानको प्राप्तकर स्वर्गको प्राप्त हुआ था।

पहले त्रेतायुगमें महोदयपुर (कन्नौज)-का निवासी बभ्रुवाहन नामका एक राजा था। वह यज्ञ, दान, व्रत और तीर्थपरायण था। ब्राह्मणों तथा साधुओंका भक्त वह राजा शील-सदाचारसे युक्त होकर प्रजाका तन-मन-धनसे पालन करता था। एक दिन वह अपनी सेनासहित शिकार खेलने गया। उसने नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त एक सघन वनमें प्रवेश किया। वहाँ उसने एक सुन्दर एवं स्वस्थ मृगको देखकर अपना अमोघ बाण चलाया। बाणसे बिंधा वह मृग उस राजाके बाणको लेकर अदृश्य हो गया। राजा रुधिरसे गीली घास देखता हुआ हिरणके पीछे-पीछे चला और दूसरे निर्जन प्रदेशमें प्रवेश कर गया। भूख-प्याससे व्याकुल राजाने वहाँ एक तालाबके पास पहुँचकर अश्वसहित स्नान किया तथा पानी पीया। वहाँ स्थित वटवृक्षको देखकर छायामें वह विश्राम करने लगा। तभी उसने एक भयंकर प्रेत देखा, जिसका मैला, कुबड़ा, मांसरहित शरीर था, बाल ऊपरको उठे थे, इन्द्रियाँ व्याकुल थीं। घोर विकृत राक्षसको सामने देखकर राजा डर गया और विस्मित हो गया। प्रेत भी निर्जन वनमें राजाको देखकर विस्मित होकर उससे कहने लगा—'पुण्यात्मा राजन्! तुम्हारे शुभ दर्शनोंसे आज मैं धन्य हो गया हूँ और प्रेतभाव छोड़ रहा हूँ।' राजाने कहा—'भाई! तुमने यह भयानक अमंगलरूप प्रेतत्व किस कर्मके परिणामस्वरूप प्राप्त किया है? मुझे अपनी सब व्यथा बताओ तथा किस दानधर्मके करनेसे तुम्हारा उद्धार होगा, उसे कहो, मैं अवश्य करूँगा।'

प्रेतने कहा—'राजन्! मैं पूर्वमें विदिशा (भेलसा) नामक नगरमें रहता था। जातिका मैं वैश्य था और मेरा नाम था—सुदेव। मैंने हव्यसे देवताओं और कव्यसे पितरोंको सदा सन्तुष्ट किया। विविध दान देकर ब्राह्मण-दीन-दुर्बलोंकी सेवा की। वह सब दैवयोगसे निष्फल हो गया। मेरे कोई पुत्र, मित्र अथवा बान्धव नहीं थे। अतएव और्ध्वदैहिक क्रियासे वंचित होकर मैं प्रेत हो गया। जिनके षोडश मासिक श्राद्ध नहीं होते, वे प्रेत अवश्य बनते हैं, चाहे धर्मात्मा पुत्रवान् ही क्यों न हों? राजन्! सब वर्णोंका बन्धु राजा ही होता है। तुम मेरी और्ध्वदैहिक क्रिया करके मेरा उद्धार करो। मैं तुम्हें मणिरत्न दूँगा। यद्यपि वनमें निर्मल जल और सरस फलोंका अभाव नहीं है, तथापि मैं उनसे वंचित रहता हूँ। मैं प्रेतत्वसे अत्यन्त दुःखी हूँ। तुम मेरे लिये वेदमन्त्रोंसे विष्णुकी पूजा एवं नारायणबलिकर्म करो। ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी प्रतिमा बनवाकर उनका अर्चन, अग्निमें देवताओंको तृप्त करके घी, दही और दूधसे विश्वेदेवोंका पूजन करो। क्रोध-लोभसे रहित होकर वृषोत्सर्ग करनेका विधान है। पश्चात् ब्राह्मणोंके लिये तेरह पदोंका दान, शय्यादान एवं प्रेतघटका दान करो। प्रेतत्व-निवारणहेतु यह आवश्यक है।' प्रेतके साथ राजाका इस प्रकार वार्तालाप चल ही रहा था कि उसी समय हाथी-घोड़ोंसे युक्त राजाकी सेना पीछेसे आ गयी। सेनाके आनेपर प्रेतने राजाको महामणि देकर प्रार्थना की और वहाँसे विदाई ली। वनसे निकलकर राजाने अपने नगरमें जाते ही प्रेतद्वारा बतायी विधिसे उसका अन्त्येष्टि-कर्म किया, जिसके प्रभावसे वह प्रेतत्व छोड़कर स्वर्गमें चला गया। जब राजाके द्वारा किये गये श्राद्धसे प्रेतको उत्तम गति प्राप्त हुई तो फिर पुत्रद्वारा किये गये श्राद्धसे पिताको सद्गति प्राप्त हो तो इसमें क्या आश्चर्य है?

भक्तका अद्भुत अवदान

[भक्त गयासुरकी कथा]

कीचसे जैसे कमल उत्पन्न होता है, वैसे ही असुरजातिसे भी कुछ भक्त उत्पन्न हो जाते हैं। भक्तराज प्रह्लादका नाम प्रसिद्ध है। गयासुर भी इसी कोटिका भक्त था। बचपनसे ही गयका हृदय भगवान् विष्णुके प्रेममें ओतप्रोत रहता था। उसके मुखसे प्रतिक्षण भगवान्के नामका उच्चारण होता रहता था।

गयासुर बहुत विशाल था। उसने कोलाहल पर्वतपर घोर तप किया। हजारों वर्षतक उसने साँस रोक ली, जिससे सारा संसार क्षुब्ध हो गया। देवताओंने ब्रह्मासे प्रार्थना की कि आप गयासुरसे हमारी रक्षा करें। ब्रह्मा देवताओंके साथ भगवान् शंकरके पास पहुँचे। पुनः सभी भगवान् शंकरके साथ विष्णुके पास पहुँचे। भगवान् विष्णुने कहा—आप सब देवता गयासुरके पास चलें, मैं भी आ रहा हूँ।

गयासुरके पास पहुँचकर भगवान् विष्णुने पूछा—तुम किसलिये तप कर रहे हो? हम सभी देवता तुमसे सन्तुष्ट हैं, इसलिये तुम्हारे पास आये हुए हैं। वर माँगो।

गयासुरने कहा—मेरी इच्छा है कि मैं सभी देव, द्विज, यज्ञ, तीर्थ, ऋषि, मन्त्र और योगियोंसे बढ़कर पवित्र हो जाऊँ। देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक गयासुरको वरदान दे दिया। फिर वे प्रेमसे उसे देखकर और उसका स्पर्शकर अपने-अपने लोकोंमें चले गये। इस तरह भक्तराज गयने अपने शरीरको पवित्र बनाकर प्रायः सभी पापियोंका उद्धार कर दिया। जो उसे देखता और जो उसका स्पर्श करता, उसका पाप-ताप नष्ट हो जाता। इस तरह नरकका दरवाजा ही बन्द हो गया।

भगवान् विष्णुने अपने भक्तके पवित्र शरीरका उपयोग सदाके लिये करना चाहा। किसीका शरीर तो अमर रह नहीं सकता। गयके उस पवित्र शरीरके पातके बाद प्राणियोंको उसके शरीरसे वह लाभ नहीं मिलता, अतः भगवान्ने ब्रह्माको भेजकर उसके शरीरको मँगवा लिया। गयासुर अतिथिके रूपमें आये हुए ब्रह्माको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने जन्म और तपस्याको सफल माना। ब्रह्माने कहा—मुझे यज्ञ करना है। इसके लिये मैंने सारे तीर्थोंको ढूँढ़ डाला, परंतु मुझे ऐसा कोई तीर्थ नहीं प्राप्त हुआ, जो तुम्हारे शरीरसे बढ़कर पवित्र हो, अतः यज्ञके लिये तुम अपना शरीर दे दो। यह सुनकर गयासुर बहुत प्रसन्न हुआ और वह कोलाहल पर्वतपर लेट गया।

ब्रह्मा यज्ञकी सामग्रीके साथ वहाँ पधारे। प्रायः सभी देवता और ऋषि भी वहाँ उपस्थित हुए। गयासुरके शरीरपर बहुत बड़ा यज्ञ हुआ। ब्रह्माने पूर्णाहुति देकर अवभृथ-स्नान किया। यज्ञका यूप (स्तम्भ) भी गाड़ा गया।

भक्तराज गयासुर चाहते थे कि उसके शरीरपर सभी देवताओंका वास हो। भगवान् विष्णुका निवास गयासुरको अधिक अभीष्ट था, इसलिये उसका शरीर हिलने लगा। जब सभी देवता उसपर बस गये और भगवान् विष्णु

गदाधरके रूपमें वहाँ स्थित हो गये, तब भक्तराज गयासुरने हिलना बंद कर दिया। तबसे गयासुर सबका उद्धार करता आ रहा है। आज भी यह स्थान गयाके नामसे पितृतीर्थके रूपमें प्रसिद्ध है। यह एक भक्तका विश्वके कल्याणके लिये अद्भुत अवदान है।

उत्तम दानकी महत्ता त्यागमें है, न कि संख्यामें

[सत्तूदानकी कथा]

महाराज युधिष्ठिर कौरवोंको युद्धमें पराजित करके समस्त भूमण्डलके एकच्छत्र सम्राट् हो गये थे। उन्होंने लगातार तीन अश्वमेध यज्ञ किये। उन्होंने इतना दान किया कि उनकी दानशीलताकी ख्याति देश-देशान्तरमें फैल गयी। पाण्डवोंके भी मनमें यह भाव आ गया कि उनका दान सर्वश्रेष्ठ एवं अतुलनीय है। उसी समय जब कि तीसरा अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ था और अवभृथ-स्नान करके लोग यज्ञभूमिसे गये भी नहीं थे, वहाँ एक अद्भुत नेवला आया। उस नेवलेके नेत्र नीले थे और उसके शरीरका एक ओरका आधा भाग स्वर्णका था। यज्ञभूमिमें पहुँचकर नेवला वहाँ लोट-पोट होने लगा। कुछ देर वहाँ इस प्रकार लोट-पोट होनेके बाद बड़े भयंकर शब्दमें गर्जना करके उसने सब पशु-पक्षियोंको भयभीत कर दिया और फिर वह मनुष्यभाषामें बोला—'पाण्डवो! तुम्हारा यह यज्ञ विधिपूर्वक हुआ, किंतु इसका पुण्यफल कुरुक्षेत्रके एक उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके एक सेर सत्तूके दानके समान भी नहीं हुआ?'

नेवलेको इस प्रकार कहते सुनकर आश्चर्यचकित ब्राह्मणोंने धर्मराज युधिष्ठिरके धर्माचरण, न्यायशीलता तथा
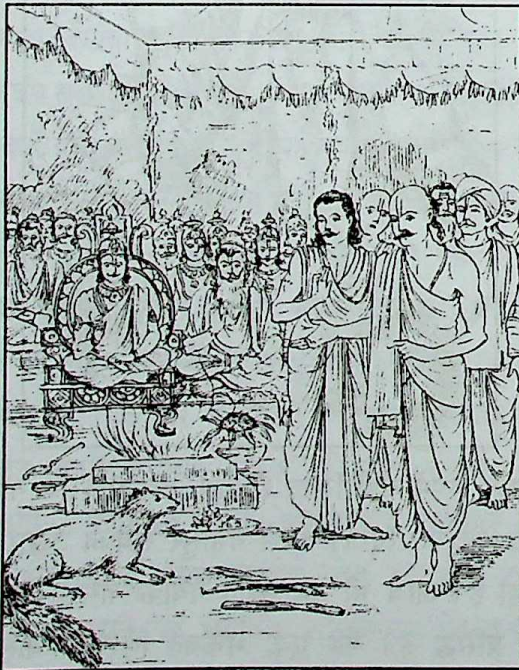
अपार दानकी प्रशंसा करके पूछा—'नकुल! तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? इस यज्ञकी निन्दा क्यों करते हो?'

नेवलेने कहा—मैं न आपके द्वारा कराये यज्ञकी निन्दा करता हूँ, न गर्वकी या झूठी बात करता हूँ। मैं उस ब्राह्मणकी कथा आपको सुना रहा हूँ। कुछ वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्रमें एक धर्मात्मा ब्राह्मण रहते थे। उनके परिवारमें उनकी पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू थी। वे धर्मात्मा ब्राह्मण किसानोंके खेत काट लेनेपर वहाँ गिरे हुए अन्नके दाने चुन लाते थे और उसीसे अपनी तथा परिवारकी जीविका चलाते थे।

एक बार घोर दुर्भिक्ष पड़ा। ब्राह्मणके पास संचित अन्न तो था नहीं और खेतोंमें तो बोया हुआ अन्न उत्पन्न ही नहीं हुआ था। ब्राह्मणको परिवारके साथ प्रतिदिन उपवास करना पड़ता था। कई दिनोंके उपवासके अनन्तर बड़े परिश्रमसे बाजारमें गिरे दानोंको चुनकर उन्होंने एक सेर जौ एकत्र किया और उसका सत्तू बना लिया।

नित्यकर्म करके देवताओं तथा पितरोंका पूजन-तर्पण समाप्त हो जानेपर ब्राह्मणने सत्तूके चार भाग करके परिवारके सभी सदस्योंको बाँट दिया और भोजन करने बैठे। उसी समय एक भूखे ब्राह्मण वहाँ आ गये। अपने यहाँ अतिथिको आया देखकर उन तपस्वी ब्राह्मणने उनको प्रणाम किया, अपने कुल-गोत्रादिका परिचय देकर उन्हें कुटीमें ले गये और आदरपूर्वक आसनपर बैठाकर उनके चरण धोये। अर्घ्यपाद्यादिसे अतिथिका पूजन करके ब्राह्मणने अपने भागका सत्तू नम्रतापूर्वक उन्हें भोजनके लिये दे दिया।

अतिथिने वह सत्तू खा लिया, किंतु उससे वे तृप्त नहीं हुए। ब्राह्मण चिन्तामें पड़ा कि अब अतिथिको क्या दिया जाय। उसी समय पतिव्रता ब्राह्मणीने अपने भागका सत्तू अतिथिको देनेके लिये अपने पतिको दे दिया। ब्राह्मणको पत्नीका भाग लेना ठीक नहीं लग रहा था और उन्होंने उसे रोका भी; किंतु ब्राह्मणीने पतिके आतिथ्यधर्मकी रक्षाको अपने प्राणोंसे अधिक आदरणीय माना। उसके आग्रहके कारण उसके भागका सत्तू भी ब्राह्मणने अतिथिको दे दिया।

लेकिन उस सत्तूको खाकर भी अतिथिका पेट भरा नहीं। क्रमपूर्वक ब्राह्मणके पुत्र और उनकी पुत्रवधूने भी अपने भागका सत्तू आग्रह करके अतिथिको देनेके लिये ब्राह्मणको दे दिया। ब्राह्मणने उन दोनोंके भाग भी अतिथिको अर्पित कर दिये।

उन धर्मात्मा ब्राह्मणका यह त्याग देखकर अतिथि बहुत प्रसन्न हुए। वे ब्राह्मणकी उदारता, दानशीलता तथा आतिथ्यकी प्रशंसा करते हुए बोले—'ब्रह्मन्! आप धन्य हैं। मैं धर्म हूँ, आपकी परीक्षा लेने आया था। आपकी दानशीलतासे मैं और सभी देवता आपपर प्रसन्न हैं। आप अपने परिवारके साथ स्वर्गको शोभित करें।'

नेवलेने कहा—'धर्मके इस प्रकार कहनेपर स्वर्गसे आये विमानपर बैठकर ब्राह्मण अपनी पत्नी, पुत्र और पुत्रवधूके साथ स्वर्ग पधारे। उनके स्वर्ग चले जानेपर मैं बिलसे निकलकर जहाँ ब्राह्मणने सत्तू खाकर हाथ धोये थे, उस कीचड़में लोटने लगा। अतिथिको ब्राह्मणने जो सत्तू दिया था, उसके दो-चार कण अतिथिके भोजन करते समय वायुसे उड़कर वहाँ पड़े थे। उनके शरीरमें लगनेसे मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया। उस समयसे शेष आधा शरीर भी सोनेका बनानेके लिये मैं तपोवनों और यज्ञस्थलोंमें घूमा करता हूँ, किंतु कहीं भी मेरा अभीष्ट पूरा नहीं हुआ। आपके यहाँ यज्ञभूमिमें भी मैं आया, किंतु कोई परिणाम नहीं हुआ।'

'युधिष्ठिरके यज्ञमें अनेक ब्राह्मणोंने भोजन किया और वनस्थ उस ब्राह्मणने केवल एक ही ब्राह्मणको तृप्त किया, पर उसमें त्याग था। चारोंने भूखे पेट रहकर उसे भोजन दिया था। दानकी महत्ता त्यागमें है, न कि संख्यामें।' वह नेवला इतना कहकर वहाँसे चला गया।—सु० सिं० (महाभारत, अश्वमेध० ९०)

सर्वस्व-दान

[महाराज हर्षवर्धनकी कथा]

(श्री 'चक्र')

'सम्राट् संघके शरणापन्न हैं।' स्थाण्वीश्वर (कन्नौज)-की वार्षिक श्रमण-परिषद्की आज अन्तिम उपस्थिति है। सम्राट् हर्षवर्धनको प्रयागके महाकुम्भमें जानेकी शीघ्रता है। सेवक वहाँ पहुँच चुके हैं पर्याप्त पूर्व ही। सम्राट् संक्रान्तिका त्रिवेणी-स्नान करेंगे ही; किंतु कुम्भ एवं अर्धकुम्भके समय होनेवाली प्रयागकी मोक्ष-सभा—एक बौद्ध सम्राट् ब्राह्मणधर्मको इतना सम्मान दे, प्रयागमें ब्राह्मणोंको प्रति छठे वर्ष सर्वस्व-दान करे, यह बौद्धसंघके अनेक तरुण भिक्षुओंको रुचिकर नहीं लगता। संघमें दीक्षित नवतरुणोंका नवीन उत्साह इसे एक प्रकारका अनर्थ ही मानता है। आज श्रमण-परिषद्में एक तरुण भिक्षु उठकर खड़ा हो गया है। वह अकेला बोल रहा है, किंतु सभी—स्वयं सम्राट् भी जानते हैं कि वह अकेला नहीं है। वह भिक्षुओंके एक बड़े समूहके मतका प्रतिनिधित्व करता बोल रहा है—'एक बौद्ध सम्राट्की शक्ति तथागतके संघके अभिवर्धनमें ही व्यय होनी चाहिये।'

'संघ तथागतके उपदेशके प्रसारका साधनमात्र है भद्र।' सम्राट्को बोलना नहीं पड़ा। राजगुरु एवं श्रमण-परिषद्के अध्यक्ष भिक्षुश्रेष्ठ ह्वेनसांगने तरुण भिक्षुको रोक दिया आगे बोलनेसे। 'भगवान् तथागतका उपदेश समूहों, जातियोंका बँटवारा करके प्रतिस्पर्धा बढ़ाने, द्वेष एवं संघर्षको पोषण देनेके लिये नहीं है। मानवमात्र—प्राणीमात्रके लिये प्रेम एवं समताका संदेश है उसमें। बौद्धधर्मकी ही यह महानता है कि यह विजातीय विदेशी चीन देशवासी आज भारतके ज्ञानका प्रसाद पाकर आपके द्वारा सम्मानित हुआ है।'

'लेकिन जो धर्म—जो समाज सदासे संघकी प्रगतिका अवरोधक रहा है।' तरुण भिक्षुको संतोष नहीं हुआ था।

'उसे और अधिक स्नेह—और अधिक अपनत्व मिलना चाहिये।' भिक्षुश्रेष्ठने उसी गम्भीरतासे उत्तर दिया। 'तथागतने प्रतिस्पर्धाकी शिक्षा तो कहीं नहीं दी है।'

'मैं नालन्दाके सम्मान्य स्नातक एवं शिक्षक तथा आचार्य शीलभद्रके आदरणीय सहाध्यायीसे तर्क कर सकूँगा, ऐसी क्षमता मुझमें नहीं है।' भिक्षुने लगभग अपनी बात समाप्त कर दी—'लेकिन मैं केवल अपना मत नहीं व्यक्त कर रहा हूँ, संघके भिक्षुसमूहमें एक बड़ा समुदाय मेरे साथ है।'

'मैं संघको मस्तक झुकाता हूँ।' सम्राट् हर्षका घन-गम्भीर स्वर गूँजा। उस सुगठित गौरवर्ण शरीरसे आभूषण न होनेपर भी जो एक तेज प्रकट हो रहा था, उस संयम, सात्त्विकताकी मूर्तिमें जो एक अद्भुत गौरव था, उसने सबको स्तब्ध—शान्त कर दिया। 'मैं निजीरूपसे संघके शरणापन्न हूँ और संघ आदेश दे तो यहींसे भिक्षु होकर उसकी सेवामें लग जानेको प्रस्तुत हूँ।'

दो क्षण सम्राट् रुके। किसीको इस उत्तरकी आशा नहीं थी। 'दक्षिणापथके शासक महाराज पुलकेशी बौद्ध नहीं हैं। हर्षका अनुगमन करनेवाले इक्कीस नरेश एवं शतशः मण्डलीश्वर भूपति बौद्ध नहीं हैं और वे हर्षको भयसे सम्राट् मानते हैं, भयसे हर्षका अनुगमन करते हैं—यह मान ले इतना हर्ष मूर्ख नहीं है। सम्राट् तो दूर—हर्ष तो नरेश भी नहीं है। वह तो साम्राज्ञी राज्यश्रीका प्रतिनिधिमात्र है।'

भिक्षुओंने एक-दूसरेकी ओर देखा। सबके हृदय धक्-धक् करने लगे। सबके मुखोंपर चिन्ताके लक्षण व्यक्त हुए—'तरुण भिक्षुने अनवसर चर्चा की। पता नहीं सम्राट् क्या करने जा रहे हैं।' केवल भिक्षुश्रेष्ठ आचार्य ह्वेनसांग स्थिर बैठे थे। उनकी प्रसादभरी दृष्टि बड़े गौरवसे अपने योग्य शिष्यको कृपाका दिव्य वरदान प्रदान कर रही थी।

'शासक किसी धर्मका प्रतिनिधि नहीं होता। वह प्रजाका सेवक है, धर्म उसका व्यक्तिगत है। शासकके नाते प्रजाकी सेवा करनी है उसे।' सम्राट्ने आगे बात और स्पष्ट की—'स्वयं तथागतने कहीं ब्राह्मण-धर्मको तिरस्करणीय माना हो, यह मुझे स्मरण नहीं। प्रत्येक धर्ममें तो अज्ञान तथा अनपेक्षित आचार भ्रम, प्रमाद एवं व्यक्तियोंके स्वार्थवश आ जाते हैं, उनका समय-समयपर सत्पुरुषोंद्वारा परिष्कार होता रहा है। संघके नियमोंमें स्वयं तथागतको ये परिष्कार करने पड़े हैं।'

'प्रयागकी मोक्ष-परिषद् ब्राह्मण एवं भिक्षु दोनोंके लिये उन्मुक्त है।' भिक्षुश्रेष्ठने विस्तारको रोक दिया, जिसमें कटुता एवं विवाद न उत्पन्न हो। कुम्भ केवल एक समूहका पर्व नहीं है। वह तो राष्ट्रका सांस्कृतिक पर्व है और देशके शासकोंको श्रद्धासमवेत उस महासमुदायकी सेवा करके पवित्र होना ही चाहिये, जो देशके कोने-कोनेसे इस पुण्य अवसरपर तीर्थभूमिमें पहुँचता है।

× × ×

[२]

'भाई! कल तुम मेरे यहाँ वस्त्र लेने आओगे?' देवी राज्यश्रीने अपने गौरवमय छोटे भाईको बड़े स्नेहसे देखा। कितना महान् है उनका यह अनुज! स्थाण्वीश्वरका गौरव, भारतका सम्राट् और इतना स्नेहमय कि चाहे सारा भारत हर्षको सम्राट् कहे—हर्ष अपनेको बहन राज्यश्रीका प्रतिनिधिमात्र मानते हैं।

'भाई जब कंगाल हो जाय तो बहनको छोड़कर किसके द्वारपर भिक्षुक बने।' हर्षके मुखपर मन्द हास्य आया।

'लेकिन इस बार तुम यह पुराना उत्तरीय ले लेना।' राज्यश्रीने एक कौशेय उत्तरीय हाथमें उठाया। उत्तरीय जीर्ण हो चुका है; किंतु अब भी यत्र-तत्र ही फटा है। सम्राट् सर्वथा चिथड़े लपेटे यह क्या शोभा देता है?'

'यह तो मेरा हो चुका और कल नाविक इसे पाकर प्रसन्न हो जायगा। बहनका उपहार ही तो भाईका सर्वस्व है। अन्यथा हर्षके सर्वस्वदानमें धरा क्या है।' हर्षवर्धनने वह जीर्ण उत्तरीय बहनके हाथसे लेकर कन्धोंपर डाल लिया।

'बहनके पास ही क्या धरा है? शत्रुने उसे तो अरण्यवासिनी बना दिया था। बलशाली भाईकी शौर्यमयी भुजाएँ चितारोहणके लिये प्रस्तुत बहनको साम्राज्ञी बना दें, यह बात दूसरी है; किंतु बहन तो वही है न।' राज्यश्रीके नेत्र टपटप टपकने लगे। ये स्थाण्वीश्वरकी अधिदेवी—हर्ष किसी काममें ननु नचतक नहीं करते इनकी सम्मतिके बिना। राज्य-नियमोंमें राज्यमें राज्यश्री साम्राज्ञी हैं और वे साम्राज्ञी हैं, यह कोई अस्वीकार कर नहीं सकता; किंतु ये पतिहीना तपस्विनी—भूमिशयन, साधारण वस्त्र, नित्य एकाहार व्रत—साम्राज्यका करना क्या है इन्हें। वह तो छोटे भाईका स्नेह है, अनुरोध है, जो यह वनदेवीकी साक्षात् तपोमूर्ति राजसदनको, राजसभाको पवित्र करती है।

'बहन!' हर्षका कण्ठ भर आया। बहनके नेत्रोंमें अश्रु उनसे कभी नहीं देखे जाते।

'तुमने अभी गंगाजल भी नहीं लिया भाई!' राज्यश्रीने झटपट नेत्र पोंछ लिये और प्रसंग बदल दिया। आजकल

केवल तीसरे प्रहरके प्रारम्भमें सम्राट् थोड़ा-सा फलाहार ग्रहण करते हैं। रात्रिमें दूध लेनेके बदले वे केवल गंगाजल लेते हैं। भीड़भाड़, स्वागत-सत्कार, दान-पुण्य और समस्त दौड़धूप—कार्यव्यस्तताके पश्चात् लगभग मध्यरात्रिको थके-माँदे जब वे विरामके लिये शिविरमें पहुँचे हैं—इस समय कोई ऐसी बात तो नहीं होनी चाहिये, जिससे उनका भावमय हृदय क्षुब्ध हो।

'तुममें केवल स्नेह-ही-स्नेह है बहन!' हर्षने भरे दृगोंसे राज्यश्रीकी ओर देखा। माता जैसे निरन्तर पुत्रका ध्यान रखती है—हर्षकी क्षण-क्षणकी चिन्ता यह उनकी तपस्विनी बहन ही तो करती है।

'तुम मेरे स्नेहको मानो तब तो।' राज्यश्रीने तनिक स्नेहकी फटकार दी—'एक पुराना उत्तरीय भी तुम्हें स्वीकार नहीं। चिथड़ा लोगे—ऐसा चिथड़ा, जिसे कोई राहका भिखारी भी लपेटना न स्वीकार करे और उसी फटे चिथड़ेको लपेटे कुम्भके इस अपार समुदायके मध्यसे भारतका सम्राट् प्रयाण करेगा।'

'आचार्य कहते हैं कि जीव संसारमें राग और द्वेष—इन दो बन्धनोंसे ही बँधता है। हर्षने तथागतकी शरण लेकर द्वेषको तो निर्मूल कर दिया है। प्रयागमें प्रत्येक कुम्भ या अर्धकुम्भपर यह जो मोक्ष-सभा होती है, वह दूसरोंके लिये मोक्षदायिनी हो या न हो, हर्षके लिये भी मोक्षदायिनी न हो तो उसका आयोजन दम्भ ही तो होगा।' सम्राट्—पर नहीं, त्यागी भाईने तपस्विनी बहनको समझाना चाहा।

'मैं तुम्हारी मोक्ष-सभाका विरोध कहाँ करती हूँ।'

'तुम अपने ही आयोजनका विरोध कर भी कैसे सकती हो।' हर्षका स्वर भावगम्भीर बना रहा—'यह तो मैंने तुमसे ही सीखा है कि संसारके पदार्थोंका जितना त्याग किया जाय, उनसे राग जितना-जितना दूर हो, मोक्ष उतना-उतना पास आता है; उतना-उतना ही बन्धनमुक्त होता है जीव। हर्षके पास एक भी पदार्थ—एक भी वस्त्र-खण्ड ऐसा रह जाय, जो दूसरे किसीके काममें भी आ सकता हो तो सर्वस्वदानकी घोषणा मिथ्या नहीं होगी?'

'अच्छा अब गंगाजल पी लो और सो जाओ! प्रहरी मध्यरात्रिका शंखनाद कर रहे हैं और तीसरे प्रहरके अन्तमें तुम्हें उठ जाना है।' राज्यश्रीने जलपात्र उठाया—'मैंने इस
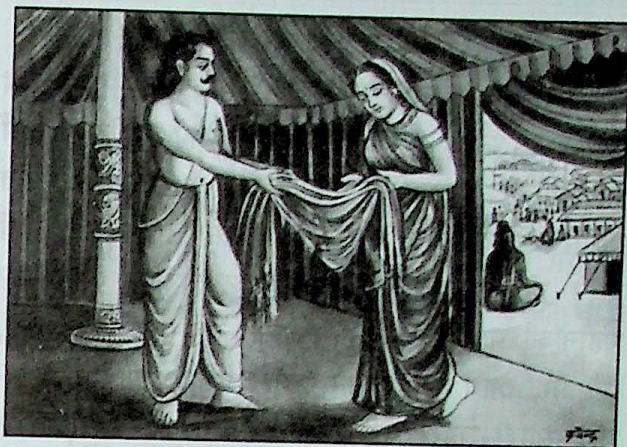
बार इतना फटा चिथड़ा तुम्हारे लिये सुरक्षित रखा है कि तुम उसे बहुत दिन स्मरण रखोगे।'

'मैं चाहे भूल भी जाऊँ, तुम्हें अवश्य स्मरण रहेगा वह।' परंतु हर्षको और बोलने देनेका अर्थ था उनके विश्रामके एक प्रहरसे भी कम समयको और कम करना। राज्यश्रीने उनके हाथमें जलपात्र दे दिया और वे शयनकक्षसे सेविकाओंके साथ अपने कक्षमें चली गयीं।

× × ×

[३]

प्रयागका महाकुम्भ—यह पर्व बारह वर्षपर आता है और जबसे स्थाण्वीश्वरकी सीमाएँ हर्षके पराक्रमसे विस्तृत हुईं, कुम्भके स्नानकी महिमाको सम्राट्की मोक्षसभाके आयोजनने द्विगुणित कर दिया। गंगा-यमुनाके अन्तरालकी पावन भूमिमें महर्षि भरद्वाजके आश्रमके पुनीत पदप्रान्तसे अक्षयवटकी मंगल छायातक शतशः महापुरुषोंके आश्रम सदा बस जाते हैं। अवधूत तपस्वियोंके आसन इस शीत ऋतुमें भी हिमशीतल बालुकापर केवल धूनीके सहारे स्थिर रहते हैं—स्थिर रहते हैं वे तपःकाय अनावरण, दिग्वसन नग्न आकाशके नीचे तब भी जब आकाश उपलवृष्टि करता है या वर्षाकी धार उनकी आधारभूता धूनीकी अग्नि शीतल कर जाती है। विभूतिभूषित उनके पवित्र देह—तपमें यदि प्रदर्शन एवं कामना न हो, वह भुवनको पवित्र करता है।

शतशः शिविर हैं संतों, महापुरुषों, विद्वानों एवं सम्प्रदायप्रवर्तकाचार्योंकी परम्परामें प्रतिष्ठित लोकपूज्य आचार्यचरणवृन्दके। श्रुति-पुराणोंकी कथा, धर्मका प्रवचन, भगवन्नामका पवित्र कीर्तन—गंगा-यमुना-सरस्वतीकी पावन त्रिवेणीके समान यह आध्यात्मिक वाग्देवताकी मंगल-

आराधना समस्त वातावरणको पुनीत करती है।

मुण्डितमस्तक श्रद्धावनत यात्रियोंके यूथ-यूथ त्रिवेणीका स्नान करते हैं। कालिन्दीकी नीलिमा जहाँ भागीरथीकी शुभ्रताको अंकमाल देती है—कुम्भके पुनीत पर्वपर मानव वहाँ निमज्जन करके अपनेको कृतार्थ करने ही तो यात्राका अपार कष्ट सहकर आता है। महीनोंकी यात्रा, वन-वन भटकना, जहाँ-तहाँ पड़े रहना, नंगे पैर, आधे पेट खाकर, छाले पड़े, बिवाईभरे थके-माँदे सहस्र-सहस्र यात्री आते हैं—देशके कोने-कोनेके तीर्थयात्री—पर्वस्थान तो मार्गकी वापियाँ, कूप, सरोवर बन जाते हैं, प्रयागकी अपार भीड़का कहना क्या! लेकिन त्रिवेणीकी पुनीत धार—जैसे सम्पूर्ण श्रम दर्शन करते ही सार्थक हो जाता है।

'गंगा माताकी जय!' और इसके साथ प्राय: 'सम्राट् हर्षवर्धनकी जय!' यह ध्वनि भी गूँजती है। भारत सदासे कृतज्ञ-हृदय देश है और यहाँका मानव सदा त्याग, तप एवं धार्मिकताका समाराधक रहा है। सम्राट्की सेवा यात्रीको बहुत पहले मार्गमें ही कृतज्ञ बना लेती है। स्थान-स्थानपर सुदूर प्रान्तोंतकमें प्रयागके मार्गमें यात्रियोंके लिये आवास बने हैं, अन्नसत्र हैं और जल एवं चिकित्साकी व्यापक व्यवस्था है। 'सम्राट् हर्षवर्धनकी जय!' यह सम्राट्के ऐश्वर्य, पौरुष एवं आतंककी जय नहीं है, बल्कि यह सम्राट्के त्याग, सुप्रबन्ध एवं सेवाकी जय है।

जब यात्री प्रयाग पहुँचता है—वह चकित रह जाता है। इतना सुविस्तृत क्षेत्र, इतना अपार जनसमुदाय और इतनी सुव्यवस्था! समस्त क्षेत्र जैसे समतल, सुसज्जित नगरभूमि बना दी गयी है और यह ऐसा नगर जहाँ प्रत्येक यात्री अनुभव करता है कि वह निर्भय है, निश्चिन्त है और उसके लिये आवश्यक समस्त सुविधाएँ उपलब्ध हैं। मार्गोंका प्रबन्ध, प्रहरियोंकी जागरूकता, चिकित्सकोंकी तत्परता और ये राजसेवक सर्वज्ञ तो नहीं हैं? कोई यात्री कुछ चाहता है, यह कैसे जान लेते हैं ये? यात्री कुछ चाहता है और कोई-न-कोई, राजसेवक दो क्षणमें उसके सामने होता है सेवा और नम्रताकी मूर्ति बना—'आप कहीं ठहरना चाहेंगे? किसी परिचिततक पहुँचना है आपको? राजनौकासे स्नान करनेकी कृपा करेंगे आप?'

यात्री—तीर्थयात्री प्रयाग आकर दूसरेसे सेवा लें, यह सदा ही संकोचकी बात है सबके लिये। परंतु ये विनम्र राजसेवक—इन्हें तो जैसे यही शिक्षा मिली है कि प्रत्येक यात्रीकी कुछ-न-कुछ सेवा करनी ही है। आवास, स्नानका प्रबन्ध, भोजन, चिकित्सा और आवश्यक हो तो उपयुक्त वस्त्रादि भी।

स्वच्छता, मार्गोंकी व्यवस्था, आवासोंकी पंक्तियाँ और गंगा-यमुनापर बने तरणि-सेतु। इतनेपर भी शतशः राजनौकाएँ यहाँ-वहाँ घूमती रहती हैं। कोई स्नानार्थी स्नान करना चाहे—उसे विलम्ब न हो। कोई वृद्ध, शिशु, अपंग असहाय होनेका अनुभव न करे। दुर्घटना—दुर्घटना होती है वहाँ, जहाँ प्रमाद होता है, अधर्म होता है, अधिकारियोंमें आलस्य एवं उन्माद होता है। सम्राट् हर्षकी उपस्थितिमें दुर्घटना हो—दुर्घटनाके अधिनायक क्रूर पिशाचोंके पैर भी काँपेंगे यहाँ। सम्राट्के सेवकोंके नेत्र यहाँ जैसे एक-एक कणको क्षण-क्षण देखते रहते हैं।

इस सब अद्भुत आयोजन—सुप्रबन्धके मध्य सम्राट्की मोक्षसभा—वह तो मोक्षसभा ही है। भारतके गण्यमान्य विद्वान् भी सुदीर्घ यात्रा करके आये हैं उस सभाका केवल दर्शन करने। आग्रह—अनुरोध एवं श्रद्धाने जैसे सम्पूर्ण देशकी तपस्या, त्याग एवं ज्ञानकी विभूतियोंको एकत्र कर दिया है।

ब्राह्मण और बौद्ध—लेकिन ज्ञान या तप न ब्राह्मण होता न बौद्ध। यह भेद तो जन-सामान्यके मनका मोह है। मोक्ष-सभामें जो ज्ञानकी साकार प्रतिमाएँ—जो लोकपूजित महापुरुष एकत्र हुए हैं, उनका वेश भले उन्हें ब्राह्मण या बौद्ध कहे, उनका ज्ञान सार्वभौम है। उनकी कृपा निर्बाध है। मोक्ष-सभा तो मानवमात्रके लिये मोक्षसभा है।

जनलोकमें ऋषियोंका नित्य सत्संग होता है—यह सुनी-सुनायी बात है; किंतु सम्राट्की मोक्ष-सभा—प्रयागकी पावन भूमिमें कुम्भके पवित्र अवसरपर जैसे पृथ्वीपर जनलोक स्वयं अवतरित हो जाता है, पर उस मोक्षसभामें सम्राट् हर्ष—हर्ष वहाँ सम्राट् कहाँ हैं? संयम, सादगी और सेवाकी वह विनम्र मूर्ति—त्रेताका कोई सम्राट् अपनी यज्ञभूमिमें ऐणेयाजिन उत्तरीय उतारकर धर देनेपर कदाचित् इसी प्रकार दिखायी पड़ता होगा।

'सम्राट् हर्षवर्धनकी जय!' मोक्षसभाका दर्शन करके

निकलनेपर यह जयनाद प्रत्येक कण्ठसे गूँज उठता है। सम्राट्की सेवा और विनय—यह नम्रता ही सदा विजयिनी है और जय तो सदा उसीकी होती है।

अमावास्याका महास्नान—और अब वसंतपंचमीतक सम्राट् दान करेंगे। क्या दान करेंगे, यह पूछनेकी बात नहीं है। उन महाप्राणको तो सर्वस्वदान करना है। अन्न, वस्त्र, आभूषण, रत्न, स्वर्ण, गज, रथ, अश्व, गायें—जो कुछ सम्राट्के पास अपना है वह सब कुछ। किसे दान करेंगे? यह प्रश्न भी कोई मूर्ख ही करेगा। ब्राह्मण-भिक्षु, सेवक, भूखा-भिक्षुक—जो लेना चाहे, सबके लिये मोक्षसभाका द्वार उन्मुक्त है। सम्राट्को तो चिन्ता यह है कि लेनेवाले नहीं हैं। प्रयागकी इस पावन भूमिमें यात्री यथाशक्य दान करने आते हैं। 'कौन क्या स्वीकार करनेकी कृपा करेगा?' राजसेवक संक्रान्तिसे ही यह पता लगानेमें व्यस्त हैं।

× × ×

[४]

'सम्राट् हर्षवर्धनकी जय!' राजसेवकोंके लिये यात्रियोंका नियन्त्रण इतना कठिन अमावास्याके स्नानपर्वपर भी नहीं था। सहस्र-सहस्र यात्री एक ही राजपथके दोनों ओर एकत्र हो गये हैं। अपार जनसमूह एकत्र होता जा रहा है। पुष्पोंकी वर्षाने मार्गको आच्छादित कर दिया है। जनता अपने सम्राट्के दर्शन करना चाहती है।

सम्राट्—स्थाण्वीश्वरका अधिदेवता—विश्वने किसी सम्राट्का यह अद्भुत वेश नहीं देखा होगा। सम्राट्के पास अपना रथतक नहीं है। अपनी बहन राज्यश्रीके रथपर खुले केश, वस्त्राभूषणहीन, कटिमें फटा चिथड़ा लपेटे, दोनों हाथ जोड़े जो तेजोमय गौरवर्ण सुपुष्टकाय भव्यमूर्ति अपने दीर्घदृगोंमें जलभरे विनम्र खड़ी है—प्रान्त-देशमें धनुष और त्रोण पड़े न भी हों तो भी वह सम्राट् है, यह भ्रम भला किसे हो सकता है! इतना उदार, इतना महान् सम्राट्—उसकी कटिका चिथड़ा, त्रिभुवनकी विभूति उस चिथड़ेको देखकर लज्जासे मुख छिपा लेगी। यह सम्राट्—जन-जनके हृदयका यह अधिदेवता—यह धनुष और त्रोण रखे या न रखे, त्रिभुवनकी विजयश्री तो स्वतः इसके चरणोंमें प्रणत होकर कृतार्थ होगी।

'सम्राट् हर्षवर्धनकी जय!' राजरथ प्रयागकी पुण्यतीर्थ-भूमिकी सीमासे पार हुआ और सम्मुख आती रथोंकी पंक्तिमेंसे एक रथ आगे बढ़ आया।

'मेरे मान्य बन्धु!' दक्षिणापथके प्रख्यात पराक्रमी शासक पुलकेशीने रथसे कूदकर प्रणिपात करना चाहा; किंतु हर्षकी स्फूर्तिको दूसरा कोई कहाँ पा सकता है, सम्राट्ने अपनी भुजाओंमें भर लिया उन्हें।

'यह भारत के सम्राट्का रथ है।' पुलकेशीका रथ सारथिने संकेत पाते ही आगे बढ़ा दिया। 'सम्राट्ने मुझे छोटे भाईका गौरव दिया है और अब छोटे भाईको उसका स्वत्व देनेकी बारी है। सर्वस्वदान पूरा हो जाना चाहिये।' हँसते हुए पुलकेशीने दोनों हाथ फैला दिये वह चिथड़ा लेनेके लिये, जिसे हर्षने अपनी कटिमें लपेट रखा था।

'आप जो उपहार चाहें, वह पहलेसे आपके हैं। सम्राट्ने बड़ी उदारतासे कहा। 'हर्षके पास ऐसा कोई अधिकार नहीं; जो दक्षिणापथके शासकको न दिया जा सके।'

'परंतु दक्षिणापथके शासक अपने सम्राट्को इस वेशमें और दो क्षण नहीं देख सकेगा। उसके उपहार स्वीकृत न हों, ऐसा कोई अपराध उसने नहीं किया है।' पुलकेशीके सारथिने रत्नजटित वस्त्र सम्राट्के चरणोंमें रख दिये—'बड़े भाईके अधिकार छोटे भाईके अपने ही हैं। इस समय तो पुलकेशीको बड़े भाईका यह प्रसाद चाहिये, जो उसके कुलमें सुरक्षित रहे और यह बताये कि हर्षने अपने छोटे भाईको इस गौरवके योग्य समझा।'

सेवकोंने वस्त्रोंका आवरण किया, पुलकेशीने अपने हाथों सम्राट्को सजाया और जब सम्राट् रथपर बैठ गये, तब उनकी कटिसे छूटा चिथड़ा उठाकर उस दक्षिणापथके शासकने अपने कन्धेपर डाल लिया।

'यह आप क्या कर रहे हैं?' बड़े संकोचसे हर्षने रोकना चाहा।

'सम्राट्का सर्वस्वदान सम्पूर्ण हो गया और उसका सबसे मूल्यवान् भाग पुलकेशीने प्राप्त किया।' दक्षिणापथके शासकने प्रसन्नतासे दाहिना हाथ उठाकर जयनाद किया—'सम्राट् हर्षवर्धनकी जय!'

दान एवं नीतिपूर्वक कमाया गया धन

[दो आख्यान]

(श्रीनरेन्द्रकुमारजी शर्मा, एम०ए०, बी०एड०)

यदि कोई दान करना चाहे तो उसके लिये नेक कमाई आवश्यक है; क्योंकि अन्यायपूर्वक, अनीतिपूर्वक कमाया हुआ धन दानको निष्फल कर देता है और ऐसे दानको लेनेवाला भी उस धनके दुष्प्रभावोंकी चपेटमें आ जाता है। ऐसे ही दो आख्यान यहाँ प्रस्तुत हैं—

(१)

एक नगरमें किसी धनिकको व्यापारमें अच्छा 'मुनाफा' हुआ, उसके मित्रों तथा परिजनोंने कुछ दान कर देनेका सुझाव उसके सामने रखा। थोड़ी ना-नुकुरके बाद धनिक तैयार हो गये और मन्दिरके पुजारीजीको भोजन करानेपर सहमत हो गये। पुजारीजीको निमंत्रण भेज दिया कि 'कल आप हमारे यहाँ दोपहरका भोजन करें।' पुजारीजी बहुत सरल सात्त्विक स्वभावके थे। पूरा दिन मन्दिरमें भगवान्की सेवामें लगा देते, समय निकालकर भक्तजनोंके साथ भगवच्चर्चा भी करते। उनका कोई निन्दक नहीं था, सभी सम्मान करते थे। अगले दिन नियत समयपर पुजारीजी धनिकके घर उपस्थित हो गये। वहाँ बड़े ठाठ-बाट एवं नौकर-चाकर देखे तो पुजारीजी आश्चर्यमें पड़ गये कि यहाँ भिक्षा तो साधारणसे भी कम स्तरकी मिलती है। अस्तु...

पुजारीजीको एक विशेष कक्षमें ले जाया गया, वहींपर उन्हें आसन दिया गया और थालीमें भोजन परोसा गया। धनिक एवं उनकी पत्नी बड़े आदरसे भोजन कराने लगे। पुजारीजीने इतना स्वादिष्ट भोजन शायद पहले नहीं किया था, सो भरपेट भोजन किया। भोजनके उपरान्त परिजनोंने पुजारीजीसे आग्रह किया कि दोपहरमें धूप तेज है, अतः आप यहीं विश्राम कर लें, धूप ढल जाय तो चले जाना। अधिक खा लेनेके कारण पुजारीजीको भी यह ठीक लगा और उसी कमरेमें एक गद्दीदार शय्यापर वे आराम करने लगे। कुछ ही क्षणोंमें नींद आ गयी। अलमारी खुलनेकी आवाजसे पुजारीजीकी नींद खुल गयी, देखा कि धनिक उसमेंसे कुछ रुपये निकाल रहे थे, यह सम्भवतः तिजोरी थी। खुली अलमारीमें नोटोंकी गड्डियाँ भरी थीं। पुजारीजीका विवेक डगमगाने लगा। धनिक अलमारीको बन्दकर बाहर चले गये, ताला लगाना शायद भूल गये। पुजारीजीने मौका देखकर एक गड्डी निकाली और अपनी झोलीमें डाल ली। फिर सोनेका उपक्रम करने लगे। कुछ समय बाद एक नौकरने दरवाजेपर दस्तक देकर बताया कि 'धूप ढल गयी है, आप जाना चाहें तो जा सकते हैं।' पुजारीजी आरामसे उठे, सबको आशीर्वाद देते हुए वहाँसे चले गये। भोजन पाचन-क्रिया अनवरत रूपसे चल रही थी।

मन्दिरमें जाकर पुजारीजी कुछ बेचैनसे रहे। उन चोरीके रुपयोंको ठिकाने लगानेकी योजना बनाते-बिगाड़ते रहे। सायंकालीन पूजा-अर्चनामें मन नहीं लग रहा था, फिर भी सभी औपचारिकताएँ पूरी कीं और रात्रिमें सो गये। प्रातः उठकर दैनिक क्रमसे निवृत्त हुए तो पुजारीजी आत्मग्लानिसे भर उठे, हाय... ये मैंने क्या अनर्थ कर डाला... ? वे धनिक मेरे बारेमें क्या सोचेंगे? कभी मन्दिरमें ठाकुरजीके सामने गिड़गिड़ाते, 'प्रभु मेरी बुद्धि क्यों हर ली?' कभी मन्दिरके बगीचेमें एकान्तमें रोते। अब ज्यादा बेचैन थे कि इस पापका प्रायश्चित्त कैसे किया जाय?

थोड़ी देर बाद ही पुजारीजी उस गड्डीको झोलीमें डालकर धनिकके द्वारपर पहुँच गये। सुबह-सुबह पुजारीजीको देखकर धनिक-परिवारको भी आश्चर्य हुआ, 'पुजारीजी! कोई काम था क्या?' पुजारीजीने स्वीकृतिमें सिर हिलाया और अन्दरकी ओर चलनेका संकेत किया। धनिक स्वयं और पुजारीजी उसी कक्षमें पहुँच गये। वहाँपर एक नौकरको बाँधकर बैठा रखा था, पुजारीजी कुछ बोलते, उससे पहले ही धनिकने बताया—'महाराज! कल भूलसे अलमारी खुली रह गयी और इसने आपको जगानेके बहाने, अलमारीसे नोटोंकी एक गड्डी चुरा ली।' पुजारीजी परेशान हो उठे—'नहीं, इसने ऐसा नहीं किया...' धनिक बीचमें ही बोल पड़े—'महाराज! इसने स्वीकार किया है कि रुपये इसने ही चुराये हैं, इसके परिवारवाले उन पैसोंको लाने गये हैं। आप नहीं जानते... इन नौकरोंसे सच उगलवाना हमें आता है।' नौकर निरीह बनकर पुजारीजीकी ओर देख रहा था। पुजारीजी प्रकम्पित हो गये और एक झटकेके साथ नोटोंकी गड्डी अपनी झोलीसे निकालकर धनिकके हाथपर रख दी और विनयपूर्वक

बोले 'आप इसे छोड़ दें, यह वास्तवमें निर्दोष है... यह गड्डी मैंने आपकी अलमारीसे निकाली थी...। मुझे उस समय न जाने क्या हुआ था कि मैं लालचके वशीभूत हो गया... परंतु सुबह पूजा-अर्चनाके बाद मुझे ज्ञान हुआ कि वे सब लोग नोटोंकी वजहसे परेशान होंगे और मैं आ गया। अब आपकी इच्छा, जो दण्ड दें, मुझे स्वीकार है।' धनिक एवं बँधा हुआ नौकर दोनों हैरान थे। अन्ततः धनिकने नौकरको क्षमा-याचनासहित मुक्त किया और पुजारीजीके चरणस्पर्शकर कहा 'आप धन्य हैं...।' पुजारीजी मन-ही-मन सोच रहे थे कि उनके द्वारा ग्रहण किया गया भोजन अनीतिपूर्वक कमाये गये पैसेसे तैयार हुआ था, जिसका दुष्प्रभाव उनके ऊपर हुआ और जबतक भोजन उनके पेटमें रहा तबतक बुद्धि भी मलिन रही।

(२)

एक सन्त पैदल यात्रापर थे, तेज धूप होने कारण गर्मी भी लग रही थी और प्यास भी लग रही थी। जिस रास्तेपर वे चल रहे थे, उससे गाँव कुछ दूरीपर हटकर था, अतः गाँव जाना उचित भी नहीं था, थोड़ी देर चलनेके बाद रास्तेके निकट ही एक पेड़ दिखायी दिया। सन्तने सोचा थोड़ी देर छायामें विश्राम हो जायगा तो गर्मीका प्रभाव कम हो जायगा। जैसे ही वे पेड़के पास आये तो देखा कि वहाँ एक कुआँ भी था और कुएँपर एक सुन्दर-सी जंजीरमें साफ-चमकीली बाल्टी भी बँधी थी ताकि राहगीर कुएँसे पानी निकालकर पी सकें। सन्तजीकी गर्मी और प्यास दोनों समस्याएँ हल हो गयीं। उन्होंने कुएँसे पानी निकालकर पानी पिया। पानी बहुत ठण्डा एवं स्वादिष्ट लगा। आवश्यकतामें कोई वस्तु मिले तो बड़ी गुणकारी प्रतीत होती है। पानी पीनेके बाद कुछ क्षण विश्राम करनेके उद्देश्यसे सन्त वहीं घासपर आसन लगाकर बैठ गये। धूप पेड़के पत्तोंसे यदा-कदा छनकर कुएँपर पड़ जाती थी, इससे जंजीर एवं बाल्टी और चमक उठती थी। एक बारकी चमकने सन्तको चौंका दिया—ऐसे निर्जन स्थानमें कुएँपर इतनी अच्छी बाल्टी एवं जंजीर...? बड़ा पुण्यका कार्य किया है किसीने, परंतु फिर एक बार अपनी पुरानी बाल्टीको देखा और कुएँवाली बाल्टीसे तुलना की तो मनमें कुछ विकार आया—क्यों न बाल्टी बदल ली जाय? यहाँ तो कोई दूर-दूरतक नहीं है। ठण्डे पानीने प्यास तो बुझा दी, परंतु विकार जगा दिये। सन्त उठे और जंजीरसे बाल्टीको अलग करनेकी विधि विचारने लगे, तभी पेड़से एक सूखी लकड़ी गिरी, पत्तोंकी आवाज हुई, सन्त ठिठक गये, पुनः आसनपर बैठ गये। थोड़ी देरमें फिर रास्तेपर इधर-उधर देखा कि कोई व्यक्ति तो नहीं आ रहा? और जंजीर उठाकर देखा कि बाल्टी कैसे अलग की जाय...? पासके खेतमें पत्तोंके सरसरानेकी आवाज हुई, सन्त फिर झिझक गये, देखा एक जंगली पशु खेतमेंसे निकलकर जा रहा था।

सन्तने एक बार फिर पानी पिया और निराश होकर अपने मार्गपर चल दिये। मनमें बेचैनी जरूर थी। थोड़ी दूर जाकर फिर मन हुआ कि इस बार तो जंजीरको तोड़ लेंगे और दोनों चीजें आ जायँगी, कुटियामें जरूरत भी है। सन्त उस तेज धूपमें भी लौट आये कुएँपर...। इस बार जो विधियाँ अपना सकते थे, वे सब प्रयोग कर लीं, जंजीरको तो तोड़नेका भी प्रयास किया, परंतु सफलता नहीं मिल पायी... थक-हारकर फिर अपनी राहपर चल पड़े और रास्तेमें विचार किया कि आखिर क्यों लालचके वशीभूत हुए? अपने ऊपर लज्जा भी आ रही थी कि 'सन्त होकर ऐसा तुच्छ कार्य क्यों करना चाहा? लालच भी, चोरी भी और मार्गमें चलनेवालोंकी सुविधाका हनन भी...।' सन्त सोचते हुए चले जा रहे थे। काफी दूर निकल चुके थे, तभी एक किसान उसी रास्तेपर आता मिला। सन्तने पूछा—भाई! यहींके रहनेवाले हो या कहीं दूरके? किसानने बताया महाराज! जिधरसे आप आ रहे हैं, आगे मेरा गाँव है। कोई बात है क्या? सन्तने कहा—उधर रास्तेमें एक पेड़के पास कुआँ है, उसका जल बड़ा स्वादिष्ट एवं ठण्डा है। किसानने कहा—'हाँ, महाराज! इस रास्तेपर एक स्थानपर ही कुआँ है। वहीं हमारा गाँव भी है...।' सन्तने पूछा 'उसको बनवाया किसने और बाल्टीकी व्यवस्था किसने की है?' इसपर किसान कुछ झिझक गया... 'महाराज! यह तो हमारे गाँवके ही एक व्यक्तिने बनवाया था, परंतु आप यह सब क्यों जानना चाहते हैं?' सन्तकी आँखोंमें चमक आ गयी और बोले, वह व्यक्ति मिल सकता है क्या? किसानने बताया—'नहीं महाराज, वह मिल नहीं सकता...; क्योंकि वह हत्या एवं डकैतीके अपराधमें आजीवन कारावास भोग रहा है।' सन्त बुदबुदाये, उन्हें अपनी शंकाका समाधान मिल गया था—उसने काम तो नेक किया (प्याऊका प्रबन्ध), परंतु धन अनीतिसे कमाया हुआ खर्च किया। दोनों पथिक अपने-अपने पथपर पुनः बढ़ चले।

दान देनेकी प्रतिज्ञा करके न देनेका दुष्परिणाम

[सियार और वानरकी कथा]

जो लोग पहले दान देनेकी प्रतिज्ञा (संकल्प) करके फिर मोहवश दान नहीं देते हैं, उनकी बड़ी दुर्गति होती है और उन्हें नीच योनियोंमें जन्म लेकर बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। इस सम्बन्धमें महाभारतमें सियार तथा वानरकी कथा आयी है। ये दोनों पूर्वजन्ममें मनुष्ययोनिमें थे तथा बड़े ही घनिष्ठ मित्र थे। दूसरे जन्ममें सियार और वानर हो गये। इन्हें तब भी अपने पूर्वजन्मका ज्ञान था तथा इस जन्ममें भी ये मित्रभावसे प्रायः साथ-साथ ही रहा करते थे। एक दिन सियारको श्मशानमें मुर्देका मांस खाता हुआ देखकर वानरने अपने पूर्वजन्मका स्मरण किया और सियारसे पूछा—भैया! तुमने पहले जन्ममें कौन-सा भयंकर पाप किया था, जिससे तुम मरघटमें घृणित एवं दुर्गन्धयुक्त मुर्देको खा रहे हो?

सियार थोड़ी देर सोचमें पड़ गया, फिर बड़े दुःखी मनसे बोला—भाई वानर! पूर्वजन्ममें मैं मनुष्य था और

मैंने ब्राह्मणको दान देनेकी प्रतिज्ञा की थी, किंतु वह वस्तु उसे नहीं दी। इसीके कारण मैं इस पापयोनिमें आ पड़ा हूँ और भूख मिटानेके लिये मुझे यह घृणित आहार करना पड़ रहा है—

ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य न मया तदुपाहृतम्॥
तत्कृते पापकीं योनिमापन्नोऽस्मि प्लवङ्गम।
तस्मादेवंविधं भक्ष्यं भक्षयामि बुभुक्षितः॥

(महा० अनु० ९। १२-१३)

कदाचित् मैंने दान दिया होता तो मेरी यह दुर्गति नहीं होती। अच्छा, मेरी तो तुमने सुन ली, अब तुम बताओ कि तुमने कौन-सा पाप किया था, जो तुम्हें वानरयोनि मिली।

इसपर वानरने कहा—क्या बताऊँ भैया! पूर्वजन्ममें मैं भी मनुष्ययोनिमें था, किंतु मैं सदा ब्राह्मणोंका फल चुराकर खा जाया करता था, इसी पापसे मैं वानर हुआ, अतः किसीको भी ब्राह्मणका धन नहीं चुराना चाहिये। उनके साथ कभी झगड़ा नहीं करना चाहिये और उनके लिये जो वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा की गयी हो, वह अवश्य देनी चाहिये—

सदा चाहं फलाहारो ब्राह्मणानां प्लवङ्गमः।
तस्मान्न ब्राह्मणस्वं तु हर्तव्यं विदुषा सदा।
समं विवादो मोक्तव्यो दातव्यं स प्रतिश्रुतम्॥

(महा० अनु० ९। १५)

भीष्मजीने युधिष्ठिरको यह कथा सुनायी और कहा—युधिष्ठिर! जो व्यक्ति चाहे थोड़ा या अधिक देनेकी प्रतिज्ञा करके उसे नहीं देता है तो उस व्यक्तिकी आशाएँ वैसे ही नष्ट हो जाती हैं, जैसे नपुंसककी सन्तानरूपी फलकी आशा। वह आजीवन जो कुछ होम, दान तथा तप करता है, वह सब प्रतिज्ञाभंगके पापसे नष्ट हो जाता है—

यो न दद्यात् प्रतिश्रुत्य स्वल्पं वा यदि वा बहु।
आशास्तस्य हताः सर्वाः क्लीबस्येव प्रजाफलम्॥
यच्च तस्य हुतं किञ्चिद् दत्तं वा भरतर्षभ।
तपस्तप्तमथो वापि सर्वं तस्योपहन्यते॥

(महा० अनु० ९। ३, ५)

दानवीर राजर्षियोंके आख्यान और दानकी गाथाएँ

भारतीय सनातन संस्कृति श्रेष्ठ राजर्षियोंके पवित्र चरित्रोंसे सदासे आप्लावित रही है। यहाँका गौरवमय इतिहास इन धर्मात्मा, पुण्यात्मा राजाओंकी कीर्ति-पताकाका गान करता है। यहाँ ऐसे-ऐसे महान् राजा हो चुके हैं, जिन्होंने अपने विशिष्ट गुणोंके द्वारा ऐसे-ऐसे अद्भुत कार्य किये हैं, जो सदाके लिये स्मरणीय और अनुकरणीय हैं। अपने महनीय कार्यसे उनका न केवल यहीं, अपितु दूसरे लोकोंमें भी यशोगान होता आया है। उनकी महिमामें गायी गयी इसी प्रशस्तिको 'गाथा' नामसे जाना जाता है। अर्थात् उनकी कीर्ति तथा यशके विषयमें और उनके विशिष्ट पराक्रमके सम्बन्धमें जो बात प्रचलित हुई, वह गाथा कहलाती है। वाल्मीकीय रामायण, पुराणों तथा महाभारतके राजवंशवर्णनमें ऐसे राजाओंके चरित्र वर्णित हैं, जो अत्यन्त पावन तथा महान् लोकोपकारक हैं। ये राजर्षि अत्यन्त धर्मात्मा, भगवद्भक्त, ब्राह्मणभक्त, सदाचारी, सत्यवक्ता, न्यायप्रिय, प्रजावत्सल, गोभक्त तथा महान् पराक्रमी थे। इनका धर्मशासन न केवल सप्तद्वीपा वसुमतीमें था, अपितु स्वर्गादि लोकोंमें भी इनकी महिमाका गान होता था। उनका ऐसा प्रभाव था कि साक्षात् देवता भी उनके पास आया-जाया करते थे और ये राजर्षि भी अपने चारित्रिक बलसे-तपोबलसे देवलोकमें आते-जाते थे। धर्माचरण तथा प्रजारंजन—ये इनके दो मुख्य कार्य थे। इन राजाओंने बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया, जिनमें दी जानेवाली दान-दक्षिणाकी कोई सीमा नहीं होती थी, उनके इस अद्भुत दान तथा पराक्रमसे सम्बन्धित जो बात प्रसिद्ध हो गयी, वह गाथाके नामसे कही जाने लगी। तबसे वह आजतक उसी रूपमें गायी जाती है। यहाँ ऐसे ही कुछ दानवीर राजर्षियोंके पावन चरित और उनकी गाथाओंको संक्षेपमें दिया जा रहा है, जिसको पढ़नेसे लगता है कि उस समय भारतदेश कितना समृद्ध तथा कितना सम्पन्न था। उस समय रत्नोंके पर्वतोंका, सोने-चाँदीके पर्वतोंका दान होता था, यथा—रत्नाचल, सुवर्णाचल, रजताचल आदि। ऐसे ही रत्नमयी, सुवर्णमयी धेनुका दान होता था। कितना वैभव था उन राजर्षियोंके पास, कितने धर्मात्मा थे वे, यह सारा द्रव्य न्यायोपार्जित मार्गसे तथा उनके तपोबल एवं दानधर्मसे उन्हें प्राप्त था। वे राजर्षि जानते थे कि धनका वास्तविक उपयोग, उसका साफल्य दान करनेमें ही है, न कि संचयमें। उन्होंने यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको इतना दान दिया, दीनों-अनाथोंको इतना सन्तृप्त किया कि वे सदाके लिये सन्तुष्ट हो गये। कुछ-एक राजर्षियोंके दृष्टान्त तथा उनकी दानगाथाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं—

(१) राजर्षि मरुत्त

वैवस्वत मनुके वंशमें अविक्षित् नामके एक प्रतापी चक्रवर्ती सम्राट् हुए, उन्हींके एक पुत्र हुए, जो मरुत्तके नामसे प्रसिद्ध थे। राजर्षि मरुत्त महान् धर्मात्मा तथा प्रतापी सम्राट् थे। इनमें दस हजार हाथियोंके समान बल था। ये साक्षात् दूसरे विष्णुके समान जान पड़ते थे। इनका धर्मशासन सातों द्वीपोंमें चलता था। इन्होंने हजारों यज्ञोंका अनुष्ठान किया और उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दीं। राजा मरुत्तने सौ यज्ञ करके देवराज इन्द्रको भी पराजित कर दिया था। महाराज मरुत्तके महान् यज्ञके सम्बन्धमें ब्राह्मणग्रन्थों, पुराणों, वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत आदिमें एक ही प्रकारकी गाथा मिलती है, जो बड़ी स्मरणीय, दिव्य तथा दानधर्मसे परिपूर्ण है। श्रीमद्भागवत (९।२।२७-२८)-में राजर्षि मरुत्तके सम्बन्धमें गायी जानेवाली गाथा इस प्रकार है—

मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथान्यस्य कश्चन।
सर्वं हिरण्मयं त्वासीद् यत् किञ्चिच्चास्य शोभनम्॥
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः।
मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः॥

इस गाथाका भाव यह है कि अविक्षित्के पुत्र आवीक्षित—चक्रवर्ती सम्राट् महाराज मरुत्तका यज्ञ जैसा हुआ, वैसा और किसीका नहीं हुआ। उस यज्ञके समस्त छोटे-बड़े पात्र अत्यन्त सुन्दर एवं सोनेके बने हुए थे। उस यज्ञमें इन्द्र सोमपान करके आनन्दित हो गये थे और दक्षिणाओंसे ब्राह्मण तृप्त हो गये थे। उस यज्ञमें (भोजनादि)

परोसनेवाले थे मरुद्गण और विश्वेदेव सभासद् थे।

राजर्षि मरुत्तकी यह गाथा सबसे पहले ब्राह्मणग्रन्थों (वेदों)-में गायी गयी। ऐतरेय ब्राह्मण (३९।८।२१) तथा शतपथब्राह्मण (१३।५।४।६)-में समान रूपमें इसका उल्लेख हुआ है। वाल्मीकीय रामायण तथा विष्णुपुराण (४।१।३२-३३)-में भी यही गाथा निरूपित है।

इस प्रकार राजा मरुत्तके महान् यश तथा उसकी ब्रह्मण्यता तथा दानशीलताका इसमें उल्लेख हुआ है। यह गाथा इतनी प्रसिद्ध हुई कि आज भी सभी याज्ञिक तथा कर्मकाण्डी विद्वान् छोटे-बड़े यज्ञोंमें तथा पूजा-पाठके अनुष्ठानके अन्तमें इस गाथाका गान करते हैं।

राजर्षि मरुत्तके यज्ञके प्रधान आचार्य थे महर्षि संवर्त। उन्होंने ही इन्हें शिवाराधनाका उपदेश दिया। फलतः भगवान् शिवने प्रसन्न होकर राजा मरुत्तको ऐसा महान् यज्ञ करनेके लिये स्वर्णमय सुमेरु पर्वतके शिखरका एक भाग प्रदान कर दिया और राजर्षि मरुत्तने वह सारा सुवर्ण दानमें दे दिया। महाभारतमें यह भी आया है कि उस यज्ञसे जो छिट-पुट सुवर्णराशि बच गयी थी, उसीसे महाराज युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था। (महा०आश्व० १०।३७, ३।२०-२१)

(२) राजर्षि विशाल

राजर्षि मरुत्तकी वंश-परम्परामें आगे चलकर तृणबिन्दु नामक राजा हुए। उनके एक पुत्र हुए जो विशाल नामसे प्रसिद्ध हुए। ये महान् पराक्रमी तथा धर्मात्मा राजा थे। इन्होंने अपने नामपर विशाला नामकी पुरी बसायी—**'जज्ञे यः पुरीं विशालां निर्ममे'** (विष्णुपु० ४।१।४९)।

इनके वंशमें अनेक राजा हुए जो विशालवंशीय कहलाते हैं। ये बड़े ही धर्मात्मा तथा महान् दानी हुए। इन राजाओंके विषयमें यह गाथा प्रसिद्ध है—

तृणबिन्दोः प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः।
दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तोऽतिधार्मिकाः॥

(विष्णुपु० ४।१।६१)

अर्थात् राजा तृणबिन्दुके प्रसादसे विशालवंशीय समस्त राजालोग दीर्घायु, महात्मा, वीर्यवान् और अति धर्मपरायण हुए।

(३) राजर्षि सुहोत्र

राजर्षि सुहोत्र अपने समयके अद्वितीय वीर थे। प्रजापालन, धर्माचरण, दान, यज्ञानुष्ठान तथा राज्यकी रक्षा—ये उनके मुख्य कर्तव्य थे। उनके पराक्रम तथा सदाचारसे प्रभावित होकर मेघ स्वर्णकी वर्षा करते थे। उनके राज्यमें नदियाँ अपने जलके साथ-साथ सुवर्ण भी बहाया करती थीं। राजर्षि सुहोत्रने कुरुजांगल देशमें एक महान् यज्ञ किया और अपनी अनन्त सुवर्णराशि ब्राह्मणोंको

दानमें दे दी—

ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत॥

(महा०द्रोण० ५६।९)

(४) राजा पौरव

अंगदेशके राजा पौरव धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्यमें बहुत बढ़े-चढ़े थे। उन्होंने अनेक अश्वमेधयज्ञ सम्पन्न किये, जिसमें यज्ञविधिके ज्ञाता विद्वानोंका समागम होता था। उन्होंने सुवर्णमालाओंसे विभूषित एक करोड़ गौओं आदिका दान किया था। उस यज्ञमें भाँति-भाँतिके अन्नोंके पर्वत दक्षिणामें दिये गये। उनके यज्ञके विषयमें प्राचीन बातोंको जाननेवाले लोग इस प्रकार गाथा गाते हैं—

अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः।
गुणोत्तरस्तु क्रतवस्तस्यासन् सार्वकामिकाः॥

(महा० द्रोण० ५७।११)

अर्थात् अंगनरेशके सभी यज्ञ स्वधर्मके अनुसार प्राप्त

और शुभ थे। वे उत्तरोत्तर गुणवान् और सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले थे।

(५) महाराज शिबि

उशीनरपुत्र राजर्षि शिबि महान् दानवीर हो गये हैं। ये अपनी दयालुता और दानशीलताके लिये प्रसिद्ध हैं। अग्निने कबूतर और इन्द्रने बाजपक्षीका रूप धरकर इनकी दानशीलताकी परीक्षा ली थी, तब इन्होंने बाजको सन्तुष्ट करनेके लिये और शरणागत कबूतरकी रक्षाके लिये अपना सारा शरीर ही अर्पित कर दिया। ये परीक्षामें सफल हुए। इनकी यह घटना तो प्रसिद्ध ही है, किंतु इनका पराक्रम तथा वैभव भी अद्भुत था। ये सम्पूर्ण पृथ्वीके एकमात्र अधिपति थे। इन्होंने अनेक अश्वमेधयज्ञ किये। जिनमें सहस्रकोटि स्वर्णमुद्राओंका दान किया था, उन यज्ञोंमें यज्ञस्तम्भ, आसन, गृह, परकोटे और दरवाजे सुवर्णके बने थे। उनके द्वारा किये गये गोदानके विषयमें इस प्रकारकी गाथा प्रसिद्ध है—

यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः ॥
यावत्यः सिकता गाङ्ग्यो यावन्मेरोर्महोपलाः ।
उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोऽपि च ॥
तावतीरददद् गा वै शिबिरौशीनरोऽध्वरे ॥

(महा० द्रोण० ५८। ६—८)

अर्थात् बरसते हुए मेघसे जितनी धाराएँ गिरती हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र दिखायी देते हैं, गंगाके किनारे जितने बालूके कण हैं, सुमेरुपर्वतमें जितने स्थूल प्रस्तरखण्ड हैं तथा महासागरमें जितने रत्न और प्राणी निवास करते हैं, उतनी गौएँ उशीनरपुत्र शिबिने यज्ञमें ब्राह्मणोंको दानमें दी थीं।

राजर्षि शिबिके यज्ञमें दक्षिणासे समन्वित लाखों ब्राह्मण अपना अभीष्ट भोजन किया करते थे और आनन्दित होते थे। उस समय राजा शिबि उनकी आरती किया करते थे। राजा शिबिके पुण्यकर्मसे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उन्हें यह वर दिया था कि राजन्! सदा दान करते रहनेपर भी तुम्हारा धन क्षीण नहीं होगा, तुम्हारी श्रद्धा, कीर्ति और पुण्यकर्म भी अक्षय होंगे, तुम्हारे कहनेके अनुसार ही सब प्राणी तुमसे प्रेम करेंगे और अन्तमें तुम्हें दिव्य लोकको प्राप्ति होगी (महा० द्रोण० ५८। १२-१३)।
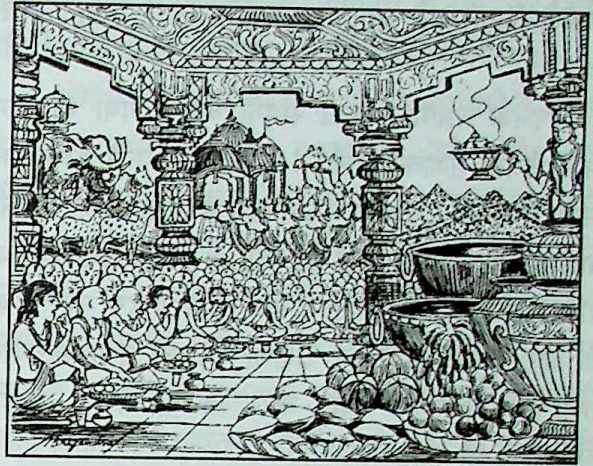
(६) महाराज भगीरथ

त्रिपथगामिनी पावन गंगाको जो इस पृथ्वीतलपर लाये और गंगाजीने जिन्हें अपना पिता माना (वे भागीरथी कहलायीं), उन राजर्षि भगीरथजीके यशोगान एवं गुणावलीकी क्या इयत्ता! उन्होंने सौ अश्वमेधयज्ञोंका अनुष्ठान किया। उनके यज्ञमें स्वयं इन्द्र उपस्थित हुए और वे सोमपानकर आनन्दित हुए। राजर्षि भगीरथने गंगाके दोनों तटोंपर सोनेकी ईंटोंके घाट बनाये और ब्राह्मणोंको दानमें प्रचुर दक्षिणा दी।

उनकी दानशीलतासे प्रभावित होकर गन्धर्वोंने देवताओं, पितरों तथा मनुष्योंके सुनते हुए यह गाथा गायी—

भगीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम् ।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ॥

(महा० द्रोण० ६०। ८)

अर्थात् यज्ञ करते समय भूयसी (प्रचुर) दक्षिणा देनेवाले इक्ष्वाकुवंशी ऐश्वर्यशाली राजा भगीरथको समुद्रगामिनी गंगादेवीने अपना पिता मान लिया था।

राजर्षि भगीरथ अत्यन्त ब्रह्मण्य (ब्राह्मणभक्त) थे। उनके पास जो भी प्रिय था, वह ब्राह्मणके लिये अदेय नहीं था। राजा भगीरथ ब्राह्मणोंकी कृपासे ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए—

सोऽपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥

(महा०द्रोण० ६०। ११)

(७) महाराज दिलीप (खट्वांग)

इलविलाके पुत्र राजा दिलीप खट्वांग नामसे भी प्रसिद्ध हैं। अखण्ड भूमण्डलपर इनका शासन था। इन्होंने यज्ञमें धन-धान्यसे परिपूर्ण सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान

कर दी थी—**य इमां वसुसम्पूर्णां वसुधां वसुधाधिपः। ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत॥** (महा० द्रोण० ६१।२)

इनके यज्ञोंमें सोनेकी सड़कें बनायी गयी थीं। इन्द्र आदि देवता राजाको अलंकृत करने देवलोकसे इनके पास आया करते थे। राजाका यज्ञमण्डप स्वर्णका बना था और वहाँ अन्नके पहाड़ों-जैसे ढेर लगे थे। इनके विषयमें यह प्रसिद्धि है कि जलमें भी इनके रथके पहिये नहीं डूबते थे और धनुषधारी, प्रचुर दक्षिणा देनेवाले तथा सत्यवादी राजा दिलीपका जो दर्शन कर लेते थे, वे भी स्वर्गके अधिकारी हो जाते थे—

राजानं दृढधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम्॥
येऽपश्यन् भूरिदाक्षिण्यं तेऽपि स्वर्गजितो नराः।

(महा० द्रोण० ६१।९-१०)

(८) राजर्षि मान्धाता

इक्ष्वाकुवंशमें राजा युवनाश्वके पुत्र हुए मान्धाता। अपने पिताकी दाहिनी कुक्षिसे इनका प्राकट्य हुआ। उस समय देवराज इन्द्रने प्रकट होकर इनके मुँहमें अपनी

तर्जनी अँगुली दे दी और बालक मान्धाता उसीका पान करने लगा। उस अमृतमयी अँगुलीका आस्वादन करनेसे बालक मान्धाता एक दिनमें बढ़ गये और चक्रवर्ती सम्राट् होकर सप्तद्वीपा पृथ्वीपर शासन करने लगे। यह सम्पूर्ण वसुमती एक ही दिनमें उनके अधिकारमें आ गयी—

एकरात्रेण मान्धाता त्र्यहेण जनमेजयः।
सप्तरात्रेण नाभागः पृथिवीं प्रतिपेदिरे॥

(महा० शान्ति० १२४।१६)

अर्थात् मान्धाताने एक ही दिनमें, जनमेजयने तीन दिनोंमें और नाभागने सात दिनोंमें इस पृथिवीका सम्पूर्ण राज्य प्राप्त कर लिया।

महर्षि सौभरिने राजर्षि मान्धाताके कुलकी दानशीलतामें यही कहा कि हे मान्धाता! पृथिवीतलमें और भी अनेक राजालोग हैं और उनकी भी कन्याएँ उत्पन्न हुई हैं, किंतु याचकोंको माँगी हुई वस्तु दान देनेके विषयमें दृढ़प्रतिज्ञ तो यह तुम्हारा प्रशंसनीय कुल ही है—

अन्येऽपि सन्त्येव नृपाः पृथिव्यां
मान्धातरेषां तनयाः प्रसूताः।
किं त्वर्थिनामर्थितदानदीक्षा-
कृतव्रतं श्लाघ्यमिदं कुलं ते॥

(विष्णुपुराण ४।२।७८)

राजर्षि मान्धताका इतना पराक्रम तथा प्रभाव था कि उनका धर्मराज्य सर्वत्र फैला था। इस सम्बन्धमें यह गाथा गायी जाती है—

यावत्सूर्य उदेत्यस्तं यावच्च प्रतितिष्ठति।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते॥

(विष्णुपु० ४।२।६५, महा० शान्ति २९।९०, महा० द्रोण० ६२।११-१२)

अर्थात् जहाँसे सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है, वह सारा क्षेत्र युवनाश्वके पुत्र मान्धाताका है।

राजा मान्धाता सदा लाखों गोदान करते थे। ये बड़े पराक्रमी, शूरवीर, दानी और भक्त थे। ये सम्पूर्ण पृथ्वीको ब्राह्मणोंको देकर पुण्यात्माओंके लोकमें प्रतिष्ठित हुए।

(९) महाराज ययाति

चन्द्रवंशमें राजर्षि नहुषके पुत्र हुए ययाति, जो अपने वैशिष्ट्यके कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हुए, समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी इनके अधिकारमें थी। ययातिने शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठासे विवाह किया। देवयानीने यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठाने दुह्यु, अनु तथा पुरु नामक तीन पुत्रोंको जन्म दिया। शुक्राचार्यजीके रुष्ट हो जानेसे इन्हें असमयमें वृद्धावस्थाने घेर लिया, किंतु यह भी बता दिया कि कोई तुम्हारी वृद्धावस्था ग्रहण कर ले तो तुम फिर युवा

हो जाओगे। ययातिने अपने पुत्रोंसे कहा, किंतु कोई भी ऐसा करनेको तैयार नहीं हुआ। सबसे छोटे पुत्र पुरुने पिताकी आज्ञा स्वीकारकर पिताकी वृद्धावस्था ग्रहण कर ली और सहस्र वर्षोंतकके लिये अपना यौवन उन्हें दे दिया।

तदनन्तर ययातिके मनमें यह संकल्प उठा कि 'मैं विविध भोगोंको भोगते हुए कामनाओंका अन्त कर दूँगा' और ऐसा निश्चयकर वे निरन्तर भोगोंमें प्रवृत्त हुए, किंतु ऐसा न हो सका। सहस्रों वर्षोंतक भोग करते हुए भी जब उन्हें किंचित् भी तृप्ति नहीं मिली, तब वे निम्न गाथाका गान करने लगे—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्॥
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वास्सुखमया दिशः॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
तां तृष्णां सन्त्यजेत्प्राज्ञस्सुखेनैवाभिपूर्यते॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यतः॥
पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयासक्तचेतसः।
तथाप्यनुदिनं तृष्णा मम तेषूपजायते॥
तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम्।
निर्द्वन्द्वो निर्ममो भूत्वा चरिष्यामि मृगैस्सह॥

(वि०पु० ४। १०। २३—२९)

भोगोंकी तृष्णा उनके भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती, बल्कि घृताहुतिसे अग्निके समान वह बढ़ती ही जाती है। सम्पूर्ण पृथिवीमें जितने भी धान्य, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये सन्तोषजनक भी नहीं हैं, इसलिये तृष्णाको सर्वथा त्याग देना चाहिये। जिस समय कोई पुरुष किसी भी प्राणीके लिये पापमयी भावना नहीं करता, उस समय उस समदर्शीके लिये सभी दिशाएँ सुखमयी हो जाती हैं। दुर्मतियोंके लिये जो अत्यन्त दुस्त्यज है तथा वृद्धावस्थामें भी जो शिथिल नहीं होती, बुद्धिमान् पुरुष उस तृष्णाको त्यागकर सुखसे परिपूर्ण हो जाता है। अवस्थाके जीर्ण होनेपर केश और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं, किंतु जीवन और धनकी आशाएँ उसके जीर्ण होनेपर भी नहीं जीर्ण होतीं। विषयोंमें आसक्त रहते हुए मुझे एक सहस्र वर्ष बीत गये, फिर भी नित्य ही उनमें मेरी कामना होती है। अतः अब मैं इसे छोड़कर और अपने चित्तको भगवान्‌में ही स्थिरकर निर्द्वन्द्व और निर्मम होकर [वनमें] मृगोंके साथ विचरूँगा।

भोगोंसे उपरत होकर राजा ययातिने पुरुसे अपनी वृद्धावस्था ले ली तथा उसकी युवावस्था उसे लौटा दी और उसे राज्याभिषिक्तकर वे तपस्याके लिये वनमें चले गये।

राजर्षि ययातिने विपुल दक्षिणावाले एक हजार श्रौत यज्ञों और सौ वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान किया और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सोनेके तीन पर्वत दानमें दिये और नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा परमात्माका यजन किया। राजर्षि ययाति महान् धर्मात्मा, प्रजावत्सल तथा वदान्य (महान् दानी) थे।

(१०) राजर्षि अम्बरीष

नाभागके पुत्र राजर्षि अम्बरीष सप्तद्वीपवती सम्पूर्ण पृथिवीके स्वामी थे और उनकी सम्पत्ति कभी समाप्त नहीं होनेवाली थी। उनके ऐश्वर्यकी संसारमें कोई तुलना न थी। उन्होंने निष्कामभावसे सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उन यज्ञोंमें राजा अम्बरीषने दस लाख यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंको

दक्षिणाके रूपमें दस लाख सुवर्णमय रथारूढ़ राजाओंको ही दे दिया था। ये महान् भगवद्भक्त थे। यज्ञकुशल ब्राह्मणोंने अम्बरीषकी प्रशस्तिमें कहा कि ऐसा यज्ञ न तो पहलेके राजाओंने किया है और न भविष्यमें होनेवाले ही करेंगे—

नैतत् पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे॥

(महा० शान्ति० २९। १०२, द्रोण० ६४। १५)

(११) महाराज शशबिन्दु

राजर्षि शशबिन्दुका वैभव अपार था, उनके हजारों-हजार पुत्र थे, वे सभी महान् धर्मात्मा थे तथा उन्होंने अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। वे सब उत्तम धनुर्धर तथा सोनेके कवचसे विभूषित थे। राजा शशबिन्दुने अपने उन सभी पुत्रोंको ब्राह्मणोंकी सेवामें दान कर दिया। उस समय
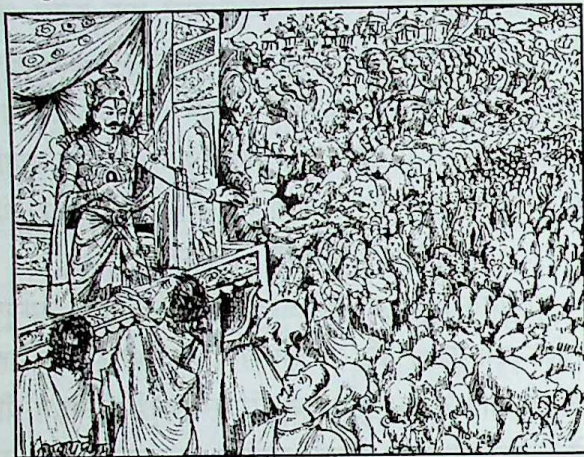
प्रत्येक राजकुमारके साथ स्वर्णाभूषित अनेक हाथी, रथ, अश्व तथा गौएँ थीं।

(१२) महाराज गय

राजा गयका जीवन अत्यन्त पवित्र और सदाचारसे सम्पन्न था। वे भगवान्‌के भक्त थे। उन्होंने सौ वर्षतक होमसे अवशिष्ट अन्नका ही भोजन किया था, एक बार अग्निदेवने उनसे वर माँगनेके लिये कहा था, तब राजा बोले—अग्निदेव! आपकी कृपासे दान करते हुए मेरे पास अक्षय धनका भण्डार भरा रहे, धर्ममें मेरी श्रद्धा बढ़ती रहे और मेरा मन सदा सत्यमें ही अनुरक्त रहे। अग्निदेवने तथास्तु कहकर उन्हें मनोवांछित वर प्रदान किये—**'लेभे च कामांस्तान् सर्वान् पावकादिति'** (महा०शान्ति० २९। ११३)। तदनन्तर राजा गयने सौ वर्षोंतक बड़ी श्रद्धाके साथ दर्श, पौर्णमास आदि अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया; उनमें प्रचुर दक्षिणा दानमें दी। वे सौ वर्षोंतक प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक लाख साठ हजार गौ, दस हजार अश्व तथा एक लाख स्वर्णमुद्रा दान करते थे (महा० द्रोण० ६६। ८-९)। इतना ही नहीं, उन्होंने स्वर्णमय पृथिवी बनाकर उसका दान किया था। उनके यज्ञके विषयमें यह गाथा प्रसिद्ध है—

गयस्य सदृशो यज्ञो नास्त्यन्य इति तेऽब्रुवन्।

(महा० द्रोण० ६६। १५)

राजा गयके समान दूसरे किसीका यज्ञ नहीं हुआ है।

राजा गयको महान् सत्त्वगुणोंसे सम्पन्न होनेसे विष्णुका अंश कहा गया है तथा महापुरुषोंमें इनकी गणना होती है। इन्होंने निष्कामभावसे विविध यज्ञोंका अनुष्ठान भगवत्प्रीतिके लिये किया। इन्हें भक्तियोगकी प्राप्ति हुई। निरभिमानपूर्वक इन्होंने दीर्घकालतक कर्तव्यभावसे धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन किया।

(१३) राजर्षि भरत

दुष्यन्तपुत्र राजा भरत, जिन्होंने शैशवावस्थामें ही वनमें ऐसे-ऐसे कर्म किये थे, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुष्कर थे। वे शैशवमें ही ऐसे निर्भय और वीर थे कि क्रूर सिंहोंको भी अपने

वशमें कर लेते थे। भरतका बल असीम था। वे नाना प्रकारके हिंसक जन्तुओंका दमन कर देते थे। अतः ब्राह्मणोंने उनका नाम सर्वदमन रख दिया। पराक्रमी महाराज भरत जब बड़े हुए तो उन्होंने यमुना, सरस्वती तथा गंगाके तटोंपर सैकड़ों महायज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया। यज्ञोंद्वारा यज्ञपुरुष नारायणकी आराधनाकर शकुन्तलाकुमार राजर्षि भरतने दक्षिणाओंद्वारा ब्राह्मणोंको सन्तृप्तकर आचार्य कण्वको जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए एक हजार कमल भेंट किये। (महा० द्रोण० ६८। ११-१२) राजर्षि भरत साम, दान, दण्ड और भेद—इन चार कल्याणमयी नीतियों और धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्यसे परिपूर्ण थे। इनकी दाननीति सर्वोपरि थी।

(१४) राजर्षि पृथु

वेनके पुत्र राजा पृथुके नामपर ही इस भूमिका नाम पृथिवी पड़ा। ऋषियोंद्वारा पिता वेनके शरीरके मन्थनसे इनका तथा इनकी पत्नी अर्चिका प्राकट्य हुआ। ये भगवान्‌के अवतार हैं। ऋषियोंने विधिवत् इनका राजा पदपर अभिषेक किया। ये आदिराज हैं। राजा वेनके अत्याचारसे पृथिवीका अन्न नष्ट हो चुका था। प्रजा भूखसे व्याकुल हो पृथुके पास आयी। पृथु क्रोधाविष्ट हो गये। पृथिवीने भयभीत हो गौका रूप धारण कर लिया। अन्तमें पृथिवीने इनकी स्तुति की तब राजर्षि पृथुने गोरूपा पृथिवीसे अन्न, औषधि आदिका दोहन किया। ऊँची-नीची पृथिवीको समान किया और नगर तथा ग्राम बसाये।

आदिराज पृथु परमभागवत थे। पृथुके लिये यह पृथिवी कामधेनु हो गयी थी। उनके राज्यमें बिना जोते ही पृथिवीसे अनाज पैदा होता था। पत्ते-पत्तेमें मधु भरा रहता था। कुश सुवर्णमय होते थे। वृक्षोंके फल अमृतके समान स्वादिष्ट होते थे। सभी मनुष्य नीरोग थे। राजर्षि पृथुने अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया। कई सुवर्णमय पर्वत ब्राह्मणोंको दानमें दिये। राजाने अश्वमेधयज्ञमें छाछठ

हजार सोनेके हाथी बनवाये और उन्हें ब्राह्मणोंको दानमें दे दिया, (महा०द्रोण० ६९। ३०) तथा इस पृथिवीकी रत्नोंसे विभूषित सुवर्णमयी प्रतिमा बनायी और ब्राह्मणोंको दानमें दे दी।

(१५) महर्षि परशुराम

जमदग्निनन्दन महायशस्वी परशुरामजीका पराक्रम अद्भुत था। वे भगवान्‌के अवताररूपमें प्रकट हुए थे। इन्होंने सहस्रबाहु सहस्रार्जुनका युद्धमें वध किया तथा पृथिवीको २१ बार क्षत्रियोंसे हीन कर दिया। परशुरामजीने सम्पूर्ण द्वीपोंको अधिकृतकर उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त सौ पवित्र यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें सोनेकी वेदी बनी थी, जो सब प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण थी। अन्तमें परशुरामजीने सम्पूर्ण पृथिवी कश्यपजीको दानमें दे दी और वे महेन्द्रपर्वतपर चले गये। ये अत्यन्त पितृभक्त थे। इनकी माताका नाम रेणुका था। पुराणोंमें इनका महनीय गौरवपूर्ण चरित्र बड़े ही महोत्सवके साथ वर्णित है।

(१६) राजर्षि कार्तवीर्यार्जुन

राजर्षि ययातिके पुत्र यदुके वंशमें आगे चलकर कृतवीर्य नामक एक राजा हुए। जिनके पुत्र हुए अर्जुन। ये अत्यन्त प्रतापी सम्राट् थे। इन्होंने भगवान् दत्तात्रेयकी उपासनासे अनेक दुर्लभ वर प्राप्त किये। वरमें इन्होंने माँगा—मेरे हजार हाथ हों, मैं अधर्माचरणका निवारण कर सकूँ, सम्पूर्ण पृथिवीपर मेरा शासन हो तथा मैं धर्मानुसार प्रजापालन कर सकूँ आदि। वरदानके फलस्वरूप इनके हजार हाथ हो गये। इसीलिये ये सहस्रबाहु तथा सहस्रार्जुन भी कहलाते हैं। कृतवीर्यके पुत्र होनेसे कार्तवीर्यार्जुन भी इनका नाम है। ये सप्तद्वीपा वसुमतीके एकछत्र नरेश थे। इनमें जैसा पराक्रम था, वैसा ही उपासनाका भी भाव था। इन्होंने धर्मपूर्वक प्रजाका पालन किया और प्रचुर दान-दक्षिणावाले दस हजार यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उनके विषयमें यह गाथा आज भी गायी जाती है—

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा प्रश्रयेण श्रुतेन च॥

(विष्णुपु० ४। ११। १६)

अर्थात् यज्ञ, दान, तप, विनय और विद्यामें कार्तवीर्य—सहस्रार्जुनकी समता कोई भी राजा नहीं कर सकता। इनकी ऐसी महिमा थी कि इनके राज्यमें कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता था। धर्मपूर्वक प्रजापालन तथा दान-पुण्य करते हुए उन्होंने पचासी हजार वर्षतक राज्य किया। इनकी राजधानी माहिष्मतीपुरीमें थी। एक बार रावण इनपर विजय प्राप्त करनेके लिये आया तो इन्होंने उसे सहजमें ही पशुकी भाँति बन्दी बना लिया।

(१७) राजर्षि शान्तनु

कुरुवंशमें आगे चलकर प्रतीप नामक राजर्षि हुए। प्रतीपके तीन पुत्र हुए देवापि, शान्तनु और बाह्लीक। इनमें देवापि बाल्यकालमें ही वनमें चले गये। अतः शान्तनु ही राजा हुए। राजा शान्तनु अत्यन्त प्रतापी, ओजस्वी, धर्मात्मा प्रजावत्सल तथा न्यायप्रिय थे। ये भगवान्‌के महान् भक्त थे। इनके राज्यमें प्रजा सुखसे रहती थी। इन्होंने अनेक पुण्यमय कर्म किये। इनकी महिमाके विषयमें तथा इनके नामकी व्याख्यामें एक गाथा इस प्रकार गायी जाती है—

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः।
शान्तिं चाप्नोति येनाग्र्यां कर्मणा तेन शान्तनुः॥

(विष्णुपु० ४। २०। १३)

अर्थात् राजा शान्तनु जिसको-जिसको अपने हाथसे स्पर्श कर देते थे, वे वृद्धपुरुष भी युवावस्था प्राप्त कर लेते थे तथा उनके स्पर्शसे सम्पूर्ण जीव अत्युत्तम शान्तिलाभ करते थे, इसलिये वे शान्तनु कहलाते थे।*

राजर्षि शान्तनुके गंगाजीसे भीष्म नामक पुत्र हुए तथा सत्यवतीसे चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र हुए। चित्रांगद बाल्यावस्थामें ही गन्धर्वोंके साथ युद्धमें मारे गये। विचित्रवीर्यका विवाह काशिराजकी पुत्री अम्बिका एवं अम्बालिकाके साथ हुआ, किंतु यक्ष्मा रोग हो जानेसे अकालमें ही विचित्रवीर्यकी भी मृत्यु हो गयी। तदनन्तर माता सत्यवतीकी आज्ञासे व्यासजीने अम्बिकासे धृतराष्ट्र और अम्बालिकासे पाण्डु नामक क्षेत्रज पुत्रोंको उत्पन्न किया तथा दासीसे विदुरकी उत्पत्ति हुई। आगे धृतराष्ट्रसे कौरव तथा पाण्डुसे पाण्डवोंका प्रादुर्भाव हुआ।

इस प्रकार हस्तिनापुरनरेश राजर्षि शान्तनुकी वंशपरम्परा अत्यन्त श्रेष्ठ रही है। राजा शान्तनुमें इन्द्रियसंयम, दान, क्षमा, बुद्धि, लज्जा, धैर्य तथा उत्तम तेज आदि सद्‌गुण सदा विद्यमान रहते थे। ऐसे धर्मात्मा राजाको पाकर सम्पूर्ण राजाओंने इन्हें राजराजेश्वर (सम्राट्) पदपर अभिषिक्त किया। इनके दानधर्मकी ऐसी कीर्ति हुई कि अन्य राजा लोग भी दान और यज्ञकर्मोंमें स्वभावतः प्रवृत्त होने लगे—

यज्ञदानक्रियाशीलाः समपद्यन्त भूमिपाः॥

(महा० आदि० १००। ९)

राजा शान्तनुके शासनकालमें सबकी वाणी सत्यके आश्रित थी। सभी सत्य बोलते थे और सबका मन दान एवं धर्ममें लगता था—

श्रिता वागभवत् सत्यं दानधर्माश्रितं मनः॥

(महा० आदि० १००। ११)

दानदाताओंको उत्तम लोककी प्राप्ति

महाभारतके अनुशासनपर्वमें जिन राजर्षियों, महर्षियों तथा गृहस्थ सत्पुरुषोंने दान-धर्मका आश्रय लेकर उत्तम लोकोंको प्राप्त किया, उनका संक्षेपमें परिगणन तथा नामोल्लेख किया गया है, जो सत्कर्ममें प्रेरित करनेके लिये बड़े ही महत्त्वका है। इसी आशयसे उसका कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है। धर्मराज युधिष्ठिरके प्रश्न करनेपर पितामह भीष्मने बताया—राजन्! महर्षि आत्रेयने अपने शिष्योंको ब्रह्मविद्याका उपदेश—विद्यादान दिया, जिससे उन्होंने उत्तम लोक प्राप्त किया। काशीके राजा प्रतर्दनने अपने प्रिय पुत्रको ब्राह्मणकी सेवामें अर्पितकर परलोकमें अक्षय आनन्द प्राप्त किया। राजर्षि रन्तिदेवने वसिष्ठके लिये अर्घ्यदान देकर श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया। देवावृध नामक राजाने स्वर्णका छत्र प्रदानकर देवलोक प्राप्त किया। राजर्षि अम्बरीषने अपना राज्य ब्राह्मणको दानमें दे दिया। इसी प्रकार कर्णने कवच-कुण्डल, राजा जनमेजयने गौएँ, राजा वृषादर्भिने नाना प्रकारके रत्न, परशुरामजीने सम्पूर्ण पृथिवी और महर्षि वसिष्ठने समस्त प्राणियोंको जीवनदान दिया। पांचालदेशके राजा धर्मदत्तने शंख नामक निधि, राजा सुमन्तुने भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके पर्वत-जैसे कितने ही ढेर लगाकर महर्षि शाण्डिल्यको दानमें दिये। तेजस्वी शाल्वराजने महर्षि ऋचीकको अपना राज्य दानमें दिया तथा राजा भगीरथने कोहल नामक श्रेष्ठ विप्रको एक लाख सवत्सा गौएँ दानमें दीं। इन तथा और भी बहुत-से लोगोंने दान और तपके प्रभावसे उत्तम लोकोंको प्राप्त किया। संसारमें उनकी कीर्ति सदाके लिये स्थिर हो गयी। भीष्मजी युधिष्ठिरको बतलाते हैं कि दानदाताओंकी कीर्ति तबतक प्रतिष्ठित रहेगी, जबतक यह पृथिवी रहेगी—

तेषां प्रतिष्ठिता कीर्तिर्यावत् स्थास्यति मेदिनी।

(महा० अनु० १३७। २९)

* यही बात महा० आदिपर्व (९५। ४६)-में भी कही गयी है।

ज्ञान-दान

पण्डित सालिगरामजी विद्वान् थे और पूजा-पाठ भी पर्याप्त करते थे। एक दिन वे मन्दिरमें पूजासे निवृत्त होकर मन्दिरकी सीढ़ियोंपर रखी खड़ाऊँ पहन रहे थे कि गाँवका गंगाराम वहाँ आया और अत्यन्त विनीत भावमें पण्डितजीको पालागन करके बोला—'मैं आपके ही पास आया था, महाराज!'

पण्डित सालिगरामने उसकी ओर देखा और दो पग पीछे हटते हुए उपेक्षाभावसे कहा—'रे, क्या बात है, गंगाराम!'

गंगारामने कहा—'घर चलो तो बताऊँ।' और वह बोला—'पण्डितजी! बीस रुपयोंकी जरूरत है। यह चीज…'

पण्डित सालिगरामने गंगारामके हाथमें चाँदीके दो कड़े देखे और कहा—'अच्छा, अच्छा, घर चल!' और तभी वे बोले—'इन दो कड़ोंमें लेगा, बीस रुपये? मूर्ख! इनमें गिलट मिला है। काँसा उठा लाया है कहींसे! और यह नहीं समझता आजकल रुपयेका मोल कितना है! बता तो, कितने वजनके होंगे ये कड़े। थोथे भी होंगे। अन्दर लाख भरा होगा। बस, दो-तीन तोलेसे अधिकके नहीं होंगे?' उन्होंने कहा—'मैं ऐसा घाटेका सौदा नहीं करता, गंगाराम! लाला धनपतरायके पास जा। वे इन्हें रखकर रुपये दे देंगे।'

इतनी बात करते पण्डितजीका घर आ गया। अपने द्वारपर खड़े होकर पण्डितजीने कहा—'तू तो पैसा देनेवालेको मूर्ख बनाता है। ये कड़े उठा लाया और मेरे पैसेको कंकड़-पत्थर समझ रहा है।'

लेकिन दिखता था कि गंगाराम किसी विशेष जरूरतसे ही पण्डितजीके पास आया था। वह अतिशय करुण और दीन बना था। पण्डित सालिगरामकी बात सुनकर बोला—'महाराज! लड़का बीमार पड़ा है। मेरे पास और तो कुछ है नहीं, पत्नीने जाने कब-कबके सहेजकर रखे ये कड़े निकालकर दे दिये। वह भी विवश थी। लड़केकी दवा-दारू तो करनी थी। वही घरका सहारा है। दया करें और इन्हें रखकर रुपये दे दें।'

तभी पण्डित सालिगराम कुटिल भावसे मुसकराये। बोले—'दस रुपये मिलेंगे इन कड़ोंके। रुपये लेने हों तो दे। एक महीने इन्तजार करूँगा। वापिस लेने न आया तो इन्हें किसीको दे दूँगा। मैं घरमें रखकर इनका क्या अचार डालूँगा?'

लेकिन गंगाराम उस समय सचमुच परेशान था। उसने आसमानकी ओर देखते हुए कहा—'पण्डितजी! ये कड़े पचास रुपयेसे कमके नहीं होंगे। लड़का बीमार न होता तो क्या मैं इन्हें इतने सस्तेमें रखता! आप तो भगवान्‌के भगत हैं, ज्ञानी-ध्यानी हैं, जरा रहमसे काम लो। मेरी मुसीबत समझो।'

पण्डित सालिगरामने कुछ क्षुब्ध बनकर कहा—'उपदेश मत दे! व्यवहारकी बात है, उसे समझ ले। मैं इन कड़ोंके पन्द्रह रुपयेसे अधिक नहीं दे सकता।'

बरबस, गंगारामके मुँहसे निकला—'जैसी आपकी इच्छा।'

पण्डितजीने कागजपर रसीद लिखी, अँगूठा लगवाया और कड़े लेकर आलमारीसे निकालकर पन्द्रह रुपये गंगारामके हाथपर रख दिये। जब वह चला गया तो पण्डितजीने अपने-आप कहा—'कम्बख्त, सुबह-ही-सुबह आ गया।' उन्होंने बहीके पन्ने उलटने आरम्भ किये और उन कड़ोंको हाथमें लेकर अन्दाज करते हुए कहा, 'पन्द्रह तोलेसे कमके नहीं होंगे। बाजारमें जाओ तो साठ रुपयेसे कममें नहीं मिलेंगे ऐसे कड़े। ये ठोस भी होंगे।' और तभी अपना मुँह पिचकाकर बोले—'इस गंगारामने ही कौन खरीदे होंगे। किसी यजमानने दे दिये होंगे—हाँ, आजकी तरह तो कलका समय नहीं था। तब तो जिसे देखो, वही चाँदीसे लदा दीखता था और इन लोगोंको तो शौक ही चाँदीका था।'

संयोगसे उसी समय वहाँ पण्डितजीकी पत्नी आ गयी। पत्नीको कड़े दिखाकर पण्डितने कहा—'सौदा अच्छा है न, पन्द्रह रुपये दिये हैं, उस गंगारामको।'

पत्नीने कहा—'जब तुम मन्दिरपर थे, वह यहाँ भी आया था। सुना, उसका लड़का बीमार है। हिरिया कहती थी कि लड़का मौतके मुँहमें पड़ा है। भगवान् ही उसे बचा सकता है।'

पण्डित सालिगरामने बात सुनी तो ध्यान नहीं दिया। उनके मस्तिष्कमें तब भी कड़ोंकी बात थी और वे सोच रहे थे, आज सुबह ही, कम-से-कम चालीस रुपयेका लाभ कमा लिया। आज किसी अच्छेका ही मुँह देखा था।

किंतु उसी समय पत्नीने फिर कहा—'गंगाराम दु:खी होगा। उसका मानस रो रहा होगा। बेचारा, अपनी यह आखिरी चीज भी यहाँ रख गया।' वह बोली—'तुमसे यह भी नहीं हुआ, इस मुसीबतमें उसे दस-पाँच दे देते। कड़े रखकर क्या बड़ा धन कमा लिया? तुमने तो व्यर्थ ही पूजा-पाठ करनेका ढोंग रच रखा है।'

पत्नीसे इतनी बात सुननी थी कि पण्डित सालिगरामका पारा चढ़ गया। तुरन्त कहा—'देवीजी! मैं ऐसे दया-धर्म करता फिरूँ तो फिर भूखों मरूँगा। तुम जो यह सोना लादे फिरती हो, फिर मुझे भी इस गंगारामकी तरह, इन्हीं सबको उतरवाकर किसी बनियेके पास जाना पड़ेगा। यह दुनिया है, दुनिया! यहाँ पूजा-पोथी पढ़नेका यह अर्थ नहीं लगाया जाता कि संसारके व्यवहारको भी ताकमें उठाकर रख दिया जाय। गंगाराम जरूरतमन्द था, तभी आया, नहीं तो वह मेरी परछाईंसे भी दूर भागता है। मुझे पता है, वह मेरे पूजा-पाठ और माथेपर लगे तिलक-चन्दनका उपहास करता है।'

लेकिन पतिसे इतनी बात सुनकर भी पत्नीको सन्तोष नहीं हुआ। उसे पतिका वह व्यवहार क्रूर लगा, जैसे अमानुषीय पाप। गंगाराम जो कुछ सोचता है, वह संगत लगा।

उसी समय पण्डित बोले—'अब ये कड़े इसको दूँगा भी नहीं। यह साठ रुपयेका माल मैं यों ही न खो दूँगा। कुछ मैं भी तो कमाऊँगा।'

पत्नी सूखे भावसे हँसी—'तुम्हें तो किसी बनियेके घरमें जन्म लेना था, ब्राह्मणके घरमें नहीं, और जब यह काम करना है तो इन बड़े-बड़े पोथोंको आलमारीमें बन्द कर दो। धर्मका अर्थ है दया करना, सो वह तुम्हारे पास है नहीं।' वह बोली—'गंगाराम कल रुपये लेकर आये और तुम उसे कड़े न दो तो क्या यह बेईमानी न होगी। और देखती हूँ इस ब्याज-सूदके चक्करमें तुमने लाला धनपतरायकी भी नाक काट ली। यह मत भूलो, लक्ष्मी किसी एक जगह नहीं रहती। यह तो धूप-छाँहकी तरह आती-जाती है।'

स्वयं पत्नीसे ऐसी बात सुनकर, पण्डित सालिगरामका विवेक विकृत बन गया। माथा झनझना गया। तुरन्त कहा—'मैं नहीं समझता था कि देवीजी दयाकी अवतार हैं। आज मुझे धर्मका उपदेश देने चली हैं। मूर्ख बता रही हैं और कह रही हैं, यह तो पाप है, क्रूरता है···ऊँह!'

किंतु पत्नी फिर भी सरल भावमें बोली—'मैं उपदेश नहीं देती, पर कहती हूँ, तुम जो कुछ हो, वही रहो। अपनेसे छलावा मत करो। समाजको भी मत ठगो।'

सुनते ही एकाएक पण्डित सालिगराम लाल पड़ गये। वे क्षुब्ध बनकर बोले—'बस, बस, चुप रहो! आगे मत बढ़ो। अच्छा खानेको मिल जाता है तो दिमाग भी चलता है। कल कुछ न रहे तो पता चले।'

तब, बलात् पत्नी भी तमतमा गयी। बोली—'तो तुम्हीं मुझे रोटी देते हो? मैं अपने भाग्यका खाती हूँ। क्या भूल गये, जब इस घरमें आयी तो शऊरसे चार बर्तन भी नहीं थे। महाराजका खानेका भी ठौर नहीं था।' उसने कहा—'मैं सत्य और धर्मका पल्ला पकड़कर भूखी भी रह लूँगी, पर यह मेरी छातीमें काँटेकी तरह चुभता है कि तुम अब इतने हृदयहीन बनते जा रहे हो। गन्दे पैसेके पीछे पड़े हो।'

एकाएक पण्डित सालिगराम चीख उठे—'पार्वती!'

पार्वतीने कहा—'मैं सत्यको नहीं छिपाऊँगी। आज तुमने अधर्म किया है। उस गंगारामका लड़का मौतके मुँहमें पड़ा है और तुमने उसीको ठग लिया। अपनी झूठी पण्डिताईका प्रभाव तुम दूसरेपर डाल सकते हो, मुझपर नहीं। ऐसा आदमी तो कसाई है, धर्म-ग्रन्थोंका पाठ करनेवाला नहीं।' वह बोली—'आज तुम्हें अवसर मिला था दु:खीकी आत्माका आशीष पानेके लिये, पर तुम्हारी

आँखोंपर तो मायाका चश्मा चढ़ा है, न तुमने गंगारामके आँसू देखे, न उसके मनकी पीड़ा। मैं कहती हूँ आज भगवान् तुम्हारे द्वारपर आया था और वह माथा ठोंककर लौट गया। जिस लाला धनपतरायके पास हजारों रुपया है, उसे कौन गाँवमें अच्छा आदमी कहता है? पिछले दिनों जब उसके घर डाका पड़ा, तो गाँवका एक आदमी भी बाहर नहीं निकला। इस धरतीपर तो 'लो' और 'दो' का व्यापार चलता है। जब तुम नहीं दोगे, तो तुम्हारे पास कौन आयेगा? और सुना नहीं, लोग कहने लगे हैं, पण्डितने अपना पेशा छोड़कर बनियेका धन्धा अपना लिया...कौआ चला हंसकी चाल।' यह कहकर रोषसे भरी पार्वती वहाँसे उठ गयी। वह घरमें जा बैठी। उस समय उसकी आँखें भी छलछला आयीं।

× × ×

देर हो गयी कि पण्डित सालिगराम एकाएक ही उदास बन गये। उनके मनमें कम्पन आ गया। पार्वतीने एक साथ ही जितनी बात कही, मानो उनके जीवनका लेखा-जोखा ही खोलकर रख दिया। वह इतनी निर्मम बनी कि उसने एक पलको यह भी नहीं सोचा कि पतिसे क्या कहना है और क्या नहीं कहना! हाँ, यह बात सर्वसिद्ध थी कि पार्वतीके आनेपर ही पण्डित सालिगरामका घर फला-फूला। पैसा आया, प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। यह बात पार्वतीने तो उसी समय कही, पर उन्होंने गाँवमें अनेक व्यक्तियों और औरतोंसे सुनी, पण्डित तेरी औरत साक्षात् लक्ष्मी है। तेरे घरमें आयी तो अपने साथ वासन्ती-बहार भी ले आयी।

यों दिन चला गया। रात आ गयी घोर काली-काली। पार्वती देरको सो गयी। लेकिन पण्डित सालिगरामकी आँखोंमें नींद नहीं थी। वे बार-बार करवट बदलते। कभी आँख खोलते, कभी बन्द करते। उनके मनमें जैसे कोई तोतेकी तरह चोंच मार रहा था। पीड़ा हो रही थी हृदयमें। जिस प्रकारकी हलचल आज उनके प्राणोंमें हो रही थी, कदाचित् वैसी कभी नहीं हुई। पिछले दिनों जब उनका छोटा भाई मरा, तो उस समय पण्डितजीकी अवस्था खराब थी। पैसा नहीं था। भाईका इलाज ठीकसे नहीं हुआ तो मर गया। लालासे पचास रुपये माँगे, वह मुकर गया और पण्डित सालिगरामके सामने थी पार्वतीकी बात। उन्होंने प्रातः गंगारामके साथ जो कुछ किया, अच्छा नहीं किया। निकृष्ट और घृण्य व्यवहार किया। भगवान्‌की पूजा करके भी उसे व्यवहारमें नहीं लाया गया। मनुष्य-जीवन सार्थक नहीं किया।

सन्ध्या-समय ही उन्हें किसीने बताया था कि अपने घरके दरवाजेपर बैठा बूढ़ा गंगाराम रो रहा था। डॉक्टर आया और कह गया, लड़केका बचना आसान नहीं। उसी समय जब गाँव सो गया, कुत्ते भौंकने लगे, तो पण्डित सालिगरामने आलमारीसे कड़े निकाले और कुछ रुपये। सभी कुरतेकी जेबमें रख लिये। वे हाथमें लाठी लिये गंगारामके टोलेमें पहुँचे। गंगारामके मकानके सामने जैसे ही पहुँचे तो उन्होंने बाहर अँधेरेमें खड़े होकर ही देखा कि गंगाराम और उसकी औरत बीमार बेटेकी चारपाईके पास बैठे हैं। वे उदास हैं, खिन्न हैं। गंगारामकी औरत जैसे सुबक-सी रही है।

यह देख, पण्डितजीने आवाज दी—'गंगाराम!'

गंगारामने सुना तो उठ खड़ा हुआ। बाहर आया। उसे देखते ही पण्डितने पूछा—'क्या हाल है, लड़केका?'

उदास और पीड़ित स्वरमें गंगाराम बोला—'महाराज! हाल बुरा है।' और उसे अचरज हुआ कि यह जाति-धर्मको माननेवाला पण्डित इस भरी रातमें यहाँ कैसे आ गया? क्या कड़े वापस करने आया? अपने रुपये लेने?

लेकिन तभी पण्डित सालिगरामने कहा—'गंगाराम! जीवन और मृत्यु तो भगवान्‌के हाथ है। कह तो मैं देख लूँ तेरे लड़केको।'

गंगाराम जैसे आकाशमें उड़ गया, तुरन्त बोला—'महाराज! आपके पैर इस तुच्छके घरमें पड़ें, ऐसा मेरा भाग्य कहाँ!'

किंतु पण्डित सालिगराम अन्दर चल दिये। देखा, लड़का सचमुच ही बुरी अवस्थामें है। जवान है। खाटसे लगा है। तभी उन्होंने जेबसे कड़े निकाले और पचास रुपये। बोले—'गंगाराम! आज मेरे मनमें कोई बोलता है। मुझे धिक्कारता है। ये अपने कड़े रख। ये पचास रुपये भी। लड़केका इलाज करा। भगवान् भला करेगा।'

उसी समय गाँवकी परम्पराको भूलकर गंगाराम और उसकी औरतने पण्डितके पैर पकड़ लिये, वे दोनों रो पड़े। लेकिन उस समय पण्डित सालिगरामकी भी मन:स्थिति दुर्बल थी, जैसे निस्तेज बनी थी, वे स्वयं भी उद्विग्न बन गये। बोले—'गंगाराम! हम सब एक ही रास्तेके पथिक हैं। चिन्ता न कर!' और वे तभी अपनी भरी आँखोंको लिये तेजीके साथ घरकी ओर लौट पड़े। वे जैसे ही फिर अपनी चारपाईपर जाकर पड़े, तभी पार्वती उठ आयी और बोली—'आज जी चाहता है तुम्हारे पैरोंको धोकर पी लूँ। तुम्हें सिरपर उठा लूँ! औरत भी अपने आदमीपर गर्व करती है और वही तो आज मैं अपने अन्दर पा रही हूँ। तुम गये तो मैं भी पीछे नहीं रही, सभी बातें सुन आयी और तुम्हारे साथ-ही-साथ लौटकर आयी हूँ। अब आराम करो। रात बहुत हो गयी है।'

× × ×

प्रात: हुआ, पण्डित सालिगराम मन्दिर गये। वहाँ प्रतिदिनकी तरह पूजा-पाठ की और लौट आये। उन्हें देखते ही पार्वती बोली—'तुम्हारा आशीष फल गया। गंगारामका लड़का बच गया। मैं गयी और देख आयी।'

प्रसन्नभावमें पण्डितजीने कहा—'तुमने बड़े पुण्यका काम किया। पार्वती! तुमने मुझे भी ज्ञान-दानकर कृतार्थ किया।'

और तब मुसकराती हुई पार्वती अपने पतिकी उन हर्षित आँखोंपर एकाएक ही टिक गयी। वह उसी भावनामें खो गयी।

आदर्श दानकी महत्ता

[कहानी]

(श्रीगणात्रा दयालजी लक्ष्मीदास)

जो दान दिखावेके लिये दिया जाता है, वह आदर्श दान नहीं है।

जो दान कीर्तिके लोभसे दिया जाता है, वह आदर्श दान नहीं है।

जो दान बहुत आडम्बरपूर्वक दिया जाता है, वह आदर्श दान नहीं है।

आदर्श दान वह है, जो गुप्त रूपसे दिया गया हो, दयाकी सच्ची प्रेरणासे दिया गया हो और जिसमें यथार्थत: त्याग हो। ऐसा आदर्श दान अमूल्य है। ऐसे दानकी महत्ता सोची ही नहीं जा सकती।

एक करोड़पति सेठ थे। उनका नाम था बिहारीलालजी। वे नगरसेठ थे। राजाके प्रमुख सहायक थे और बड़े दानी थे। उनके यहाँ आकर कोई भी याचक खाली नहीं लौटता था। नगरसेठ बिहारीलालजीकी पत्नी यमुनाबाई भी बड़ी पतिव्रता थी। वह सदा पतिके अनुकूल ही व्यवहार करती थी।

प्रारब्ध बड़ा बलवान् है। सबके दिन सदा एक-जैसे नहीं रहते। नगरसेठ बिहारीलालजीको अपने व्यापारमें प्रचुर घाटा होने लगा। जिनको उन्होंने ऋण दे रखा था, उन्होंने वह धन लौटाया नहीं। बहुत-सा कर्ज हो गया। अब बिहारीलालजीने देखा कि नगरमें रहनेसे दरिद्रताके कारण अपमान सहना होगा। उन्होंने अपने घरका सब सामान तथा स्त्रीके आभूषण भी चुपचाप बेच दिये और जिन लोगोंका ऋण चुकाना था, उनका ऋण चुका दिया। उनका बड़ा भारी मकान भी ऋण चुकानेमें दूसरेको लिख दिया गया। एक दिन रातको पत्नीके साथ वे चुपचाप नगरसे निकले और वहाँसे दूर जाकर उस गाँवमें रहने लगे, जहाँ उनके पूर्वजोंकी जन्मभूमि थी। वहाँसे व्यापारके लिये आकर उनके पितामह नगरमें बस गये थे।

गाँवमें जाकर बिहारीलालजी बीमार पड़ गये। बहुत चिकित्सा करनेपर भी उनकी बीमारी बढ़ती ही गयी। जो थोड़ा-बहुत सामान नगरसे वे अपने साथ लाये थे, वह भी उनकी चिकित्सामें समाप्त हो गया। अब बेचारी सेठानी यमुनाबाई गाँवमें लोगोंके घर कूटने-पीसनेका काम करने लगी। जो कुछ मजदूरीसे मिल जाता था, उसीसे वह अपने बीमार पतिको पथ्य देनेकी व्यवस्था करती थी और स्वयं भी रूखा-सूखा खाकर दिन काटती थी। एक दिन जो

नौकरानियोंसे घिरी बड़े भारी महलमें आभूषणोंसे लदी रहती थी, भाग्यके फेरसे उसे अब स्वयं मजदूरनी बनना पड़ा था। ऊपरसे यह विपत्ति थी कि उसके पतिका रोग असाध्य होता जा रहा था। वे अब चारपाईसे उठ भी नहीं पाते थे।

उस गाँवमें एक ब्राह्मण एक दिन आये। ब्राह्मण गरीब थे। उनकी कन्या विवाहयोग्य हो गयी थी। वे गाँवके लोगोंसे सहायता माँगने आये थे। कुछ लोग दुष्ट प्रकृतिके होते हैं। दूसरोंकी दयनीय दशाका उपहास करना उन्हें अच्छा लगता है। ऐसे ही कुछ लोग ब्राह्मणको पहले मिल गये। उन लोगोंने ब्राह्मणसे कहा—हमारे गाँवमें सेठ बिहारीलालजी ही सबसे बड़े दानी हैं। आप उनके घर जायँ।

ब्राह्मण बिहारीलालजीका घर पूछते वहाँ पहुँचे। चारपाईपर विवश पड़े रोगी बिहारीलालजीने ब्राह्मणको प्रणाम किया। ब्राह्मणके आनेका कारण जानकर उनके नेत्रोंमें आँसू आ गये। वे समझ गये कि उनसे ईर्ष्या करनेवाले उनकी जातिके लोगोंने उनका उपहास किया है। लेकिन घरपर आया ब्राह्मण निराश होकर चला जाय, यह बड़े दुःखकी बात थी। बिहारीलालजीने ब्राह्मणसे थोड़ी देर बैठनेकी प्रार्थना की और कहा—'सेठानीको आने दीजिये।' ब्राह्मण बैठ गये।

थोड़ी देरमें सेठानी आयीं। ब्राह्मण बिहारीलालजीके घरकी दरिद्र-दशा देखकर ही समझ गये थे कि उन्हें दुष्ट लोगोंने यहाँ भेजा है। जब उन्होंने फटे, मैले वस्त्र पहने, बाल बिखेरे मजदूरनीके वेशमें सेठानीको देखा तो उनको बड़ा दुःख हुआ। ऐसे गरीबसे कुछ माँगना तो बड़ी निर्दयताका काम है। यह सोचकर वे उठकर चलनेको तैयार हो गये।

पतिव्रता सेठानी यमुनाबाईने अपने घरमें ब्राह्मणको बैठे देखा। पतिकी ओर देखा तो उनकी आँखोंमें आँसू भरे थे। वे समझ गयीं कि ब्राह्मण कुछ माँगने आये हैं। सेठानीके दोनों हाथोंमें सोनेकी दो चूड़ियाँ सौभाग्य-चिह्नके रूपमें बच गयी थीं। झट उस देवीने वे चूड़ियाँ निकालकर ब्राह्मणके हाथपर धर दीं। ब्राह्मणने कहा—'बेटी! मैं तेरी ये चूड़ियाँ नहीं लूँगा। मैं तुमलोगोंपर प्रसन्न हूँ।' लेकिन सेठ बिहारीलालजी तथा यमुनाबाईने ब्राह्मणसे बहुत आग्रह किया चूड़ियाँ स्वीकार करनेके लिये। ब्राह्मणने उनके आग्रहको मानकर चूड़ियाँ स्वीकार कर लीं और हृदयसे हजारों सच्चे आशीर्वाद देते हुए वे चले गये। उन चूड़ियोंको बेचकर ब्राह्मणने अपनी कन्याका विवाह सानन्द कर दिया।

ब्राह्मण देवता जिस दिनसे सेठानी यमुनाबाईकी चूड़ियोंका दान स्वीकार करके गये, उसी दिनसे सेठ बिहारीलालकी दशा सुधरने लगी। उनका रोग धीरे-धीरे अच्छा होने लगा। थोड़े दिनोंमें वे घूमने-फिरने योग्य हो गये।

इतने समयमें नगरके बूढ़े राजा परलोकवासी हो चुके थे। राजकुमार राजा हो गये थे। उनकी छोटी बहनको कोई योगी मिले थे और उन्होंने दो यन्त्र राजकुमारीको दिये थे। उन यन्त्रोंमें एक यन्त्र यह बताता था कि किसके पास कितने पुण्य हैं। दूसरे यन्त्रके दर्पणमें कोई भी अपने पुण्य देख सकता था। राजकुमारीने पूरे राज्यमें घोषणा करा दी थी कि जो कोई अपने पुण्य बेचना चाहे, उसे वे खरीद लेंगी। लाला बिहारीलालजीने भी यह घोषणा सुनी। उन्होंने सोचा कि 'नगरमें अब इतने दिनों बाद उन्हें कौन पहचानेगा। बूढ़े राजा भी नहीं हैं। अतः नगर जाकर अपना कुछ पुण्य बेच देना चाहिये। पतिव्रता पत्नीके भरण-पोषणका प्रबन्ध करना मेरा पहला कर्तव्य है। अपने मनकी बात उन्होंने पत्नीसे कही। पत्नीने पहले तो पुण्य बेचनेकी बात स्वीकार नहीं की, किंतु पतिका हठ देखकर वह चुप हो गयी। पतिके काममें बाधा देना उसे ठीक नहीं लगा। उसने थोड़ा-सा सत्तू जो घरमें था, पतिके वस्त्रोंमें बाँध दिया मार्गमें भोजन करनेके लिये।

सेठ बिहारीलालजी सत्तू लेकर घरसे चल पड़े। पैदल चलते-चलते दोपहर हो गयी। उन्हें भूख लगी। एक स्थानपर तालाबके पास वृक्षके नीचे वे बैठ गये। कुछ देर आराम करके उन्होंने तालाबमें स्नान किया। सत्तूको पानीमें घोलकर वे जैसे ही खाने बैठे, एक कुतिया आकर उनके पास बैठ गयी। कुतियाने वहीं पास ही नालेमें बच्चे दिये

थे। वह बहुत भूखी जान पड़ती थी। बिहारीलालजीको कुतियापर दया आ गयी। उनके पास बहुत थोड़ा सत्तू था। उन्हें बड़ी भूख भी लगी थी, पर दयावश वह सब सत्तू उन्होंने कुतियाको दे दिया और स्वयं केवल पानी पीकर आगे चल पड़े।

नगरमें पहुँचकर बिहारीलालजी सीधे राजमहल गये। पुराने बूढ़े सैनिक और चौकीदार उन्हें पहचानते थे। राजकुमारीकी आज्ञा थी कि कोई पुण्य बेचने आये तो उसे उनके पास पहुँचा दिया जाय। बिहारीलालजीको सेवकोंने राजकुमारीके पास पहुँचा दिया। राजकुमारीने उनके सामने योगीका दिया एक यन्त्र रखकर कहा—'आप अपने जो पुण्य बेचने चाहें, उनको मनमें सोचकर इस यन्त्रपर हाथ रखें।'

बिहारीलालजीने कुछ पुण्योंको सोचकर यन्त्रपर हाथ रखा; किंतु यन्त्रने तो एक भी पुण्य नहीं बताया। उन्होंने और पुण्य सोचे, यन्त्र फिर भी जैसे-का-तैसा ही रहा। बिहारीलालजीने अपने सब पुण्य सोच लिये, किंतु यन्त्र हिलातक नहीं। वे निराश हो गये। उनका मुख उदास हो गया। यन्त्रपरसे उन्होंने हाथ हटा लिया। वे सोचने लगे—'इतने दान-पुण्य किये, वे सब क्या हुए!'

राजकुमारीने उन्हें उदास होते देखकर कहा—'आप इस दूसरे यन्त्रके दर्पणमें देखिये। इसमें आपको अपने सच्चे पुण्य दिखायी पड़ेंगे। जो पुण्य कीर्तिके लोभसे किये जाते हैं, वे पुण्य नहीं हैं। उनसे कीर्ति मिल जाती है। वे पुण्य इस यन्त्रके द्वारा पुण्यमें नहीं गिने जाते।'

दूसरे यन्त्रके दर्पणमें बिहारीलालजीको ब्राह्मणको चूड़ियाँ देती अपनी पत्नी दिखायी पड़ी और उनका दिया सत्तू चाटती कुतिया दीख पड़ी। राजकुमारी भी दर्पणकी ओर देख रही थी। उसने कहा—'ये दोनों आपके सच्चे पुण्य हैं। आप इन्हें बेचें तो मैं दो लाख सोनेकी मुहरें दूँगी।'

लाला बिहारीलालजीको अब दानके सच्चे रूपका ज्ञान हुआ। उन्होंने कहा—'ये दोनों पुण्य मैं नहीं बेचूँगा।'

राजकुमारीने दस लाख मुहरें देनेको कहा। बिहारीलाल बोले—'राजकुमारीजी! ये पुण्य मैंने किसी इच्छासे नहीं किये हैं। इन्हें मैं दस करोड़ या दस अरब मुहरोंमें भी नहीं बेचूँगा।'

इसी समय राजकुमारीके भाई राजा वहाँ आ गये। उन्होंने बिहारीलालजीको पहचान लिया। वे बोले—'नगरसेठजी! मैं आपको बहुत दिनोंसे ढूँढ़ रहा था। आपने मेरे पिताके साथ बहुत उपकार किये हैं। मुझे आपने गोदमें खिलाया है। कठिन अवसरपर आपने राज्यको दस लाख मुहरें ऋणमें दी थीं। आपका ऋण ब्याजके साथ राज्यके कोषमें जमा है। अब आप कृपा करके उसे ले लें और नगरमें आकर रहें। आप तो मेरे अच्छे नगरसेठ चाचा हैं। मैं आपको अब यहाँसे जाने नहीं दूँगा।'

सेठ बिहारीलालजी फिर नगरसेठ हो गये। उनकी पतिव्रता पत्नी अपने बड़े भवनमें फिर आ गयीं। लेकिन अब नगरसेठजी पहलेके समान धूम-धामसे दान नहीं करते। वे गरीबोंके घरकी दशाका पता लगाते रहते हैं और इस प्रकार उनके घर सहायता भेजते रहते हैं कि सहायता कौन भेजता है, इसका पता सहायता पानेवालोंको भी नहीं लगता!

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय। खलस्य साधोर्विपरीतमेतद् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥
एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानवराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥

दुष्टकी विद्या विवादके लिये, धन मदके लिये और शक्ति दूसरोंको कष्ट देनेके लिये होते हैं, और सज्जनके इससे विपरीत ही विद्या ज्ञान, धन दान और शक्ति रक्षा करनेके लिये होते हैं। एक तो सत्पुरुष ऐसे होते हैं कि स्वार्थको त्यागकर भी दूसरोंके कार्य साधते हैं, दूसरे साधारण जन ऐसे होते हैं जो स्वार्थको न बिगाड़ते हुए दूसरोंके कार्यमें तत्पर रहते हैं और जो स्वार्थके लिये परहितका नाश करते हैं, वे मनुष्यरूपी राक्षस हैं, पर जो बिना स्वार्थके भी दूसरोंके हितका नाश करते हैं, वे कौन हैं—यह समझमें नहीं आता।

जीमूतवाहनका आत्मदान

(श्री 'चक्र')

विद्याधराधिप जीमूतकेतुके कुमार जीमूतवाहन परिभ्रमण करने निकले थे। उस दिन अमरावतीकी ओर न जाकर उन्होंने दूसरी दिशा अपनायी। उत्ताल तरंगोंसे क्रीड़ा करता अमित विस्तीर्ण नीलोदधि उनको सदा ही परमाकर्षक प्रतीत हुआ है। सृष्टिमें अनन्तके तीन ही प्रतीक हैं— उदधि, आकाश और उत्तुंग हिमगिरि। इनमें भी आकाश नित्य दृश्य होनेसे कदाचित् ही किसीके मनमें कोई प्रेरणा दे पाता है, किंतु उत्ताल तरंगमान सागर तथा हिमाच्छादित उत्तुंग शृंगके समीप पहुँचकर प्राणी अपनी अल्पताका अनुभव सहज कर पाता है। उसका अहंकार शिथिल हो जाता है वहाँ।

जीमूतवाहन चले जा रहे थे आकाशमार्गसे। अकस्मात् उनकी दृष्टि रमणक द्वीपपर पड़ी। सुविस्तीर्ण वह मनोहर द्वीप और उसमें क्रीडा करते नागकुमार, किंतु विद्याधर राजकुमारके लिये इसमें कोई आकर्षण नहीं था। उन्हें चौंकाया था एक विचित्र दृश्यने। द्वीपके बहिर्भागमें पर्याप्त दूर एक अन्तरीप चला गया था सागरगर्भमें और उसके लगभग छोरपर एक उज्ज्वल शिखर दीख रहा था।

'रमणकपर तो कोई उच्च पर्वत नहीं है। यह हिम-शिखर यहाँ और इतना उज्ज्वल! अपने मूलभागसे ऊपरतक उज्ज्वल यह पर्वत! इस नागालयके निवासियोंने यहाँ कोई रजतगिरि बनाया है!' जितना ही ध्यानसे उसे देखा, जिज्ञासा उतनी बढ़ती गयी। जीमूतवाहन उतर पड़े वहाँ।

'हे भगवान्!' कोई भी उस दृश्यको देखकर विह्वल हो उठता और जीमूतवाहन तो अत्यन्त सदय पुरुष थे। वे स्तम्भित, चकित, भयातुर, स्तब्ध खड़े रह गये। वहाँ कोई पर्वत नहीं था। वह पर्वताकार दीखता अस्थिपंजरोंका अकल्पित अम्बार था वहाँ। अखण्ड कंकाल और उनमें मेद, मांस, स्नायुका लेश नहीं। जैसे किसीने सावधानीसे स्वच्छ करके वे सहस्र-सहस्र कंकाल वहाँ एक क्रमसे सजाये हैं।

'क्या है यह? क्यों हैं ये अस्थियाँ यहाँ?' उस अस्थिपर्वतके ऊपरी भागके कंकाल ऐसे लगते थे, जैसे उन्हें अभी कुछ सप्ताह पूर्व ही वहाँ रखा गया है। लेकिन पूछें किससे? उस अशुभ स्थानके आसपास कोई प्राणी नहीं था। लगभग पूरा अन्तरीप नीरव निर्जन पड़ा था।

रमणक द्वीप नागालय है। असंख्य नाग निवास करते हैं वहाँ। अनेक सिरधारी भयंकर विषधर नागोंकी वह भूमि—उसपर दूसरे प्राणी न पाये जायँ, यह स्वाभाविक था। पशु-पक्षी वहाँ सकुशल रह नहीं सकते और समुद्रावेष्टित उस पाषाणभूमिमें क्षुद्र पिपीलिकादिका प्रवेश नहीं। लेकिन रमणकद्वीप नाग-निवास है, सर्पावास नहीं। वहाँ पृथ्वीके साधारण सर्प पहुँच नहीं सकते। जन्मसिद्ध इच्छानुरूप रूप धारण करनेवाली उपदेव जाति नाग वहाँ रहती है। उसके नगर हैं, भवन हैं, समाजव्यवस्था है। नागपुरुष विषधर, सहज सर्पशरीरी हैं, यदि वे अपनी सिद्धिका उपयोग करके कोई अन्य रूप धारण न किये हों।

जीमूतवाहन उस अन्तरीपसे द्वीपके मध्यभागकी ओर बढ़े। उन विद्याधरके लिये नागजातिसे कोई भय नहीं। यह उपदेव जाति तो मित्र है उनके पिताकी और शत्रु भी होती तो उनका सिद्धदेह विषसे प्रभावित होनेवाला तो नहीं है।

'क्या है वहाँ अन्तरीपके अन्तिम भागमें?' जो पहला नाग मिला, उससे ही जीमूतवाहनने पूछ लिया।

'वहाँ?' नाग-तरुणने एक बार दृष्टि उधर उठायी और उसके नेत्र भर आये। उसका मुख कान्तिहीन हो गया। उसने बड़े खिन्न स्वरमें कहा—'हममें कोई उस अशुभ स्थानकी चर्चा नहीं करता। उस ओर मुख करनेसे भी हम बचते रहते हैं। लेकिन उसका आतंक हममेंसे सबके सिरपर सदा रहता है।'

'ऐसी क्या बात है वहाँ?' जीमूतवाहनने अपना परिचय नहीं दिया; किंतु वे इस द्वीपके अतिथि हैं, यह उन्होंने सूचित कर दिया।

'आज पूर्णिमा है। स्वर्णवर्णा मृत्युपक्षी आज वहाँ उतरेगा और एक नागके शरीरका अस्थिपंजर उस पर्वतपर और बढ़ जायगा।' उस नाग-तरुणने व्यथित स्वरमें बतलाया। 'आजके दिन आप उस ओर जानेकी भूल न करें।'

'स्वर्णवर्णा मृत्युपक्षी!' जीमूतवाहन कुछ सोचते खड़े रहे। अब उन्हें स्मरण आया कि इस द्वीपमें कहीं उन्होंने

पीतरंग नहीं देखा है। वस्त्र, भित्तियाँ तथा अन्य सब स्थान इस रंगसे रहित हैं। पूरे द्वीपमें जैसे पीले रंगको अशुभ मानकर बहिष्कृत कर दिया गया है।

'स्वर्णवर्णा मृत्युपक्षी क्या ?' अब भी कोई बात समझमें नहीं आयी थी। मस्तक उठाया तो वह नाग-तरुण जा चुका था। किसी वृद्ध नागसे ही यह पहेली सुलझ सकती है।

'विनताका पुत्र गरुड़ है हमारा आतंक। प्रत्येक पर्वपर उसके लिये बहुत-सी खाद्यसामग्री लेकर किसी-न-किसीको अन्तरीपके अन्तमें स्थित उस महावृक्षके समीप जाना पड़ता है। वह वैनतेय सामग्रीके साथ उसको लानेवालेको भी उदरस्थ कर लेता है। प्रहरभर पश्चात् वह अस्थिराशिके ऊपर उसके कंकालको उगलकर उड़ जाता है।' बड़ी कठिनाईसे वृद्ध नागने रुक-रुककर क्रोध, क्षोभ तथा पीड़ाके स्वरमें यह बतलाया।

'आपलोग यह सब क्यों करते हैं ?' जीमूतवाहनने पूछा।

'अपनी जातिको समूल नष्ट होनेसे बचानेके लिये।' वृद्ध बोल रहा था। 'गरुड़ अमर है। वह निखिल सृष्टिके नायक श्रीनारायणका अनुग्रहभाजन, उनका वाहन है। समस्त सुर-असुर एक साथ होकर भी समरमें उससे पराभव ही पायेंगे। उसका रोषभाजन बनना स्वीकार करे, ऐसा सृष्टिमें कोई नहीं। वह पहले संख्याहीन नागोंका स्वेच्छा-विनाश करता था। यह तो हमारे उस वंश-शत्रुकी उदारता ही है कि पर्वपर केवल एक बलिका वचन लेकर उसने हमारी जातिको जीवित छोड़ रखा है।'

'वैनतेय श्रद्धा-सम्मान-भाजन हैं समस्त प्राणियोंके—यह तो सत्य है।' जीमूतवाहनने स्वीकार किया। 'श्रीहरिके उन प्रमुख पार्षदकी अवमानना कोई सदाशय करना नहीं चाहेगा।'

'हम सब अपनी आदिमाताके सहज सपत्नी-द्वेषका दण्ड भोग रहे हैं। इसमें गरुड़को दोष कैसे दिया जा सकता है ?' वृद्धने कहा। 'केवल शतैकशीर्षा कालियने एक बार साहस किया था। व्यर्थ था उसका औद्धत्य। विनतानन्दनके वामपक्षका एक आघात ही बड़े कष्टसे वह सह सका। कालिन्दीके सौभरिप्रशप्त ह्रदमें शरण न ली होती उसने तो उसका वंश उसी दिन नष्ट हो गया था। लेकिन श्रीकृष्णकी कृपा—उनके चरणचिह्नोंसे अंकित मस्तक, वह अब गरुड़से निर्भय हो गया है। आज पर्वका दिन है। उन हिरण्यवर्णाके गगनसे अवतरण-कालमें द्वीपपर स्वच्छन्द घूमता केवल कालिय देखा जा सकता है। यद्यपि गरुड़ने अपने आश्वासनको भंग कभी नहीं किया; किंतु हममें किसीका साहस उनको दूरसे देखनेका भी नहीं है।'

'अतीतमें कुछ भी हुआ, अब इसे विरमित होना चाहिये।' जीमूतवाहन जैसे अपने-आपसे कुछ कह रहे हों, ऐसे बोल रहे थे। 'नागमाता कद्रूने देवी विनताके साथ छल किया। माताके अनुरोधपर नाग भगवान् सूर्यके रथाश्वोंकी पूँछमें लिपट गये। दूरसे अश्वोंकी श्वेत पूँछ श्याम जान पड़ी। देवी विनता अपने वचनों—स्पर्धाके नियममें पराजित होकर पुत्रके साथ नागमाताकी दासी हो गयीं। माता तथा स्वयंको इस दास्यभावसे मुक्त करनेके लिये अमृत-हरण करनेमें वैनतेयको जो श्रम करना पड़ा, सुरोंसे जो उनके सम्मान-भाजन थे, संग्राम करना पड़ा और दास्यकालमें नागोंने उनको वाहन बनाकर उनका तथा उनकी माताका बार-बार तिरस्कार करके जो अपराध किया, उससे नागोंपर उनका रोष सहज स्वाभाविक था।'

'हम गरुड़को दोष नहीं देते।' वृद्ध नागने दुःखभरे स्वरमें कहा। 'गरुड़ अन्न अथवा फलका आहार करनेवाला प्राणी तो है नहीं। उसे जब जीवाहार ही करना है, सृष्टिके प्रतिपालकसे अपने शत्रुओंको आहारके रूपमें प्राप्त करनेका वरदान लिया उसने। हम तो अपने पूर्वपुरुषोंके अपकर्मका प्रायश्चित्त कर रहे हैं। अनन्त कालतकके लिये यह प्रायश्चित्त हमारी जातिके सिर आ पड़ा है।'

'ऐसा नहीं। सन्तानोंको सदा-सदाके लिये पूर्वपुरुषोंके अपराधका दण्डभाजन बनाये रखा जाय, यह उचित तो नहीं है।' जीमूतवाहनने गम्भीर स्वरमें कहा। 'गरुड़ इतने निष्ठुर नहीं हो सकते। वे यज्ञेशवाहन—मुझे उनकी उदारतापर विश्वास है।'

'हतभाग्य नागोंके अतिरिक्त विश्वमें सबके लिये वे उदार हैं।' वृद्ध नागने दीर्घ श्वास ली।

'आज पर्व-दिन है। किसीको जाना है आज गरुड़की बलि बनकर ?' जीमूतवाहनने कुछ क्षण सोचकर पूछा।

'द्वीपमें उस आवासमें आज क्रन्दनका अविराम स्वर उठ रहा है।' वृद्धको यह बतलानेमें बहुत क्लेश हुआ। वह वहाँसे एक ओर चला गया। लेकिन उसने जो बता दिया था, उस संकेतसे उस अभिशापग्रस्त आवासको ढूँढ़ लेना कठिन नहीं था।

'बेटा! तुम युवक हो। अभी तुम्हारे आमोद-प्रमोदके दिन हैं। तुम मुझे जाने दो। इस वृद्धके बिना भी तुम इस परिवारका पालन कर सकते हो।' एक वृद्ध नाग उस परिवारमें रोते-रोते पुत्रसे अनुनय कर रहा था।

'मैं जाऊँगी। मेरे न रहनेसे परिवारकी कोई हानि नहीं। अब मैं आपकी सन्तानोंकी रक्षामें शरीर देकर धन्य बनूँ, इतनी अनुमति दें।' वृद्धा नागिनने नेत्र पोंछ लिये।

'मातः! गरुड़को नारी-बलि कभी भेजी नहीं गयी। कोई नाग-परिवार इतना कापुरुष नहीं निकला अबतक कि किसी नारीको मृत्युके मुखमें भेजकर अपनी रक्षा करना चाहे। गरुड़को भी ऐसी बलि कदाचित् ही स्वीकार होगी। उन्होंने यदि इसे अपनी प्रवंचना अथवा अपमान माना तो सम्पूर्ण जाति विपत्तिमें पड़ जायगी। पिताकी सेवामें पुत्रका शरीर लगे, यह पुत्रका परम सौभाग्य आज मुझे मिल रहा है। मैं इसे नहीं छोड़ूँगा।' युवक नागमें कोई व्याकुलता नहीं थी। पूरे परिवारमें वही स्थिर, धीर दीख रहा था।

'यह अवसर आप सब आज मुझे देंगे।' अचानक उस आवासमें पहुँचकर जीमूतवाहनने सबको चौंका दिया।

'आप? आप कोई हों, हमारे अतिथि हैं।' पूरा परिवार एक साथ सम्मानमें उठ खड़ा हुआ। 'दयाधाम! आप हमारी परीक्षा न लें। यह तो हमारी पारिवारिक समस्या है।'

'मुझे आपका कोई सत्कार स्वीकार नहीं। मैं अतिथि हूँ और आपसे गरुड़के पास उनकी बलि-सामग्री ले जानेका अवसर माँगने आया हूँ।' जीमूतवाहनके स्वरमें दृढ़ निश्चय था। 'आप मुझे निराश करेंगे तो भी मैं वहाँ जाऊँगा। आप मुझे रोक नहीं सकते।'

'अतिथिकी ऐसी माँग कैसे स्वीकार की जा सकती है?' बड़े धर्मसंकटमें पड़ गया वह नाग-परिवार। जीमूतवाहन आसनतक स्वीकार नहीं कर रहे थे। अन्तमें उनका आग्रह विजयी हुआ। वे जायँगे ही, यह जानकर अत्यन्त अनिच्छा होनेपर भी नाग-परिवारको उनकी बात माननी पड़ी। यद्यपि वह युवक जीमूतवाहनके साथ उस अन्तरीपके अन्तिम छोरतक गया। रमणक द्वीपमें आज पहली बार एक साथ दो व्यक्ति उस बलि-स्थानतक पहुँचे थे। जीमूतवाहनने बहुत आग्रह करके किसी प्रकार युवकको लौटा दिया।

आकाशमें गरुड़के पक्षोंसे उठता सामवेदकी ऋचाओंका संगीत गूँजा और उन तेजोमयका स्वर्णिम प्रकाश दिशाओंमें फैल गया। सम्पूर्ण धरा और सागरका जल जैसे स्वर्णद्रवसे आर्द्र हो उठा। उच्च अस्थिराशि स्वर्णवर्णा बन गयी। जीमूतवाहन इस छटाको मुग्ध नेत्रोंसे देख रहे थे। भय-कम्पका उनमें लेश नहीं था।

एक बार प्रचण्ड वायुसे सागर क्षुब्ध हुआ और तब गरुड़ उतर आये महातरुके समीप अन्तरीपपर। उन्होंने बलि-सामग्री प्रथम भोजन करना प्रारम्भ किया। उन्हें भी आश्चर्य था—'नाग मानवाकारमें आया, यह तो उसकी सिद्धि और इच्छा; किंतु यह है कैसा? यह न रोता है, न भयभीत है और न व्याकुल ही दीखता है।'

क्षुधातुर गरुड़के समीप अधिक विचार करनेका अवकाश नहीं था। बलि-सामग्री शीघ्र समाप्त करके उन्होंने जीमूतवाहनको समूचा निगल लिया और उड़कर अस्थि-पर्वतके ऊपर बैठ गये। भोजनके पश्चात् वे विश्राम करके नागदेहका कंकाल उगलकर तब जाया करते हैं।

'महाभाग! तुम कौन हो?' गरुड़ने बड़ी व्याकुलता अनुभव की। उन्होंने कण्ठ इधर-उधर घुमाया। अस्थि-समूहसे उड़कर नीचे आये। लगता था कि उन्होंने कोई तप्त लौह निगल लिया है। जीमूतवाहनको उन्होंने झटपट उगल दिया और पूछा—'तुम नाग नहीं हो सकते। तपस्वी ब्राह्मण अथवा भगवद्भक्त, जीव-दयासम्पन्न पुरुष ही अपने तेजसे मेरे भीतर ऐसी ज्वाला उत्पन्न कर सकता है। अनजानमें हुआ मेरा अपराध क्षमा करो! मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ?'

जीमूतवाहनका सर्वांग गरुड़के जठर-द्रवसे लथपथ हो रहा था। उनके शरीरमें कई खरोंचें थीं; किंतु वे अविचलित, स्थिर शान्त स्वरमें बोले—'आप परमपुरुषके कृपाभाजन, परम कारुणीक यदि इस क्षुद्र विद्याधरपर प्रसन्न हैं तो आजसे इस नागद्वीपके निवासियोंको अभय दें।'

'महाभागवत, दयाधर्मके धनी जीमूतवाहन!' गरुड़ने अब उन्हें पहचान लिया था। 'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। तुम्हें प्रसन्न करके तो मैं अपने आराध्यका प्रसाद प्राप्त करूँगा। तुम निश्चिन्त बनो! अब इस द्वीपपर गरुड़ नहीं उतरेगा।'

वैनतेय गरुड़ ही नहीं, कोई सर्पाहारी गरुड़ पक्षी भी उस द्वीपपर फिर कभी नहीं उतरा।

[महाकवि अश्वघोषके 'नागानन्द'के किंचित् आधारपर]

दानके कुछ प्रेरक-प्रसंग

(१)

देशके लिये बलिदान

रूस और जापानका युद्ध चल रहा था। पिछले महासमरकी बात नहीं कही जा रही है। रूस था जारका साम्राज्यवादी रूस और जापान था एशियाकी विकासोन्मुख शक्ति। जारने कहा था—'रूसी टोपियाँ फेंक देंगे तो जापानी बौना पिस जायगा।'

युद्धके मैदानमें सभीको कभी आगे बढ़ने और कभी पीछे हटनेका अवसर आता है। रशियन फौजोंके दबावसे जापानी सैनिकोंको एक पर्वतीय टीला खाली करके पीछे हटना पड़ा। दूसरी सब सामग्री तो हटा ली गयी; किंतु एक विशाल तोप पीछे छूट गयी।

सारी सेना पीछे सुरक्षित हट गयी थी, निश्चिन्त थी; किंतु तोपचीको शान्ति नहीं थी। 'मेरी ही तोपसे कल शत्रु मेरे देशके सैनिकोंको भूनना प्रारम्भ करेगा।' तोपचीको यह चिन्ता खाये जा रही थी। रूसी सैनिकोंके पास बड़ी तोपें नहीं थी। यह पहली बड़ी तोप उन्हें मिलनेवाली थी। तोपचीसे रहा नहीं गया। वह रात्रिके अन्धकारमें शिविरसे निकल पड़ा। वृक्षोंकी आड़ लेता, पेटके बल खिसकता पहाड़ीपर जा पहुँचा।

तोपची तोपके पास पहुँच तो गया; किंतु करे क्या? इतनी भारी तोप उस अकेलेसे हिलतक नहीं सकती थी। वह उसका एक पुर्जा भी तोड़ने लगे तो शत्रु जाग जाय और उसे पकड़ ले। अन्तमें कुछ सोचकर वह तोपकी
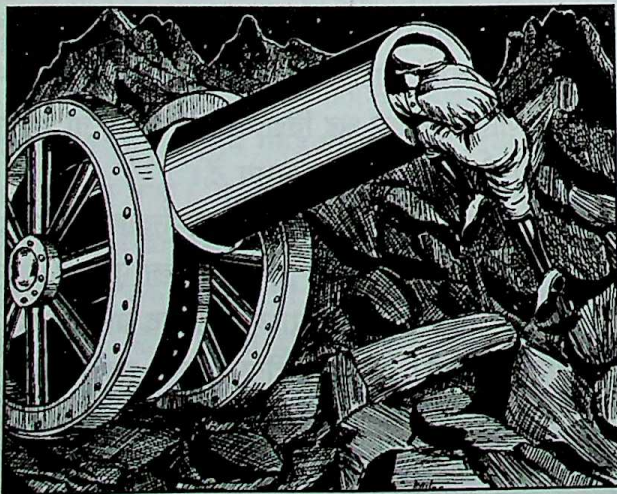
भारी नलीमें घुस गया। बाहर बर्फ पड़ रही थी, तोपकी नलीके भीतर तोपचीकी हड्डियाँतक जैसे फटी जा रही थीं। वह दाँत-पर-दाँत दबाये पड़ा था। उसकी पीड़ा असह्य हो गयी थी।

सवेरा हुआ। रशियन सैनिक तोपके पास आये। उन्होंने तोपको चारों ओरसे घूमकर देखा। उसकी परीक्षा करनेका निश्चय करके उसमें गोला-बारूद भरवाया। पलीता दिया गया और सामनेका वृक्ष रक्तसे लाल हो गया। नलीमें घुसे तोपचीके चिथड़े उड़ चुके थे।

अन्धविश्वासी जारके सैनिक चिल्लाये—'धूर्त जापानी तोपपर कोई जादू कर गये हैं। इसमें शैतान बैठा गये हैं, जो नलीसे खून उगल रहा है। पहाड़ी छोड़कर भागो जल्दी।'

तोपको वहीं छोड़कर वे सब भाग खड़े हुए। जापानी सेना फिर लौटी वहाँ और उसके नायकने तोपचीके सम्मानमें वहाँ स्मारक बनाकर सलामी दी।

(२)

धर्मके लिये प्राण-दान

बात शाहजहाँके शासन-कालकी है। स्यालकोटके एक छोटे मदरसेमें बालक हकीकतराय पढ़ता था। एक दिन मौलवी साहब कहीं बाहर चले गये। अवसर पाकर बालक खेलने लगे। मुसलमान लड़के स्वभावसे हकीकतरायको छेड़ते रहते थे। उन सबोंने उस दिन भी हकीकतरायको तंग करना प्रारम्भ किया, उसे गालियाँ दीं और फिर हिन्दुओंके देवी-देवताओंको गालियाँ देनी प्रारम्भ कीं।

जब हकीकतरायसे नहीं सहा गया, तब उसने कहा—'अगर तुम्हारे पैगम्बरको भी यही बातें कही जायँ तो?'

मुसलमान लड़कोंने गुस्सेसे कहा—'तुम इतनी हिम्मत कर सकते हो? जरा कहकर तो देखो।'

बालक हकीकतरायने वे ही शब्द दुहरा दिये। लेकिन वहाँ तो मुसलमान लड़कोंकी यह दशा हो गयी मानो प्रलय हो गयी हो। उन्होंने बातका बतंगड़ बना लिया। मौलवी साहबके पास सब दौड़े गये और नमक-मिर्च लगाकर सब बातें कहीं।

हकीकतरायको झूठ नहीं बोलना था। फल यह हुआ

कि मौलवी साहबने मामला उस स्थानके हाकिमकी अदालतमें पहुँचा दिया। हकीकतराय गिरफ्तार कर लिया गया। नन्हें बालकके हाथ-पैर हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर उसे अदालतमें खड़ा किया गया।

'अगर तू मुसलमान बन जाय तो मरनेसे बच सकता है।' काजीने बालकके सामने यह प्रस्ताव रखा।

बालक हकीकतरायके माता-पिता रो रहे थे। उसकी बालिका पत्नी मूर्च्छित हो गयी थी। माता तो कह रही थी—'बेटा! तू काजीकी बात मान ले। तू मुसलमान होकर भी जीता रहेगा तो हम तुझे देख तो सकेंगे।'

काजीने प्रलोभन दिया—'मुसलमान होनेपर तुम्हें ऊँचा ओहदा दिया जायगा।'

हकीकतराय बालक था, किंतु उसका चित्त धर्मवीरतासे पूर्ण था। उसने मातासे कहा—'माँ! मैं अमर होकर तो उत्पन्न नहीं हुआ हूँ। जब एक दिन मरना ही है तो अपना धर्म छोड़कर थोड़े जीवनके लिये पतित क्यों बनूँ। धर्म-भ्रष्ट होकर जीनेसे तो मरना बहुत उत्तम है।'

'मैं अपना धर्म नहीं छोड़ सकता।' काजीको उस बालकने स्पष्ट सुना दिया। खुले मैदानमें जल्लादकी तलवारने उस बालकका सिर धड़से अलग कर दिया।

(३)

दानी राजा

फारसके राजा साइरसने राजा क्रोसियसको बन्दी बना लिया। साइरस बड़े दानी और उदार थे। उनके राज्यमें गरीबी और विवशताका नाम लेना पाप समझा जाता था। प्रजा स्वस्थ, सुखी और समृद्ध थी।

'यदि इस तरह आप दान देनेमें ही नित्यप्रति अपना खजाना खाली करते रहेंगे तो आप कुछ ही दिनोंके बाद कंगाल हो जायँगे। यदि आप अपना धन बचाते रहेंगे तो निस्सन्देह अपार सम्पत्तिके स्वामी कहलायेंगे।' बन्दी क्रोसियसने राजा साइरसको शिष्ट सम्मति दी। वे बहुत धनी थे।

'यदि मैंने राजसिंहासनपर बैठनेके समयसे आज तक किसीको कुछ भी दान दिया हो तो मेरे पास कितनी सम्पत्ति होनेका आप अनुमान लगा सकते हैं?' साइरसने प्रश्न किया।

'अपार सम्पत्ति' क्रोसियसके शब्द थे और वे सोचने लगे।

'तो मैं अभी अपनी प्रजा और हितैषियों तथा मित्रोंके पास सूचना भेजता हूँ कि मुझे अपार सम्पत्तिकी आवश्यकता है एक बहुत बड़े कामके लिये और आप देखेंगे इसका परिणाम।' साइरसने क्रोसियसके मनमें अद्भुत उत्सुकता पैदा कर दी।

साइरसकी सूचनाके परिणामस्वरूप राजमहलके सामने सोनेके ढेर लग गये। प्रजाने बड़ी प्रसन्नता और उमंगसे राजाकी आज्ञाके अनुरूप आचरण किया।

'मैंने तो इससे कम सम्पत्तिका ही अनुमान लगाया था।' क्रोसियस आश्चर्यचकित हो गये।

'यदि मैंने अपना धन जमीनमें छिपाकर रख दिया होता और दान तथा प्रजाके हितमें उसका उपयोग न किया होता तो प्रजा मुझसे घृणा करती और शत्रु द्वेष करते; मेरी प्रजा मुझे प्यार करती है और क्षण-मात्रमें मैं इतना सोना एकत्र कर सकता हूँ, जितना मेरे स्वप्नमें भी नहीं दीख सकता।' साइरसके उत्तरसे धनी क्रोसियसकी आँख खुल गयी और हृदय खोलकर उनकी दानशीलताकी प्रशंसा की उन्होंने।

(४)

पवित्र बलिदान

फ्रांसके करडोनिस बेल आइलके प्रकाश-गृहकी घटना है। प्रकाश-गृहमें लालटेन जलानेवाला

अचानक बीमार पड़ गया। बड़ी अँधेरी रात थी। उसकी पत्नीने लालटेनको जला दिया। लालटेन जलाकर वह लौटी ही थी कि उसने देखा कि पति मरणासन्न हैं। वह बड़ी चिन्तित हो गयी। इतनेमें उसके सात सालके लड़के और दस सालकी लड़कीने सूचना दी कि लालटेन घूम नहीं रही है। प्रकाश-गृहकी लालटेन रातभर घूमकर समुद्रकी उत्ताल तरंगोंपर चारों ओर अपना प्रकाश फैलाती थी। यदि वह एक ही दिशाको प्रकाशित करती तो जहाजोंके टकराने और डूबनेकी आशंका हो जाती थी।

पत्नीने पतिको मरणशय्यापर छोड़ दिया और बच्चोंको साथ लेकर वह लालटेन ठीक करने चली गयी। लालटेन ठीक नहीं हो सकी।

'बच्चो! तुमलोग रातभर इस लालटेनको घुमाते रहो। समुद्रमें चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ है; बड़े जोरका तूफान आ रहा है।' यह आदेश देकर वह पतिके पास चली आयी।

दोनों बच्चे नौ बजे रातसे सात बजे सबेरेतक
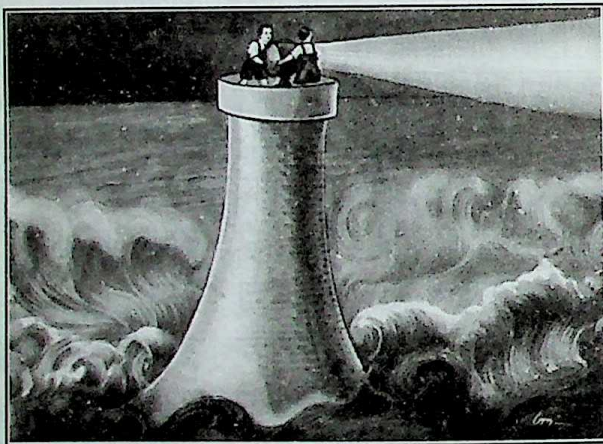
लालटेन घुमाते रहे। इस प्रकार उन्होंने अनेक जहाजोंको प्रकाश दिया और असंख्य प्राणोंकी रक्षा की, पर उनके पिताके प्राण तो चले ही गये। माँ मृत पतिके पास रो रही थी, पर इस पवित्र बलिदानके लिये उसके मनमें निराशाकी एक रेखा भी न थी। अपने बच्चोंके सत्कर्तव्य-पालनसे वह बड़ी प्रसन्न थी।

(५)

मेहनतकी कमाई और उचित वितरणसे प्रसन्नता

एक राजा जंगलके रास्ते कहीं जा रहा था। उसने देखा एक खेतमें एक जवान आदमी हल जोत रहा है और मस्तीमें झूमता हुआ ऊँचे स्वरसे कुछ गा रहा है। वह बड़ा ही प्रसन्न था। राजा वहाँ खड़ा होकर उसका गाना सुनने लगा। फिर राजाने उससे पूछा कि 'भाई! तुम बहुत प्रसन्न मालूम होते हो। बताओ—तुम औसत प्रतिदिन कितना कमाते हो?' उसने हँसते हुए कहा—'मैं खुद मेहनत करके आठ आने रोज कमाता हूँ और उनको चार हिस्सोंमें बाँट देता हूँ। मैं न इससे अधिक कमाना चाहता हूँ और न खर्च करना। मुझे चिन्ता क्यों होती।' राजाने पूछा—'चार हिस्सोंमें कैसे बाँटते हो?' किसानने कहा—'माँ-बापने मुझको पाला था, उनका ऋण मेरे सिरपर है, अतः दो आना उनको देकर ऋण उतारता हूँ। बच्चे बड़े होनेपर मेरी सेवा करेंगे, इसके लिये दो आने रोज उनके पालनमें लगाता हूँ, यह मानो कर्ज देता हूँ। मैं किसान हूँ, जानता हूँ कि आदमी जो बोता है, वही फसल पकनेपर पाता है। दूसरोंको पहले देनेपर ही किसीको कुछ मिला करता है, यह सोचकर चौथे हिस्सेके दो आने मैं रोज दान करता हूँ और शेष बचे हुए दो आनेमें अपना पेट भरता हूँ।'

(६)

दानशीलताके आदर्श—विद्यासागर

श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर बहुत ही सादे वेशमें रहते थे। एक दिन कलकत्तेमें वे कहीं जा रहे थे। मार्गमें एक व्यक्तिको बहुत खिन्न देखकर उन्होंने उसके दुःखका कारण पूछा। पहले तो उसने बतलाना नहीं चाहा। बहुत पूछनेपर उसने बतलाया—'मुझे अपनी पुत्रीके विवाहमें ऋण लेना पड़ा था। रुपये देनेका प्रबन्ध हो नहीं पा रहा है और महाजनने दावा कर दिया है। अब तो जेल काटना ही भाग्यमें है।'

विद्यासागरने उसका नाम-पता पूछ लिया। उसके साथ सहानुभूति प्रकट की और चले गये। मुकदमेकी तारीखपर वह अदालतमें गया तो पता लगा कि उसकी ओरसे किसीने रुपये जमा कर दिये हैं। मुकदमा समाप्त हो गया है। रुपये किसने जमा किये, यह सोच पाना उसके लिये सम्भव नहीं था। मार्गमें देहाती-जैसे दीखनेवाले पुरुषका यह काम होगा, ऐसा अनुमान वह कैसे कर सकता था।

विद्यासागरका स्वभाव ही था कि वे अभावग्रस्त, दीन-दुखियोंका पता लगा लिया करते थे और उनको प्रायः इस प्रकार सहायता देते थे कि सहायता पानेवाला यह न जान सके कि उसे किसने सहायता दी है। यही तो सर्वोत्तम दान है।

आत्मदान

[मेघवाहनकी कथा]

'महाराजा मेघवाहनके धार्मिक शासनमें भी असहाय और निरपराधका वध हो—यह तो घोर लज्जाकी बात है; मुझे बचाओ, मेरे प्राण जा रहे हैं।' वनके मध्यभागमें इन शब्दोंको सुनकर काश्मीर-नरेश मेघवाहनने रथ रोक दिया; सेना आगे निकल गयी। महाराज समुद्र बेलावनमें दिग्विजय करते-करते पहुँच गये थे। वे रथसे उतर पड़े और नंगी तलवार लेकर वनके सघन अन्तरालमें जा पहुँचे। वे चौंक पड़े।

'मुझे बचाइये, भद्रपुरुष। यह शबर-सेनापति मेरा वध करनेको उद्यत है। इस संसारमें मेरा कोई भी सहायक नहीं रह गया है।' वध्य पुरुष चण्डिकाकी प्रतिमाके सामने नतमस्तक था; शबर-सेनापतिके हाथमें नंगी तलवार थी, वह वध करने ही जा रहा था।

'तुम्हारे प्राण सुरक्षित हैं, चिन्ता मत करो।' महाराजने आश्वासन दिया।

'पर मैं इसे नहीं छोड़ सकता। मेरा पुत्र सांघातिक रोगसे पीड़ित है। वह मरणासन्न है। उसके बचनेका उपाय देवताओंने मनुष्यका बलिदान बताया है। आप मेरे पुण्यकर्ममें विघ्न मत डालिये।' शबर-सेनापतिने विवशता प्रकट की।

'असहाय प्राणीका वध करना महापाप है; धिक्कार है तुम्हें। स्वार्थमें अन्धे होकर लोग इस प्रकारके पापकार्यमें लग सकते हैं, इसका पता मुझे आज चला।' महाराज चिन्तित थे।

'देव! यदि असहाय पुरुषकी प्राण-रक्षामें आप इस तरह तत्पर हैं तो मेरे बालकने क्या बिगाड़ा है? यह वध्य पुरुष तो अपने परिवारमें अकेला है, मेरे परिवारके अनेक प्राणियोंका जीवन इस बालककी प्राण-रक्षापर निर्भर है।' शबर-सेनापति अपने बालकके प्राणोंकी भिक्षा माँगने लगा।

महाराज मेघवाहन दोनोंकी परिस्थितिपर विचार करने लगे। वे वध्यकी करुणा और वधिककी विवशतासे अभिभूत होकर अपनी तलवारकी ओर देखने लगे।

× × × ×

'तुम निःशंक होकर मुझपर खड्गसे प्रहार करो। मेरे प्राणदानसे असहाय वध्य और तुम्हारे बालक—दो प्राणियोंकी रक्षा हो जायगी। दोनोंकी प्राणरक्षा मेरा धर्म है, कर्तव्य है।' महाराज मेघवाहन चण्डिकाकी प्रतिमाके सामने नत हो गये। शबर-सेनापति काँपने लगा।

'महाराज! आपके द्वारा असंख्य प्राणियोंके प्राण सुरक्षित हैं। आप विशेष दयाके आवेशमें ही ऐसा कार्य करनेकी प्रेरणा दे रहे हैं। आप सोच लीजिये। आपका शरीर तो अनेक प्राणियोंका प्राणदान करके भी सर्वथा रक्षणीय है, यह अमूल्य है; आप सर्वदेवमय भगवान्‌के अंश हैं, पृथ्वीपर उनके प्रतिनिधि हैं। राजालोग अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये धन, धर्म, परिवार—किसीकी भी चिन्ता नहीं करते।' शबर-सेनापतिने असहाय पुरुषके वधपर जोर दिया।

'शबर! तुम अपनी दृष्टिसे ठीक ही कहते हो। जिस प्रकार मरुदेशवासी गंगाजलके निर्मल स्वाद और स्नानके सुखको नहीं जानते, उसी प्रकार तुम वनचरोंको सदाचाररूपी अमृतके स्वादका पता नहीं लग सकता। मैं अपने नश्वर शरीरसे अमर यश खरीद रहा हूँ, तुम दुराग्रह मत करो। तुम यदि मेरा वध नहीं कर सकते तो मैं अपनी तलवारसे ही उसका सम्पादन करता हूँ। मेरे आत्मदानसे भगवती प्रसन्न होंगी। दोनों प्राणियोंको जीवन मिलेगा।' महाराज आत्मबलिदान करने ही जा रहे थे कि उन्होंने अपने सामने एक दिव्य पुरुषको देखा। शबर-सेनापति, चण्डिकाकी मूर्ति, वध्य पुरुष और रुग्ण बालक—सब-के-सब अदृश्य हो गये।

'मैं आपके अहिंसा-व्रत और प्रजा-पालनकी परीक्षा ले रहा था। आप धन्य हैं।' वरुणदेव अपना परिचय देकर अन्तर्धान हो गये। [राजतरंगिणी]

गोदानसे मनचाहा वरदान मिलता है

(श्रीश्रीनिवासजी शर्मा शास्त्री)

दानानामपि सर्वेषां गवां दानं प्रशस्यते।
गावः श्रेष्ठाः पवित्राश्च पावनं ह्येतदुत्तमम्॥

(महा० अनु० ८३।३)

सभी दानोंमें गोदान अधिक प्रशंसनीय है, क्योंकि गौएँ श्रेष्ठ और पवित्र हैं—पवित्र करती हैं। गोपालन, गोरक्षा और गोदान भारतकी सनातन संस्कृतिमें श्रेष्ठतम पावन कर्तव्य है। भगवान् कृष्णके अवतारका मुख्य सन्देश भी गोपालन और गोरक्षा ही है।

गोदानका महत्त्व—

न गोदानात् परं किञ्चित् विद्यते वसुधाधिप।
गौर्हि न्यायागता दत्ता सद्यस्तारयते कुलम्॥

(महा० अनु० ७६।२)

युधिष्ठिरसे भीष्मजीने कहा—राजन्! गोदानसे बड़ा कोई दान नहीं, गोदानसे समस्त कुलका उद्धार हो जाता है। **'वत्सलां गुणसम्पन्नां तरुणीं वस्त्रसंयुताम्। दत्त्वेदृशीं गां विप्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते॥'** (महा०अनु० ७७।४) गुणसम्पन्न, बछड़ेवाली, दुग्धवती युवा धेनुका दान वस्त्र और दुग्धपात्रसहित ब्राह्मणको देनेसे समस्त पातकोंसे निवृत्ति होती है। ज्ञानी, ध्यानी, वेदपाठी ब्राह्मणको अथवा जिस ब्राह्मणकी पत्नीने बालकको जन्म दिया हो या ब्राह्मण-बालकोंके पालनके लिये गोदान करें, क्योंकि ब्राह्मण-परिवार धर्म और संस्कृतिकी रक्षाके लिये आगे-आगे चलकर त्याग और तपस्या करता है। गोदानकर्ता गोभक्त उतने वर्षोंतक स्वर्गमें प्रतिष्ठा पाता है, जितने रोम गोमाताके शरीरमें होते हैं—

यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वाः
तावन्ति वर्षाणि महीयते सः।

(महा० अनु० ७९।२७)

गायके दूध, दही, घीसे यज्ञ; यज्ञसे वर्षा; वर्षासे अन्न और अन्नसे मानव जीवित रहता है। यज्ञका मूल गौएँ ही हैं।

गोसेवासे पुत्रप्राप्ति—

पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी तामवाप्नुयात्।
धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्॥
विद्यार्थी चाप्नुयाद् विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात्सुखम्॥

(महा० अनु० ८३।५१-५२)

एक बार सूर्यवंशी राजा दिलीप पुत्र-कामना लेकर कुलगुरु वसिष्ठके पास गये तो उन्होंने राजासे आश्रमकी नन्दिनी नामकी गायकी सेवा करनेका आदेश दिया। राजाने नन्दिनीकी सेवा बहुत दिनोंतक की। एक दिन राजाने देखा नन्दिनीको एक शेरने दबा रखा है। राजाने धनुषपर तीर चढ़ाया तो बाण अँगूठेसे चिपक गया। सिंहने कहा कि मैं पार्वतीजीकी आज्ञासे इस जगह आये पशुको पकड़ लेता हूँ, तुम इसे नहीं छुड़वा सकते। तब राजाने प्रार्थना की कि आप नन्दिनीको छोड़ दें, बदलेमें मेरा शरीर प्राप्त करें, तब सिंहने कहा तो अपना सिर नीचा करो। राजा शीश झुकाये बैठे रहे। बहुत देरमें सिर उठाकर देखा कि सिंह वहाँ नहीं था, पर नन्दिनी खड़ी थी, उसके थनोंसे दूध टपक रहा था। गोसेवा करते हुए राजा दिलीपको 'पुत्रवान् भव' का आशीर्वाद मिला। पुत्र रघुका जन्म हुआ, उसी रघुकुलमें रामने अवतार लिया। गोसेवासे वरदान मिला।

गोसेवा और गोरक्षा—हमारे वेद-पुराण गोरक्षा और गोभक्तिकी कथाओंसे भरे हुए हैं। समुद्रमन्थनसे निकली कामधेनु देवताओंके लिये वरदान सिद्ध हुई। ब्रह्माजीने कपिला और सुरभि गौएँ उत्पन्न कीं। शिवकी दृष्टि पड़नेसे उनके अनेक रूप हो गये। पापाक्रान्त पृथ्वी गोका रूप धारण करके ही विष्णुजीके पास जाती है। नन्दीको भगवान् शिव सदा साथ रखते हैं। हमारे प्राचीन वैदिक राष्ट्रगानमें **'दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वान्'** गायके दुधार होनेकी प्रार्थना की है। राजाको उसका गुरु—**'गोब्राह्मणहिताय च'** गो-ब्राह्मणकी रक्षाके लिये राजगद्दीपर बैठाता है। ऋषि जमदग्निकी गायको बलात् ले जानेवाले सहस्रबाहुसे गोरक्षाके लिये ही परशुरामजीने परशु उठाया था।

गोदानकी परम्परा और महत्त्व—कन्यादानके समय मधुपर्क खिलाकर कन्यादानके साथ गोदान करनेकी और वरके द्वारा भार्या-प्रतिग्रहके बाद गोदानकी भारतकी प्राचीन परम्परा है।

पितामह भीष्म युधिष्ठिरको देवराज इन्द्रद्वारा कही बात बताते हैं—

अमृतं वै गवां क्षीरमित्याह त्रिदशाधिपः।
तस्मात् ददाति यो धेनुममृतं स प्रयच्छति॥

(महा० अनु० ६६। ४६)

गायके दूध, दही, घी, गोमूत्र और गोबरमें अमृत है। जो गोदान करता है, वह अमृतदान देता है। गोदानके पुण्यसे **'दश चोभयतः पुत्रो मातापित्रोः पितामहान्। दधाति सुकृतान् लोकान् पुनाति च कुलं नरः॥'** (महा० अनु० ८०। ८) पुत्र अपने पिता और माताकी दस-दस पीढ़ियोंको तार देता है। जो व्यक्ति जीवनमें एक बार भी गोदान करता है, मृत्युके बाद 'वैतरणी' पार करते समय वह गाय वहाँ तैयार मिलती है, जिसकी पवित्र पूँछ पकड़कर जीव वैतरणी नदीको पार कर लेता है। प्रत्येक मनुष्यकी इच्छा रहती है कि वह अपने जीवनमें कभी-न-कभी गोदान अवश्य करे। अनेक अवसर आते हैं, जब हम गोदान कर सकते हैं। पुत्र-जन्मपर, बालकके जन्मदिनपर, विवाहके दिन, तीर्थयात्रासे लौटनेपर, जीवनकी सन्ध्या-वेलापर, नवसंवत्सरपर, सूर्य या चन्द्रग्रहणपर, अमावस्या या मकरसंक्रान्तिपर ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब हम सुन्दर-स्वस्थ-दुधारू, सवत्सा गायको वस्त्रसहित सींगोंका शृंगार करके, गलेमें माला पहनाकर, मस्तक और पीठपर मांगलिक सुगन्धित द्रव्य लगाकर समारोहपूर्वक गोदान कर सकते हैं। पितरोंके निमित्त अमावस्या या संक्रान्तिके दिन वृष (नन्दी)-दान करनेकी बहुत पुरानी प्रथा चली आ रही है। धर्मप्रेमी गोभक्तोंको गोलोकवास करनेकी प्रबल इच्छा रहती है। गोभक्त कहता है—

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च।
गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

(महा० अनु० ८०। ३)

मेरे चारों ओर गायें हों और मैं गायोंके बीचमें रहूँ।

गोदानका महत्त्व बताते हुए कहा गया है—

गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा।
गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम्॥

मैं सदा गोदर्शन करूँ, गौएँ मुझे कृपादृष्टिसे देखें, गौएँ हमारी और हम गौओंके, जहाँ गौएँ हैं वहाँ हम हैं।

दीपावलीसे अगला दिन गोवर्धनका दिन होता है। कुछ दिन बाद गोपाष्टमीका पर्व आता है। गोवर्धन और गोपाष्टमी गोपूजन, गोसेवा और गोदान करनेके पवित्रतम और श्रेष्ठतम दिवस माने जाते हैं। दोनों त्यौहार सारे भारतमें धूम-धामसे मनाये जाते हैं।

गोदान किसे दें—त्यागी-तपस्वी वेदपाठी विद्वान् ब्राह्मणको गोदान दें। अब गोदान करनेमें कठिनाई आने लगी है, कारण गोदान लेनेवालोंके पास गोचर भूमि नहीं है, कुछ बड़े मन्दिरोंके पास ही गोचर भूमि है। गायको पालनेवाले लोग नहीं हैं। फिर भी कोई ब्राह्मण, जिसके पास गोचरभूमि हो या चारेकी व्यवस्था हो, गोष्ठ (गोको सर्दी-गर्मीसे बचानेका स्थान) हो और उसकी गोसेवामें रुचि हो, साधन हो तो ऐसे ब्राह्मणको गोदान देना उचित है। किसी बड़े मठ-मन्दिर-आश्रममें भी गोदान किया जा सकता है, जहाँ गो-दुग्ध साधु-सन्तों, ब्राह्मण-ब्रह्मचारी आदिके उपभोगमें आता हो। जो माता-पिता इच्छा होनेपर भी अपने जीवनमें गोदान नहीं कर पाते, उनकी योग्य सन्तान बादमें उनके निमित्त गोदान करके अपने माता-पिताकी इच्छा पूरी करती है।

कहीं-कहीं ग्रामीण क्षेत्रोंमें अपनी बहनके पुत्र-पुत्री (भानजा-भानजी) और बेटीके पुत्र-पुत्री (दोहिता और दोहिती)-को गोदान करते हैं; क्योंकि उनके पास गोचर भूमि होती है और दानकर्ता जानता है कि उसकी गाय भूखी-प्यासी नहीं रहेगी, आजीवन सुरक्षित रहेगी। अपने कुलगुरु और कुलपुरोहितको भी गोदान करनेकी परम्परा प्रचलित है।

गोमूत्र और गोबरमें लक्ष्मीका निवास—महाभारतमें

लिखा है कि एक बार लक्ष्मीजी कपिला-सुरभि आदि

गौओंके पास आकर प्रार्थना करने लगीं कि मुझे शरण दो—

महाभागा भवत्यो वै शरण्याः शरणागताम्।
परित्रायन्तु मां नित्यं भजमानामनिन्दिताम्॥

तब गौएँ बोलीं—

अवश्यं मानना कार्या तवास्माभिर्यशस्विनि।
शकृन्मूत्रे निवस त्वं पुण्यमेतद्धि नः शुभे॥

(महा० अनु० ८२। २४)

हे लक्ष्मी! यशस्विनी! हम आपका मान रखते हुए आपको गोबर और गोमूत्रमें निवास करनेकी स्वीकृति दे रही हैं। तबसे प्रसन्न होकर गोबर और गोमूत्रमें लक्ष्मी सदा रहती हैं। गौएँ कहती हैं—

अस्मत्पुरीषस्नानेन जनः पूयेत सर्वदा।
शकृता च पवित्रार्थं कुर्वीरन् देवमानुषाः॥

(महा० अनु० ७९। ३)

अर्थात् हमारे गोबरसे स्नान करनेपर मानव सदा पवित्र हो जाय। देवता और मनुष्य पवित्रताके लिये हमारे गोबरका उपयोग करें। गायका दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र इस पृथ्वीपर मनुष्योंको स्वस्थ जीवन देनेके लिये अमृततुल्य है। पंचगव्यका प्रयोग करनेवाले हमारे पूर्वजोंके तन-मनको इतनी शक्ति, बुद्धि और ज्ञान मिला है कि भारत विश्वगुरु बना। पंचगव्यसे शरीरमें कान्ति और मनमें शान्ति रहती है। ये पाँचों अमृत-महौषधि हैं।

गोशालामें गोसेवा—समयके अनुसार परिवर्तन होता रहता है। पहले गायके गोबरसे चूल्हा लीपते थे, अग्निमें ग्रास डालते थे। पहली रोटी गायको देते थे, किंतु विडम्बना है कि आजके वातावरणमें यह सब होना बड़ा कठिन हो गया है, ग्रामीण क्षेत्रोंकी बात छोड़ दें तो शहरोंमें तो और भी बुरी स्थिति है। गोग्रासकी तो परम्परा ही प्रायः समाप्त होती जा रही है। श्राद्धके दिनोंमें भी गाय नहीं मिलती। फिर भी जो व्यक्ति गोसेवा और गोदान करना चाहते हैं, उनके पास अपनी इस धार्मिक इच्छा पूरी करनेका माध्यम 'गोशाला' हो सकती है।

अपने या बच्चोंके जन्मदिनपर या किसी भी उचित अवसरपर आप निकटकी गोशालामें जाकर किसी एक गायको अपना लें और उस गोमाताके चारे-पानीका प्रबन्ध करें। गोशालामें नयी गायका दान करें या पहलेसे रहनेवाली गायको उसके जीवनपर्यन्त अपना लें। जन्मदिनपर, ग्रहण-अमावस्या या संक्रान्तिपर गोशालामें जाकर चारा, चना, गुड़, खली आदि देकर गोमाताका आशीर्वाद लें। यदि साधनसम्पन्न हैं तो गौओंको सर्दी-गर्मीसे बचानेके लिये छत बनवा दें या नलकूप लगवा दें, जलाशय या पानीका टैंक बनवा दें। बूढ़ी और बीमार या दुर्घटनाग्रस्त गायका इलाज करवा दें। आपकी ओरसे गोशालामें एक गायका पालन-पोषण होना चाहिये। यह भी गोदान ही है, बहुत बड़ी गो-सेवा है, यह गोरक्षाका पुनीत कार्य है। हमारी संस्कृतिमें गोरक्षा करना पवित्र कार्य है—हमारे शास्त्र कहते हैं—**'गावो विश्वस्य मातरः'** गाय विश्वकी माता है। इसीलिये हम गोमाताकी जय बोलते हैं। गोमाताकी जय हमारी ही जय है। गाय बचेगी तो हमारा देश बचेगा, अन्न बचेगा, खेत बचेगा, धर्म और संस्कृति बचेगी। गोरक्षाके लिये हमारे गुरु-साधु-सन्त, राजा-प्रजाने बड़े-बड़े बलिदान दिये हैं, संघर्ष किये हैं। भारतकी संस्कृतिको, भारतभूमिको, भारतकी आत्माको, जनताके स्वास्थ्यको, कृषि और किसानको, भारतकी जलवायु और प्रकृतिको, धर्मको, राष्ट्रीय स्वाभिमानको सुरक्षित रखनेके लिये गोरक्षा बहुत आवश्यक है। गोमाताको जीवन देकर ही एक भारतीय गोभक्त अपने गोदानके संकल्पको पूरा कर सकता है—

गोका दान बड़ा ऊँचा, एक बार करो जीवनमें।
महापुण्य है गोरक्षा, सौ बार करो जीवनमें॥

चन्दरी बूआका आदर्श दान

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

राजस्थानमें पुराने जमानेमें ऐसी प्रथा थी कि एक ही गाँवमें शादी-विवाह नहीं होते थे। लड़कीको दूसरे गाँवमें देते और दूसरे गाँवकी लड़कीको बहू बनाकर लाते थे। यहाँतक होता था कि अगर किसी गाँवमें बारात आती तो वर-पक्षके गाँवकी जितनी भी लड़कियाँ ब्याही हुई होतीं, सबको मिठाइयाँ भेजी जाती थीं।

अपने गाँवकी लड़कीको, चाहे किसी भी जातिकी हो, आयुके अनुसार भतीजी, बहन या बूआ कहकर पुकारा जाता था। मुझे याद है कि घरके पास मुसलमान लखारोंका एक घर था, हम उन सबको चाचा, ताऊ या चाची, ताई कहकर पुकारते थे।

अब गाँव कस्बोंमें परिवर्तित हो गये हैं और यातायातके साधन सुलभ होनेसे आवागमन भी बढ़ गये हैं, इसलिये यह प्रथा कम होती जा रही है।

इस कथाकी नायिका चन्दरी बूआका जन्म राजस्थानकी बीकानेर रियासतके एक गाँवमें आजसे करीब १३५ वर्ष पहले एक ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था।

जब चन्दरी बूआ १२ वर्षकी हुई तो उसका विवाह हुआ। पासके गाँवसे बारात आयी और सारे कार्य धूम-धामसे सम्पन्न हुए।

उसका पिता साधारण स्थितिका ब्राह्मण था, परंतु उन दिनों विवाह-शादियोंमें घरवालोंको कुछ विशेष नहीं करना पड़ता था। गाँवके पुरुष और स्त्रियाँ सारे कामोंका आपसमें बँटवारा कर लेते थे। प्रति घरसे एक-दो रुपये टीके या दानके रूपमें दिये जाते, जिससे माँ-बापके लिये खर्चका बोझ भी कम हो जाता था।

विवाह तो बचपनमें हो जाते, पर गौना तीन या पाँच वर्ष बाद होता था। इससे पहले बहू ससुराल नहीं जाती थी। चन्दरीके पतिका देहान्त गौना होनेके पूर्व ही हो गया, फिर वह ससुराल नहीं गयी और मायकेमें ही रहने लगी।

पहले तो वह शायद बेटी या बहनके नामसे पुकारी जाती होगी, पर मैंने जब होश सँभाला, तबतक वह प्रौढ़ा हो चुकी थी और उसे बूआका पद मिल चुका था। उसके माँ-बाप स्वर्गवासी हो चुके थे। वह सारे मुहल्लेकी बूआ कहलाने लगी थी।

दान-दक्षिणा लेनेमें उसे प्रारम्भसे ही ग्लानि थी। इसीलिये वह सबके साथ अच्छे सम्बन्धोंके कारण श्रम करके ही अपना जीवन-निर्वाह करती थी। सुबह चार बजे उठकर चक्की पीसने बैठ जाती और सूर्योदयतक ८-१० सेरतक अनाज पीस लेती। इससे प्रतिदिन दो-अढ़ाई आनेतक कमाई हो जाती। उसे कभी कामका अभाव न रहता; क्योंकि एक तो वह काममें स्वच्छता रखती, अनाजको साफ करके पीसती तथा दूसरे, पिसाईमें आटा घटाती न थी।

जब कभी हमारी नींद पहले खुल जाती तो चन्दरी बूआके भजन तथा उनकी चक्कीकी आवाज सुनायी पड़ती। उन दिनों एलार्म घड़ियाँ तो सुलभ थी नहीं, अतः जिसे कभी मुहूर्त साधकर जाना होता या पहले उठना होता, वह चन्दरी बूआको समयपर जगानेको कह जाता और वह उसे नियत समयपर जगा देती। उस समय तारोंको देखकर समयका ज्ञान बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंको रहता था।

उनकी आवश्यकताएँ कम थीं। इसलिये दो-ढाई आनेमें सामान्य जीवन-निर्वाह हो जाता था। चन्दरी बूआने इससे अधिक कमानेकी आवश्यकता नहीं समझी। दिनमें वह मुहल्लेके बच्चोंकी देखभाल करती तथा कोई बीमार होता तो उसकी सेवा करती रहती। उन दिनों प्रसवका काम सयानी स्त्रियाँ या दाइयाँ ही सँभालती थीं। कठिन-से-कठिन समयमें भी चन्दरीके आ जानेपर घरवालोंको और जच्चाको सान्त्वना तथा साहस मिल जाता था।

उसने न तो कभी पति-प्रेमको जाना और न उसके बच्चे ही हुए, परंतु जीवनका सारा प्रेम और ममत्व दूसरोंके बच्चोंपर उड़ेल दिया। मुहल्लेके बच्चे सारे दिन उसे घेरे रहते। किसीको पतंगके लिये लेई चाहिये तो किसीको अपनी गुड़ियाके विवाहके लिये रंग-बिरंगे कपड़े। उसके दरवाजेसे निराश जाते किसीको नहीं देखा।

संगीतकी शिक्षा लिये बिना ही उसे ताल और स्वरका यथेष्ट ज्ञान था। विधवा होनेके कारण विवाह-शादीके गीत तो नहीं गाती, परंतु भजन और 'रतजगा' (रात्रि-जागरण) उसके बिना नहीं जमते थे। मीराँ और सूरके पदोंको इतनी लवलीन होकर मधुर रागिणीसे गाती

कि सुननेवाले भावविभोर हो जाते।

जब वह काफी वृद्धा हो चली तब भी मैंने उसे देखा था। उस समय अनाज पीसना तो उसके वशकी बात नहीं थी, फिर भी कुछ छोटा-मोटा काम करती रहती थी। वह इतनी बूढ़ी हो चुकी थी कि उसके हाथ और गर्दन काँपने लग गये थे और आवाजमें भी हकलाहट-सी आ गयी थी।

प्रतिवर्ष गर्मीके मौसममें लोग हरिद्वार और बदरीनाथ जाते थे। चन्दरी बूआसे लोगोंने बहुत बार आग्रह किया, परंतु उसका एक ही जवाब होता कि मुझ गरीब और अभागिनके भाग्यमें तीर्थ-यात्रा कहाँ है, यह सब तो भाग्यशाली लोगोंको मिलता है।

एक दिन उसने मुझे बुलाया और कहने लगी—'आजकल स्वास्थ्य जरा ठीक नहीं रहता, पता नहीं कब शरीर छूट जाय। मेरे मनमें अपनी ससुरालके गाँवमें एक कुआँ बनानेकी साध है। वहाँ एक ही कुआँ है, इसलिये गर्मीमें गायें और ढोर तो प्यासे रहते ही हैं, मनुष्यको भी पूरा पानी नहीं मिलता। तुम पता लगाकर बताओ कि कुएँपर कितना खर्च बैठेगा। मैं सोचने लगा कि बुढ़ापेमें बूआका दिमाग खराब हो गया है। आजकल दोनों वक्तका खानातक खुद नहीं जुटा पाती, इसपर भी कुआँ बनानेकी धुन लगी है।'

बात आयी-गयी हो गयी, परंतु १०-१२ दिन बाद देखता हूँ कि लाठी टेकती बूआ सुबह-सुबह हाजिर है। मनमें अपने ऊपर ग्लानि और क्षोभ हुआ कि जिसके स्नेहकी छायामें बचपनके इतने वर्ष बिताये, जिससे नाना प्रकारके छोटे-मोटे काम लिये, बहुत रात गयेतक कहानियाँ सुनीं, उसके एक छोटे-से कामपर भी मैंने ध्यान नहीं दिया! मैंने कहा, 'वहाँ पानी बहुत नीचा है, इसलिये कुएँपर दो-ढाई हजार रुपये खर्च होंगे। यदि कुइयाँ (छोटा कुआँ) बनायी जाय तो शायद डेढ़ हजारतकमें बन सकेगी।'

मेरा उत्तर सुनकर बूआके झुर्रियोंसे भरे चेहरेपर एक गहरी उदासी छा गयी, वह मन-ही-मन कुछ हिसाब-सा लगाने लगी। दूसरे दिन मुझे अपने घर आनेको कहकर चली गयी।

अगले दिन जब मैं उसके यहाँ पहुँचा तो देखा कि वह मेरा इन्तजार कर रही है। थोड़े देर इधर-उधर देखकर मुझे भीतरकी एक कोठरीमें ले गयी। खाटके नीचेसे एक
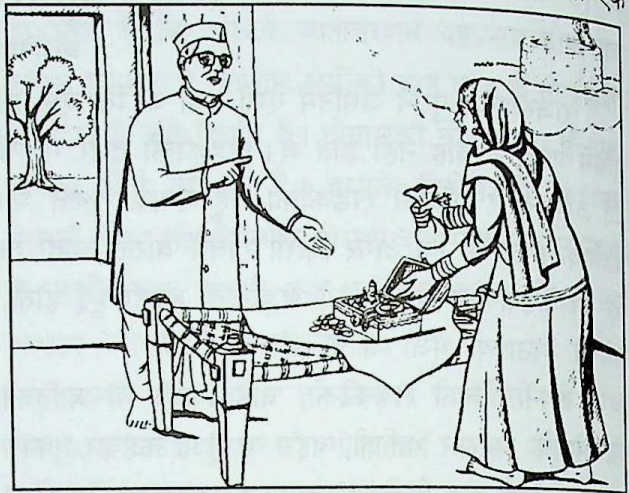
पुराना डिब्बा निकाला और उसे खोलकर मेरे सामने उड़ेल दिया।

रानी विक्टोरिया, एडवर्ड और जार्ज पंचमकी छापके पुराने रुपये थे तथा कुछ रेजगारी थी। थोड़े-से चाँदीके गहने और एक सोनेकी मूर्ति थी, जो शायद उसकी माँने उसके विवाहके समय उसको दी होगी।

मैं रुपये गिन रहा था और पिछले ६०-७० वर्षोंका इतिहास मेरे मानसमें तैर रहा था। सोच रहा था, इस वृद्धाकी सारी उम्रकी गाढ़ी कमाईका यह पैसा है, जो उसने कठिन जीवन बिताकर, यहाँतक कि तीर्थयात्राकी बलवती इच्छाको दबाकर इकट्ठा किया है। आज जीवनके सन्ध्याकालमें सारा-का-सारा परोपकारमें लगा देना चाहती है। गिनकर मैंने बताया कि लगभग ९०० रुपये हैं। ३०० रुपयेके गहने होंगे। इतनेमें काम बन जायगा, जो कुछ थोड़ी कमी रहेगी उसकी व्यवस्था हो जायगी, कोई चिन्ताकी बात नहीं है।

वह बोली—'बेटा, मेरे पतिके निमित्त कुआँ बनेगा। इसमें दूसरोंका पैसा नहीं ले सकूँगी। नहीं होगा तो एक मजदूर कम रखकर कुछ काम मैं कर दिया करूँगी।' मैंने पूछा, 'बूआ, कुएँपर किसके नामका पत्थर लगेगा?' अपनी धुँधली आँखोंको कुछ फैलानेकी चेष्टा करते हुए बूआने जवाब दिया—'नामकी इच्छासे पुण्य घट जाता है, फिर मानुष तो स्वयं क्षणभंगुर है, उसके नामका मूल्य ही क्या?'

मुझे इस अनपढ़ वृद्धाके तर्कपर आश्चर्यके साथ श्रद्धा हो रही थी। यह कुआँ बनानेके परोपकारी कामके

लिये सर्वस्व लगाकर भी न तो अपना और न अपने पतिके नामका पत्थर लगानेकी इच्छा रखती है, जबकि आज एक लाख लगाकर पाँच लाखकी इमारतपर या संस्थापर नाम लगानेकी खींच-तान धनवान् और विद्वानोंमें लगी रहती है तथा उद्घाटन-समारोह किस मन्त्री या नेतासे करायें, इसपर भी काफी सोच-विचार होता है। तय नहीं कर पा रहा था कि कौन बड़ा दानी है और किसका दान ज्यादा सात्त्विक है।

कुछ दिनों बाद उस गाँवमें गया तो कुआँ बन रहा था और चन्दरी बूआ भी मजदूरोंके साथ टोकरी ढो रही थी। उसकी लगन और परिश्रम देखकर दूसरे मजदूर-कारीगर भी जी-जानसे काममें जुटे थे।

किसीने कहा—'बूआ, तुम्हारे कुएँका पानी तो बहुत मीठा निकला है, परंतु तुम तो बहुत दिन नहीं पी सकोगी।' वह बोली—'मेरा इसमें क्या है? तुम सब लोगोंमें रहकर कमाया हुआ पैसा था, वह भले काममें लग गया। दूसरोंके कुओंसे सारी उम्र पानी पिया है, इसलिये इस छोटे-से प्रयत्नके द्वारा मैंने अपना ऋण चुकानेका प्रयास किया है। मेरी आखिरी इच्छा है कि जब मेरे प्राण निकलें तो गंगाजलके साथ-साथ इस कुएँका पानी भी मेरे मुँहमें डालना।'

कुआँ बनकर तैयार हो गया, परंतु बूआ थककर बीमार हो गयी। जिस दिन हनुमान्जीका जागरण और प्रसाद हुआ, वह बेहोश-सी थी।

जागरणमें आस-पाससे देहातके काफी लोग इकट्ठे थे। भजन-कीर्तन चल रहा था; थोड़ी देर बाद वहीं सबके सामने बूआका देहान्त हो गया।

आज वह गाँव बड़ा हो गया है और दूसरे कुएँ भी बन गये हैं, परंतु चन्दरी-कुएँके पानीके समान मीठा पानी किसीका भी नहीं है।

युद्धभूमिमें अभयदानकी भारतीय परम्परा

(श्रीवीरेन्द्रकुमारजी गौड़, पूर्वकैप्टन एवं महानिरीक्षक)

युद्धमें विरोधी सैनिकोंके अमानवीय व्यवहारकी असंख्य घटनाएँ पहले और दूसरे विश्वयुद्धमें घटीं। समर्पण करनेवाले सैनिकोंको मौतके घाट उतारना और घायलोंकी अनदेखी करनेकी घटनाएँ अनेक देशोंके युद्धक्षेत्रोंमें घटीं, किंतु युद्धमें अभयदान देने और युद्धबन्दियोंको योद्धाओं-जैसा अपेक्षित सम्मान देनेकी परम्परा जैसी भारतवर्षमें है, वैसी अन्य देशोंमें शायद ही देखनेको मिले।

भारतभूमि कर्मभूमि है। कर्मका सर्वोच्च पालन सैनिक करते हैं। उनकी अमिट परम्परा भी है, जिसका अनुभव मुझे सन् १९६५ ई०के भारत-पाकयुद्धमें अमृतसर-लाहौर सेक्टरमें हुआ था। ६ सितम्बर १९६५ ई०को भारतीय सेनाओंने पंजाबमें मोर्चा खोला। मैं तब भारतीय सेनाकी १५वीं वाहिनीकी डोगरा रेजिमेण्टमें अधिकारी था। मेरा सैनिक अनुभव मात्र दो वर्षका था। सीमापार पाकिस्तानके सीमारक्षक संगठन सतलुज रेंजर मुख्यालयपर मेरी वाहिनीने सशस्त्र हमलाकर कब्जा कर लिया। गोलाबारीकी आवाज सुनकर पाकिस्तानके सीमावासी घबरा गये। आस-पासके गाँववालों और वागा गाँववासी अपनी जान बचाकर भागे। लोग अपनी अमूल्य वस्तुएँ, जेवर और नगदी लेकर भागे। समुद्रकी लहरोंकी तरह लोग खेतों, बगीचों और खुले मैदानोंमें अपनी जान बचानेके लिये गिरते-पड़ते बदहवास होकर भाग रहे थे। बूढ़े, अपंग, बच्चे और औरतें लाहौरकी ओर भागनेवालोंमें सबसे पीछे थीं। पाकिस्तानी क्षेत्रमें आगे कूच करती भारतीय सेनाने निहत्थे लोगोंको रोका-टोका नहीं। उनपर गोलीबारी भी नहीं की। उन्हें जाने दिया।

सतलुज रेंजरके कुछ सशस्त्र सैनिक आस-पास ईखके खेतोंमें छिप गये थे। हमारा मुख्य दल जब जी०टी० रोडपर आगे बढ़ा तो सतलुज रेंजर विंग मुख्यालयके नजदीक गन्नेके खेतसे मशीनगनका फायर आया, जिसमें हमारे दो सैनिक घायल हो गये। हमारी जवाबी कार्रवाईमें कुछ पाक सैनिक मारे गये और दोने हाथ खड़ेकर समर्पण कर दिया। हमारे गुस्साये सैनिक उनका बैनट मारकर वध करना चाहते थे। तभी कम्पनी कमाण्डर मेजर बेदीने उन्हें रोका और आदेश दिया—ये लोग समर्पण कर चुके हैं,

इनपर कोई हाथ नहीं उठायेगा।

बन्दियोंकी जान बच गयी।

उधर रेंजर हेडक्वार्टरमें समर्पण करनेवाले रेंजरोंसे हथियार लेकर उनपर सशस्त्र पहरा लगा दिया गया ताकि युद्धबन्दियोंके रूपमें उन्हें पीछे भेजा जा सके। भारतीय सेनाने युद्धबन्दियोंको अभयदान दिया।

अगले एक पखवाड़ेतक इस इलाकेमें भयंकर युद्ध हुआ। दोनों देशोंकी तोपें गरजती रहीं। युद्धक्षेत्रपर हवाई हमले होते और कई बार प्रत्याक्रमणोंमें पैदल सेना और टैंकोंमें टकराव भी हुए। दिन-रात भीषण मार-काट मची थी। खेतोंमें, सड़कोंपर तथा आस-पासके गाँवोंमें मानवों और पशुओंके शव बिखरे थे, जिनकी दुर्गन्ध पूरे इलाकेमें फैली थी।

हमने उनके कई गाँवोंपर कब्जा कर लिया था। पाकिस्तानी सेना डोगराई उपनगरमें इच्छोगिल नहरके साथ मोर्चा जमाये थी और हम उनके सामने खुले खेतोंमें मोर्चोंमें डटे हुए थे। भयंकर गोलीबारी, हवाई हमलों और टैंकोंके हमलोंमें दोनों ओरसे काफी सैनिक हताहत हुए थे। भारतीय सैनिक खुले मैदानों और खेतोंमें जी०टी० रोडके साथ मोर्चा सँभाले थे। पाकिस्तानी वायुसेना एवं तोपखानोंसे उनपर अचूक गोलीबारी करते थे। उनके एयर ओ पी आकाशमें उड़कर हमारे ठिकानोंपर तोपखानेका फायर कराते। मेरी बटालियनके अनेक सैनिक हताहत हुए थे। हम सबके मनमें आक्रोश था। पाकिस्तानी सेनासे डोगराईमें सभी दो-दो हाथ करना चाहते थे ताकि गोलीबारीमें मारे गये अपने साथियोंका बदला ले सकें। २०-२१ सितम्बर १९६५ ई०को योजना बनी और हमारी ब्रिगेडने पाकिस्तानी ठिकानोंपर डोगराईमें हमला किया। इस भीषण युद्धमें पाकिस्तानकी सेनाका बहुत नुकसान हुआ। बड़ी संख्यामें उनके सैनिक गोलीबारीमें मारे गये, डोगराई नगरके मकान हमारी तोपोंके कहरसे चरमरा गये। भारतीय सैनिकोंने डोगराई नगरकी हर गली और हर मकानमें गुत्थमगुत्था लड़ाई लड़ी और बड़ी संख्यामें शत्रुओंको मौतके घाट उतारा। हमारी ब्रिगेडने उनके १२५से अधिक युद्धबन्दी पकड़े। युद्धबन्दियोंमें कुछ अधिकारी और सैनिक घायल थे। उनकी चिकित्साके लिये उनको युद्धक्षेत्रमें ही स्थित एडवान्स ड्रेसिंग स्टेशन (ब्रिगेड मुख्यालयके अस्पताल)-में ले जाया गया। अस्पतालमें अनेक घायल सैनिकोंकी चिकित्सा चल रही थी। गम्भीर रूपसे घायलोंको अमृतसर भेजा जा चुका था। मैंने डॉक्टरको तीन जख्मी कैदियोंके बारेमें बताया। उनकी प्राथमिक जाँच करनेके बाद डॉक्टरने उनके एक सिपाहीकी ओर इशारा करते हुए अपने नर्सिंग स्टाफसे कहा—फौरन ब्लड ट्रान्समिशन करना होगा (रक्त चढ़ाना होगा)।

मैंने डॉक्टरको टोकते हुए कहा—मैं तो पाकिस्तानी ब्लड-डोनरों (स्वेच्छासे रक्तदान करनेवालों)-को तो नहीं लाया खून देनेके लिये।

उस समय अनेक भारतीय घायल सैनिकोंकी तत्काल चिकित्सा भी हो रही थी। पूरी इमारतमें स्ट्रेचरोंपर घायल सैनिक लेटे थे। कुछ बहुत गम्भीर रूपसे घायल बुरी तरह कराह रहे थे।

डॉक्टरोंने कहा—हमारे पास काफी ब्लड है, अभी थोड़ी देर पहले हमारे कुछ डोनर रक्तदान करके गये हैं।

मेरे मनमें दो शंकाएँ थीं—पहली कि क्या भारतीय सैनिकोंका रक्त पाकिस्तानके घायल सैनिकोंको चढ़ाया जायगा और दूसरी—जब एक वरिष्ठ पाकिस्तानी सैनिक-अधिकारी घायल है तो उसके पहले एक सिपाहीका इलाज क्यों? मेरा भारतीय परम्पराओंका ज्ञान तब बड़ा सीमित था। मात्र दो वर्षका अनुभव था, इसलिये जब अपने डॉक्टरसे पूछा तो उसने कहा—हमारी परम्परा है कि जो घायल ज्यादा गम्भीर हो, चाहे वह भारतीय हो या शत्रुदेशका, हम पहले उसे बचायेंगे और इसी सिद्धान्तसे हम सीनियर-जूनियरकी अनदेखीकर गम्भीर घायलका इलाज पहले करते हैं। हमारे लिये घायलोंकी सेवा सबसे महत्त्वपूर्ण है, चाहे वह भारतीय हो या दुश्मन देशका।

युद्धबन्दियोंके साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार किया गया। उनकी चिकित्सा भारतीय सैनिकोंकी तरह ही की गयी। किसी युद्धबन्दीके प्रति किसी सैनिकमें नफरत या बदलेकी भावना नहीं थी।

ये सैनिक-परम्पराएँ अभयदान और जीवनदानकी हैं, जिन्हें भारतीय सेना पूरी आस्थाके साथ लागू करती है।

सर्वस्वदान—शीशदानकी अनूठी दिव्य परम्परा

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

[भारतीय संस्कृतिमें दानके विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते हैं। राष्ट्ररक्षा, धर्म और संस्कृतिकी रक्षाके निमित्त मातृभूमिके लिये देशके सपूतोंने अपना जीवनदान किया, जो इस देश—भारतका एक अमर इतिहास बन गया है। इस लेखमें देशके उन सपूतोंका वर्णन प्रस्तुत है, जिन्होंने मातृभूमिकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंको न्योछावर करते हुए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया—सम्पादक]

हमारे धर्मशास्त्रोंमें मातृभूमिके महत्त्वपर व्यापक रूपसे प्रकाश डाला गया है। वेदका कथन है—'**माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः**' (अथर्व० १२।१।१२) अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। इस आदेशका असंख्य महापुरुष पालन करनेके लिये सदैव तत्पर रहे हैं। मातृभूमिकी समृद्धिके लिये, उसकी अखण्डताकी रक्षाके लिये अनेक महापुरुष सदैव सन्नद्ध रहे हैं। अथर्ववेद (१२।१।६२)-का एक मन्त्र है—

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥

—इस मन्त्रके अन्तमें यही कामना की गयी है कि हे मातृभूमे! तेरे लिये हम बलिदान देनेके लिये तत्पर रहें। मातृभूमिके शत्रुओंसे संघर्ष करनेकी प्रेरणा देते हुए कहा गया है, '**पृथिव्या निःशशा अहिं अर्चन् अनुस्वराज्यम्**' मातृभूमिकी दासताकी मुक्तिके लिये शत्रुओंसे संघर्ष करते हुए स्वराज्यकी अर्चना करना प्रत्येक नागरिकका पुनीत कर्तव्य है। मातृभूमिके लिये सर्वस्व समर्पित करनेकी प्रेरणा पुराणों तथा उपनिषदोंमें भी दी गयी है। परमगतिको कौन प्राप्त होते हैं, इसका विश्लेषण करते हुए कहा गया है—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः॥

योगयुक्त संन्यासी और रणमें जूझते हुए वीरगतिको प्राप्त होनेवाला वीर—ये दो पुरुष सूर्यमण्डलको भेदकर परमगतिको प्राप्त होते हैं।

धर्मशास्त्रोंके वचनोंसे प्रेरणा लेकर समय-समयपर माताके सपूत मातृभूमिकी रक्षाके लिये अनादिकालसे आत्मोत्सर्ग करने, प्राणदान करने, शीशदानतक करनेको तत्पर रहते रहे हैं।

देवासुरसंग्रामके दौरान असुरोंपर देवसेनाकी विजयके लिये महर्षि दधीचिने अपनी अस्थियोंका दानकर एक अनूठा आदर्श उपस्थित किया था।

परदुःखकातर राजा रन्तिदेवने सर्वस्व दान किया। महाराज दिलीपने गोमाताके प्राणोंकी रक्षाके लिये अपना शरीर भूखे सिंहको समर्पित कर दिया था। राजा शिबिने निरीह पक्षी कबूतरके प्राणोंकी रक्षाके लिये बाजको अपने शरीरके अंगोंके मांसका दान करके अनूठी दानशीलताका परिचय दिया था। वेदों और पुराणोंमें ऐसे अनूठे दानियोंकी असंख्य कथाएँ दी गयी हैं, जिन्होंने दीन-हीनों तथा संकटग्रस्त, अभावग्रस्त व्यक्तियोंकी सहायताके लिये अपना सर्वस्व ही नहीं, अपितु प्राणोंतकका दान कर दिया था। धर्म तथा राष्ट्रकी रक्षाके लिये सर्वस्व दान करनेवालों, प्राणदान करनेवालोंकी भारतमें अविस्मरणीय परम्परा रही है। मुगलोंके शासनकालसे लेकर अंग्रेजोंके शासनकालतक लाखों धर्मवीरोंने अपने धर्म, संस्कृति तथा राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके लिये सर्वस्व समर्पित करके बलिदानके इतिहासमें अनेक स्वर्णिम अध्याय जोड़े। अनेक भारतीय नारियों एवं अबोध बालकोंने भी बलिदान देकर इस परम्पराको निरन्तर बनाये रखा।

क्षत्राणियोंका आत्मबलिदान 'जौहर'

चौदहवीं शताब्दीकी बात है। कामान्ध बादशाह अलाउद्दीन खिलजीने चित्तौड़की रानी पद्मिनीके अनूठे सौन्दर्यपर मुग्ध होकर चित्तौड़पर आक्रमण किया। पद्मिनी परम भगवद्भक्त एवं महान् पतिव्रता रानी थी। अलाउद्दीनने राजा रत्नसिंहको विश्वासघात करके बन्दी बना लिया। उसने शर्त रखी कि यदि बदलेमें पद्मिनीको मेरे पास भेज दिया जाय, तो राजाको मुक्त कर दिया जायगा। पद्मिनीने युक्तिसे काम लिया। अपने पतिके प्राण बचानेके लिये

योजनानुसार पद्मिनी वीर गोरा-बादलके संरक्षणमें कई सौ वीर क्षत्रियोंके संरक्षणमें पालकीमें बैठकर बादशाहके डेरेकी ओर रवाना हो गयी। अन्य पालकियोंमें मेवाड़के रणबाँकुरे क्षत्रिय बैठे हुए थे। डेरेपर पहुँचते ही गोरा-बादलके नेतृत्वमें राजपूत वीरोंने मुसलमानोंपर अप्रत्याशित
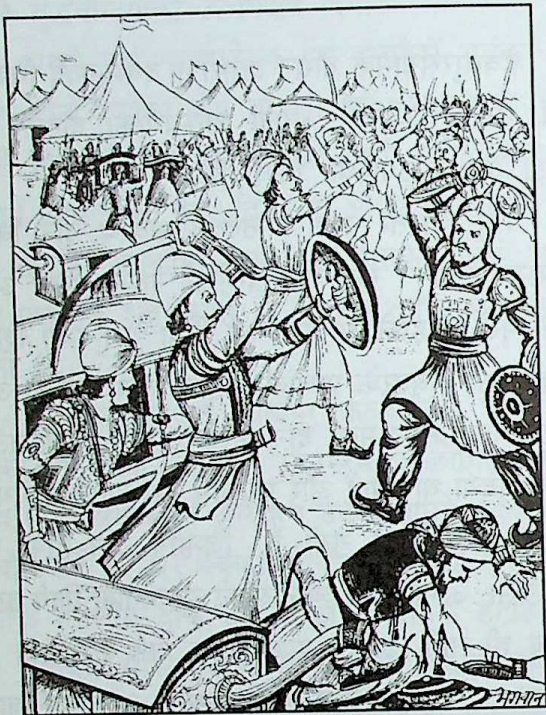
आक्रमण कर दिया। मुसलिम सैनिकोंका सफाया करनेके बाद राजा रत्नसिंहको मुक्त कराकर चित्तौड़ सुरक्षित वापस लाया गया। इस विजय-अभियानमें वीर गोराका बलिदान हो गया। अलाउद्दीन हिन्दू राजपूत वीरोंकी इस सूझ-बूझ एवं अनुपम शौर्यको देखकर हतप्रभ था। उसने भारी सेनाके साथ पुनः चित्तौड़पर आक्रमण किया। इस बार भी राजपूतोंने केसरिया बाना धारणकर राजा रत्नसिंहके नेतृत्वमें शत्रुओंका डटकर मुकाबला किया, किंतु उनकी बड़ी सेनाके समक्ष राजपूत ज्यादा देरतक नहीं टिक पाये। पद्मिनी समझ गयी थी कि कुछ ही समय बाद क्षत्राणियोंको विधर्मी आक्रान्ताओंके अपवित्र हाथोंमें पड़ना पड़ेगा, अतः उन्होंने अपने सतीधर्मकी रक्षाके लिये अन्य राजपूतानियोंके साथ अग्निकुण्डमें कूदकर प्राणोत्सर्ग कर दिया। अपने पावन सतीत्वकी रक्षाके लिये किया गया यह सामूहिक प्राणदान पद्मिनीके अनूठे जौहरके नामसे इतिहासका स्वर्णिम अध्याय बन गया।

रानी दुर्गावतीका आत्मबलिदान

सन् १५६४ ई०की बात है। मध्यप्रदेशके छोटेसे राज्य गढ़मण्डलकी रानी थी दुर्गावती। अचानक उनके पति दलपतशाहका निधन होनेके बाद मुगल सम्राट् अकबरकी गृध्रदृष्टि उनके राज्यपर पड़ी। अकबरने सेनापति आसफ खाँके नेतृत्वमें गढ़मण्डलपर आक्रमणकर उसे कब्जेमें करनेके लिये सेना भेजी। रानी दुर्गावतीने अन्तिम श्वासतक शत्रुसे संघर्ष करते हुए गढ़मण्डलकी रक्षा की। वीरांगना

दुर्गावती तलवार लेकर आक्रान्ताओंसे जूझती रहीं। उनका चौदह वर्षीय पुत्र वीर नारायण भी युद्धक्षेत्रमें आ कूदा। शत्रुसे युद्ध करते-करते वह वीरगतिको प्राप्त हो गया। रानी दुर्गावती समझ गयीं कि अब शत्रुपर विजय सम्भव नहीं है। वे नहीं चाहती थीं कि मुगल सैनिक उन्हें जिन्दा पकड़ सकें। दुश्मनोंके अपवित्र हाथोंसे बचनेके लिये उन्होंने कटारी अपने पेटमें घोंप ली। देखते-ही-देखते उन्होंने हुतात्मा पद प्राप्त कर लिया।

महाराणा प्रतापकी रक्षाके लिये झालारावका आत्मबलिदान

हल्दीघाटीके मैदानमें महाराणा प्रताप तथा अकबरकी सेनाएँ आमने-सामने थीं। महाराणा प्रतापने अपने सामने हाथीपर सवार अकबरके सेनापति मानसिंहको देखा तो घोड़े

चेतकको एड़ लगायी। चेतकने संकेत पाते ही छलांग लगायी और हाथीकी सूँड़पर पाँव रख सीधा खड़ा हो गया। महाराणाने तेजीसे मानसिंहपर भालेका वार किया। भाला महावतकी छातीको चीरता हुआ पार हो गया। महावत लुढ़ककर भूमिपर आ गिरा। मानसिंहकी जान बच गयी।

मुगल सैनिकोंने सिरपर लगे राजछत्रको देखकर महाराणा प्रतापको पहचान लिया तथा उन्हें घेरनेमें लग गये। राजपूत सैनिक झालाराव मन्नासिंहने दूरसे ही भाँप लिया कि मुगल सैनिक राणा प्रतापको घेरनेके प्रयासमें लगे हैं। झालारावने घोड़ा दौड़ा दिया तथा महाराणाके पास जा पहुँचा। उसने तेजीसे आगे बढ़कर महाराणाके सिरका छत्र झपटा और उसे अपने सिरपर रख लिया। मुगल सैनिकोंने सिरके छत्रके कारण झालारावको राणा समझकर घेर लिया। झालाराव मुगल सैनिकोंसे जूझते रहे। अनेकको मौतके घाट उतार डाला। अचानक शत्रु सैनिकोंने उन्हें घेर लिया तथा तलवारसे शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। राणा प्रताप इस बीच शत्रु सैनिकोंकी पहुँचसे दूर पहुँच चुके थे। जब महाराणाको झालारावके इस अनूठे आत्मबलिदानकी बातका पता चला, तो उनकी आँखें भर आयीं कि किस प्रकार उस वीर योद्धाने उनके प्राण बचानेके लिये अपना बलिदान दे दिया।

गुरु गोविन्दसिंहकी रक्षाके लिये अनूठा बलिदान

इसी प्रकार आत्म-बलिदानका एक अनूठा उदाहरण सिख सैनिक सन्तसिंहने चमकौर किलेमें हुए युद्धके दौरान प्रस्तुत किया था। गुरु गोविन्दसिंहजी मुगल सैनिकोंसे चमकौरके किलेमें घिरे हुए थे। उनके साथ केवल पाँच सौ सिख थे। हजारों मुगलोंने किलेको घेरा हुआ था। तोपें लगायी हुई थीं। ऐसा दिखायी दे रहा था कि किसी भी क्षण मुगल किलेके अन्दर प्रवेश कर सकते हैं।

गुरुजीका शिष्य सन्तसिंह उनके पास पहुँचा। चरण पकड़कर बोला—'आप किलेके उत्तरी भागकी कोठरीमें चले जायँ। समय मिलते ही आपको वहाँसे दूर ले जाया जा सकता है। मैं आपके वेशमें सिंहासनके पास बैठ जाऊँगा। गुरुजीने कहा—'मैं कायरोंकी भाँति छिपकर जान बचाकर नहीं भागूँगा, युद्ध करता हुआ प्राणोत्सर्ग करूँगा'। परंतु सन्तसिंहकी अनुनय-विनयके समक्ष गुरुजीको बात माननी पड़ी। सन्तसिंहने गुरुजीकी पगड़ीकी कलँगी अपने सिरपर लगायी तथा गुरुजीके वेशमें आसनपर बैठ गया। मुगल किलेके किवाड़ तोड़कर अन्दर घुसे। सन्तसिंहको गुरु गोविन्दसिंह समझकर उसकी हत्या कर डाली। मुगल सैनिक इसे अपनी बड़ी विजय मानकर जश्न मनानेमें लग गये। उधर गुरु गोविन्दसिंहजी चमकौरके किलेसे बहुत दूर निकल चुके थे। बादमें सन्तसिंहके अनूठे आत्मबलिदानको यादकर रो पड़े।

'गढ़ आया, पर सिंह गया'

एक दिन शिवाजी अपनी माता जीजाबाईका आशीर्वाद लेने पहुँचे। जीजाबाईने कहा—बेटा शिवा! मैं कोंडानाके किलेपर मुगल झण्डा फहरते हुए देखती हूँ, तो मुझे असीम वेदना होती है। इस किलेको भी जीतकर इसपर भगवा झण्डा फहरना चाहिये। मेरी इस अन्तिम इच्छाको भी पूरी करो।

शिवाजीने माँके वेदनाभरे स्वर सुने तो सिर झुकाकर बोले—'माँ! शीघ्र-से-शीघ्र आपकी इच्छाकी पूर्ति की जायगी।'

शिवाजीने अपने वीर सेनापति तानाजी मालसुरेसे कहा—'माँ जीजाबाईकी इच्छापूर्तिकी जिम्मेदारी तुम्हें सौंपता हूँ।' तानाजी अपने पुत्रके विवाहकी तैयारीमें लगे हुए थे। उन्होंने घर पहुँचकर कहा—'पहले कोंडानाके किलेपर भगवा फहराकर माँ जीजाबाईका सपना साकार करूँगा। विवाह उसके बाद ही होगा।'

तानाजीने रातके समय चुपचाप किलेमें प्रवेशकी योजना बनायी। ४ फरवरी सन् १६९० ई०की रातका समय था। वे चुपचाप किलेकी दीवारतक जा पहुँचे। गोहकी कमरमें रस्सी बाँधकर उसे दीवारपर फेंका गया। गोहने दीवारपर पंजे गड़ाये कि तानाजी अपने सैनिकोंके साथ एक-एक करके दीवारपर चढ़े तथा किलेके अन्दर पहुँच गये।

किलेको मुगल सैनिकोंने घेरा हुआ था। मराठा सैनिकोंने मुगलोंसे दो-दो हाथकर अनेक सैनिकोंको यमलोक पहुँचा डाला। अचानक तानाजीपर तलवारका वार हुआ और उन्होंने प्राणोत्सर्ग कर दिया। कोंडानाके किलेको मुगलोंसे मुक्त करा लिया गया। शिवाजीको तानाजीके बलिदानका पता चला तो उनके मुँहसे निकल पड़ा—'गढ़ आया, पर सिंह गया।'

उसी समयसे कोंडाना किलेका नाम 'सिंहगढ़' रख दिया गया। मुगलोंके शासनकालमें छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, महाराणा प्रताप, राणा सांगा, महाराजा छत्रसाल आदि राष्ट्रनायकोंके नेतृत्वमें अनेक राष्ट्रभक्तोंने मातृभूमिकी स्वाधीनताके लिये सतत संघर्ष करते हुए जहाँ बलिदान किये, वहीं अपने प्राणप्रिय धर्मकी रक्षाके लिये भी शीश दानकर धर्म-स्वातन्त्र्यके इतिहासमें अनेक स्वर्णिम अध्याय जोड़े।

गुरु तेगबहादुरजीने धर्मरक्षार्थ शीशदान किया

कश्मीरके पण्डितोंपर जब धर्मान्तरणकर इस्लाम स्वीकार करनेका दबाव डाला गया तो वे गुरु तेगबहादुरजीकी शरणमें पहुँचे कि हमारे धर्मकी रक्षाका उपाय बतायें। गुरुजीके मुखसे निकला—'धर्मकी रक्षा ऐसे ही नहीं की जाती। कोई पुण्यात्मा बलिदान देकर धर्मकी रक्षाका मार्ग प्रशस्त कर सकता है। पास बैठे पुत्र गोविन्दसिंहने कहा—'पिताजी, आपसे बड़ा पुण्यात्मा कौन होगा? धर्मरक्षार्थ आप बलिदान क्यों नहीं दे देते?' पुत्रके शब्दोंने गुरुजीके हृदयको झकझोर डाला। उन्होंने पण्डितोंसे कहा—'बादशाहतक यह सन्देश भिजवा दो कि हमारे गुरु तेगबहादुरजीको धर्मान्तरित कर लिया जाय, तब हम सब धर्मान्तरणकर मुसलमान बन जायँगे।' सन् १६७५ ई०की बात है। पुत्र गोविन्दके शब्दोंसे प्रेरणा लेकर गुरु तेगबहादुरजी अपने मुख्य दीवान भाई मतिदास छिब्बर, उनके भाई सतिदास तथा भाई दयालाको साथ लेकर दिल्ली पहुँचे। उन्हें औरंगजेबके कारागारमें बन्द कर दिया गया।

औरंगजेबके प्रतिनिधि मुल्लाने उनके समक्ष शर्त रखी कि इस्लाम मजहब स्वीकार कर लें। यह स्वीकार न हो तो यातनामय मृत्युके लिये तैयार रहें। गुरुजीने निर्भीकतापूर्वक जवाब दिया—'अपना धर्म हमें प्राणोंसे प्रिय है। प्राण देनेको तैयार हैं, किंतु धर्म-जैसे शाश्वत सत्यको त्यागनेकी कल्पना भी घोर अधर्म मानते हैं।'

भाई मतिदासने बादशाहके प्रतिनिधिके समक्ष गुरुजीसे निर्भीकतापूर्वक कहा—'यदि आप आज्ञा दें तो हमारे भृगुवंशी ब्राह्मण धर्मरक्षार्थ जगह-जगह संघर्ष एवं बलिदानके लिये तत्पर हो जायँगे।' मुल्लाने बादशाह औरंगजेबको तमाम बातें बता दीं। औरंगजेबने आदेश दिया—'मतिदासके शरीरको आरेसे चीर दिया जाय। भयंकर कष्टमय मृत्युको देखकर गुरुजी इस्लाम अपनानेको तैयार हो जायँगे। देखते-ही-देखते भाई मतिदासजीको लकड़ीके दो तख्तोंके बीच जकड़ दिया गया और जल्लादोंने सिरपर आरा रखकर उसे चलाना शुरू कर दिया। आरा चलते ही खूनके फव्वारे चलने लगे। काजीके इशारेपर आरा चलाना रोक दिया गया। काजीने फिर कहा—'यदि इस्लाम स्वीकार कर लो तो जान बच सकती है।' भाई मतिदासने पूछा—'क्या मुसलमान बन जानेपर कभी मृत्यु नहीं होगी?' उसने कहा—'मृत्यु तो एक-न-एक दिन होगी ही।' भाई मतिदास बोले—'तो फिर मैं मृत्युसे भय क्यों मानूँ?' उन्होंने जल्लादसे कहा—

आरा प्यारा लगत है, अब अविलम्ब चलाय।
शीश जाय तो जान दे, प्यारा धर्म न जाय॥

देखते-ही-देखते शरीरको दो भागोंमें चीर डाला गया। उनके भाई सतिदासके शरीरको रूईमें लपेटकर जला दिया गया। भाई दयालाको देगके गर्म पानीमें उबालकर मार डाला गया।

११ नवम्बरको गुरु तेगबहादुरजी महाराजको चाँदनी चौकमें सार्वजनिक रूपसे तख्तपर बैठाया गया। उनसे एक बार फिर अपना धर्म त्यागकर इस्लाम स्वीकार करनेको कहा गया। गुरुजीका चेहरा अनूठे दिव्य तेजसे प्रदीप्त हो उठा। वे बोले—'नश्वर शरीरको बचानेके लिये धर्म-जैसे अनूठे शाश्वत तत्त्वको कौन मूर्ख गँवायेगा!' देखते-ही-

देखते जल्लादने तलवारके एक ही वारसे गुरुजीका सिर धड़से अलग कर डाला।
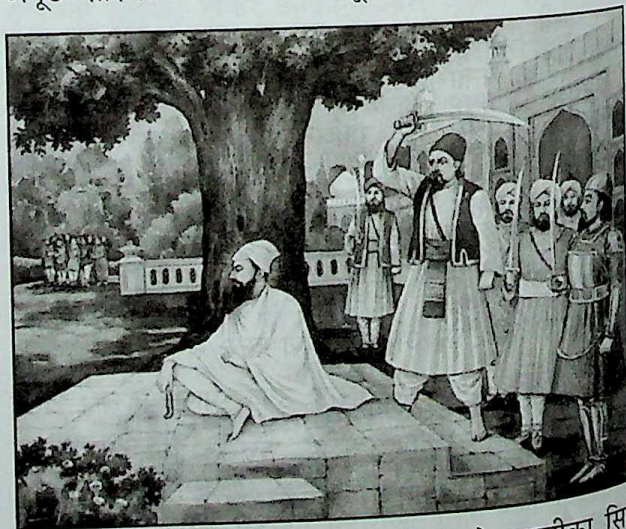
दिल्लीके चाँदनी चौकमें स्थित शीशगंज गुरुद्वारा गुरु तेगबहादुरजीके धर्मरक्षार्थ शीशदानका साक्षी है।

इस घटनासे पूर्व गुरु अर्जुनदेवजी महाराजने भी बादशाहका हिन्दूधर्म त्यागकर मुसलमान बन जानेके प्रस्तावको ठुकराकर अपना जीवन धर्मकी वेदीपर अर्पित कर दिया था। जल्लादोंने उन्हें क्रूरतापूर्वक गरम तेलके कड़ाहेमें बैठाकर उनके प्राण ले लिये थे। धर्मरक्षार्थ उन्होंने हँसते-हँसते भगवान्के पावन नामका स्मरण करते हुए प्राणोंका बलिदान किया था।

वीर बन्दा वैरागीको पुत्र तथा अनेक साथियोंके साथ बन्दी बनाकर दिल्ली लाया गया। हिन्दू धर्माभिमानी वीर बन्दाने हिन्दूधर्म त्यागनेसे स्पष्ट इनकार कर दिया। मज़हबी उन्मादी बादशाहके आदेशसे वीर वैरागीके शरीरका मांस आगसे तपते हुए गरम चिमटोंसे नोचा गया। उनके पुत्रकी उन्हींके समक्ष नृशंस हत्या की गयी। धर्मवीर बन्दा वैरागी बलिदान देकर अमर हो गये।

गुरुपुत्रोंका बलिदान

गुरु गोविन्दसिंहजी महाराजके तो चारों पुत्रोंने धर्मरक्षार्थ प्राणोत्सर्गकर अनूठे प्राणदानका आदर्श उपस्थित किया। दो पुत्रों जोरावरसिंह और फतेहसिंहको धर्म त्यागकर इस्लाम स्वीकार न करनेके आरोपमें सरहिन्द (पंजाब)-में दीवारमें

जिन्दा चुनवा दिया गया। अन्त समयतक उनसे कहा गया—'धर्मका त्यागकर मुसलमान बन जाओ, प्राण बख्श दिये जायँगे, किंतु उन महान् धर्मवीर बालकोंने 'सतश्री अकाल' का उच्चारण करते हुए अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया।

भगत बिरसा मुण्डाका बलिदान

झारखण्डके छोटा नागपुर वनवासी क्षेत्रमें विदेशी ईसाई मिशनरी गरीब तथा भोले-भाले वनवासी हिन्दुओंका छल-बलसे धर्मान्तरणकर उन्हें ईसाई बनानेमें लगी हुई थी। वनवासी युवतियोंके साथ अनाचारकी पापपूर्ण घटनाएँ बढ़ने लगी थीं। भगत बिरसा मुण्डा नामक धार्मिक युवक इन अनाचारोंको सहन नहीं कर पाया। उसने छोटी-सी सेना बनायी। सन् १९०० ई० की बात है, बिरसा मुण्डाने अपने युवा साथियोंके साथ घोषणापत्र जारी किया—'अपने पूर्वजोंके धर्मपर, देशपर किसी भी प्रकारका आघात सहन नहीं किया जायगा।' क्षेत्रके अंग्रेज उपायुक्तने इन वनवासी युवकोंकी सेनापर आक्रमणके लिये गोरोंकी टुकड़ी भेज दी। बिरसाकी सेनाने तीर-कमान तथा भालोंसे मुकाबला किया। इस रक्तिम संघर्षमें चार सौ मुण्डाओंने वीरगति प्राप्त की, अनेक गोरे भी मारे गये। धर्मवीर बिरसा मुण्डाको बादमें एक दिन पकड़कर जेलमें डाल दिया गया। ९ जून १९०० ई० को इस धर्मवीरने जेलमें अन्तिम श्वास लेकर प्राणोत्सर्ग कर दिया।

गोभक्त मंगल पाण्डेका बलिदान

सन् १८५७ ई० की सशस्त्र क्रान्तिका श्रीगणेश कारतूसोंमें गोमाताकी अपवित्र चर्बीका प्रयोग शुरू किये

जानेके विरुद्ध गोभक्तिसे ओतप्रोत हिन्दुस्तानी सैनिकोंद्वारा किया गया था।

बैरकपुर (बंगाल)-की छावनीमें ३४वीं रेजीमेण्टमें सिपाही मंगल पाण्डे तैनात थे। वे परम धार्मिक तथा गोभक्त थे। उन्हें जब पता चला कि सिपाहियोंको जो नये कारतूस उपयोगके लिये दिये जा रहे हैं, उन्हें गोमाताकी चर्बी लगाकर चिकना किया जाता है। इन अपवित्र कारतूसोंको मुँह लगाकर खोलना पड़ता था। गोभक्त मंगल पाण्डेको इस बातका पता चला तो उनके हृदयमें विदेशी अंग्रेजोंके विरुद्ध विक्षोभ पैदा हो गया। २९ मार्चको सैनिकोंकी परेडमें मंगल पाण्डेने खुला विद्रोह कर दिया। अंग्रेज सैनिकोंने मंगल पाण्डेको काबूमें कर लिया।

वीर मंगल पाण्डेको ८ अप्रैलको फाँसीपर लटका दिया गया। १८५७ के सशस्त्र क्रान्तियज्ञमें यह पहली प्राणोंकी आहुति थी।

मेरठकी छावनीमें भगवान् शिवजीके प्राचीन मन्दिरके द्वारपर एक साधु गर्मीके दिनोंमें ठण्डा पानी पिलाकर राहगीरों, विशेषकर सैनिकोंकी प्यास बुझाया करते थे। साधु परम शिवभक्त तथा गोमाताके भक्त थे। उनके पासतक यह बात पहुँच गयी थी कि अंग्रेज कारतूसोंमें गाय तथा सूअरकी चर्बी लगाकर हिन्दू तथा मुसलमानोंका धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं। एक दिन मईकी भीषण गर्मीमें एक हिन्दू सैनिक पसीनेसे तर-बतर हुआ मन्दिरके पाससे गुजरा। उसने साधुके पास पहुँचकर ठंडे पानीसे भरा लोटा देनेको कहा। साधुने कहा—मैं अपना लोटा देकर उसे अपवित्र नहीं कर सकता। सैनिकने कहा—महाराज, मैं उच्च जातिका राजपूत हूँ। मेरे छूनेसे लोटा अपवित्र कैसे हो जायगा? साधुने उलाहना देते हुए कहा—अरे! तुम कैसे राजपूत हो? विदेशी विधर्मी अंग्रेजोंके दिये हुए गोमाताकी चर्बीसे अपवित्र कारतूसोंको मुँहसे खोलते हो। तुम तो म्लेच्छ हो।

साधुके शब्दोंने गोभक्त राजपूत सैनिकके हृदयको झकझोर डाला। वह भागा-भागा अपनी बैरकमें पहुँचा तथा उसने हिन्दू साथियोंको यह बात बतायी। इसी बीच हिन्दुस्तानी सैनिकोंको पता चल गया कि बैरकपुरमें मंगल पाण्डेने भी सेनाके विरुद्ध विद्रोह किया था और उसे फाँसीपर चढ़ा दिया गया है तो अन्दर-ही-अन्दर सैनिकोंने विद्रोहका निश्चय कर लिया।

१० मई १८५७ ई० को मेरठ छावनीकी परेडमें हिन्दुस्तानी सैनिकोंको कारतूस दिये गये। ९० मेंसे ८५ने उन्हें छूनेसे इनकारकर निर्भीकताका परिचय दिया। इन विद्रोही राष्ट्रभक्त सैनिकोंको तुरन्त बेड़ियों-हथकड़ियोंमें जकड़कर जेलमें बन्द कर दिया गया।

मेरठके कोतवाल धनसिंह गुर्जर भी परम धार्मिक तथा राष्ट्रभक्त थे। वे चुपचाप पहलेसे ही विदेशी शासनके विरुद्ध विद्रोहकी तैयारीमें जुटे थे। इनके आह्वानपर गाँवोंके हजारों किसान मेरठ पहुँच गये। सायंकालके समय पूरा मेरठ 'मारो फिरंगीको' के उद्घोषोंसे गूँज उठा। जेलके फाटक खोलकर तमाम हिन्दुस्तानी सिपाहियोंको ग्रामीणोंकी भीड़ने मुक्त करा लिया। छावनीके सभी हिन्दुस्तानी सैनिक मेरठमें सड़कोंपर उतर आये। अनेक अंग्रेज अधिकारियोंने किसी प्रकार भागकर जान बचायी।

मेरठके इन राष्ट्रभक्त सैनिकोंने दिल्ली पहुँचकर दिल्लीपर कब्जा कर लिया। बहादुरशाह जफरको दिल्लीकी शासन सत्ता सौंप दी गयी। बहादुरशाह जफरने सबसे पहला फरमान गोहत्यापर पूर्ण प्रतिबन्ध लगानेका जारी किया। ईदपर भी गोहत्याको अपराध घोषित किया गया।

सन् १८५७ ई० की क्रान्तिकी इस चिनगारीने देशव्यापी रूप धारण कर लिया। नाना साहब पेशवा, तात्या टोपे, बिहारकेसरी बाबू कुँवरसिंह, झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाई, राजा नाहरसिंह, अजीमुल्ला खाँ, राव उमरावसिंह, अजीजन, राव तुलाराम, हुकमचन्द जैन, लाला रामजीलाल गुड़वाले आदि न जाने कितने राष्ट्रभक्तोंने अपनी मातृभूमिकी स्वाधीनताके इस प्रथम संग्राममें अंग्रेजोंकी सेनासे संघर्ष करते हुए प्राण समर्पित कर दिये। पूरे देशमें लाखों राष्ट्रभक्तोंने प्राणोंकी आहुति देकर राष्ट्रके लिये सर्वस्वदानका अनूठा इतिहास रचा। बहादुरशाह जफरके पुत्रोंके सिर काटकर उन बूढ़े पिताको भेंट किया गया। बहादुरशाह जफरको देशसे निर्वासितकर रंगून भेज दिया गया।

एक और भामाशाह अमरचन्द बाँठिया

झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाई अपने सेनानायक राव साहब और तात्या टोपेके साथ ग्वालियरको अंग्रेजोंके चंगुलसे मुक्त करानेमें सफल हो गयी थीं। झाँसीसे पहुँची सेना तथा ग्वालियरके विद्रोही सैनिकोंके भोजन आदिकी व्यवस्थाके लिये धनका अभाव था। सैनिकोंको कई-कई माहका वेतन भी नहीं दिया जा सका था। ग्वालियर-नरेश महाराजा जियाजीराव सिन्धियाके खजांची अमरचन्द बाँठिया परम धार्मिक तथा सन्त-महात्माओंके भक्त थे। उनका जन्म बीकानेर (राजस्थान)-निवासी एक मारवाड़ी वैश्य परिवारमें हुआ था। एक सन्तने उन्हें प्रेरणा दी थी कि विदेशी अंग्रेज गोहत्या कराकर हमारी धार्मिक भावनाओंपर आघात कर रहे हैं। वे हमारी मातृभूमिको गुलाम बनाये हुए हैं। मातृभूमिकी मुक्तिके अभियानमें सहयोग देना हम सबका कर्तव्य है। रानी लक्ष्मीबाईने ग्वालियरपर धावा बोला है और वे आर्थिक संकटसे घिरी हैं—इसकी सूचना श्रीबाँठियातक पहुँची। श्रीबाँठियाने ५ जून १८५८ ई०को गंगाजली राजकोषसे धन निकाला और उसे स्वतन्त्रता सैनिकोंके कल्याणके लिये राव साहबको खुशी-खुशी भेंट कर दिया। इसके बाद वे तात्या टोपेके पास पहुँचे तथा उन्हें आश्वासन दिया कि क्रान्तिके इस महान् यज्ञमें वे सर्वस्व समर्पित करनेमें हमेशा तत्पर रहेंगे।

गंगाजली राजकोषसे प्राप्त धनसे विद्रोही सेनाको और शक्तिशाली बनाया जा सका। संकटग्रस्त स्वतन्त्रता सैनिकोंको इस आर्थिक सहायतासे मानो जीवनदान ही मिल गया। १८ जून १८५८ ई०को अचानक रानी लक्ष्मीबाईको अंग्रेजोंकी सेनाने घेर लिया। रानीने असंख्य अंग्रेज सैनिकोंको तलवारके वारसे यमलोक भेज दिया। अन्तमें अंग्रेजोंसे युद्ध करती हुई रानी लक्ष्मीबाई वीरगतिको प्राप्त हो गयीं। ग्वालियरपर पूरी तरह पुनः अंग्रेजोंका अधिकार हो गया। ग्वालियरके अंग्रेज सैन्याधिकारी ब्रिगेडियर नेपियरने सहजहीमें पता लगा लिया कि किन-किन लोगोंने विद्रोहियोंका साथ दिया। उन्हें पता लग गया कि राजकोषाध्यक्ष अमरचन्द बाँठियाने राजकोषका धन तथा बहुमूल्य हीरे-जवाहरात तात्या टोपेको देकर राजद्रोह किया है।

२२ जूनको श्रीबाँठियाको गिरफ्तारकर मुकदमेका नाटक किया गया। लश्करके सर्राफा बाजारमें उस वैश्य-कुलभूषण राष्ट्रभक्तको नीमके पेड़से लटकाकर उसकी नृशंस हत्या कर डाली। सेठ भामाशाहका अनुकरणकर अपनी राष्ट्रभक्तिका परिचय देनेवाले श्रीबाँठियाके बलिदानने स्वाधीनता-संग्रामके इतिहासमें एक नया स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ दिया।

भाई बालमुकुन्द और उनके साथियोंका बलिदान

वायसराय लार्ड हार्डिंगसकी २३ दिसम्बर सन् १९१२ ई० को दिल्लीमें शोभायात्रा निकाले जानेकी घोषणा की गयी। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्रीरासबिहारी बोस आदिने योजना बनायी कि शोभायात्रापर बम फेंककर ब्रिटिश शासनको चुनौती दी जाय।

भाई बालमुकुन्द, मास्टर अमीरचन्द्र, बसन्तकुमार विश्वास, अवधबिहारी, लाला हनुमन्तसहाय आदि युवा राष्ट्रभक्तोंको अंग्रेजोंके विरुद्ध क्रान्ति करनेका दायित्व सौंपा गया।

२३ दिसम्बरको सुसज्जित हाथीपर वायसरायकी शोभायात्रा जैसे ही चाँदनी चौकसे गुजरी कि अचानक भयंकर विस्फोट हुआ। भले ही वायसराय बच गये, किंतु राजधानी दिल्लीमें बम फेंके जानेकी घटनाने ब्रिटिश शासनकी चूलें हिलाकर रख दीं। कुछ दिन बाद अवधबिहारी, मास्टर अमीरचन्द, बसन्तकुमार विश्वास तथा भाई बालमुकुन्दको गिरफ्तार कर लिया गया। 'दिल्ली षड्यन्त्र' के नामसे इनपर मुकदमा चलाया गया और ८ मई १९१५ को चारोंको दिल्लीकी जेलमें फाँसीपर लटका दिया गया।

भाई बालमुकुन्द प्रसिद्ध आर्यसमाजी विद्वान् तथा परम तपस्वी राष्ट्रभक्त भाई परमानन्दजीके चचेरे भाई थे। भाई बालमुकुन्दजीकी धर्मपत्नी श्रीमती रामरखी परम पतिव्रता नारी थीं। वे पतिसे मिलने दिल्लीकी जेलमें पहुँचीं। पतिको जैसी मिट्टी-मिली रोटी मिलती थी, उसी प्रकारकी रोटी खानी शुरू कर दी। चारपाईकी जगह फर्शपर सोने लगीं। जिस दिन पतिने फाँसी दिये जानेपर परलोक प्रयाण किया, उसी समय महान् पतिव्रता रामरखीने

प्राण त्यागकर हिन्दू नारीका अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया।

भाई परमानन्दजी, भाई बालमुकुन्दजी उन भाई मतिदासके वंशज थे, जिन्हें गुरु तेगबहादुरजीके साथ दिल्लीके चाँदनी चौकमें प्राणप्रिय हिन्दूधर्मका त्याग न करनेके कारण प्राणोत्सर्गको बाध्य होना पड़ा था।

पं० लेखरामजीने विधर्मियोंद्वारा वैदिक हिन्दू धर्मपर लगाये गये आक्षेपोंका लेखों तथा भाषणोंसे मुँहतोड़ जवाब दिया। उन्होंने लोभ-लालच तथा आतंकके बलपर धर्मान्तरित किये गये अनेक व्यक्तियोंको पुनः वैदिक हिन्दू धर्ममें दीक्षित करनेका अभियान चलाया। कट्टरपंथी, मजहबी, जुनूनी इसे सहन नहीं कर पाये। अन्ततः ६ मार्च सन् १८९७ ई०को छुरोंसे प्रहारकर उनकी हत्या कर दी गयी।

स्वामी श्रद्धानन्दजीने गुरुकुल कांगड़ीकी स्थापनाके साथ ही स्वाधीनता-आन्दोलनमें भी सक्रिय भाग लिया। उन्होंने छल-बलसे हिन्दूसे मुसलमान बनाये गये अनेक व्यक्तियोंको पुनः हिन्दू धर्ममें दीक्षित करनेके लिये अभियान चलाया। उनके इस अभियानसे क्षुब्ध होकर दिल्लीमें २३ दिसम्बर १९२६ ई०को एक मजहबी उन्मादीने उनकी हत्या कर डाली।

इसी प्रकार आर्यसमाजी विद्वान् पं० चमूपतिजी, महाशय राजपालजी, पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, पं० अलगूराय शास्त्री-जैसे अनेक हुतात्माओंने अपना सर्वस्व स्वाधीनता-संग्रामके लिये अर्पित कर दिया था। हैदराबादके नवाबने जब हिन्दुओंके धार्मिक कृत्योंपर प्रतिबन्ध लगाया तो अनेक आर्यवीरोंने अपना बलिदान दिया।

'गदर पार्टी' के सर्वस्व दानी

पंजाबके अनेक युवक मातृभूमिकी स्वाधीनताके लिये सर्वस्व समर्पित करनेका संकल्प लेकर सुख-सुविधाओंका त्याग करके विदेश जा पहुँचे थे। भाई परमानन्दजीसे राष्ट्रभक्तिकी प्रेरणा लेकर १९ वर्षीय करतारसिंह सराभाने अमेरिका पहुँचकर गदर पार्टीके गठनमें योगदान किया। २१ फरवरी १९१५ ई०को भारतमें एक साथ सशस्त्र क्रान्ति करनेकी योजना बनायी गयी। शचीन्द्रनाथ सान्याल, रासबिहारी बोस, लाला हरदयाल, सूफी अम्बाप्रसाद आदिसे प्रेरणा पाकर अनेक युवकोंने भारत लौटकर सैनिक छावनियोंमें हिन्दुस्तानी सैनिकोंसे सम्पर्क किया। विश्वासघातके कारण करतारसिंह सराभा गिरफ्तार कर लिये गये। १६ नवम्बर १९१५ ई०को उन्हें फाँसी दे दी गयी। इसी प्रकार विष्णु गणेश पिंगलेको मेरठ छावनीमें गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें भी फाँसीपर लटका दिया गया।

'कामागाटामारू' घटनाके नायक बाबा गुरुदत्तसिंह, पंजाबी युवक रामरखा, बाबा मानसिंह, भाई मेवासिंह, सोहनलाल पाठक, डॉ० मथुरासिंह, किशन सिंह गड़गज, रामकृष्ण विश्वास, गुरदास राम अग्रवाल, हेमू कालाणी, मास्टर सूर्यसेन, प्रीतिलता वद्देदार, वैकुण्ठलाल शुक्ल, पं० जगतराम भारद्वाज, कन्हाईलाल दत्त, अनन्तलक्ष्मण कन्हेरे, गोपीमोहन साहा आदि हजारों राष्ट्रभक्त युवकोंने मातृभूमिकी स्वाधीनताके यज्ञमें अपने प्राणोंकी आहुतियाँ देकर स्वाधीनता संग्रामके इतिहासमें स्वर्णिम पृष्ठ जोड़े।

रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्ला आदिके बलिदान

तेजस्वी युवा क्रान्तिकारी पं० चन्द्रशेखर आजादके नेतृत्वमें अनेक युवकोंने मातृभूमिकी स्वाधीनताके लिये सर्वस्व समर्पित करनेका संकल्प लिया था। अंग्रेजोंसे संघर्ष करनेके लिये शस्त्रास्त्रोंकी आवश्यकता थी। शस्त्रास्त्र तथा अन्य कार्योंके लिये धन चाहिये था। योजना बनायी गयी कि सहारनपुरसे लखनऊ जानेवाली ट्रेनमें ले जाये जानेवाले सरकारी खजानेसे धनकी पूर्ति की जाय।

९ अगस्त १९२५ ई०को सर्वश्री चन्द्रशेखर आजाद, पं० रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफाकुल्ला खाँ, ठाकुर रोशनसिंह, शचीन्द्रनाथ बख्शी, मन्मथनाथ गुप्त, मुकुन्दीलाल, मुरारी शर्मा आदिने इस ट्रेनको लखनऊसे पहले ही काकोरी स्टेशनपर रोककर अपनी योजनाको कार्यान्वित किया। इस घटनासे सर्वत्र तहलका मच गया।

पं० चन्द्रशेखर आजादके अतिरिक्त शेष सभीको गिरफ्तार कर लिया गया। मुकदमा चलाया गया तथा पं०

रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्ला खाँ, ठाकुर रोशन सिंह तथा राजेन्द्रनाथ लाहिड़ीको १७ दिसम्बर १९२७ ई०को फाँसीपर लटका दिया गया। पं० रामप्रसाद बिस्मिल जहाँ दृढ़ ईश्वर-विश्वासी थे, वहीं अशफाकुल्ला खाँको भी अपने मजहबपर दृढ़ आस्था थी। मातृभूमिकी वन्दगीको वे खुदाकी वन्दगी मानते थे।

सरदार भगतसिंह तथा साथियोंका बलिदान

सन् १९२८ ई०में लाहौरमें साइमन कमीशनका विरोध करनेको निकाली गयी रैलीका नेतृत्व कर रहे राष्ट्रभक्त लाला लाजपतराय आदिपर लाठीचार्ज कराकर उनकी हत्याके लिये जिम्मेदार पुलिस अधिकारी साण्डर्सकी हत्याकर प्रतिशोध लेनेवालोंमें सरदार भगतसिंहके साथ चन्द्रशेखर आजाद भी थे। सरदार भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, भगवतीचरण बोहरा आदि सभी राष्ट्रभक्त क्रान्तिकारी पं० चन्द्रशेखर आजादके सदाचारी तथा तेजस्वी जीवनसे बहुत प्रभावित थे।

सरदार भगतसिंहका जन्म सन् १९०७ ई०में लायलपुर (पंजाब)-के राष्ट्रभक्त सिख सरदार किशनसिंहके पुत्रके रूपमें हुआ था। सिख-परिवारमें जन्मे किशनसिंहजी आर्यसमाजके सिद्धान्तोंमें श्रद्धा रखनेवाले थे। प्रतिदिन घरमें यज्ञ-हवन किया जाता था। भगतसिंहका यज्ञोपवीत-संस्कार भी कराया गया था। भगतसिंह लाहौरमें भाई परमानन्दजीके पास जाकर प्रेरणा प्राप्त किया करते थे। वे वीर सावरकरलिखित '१८५७ का स्वातन्त्र्य समर' पुस्तकसे प्रभावित थे तथा गुप्त रूपसे सरकारद्वारा जब्त की गयी इस पुस्तकका उन्होंने प्रकाशन कराया था। भगतसिंहके चाचा अजीतसिंह भी परम राष्ट्रभक्त थे तथा विदेश पहुँचकर उन्होंने स्वाधीनताके लिये प्रयास किये थे।

८ अप्रैल १९२९ ई०को भगतसिंह तथा बटुकेश्वरदत्तने दिल्लीकी असेम्बलीमें क्रान्तिका बिगुल फूँकते हुए ब्रिटिश सत्ताको हिला डाला था। भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु—इन तीनों राष्ट्रभक्तोंने २३ मार्च १९३१ को लाहौरकी जेलमें फाँसीका फन्दा चूमकर मातृभूमिकी स्वाधीनताके यज्ञमें जीवनकी आहुति समर्पित की थी।

पं० चन्द्रशेखर आजाद अन्तिम समयतक पुलिसके हाथ नहीं आ पाये। २७ फरवरी १९३१ को इलाहाबादके एल्फ्रेड पार्कमें पुलिससे दो-दो हाथ करते हुए उन्होंने प्राणोत्सर्ग किया।

सरदार ऊधमसिंहका अनूठा बलिदान

१३ अप्रैल १९१९ ई०को वैसाखीके पावन दिन

अमृतसरमें जलियाँवालाबागमें किये गये नृशंस हत्याकाण्डका बदला लेनेका संकल्प जिस राष्ट्रभक्त युवकने २१ वर्ष बाद सन् १९४० ई०में पूरा किया, उस हुतात्माका नाम है—सरदार ऊधमसिंह।

ऊधमसिंह अमृतसरमें ही रहता था। जब उसे पता चला कि वैसाखी पर्वके दिन जनरल डायरने एकत्रित हजारों व्यक्तियोंको घिरवाकर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलवाकर सैकड़ों व्यक्तियोंकी हत्या करा डाली है, तो उसने संकल्प लिया—'एक-न-एक दिन इस हत्याकाण्डका प्रतिशोध अवश्य लूँगा।'

ऊधमसिंह सन् १९३३ ई०में प्रतिशोध लेने इंग्लैण्ड पहुँचनेमें सफल हो गये। वहीं रहकर वे क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें भाग लेने लगे और वहीं उन्होंने पंजाबके तत्कालीन गवर्नर ओडायारको मारकर अपना प्रतिशोध पूरा किया।

क्रान्तिवीर ऊधमसिंहपर मुकदमा चलाया गया और ३१ जुलाई १९४० को उन्हें लन्दनकी जेलमें फाँसीपर चढ़ा दिया गया। अपने बयानमें इस क्रान्तिवीरने कहा—

'अमृतसरके जलियाँवालाबाग नरसंहारका प्रतिशोध लेकर मैं यह सन्देश देना चाहता हूँ कि हमारी मातृभूमि भारतको अब ज्यादा समयतक पराधीन नहीं रखा जा सकेगा। वृद्धावस्थातक कायरोंकी तरह जीवित रहनेकी अपेक्षा मातृभूमिकी स्वाधीनताके लिये जवानी दाँवपर लगाकर मैंने मातृभूमिके प्रति अपना पावन कर्तव्य निभाया है।'

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

श्रीसुभाषचन्द्र बोस १९४० ई०में गुप्त रूपसे वेश बदलकर विदेश पहुँचे। उन्होंने १९४१ में बर्लिनमें आजाद हिन्द सेनाकी स्थापना की। अंग्रेजोंकी सेनासे युद्ध किया। उनके अनेक सैनिकोंने युद्धमें वीरगति प्राप्त की। उनके साथियों जनरल शाहनवाज खाँ, कर्नल प्रेमकुमार सहगल तथा गुरुबख्शसिंह ढिल्लोपर दिल्लीके लालकिलेमें मुकदमा चलाया गया। उनके इस अनूठे सर्वस्वदानको कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

राष्ट्रकवि डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकरजी' ने ठीक ही लिखा है—

कलम आज उनकी जय बोल।
जला अस्थियाँ बारी-बारी,
छिटकायीं जिनने चिनगारी।
जो चढ़ गये पुण्यवेदी पर,
लिये बिना गरदन का मोल।
कलम आज उनकी जय बोल॥
अन्धा चकाचौंध का मारा,
क्या जाने इतिहास बेचारा।
साक्षी हैं उनकी महिमा के,
सूर्य-चन्द्र, भूगोल खगोल।
कलम आज उनकी जय बोल॥

'दान परम विज्ञान'

(श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुरेश')

दान धर्म है, दान कर्म है, दान परम विज्ञान।
जिसने दान दिया जीवन में मानव वही महान॥

सृष्टिलोक में परमेश्वर ने किये विविध विध दान,
उसके दानों में मानव-तन सबसे श्रेष्ठ महान,
कर देता है दान सभी का जीवन ज्योतिष्मान,
मानवता की, देववृत्ति की दान एक पहचान,
दानवृत्ति से ही मानव का हो पाता उत्थान।
दान धर्म है, दान कर्म है, दान परम विज्ञान॥

देवकर्म है दान लोक में, दया दान का मूल,
धर्म मूल है दान, दान है मानवता का फूल
कर लेता है दान स्वर्ग को भी अपने अनुकूल,
दान बिना मानव जीवन की सारी उन्नति धूल,
नित्य दान से जन बन जाता देवों का वरदान।
दान धर्म है, दान कर्म है, दान परम विज्ञान॥

दान बिना मानव का जीवन बन जाता है शाप,
दान दिये बिन जो जन खाता, वह खाता है पाप,
नित्य दान ही हरता सबके जीवन का संताप,
दानशील की महिमा सारे जग में जाती व्याप,
दानवीर का ही होता है नित्य-नवल जयगान।
दान धर्म है, दान कर्म है, दान परम विज्ञान॥

सूर्य-चन्द्र-अम्बर-अवनी सब प्रतिपल करते दान,
पवनदेव तो प्राणवायु बन करते जग गतिमान,
कर देता है दान लोक में सब को जीवनदान,
रूप अनेक धर्म के जग में, सब में दान प्रधान,
दानशीलता से मानव को मिल जाते भगवान।
दान धर्म है, दान कर्म है, दान परम विज्ञान॥

अखिल लोक में दानधर्म की महिमा अकथ-अपार,
दानशील मानव कर लेता स्वयं आत्म-उद्धार,
एक दान ही है मानव के कर्मोंका शृंगार,
दानवीर के लिये अनावृत सदा स्वर्ग के द्वार,
नित्य दान ही करता मानवको देवत्व प्रदान।
दान धर्म है, दान कर्म है, दान परम विज्ञान॥

भगवान् शिवका मुक्तिदान

(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम०ए०, पी-एच० डी०)

देवाधिदेव महादेव दानियोंमें अग्रगण्य हैं।[१] देना ही उनके मनको भाता है और याचकगण उन्हें बहुत सुहाते हैं।[२] उनके दानकी शैली बड़ी विचित्र है।[३] वे अल्पसे ही प्रसन्न हो जाते हैं तथा दिये जानेवाले दानके भावी परिणामोंकी परवाह किये बिना याचनासे कई गुना अधिक दे डालते हैं। इसी कारण उन्हें आशुतोष एवं अवढरदानी कहा जाता है।[४]

भगवान् शिव भुक्ति एवं मुक्ति दोनों देते हैं। भोगोंको देते समय जहाँ भोलेनाथ याचककी पात्रतापर विचार नहीं करते, वहीं मुक्तिदान करते समय वे जीवोंमें किसी प्रकारका कोई भेदभाव नहीं रखते।

लोकमंगलकी भावनासे भावित भगवान् शिवद्वारा इस प्रकार निर्बाध मुक्तिदान करनेकी प्रशस्तस्थली है उनकी अपनी प्रिय नगरी काशी। भगवान् शिव यहाँ मरनेवाले प्रत्येक जीवको मुक्तिदान देकर भवबन्धनसे मुक्त कर देते हैं।[५] सहस्रों जन्मोंतक नाना प्रकारके जप-तप, यम-नियम एवं योगाभ्यासादि करते रहनेपर भी जिस मुक्तिकी प्राप्ति अनिश्चित रहती है, वह मुक्ति काशीमें शिवकृपासे एक ही जन्ममें और बिना किसी प्रयत्नके (केवल मरनेमात्रसे) सहज ही मिल जाती है।[६]

पुराणोंमें वचन मिलते हैं कि भगवान् शिव काशीमें मरनेवालोंको मुक्ति देनेमें पुण्यात्मा और पापात्मा तथा ज्ञानी और अज्ञानीमें कोई भेद नहीं करते। यहाँतक कि वे मृतकोंके जाति-धर्म या योनि आदिके प्रश्नपर भी कोई पक्षपात नहीं करते। भगवान् शिव काशीमें मरनेवाले पशु-पक्षी और कीटादिको भी मुक्ति प्रदान करते हैं।[७] काशीमें पृथ्वीपर, आकाशमें या जलमें चाहे कहीं भी मृत्यु हो और शुभाशुभ चाहे किसी भी कालमें मृत्यु हो, शिवकृपासे मृतकको मुक्ति मिलती ही है।[८] यहाँतक कि काशीमें सर्पदंशादिसे अपमृत्यु होनेपर भी मृतकको मुक्ति मिलती है।[९] काशीमें मणिकर्णिकादि तीर्थों या गंगातटपर ही नहीं अपितु सड़कोंपर, मल-मूत्रमें, चाण्डालके घरमें अथवा श्मशानसदृश अपवित्र स्थानोंमें मृत्यु होनेपर भी शिवजी कृपा करते हैं और मृतकको मुक्ति मिलती है।[१०]

१-देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे। (विनय-पत्रिका ८)

२-(क) दीन-दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं॥ (विनय-पत्रिका ४)

(ख) जाहि दीन पर नेह....॥ (रा०च०मा० १।४ सो०) ३-बावरो रावरो नाह भवानी। (विनय-पत्रिका ५)

४-(क) औढर-दानि द्रवत पुनि थोरें। सकत न देखि दीन करजोरें॥ (विनय-पत्रिका ६)

(ख) आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। (रा०च०मा० २।४४।८)

५-पुण्यानि पापान्यखिलान्यशेषं सार्थं सबीजं सशरीरमायै। इहैव संहत्य ददामि बोधं यतः शिवानन्दमवाप्नुवन्ति॥

(सनत्कुमारसंहिता, तीर्थसुधानिधि)

६-विना तपोजपाद्यैश्च विना योगेन सुव्रत। निःश्रेयो लभते काश्यामिहैकेनैव जन्मना॥ (काशीखण्ड पू० २२।११२)

७-ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः। कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः॥

कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः। कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये॥ चन्द्रार्द्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः।

शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवाः॥ (मत्स्यपुराण १८१।१९—२१, कूर्मपुराण १।२९।३१—३३)

८-(क) भूमौ जलेऽन्तरिक्षे वा यत्र क्वापि मृतो द्विजः। ब्रह्मैकत्वं च प्राप्नोति काशीशक्तिरुपाहिता॥ (पद्मपु० तीर्थसुधानिधि)

(ख) सर्वस्तेषां शुभः कालो ह्यविमुक्ते म्रियन्ति ये॥ न तत्र कालो मीमांस्यः शुभो वा यदि वाशुभः। (मत्स्यपु० १८४।७२-७३)

९-सर्पाग्निदस्युप्रभृतिभिर्निहतस्य जन्तोः अपि अत्र मुक्तिः। (पद्मपु० त्रिस्थलीसेतु)

१०-रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चाण्डालवेश्मन्यथवा श्मशाने। कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो इहावसाने लभतेव मोक्षम्॥

(सनत्कुमारसंहिता, तीर्थसुधानिधि)

श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषद्‌में भगवान् शिवद्वारा काशीमें दिये जानेवाले मुक्तिदानकी प्रशंसा करते हुए[११] एक बड़ा ही मार्मिक आख्यान कहा गया है। तदनुसार एक बार भगवान् शिवने एक हजार मन्वन्तरतक जपहोमादिपूर्वक भगवान् श्रीरामके राम-नाम महामन्त्रका जप किया।[१२] इसपर प्रसन्न होकर जब भगवान् श्रीरामने शिवजीको दर्शन दिया और अभीष्ट वर माँगनेको कहा तो भगवान् शिवने उनसे अपने लिये कुछ भी नहीं माँगा। दानपरायण महादेव तो सर्वदा लोकमंगलकी कामना रखते हैं। अतः उन्होंने भगवान् श्रीरामसे कहा कि मेरे मणिकर्णिका क्षेत्रमें अथवा गंगाजीके तटपर जो भी प्राणी देहत्याग करें, उन सभी प्राणियोंको मुक्ति मिले, इसके अतिरिक्त मुझे दूसरा कोई वर नहीं चाहिये। शिवजीके इन वचनोंसे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीरामने तथास्तु कहा और शिवजीको आश्वस्त किया कि आपके इस क्षेत्रमें जहाँ-कहीं भी और कोई भी कीटपतंगादि मरेगा, वह तत्काल मुक्त हो जायगा। आप अपने नगरमें जिस किसी भी प्राणीको मेरे मन्त्रका उपदेश करेंगे, वह अवश्यमेव मुक्त हो जायगा।[१३] भगवान् श्रीरामके इन वचनोंको सुनकर शिवजीको परम सन्तोष हुआ और वे भगवान्‌की आज्ञानुसार राम-नाम-मन्त्रोपदेशद्वारा प्राणियोंको मुक्त करनेमें जुट गये।

श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषद्‌में ही भगवान् शिवद्वारा जीवोंकी मुक्तिहेतु दिये जानेवाले तारक मन्त्रके स्वरूप एवं प्रभावका भी विस्तृत विवेचन किया गया है। तदनुसार भगवान् शिवद्वारा दिया जानेवाला तारक मन्त्र षडक्षरोंवाला श्रीरामनाम महामन्त्र **(रां रामाय नमः)** है।

महर्षि भारद्वाजद्वारा पूछनेपर ऋषिवर याज्ञवल्क्यने बताया कि दीर्घ अकारसहित अनल (रेफ, रकार) हो और वह रेफ बिन्दुसे पहले स्थित हो। उसके बाद पुनः दीर्घ स्वरविशिष्ट रेफ हो और तदनन्तर माय नमः ये दो पद हों। इस प्रकार '**रां रामाय नमः**' यह तारकमन्त्रका स्वरूप है। इसके अतिरिक्त रामपद के सहित '**चन्द्राय नमः**' और '**भद्राय नमः**' (अर्थात् '**रामचन्द्राय नमः**' एवं '**रामभद्राय नमः**')—ये दो मन्त्र भी तारक मन्त्र हैं। यह तारक मन्त्र गर्भ, जन्म, जरा, मरण और संसारके महाभयसे तार देता है। जो इस तारकमन्त्रका नित्य जप करता है, वह सम्पूर्ण पापोंको पार कर जाता है, वह ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण हत्याओंसे तर जाता है, वह संसारसे तर जाता है, वह जहाँ कहीं भी रहता हुआ अविमुक्त क्षेत्र (काशीधाम)-में ही रहता है तथा वह मृत्युको लाँघकर अमृतत्वको प्राप्त करता है।[१४]

भगवान् शिवकी यह दानशीलता श्रुतियों-स्मृतियों एवं पुराणों आदिमें सर्वत्र विख्यात है। श्रुतियाँ कहती हैं—**काश्यां मरणान्मुक्तिः**। शिवसंहितामें कहा गया है कि काशीश्वर भगवान् शिव श्रीराममन्त्रसे स्वयं पवित्र होकर काशीमें जीवोंको सदा मुक्त करते हैं। पद्मपुराणमें भगवान् शिवने कहा है कि मरनेके समय मणिकर्णिका घाटपर गंगाजीमें जिस मनुष्यका शरीर गंगाजलमें पड़ा रहता है, उसको मैं आपका तारक मन्त्र

११-अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। तस्माद्यत्र क्वचन गच्छति तदेव मन्येतेतीदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति। तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत। अविमुक्तं न विमुञ्चेत्। (रामोत्तरतापिन्युपनिषद् १)

१२-श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः। मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः॥ ततः प्रसन्नो भगवाञ्छ्रीरामः प्राह शङ्करम्। वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर॥

अथ सच्चिदानन्दात्मानं श्रीराममीश्वरः पप्रच्छ। मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः। म्रियते देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नाऽतो वरान्तरम्॥ (रामोत्तरतापिन्युपनिषद्)

१३-अथ स होवाच श्रीरामः। क्षेत्रेऽस्मिंस्तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः। कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्। उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥ (रामोत्तरतापिन्युपनिषद्)

१४-तारकं दीर्घानलं बिन्दुपूर्वकं दीर्घानलं पुनर्मायां नमश्चन्द्राय नमो भद्राय नम इत्येतद् ब्रह्मात्मिकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्। अकारः प्रथमाक्षरो भवति। उकारो द्वितीयाक्षरो भवति। मकारस्तृतीयाक्षरो भवति। अर्धमात्रश्चतुर्थाक्षरो भवति। बिन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति। नादः षष्ठाक्षरो भवति। तारकत्वात्तारको भवति। तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि। तदेवोपासितव्यमिति ज्ञेयम्। गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद्भयात्सन्तारयतीति। तस्मादुच्यते षडक्षरं तारकमिति। य एतत्तारकं ब्रह्म ब्राह्मणो नित्यमधीते। स पाप्मानं तरति। स मृत्युं तरति। स ब्रह्महत्यां तरति। स भ्रूणहत्यां तरति। स वीरहत्यां तरति। स सर्वहत्यां तरति। स संसारं तरति। स सर्वं तरति। सोऽविमुक्तमाश्रितो भवति। स महान्भवति। सोऽमृतत्वं च गच्छति। (रामोत्तरतापिन्युपनिषद् २)

देता हूँ, जिससे वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है।[१५]

भगवान् शिवके इस मुक्तिदानमें भगवती पार्वती भी सक्रिय सहयोग करती हैं। एक पौराणिक आख्यानमें कहा गया है कि काशीमें निवास करनेवाले प्रत्येक जीवित प्राणीके भोजनकी व्यवस्था स्वयं काशीपुराधीश्वरी माता अन्नपूर्णा करती हैं[१६] और प्रत्येक मुमूर्षु प्राणीको मुक्तिदान भगवान् शंकर करते हैं। यहाँ जीवका मृत्युकाल निकट आनेपर जब भगवान् शंकर उस मरणासन्न प्राणीको अपनी गोदमें रखकर उसे तारक मन्त्रका उपदेश करने लगते हैं तो उस समय कृपामूर्ति माता अन्नपूर्णा कस्तूरीकी गन्धसे सुरभित अपने श्वेतांचलकी सुन्दर वायुसे उस प्राणीकी मरणकालिक व्याकुलताको दूर करती हैं। इसीलिये यहाँ मरण भी परम मंगलमय माना गया है।

काशीमें भगवान् शिवद्वारा दिया जानेवाला तारक मन्त्र राममन्त्र ही है, इसे अध्यात्मरामायणका वह प्रसंग पुष्ट करता है जब लंकाविजयके उपरान्त श्रीरामके अभिनन्दनार्थ उपस्थित भगवान् शिव श्रीरामकी स्तुति करते हुए कहते हैं—मैं आपके नामसंकीर्तनसे कृतार्थ होकर काशीमें भगवती भवानीके साथ अहर्निश रहता हूँ और मरणासन्न प्राणियोंकी मुक्तिहेतु उन्हें राम-नाममन्त्रका उपदेश करता हूँ—

अहं भवन्नाम गृणन्कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥

(अध्यात्मरामायण, युद्धकाण्ड १५। ६२)

इस सन्दर्भमें आनन्दरामायणका वह प्रसंग भी अत्यन्त रोचक है, जहाँ श्रीशिवजी पार्वतीजीको बतलाते हैं कि समग्र रामचरितपर महर्षि वाल्मीकिद्वारा प्रणीत शतकोटि श्लोकोंके रामायणको तीनों लोकोंमें वितरित करनेके पश्चात् जो दो अक्षरोंवाला राम-नाम बचा, उसे मैंने अपने लिये माँग लिया। हे पार्वति! तुम उसे ही तारक मन्त्र जानो। हे देवि! मैं उसी श्रीरामनाम तारकमन्त्रका काशीमें जीवोंके शरीर त्यागते समय उपदेश करता हूँ और उन्हें भव-बन्धनसे मुक्त करता हूँ—

द्वेऽक्षरे याचमानाय मह्यं शेषे ददौ हरिः।
उपदिशाम्यहं काश्यां तेऽन्तकाले नृणां श्रुतौ॥
रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति।

(आनन्दरामायण, यात्राकाण्ड २। १५-१६)

एक अन्य पौराणिक आख्यानमें भगवती पार्वतीद्वारा

यह पूछनेपर कि हे भगवन्! आप हर समय क्या जपते रहते हैं? भगवान् शिवने भगवतीको विष्णुसहस्रनाम सुना दिया। तब पार्वतीजीने कहा—ये तो आपने एक हजार नाम कहे। इतना जपना तो सामान्य मनुष्यके लिये असम्भव है। कोई एक नाम कहिये, जो सहस्रों नामोंके बराबर हो और उनके स्थानमें जपा जाय। तब भगवान् शिवने कहा कि हे देवि! राम नाम इन सभी नामोंमें सर्वोत्तम है—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥
राम राम शुभ नाम रटि, सबखन आनँद-धाम।
सहस नामके तुल्य है, राम-नाम शुभ नाम॥

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् शिवने पार्वतीजीको बतलाया कि काशीमें मरते हुए प्राणीको देखकर उसे मैं जिनके

१५-(क) रामनाम्ना शिवः काश्यां भूत्वा पूतः शिवः स्वयम्। स निस्तारयते जीवराशीन् काशीश्वरः सदा॥ (शिवसंहिता २। १४)

(ख) मुमूर्षो मणिकर्ण्यां अर्द्धोदकनिवासिनः। अहं ददामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मदायकम्॥ (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

१६-यह प्रसिद्ध है कि व्रतादिके बन्धनोंके अतिरिक्त काशीमें कोई भी प्राणी भूखा नहीं सोता।

नामके बलपर मुक्त कर देता हूँ, वे रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ही हैं—

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

(रा०च०मा० १।११९।१-२)

संतशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामनामकी महिमाका गान करते हुए लिखा है कि मैं राम-नामकी वन्दना करता हूँ जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाका हेतु है। वह राम-नाम ब्रह्मा-विष्णु और शिवरूप है। वह वेदोंका प्राण है तथा निर्गुण, उपमारहित एवं गुणोंका भण्डार है। यह महामन्त्र है, जिसे महेश्वर सदा जपते रहते हैं और इनके द्वारा जिसका उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है तथा जिसकी महिमा श्रीगणेशजी जानते हैं और जो इस नामके प्रभावसे ही सर्वप्रथम पूजे जाते हैं। आदिकवि वाल्मीकि जिसे उलटा जपकर पवित्र हो गये। इस नामको एक हजार नामोंके बराबर जानकर श्रीपार्वतीजी सदा अपने पतिके साथ जप करती रहती हैं। राम-नामके प्रति भवानीकी ऐसी प्रीति देखकर ही शिवजीने उन्हें अपनी अर्द्धांगिनी बना लिया। नामके प्रभावको जानकर ही शिवजीने हलाहलका पान कर डाला था और उसने उन्हें अमृतका फल दिया था। श्रीरघुनाथजीकी भक्ति वर्षा-ऋतु है, तुलसीदासजी कहते हैं कि उत्तम सेवकगण धान हैं तथा राम नामके दो सुन्दर अक्षर सावन-भादोंके महीने हैं—

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥
महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥
जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥
बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥

(रा०च०मा० १।१९।१—८, १।१९)

भगवान् शिवके इस अनुपम मुक्तिदानको कोटिशः नमन है। ठीक ही कहा गया है कि श्रुति-स्मृतिसे अभिज्ञ, शौचाचारसे विहीन तथा संसारके भयसे भयभीत, कर्मबन्धनोंमें जकड़े हुए जिस मनुष्यकी गति कहीं भी नहीं है, उसकी सद्गति काशीमें है—

श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचारविवर्जिताः।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥
संसारभयभीता ये बद्धाः कर्मबन्धनैः।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥

हृदय-दान

(श्रीरामनाथजी 'सुमन')

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'

(गीता १८।६१)

हृदय भगवान्‌का निवास-स्थान है। हृदयको सजाकर, इसे महल बनाकर जो इसमें भगवान्‌को बसाता है, उसके हृदयसे भगवान् जा नहीं सकते। सर्वोत्तम साधन एकमात्र यही है कि सारा हृदय भलीभाँति भगवान्‌के लिये दे दिया जाय। हृदय-दान ही सर्वोत्तम सम्बन्ध-स्थापन है। जबतक हृदय-दान नहीं होता, तबतक वास्तविक दान अर्थात् पूर्ण समर्पण नहीं होता। शरीरका दान तो स्वार्थवश अथवा दम्भवश भी हो सकता है, पर हृदय दिया जाता है हृदयके लिये ही। हृदय-दान ही जीवनभरकी साधनाका परमोच्च फल है।

जब हृदय भगवान्‌का धाम बन गया, तब इसकी सँभाल भी भगवान्‌के हाथ होने लगेगी। कोई साधारण व्यक्ति भी अपना घर शक्तिभर लुटने न देगा; फिर भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं, अनन्त शक्तिसम्पन्न हैं, वे अपने महलको क्यों लुटने देंगे? इसी भरोसेपर तो गोस्वामी तुलसीदासजीने पुकारा है—

मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध-रिपु मारा॥

कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा॥
(विनय-पत्रिका १२५। २, ४, ८)

'हे नाथ! मेरा हृदय है तो आपका निवास-स्थान, परंतु आजकल उसमें बहुत-से चोर आकर बस गये हैं। इन चोरोंमें ये सात प्रधान हैं—अज्ञान, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध और ज्ञान-शत्रु काम। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे श्रीराम! इसमें मेरा क्या जाता है, चोर आपके ही घरको लूट रहे हैं।' कितनी उच्च समर्पण-स्थिति है! कितनी निश्चिन्तता है!!

प्रभुके साथ सम्बन्ध स्थापित हो जानेपर उस सम्बन्धको निभानेका सारा भार प्रभुपर ही जा पड़ता है और वे निभाते भी बड़ी खूबीसे हैं। वे जिसके हृदयमें एक बार आ बसते हैं, वहाँसे चेष्टा करनेपर भी जाते नहीं। इस प्रणयमें बाहरी रस्म नहीं होती। दान एक बार ही होता है और जिस वस्तुका दान हो जाता है, उसपर पुनः अपना अधिकार नहीं रहता। जहाँ भगवान्‌को हृदयमें बसाया कि वे हमारे हृदयके पति हुए; फिर क्या भगवान् हमें नहीं बचायेंगे? अपने इष्टदेवके सिवा अन्य किसीके सामने हमारा सिर क्यों झुके?

जब भगवान्‌से पूर्णतया सम्बन्ध स्थापित हो गया तो दूसरेकी दृष्टि हमपर पड़ कैसे सकती है? भगवान्‌के साथ सम्बन्ध स्थापित होते ही काम-क्रोधादि विकार समूल नष्ट हो जाते हैं। हर समय, हर स्थानपर हर प्रकारसे हमारी रक्षाके लिये भगवान् उद्यत हैं। भगवान् कहते हैं—

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥
(श्रीमद्भा० ९। ४। ६५)

'जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक—सबको छोड़कर मेरी शरणमें आ गये हैं, उन्हें छोड़नेका संकल्प मैं कैसे कर सकता हूँ।'

कौरवोंके भेजे हुए दुर्वासा द्रौपदीके पास उस समय आये, जब उसके पास अन्नका एक कण भी नहीं था। द्रौपदीको कभी यह सन्देह था ही नहीं कि श्रीकृष्ण हमारी सहायता करेंगे या नहीं। अतः स्मरण करते ही श्रीकृष्ण इस तरह आये, जैसे घरमें ही हों। स्वयं भगवान् हमारी रक्षाकी पूरी चिन्ता रखते हैं, फिर हमारी लाज कैसे लुटेगी? फिर हम परास्त क्यों होंगे? भक्तका अपमान भगवान्‌का अपमान है, भगवान् अपना अपमान तो सह लेते हैं, परंतु अपने भक्तका अपमान नहीं सह सकते—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥
(श्रीमद्भा० ९। ४। ६३)

'मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ, अतः स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयपर अधिकार कर लिया है और मैं भी भक्तजनोंका परम प्रेमी हूँ।'

प्रभुकी सारी शक्तिका स्वामित्व शरणागत भक्तके हाथ है। जहाँ प्रभुकी समूची शक्ति हमारी रक्षामें रहती है, वहाँ भय क्या? 'मैं तेरा हूँ'—इस भावनामें कितना आनन्द है! वे तो अन्तर्यामी हैं; जिस क्षण देखेंगे कि 'मैं तेरा' ठीक हृदयसे, सचाईसे और ईमानदारीसे कहा गया है, उसी क्षण वे भी 'मैं तेरा' कह देंगे। फिर क्या चिन्ता? हम तो भगवान्‌के दास हो गये, अपने भावानुसार सखा, पुत्र आदि हो गये। भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा था—**'इष्टोऽसि मे दृढमिति'** (गीता १८। ६४)।

'तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो,' परंतु इसके पहले अर्जुनको हृदयसे स्वीकार करके कहना पड़ा था—

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'
(गीता २। ७)

'भगवन्! मैं आपका शरणागत शिष्य हूँ, मुझे शिक्षा दीजिये।' अर्जुन केवल मुखसे नहीं कहते, वे अपनी पूरी शक्तिसे कहते हैं। जब हम सर्वतोभावेन हरिके हो गये तो फिर रहा क्या? जो कुछ रहा, उसे भगवान् जानें। जबतक अपने-आपकी चिन्ता है, तबतक उनके कहाँ हुए? प्रभुका हो जानेपर स्वर्ग-नरककी बात आती ही नहीं। काम-क्रोधादि उसे सताते ही नहीं। 'मैं तेरा' कहनेवालेका एकमात्र कार्य उन 'एक' की सेवा ही रह जाता है। भगवान्‌के द्वारा रक्षामें कमी कभी आ नहीं सकती। वे अतर्क्य, अचिन्त्य शक्ति एवं असंख्य रूपोंमें हमारी रक्षा करते रहते हैं।

जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करमकी डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी॥
(विनय-पत्रिका ९८। २)

जिन्होंने सारे चराचरको बाँध रखा है, वे ही यशोदाकी डोरीमें ऐसे बँधे हुए हैं कि अपनेको छुड़ा नहीं सकते। वे उसीसे बँधते हैं, जो 'मैं तेरा' कह देता है। वे अपना बननेके लिये आतुर बैठे हैं—बाट देख रहे हैं।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा०रा० ६। १८। ३३)

'जो एक बार भी मेरी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ'—ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ सदाके लिये, यह मेरा व्रत है।'

उनका होते ही 'मैं' और 'वे' एक हो गये। उनकी सारी शक्ति मेरी हो गयी। सारा साधन 'मैं तेरा' कहलानेके लिये ही है। यही सम्बन्ध-स्थापन है। वे हमसे मिलनेके लिये आतुर तो हैं, पर अपने नियमोंमें बँधे हैं। वे यही चाहते हैं कि हम उन्हें पहले पुकारें। वे बार-बार संकेत भी करते हैं, पर हम बोलते नहीं। वह घड़ी कितनी शुभ होगी, जब उनके संकेतको समझकर हम 'मैं तेरा' कह देंगे। जहाँ हम हृदयका दान लेकर आये कि उन्होंने स्वीकार किया। वे स्वीकार कर लेनेपर फिर छोड़ते नहीं। हृदय तो हमने दे रखा है संसारको और कहते हैं—'मैं तेरा'। पर वे मानेंगे नहीं। यह हृदय उनका धन है, वे कभी-न-कभी तो इसे लूटेंगे ही। जिस क्षण 'मैं तेरा हूँ' कहकर हम उनके सम्मुख जायँगे, वे स्वीकार कर लेंगे—बस, इतना कहनेमात्रकी आवश्यकता है।

राजा बलिका सर्वस्वदान

(डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)

दान कल्याण-प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है। दानमें प्राप्ति निहित है। जो इस मृत्युलोकमें लेता है, वह ऋणी बनकर ही जाता है और जो व्यक्ति इस लोकमें दान करता है, वह प्रभूत धन, विद्या, यश, पद, प्रतिभाकी प्राप्तिका पात्र बन जाता है।

संग्रह तो विनाशका कारण होता है और भोग निश्चय ही पुण्योंका क्षयकर तथा रोगशोकोद्भवका आधार बनता है। केवल दान ही एक ऐसी गुणवृत्ति है, जो सदा-सर्वदा सब ओरसे सुख, ओज, यश, आत्मबल एवं शान्ति प्रदान करती है। कहा भी गया है—

धन में केवल एक गुण अवगुण भरे हजार।
जो आवै धन दान हित नर होवे भव पार॥

सृष्टिसे अद्यपर्यन्त केवल वे अजर-अमर एवं स्मरणीय रहे हैं, जिन्होंने विद्यादान, धनदान, सेवादान, तनदान, अन्नदान आदिसे अपने जीवनको कृतार्थ किया है। महर्षि दधीचि, सती सावित्री, राजा रन्तिदेव, भक्त प्रह्लाद, राजा बलि, महादानी कर्ण आदि ऐसे ही दानी पुरोधा हैं, जिनके दानकी कथाके श्रवणसे या उनके नाम-ग्रहणमात्रसे व्यक्ति महान् पुण्यका भागी बन जाता है और दानवृत्तिमें अपना मन लगाकर श्रेय प्राप्त करता है। संसारके सभी मनुष्य जानते हैं कि व्यक्ति अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेला ही इस लोकसे जाता है तथा अकेला ही पुण्य या पापका भागी होता है—

एकः प्रजायते जन्तुः एक एव प्रलीयते।
एकः सुकृतं भुङ्क्ते एक एव च दुष्कृतम्॥

ऐसे पुण्यात्माजन भारतभूमिमें बार-बार जन्म लेते रहे हैं, जिन्होंने अपने सुकृतोंसे धराधामके समस्त मनुष्योंका मार्ग प्रशस्त किया है। इनमेंसे एक हैं भक्त प्रह्लादके पौत्र, विरोचनके पुत्र राजा बलि, जिन्होंने अपनी दानवीरतासे त्रिलोकीके स्वामीको भी स्ववशकर अनन्त सुयश प्राप्त किया।

सर्वसम्पदासम्पन्न राजा बलि निष्कामभावसे अपने गुरुप्रवर आचार्यशिरोमणि शुक्राचार्यके निर्देशनमें नर्मदानदीके किनारे भृगुकच्छ नामक स्थानपर यज्ञ सम्पन्न कर रहे थे। वस्तुतः निष्कामभावसे किया गया जप, तप, दान, यज्ञ, अनुष्ठान सर्वात्मस्वरूप परमात्माकी प्राप्तिका साधन बनता

है। हुआ भी यही कि राजा बलिके निष्काम यज्ञानुष्ठानसे स्वयं परमपिता परमेश्वर वामनरूप धारणकर उनके यज्ञस्थलमें परम प्रसन्नतासे पहुँच गये। प्रभु अलौकिक हैं, अमित तेज हैं, परम मनोरम हैं, परमानन्द हैं, अतएव उनके अद्वितीय दर्शनीय रूपसे आकृष्ट राजा बलिने परम प्रमुदित होकर उत्तम आसन देकर उनका स्वागत किया—

यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम्।
रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत्॥

(श्रीमद्भा० ८। १८। २६)

राजा बलिने भगवान् वामनसे अपने अभीष्टकी प्राप्तिके लिये आग्रह किया कि हे ब्रह्मचारिवटुक, आप जो भी वांछा करते हों—गोधन, स्वर्ण, सर्वसामग्री-सुसज्जित आवास, पवित्र अन्न, पेय, सम्पत्तिसम्पन्न ग्राम, तुरग, गज, बहुमूल्य रथादि आप मुझसे माँग लीजिये, इन सभीको आपके लिये सादर प्रदान करनेमें मुझे परम सुख प्राप्त होगा। यथा—

यद् यद् वटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे
त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये।
गां काञ्चनं गुणवद् धाम मृष्टं
तथान्नपेयमुत वा विप्र कन्याम्।
ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा
रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ॥

(श्रीमद्भा० ८। १८। ३२)

याचना अच्छी नहीं होती। जो हाथ दूसरोंके आगे माँगनेके लिये फैलाया नहीं जाता, वह हाथ परमेश्वरका हाथ होता है। फिर भी यदि याचना परहितमें हो या लोकहितमें हो, तो वह याचना सात्त्विक होती है।

भगवान् वामनकी याचना सात्त्विकी तथा लोकहितैषिणी थी तथापि उनकी याचनामें किंचित् प्रवंचन समाविष्ट था, अतः उन्होंने राजा बलिकी बड़ी प्रशंसा की और उनके पूर्वजोंके यश, दान, बल तथा महिमाका भरपूर गान किया, पुनश्च राजा बलिसे मात्र तीन पग पृथ्वीकी वांछा की—

तस्मात् त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात्।
पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र सम्मितानि पदा मम॥

(श्रीमद्भा० ८। १९। १६)

गुरुवरेण्य शुक्राचार्यद्वारा वामनभगवान्‌की यथार्थताका ज्ञान कराये जानेपर भी विरोचनपुत्र राजा बलिने अपने दानकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेका ही संकल्प लिया और जान-बूझकर भी अपनी सर्वसम्पदाका दान कर दिया।

भगवान् वामनके शरीरका विस्तार—असीम विस्तार और उनकी अद्भुत अलौकिक शारीरिक वृद्धि देखकर उनके द्वारा किये गये छलको परिज्ञातकर भी राजा बलि किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए। यही परमात्माकी असीम अनुकम्पा होती है कि सन्मार्गपर चलते हुए यदि सब कुछ चला भी जाय तो भी भगवत्कृपाप्राप्त व्यक्ति धैर्य नहीं खोते; क्योंकि उनका यश ही उनका जीवन होता है।

दो ही पगमें समस्त ब्रह्माण्डको मापकर भगवान् वामनने राजा बलिसे तीसरे पगहेतु धराकी याचना की तो राजा बलिने अपने शरीरको नाप लेनेके लिये कह दिया—

करोम्यृतं तन्न भवेत् प्रलम्भनं
पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। २)

दानी व्यक्तिसे भगवान् परम प्रसन्न होते हैं। राजा बलिकी दाननिष्ठाने परमेश्वरको इतना अधिक प्रसन्न किया कि वे स्वयं राजा बलिके रक्षकके रूपमें नियुक्त हो गये—

रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम्।
सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान्॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। ३५)

समस्त राज्य, भूमण्डल, वैभव और समस्त सम्पत्तिको दानमें देकर भी राजा बलि स्थिरचित्त एवं स्थितप्रज्ञ बने रहे और भगवान् वामनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

भजनं स्तवनं न कीर्तनं न हि मे भक्तिपरम्परा विभो।
कुरु मे शिरसीह सत्वरं निजपादं सुखदं भवच्छिदम्॥

(वामनचरितम् प्रणवरचनावली १३। १७)

भाव यह है कि हे विभो! मैं न तो भजन जानता हूँ, न ही आपका स्तवन-कीर्तन जानता हूँ और न मैं भक्त ही हूँ तब भी आप भवबन्धनको काटनेवाले तथा सुखदायी अपने चरणको मेरे सिरके ऊपर शीघ्र रखिये।

राजा बलिके समर्पणभावसे परम प्रमुदित भगवान् वामनने उनसे इच्छित वस्तु माँगनेको कहा तब राजा बलिने यही याचना की कि हे प्रभो! मैं कभी भी किसीसे कोई भी याचना न करूँ, बस मुझे यही दीजिये।

याचक निश्चय ही दाताके समक्ष दीन तो हो ही जाता

है, चाहे वह भगवान् ही क्यों न हों। अतएव भगवान् वामनद्वारा राजा बलिको कुछ-न-कुछ देनेके लिये जब विशेष आग्रह किया गया तो राजा बलिने भगवान्से जो माँगा, वह याचना धरतीके सभी मानवों एवं प्राणियोंद्वारा अवश्यमेव करणीय है। राजा बलिने भगवान्से कहा कि हे विभो! आप सदा सर्वदा मेरे समीप बने रहें, मुझे दर्शन देते रहें, जिससे कि आपकी माया मुझे मोहित न कर सके, यथा—

यावज्जीवामि देहेऽस्मिन् यावत्प्राणान् दधाम्यहम्।
निवासः सुतले यावत् तावत्स्यात् दर्शनं हि ते॥
प्रत्यहं मे गृहे भाव्यं वामनेन त्वया ध्रुवम्।
प्रातःकालं यदा नित्यं निद्रापाशं त्यजाम्यहम्॥

(वामनचरितम् १५। ३०-३१)

भाव यह है कि हे प्रभो! जबतक मेरे शरीरमें प्राण रहें, जबतक मैं सुतललोकमें रहूँ, तबतक मुझे आपका साक्षात् दर्शन होता रहे, आप मेरे घरमें बने रहें और जब मैं नींद छोड़कर प्रातःकाल उठूँ तो आपके नित्य दर्शन होते रहें।

अस्तु, राजा बलिने सर्वस्व दानकर भी सर्वस्वको प्राप्त किया। भौतिक सुख, सम्पत्तियाँ, पद, वैभव आदि सब नश्वर अतएव हेय हैं। इन्हें प्रसन्नतापूर्वक सुपात्रके लिये दान करनेसे उस परमसत्ताकी प्राप्तिका परमानन्द प्राप्त होता है, जो शाश्वत सुख और चिरन्तन शान्तिका प्रदाता है। '**सुपात्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन**' राजा बलि-जैसा लोकहिताय दान देकर हमें अपना जीवन धन्य बनाना चाहिये, यही इस दृष्टान्तका सार है।

विद्यादानकी महिमा और उसके विविध प्रकार

(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूड़ामणि)

विद्या शब्द 'विद् ज्ञाने' धातुसे क्यप् (य) प्रत्यय तथा टाप् (आ) करनेपर सिद्ध होता है। फलतः '**वेत्ति अनया इति विद्या**' अर्थात् जिससे सभी प्रकारका ज्ञान हो, वही विद्या है। विद्या मूलतः दो प्रकारकी होती है—पारलौकिकी और लौकिकी। पारलौकिकी विद्या अध्यात्मविद्या है, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें '**अध्यात्मविद्या विद्यानाम्**' कहकर प्रतिपादन किया है। वस्तुतः विद्या वही है, जिससे मुक्ति (मोक्ष) मिले, यह सामर्थ्य तो अध्यात्मविद्यामें ही निहित है '**सा विद्या या विमुक्तये।**' लौकिकी विद्याका भी यथानियम पालन करनेसे मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है। इसके अपवादस्वरूप काशीमें ज्ञान अथवा अज्ञानकी स्थितिमें भी मोक्ष प्राप्त होता है, कहा गया है—'**काश्यां मरणान्मुक्तिः ज्ञानाद्वा अज्ञानाद्वा।**'

विद्याकी महनीयताका वर्णन करते हुए योगिराज राजा भर्तृहरिने सुस्पष्ट रूपसे नीतिशतकमें कहा है कि 'विद्या ही मनुष्यका सर्वोत्तम स्वरूप है और विद्यासे हीन मनुष्य पशुके समान ही है।' यथा—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्याविहीनः पशुः॥

अर्थात् विद्या ही मनुष्यका सर्वोत्तम धन है। विद्या मनुष्यका सबसे श्रेष्ठ स्वरूप है। छिपा हुआ धन है, विद्या भोग, कीर्ति एवं सुखको देनेवाली है। विद्या गुरुओं (श्रेष्ठों)-का गुरु (महान्) है। इतना ही नहीं, विदेशयात्रामें विद्या परमबन्धु है तथा मनुष्यका उत्कृष्ट भाग्य है। फलतः विद्या राजाओंमें पूजित है, न कि धन। अतः विद्यासे रहित मनुष्य पशुतुल्य ही है। इसलिये मनुष्यको यथासम्भव विद्याका उपार्जन अवश्य करना चाहिये। इसके बिना मनुष्य और पशुमें कोई अन्तर नहीं रह जायगा।

हितोपदेशमें नारायणपण्डितने ठीक ही कहा है कि—

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
अहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा॥

इसका आशय यह है कि पण्डित लोग सब कालमें (कभी) चौरादिकोंसे नहीं चुराये जानेसे, अनमोल होनेसे और कभी क्षय न होनेसे सब पदार्थोंमेंसे उत्तम पदार्थ विद्याको ही कहते हैं और भी—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

अर्थात् विद्या मनुष्यको नम्रता देती है और नम्रतासे योग्यता, योग्यतासे धन, धनसे धर्म, फिर धर्मसे व्यक्ति सुख पाता है। कहनेका तात्पर्य है कि विद्या सर्वार्थसाधिका है।

विद्यादान अनेक प्रकारसे किया जा सकता है। अध्यापन तो प्रमुख है ही। छात्रको पुस्तक-दान देकर, छात्रवृत्ति, आवास एवं अन्यान्य सामग्री देकर भी विद्यादान किया जा सकता है। विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय और शोध-संस्थान आदिकी स्थापना करना भी विद्यादानका प्रमुख अंग है, जहाँ पढ़कर विद्यार्थी दाताके यशको सर्वत्र फैलाता है। शास्त्रोंमें ग्रन्थदानकी विशेष महिमा आयी है। नारदपुराणमें अठारहों पुराणोंके दानकी विधि तथा महिमा वर्णित है, ऐसे ही वेद, गीता, रामायण आदि ग्रन्थोंके दानकी भी विधि है।

धर्मशास्त्रके निबन्ध-ग्रन्थ अपरार्कमें कहा गया है कि जो पुण्य तीर्थयात्रा, यज्ञ और सहस्त्र कपिला (गाय) दान देनेमें होता है, वह समस्त फल छात्रको पुस्तक-दानमें होता है। छात्रवृत्ति देनेकी महिमा भी यहाँ कही गयी है- जैसे जो कोई व्यक्ति छात्रको भोजन एवं भिक्षा तथा वस्त्र देता है, वह अपनी समस्त कामनाओंकी पूर्ति कर लेता है। यह विद्यादानकी महिमा ही तो है। महाभारत और मनुस्मृतिमें कहा गया है कि जिस विद्यार्थी—छात्रका उदरस्थ अन्न जो कि दाताद्वारा दिया गया है, वह विद्या-अभ्यास करते-करते पच जाता है, उस दाता (खिलानेवाले)-का दस पुरुष पूर्व और दस पुरुष पर तथा अपना अर्थात् २१ पुरुषतक तर जाता है, जैसा कि कहा गया है—

कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं विद्याभ्यासेन जीर्यतः।
दश पूर्वान् दशपरांश्च तद्दानं तारयति॥

यह विद्यादानकी ही महनीय महिमा है। अतः विद्याभ्यासी छात्रको भोजन अवश्य कराना चाहिये। आजकल विद्यादानका स्वरूप दोषपूर्ण हो गया है, जिससे विद्याभ्यासी छात्रोंमें असन्तोष बढ़ रहा है। विद्या तो दानकी चीज है। इसकी महिमा अनन्त है, इसीलिये इसे दान नहीं, महादान नहीं, अपितु अतिदान कहा गया है—

'त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।'

गरुडपुराणने इसकी महिमा निरूपित करनेके अनन्तर निष्कर्ष रूपमें बताया है कि **'तस्माद्विद्याप्रदो लोके सर्वदः प्रोच्यते बुधैः।'** अर्थात् विद्वानोंके द्वारा विद्या प्रदान करनेवालेको लोकमें सब कुछ देनेवाला कहा जाता है।

दानकी महिमा

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

दान की महिमा निराली,
दान दो भाई! दान दो भाई!

ज्ञान दो, धन दान दो, जल-अन्न दो भाई! जल-अन्न दो भाई!
प्यार दो, सम्मान दो, श्रमदान दो भाई! श्रमदान दो भाई!
जो कमाया, जो बचाया, छोड़ जाना है! छोड़ जाना है!
दान में जो भी लुटाया, साथ जाना है! साथ जाना है!

दान की महिमा निराली,
दान दो भाई! दान दो भाई!

दो गाय को, खग-मीन को, इंसान को भाई! इंसान को भाई!
दो दीन को विद्यार्थी-विद्वान को भाई! विद्वान को भाई!
वक्त के मारे को दो, धनहीन को भाई! धनहीन को भाई!
अभिमान तज, सम्मान से दो प्यार से भाई! प्यार से भाई!

दान की महिमा निराली,
दान दो भाई! दान दो भाई!

हो विपत से कोई व्याकुल, थाम लो भाई! थाम लो भाई!
कर त्रुटि जो सिर झुका दे, क्षम्य वो भाई! क्षम्य वो भाई!
कोई आया हो शरण दो आसरा भाई! दो आसरा भाई!
ज्ञान का यदि हो पिपासु, ज्ञान दो भाई! ज्ञान दो भाई!

दान की महिमा निराली,
दान दो भाई! दान दो भाई!

वेद में, इतिहास में, हर शास्त्र में भाई! हर शास्त्र में भाई!
इंजील में, कुरान में, गुरुग्रंथ में भाई! गुरुग्रंथ में भाई!
हर धर्म में, हर पंथ में, हर देश में भाई! हर देश में भाई!
दान की महिमा निराली हर जगह छाई! हर जगह छाई!

पुराणग्रन्थोंके दानकी महिमा

(श्रीदशरथजी दीक्षित, एम०ए०)

['सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते' अर्थात् सभी दानोंमें ब्रह्मदान—विद्यादान—वेदादि सद्ग्रन्थोंका दान विशेष महत्त्वका है। स्मृतिकार यमका कहना है कि सद्ग्रन्थोंके दानसे समस्त पृथ्वीके दानका फल प्राप्त हो जाता है। यतः सद्ग्रन्थोंमें सदाचार, ज्ञान, भक्ति, उपासना, लोकव्यवहार और उन सभी बातोंका समावेश रहता है, जिनकी जानकारी आत्मकल्याणके लिये होना आवश्यक है। अतः इन ग्रन्थोंकी महिमा जानकर उन्हें दान करनेसे न केवल पुण्यार्जन होता है, बल्कि ग्रहण करनेवाले तथा उसके पारिवारिक जन आदि भी ग्रन्थके अध्ययन आदिसे लाभान्वित होते हैं, अतः ग्रन्थोंका दान सभीके लिये बड़ा ही उपयोगी है, दूसरी बात यह है कि ये सद्ग्रन्थ ऋषियोंकी आर्षवाणी हैं, इनमें भगवद्-सम्बन्धी बातें रहती हैं, इसीलिये ग्रन्थोंको भगवान्की वाङ्मयी मूर्ति कहा जाता है, जैसे भगवद्विग्रहकी आराधना-उपासना की जाती है, वैसे ही ग्रन्थोंका पूजन-आराधन आदि होता है, इसलिये इनका दान महान् कल्याणकारी है, इस दानको अतिदान कहा गया है। साथ ही ये सद्ग्रन्थ विद्यारूप हैं, सरस्वतीस्वरूप हैं, इसलिये इनकी विशेष महिमा है। इनका दान कैसे करना चाहिये, इसकी विशेष विधि शास्त्रोंमें निरूपित है, देवीपुराणमें इसका विशेष विधान बताया गया है। मत्स्यपुराण तथा नारदपुराण आदिमें पुराणोंके दानका विस्तृत वर्णन आया है। नारदपुराणमें अठारह पुराणोंका जो स्वरूप बताया गया है तथा इनका दान कब करना चाहिये और इनके दानका जो फल निर्दिष्ट है, उसे एक तालिकाद्वारा यहाँ निरूपित किया गया है—सम्पादक]

वह धर्मार्थ कृत्य, जिसमें श्रद्धायुक्त होकर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण, याचक, दीन-हीन भिक्षुक आदिको धन या जीवनोपयोगी वस्तुएँ सदाके लिये प्रदान की जाती हैं, सामान्यरूपसे दान कहलाता है। दान देनेवाला श्रद्धालु दानदाता, दानी, दानशील, दानवीर अथवा दानशूर कहलाता है। दान लेनेवाला उपयुक्त व्यक्ति दानपात्र माना जाता है।

मनुष्यके लिये दानसे बढ़कर कोई सुख नहीं है। दान भोग तथा मोक्षफल देनेवाला है। अन्नदान, जलदान, भूमिदान, स्वर्णदान, रजतदान, गोदान, तिलदान, गुड़दान, वस्त्रदान, लवणदान, दीपदान, कन्यादान, अश्वदान एवं विद्यादान आदि अनेक दान हैं।

शास्त्रोंमें पुराणादि सद्ग्रन्थोंके दानकी बड़ी महिमा आयी है। पुराणोंका दान ब्रह्मदान कहा गया है। यह सात्त्विक दान है। अपने कल्याणके लिये तथा परमात्माकी प्रसन्नता प्राप्त करनेहेतु धार्मिक भावनासे सत्पात्रको ये ग्रन्थ अर्पित किये जाते हैं। महर्षि व्यासजीद्वारा पुराणोंमें वेद, उपनिषदोंका सार संग्रहीत किया गया है। अतः इन ग्रन्थोंके दानका महान् फल है।

भागवतादि पवित्र ग्रन्थोंको सुन्दर, पवित्र वस्त्र आदिसे वेष्टितकर, अलंकृतकर सिंहासनके ऊपर विराजमानकर उनकी पूजाकर पूजित ब्राह्मणदेवताको देना चाहिये।

वेदाभ्यासी, स्वाध्यायी, तपस्वी, जितेन्द्रिय, श्रोत्रिय,

कुलीन, कर्मनिष्ठ, ईश्वरभक्त, ज्ञानपिपासु, विनयी, ज्ञानी एवं सन्तुष्ट ब्राह्मण ग्रन्थदानके सुपात्र होते हैं।

दानके रूपमें अर्पित किये जानेवाले पुराणग्रन्थको दानदाताद्वारा स्वयं पढ़कर, सुनकर, सुनाकर, लिखकर अथवा लिखवाकर शास्त्रोंद्वारा सुनिश्चित समयपर श्रद्धाभक्तिसे ओत-प्रोत हो शुद्ध हृदयसे सुपात्रको आदरपूर्वक दान देनेसे भोग-मोक्ष प्राप्त होता है।

पुराणग्रन्थोंसे सम्बन्धित दान-विवरण जो नारदपुराणमें उपलब्ध है, वह सारणीबद्ध प्रारूपमें यहाँ प्रस्तुत है—

पुराणग्रन्थोंका दान

नारदपुराणका दान

मार्कण्डेयपुराणका दान

कूर्मपुराणका दान

गरुडपुराणका दान

भविष्यपुराणका दान

वाराहपुराणका दान

अग्निपुराणका दान

स्कन्दपुराणका दान

पद्मपुराणका दान

क्रम-सं०	पुराण-नामावली	श्लोक-संख्या	माहका नाम जिसमें दान किया जाय	दानविधि	दानदाताको दानका फल	दानका सुपात्र	पुराण एवं विषय-सूचीके पठन या श्रवणका फल
१.	**ब्रह्मपुराण**	१०,०००	वैशाखमासकी पूर्णिमा	लिखकर जलधेनु, अन्न, वस्त्र, स्वर्ण आभूषणसहित दान	पापनाश, सूर्यचन्द्रकी शाश्वततातक ब्रह्म-लोकवास	पौराणिक सदाचारी ब्राह्मण	पाठक एवं श्रोताको सम्पूर्ण पुराणके पाठ एवं श्रवणका फल।
२.	**पद्मपुराण**	५५,०००	ज्येष्ठमासकी पूर्णिमा	लिखवाकर स्वर्णमय कमलके साथ सत्कार-पूर्वक दान करना	पापनाश, भोग, मोक्षप्राप्ति/ सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित वैष्णवधामको जाता है	पुराणज्ञ, योग-निष्ठ, धर्मात्मा या श्रेष्ठ द्विज	समूचे पुराणके पठन एवं श्रवणका फल।
३.	**विष्णुपुराण**	२३,०००	आषाढ़मासकी पूर्णिमा	लिखकर या लिखवा-कर घृतमयी धेनुके साथ श्रद्धाभक्तिपूर्वक दान करना	सूर्यके तुल्य तेजस्वी विमानमें बैठकर वैकुंठ-धाम निवास करता है	पुराणार्थवेत्ता विष्णुभक्त ब्राह्मण	सम्पूर्ण पुराणके पाठ एवं श्रवणका फल।
४.	**वायुपुराण** *	२४,०००	श्रावणमासकी पूर्णिमा	लिखकर गुड़मयी धेनुके साथ भक्ति-पूर्वक दान करना	१४ इन्द्रोंके राज्यकाल-तक रुद्रलोकमें सुखोपभोग	शिवभक्त कुटुम्बी ब्राह्मण	भक्तिपूर्वक सुनने-सुनानेवाला साक्षात् रुद्र है।
५.	**श्रीमद्भागवत-पुराण** *	१८,०००	भाद्रपदमासकी पूर्णिमा	स्वर्णसिंहासनके साथ श्रद्धाभक्तिपूर्ण हृदयसे दान करना	भोग, मोक्ष एवं भगवद्भक्तिकी प्राप्ति	भगवद्भक्त ब्राह्मण	समस्त पुराणके श्रवण-पठनका सर्वोत्तम फल।
६.	**नारदपुराण**	२५,०००	आश्विनमास-की पूर्णिमा	सात धेनुओंके साथ दान	मोक्षप्राप्ति, ब्रह्मलोक-प्राप्ति,	श्रेष्ठ धर्मात्मा संतुष्ट ब्राह्मण	स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है।
७.	**मार्कण्डेयपुराण**	९,०००	कार्तिकमासकी पूर्णिमा	लिखकर हाथीकी स्वर्णमयी प्रतिमाके साथ दान करना	ब्रह्मपदकी प्राप्ति	दुर्गाभक्त, जितेन्द्रिय ब्राह्मण	मनोवांछित फल प्राप्त करता है।
८.	**अग्निपुराण**	१५,०००	मार्गशीर्षमास-की पूर्णिमा	लिखकर स्वर्णमय कमल एवं तिलधेनु-के साथ	स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा	पौराणिक ब्राह्मण	इहलोक और पर-लोकमें मोक्षप्राप्ति।
९.	**भविष्यपुराण**	१४,०००	पौषमासकी पूर्णिमा	लिखकर गुड़धेनुके साथ स्वर्ण, वस्त्र, माला, आभूषण, धूप, दीपसे पूजनकर दान करना	सर्वसिद्धिप्रदायक, भयंकर पातकोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकको जाता है	पुराणवेत्ता ब्राह्मण	भोग एवं मोक्षकी प्राप्ति।
१०.	**ब्रह्मवैवर्तपुराण**	१८,०००	माघमासकी पूर्णिमा	लिखकर प्रत्यक्ष धेनु-के साथ दान करना	संसार-सागरसे मुक्ति	श्रोत्रिय, कुलीन ईश्वरभक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण	भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे अभीष्ट फल की प्राप्ति।
११.	**लिंगपुराण**	११,०००	फाल्गुनमास-की पूर्णिमा	लिखकर तिलधेनुके साथ दान	पापनाश, उत्तम भोग, मोक्षकी प्राप्ति तथा शिवलोक एवं विष्णु-लोककी प्राप्ति होती है	तपस्वी, जितेंद्रिय शिवभक्त, वेदाभ्यासी ब्राह्मण	शिवलोक एवं शिवभक्तिकी प्राप्ति होती है।
१२.	**वाराहपुराण**	२४,०००	चैत्रमासकी पूर्णिमा	लिखकर सोनेकी गरुड़-की प्रतिमा बनवाकर तिलधेनुके साथ भक्ति-पूर्वक पूजनकर दान	देवताओं और महर्षियोंसे वन्दित होकर भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त करता है	सन्तुष्ट विनयी ज्ञानी, शान्त, विष्णुभक्त ब्राह्मण	भगवान् विष्णुकी भक्तिकी प्राप्ति।

* अष्टादश महापुराणोंमें वायुपुराणके स्थानपर शिवपुराण तथा भागवतके स्थानपर देवीभागवतका नाम भी आया है। नारदपुराणके अनुसार अठारह पुराणोंकी दी गयी यह श्लोक-संख्या वर्तमानमें यथावत् रूपमें उपलब्ध नहीं हो पाती।

क्रम सं०	पुराण-नामावली	श्लोक-संख्या	माहका नाम जिसमें दान किया जाय	दानविधि	दानदाताको दानका फल	दानका सुपात्र	पुराण एवं विषय-सूचीके पठन या श्रवणका फल
१३.	**स्कन्दपुराण**	८१,०००	माघ या चैत्रकी पूर्णिमा	लिखकर सुवर्णमय त्रिशूलके साथ सत्कार एवं पूजन करके	भगवान् शिवके लोकमें आनन्दका अधिकारी होता है।	शिवभक्त ब्राह्मण	भगवान् शिवकी कृपा प्राप्त होती है।
१४.	**वामनपुराण**	१०,०००	शरद् पूर्णिमा, विषुव संक्रान्ति	लिखकर घृतधेनुके साथ दान	दाताके पितरोंको स्वर्ग तथा दाताको भगवान् विष्णु-के परमपदकी प्राप्ति	वेदवेत्ता ब्राह्मण	पाठक एवं श्रवण-कर्ता दोनोंको सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति।
१५.	**कूर्मपुराण**	१७,०००	अयनारम्भ के दिन	लिखकर सोनेकी कच्छपकी प्रतिमाके साथ दान	धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों फलोंकी प्राप्ति	लोभहीन, उत्तम, सदाचारी ब्राह्मण	स्वेच्छानुसार भोगों-को भोगकर विष्णु-लोकका वासी।
१६.	**मत्स्यपुराण**	१४,०००	विषुवयोग—जब दिन-रात समान हों	लिखकर सुवर्णके मत्स्य और गोके साथ दान	भगवान् विष्णुके परम-धामकी प्राप्ति	जितेन्द्रिय, उत्तम ब्रह्मज्ञानी, वेदाध्यासी ब्राह्मण	आयुष्मान्, पुत्रवान्, धनवान् होता है।
१७.	**गरुडपुराण**	१९,०००	चैत्रमासकी पूर्णिमा	लिखकर दो सुवर्णमयी हंसकी प्रतिमाके साथ दान	स्वर्गलोककी प्राप्ति	सुयोग्य, कुलीन, कुटुम्बी ब्राह्मण	भोग एवं मोक्षकी प्राप्ति
१८.	**ब्रह्माण्डपुराण**	१२,०००	वैशाख-पूर्णिमा विषुवयोग,	लिखकर, सोनेके सिंहासनपर रख, वस्त्र-से आच्छादित करके पूजन आदिके साथ दान	ब्रह्मलोककी प्राप्ति	स्वाध्यायप्रेमी, विनयी, संतुष्ट सदाचारी ब्राह्मण	सम्पूर्ण पुराणके पठन एवं श्रवणका फल

जो मनुष्य पुराणोंका पूजनकर एकाग्रचित्त होकर दान करता है, वह आयु, आरोग्य, स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

प्राचीन कालमें पुराणोंका दान लिखकर या लिखवाकर ही किया जाता था। उस कालमें आजके समान मुद्रणालय नहीं थे। वर्तमानमें मुद्रणालयोंकी प्रचुरता है। पुराणादि ग्रन्थ मुद्रणालयोंसे प्रकाशित होते हैं। अतः दानदाता धर्मप्रेमीको ग्रन्थोंको दूकानोंसे क्रय करके उनकी महिमाको समझते हुए पुनीत उद्देश्यसे योग्यतम वेदवेत्ता, पवित्रात्मा, धर्मात्मा ब्राह्मणको श्रद्धाभक्तिसे दान करना चाहिये।

प्रत्येक हिन्दू गृहस्थका धार्मिक कर्तव्य है कि वह महर्षि वेदव्यासजीद्वारा प्रतिपादित पुराण-ग्रन्थों, महाभारत तथा अन्य आर्षग्रन्थों यथा—वाल्मीकिरामायण, श्रीरामचरित-मानस, योगवासिष्ठ, श्रीमद्भगवद्गीता आदि ईशभक्ति-भावनाको जाग्रत् करनेवाले, ईश्वरकी विद्यमानता तथा अस्तित्वका बोध करानेवाले ग्रन्थोंको अपने घरमें स्थान दे। इससे परिवारके सदस्यों, बालकोंके मन-मस्तिष्कपर पवित्र प्रभाव पड़ेगा और वे संस्कारित होकर राष्ट्र और समाजका कल्याण करनेमें सहभागी सिद्ध होंगे।

कृष्णं नारायणं वन्दे कृष्णं वन्दे व्रजप्रियम्।
कृष्णं द्वैपायनं वन्दे कृष्णं वन्दे पृथासुतम्॥

तीन अतिदान

(श्रीचैतन्यकुमारजी, बी०एस-सी०, एम०बी०ए०)

राजा युधिष्ठिरके प्रश्नोंके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने
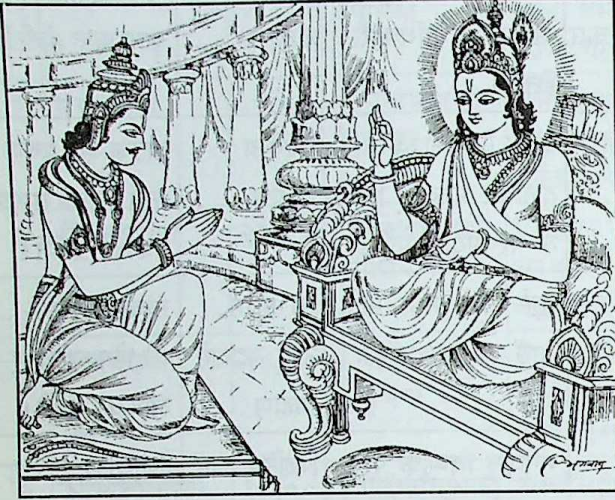
कहा—महाराज! गौ, भूमि और सरस्वती (विद्या)—ये तीन दान सभी दानोंमें श्रेष्ठ एवं मुख्य हैं। ये अतिदान कहलाते हैं—**'त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।'**

गाय, भूमि और विद्या—ये समान नामवाली हैं। इन तीनोंका दान करना चाहिये। इन तीनोंके दानका फल एकसमान है, क्योंकि ये तीनों मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करती हैं—

तुल्यनामानि देयानि त्रीणि तुल्यफलानि च।
सर्वकामफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती॥

(महा० अनु० ६९।४)

गायोंके दुहने, पृथ्वीको जोतकर अन्न उपजाने तथा विद्याके पठन-पाठनसे सात कुलोंका उद्धार होता है।

(१) गोदान—सुपुष्ट, सुन्दर, सवत्सा, पयस्विनी तथा न्यायपूर्वक अर्जित धनसे प्राप्त गौ श्रेष्ठ ब्राह्मणको देनी चाहिये। वृद्धा, रोगिणी, वन्ध्या, अंगहीना, मृतवत्सा, दुःशीला और दुग्धरहिता तथा अन्यायपूर्वक प्राप्त गौका दान नहीं करना चाहिये। किसी पुण्यतिथिको स्नान-तर्पणके उपरान्त भगवान् शिव और विष्णुका दुग्ध एवं घीसे अभिषेक करनेके बाद सोनेके सींगयुक्त, चाँदीके खुरवाली, कांस्यके दुग्धदोहनपात्रसहित सवत्सा गौका पुष्प आदिसे भलीभाँति पूजनकर गौको पूर्व या उत्तराभिमुख करनेके अनन्तर दक्षिणासहित ब्राह्मणको उस गौका दान करना चाहिये तथा प्रार्थनापूर्वक गौकी इस प्रकार प्रदक्षिणा करनी चाहिये—

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

गायकी पूँछ, हाथीकी सूँड़ तथा घोड़ेका कान पकड़कर दान करना चाहिये। जब ब्राह्मण गाय लेकर जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे दस कदमतक जाना चाहिये। विधिपूर्वक जो व्यक्ति गोदान करते हैं, उन्हें सभी प्रकारके अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं तथा सात जन्मोंमें किये गये पापका तत्क्षण नाश होता है। गोदान करनेवाला चतुर्दश इन्द्रोंके समय अर्थात् एक कल्पतक स्वर्गका सुख भोगता है। गोदान ही एक ऐसा दान है, जो जन्म-जन्मान्तरतक फल देता रहता है।

(२) भूदान—पृथ्वी अक्षय एवं अचल है। वस्त्र, रत्न, पशु, धान-जौ आदि नाना प्रकारके अन्न पृथ्वीसे ही प्राप्त होते हैं। अतः भूदान करनेवाला मनुष्य सदा समस्त प्राणियोंमें सबसे अधिक अभ्युदयशील होता है।

हे युधिष्ठिर! इस जगत्में जबतक पृथ्वीकी आयु है तबतक भूदान करनेवाला मनुष्य समृद्धिशाली रहकर सुख भोगता है। अतः भूदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है—

यावद् भूमेरायुरिह तावद् भूमिद एधते।
न भूमिदानादस्तीह परं किंचिद् युधिष्ठिर॥

(महा० अनु० ६२।४)

जो भूदान करता है, वह पितृलोकमें रहनेवाले पितरों तथा देवताओंको भी तृप्त कर देता है। जबतक उसके द्वारा प्रदत्त भूमिपर अन्न उपजते रहते हैं, तबतक भूमिदाता विष्णुलोकमें पूजित होता है, भूदान करनेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

भूदान देकर वापस लेनेवालोंको यमदूत वारुणपाशोंसे बाँधकर पूय तथा शोणितसे भरे कुण्डोंमें डालते हैं। किसी ब्राह्मणको भूमिका दान देकर जो व्यक्ति उस भूमिका हरण करता है, उसे कुम्भीपाक नरकमें पकाया जाता है।

(३) विद्यादान—वेदविद्याका दान देकर मनुष्य पापरहित हो ब्रह्मलोकमें प्रवेश करता है। जो योग्य शिष्यको ब्रह्मज्ञान प्रदान करता है, उसने तो मानो सप्तद्वीपवती पृथ्वीका

ही दान कर दिया। महाभारत, पुराण, रामायण आदिको लिख करके उसका दान करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति कर लेता है। जो वेद आदि शास्त्रका अध्यापन करता है, वह स्वर्गगामी होता है। जो उपाध्यायको वृत्ति और छात्रोंको भोजन आदि देता है, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षके रहस्यदर्शी उस मनुष्यने क्या नहीं दे दिया—

वित्तं दद्यादुपाध्याये छात्राणां भोजनादिकम्।
किमदत्तं भवेत्तेन धर्मकामादिदर्शिना॥

(अग्निपु० २११। ५५)

विद्यादानसे मनुष्य वही फल प्राप्त करता है, जो सहस्र वाजपेय यज्ञोंमें विधिपूर्वक दान देनेसे मिलता है। जो भी व्यक्ति शिवालय, विष्णुमन्दिर तथा सूर्यमन्दिरमें धर्मग्रन्थका वाचन करता-कराता है, वह सभी दानोंका फल प्राप्त कर लेता है—

शिवालये विष्णुगृहे सूर्यस्य भवने तथा।
सर्वदानप्रदः स स्यात् पुस्तकं वाचयेत्तु यः॥

(अग्निपु० २११। ५७)

संसारमें जो ब्राह्मणादि चार वर्ण और ब्रह्मचर्यादि चार आश्रम हैं, वे तथा सभी देवता विद्यादानमें प्रतिष्ठित हैं। विद्या कामधेनु है तथा विद्या ही उत्तम नेत्र है। वेदांगोंके दानसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है तथा धर्मशास्त्रोंके दानसे दाता प्रमुदित होता है। जो शिक्षादान करते हैं, उन्हें पुण्डरीकयागका फल प्राप्त होता है।

उपर्युक्त वर्णित तीन दानोंमें भी गोदानको श्रेष्ठ कहा गया है। गौएँ सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता कहलाती हैं, वे सबको सुख पहुँचाती हैं।

गौएँ सभी भूतप्राणियोंकी माता हैं तथा सबको सुख देती हैं। जिन्हें अपने अभ्युदयकी इच्छा है, उन्हें गौकी नित्य प्रदक्षिणा करनी चाहिये—

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।
वृद्धिमाकांक्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः॥

(महा०अनु० ६९। ७)

वस्तुतः गौएँ मंगलकी आधारभूत देवियाँ हैं, अतः इनकी सदा पूजा करनी चाहिये।

दानके विविध आयाम

(श्रीअशोकजी चितलांगिया)

सनातन संस्कृतिमें भोगकी अपेक्षा त्यागका स्थान उच्च एवं अत्यन्त गरिमामय है। अपने लिये जिये तो वह क्या जिन्दगी? अपने लिये तो पशु भी जीते हैं, औरोंके लिये जीना ही तो मानवमात्रका जीवन है। वैदिक सनातन हिन्दूधर्मका मूल आदर्श है दान। इसीलिये तो भारतीय वाङ्मय दानकी महिमासे ओतप्रोत है। वेदोंने हमें निर्देश दिया कि हे मनुष्यो! अपनी युक्ति एवं पौरुषसे सैकड़ों हाथोंसे धनार्जन करो और हजारों हाथोंसे उसे बाँट दो। अर्थात् धन कमानेके लिये सदैव तत्पर रहो और बिना कंजूसी किये एवं अवसर गँवाये खुले हाथोंसे सुपात्रको उसका दान करो। पुराणोंने कहा—**यः परार्थे परित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणः** (पद्मपुराण, पातालखण्ड) अर्थात् दूसरोंके हितके लिये धनका परित्याग या दान करना, अक्षय मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला होता है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया कि अपनी आवश्यकतासे अधिक धन संग्रह करनेवाला चोर है, वह दण्डका भागी है अर्थात् जितनेसे जीवन-निर्वाह हो, उतना ही धनका भोग पर्याप्त है, बाकी धनको लोककल्याणार्थ उत्सर्ग कर देना चाहिये। कितनी सन्तुलित है धनके वितरणकी परिकल्पना।

संग्रहात्मक प्रवृत्तिके कारण बढ़ रही असमानतासे ही आजका विश्व अशान्ति एवं भयसे त्रस्त है। धनके साथ अधिकारोंको भी केन्द्रित न करनेकी शास्त्रोंकी प्रेरणा एवं निर्देशके पीछे शान्ति एवं सद्भावरूपी अनुभूतिका अजस्र स्रोत छिपा हुआ है। धनका अपरिग्रह (असंग्रह) ही अशान्ति एवं भयके निवारणका रामबाण उपाय है। इसीलिये अपनी आवश्यकताओंको सीमित एवं नियन्त्रित रखनेका उद्घोष करनेवाले हमारे ऋषि-मनीषियोंने सन्तोष एवं दानरूपी त्याग-जैसे अमोघ उपायोंको सुख-शान्तिका

आधार बताया है। ज्ञान एवं सम्पदाके भेदभावरहित नि:स्वार्थ-वितरणसे ही विश्वशान्तिका मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

हम जो कुछ भी यत्नद्वारा प्राप्त करते हैं, उसमें भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे बहुतोंका सहयोग एवं सद्भाव रहता है। उसके लिये दानरूपी धर्मका अवलम्बन करके ही हम उन सभीके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन कर सकते हैं अर्थात् उनके उपकारका बदला चुका सकते हैं। सम्भव है युक्तियुक्त अर्जनकर उसे उत्साहके साथ विसर्जन (उत्सर्ग) करनेकी शिक्षाके पीछे ऐसे ही रहस्य निहित हों।

एक कहावत है—***पूत सपूत तो क्यों धन संचे। पूत कपूत तो क्यों धन संचे॥*** अर्थात् सन्तान लायक या योग्य हो तो भविष्यके लिये धन-संचय करनेकी जरूरत नहीं रहती और यदि सन्तान लायक नहीं हो तो भी सम्पत्ति संचय करना उपयुक्त नहीं; क्योंकि अपनी मृत्युके बाद उस धनका दुरुपयोग होना निश्चित ही है।

अपने हाथोंसे सुपात्रको दान देनेसे आत्मिक सुखके साथ लोकमें दीर्घकालिक कीर्ति भी बनी रह सकती है। धनके भोगका परिणाम अशान्ति एवं दुःखके रूपमें तो मिलता ही है। अतिशय भोगकी प्रवृत्तिसे अन्योंके जलनका कारण बन अपयशका भागी बनना पड़ता है। यदि संग्रहीत धनका अपने जीवनकालमें कृपण (कंजूस) बन दान भी नहीं कर सके, न ही भोग कर सके तो बादमें धन नाशरूपी गतिको प्राप्त होता है, जिससे परलोकमें भी अशान्ति एवं दुःख भोगना पड़ता है। केवल दान ही धनकी शुक्ल गति है। सादे एवं सामान्य-जीवनके निर्वाहके लिये अति आवश्यकको छोड़कर बाकी रहे अतिरिक्त धनको जरूरतमन्दोंकी सेवामें समर्पित करनेमें ही शान्ति, आनन्द, श्री, समृद्धि एवं सच्चा सुख समाया है। यही तत्त्ववेत्ता ऋषियों, दार्शनिकोंका सर्वसम्मत मत है।

सनातन दर्शनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस प्रकार चार पुरुषार्थ बताये गये हैं। अर्थके सम्बन्धमें कहा गया है कि मनुष्यको न्यायोचित तरीकेसे धन संग्रह करनेमें आलस्य नहीं करना चाहिये, न ही धनका प्रमाद ही करना चाहिये। सुपात्रको दान ही धर्म है और धर्मपूर्ण अर्थ ही मोक्षका साधन बन सकता है।

दान त्याग है, दान परोपकार है, दान सहयोग है, दान सहानुभूति है, दान उदारता है, दान सदाचार है, दान कृतज्ञता-ज्ञापन है, दान धनका सदुपयोग है। दानके पवित्र प्रवाहके चलनेसे मनुष्य धनादि पदार्थोंमें आसक्त नहीं होता। दान स्वार्थवृत्तिका निर्मलीकरण है। दान पापसे बचानेवाला सर्वोत्तम साधन है। दान पुण्य-अर्जनका माध्यम है। दान धन-शुद्धिका पवित्र उपाय है। दान भौतिक उन्नतिका सोपान है। दान आध्यात्मिक उन्नतिका मार्ग है। दान जरूरतमन्दोंके लिये संजीवनी है। दान अध्ययन, यज्ञ, तप और स्वाध्यायकी तरह आत्मशुद्धिका श्रेष्ठ साधन तथा सत्कर्म है। अभिमानरहित दानसे अन्तःकरण पवित्र होता है। दानसे दिव्यता आती है। दान मानवीय संवेदनाका प्रतिबिम्ब होनेसे मानवताका परिचायक है। दान मानवमात्रके लिये सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीद्वारा प्रदत्त शान्तिप्रद अमोघ साधन है। धरती दानशील व्यक्तियोंके दमपर ही टिकी हुई है। **'दानमेकं कलौ युगे'** के अनुसार दान कलियुगका परम कल्याणकारी साधन है। दरिद्रोंकी सेवा ही नारायणसेवा है।

दानका प्रयोजन—सामवेदमें कहा है कि हे मनुष्यो! अपने हृदयको दयाकी भावनासे इतना सींचो कि वह दया तुम्हारे हृदयसे बाहर प्रवाहित होने लगे और दुःखियोंके समीप पहुँचकर उनके जीवनको सुखी बनाये। सब यज्ञ दानशीलतासे ही चलते हैं। अतः हम अदानशीलताको दूर करें अर्थात् दानशील बनें। दान करना अर्थात् देना, स्वार्थको छोड़ना है। दान देनेका उद्देश्य यह है कि दान लेनेवालोंके हार्दिक आशिषसे दाताको प्राणशक्तिकी मजबूती, कीर्तिरूपी दीर्घजीवन, भोग-वासनाओंके आक्रमणसे सुरक्षा-कवच, क्रियाशक्ति तथा वेग अर्थात् ऊर्जा प्राप्त होती रहे। प्रत्युपकार अर्थात् बिना स्वार्थके निःस्पृह बुद्धिसे देश, काल और सत्पात्रका विचारकर दिया जानेवाला दान ही सात्त्विक एवं श्रेष्ठ कहलाता है।

पहले प्रायः परोपकारार्थ, कर्तव्यबोधवश या पुण्यार्जन करनेके लिये दान दिया जाता था। आजकल सामान्यतया करुणापूर्ण परोपकारी वृत्ति, प्रेम या स्नेहवश, प्रेरणावश, लज्जावश, लोभवश तथा डर-त्रासके चलते विविध रूपमें धनका उत्सर्ग किया जाता है। दबाववश दिया जानेवाला धन अस्तित्व-रक्षाकी मजबूरीमात्र है, वह दान नहीं है। सभी प्रकारके दानोंमें अभयदान (प्राणदान) ही सर्वश्रेष्ठ दान है।

धनके दानको गुप्त रीतिसे करना उत्तम माना जाता रहा है।

ऐसे करें दान—अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुरूप स्वेच्छासे, कृतज्ञभावसे, मधुर वाणीके साथ, श्रद्धापूर्वक एवं संकोचपूर्वक अर्थात् सारे धनके वास्तविक मालिक तो भगवान् ही हैं, वे ही देनेवाले और वे ही स्वयं लेनेवाले हैं मैं तो बस; निमित्तमात्र हूँ, यों विचारकर दान करनेके लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये। याद रहे, मनुष्य लक्ष्मीरूप धनका असली मालिक नहीं, बल्कि सेवक-मात्र है।

कैसा धन, कौन कितना करे दान—केवल भोग भोगना ही मानवजीवनकी सार्थकता नहीं है। धन-सम्पत्ति, जीवननिर्वाहका आवश्यक साधन जरूर है, किंतु साध्य अर्थात् सब कुछ नहीं है। धनके संग्रहसे भ्रष्टाचार एवं विवादोंका ही जन्म होता आया है। जैसा कि श्रीमद्भागवतमें धनके पन्द्रह दोष अर्थात् दुष्प्रभाव बताये गये हैं। अतः सामान्यजनको न्यायपूर्वक अर्जित किये गये धनका दशमांश अर्थात् दश प्रतिशत दान करना चाहिये। जो वैभवशाली, अधिक धनवान् हो, उसे कमाईका कम-से-कम पाँचवाँ हिस्सा अर्थात् बीस प्रतिशत दान-कार्यमें लगाना चाहिये।

अन्यायसे अर्जित धनके दानसे न तो लक्षित कार्य ही सफल हो पाता है, न ही लोकमें कीर्ति स्थिर रहती है और न परलोकमें कोई फल प्राप्त होता है अर्थात् शुद्ध आयके अतिरिक्त धनका दान परिणाममें नुकसानदेह ही होता है। धनको व्यापार आदिसे बढ़ाना और अच्छी तरह न्यायपूर्वक बढ़ाये गये धनका दान करना ही उपयुक्त होता है।

किसी भी स्थितिमें अपनी जीविकाके साधनोंका विनाश न हो, इसका ध्यान रखते हुए ही दान करना चाहिये। अत्यन्त कठिनाईपूर्वक जीवनयापन करनेवालोंके लिये दान करनेका विधान नहीं है। अपने विपन्न स्वजनको सहयोग न कर विप्रोंको दिया जानेवाला दान धर्म न होकर अधर्म हो जाता है। अतः दान देनेवालोंको चाहिये कि पहले वे अपने आर्थिक रूपसे कमजोर स्नेही स्वजनका ही सहयोग करें।

दानकी पात्रता—दान ऐसे पात्रको करना चाहिये जिसको देनेसे आनन्दका अनुभव हो। दिये हुए दानका दुरुपयोग न हो, इसका ध्यान रखते हुए ही दान देना चाहिये। हितोपदेशमें कहा गया है कि निर्धनोंका पालन करे, धनिकोंको दान मत दो; क्योंकि रोगीको ही औषधि देना हितकारी है, निरोगीको औषधि देना व्यर्थ हो जाता है। जैसे सूखे क्षेत्रमें वृष्टिका होना और भूखेको भोजन देना ही लाभदायक होता है, उसी प्रकार धनहीनको दान देना ही लाभदायक है। अतः दुर्बल, विकलांग, शारीरिक तथा मानसिक रोगोंके शिकार, साधनहीन अथवा दरिद्र, पीड़ित, कार्य करनेमें अक्षम, शोषित, भूख-प्याससे त्रस्त—ऐसोंको सुपात्र समझकर खिलाने, पहनाने, ओढ़ाने आदिमें बेहिचक तत्पर रहना चाहिये। इसीमें दानकी सफलता है। यह परोपकार और दया भावका दान है, सेवाका दान है।

दैवी-प्रकोप अर्थात् संकटके समय जैसे बाढ़, सूखा-अकाल, अग्निकाण्ड, वज्रपात, महामारी, दुर्घटना-जैसे आकस्मिक आपद्-विपद् आदिमें जरूरतमन्दोंको यथाशक्य तन, मन, धनसे सहयोग करना-कराना मानवमात्रका कर्तव्य है, धर्म है। ऐसे संकटोंसे पीड़ित हर कोई दानका योग्य पात्र है।

समष्टिके हितमें अपना समय, श्रम एवं ज्ञान समर्पित करनेवालोंका भरण-पोषण करना, कराना समाजका दायित्व है। ध्यान रहे, ज्ञानीका सम्मान भले ही हो, किंतु दानरूपी धर्मसे वैसे विद्वान् ब्राह्मणोंका ही पोषण होना चाहिये, जो निःस्वार्थ भावसे अपनी सनातन संस्कृति एवं संस्कारके अनुकूल आचरण करने-करानेवाले हों।

बलिवैश्वदेवके रूपमें नित्यदान, विशेष पर्वों तथा अवसरोंपर नैमित्तिकदान, कामनाविशेषकी पूर्तिके लिये काम्यदानका विधान है। विविध क्षेत्रमें सेवा प्रदान कर रहे धर्मशाला, मन्दिर, गोशाला, अन्नक्षेत्र, अनाथाश्रम, चिकित्सालय आदि दानरूपी पवित्र सद्वृत्तिके जीते-जागते अनुकरणीय उदाहरण हैं।

ऐसे भी बना सकते हैं धन, विद्या, ज्ञान एवं श्रमके दानको विशिष्ट—(१) हरेक पारिवारिक खुशीके अवसरपर जैसे परिवारमें सन्तान-जन्म, जन्म-दिवस, सगाई, विवाह, विवाहकी वर्षगाँठ, सफलताकी खुशी आदिमें निःस्वार्थ सेवाव्रती सामाजिक संघ-संस्थाओंको दान देनेकी परम्परा बनायी जाय।

(२) तीर्थयात्राके क्रममें मन्दिर, धर्मशाला आदिके

नवनिर्माण, जीर्णोद्धार आदिके लिये यथाशक्य दान करें-करायें।

(३) पर्व, त्यौहार, विशेष स्नान आदिमें सत्पात्रको अन्न, वस्त्र, द्रव्य आदिका दान करें।

(४) स्नेही स्वजनोंकी स्मृतिको दीर्घकालतक बनाये रखनेके लिये छात्रवृत्ति, अन्न-जल-दान, गोग्रास, औषध, चिकित्सकीय सेवा, वस्त्र आदि प्रदान करनेके लिये वित्तका समुचित प्रबन्ध करें-करवायें।

(५) शादी-विवाहमें फिजूलखर्च रोककर, रकम बचाकर सम्भव हो तो उसका विपन्न वर्गकी लड़कियोंका विवाह करनेमें सदुपयोग करें, ऐसा सम्भव न हो तो उनके विवाहमें सहयोगके रूपमें प्रदान करें।

(६) जिस गाँव/शहरमें बारात लेकर जायँ, उस क्षेत्रके धर्मार्थ संचालित संघ, संस्था, गौशाला, मन्दिरोंके लिये प्रतीकात्मक रूपमें नहीं; बल्कि अपने स्तरकी उपयुक्त राशि भेंट करनेकी परिपाटी बनायें।

(७) धार्मिक अनुष्ठानों एवं जनकल्याणकारी कार्योंमें उत्साहके साथ भाग लें। यथाशक्य तन, मन, धनसे सहयोग प्रदान करें-करायें।

(८) अपने अनुभव अथवा ज्ञानको योग्य पात्रको उचित रूपमें प्रदान करें।

(९) अवसरविशेषमें सत्पात्रका अभाव हो तो मानसिक संकल्पकर बादमें भी दान-द्रव्य सत्पात्रको देना न भूलें।

(१०) कुछ क्षणकी सन्तुष्टिके लिये किसी जीवकी मृत्युका कारण न बनें।

(११) विशेष दानकी जानकारी स्नेही स्वजनको अवश्य दें, ताकि उनमें भी दानके भावका उदय हो सके।

(१२) अन्योंको प्रेरणा मिल सके, इसलिये वर्तमान परिपाटीके अनुसार नाम गुप्त न रखकर भी सहायता देनेमें संकोच न करें।

(१३) बच्चोंके हाथोंसे दान दिलवाकर उनमें बाँटने तथा दान देनेका संस्कार-रोपण करें।

कन्यादान, आरोग्यदान, अर्जित पुण्यका दान, आश्रयदान, तुलादान, स्वर्णदान, गोदान, अन्न-वस्त्र-भोजनदान, भूमिदान, क्षमादान, विद्यादान, जलदान, दीपदान, शय्यादान, गृहदान, प्रायश्चित्तहेतु किये जानेवाले दानोंके अलावा वर्तमान समाजमें छात्रवृत्तिदान, रक्तदान, उपहारप्रदान, श्रमदान, परामर्शदान, अनुदान तथा विविध सहयोग दानके रूपमें प्रचलित हैं। ये सभी परम्परागत रूपसे किये जानेवाले विविध दानोंके ही रूप-स्वरूप हैं।

राजा हरिश्चन्द्रद्वारा किये गये दानकी प्रतिष्ठा, दैत्यराज बलिके सर्वस्व समर्पणकी प्रसिद्धि बलिदानके रूपमें, देश-धर्मके लिये चित्तौड़गढ़के भामाशाहका न्यौछावर दानकी अनन्त अटूट शृंखलाके प्रेरक एवं आदर्श स्वरूप हैं। ऐसे दानवीरोंके स्तुत्य कृत्यका अनुसरण ही कल्याणका हेतु है।

अतः भगवत्कृपासे प्राप्त साधन, परिस्थिति और समयका विविध रूपोंमें परार्थ उत्सर्ग या विनियोगकर सनातन संस्कृतिका एक प्रमुख स्कन्ध दानरूपी परम धर्मका परिपालन करने-करानेमें ही मानवजीवनकी सार्थकता है।

दानं परं प्रशंसन्ति दानमेव परायणम्। दानं बन्धुर्मनुष्याणां दानं कोशो ह्यनुत्तमम्॥
दानेन शत्रून् जयति व्याधिर्दानेन नश्यति। दानेन लभ्यते विद्या दानेन युवतीजनः॥
दानेन भूतानि वशीभवन्ति दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्। परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैर्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥

लोग दानकी और दानपरायण व्यक्तिकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। दान मनुष्योंका बन्धु है, दान श्रेष्ठ खजाना है। दानसे शत्रुओंको जीता जा सकता है, रोग भी दान देनेसे नष्ट हो जाते हैं, दानसे विद्या प्राप्त होती है और दानसे उत्तम सुलक्षणा भार्या प्राप्त होती है। दानसे सभी प्राणी वशमें हो जाते हैं, दानसे वैर भी शान्त हो जाते हैं, दानके द्वारा पराया भी बन्धु बन जाता है और दान सभी प्रकारके व्यसनोंको दूर कर देता है।

क्षमादान

(साध्वी निर्मलाजी)

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २।६३)

अर्थात् क्रोधसे सम्मोह (कर्तव्य-अकर्तव्य-विषयक अविवेक) उत्पन्न होता है, जिससे स्मृति-विभ्रम होता है। स्मृति-विभ्रमसे बुद्धिका नाश होता है। बुद्धिका नाश होनेसे कार्य-अकार्य-विवेचनकी योग्यता नहीं रहनेसे मनुष्यता समाप्त हो जाती है, जिससे मनुष्यका सर्वनाश हो जाता है।

क्रोधका विरोधी भाव है—क्षमा। क्रोध लोभसे उत्पन्न होता है, दोष-दृष्टिसे बढ़ता है, क्षमा करनेसे थम जाता है और क्षमासे ही निवृत्त हो जाता है। जो मनुष्य क्रोधको रोक लेता है, उसकी ही उन्नति होती है और जो क्रोधके वेगको सहन नहीं कर सकता, उसके लिये यह परम भयंकर क्रोध विनाशकारी सिद्ध होता है। जो उत्पन्न हुए क्रोधको अपनी बुद्धिसे दबा देता है, उसे तत्त्वदर्शी विद्वान् तेजस्वी मानते हैं।

क्षमाके अवसर

पूर्वोपकारी यस्ते स्यादपराधे गरीयसि।
उपकारेण तत् तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः॥

(महा० वनपर्व २८।२६)

अर्थात् जिसने पहले कभी उपकार किया हो, उससे यदि कोई भारी अपराध हो जाय, तो भी पहलेके उपकारको ध्यानमें रखकर अपराधको क्षमा कर देना चाहिये।

अनजानमें किया गया अपराध क्षमायोग्य है। परंतु जो जान-बूझकर किये गये अपराधको अनजानमें किया गया बताता है, उस उद्दण्डका अपराध क्षमायोग्य नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण क्षमाको अपनी विभूति बताते हुए कहते हैं—

'बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।'

(गीता १०।४)

ज्ञान, असम्मोह (विवेकपूर्वक प्रवृत्ति), क्षमा (निन्दा किये जानेपर भी चित्तमें विकारका न होना), सत्य, दम और शम (अन्तःकरणकी उपरति)—ये विविध गुण मुझसे ही प्रकट हुए हैं।

'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥'

(गीता १०।३४)

स्त्रियोंमें कीर्ति, लक्ष्मी, वाणी, स्मृति, बुद्धि, धृति और क्षमारूपमें मैं ही प्रतिष्ठित हूँ।

'सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।'

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ६।३०)

मानस तीर्थोंमें सत्य एक तीर्थ है, दूसरा क्षमातीर्थ है तथा इन्द्रियनिग्रह महान् तीर्थ है।

क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है और क्षमा शास्त्र है। जो इस प्रकार जानता है, वह क्षमा करनेयोग्य बन जाता है। क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा भूत है, क्षमा भविष्य है, क्षमा तप है और क्षमा शौच है। क्षमाने सम्पूर्ण जगत्को धारण कर रखा है—

क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः क्षमा वेदाः क्षमा श्रुतम्।
य एतदेवं जानाति स सर्वं क्षन्तुमर्हति॥
क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं क्षमा भूतं च भावि च।
क्षमा तपः क्षमा शौचं क्षमयेदं धृतं जगत्॥

(महा० वनपर्व २९।३६-३७)

क्षमा तेजस्वी पुरुषोंका तेज है, क्षमा ही तपस्वियोंका ब्रह्म है। क्षमा ही सत्यवादी पुरुषका सत्य है। क्षमाशील व्यक्ति ही यज्ञवेत्ता, ब्रह्मवेत्ता तथा तपस्वी पुरुषोंसे भी ऊँचे लोक प्राप्त करता है। विद्वान् पुरुषको सर्वदा क्षमाका आश्रय लेना चाहिये। जो सब कुछ सहन कर लेता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त करता है।

धर्मशास्त्रोंमें क्षमा-भावके कई उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होते हैं—

(१)

त्रिदेवोंकी परीक्षाके क्रममें ब्रह्माके पुत्र भृगुजी जब ब्रह्माजीकी सभामें गये तो धैर्यकी परीक्षा लेनेके लिये न तो उन्होंने अपने पिताको प्रणाम ही किया और न ही स्तुति की। ब्रह्माजीको क्रोध आ गया परंतु अपना ही पुत्र समझकर उन्होंने अपने क्रोधको दबा लिया। इसके उपरान्त महर्षि भृगु कैलास

पर्वतपर गये। देवाधिदेव महादेवजीने जब देखा कि भृगुजी आये हैं तो आनन्दसे खड़े होकर आलिंगन करनेके लिये अपनी भुजाएँ फैला दीं। परंतु महर्षि भृगुने यह कहकर उनका आलिंगन स्वीकार नहीं किया कि तुम लोकवेदकी मर्यादाका उल्लंघन करते हो, इस कारण तुम्हारा आलिंगन मुझे अस्वीकार है। इतना सुनते ही महादेवजीको क्रोध आ गया और अपने त्रिशूलको उठाकर महर्षि भृगुको मारना चाहा। परंतु उसी क्षण भगवती सतीने उनके चरणोंपर गिरकर अनुनय-विनय की तथा महादेवजीके क्रोधको शान्त किया। अब महर्षि भृगु विष्णुके निवासस्थान वैकुण्ठमें गये। उस समय भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीकी गोदमें अपना सिर रखकर लेटे हुए थे। महर्षि भृगुने भगवान् श्रीविष्णुके वक्ष:स्थलपर एक लात कसकर जमा दी। भक्तवत्सल भगवान् श्रीविष्णु लक्ष्मीजीके साथ उठ बैठे तथा मुनिके समक्ष सिर झुकाकर प्रणाम किया। भगवान्ने कहा—ब्रह्मन्! आपका स्वागत है, आप इस आसनपर विराजमान होकर कुछ समयके लिये विश्राम कीजिये। प्रभो! मुझे आपके शुभागमनकी जानकारी नहीं थी, जिस कारण आपकी अगवानी नहीं कर सका। मेरा अपराध क्षमा करें। महामुने! आपके चरण अत्यन्त कोमल हैं और

मेरा वक्ष:स्थल कठोर। आपको चोट तो नहीं लगी? यह कहकर भगवान् श्रीविष्णु महर्षि भृगुजीके चरण अपने हाथोंसे सहलाने लगे। भगवान्ने कहा—मुने! आपके चरणकमलोंके स्पर्शसे मेरे सारे पाप धुल गये। अब आपके चरणोंसे चिह्नित मेरे वक्ष:स्थलपर लक्ष्मीजी सदा-सर्वदा निवास करेंगी।

(२)

द्रौपदीके पाँचों सोये हुए पुत्रोंका वध करनेवाला अश्वत्थामा जब अर्जुनद्वारा घसीटकर द्रौपदीके समक्ष

लाया गया तो द्रौपदीका कोमल हृदय दयासे भर गया और उसने कहा—

'मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः॥'

(श्रीमद्भा० १।७।४३)

छोड़ दो, इन्हें छोड़ दो। ये ब्राह्मण हैं और हमलोगोंके पूजनीय हैं।

जिन मनुष्योंका क्रोध सदा क्षमाभावसे दबा रहता है, उन्हें सर्वोत्तम लोककी प्राप्ति होती है। अतः क्षमा सबसे उत्कृष्ट मानी गयी है। इस कारण ही कहा जाता है—सज्जन लोग सदा क्षमाशील होते हैं **'क्षमासारा हि साधवः।'**

गोदानका माहात्म्य

(डॉ० श्रीअरुणकुमारजी राय, एम०ए०, पी-एच०डी०)

गोदान हमारी संस्कृतिकी महान् परम्परा रही है। गौ अपने अमृतमय गोरसका पान कराकर भौतिक जगत्में हमारा कल्याण करती है और मृत्युके पश्चात् भी हमारे कल्याणका मार्ग प्रशस्त करती है। परलोकगामी गोदायी पथिक गोमाताकी पूँछ पकड़कर वैतरणी पार कर लेता है।

अग्निपुराणके अनुसार—'गायमें सभी देवताओंका निवास होनेसे इसका दान अत्यन्त पुण्यकारी है।' गौएँ प्राणियोंको दूध पिलानेके कारण प्राण कहलाती हैं। इसीलिये जो दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह मानो प्राणदान करता है, गौएँ समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाली हैं, इसीलिये जो धेनुदान करता है, वह सबको शरण देनेवाला है—

प्राणा वै प्राणिनामेते प्रोच्यन्ते भरतर्षभ।
तस्माद् ददाति यो धेनुं प्राणानेष प्रयच्छति॥
गावः शरण्या भूतानामिति वेदविदो विदुः।
तस्माद् ददाति यो धेनुं शरणं सम्प्रयच्छति॥

(महाभारत, अनु० ६६। ४९-५०)

गौका दान मानव-जीवनमें सब प्रकारसे मंगलदायक है। यह दुर्गम संकटसे रक्षा करता है। दुष्कर्मोंसे बचाता है, साथ ही समस्त पाप-समूहसे भी छुटकारा दिलानेमें सहायक सिद्ध होता है—

यानि कानि च दुर्गाणि दुष्कृतानि कृतानि च।
तरन्ति चैव पाप्मानं धेनुं ये ददति प्रभो॥

(गवोपनिषद्)

उत्तम लक्षणोंसे युक्त 'कपिला' गौको वस्त्र ओढ़ाकर बछड़ेसहित जो उसका दान करते हैं और उसके साथ दूध दुहनेके लिये एक कांस्यका पात्र भी दानमें देते हैं, वे इहलोक और परलोक दोनोंपर विजय पाते हैं—

कपिलां ये प्रयच्छन्ति सवत्सां कांस्यदोहनाम्।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामुभौ लोकौ जयन्ति ते॥

(गवोपनिषद्)

भारतीय संस्कृति और दर्शनके केन्द्र-बिन्दु उपनिषद्का यह आख्यान, जिसमें विश्वजित्-यज्ञमें सर्वस्व दान करनेवाले वाजश्रवाके पुत्रने जब अपने पिताको देखा कि वे ब्राह्मणोंको दक्षिणामें बूढ़ी गायें दे रहे हैं, तब नचिकेताकी आस्तिक्य बुद्धि अपने पिताके हितमें जाग्रत् हो जाती है और वह सोचता है—जो जल पी चुकी हैं, घास खा चुकी हैं, जिनका दूध भी दुह लिया गया है तथा जिनमें बच्चा जन्म देनेकी सामर्थ्य नहीं रही, ऐसी गायोंका दान करनेसे दाता उस निम्न लोकमें जाता है, जो आनन्दसे सर्वथा शून्य है—

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत्॥

(कठो० १। १। ३)

'कठोपनिषद्' का गौविषयक चिन्तन गोदान तथा गो-सेवाकी महिमाको प्रकट करता है।

गर्भाधान-संस्कारसे लेकर दाह-संस्कारतक ऐसा एक भी संस्कार नहीं, जिसमें गोदानकी आवश्यकता न पड़ती हो। सन्तानहीन महाराज श्रीदशरथने गुरु वसिष्ठके परामर्शसे शृंगी ऋषिसे यज्ञ करवाया। यज्ञ गौओंद्वारा प्रदत्त हविसे ही होता है, अतः कहा गया है कि गायोंमें ही यज्ञकी प्रतिष्ठा है। गायें ही यज्ञ-फलका कारण हैं—'**गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः।**' (महा०अनु० ७८।८) उस यज्ञके अवसरपर महाराज श्रीदशरथने दस लाख गौएँ दान दी थीं—

'गवां शतसहस्राणि दश तेभ्यो ददौ नृपः॥'

(वा०रा० १।१४।५०)

यज्ञ-फलकी प्राप्तिमें कारणस्वरूपा गौओंका जहाँ दानमें इतनी बड़ी संख्यामें उपयोग हुआ, वहाँ स्वयं प्राजापत्य पुरुष अग्निदेव स्वर्णपात्रमें दिव्य खीर लिये प्रकट हुए और उन्होंने उसे महाराज श्रीदशरथको देकर रानियोंको खिला देनेके लिये कहा। उस खीरको खाकर रानियाँ गर्भवती हुईं और राम आदि भाइयोंका जन्म हुआ। जन्मके उपलक्ष्यमें महाराज श्रीदशरथने ब्राह्मणोंको बहुत-सी गौएँ दानमें दी थीं—***'हाटक धेनु बसन मनि नृप***

बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥' (रा०च०मा० १।१९३) इतना ही नहीं माताएँ दुष्टा स्त्रियोंकी नजर लग जानेकी आशंकाकर उसके निवारणके लिये शिशु श्रीरामको गायके घीसे तौलकर घीका तुलादान किया करती थीं—***'तुला तौलिये घीके।'*** (गीतावली १।१२।२)

श्रीरामविवाहके अवसरपर राजा जनकने महाराज दशरथसे अनुरोध किया था—राजन्! श्रीराम-लक्ष्मणसे गोदान करवाइये, पितृदान भी सम्पन्न कीजिये—तत्पश्चात् विवाहका कार्य आरम्भ कीजिये—

रामलक्ष्मणयो राजन् गोदानं कारयस्व ह।
पितृकार्यं च भद्रं ते ततो वैवाहिकं कुरु॥

(वा०रा० १।७१।२३)

महाराज श्रीजनकके इस अनुरोधपर महाराज दशरथने उत्तम गोदान किये—**'चक्रे गोदानमुत्तमम्।'** उस समय स्वर्णमण्डित सींगोंवाली चार लाख गौएँ कांसेके दोहन-पात्रके साथ ब्राह्मणोंको दानमें दी गयी थीं।

सुवर्णशृंग्यः सम्पन्नाः सवत्साः कांस्यदोहनाः।
गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः॥
वित्तमन्यच्च सुबहु द्विजेभ्यो रघुनन्दनः।
ददौ गोदानमुद्दिश्य पुत्राणां पुत्रवत्सलः॥

(वा०रा० १।७२।२३-२४)

पुत्रोंके विवाह सम्पन्न हो जानेके बाद भी श्रीदशरथजीने गुरु वसिष्ठके समीप जाकर निवेदन किया—

अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाईं॥

(रा०च०मा० १।३३०।७)

देनेके समय कामधेनुसदृश चार लाख गौएँ मँगायी गयीं और अलंकृतकर ब्राह्मणोंको दी गयीं—

चारि लच्छ बर धेनु मगाईं। काम सुरभि सम सील सुहाईं॥
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं॥

(रा०च०मा० १।३३१।२-३)

'गच्छत्यनेन' के अनुसार 'गो' नाम अन्वर्थक है। सुलक्षणा गायोंका सुपात्रके प्रति सविधि दान देनेका अद्भुत माहात्म्य है। मरणासन्न व्यक्तिके निमित्त गोदान उसे वैतरणी (भवसिन्धु)-से तारनेवाला माना गया है।

गाय, भूमि और सरस्वती समान नामवाली हैं। इन तीनोंका दान करना चाहिये। ये तीनों मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाली हैं—

तुल्यनामानि देयानि त्रीणि तुल्यफलानि च।
सर्वकामफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती॥

(महाभारत, अनु० ६९।४)

प्राप्ति-पुष्टि तथा लोकरक्षा करनेके कारण गौएँ इस पृथ्वीपर सूर्यकी किरणोंके समान मानी गयी हैं। एक ही 'गो' शब्द धेनु और सूर्य-किरणोंका बोधक है। गौओंसे सन्तति और उपभोग प्राप्त होते हैं। अतः गोदान करनेवाला मनुष्य किरणोंका दान करनेवाले सूर्यके ही समान समझा जाता है—**'गौरिति पृथिव्या नामधेयम् आदित्योऽपि गौरुच्यते'** (निरुक्त २।२)। गो-सेवा और गोदानके फलस्वरूप मिलनेवाले आभूतसम्प्लव जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक और गोलोकरूप अक्षय लोकोंकी प्रतिष्ठा गोके रोम-रोममें है—**'गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः।'** (महा०, अनु० ५१।३३)

पद्मपुराणके अनुसार जिस बछड़ेका मुख माँके गर्भसे बाहर न आया हो, केवल दो पैर बाहर निकले हों—इस अवस्थामें गाय पृथ्वीस्वरूपा होती है। ऐसी गायको जो सोनेकी सींग, चाँदीके खुर, ताँबेकी पीठ, कांसेका दुहनेका बर्तन और गहने, कपड़ोंसे सजाकर तथा गन्ध-पुष्पादिसे पूजाकर वेदज्ञ ब्राह्मणको दान करता है, वह नित्य विष्णुलोकमें निवास करता है।

मत्स्यपुराणमें भी उभयमुखी गौके दानका बड़ा महत्त्व बताया गया है। जबतक बछड़ा योनिके भीतर रहता है एवं जबतक गर्भ नहीं छोड़ता अर्थात् योनिसे बछड़ेका कोई भी किंचित् अंग बाहर दिखायी पड़ता है, उस समय वह गोमाता उभयमुखी कहलाती है। उस समय ऐसी गौका जो दान करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त होता है और उस बछड़ेके तथा गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने युगोंतक दाता देवलोकमें पूजित होता है और अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। उसे गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाते हैं—

प्रसूयमानां गां दत्त्वा महत्पुण्यफलं लभेत्।
यावद्वत्सो योनिगतो यावद्गर्भं न मुञ्चति॥

तावद् वै पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना।
प्रसूयमानां यो दद्याद् धेनुं द्रविणसंयुताम्॥
ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना।
चतुरन्ता भवेद् दत्ता पृथिवी नात्र संशयः॥
यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्य च नराधिप।
तावत्संख्यं युगगणं देवलोके महीयते॥
पितॄन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान्।
उद्धरिष्यत्यसन्देहं नरकाद् भूरिदक्षिणः॥

× × × ×

गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव॥

(मत्स्यपुराण अ० २०५)

अतः गौ इस संसारका एक अद्भुत प्राणी है। गौ वास्तवमें सबके लिये आदरणीय, पूजनीय और कल्याणकारी है, जिसकी सेवासे, दानसे मोह एवं शोकका नाश स्वतः हो जाता है। 'गोदान' करनेसे मनुष्य अपनी सात पीढ़ी पहलेके पितरोंका और सात पीढ़ी आनेवाली सन्तानोंका उद्धार करता है। (महा०अनु० ७४।८) शास्त्रोंमें गौको सर्वदेवमयी और सर्वतीर्थमयी कहा गया है। गौदर्शनसे समस्त देवताओंके दर्शन एवं समस्त तीर्थ करनेका पुण्य प्राप्त होता है। मनुष्यके जीवन-कालमें गौ भौतिक समृद्धिका कारण है, आध्यात्मिक जीवनमें भगवत्प्राप्तिका द्वार है, तो मरणोपरान्त मुक्तिका साधन है। इसीलिये गायोंका दान, गायोंकी पूजा, स्तुति प्रमुख रूपसे करनी चाहिये; क्योंकि दानोंमें गोदान प्रमुख है।

अन्नदान और जलदानके समान कोई दान नहीं

(पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री, शास्त्रार्थपंचानन)

प्राणिमात्रके जीवनके लिये अन्न और जल ही मुख्यतया आधारभूत पदार्थ हैं, यह तथ्य वेदशास्त्रानुमोदित होनेके कारण सर्वसम्मत है। प्रत्यक्षतया अनुभूत होनेसे भी इसका अपलाप नहीं किया जा सकता है। उपनिषदोंमें प्रकरणानुसार अनेक स्थलोंमें अन्न और जलकी महत्ताका वर्णन उपलब्ध होता है। मानव-देहके निर्माणमें अन्न और जलके विशिष्ट योगदानको छान्दोग्योपनिषद्में इस प्रकार समझाया गया है—

'**अन्नमशितं त्रेधा विधीयते**....।' खाये हुए अन्नके तीन भाग हो जाते हैं। उसका जो अत्यन्त स्थूल भाग होता है, वह मल हो जाता है। जो मध्यम भाग है, वह मांस हो जाता है और जो अत्यन्त सूक्ष्म होता है, वह मन हो जाता है। पीया हुआ जल भी तीन प्रकारका हो जाता है। उसका स्थूलतम भाग मूत्र हो जाता है। मध्यम भाग रक्त हो जाता है और उसका सूक्ष्मतम भाग प्राण हो जाता है।

प्राणमय शरीरका निर्माता होनेके कारण अन्नको ही 'पूर्ण' कहा जाता है और चूँकि 'ब्रह्म' की भी पूर्ण संज्ञा है, अतः शास्त्रकारोंने अन्नको ही 'प्रत्यक्ष ब्रह्म' माना है। '**अन्नं ब्रह्म इत्युपासीत**' अथवा '**अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुः**' इत्यादि शास्त्रीय वचनोंका यही स्वारस्य समझना चाहिये। तैत्तिरीयोपनिषद्की ब्रह्मानन्दवल्लीके अन्तर्गत द्वितीय अनुवाकमें अन्नके ब्रह्म होनेका वर्णन अत्यन्त तर्कसंगत शैलीमें किया गया है—

'**अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीः श्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः। अन्नः हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात् सर्वौषधमुच्यते। सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते। ....अन्नाद्भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धन्ते।**

अर्थात् इस पृथ्वीलोकमें निवास करनेवाले समस्त प्राणी अन्नसे ही उत्पन्न हुए हैं। अन्नसे ही वे जीते हैं। अन्न ही सब भूतोंमें श्रेष्ठ है, अतः उसे सर्वौषधमय कहा जाता है। उत्पन्न हुए समस्त प्राणी अन्नको खाकर ही वृद्धिको प्राप्त होते हैं। जो साधक अन्नकी ब्रह्मभावसे उपासना करते हैं, वे अवश्य ही सर्वकारणभूत तथा अन्ततः सबको अपनेमें समेट लेनेवाले 'अन्न' नामधारी ब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं।

ऐसी ही महत्ता जलकी भी है। कोशग्रन्थोंमें जलका एक नाम 'जीवन' भी है—'**पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्**....।' (अमरकोष १।१०।३) '**शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये**....।' आदि सुप्रसिद्ध वेदमन्त्रोंमें जलकी

देवताके रूपमें प्रार्थना की गयी है और सभी नदियोंको इसी सन्दर्भमें जीवनदायिनी कहनेकी परम्परा है। अथर्ववेदके निम्नांकित मन्त्रमें जलको न केवल विश्वसनीय औषधि बताया गया है, अपितु सर्व-रोगनिवारक एक विश्वस्तरीय अचूक औषधिके रूपमें उसका वर्णन किया गया है—

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनी।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात्॥
(अथर्व० ३।७।५)

ऊपर उद्धृत शास्त्रीय प्रमाणोंके आधारपर अन्नदान और जलदानके महत्त्वको अनायास ही समझा जा सकता है। हमारे आर्ष साहित्यमें एतद्विषयक सामग्री प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है।

भूख और प्यास प्राणोंकी पहचान हैं और शरीरकी इन दोनों अनिवार्य आवश्यकताओंके उपशमनके लिये निर्विवाद रूपसे अन्न और जल ही अपेक्षित होते हैं। भूखे-प्यासे व्यक्तिके लिये अन्न और जलके अतिरिक्त अन्य कोई भी विकल्प नहीं है। पुराणग्रन्थोंमें क्षुधा और उसके द्वारा सम्भावित अनर्थोंसे बचनेके लिये अन्नदानकी मुक्त कण्ठसे महिमा गायी गयी है—

यथा भूमिगतं तोयं रविरश्मिर्विकर्षति॥
तद्वच्छरीरजा नाड्यः शोष्यन्ते जठराग्निना।
न शृणोति न चाघ्राति चक्षुषा नैव पश्यति॥
दह्यते क्षीयते मूढः शुष्यते क्षुधयार्दितः।
भैरवत्वममर्यादं क्षुधायां संप्रवर्धते।
जनकं जननीं पुत्रान् भार्यां दुहितरं तथा॥
भ्रातरं स्वजनं वापि त्यजति क्षुधयार्दितः।
न पितॄन् पूजयेत् सम्यग्देवं चापि गुरुं तथा॥
अन्नात् परमतो लोके न भूतं न भविष्यति।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन अन्नं दद जुषस्व च।
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय १९)

अर्थात् जैसे सूर्यकी किरणें पृथिवीके जलको खींच-खींचकर सुखा देती हैं, उसी प्रकार भूख लगनेपर जठराग्नि (पेटकी आग) शरीरकी सारी नाड़ियोंको सुखा डालती है। भूखसे पीड़ित व्यक्ति न किसीकी बात सुनता है, न किसीको देखना पसन्द करता है, अन्दर ही अन्दर जलता रहता है और सूखकर काँटा हो जाता है। भूखमें सहनशीलता मिट जाती है, मर्यादाएँ भी समाप्त हो जाती हैं। माता-पिता, पुत्र, पत्नी, बेटी, भाई यहाँतक कि अपने स्वजनोंसे भी भूखा आदमी नाता तोड़ लेता है। पितरोंकी, देवताओंकी किंवा गुरुजनोंकी पूजामें भी उसका ध्यान नहीं रहता है। इन सभी क्लेशदायी अनर्थोंको निर्मूल करनेके लिये संसारमें अन्नके समान न कोई वस्तु है और न ही भविष्यमें कभी हो सकेगी। इसलिये सब प्रकारसे अन्नका दान करो तथा अन्नका आवश्यक संग्रह करो।

इस प्रकरणमें यह तथ्य भी विचारणीय है कि क्षुधाको शान्त करनेके लिये प्रधान साधन यद्यपि अन्न ही है तथापि क्षुधा-निवृत्तिके लिये फलाहार, दुग्धपान आदि अन्य विकल्प भी विद्यमान हैं, परंतु प्यास लगनेपर तो अनिवार्य रूपसे जल ही चाहिये, उसका तो कोई विकल्प है ही नहीं। इसलिये अन्नदानके साथ-साथ जलदानका भी विशेष महत्त्व समझना चाहिये। लोकमें बहुप्रचलित इस मुहावरेमें इसी तथ्यका गुणगान किया गया है—*'भूखे को दाना प्यासे को पानी, जिसने दिया वो है महादानी।'*

इस मुहावरेको कपोल-कल्पित किंवा निराधार नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसमें स्कन्दपुराणके निम्नांकित वचनोंका सार ही तो प्रतिबिम्बित है—

अन्नं ब्रह्म इति प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
तस्मादन्नप्रदो नित्यं वारिदश्च भवेन्नरः॥
वारिदस्तृप्तिमायाति सुखमक्षय्यमन्नदः।
वार्यन्नयोः समं दानं न भूतं न भविष्यति॥
(ब्रह्मखण्ड, चातुर्मास्य-माहात्म्य ३।२-३)

अर्थात् अन्नको ब्रह्म कहा गया है और सबके प्राण अन्नमें ही प्रतिष्ठित हैं। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह अन्न और जलका दान निरन्तर करता रहे। जलदाताको जीवनमें सन्तोष प्राप्त होता है और अन्नदाताको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है; क्योंकि अन्नदान और जलदानके समान न कोई दान है और न ही कभी भविष्यमें होगा।

अब प्रस्तुत प्रकरणमें इस रहस्यको जान लेना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि व्यवहारमें प्रत्यक्षतया अन्न और जल भले ही दो पृथक्-पृथक् पदार्थोंके रूपमें प्रतीत होते हों, परंतु हैं दोनों सर्वथा अभिन्न। दोनोंमें अपरिहार्य रूपमें तादात्म्य सम्बन्ध है। अलग-अलग दो रूपोंमें दिखायी पड़नेवाले इन दोनोंकी तात्त्विक एकताका निरूपण उपनिषदोंमें इस प्रकार किया गया है—

'अन्नं न परिचक्षीत। तद् व्रतम्। आपो वा अन्नम्। ज्योतिरन्नादम्। अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम्। ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति।'

(तैत्तिरीयोपनिषद् ३।८।१)

अर्थात् अन्नकी अवहेलना मत करो। [मैं अन्नकी अवहेलना, दुरुपयोग, परित्याग आदि कभी नहीं करूँगा, ऐसा संकल्पपूर्वक] व्रत धारण करो। जल अन्न ही है। तेज रसरूप अन्न (जल)-का भोक्ता है, अतः अन्नाद कहा जाता है। अतः तेजमें भी जल प्रतिष्ठित है और जलमें तेजकी विद्यमानता है, यह सिद्ध होता है। इसीको अन्नमें अन्नका प्रतिष्ठित होना कहा जाता है। अन्नमें अन्नकी प्रतिष्ठाके इस रहस्यको जो जान लेता है, वह अन्नवान् और अन्नाद अर्थात् भोक्ता तथा भोग्यरूप ब्रह्मके समान हो जाता है।

ऊपर उद्धृत इन्हीं तथ्योंके आधारपर अन्नदानको सर्वोत्कृष्ट दानके रूपमें स्वीकार किया गया है। इस दानकी प्रशंसामें क्या इससे अधिक भी कुछ कहा जा सकता है?—

सपर्वतनदी वापी पृथिवी सर्वकानना।
विधिना तेन सा दत्ता योऽन्नं ददाति सर्वदा॥
क्षुधिते नित्यमन्नं वै ददच्छ्रद्धासमन्वितः।
ब्रह्महत्यादिकं पापमन्नदश्चापकर्षति॥
सर्वदानानि दत्तानि सर्वे यज्ञाः सदक्षिणाः।
देवताः पूजिताः सर्वाः योऽन्नं ददाति नित्यशः॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु स सर्वव्रतपारगः।
तदेवं संप्रयच्छेत अन्नं श्रद्धासमन्वितः॥
ब्रह्मभूतस्ततः सोऽथ ब्रह्मणा सह मोदते।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय १९)

अर्थात् जो व्यक्ति प्रतिदिन विधिपूर्वक अन्नका दान करता है, उसने समझो नदियों, पर्वतों तथा वनोंसहित सम्पूर्ण पृथिवीका ही दान कर दिया है। भूखे आदमीको जो श्रद्धावान् मनुष्य नित्य अन्नका दान करता है, वह ब्रह्महत्या-जैसे भयंकर पापसे भी मुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं, अन्न-जैसे विशिष्ट पदार्थका दान जिसने कर दिया, उसने तो मानो दक्षिणासहित समस्त यज्ञ सम्पन्न कर लिये, सभी प्रकारके दान दे दिये, उसने समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया और सभी प्रकारके व्रत भी उसके द्वारा सम्पन्न हो गये। वह तो साक्षात् ब्रह्मरूप होकर ब्रह्मके साथ ही आनन्दपूर्वक निवास करता है।

अन्नदानके विषयमें महर्षि वेदव्यासका कथन है कि स्वर्गादि उत्तम लोकोंमें सबसे पहले अन्नदान करनेवाला प्रवेश करता है। उसके पश्चात् सत्यवादी जाता है और उसके पश्चात् बिना माँगे ही दान करनेवाला जाता है। इस प्रकार ये तीनों पुण्यात्मा समान गतिको प्राप्त होते हैं—

अन्नदाः प्रथमं यान्ति सत्यवाक् तदनन्तरम्।
अयाचितप्रदाता च समं यान्ति त्रयो जनाः॥

विविध दान

(श्रीरामजीलाल जोशी)

दान एक अत्यन्त पावन पुण्यमय कर्म है, दानदाता कीर्तिवान् एवं यशस्वी होता है।

दान दो प्रकारका होता है—१. याचकद्वारा माँगनेपर दिया जाय, २. स्व—आत्मप्रेरणासे निःस्वार्थ भावसे दिया जाय।

दान कोई भी व्यक्ति दे सकता है, किंतु दान कोई भी व्यक्ति तभी ले सकता है जबकि वह पात्र हो। दानकी कोई सीमा नहीं है, परंतु दान हर जगह-हर समय नहीं हो सकता। यहाँ कुछेक दानोंके बारेमें वर्णन प्रस्तुत है—

१. देहदान—माताद्वारा गर्भ धारणकर परिपक्व अवस्थातक उसका पोषणकर अपने शरीरसे किसी अन्य जीवको जन्म देना देहदान है, दानोंमें प्रथम दान है। संसारके सारे दान इसी देहद्वारा सम्पादित होते हैं, यह नहीं है तो कोई क्रिया-कलाप नहीं है, अतः यह देहका दान सर्वश्रेष्ठ दान है।

२. अन्नदान—अन्नदानमें अनेक प्रकारकी विधियाँ हैं। भूखे व्यक्तिको भोजन देना अन्नदान है।

गोशालामें गायोंको चारा, दलिया, भूसी, दाल, गुड़ देना ये सब अन्नदान है।

व्रत, त्यौहार, उपवास आदिमें भोजन कराना, अन्न देना अन्नदान है, पक्षियोंको जौ, जुवार, मक्का, बाजरा, चना आदिका चुगा डालना—अन्नदान है। श्राद्धपक्षमें

भोजन कराना भी अन्नदान है। अन्नदान सर्वश्रेष्ठ दान है। अन्न समस्त जीव-जन्तुओंका पालक, पोषक एवं जीवनदायक तत्त्व है। अन्न प्राणपोषक है। शास्त्रोंके अनुसार अन्न ब्रह्म है।

३. जलदान—जल ही जीवन है, अतः जलदान दानोंमें श्रेष्ठ दान है। आहारके बिना हर प्राणी कुछ दिन रह सकता है, परंतु जलके बिना कुछ समय भी नहीं रह सकता है। कूपनिर्माण, सरोवर खुदवाना, तालाब-बावड़ी बनवाना, प्याऊ बनाना, पशुओंको जल पिलानेहेतु जलस्थानका निर्माण करना आदि जलदानके कई रूप हैं।

कुछ लोग जल-मन्दिर (प्याऊ)-का प्रबन्धकर आते-जाते राहगीरोंको जल पिलवानेका कार्य कराते हैं एवं करनेवालोंको श्रममें वेतन देते हैं—यह भी जलदानका एक रूप है।

कुछ गृहस्थ लोग ग्रीष्म-ऋतुमें मन्दिरोंमें जल-घट दान-स्वरूप देते हैं।

कुछ गृहस्थ पक्षियोंके लिये मकानोंकी मुंडेरपर, वृक्षोंकी डालमें जल-परिन्दे बाँधते हैं, ताकि पक्षियोंको जल प्राप्त होता रहे, प्याससे उन्हें भटकना न पड़े। यह भी जलदानका एक साधन है।

पशुओंके लिये गाँवसे बाहर जलस्थान एवं राहके किनारे पानीकी टंकियाँ रखायी जाती हैं ताकि जंगली जानवर, पालतू पशु जल पी सकें, यह भी जलदान है।

पितरोंको जलांजलि देना एवं तर्पण करना भी जलदानका ही एक रूप है।

पीपल, केला, तुलसी, आँवला आदि देववृक्षोंका जल-सिंचन भी एक प्रकारका जलदान है।

४. वस्त्रदान—वस्त्र शरीरका आभूषण है, रक्षक है, शीत-गर्मीसे रक्षा करता है, अतः साधन-सम्पन्न लोग वस्त्रदान करते हैं। वस्त्रदान मकर-संक्रान्ति पर्वपर, अन्य दिनोंमें तथा ठण्डके दिनोंमें सर्दीसे बचावके लिये दिया जानेवाला दान है। वस्त्रदानसे आत्मशान्ति मिलती है।

५. विद्यादान—हर बालकको उसके माता-पिता शिक्षित करना चाहते हैं, अतः जो भी जिस प्रकारकी विद्या उसे सिखाता है, उसके द्वारा दिया गया वह दान विद्यादान है। विद्यादानसे बालकको ज्ञान उत्पन्न होता है, वह जीवन जीनेकी कला सीखता है। व्यावहारिक ज्ञानके साथ ही आध्यात्मिक ज्ञानकी भी प्राप्ति होती है, परंतु आज विद्यादानका स्वरूप विकृत-सा हो गया है। पहले योग्य गुरु बालकको विद्याध्ययन बिना किसी लालचके करवाते थे और अपने आश्रममें बालकको रखकर पालन-पोषण करते तथा रहन-सहन सिखाते हुए विद्याका अध्ययन कराते थे। यह शिष्यकी मुख्य योग्यता होती थी और यह विद्याकी उत्तम कसौटी होती थी। **'विद्या ददाति विनयम्'** हमारे ऋषि गुरुवर सादा जीवन उच्च विचार, उच्च सदाचारके धनी थे।

६. आजीविकादान—पढ़नेके बाद, शिक्षित होनेके बाद जीवनयापन एवं परिवार-पालनके लिये आजीविकाकी आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति इस आजीविकाकी व्यवस्था कर देता है, वह उसके द्वारा प्रदत्त आजीविका-दान है।

७. श्रमदान—अपने शरीरसे, मनसे किंवा वाणीसे किसी भी उत्तम कार्यको सम्पादनकर उसके बदलेमें कोई पारिश्रमिक नहीं लिया जाय, उसे श्रमदान कहते हैं। श्रमदान हर कोई कर सकता है।

श्रमदानकी सार्वजनिक कार्योंके लिये जरूरत होती है; क्योंकि सर्वहितमें सबके लिये उपयोगका स्थान रहता है। भारतीय सभ्यतामें ग्रामीण परिवेशमें सार्वजनिक मन्दिर, सार्वजनिक तालाब, स्कूल, धर्मशाला, गोशाला आदिका निर्माण सबके श्रमसे होता था और सभी समान रूपसे उसका उपयोग-उपभोग करते थे। श्रमदानसे धनकी बचत होती है, समयकी बचत होती है, इसके अलावा भेदभाव दूर होकर एक सद्भावना जाग्रत् होती है और भाई-चारा बढ़ता है।

८. छाया-आश्रयदान—छायादार एवं फलदारवृक्ष लगाकर राहगीरोंको छायादान किया जाता है।

आश्रयदानमें धनिक वर्ग सार्वजनिक धर्मशालाएँ निर्माण कराकर राहगीर एवं भ्रमणशील व्यक्तियोंको रात्रि-विश्रामका आश्रय देते हैं, यह आश्रयदान है।

ग्रामीण क्षेत्रमें आज भी अनजान राहगीरको रात्रिके समय आश्रय और भोजन दिया जाता है, इसे आश्रय-

दान कहा जाता है। आश्रय कुछ समयके लिये, कुछेक दिनोंके लिये एवं जीवनपर्यन्त भी होता है। असहाय-गरीब व्यक्तियोंको अपने यहाँ श्रम कराकर जीवनयापन-सामग्री देना और आवास देना जीवनपर्यन्त आश्रयदानका एक रूप है।

९. भूमिदान—बड़े-बड़े जागीरदार राजा पहले मन्दिरोंको, ब्राह्मणोंको, अपने अधीनस्थ विश्वस्त सेवकोंको भूमि दानमें देते थे, ताकि वे अपना जीवनयापन कर सकें। कुछ संस्थाओं, स्कूल, धर्मशाला, ग्राम पंचायतोंके भवनके लिये भी भूमिदान होता था, गोशालाओंके लिये भी भूमिदान दिया जाता था। स्वतन्त्र भारतमें सन्त विनोवा भावेने गरीब भूमिहीनोंके लिये जागीरदार सामन्तों-राजाओंसे भूमि लेकर भूमिदान कराया था, जो आज भी भूदान-आन्दोलनके नामसे जाना जाता है।

१०. स्वर्णदान—रोग आदि बाधाओंसे मुक्त होने तथा अन्यान्य प्रयोजनोंसे सोनेका दान किया जाता है।

११. आरोग्यदान—वैद्य-हकीम, चिकित्सक लोग औषधद्वारा रोगका शमनकर बीमार व्यक्तिको स्वस्थ कर देते हैं, यह आरोग्यदान है। यह दान केवल चिकित्सा-कर्म करनेवाला व्यक्ति ही कर सकता है, किंतु रोगीके लिये औषध एवं रहने आदिकी व्यवस्था करा देना भी आरोग्यदानका ही एक रूप है।

१२. क्षमादान—अपराध होनेपर भी अपराधीको दण्ड न देकर क्षमा करनेको क्षमादान कहा जाता है। यह दान शक्तिशाली होकर भी सहनशील उत्तम चरित्रका व्यक्ति ही कर सकता है। क्षमादान क्रोधपर विजय प्राप्त करनेपर ही सम्भव है।

भगवान् रामने इन्द्रपुत्र जयन्तको जानकीके चरणमें प्रहार करनेपर भी प्राणदण्ड न देकर क्षमादान किया था। विश्वामित्रद्वारा सौ पुत्रोंकी हत्या करनेके बाद भी महर्षि वसिष्ठने उन्हें क्षमादान दिया था। महारानी द्रौपदीके सोते हुए पाँच पुत्रोंको गुरुपुत्र अश्वत्थामाने बिना किसी अपराधके मार दिया था और अर्जुनद्वारा बाँधकर लानेपर द्रौपदीने उन्हें क्षमादान दिया था।

दण्ड देनेकी सामर्थ्य रखते हुए भी सब कुछ जानकर, सहनकर दण्ड नहीं देना, इसे क्षमादान कहते हैं।

१३. शुभ कर्मफलदान—अपने जीवनके पुण्यवाहक कर्म—व्रत, तीर्थसेवा, गोसेवा, सन्तसेवा, ब्राह्मणसेवा, मातृ-पितृसेवा, पतिसेवा, अन्नदान आदिके पुण्यके फलको किसीके निमित्त संकल्पकर देना शुभ कर्मफलदान है।

यह शुभ कर्मफलदान दो प्रकारका होता है—(क) किसीके माँगनेपर, (ख) बिना माँगे किसीकी जीवनशान्तिहेतु दिया गया कर्मफलदान।

(क) किसीके माँगनेपर कर्मफल देना—जब व्यक्ति किसी स्थिति-परिस्थितिमें अपनेको असहाय-पराजित महसूस करे और विजेताद्वारा कर्मफलदान माँगकर उस इच्छित वस्तुको छोड़ देना या लौटा देनेका वचन कहा जाय, तब शुभ कर्मफलदान दिया जाता है।

रुक्मिणीजीद्वारा अपने पति कृष्णका दान नारदको देनेपर नारदने शुभ कर्मफलदानके बदलेमें श्रीकृष्णको लौटाना मंजूर किया था, तब रुक्मिणीजीने शुभ कर्मफलदान दिया था।

(ख) बिना माँगे कर्मफलदान—इसमें व्यक्ति अपने सामने किसी जीव-प्राणीको अति दुःखित, रोग-ग्रस्त एवं प्राणोंकी संकटावस्था होनेपर उसकी मुक्तिहेतु बिना माँगे अपने शुभ कर्मफलका दान करता है।

किसी भी अपने स्वजन व्यक्तिकी मृत्युके समय या मृत्युके बाद उसे सद्‌गति मिले, शान्ति मिले, उसका उद्धार हो—इस निमित्त दयावश-करुणावश अपना शुभ कर्मफलका दान किया जाता है। इसे शुभ कर्मफलदान कहते हैं।

१४. गोदान—दानोंमें गोदान सर्वश्रेष्ठ दान है, पुण्यदायी है। इससे दाता उत्तमलोकमें अपने पुण्य-बलसे सुख भोगता है।

१५. उपदेशामृतदान—यह दो प्रकारका होता है। विद्वान् जनसाधारणको वेद-शास्त्र, पुराण, महाभारत, गीता, रामायणका सामूहिक उपदेश देकर कर्म-अकर्मकी शिक्षासे अवगत कराते हैं, पुण्यकर्म, पापकर्मका भेद समझाकर कुकृत्यसे बचानेका प्रयास करते हैं। सभीमें ईश्वर-भक्तिभाव जाग्रत् रहे, समाजमें समरसताकी भावना बने, इसके लिये शास्त्रोक्त उपदेश दिये जाते हैं।

दूसरा उपदेशामृतज्ञान मृत्युशैय्यापर लेटे व्यक्तिको गीता, रामायण सुनाकर दिया जाता है, ताकि उस व्यक्तिकी

सद्‌गति हो सके, अन्तिम समयमें वह अपने पापकर्मका पश्चात्तापकर ईश्वरका स्मरण कर सके। मृत्युसमय नजदीक होनेपर जो मृत्युभय होता है, उससे छुटकारा मिल सके। भगवन्नाममें व्यक्तिकी उत्कण्ठा होनेपर उसे भगवन्नाम-स्मरणकी इच्छा हो जाय तो वह सद्‌गति पा जाता है, इसीलिये अन्तिम समयमें उपदेशामृत प्रदान किया जाता है।

१६. भक्तिदान—भगवद्भक्तिका मार्ग बताकर उस पथपर आरूढ़ करा देना भक्तिदान है।

भक्तिके अनेक रूप हैं, उन सबका उद्देश्य आत्मोन्नति है। आत्म-निवेदन सच्ची भक्ति है और इस मार्गको दिखाना भक्तिदान है।

१७. ग्रहदान—मनुष्यके जीवनमें दु:ख-दारुण अवस्थाएँ आती रहती हैं—इस दारुण-अवस्थाके मूलमें ग्रहजन्यपीड़ा प्रमुख है।

किसी ग्रहके दशानुसार उसकी शान्तिहेतु उस ग्रहसे सम्बन्धित वस्तुका दान ग्रहदान कहा जाता है।

भारतीय संस्कृतिके अनुसार नौ ग्रह हैं—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु। ये नौ ग्रह आकाश-मण्डलमें स्थित रहकर प्रत्येक राशि-नक्षत्रका परिभ्रमणकालमें उपभोग करते हैं। इनका संसारके गति-क्रमपर, वस्तुओंपर अलग-अलग प्रभाव है, ऐसी भारतीय ज्योतिषकी मान्यता है। ग्रहदानमें अन्नदान है, वस्त्रदान है, रस और तेलदान है, रत्नदान है आदि-आदि। जिस ग्रहकी दशा-महादशा हो, उससे सम्बन्धित वस्तुओंको समय-विशेषमें देनेकी प्रक्रियाको ग्रहदान कहते हैं।

१८. पिण्डदान—मृत्युके बाद मृत प्राणीको परलोककी यात्रामें भूख-प्यास नहीं सताये—व्याकुल न करे, अत: उस मृतप्राणीकी शान्तिके लिये पारिवारिक व्यक्तियोंद्वारा मन्त्रोच्चारके साथ उसके नामका संकल्प लेकर दानस्वरूप आटेका गोल पिण्ड दिया जाता है, वह पिण्डदान है।

१९. शय्यादान—शय्यादान दो प्रकारका होता है—१. पिताद्वारा पुत्रीको विवाहमें पलंग देना शय्यादान है, २. मृत्युके बाद दशाह अथवा एकादशाह एवं द्वादशाहके दिन मृत व्यक्तिके नामसे पलंग, ओढ़ने-बिछानेका सामान किसी ब्राह्मणको विधिवत् मन्त्रोच्चारसहित श्रद्धाभावसे देना शय्यादान कहलाता है।

२०. वरदान—किसी परम अलौकिक शक्तिद्वारा, ईश्वरद्वारा, साधु-संन्यासियोंद्वारा, कर्मनिष्ठ ब्राह्मणद्वारा, यति और सतीद्वारा जिस अभीष्ट वस्तुको माँगनेपर वाणीद्वारा दान कर दिया जाय, वह वरदान है। वरदानमें दी गयी वस्तुकी पूर्ति परमेश्वर करते हैं।

आरोग्यदान

(वैद्य श्रीगोपीनाथजी पारीक 'गोपेश', भिषगाचार्य)

आयुर्वेदके प्रसिद्ध संहिता-ग्रन्थ चरकसंहितामें चतुष्पात् चिकित्साका वर्णन किया गया है। चिकित्साके ये चार पाद हैं—गुणवान् वैद्य, गुणवान् औषधि, गुणवान् परिचारक और गुणवान् रोगी। इन चारोंके गुणवान् होनेपर ही रोगका विनाश होकर आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इन चारोंमें औषधियोंका जाननेवाला, परिचारकपर शासन करनेवाला और रोगीको उपयुक्त औषधयोग देकर उसे आरोग्य प्रदान करनेवाला वैद्य (चिकित्सक) होता है। अत: वैद्य ही प्रधान माना गया है। जो चिकित्सक नि:स्वार्थभावसे निष्ठापूर्वक अपने ज्ञानका लाभ देते हुए रोगियोंकी चिकित्साकर उन्हें आरोग्य प्रदान करता है, उससे बड़ा कोई दानी नहीं।

जीवनको धारण करनेवाला धर्म होता है और इस धर्मका साधन यह शरीर है। अत: सभी ऋषि-महर्षियोंने, चिन्तक-विचारकोंने, दार्शनिक-धार्मिकोंने एवं विद्वान्-मनीषियोंने जो भी अपने मन्तव्य प्रस्तुत किये, उन सबके केन्द्रमें यह मनुष्यका शरीर ही है। इस शरीरसे ही मनुष्य सारे लाभ प्राप्त करता है। मनुष्यके लिये यह लोक कर्मभूमि है और परलोक फलभूमि है। इस लोकमें सत्कर्मोंके प्रकाशसे मनुष्य देवतुल्य बन जाता है। नीरोग रहकर ही मनुष्य इन सत्कर्मोंमें अग्रसर होता है और चिकित्सक उसे नीरोग रखनेमें सहायक होता है।

अनादिकालसे चिकित्सा-कर्म व्यवसाय नहीं, अपितु सेवाधर्म समझा जाता है। तभी उसे उग्रादित्याचार्यने परम तप कहा है—'**चिकित्सितान्नास्ति परं तपश्च**'। आचार्य सुश्रुत लिखते हैं कि रोगी व्यक्ति अपने माता-पिता, पुत्र

और बन्धुओंमें भी शंकित मन होकर रहता है, किंतु वैद्यमें वह पूरा विश्वास करता है और अपने शरीरको वैद्यके भरोसे छोड़ देता है। अतः सच्चे वैद्यको चाहिये कि वह उस रोगीको अपने पुत्रके समान समझकर उसकी चिकित्सा करे। इस तरह दोषरहित चिकित्सा करनेवाला वैद्य धर्म, अर्थ, यश, सज्जनोंमें आदर और अन्तमें स्वर्गको प्राप्त करता है। वस्तुतः ऐसे पुण्यात्मा चिकित्सकको नारायणका अंशज ही समझना चाहिये—

दुःखितानां हि भूतानां दुःखोद्धर्ता हि यो नरः।
स एव सुकृती लोके ज्ञेयो नारायणांशजः॥

(पद्मपुराण)

जो मनुष्य दुःखी जीवोंका उद्धार करता है, वही संसारमें पुण्यात्मा है, उसको नारायणके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये।

किसी रोते हुए दुःखी रोगीकी निरापद चिकित्साकर उसे आरोग्य प्रदान करनेसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है। चरकसंहिताके प्रथम अध्यायमें आयुर्वेदीय चिकित्साको पुण्यतम कहा गया है; क्योंकि यह मनुष्योंके लिये इस लोक और परलोकमें हितकारी है —

तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः।
वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हितम्॥

(चरकसंहिता, सूत्र० १। ४३)

चिकित्सा-कर्मसे रोगीको आरोग्य प्रदानकर चिकित्सक पुण्यका भागी बन सकता है। चिकित्साका सबसे बड़ा लाभ पुण्यप्राप्ति है। जो चिकित्सक धार्मिक दृष्टिसे चिकित्सा करते हैं, उनको धनकी राशि भले ही कुछ कम प्राप्त हो सकती है, परंतु पुण्य, यश, मैत्री आदि अन्य लाभ बहुत अधिक प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत जो चिकित्सक केवल धनके लिये चिकित्साका विक्रय करते हैं, उनको भले ही धनकी राशि मिल जाय, अन्य लाभ नहीं मिल पाते।

केवल चिकित्सकके ही नहीं, प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें रोगियोंकी सेवाका भाव जगना चाहिये। महात्मा गौतमबुद्धने ऐसे ही भावोंकी जागृतिको आर्यसत्य कहा है। जिसके हृदयमें करुणा उत्पन्न नहीं होती, वह आर्यसत्यका अनुसन्धान कैसे कर सकता है! महर्षि रमणने कुष्ठजनोंकी सेवा करनेमें अपना जीवन लगा दिया। परमभागवत रन्तिदेवने प्राणियोंके दुःखको दूर करनेके लिये स्वर्ग और मोक्षतकके प्रलोभनको भी ठुकरा दिया। ऐसे ही करुणाशील विवेकी व्यक्तियोंको पाकर यह पृथिवी धन्य हो जाती है।

दूसरोंके दुःखोंको, रोगोंको दूर करनेमें एक चिकित्सककी भूमिका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। चिकित्सकका आचरण समाजके लिये श्रेष्ठ तथा सौहार्दपूर्ण होना चाहिये। धर्मनिष्ठ महर्षियोंने आयुर्वेदका प्रकाशन धर्म करनेकी दृष्टिसे किया है न कि काम या धन प्राप्त करनेकी दृष्टिसे। महर्षियोंने विचार करके इहलोक तथा परलोकमें सुखप्राप्तिके लिये ये चार दान मुख्य बतलाये हैं—रोगीको आरोग्यदान, विद्यार्थीको विद्यादान, क्षुधातुरको अन्नदान और भयातुरको अभयदान। इन चारों महादानोंमें दोका श्रेय केवल चिकित्सासे प्राप्त होता है। भयके अनेक कारण होते हैं, जिनमें मृत्युका भय बड़ा कारण है और मृत्युके अनेक कारणोंमें रोग प्रमुख कारण बनते हैं। अतः रोगग्रस्तको औषध देकर रोगमुक्त करनेसे उसे अभयदान मिलता है। इसके अतिरिक्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन स्वस्थ शरीर होनेसे आरोग्यदान करनेपर महान् फलकी प्राप्ति होती है। आचार्य चरक कहते हैं—

दारुणैः कृष्यमाणानां गदैर्वैवस्वतक्षयम्।
छित्त्वा वैवस्वतान्पाशाञ्जीवितं यः प्रयच्छति॥
धर्मार्थदाता सदृशस्तस्य नेहोपलभ्यते।
न हि जीवितदानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते॥

(चरकसंहिता चि०स्था० १। ४। ६०-६१)

अर्थात् दारुण रोगोंसे यमालयकी ओर बरबस खींचे जाते हुए प्राणियोंके यमपाशोंको काटकर जो वैद्य उसे जीवन प्रदान करता है, उसके समान धर्म तथा अर्थका दाता इस लोकमें नहीं प्राप्त हो सकता है; क्योंकि जीवनसे बढ़कर अन्य कोई दान नहीं है।

यह जीवनदान ही आरोग्यदान है और आरोग्यदान करनेवाला चिकित्सक महादानी होता है। नन्दिपुराणमें एक श्लोक है, जिसका भावार्थ है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन यह स्वस्थ शरीर ही है। अतः जो मनुष्य इस आरोग्यका दान करता है, उसने मानो सभी प्रकारके दान दे दिये हैं—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं साधनं यतः।
अतस्त्वारोग्यदानेन नरो भवति सर्वदः॥

कन्यादानं महादानम्

(डॉ० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोक', एम०ए०, साहित्यरत्न, डी०लिट०)

कूर्मपुराण आदिमें कन्यादान महादानके रूपमें प्रतिष्ठित है। वैयाकरण भी यह कहते हैं कि जो श्रेष्ठ दान है, वही महादान है—'**महच्च तद्दानं चेति महादानम्।**' अपनी सन्तानका, अपने पारिवारिक सदस्यका, अपनी ममताका दान करना क्या मामूली बात है?

यद्यपि कन्या शब्दका अर्थ केवल पुत्री ही नहीं होता अपितु औषधिविशेषको भी कन्या कहा गया है—'**कान्तैर्द्वादशभिः पत्रैर्मयूराङ्गरुहोपमैः। कन्दजा काञ्चनक्षीरी कन्या नाम महौषधी॥**' (सुश्रुत, निदानस्थान)। यह महौषधि 'कन्या' कहीं कुमारी तो कहीं घृतकुमारिके नामसे भी जानी जाती है, जिसके प्रसंगमें कहा गया है—'**शोथघ्नी कासहा कन्या।**'

कन्या द्वादश राशियोंमें छठी राशि भी है। जिस प्रकार पुत्रीरूपा कन्या दो कुलोंको परस्पर जोड़ती है, उसी प्रकार यह कन्या राशि भी अपने आगे-पीछेकी राशियोंको जोड़ती है।

भारतीय संस्कृतिमें विवाह एक संस्कारके रूपमें प्रतिपादित है। अतः उसको सर्वोत्कृष्ट महत्ता प्रदान की गयी है। विवाहोत्तर ही व्यक्ति गृहस्थ बनता है, पत्नीसे ही घरकी कल्पना की गयी है—'**गृहिणी गृहमुच्यते**' (महा० शान्ति०अ० १४४)। गृहस्थाश्रम ही सभी आश्रमोंमें श्रेष्ठ है, उसीसे अन्य आश्रमवालोंको ऊर्जा प्राप्त होती है। परंतु यह विवाह है क्या? कहनेके लिये तो उद्वाह, विवाह, उपयम, परिणय, पाणिग्रहण आदि सभी शब्द पर्याय-से दिखते हैं, परंतु तात्त्विक अर्थ सबका अलग-अलग है। जैसे कन्याको उसके पितृगृहसे उच्चताके साथ ले जाना 'उद्वाह' है, एक विशिष्ट प्रकारसे कन्याको उसके पितृगृहसे पत्नी बनानेके लिये ले जाना 'विवाह' है, वहीं अग्निकी प्रदक्षिणा करना 'परिणय' कहलाता है। कन्यापक्ष, वरपक्ष और समाजके समक्ष यदि वर जीवनभरके लिये कन्याका हाथ पकड़ता है तो वह 'पाणिग्रहण' कहलाता है। इसी प्रकार यम-नियमपूर्वक यदि वर कन्याको अपने निकट लाता है तो उसे 'उपयम' नामसे पुकारा जाता है। तात्पर्य यह है कि ये सभी शब्द अपने-अपने तत्त्वोंको बताते हैं। जिस प्रकार जनक और पिता एकार्थी नहीं हैं, उसी प्रकार ये विवाहादि शब्द भी एक अर्थके बोधक नहीं हैं। किसी-किसी निबन्धग्रन्थके मतमें तो विवाह, पाणिग्रहण, परिणय जहाँ कन्याओंका होता है, वहीं उद्वाह और उपयम वरोंका। भले ही इन सभीमें वर-कन्या दोनोंका होना आवश्यक क्यों न हो।

विवाहोत्तर पति-पत्नी दोनों एक हो जाते हैं, पूर्ण हो जाते हैं। दो आत्मा एक शरीर बन जाते हैं। यहाँतक कि '**शरीरार्धं स्मृता भार्या पुण्यापुण्यफले समा**' (अपरार्कके द्वारा बृहस्पतिके नामसे उद्धृत)। शतपथब्राह्मण (५।२।१।१०)-के अनुसार तो पत्नी अर्धांगिनी ही कहलाती है। जबकि इसे 'जाया' भी कहीं-कहीं कहा गया है; क्योंकि पति पत्नीके ही गर्भसे पुनः पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण करता है—'**आत्मा वै जायते पुत्रः**'। पत्नी पतिको धार्मिक कृत्योंके योग्य बनाती है। वह पुत्र या पुत्रोंकी माता बनती है, जिनसे पूर्वजोंका उद्धार होता है। 'पुं' नाम नरकसे त्राण मिलता है। अतः मानवीय जीवनमें पत्नीका होना आध्यात्मिक, धार्मिक दृष्ट्या भी आवश्यक है। ऋग्वेद (१०।८५।३६, ५।३।२, ५।२८।३, ३।५३।४)-के अनुसार विवाहका उद्देश्य ही गृहस्थ होकर देवोंके लिये यज्ञ करना तथा सन्तानोत्पत्ति करना कहा गया है। जबतक व्यक्ति विवाह नहीं करता, वह न तो सन्तानोत्पत्ति कर सकता है और न यज्ञका अधिकार ही उसे प्राप्त हो सकता है। विवाह एक अनिवार्य संस्कार है। पुरुषोंके लिये जहाँ सभी संस्कारोंका विधान किया गया है, वहीं कन्याके लिये वस्तुतः विवाहके अतिरिक्त अन्य किसी भी संस्कारकी व्यवस्था नहीं है। जैसा कि कहा है—'**कन्याया निष्क्रमो नास्ति वृद्धिश्राद्धं न विद्यते। नामान्नप्राशनं चूडां कुर्यात् स्त्रीणाममन्त्रकम्॥**'

कन्या तीर्थस्वरूपा होती है, अतः इसके लिये पृथक्से कन्यातीर्थका विधान भी किया गया है—'**ततो गच्छेत धर्मज्ञ कन्यातीर्थमनुत्तमम्। कन्यातीर्थे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्॥**' (महा०वन० ८३।११२) जबकि कन्याके सम्बन्धमें त्रिकाण्डशेष नामक ग्रन्थमें यह कहा गया है कि आठ वर्षकी लड़की गौरी नामसे, नौ वर्षकी रोहिणी नामसे, दस वर्षकी कन्या अथवा कन्यका नामसे जानी जाती है और उसके बाद

वह रजस्वला हो जाती है—'**अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी। दशमे कन्यका प्रोक्ता अत ऊर्ध्वं रजस्वला॥**' यहाँ दस वर्षकी लड़कीको भले ही कन्या कहा गया हो, पर कन्यादान जिस लड़कीका होता है वह गौरी और रोहिणी भी है। इन कन्याओंका दान विवाहके माध्यमसे होता है, जो अनेक प्रकारके कहे गये हैं। परंतु उन सभीमें कन्यादान नहीं होता। कन्यादान केवल ब्राह्मविवाहमें ही विहित है।

कन्याका विवाह कौन स्थिर कर सकता है, और कौन उसका दान कर सकता है—इस विषयपर विष्णुधर्मसूत्र (२४। ३८-३९), याज्ञवल्क्य (१। ६३-६४) आदि ग्रन्थोंमें पर्याप्त विचार किया गया है। इसके अनुसार पिता, पितामह, भाई, सकुल्य, कुटुम्ब, बान्धव, माता आदिके नाम क्रमशः आये हुए हैं। याज्ञवल्क्य (१। ६४)-के मतमें तो कन्यादान करना केवल अधिकारमात्र नहीं है, अपितु एक उत्तरदायित्व भी है। समयपर यदि कन्यादान न किया जाय तो भ्रूणहत्याका पाप लगता है।

आश्वलायनगृह्यसूत्र (१। ५। २)-के अनुसार बुद्धिमान् वरको ही कन्यादान करना चाहिये—'**बुद्धिमते कन्यां प्रयच्छेत्**', जबकि आपस्तम्बगृह्यसूत्र (१। ३। २०)-में कहा गया है कि उच्च कुलमें उत्पन्न, सुचरित्र, गुणवान्, ज्ञानी, सुन्दर और स्वस्थ वर कन्यादानके योग्य होता है—'**बन्धुशील-लक्षणसम्पन्नः श्रुतवानरोग इति वरसम्पत्।**' बौधायन भी अपने धर्मसूत्र (४। १। २०)-में लिखते हैं—'**दद्यात् गुणवते कन्यां नग्निकां ब्रह्मचारिणे।**' इसी प्रकार स्मृतिचन्द्रिकाके अनुसार यमने वरके लिये सात गुण गिनाये हैं—कुल, शील, वपु (शरीर), यश, विद्या, धन तथा सनाथता अर्थात् भरा-पूरा परिवार—'**कुलञ्च शीलञ्च वपुर्यशश्च विद्याञ्च वित्तञ्च सनाथताञ्च। एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्॥**' बृहत्पराशरने कुछ नये गुणोंके साथ वरके आठ लक्षण बताये हैं, जिनमें जाति, विद्या, युवावस्था, बल, स्वास्थ्य, सनाथता, अभिकांक्षा (अर्थित्व) एवं धन कहे गये हैं। इस प्रकार वरके गुणोंके सम्बन्धमें भेद चाहे जो भी हो, पर कन्यादान वरके गुणोंको देखकर ही करना चाहिये।

कन्यादानके लिये मनु (मनुस्मृति ४। २४४)-ने जहाँ कुलको सर्वोपरि स्थान दिया है, वहीं उन्होंने दस प्रकारके कुलोंसे सम्बन्ध जोड़नेको मना भी किया है। महाभारत (आदिपर्व १३१। १०, उद्योगपर्व ३३। ११७)-में तो कहा ही गया है कि विद्या, संस्कार आदिकी दृष्टिसे बराबर कुलमें ही कन्यादान करना चाहिये।

जिस प्रकार शास्त्रोंमें वरके लिये चयनका विधान किया गया है, उसी प्रकार कन्याचयनमें बहुत-सी बातें कही गयी हैं। धर्मशास्त्रकारोंके मतमें कन्या वरसे अवस्थामें छोटी होनी चाहिये, वह भी कम-से-कम तीन वर्ष। गौतम, वसिष्ठ, मनु, याज्ञवल्क्य आदिके मतमें विवाह जहाँ समान जातिमें करणीय है, वहीं हिरण्यकेशी (गृह्यसूत्र १। १९। २), गोभिल (गृह्यसूत्र ३। ४। ४) तथा आपस्तम्ब (ध०सू० २। ५। ११। १५) आदिके अनुसार समानगोत्रजा कन्याका वरण निषिद्ध है। इस प्रकार शास्त्रानुसार विधि-विधानसे किया गया कन्यादान महादान है।

कन्यादान

(डॉ० श्रीगोविन्दजी सप्तर्षि)

'कन्यादान' एक ऐसा महान् दान है, जिसकी तुलना किसी भी 'दान' से नहीं की जा सकती। विवाहके जो आठ प्रकार हैं, उनमें ब्राह्मविवाह ही श्रेष्ठ पद्धति है। सालंकृत, सुन्दर वेष-भूषादिसे युक्त कन्याका हाथमें जल लेकर जलधाराके साथ संकल्प छोड़कर योग्य वरको दान करना ही 'कन्यादान' है।

विवाह एक पवित्र संस्कार है। परस्परके आध्यात्मिक सम्बन्धका प्रारम्भिक सोपान है। विवाहके बाद अभिभावकोंके उत्तरदायित्वोंका वरके ऊपर—ससुरालवालोंके ऊपर स्थानान्तरण हो जाता है। अबतक माता-पिता कन्याके भरण-पोषण, विकास, सुरक्षा, सुख-शान्ति, आनन्द-उल्लास आदिका प्रबन्ध करते थे, अब वह प्रबन्ध वर और उसके कुटुम्बियोंको करना होगा। कन्या नये घरमें जाकर परायेपनका अनुभव न करने पाये, उसे स्नेह, सहयोग, सद्भावकी कमीका अनुभव न हो, इसका पूरा ध्यान रखा जाना चाहिये। कन्यादान स्वीकार करते समय—पाणिग्रहणकी

जिम्मेदारी स्वीकार करते समय वर तथा उसके अभिभावकोंको यह बात भली प्रकार अनुभव कर लेनी चाहिये कि उन्हें उन उत्तरदायित्वोंको पूरी जिम्मेदारीके साथ निभाना है।

कन्यादानका अर्थ यह नहीं कि जिस प्रकार कोई सम्पत्ति किसीको बेची या दान कर दी जाती है, उसी प्रकार कन्याको भी एक सम्पत्ति समझकर किसी-न-किसी को चाहे जैसा उपयोग करनेके लिये दे दिया है। यह एक महान् 'दान' है। शास्त्रमें तो यहाँतक वर्णन प्राप्त होता है—

तिस्रः कन्या यथान्यायं पालयित्वा निवेद्य च।
न पिता नरकं याति नारी वा स्त्रीप्रसूयिनी॥

अर्थात् जो तीन कन्याओंको विधिवत् पाल-पोषकर उन्हें योग्य 'वर' को 'दान' करता है, तो उसे नरकको प्राप्ति नहीं होती है। भारतीय संस्कृतिमें कन्याको लक्ष्मीरूपा और वरको विष्णुरूप माना गया है और कन्यादानमें लक्ष्मीरूपा कन्याको विष्णुरूप वरको प्रदान करनेकी भावना है।

कन्याके दानवाक्यमें ब्रह्मलोक प्राप्ति तथा पितरोंके तारणार्थ यह कन्या प्रदान की जा रही है—ऐसी कामना की गयी है—

कन्यां कनकसम्पन्नां कनकाभरणैर्युताम्।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया॥
विश्वम्भरः सर्वभूताः साक्षिण्यः सर्वदेवताः।
इमां कन्यां प्रदास्यामि पितृणां तारणाय च॥

ब्रह्मलोक-प्राप्तिकी कामनासे सभी प्रकारके स्वर्णाभूषणोंसे विभूषित तथा कनकमयी आभावाली इस कन्याको विष्णुरूप आप वरके लिये समर्पित करता हूँ। विश्वका भरणपोषण करनेवाले नारायण, सभी प्राणी तथा सभी देवता इस बातके साक्षी रहें कि पितरोंके उद्धारके लिये मैं इस कन्याको दे रहा हूँ। इस प्रकार विधिपूर्वकसे दी गयी कन्या ही ब्राह्मविवाह है। जो धन देकर क्रय की गयी हो, वह पत्नी नहीं कहलाती। वह न दैवकार्यके योग्य है और न पितृ-कार्यके। वह तो दासी है, ऐसा महर्षि कश्यप कहते हैं—

क्रीता द्रव्येण या नारी न सा पत्न्यभिधीयते।
न सा दैवे न पित्र्ये च दासी तां कश्यपोऽब्रवीत्॥

वहीं यम कहते हैं—कन्याका विक्रय करनेवाले मूर्ख पाप करनेवाले होते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं और अपने सात कुलोंको जला डालते हैं।

कन्याविक्रयिणो मूर्खा इह किल्बिषकारिणः।
पतन्ति नरके घोरे दहन्त्यासप्तमे कुलम्॥

इस प्रकार कन्यादानके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं, आजकल कुछ लोग गर्भमें ही यह पता लगा लेते हैं कि कन्या भ्रूण है तो उसका गर्भपात करा देते हैं, यह सब जघन्य अपराध है; क्योंकि ऐसे लोग 'कन्यादान' के महत्त्वको जानते ही नहीं। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं है कि पुत्र तो केवल एक ही कुलको तारता है, किंतु कन्या दोनों कुलोंको तारती है।

स्वर्णदान—महादान

(श्रीश्रीकृष्णजी मुदगिल)

अग्नि सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है और स्वर्ण अग्निरूप ही है; इसलिये स्वर्णके दानसे सभी देवताओंका दान हो जाता है—

अग्निर्वै देवताः सर्वाः सुवर्णं च तदात्मकम्।
तस्मात् सुवर्णं ददता दत्ताः स्युः सर्वदेवताः॥

(कृत्यकल्पतरु दानकाण्ड)

स्वर्णकी उत्पत्ति अग्निसे ही हुई है, उसमें भी जाम्बूनद नामक स्वर्ण श्रेष्ठ है और वह देवताओंका भूषण भी है। स्वर्णका एक नाम जातरूप भी है। हिरण्य, हेम, रुक्म, कांचन, कनक, तपनीय, चामीकर आदि इसीके नाम हैं। सुवर्ण रत्नोंमें उत्तम रत्न तथा आभूषणोंमें श्रेष्ठ आभूषण है। वह पवित्रोंमें अधिक पवित्र तथा मंगलोंसे भी अधिक मंगलमय है। जो सुवर्ण है, वे ही भगवान् अग्नि हैं और वे ही ईश्वर तथा प्रजापति हैं। अग्नि ही ब्रह्मा, पशुपति, शर्व, रुद्र और प्रजापति हैं। यह सुवर्ण अग्निकी ही सन्तान है—

अग्निर्ब्रह्मा पशुपतिः शर्वो रुद्रः प्रजापतिः।
अग्नेरपत्यमेतद्वै सुवर्णमिति धारणा॥

ब्रह्मासे अग्निकी उत्पत्ति हुई है और अग्निसे सुवर्णकी—

तस्मादग्निपराः सर्वे देवता इति शुश्रुमः।
ब्रह्मणो हि प्रभूतोऽग्नेरग्निरपि च काञ्चनम्॥

इसलिये जो धर्मदर्शी पुरुष स्वर्णका दान करते हैं, वे समस्त देवताओंका ही दान करते हैं। स्वर्णदाताको अन्धकाररहित ज्योतिर्मय लोक मिलते हैं, स्वर्गलोकमें उसका राजाधिराज कुबेरके पदपर अभिषेक किया जाता है। आदित्यपुराणमें कहा गया है कि जो सूर्योदयकालमें विधिपूर्वक मन्त्र पढ़कर स्वर्णका दान करता है, वह अपने पाप और दुःस्वप्नको नष्ट कर देता है और उसका सारा पाप धुल जाता है। जो मध्याह्नकालमें स्वर्णदान करता है, वह अपने भविष्यमें आनेवाले पूर्वकृत पापफलोंको नष्ट कर देता है। जो सन्ध्याकालमें सायं-व्रतका पालन करते हुए स्वर्णदान देता है, वह ब्रह्मा, वायु, अग्नि और चन्द्रमाके लोकोंमें जाता है—

आदित्योदयसम्प्राते विधिमन्त्रपुरस्कृतम्।
ददाति काञ्चनं यो वै दुःस्वप्नं प्रतिहन्ति सः॥
ददात्युदितमात्रे यस्तस्य पाप्मा विधूयते।
मध्याह्ने ददतो रुक्मं हन्ति पापमनागतम्॥
ददाति पश्चिमां सन्ध्यां यः सुवर्णं यतव्रतः।
ब्रह्मवाय्वग्निसोमानां सालोक्यमुपयाति सः॥

स्वर्ण अक्षय द्रव्य है, उसका दान करनेवाले मनुष्यको पुण्यलोकसे नीचे नहीं आना पड़ता। संसारमें उसे महान् यशकी प्राप्ति होती है तथा परलोकमें उसे अनेक समृद्धिशाली पुण्यलोक प्राप्त होते हैं, मृत्युके पश्चात् जब वह परलोकमें जाता है तो उसे अनुपम पुण्यात्मा समझा जाता है, कहीं भी उसकी गतिका प्रतिरोध नहीं होता। इन्द्रसहित सभी लोकपालोंके लोकोंमें उसे शुभ सम्मान प्राप्त होता है साथ ही वह इस लोकमें यशस्वी एवं पापरहित होकर आनन्द भोगता है।

पूर्वकालमें अग्निने सम्पूर्ण लोकोंको भस्म करके अपने वीर्यसे स्वर्णको प्रकट किया था, उसीका दान करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। स्वर्णका दान उत्तम फल देता है; क्योंकि दानके लिये वह सर्वोत्तम है। स्वर्ण अग्नि और सोमरूप है। सारे जगत्का मन्थन करके जो तेजकी राशि प्रकट होती है, वह स्वर्ण है। यह सभी रत्नोंसे उत्तम रत्न माना गया है। इसलिये देवता, गन्धर्व, नाग, राक्षस, मनुष्य और पिशाच—ये सभी स्वर्ण धारण करते हैं। वे सोनेके बने हुए मुकुट, बाजूबन्द तथा अन्य प्रकारसे उसे धारण करते हैं। जगत्में भूमि, गौ तथा रत्न आदि जितनी पवित्र वस्तुएँ हैं, स्वर्ण उनमें सबसे पवित्र माना गया है। पृथ्वी, गौ तथा अन्य जो कुछ भी दान किया जाता है, उन सबसे बढ़कर स्वर्णदान है—

पृथिवीं गाञ्च दत्त्वेह तथान्यदपि किञ्चन।
विशिष्यते सुवर्णस्य दानं परमकं विभो॥

(कृत्यकल्पतरु दानकाण्डमें वसिष्ठका वचन)

सब दक्षिणाओंमें सुवर्णका ही विधान है '**सुवर्णमेव सर्वत्र दक्षिणासु विधीयते**'। अतः जो स्वर्णदान करते हैं, वे सब कुछ दान करनेवाले होते हैं। अतः विद्वान् पुरुष स्वर्णसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं मानते।

सुवर्ण एक विशिष्ट परिमाण (तौल) भी है, जिसका मान सोलह माशा सोनेके बराबर होता है। जो शुद्ध हृदयवाले मनुष्य श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको स्वर्णका दान करते हैं, वे समस्त देवताओंको तृप्त कर देते हैं। अग्निके अभावमें स्वर्णको स्थापित किया जाता है। इसलिये स्वर्णदान करनेवाले मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं। स्वर्णका दान करके मनुष्य शीघ्र ही सूर्य एवं अग्निके मंगलकारी लोकोंमें प्रवेश करते हैं। अतः मनुष्योंको अपनी शक्तिके अनुसार स्वर्णदान अवश्य करना चाहिये—

'तस्मात् स्वशक्त्या दातव्यं काञ्चनं भुवि मानवैः।'

सुवर्णदानके सम्बन्धमें एक श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो अनेक पुराणों तथा स्मृतियों आदिमें प्रायः यथावत् रूपमें प्राप्त होता है, जिसका भाव यह है कि सुवर्ण अग्निकी सन्तान है, पृथ्वी विष्णुकी पुत्री (पृथु-अवतारमें) है और गौएँ सूर्यकी पुत्री हैं, जो इनका दान करता है, उसने तीनों लोकोंका दान कर लिया—ऐसा समझना चाहिये—

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः।
लोकत्रयं तेन भवेत् प्रदत्तं यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात्॥

(हेमाद्रिमें कालिकापुराण)

षोडशमहादानोंमें हिरण्याश्वदान, हेमहस्तिरथदान, हेमधरादान, हिरण्यगर्भदान, कनककल्पलतादान—ये सब सुवर्णसे सम्बद्ध हैं। ऐसे ही पर्वतदानोंमें कनकाचल या सुवर्णाचलका दान होता है। धेनुदानमें सुवर्णकी धेनु बनाकर दान की जाती है। प्रायश्चित्त व्रतोंमें सुवर्णकी विशेष महिमा है। सुवर्णका स्पर्श तथा सुवर्णयुक्त जलको शुद्धिका साधन बताया गया है। सुवर्णदानका प्रार्थना-मन्त्र इस प्रकार है—

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

प्राणदान

(डॉ० श्रीरामकृष्णजी सराफ)

भारतीय संस्कृतिमें दानकर्मको मानवका सर्वोत्कृष्ट गुण माना गया है। दानवृत्तिसे मानवमें उदात्त गुणोंका सहज विकास होता है। दानी व्यक्तिका अन्तःकरण निर्मल होता है। वह दयालु तथा शीलसम्पन्न होता है। परदुःखकातरता, परोपकार, त्यागवृत्ति, कर्तव्यबुद्धि तथा सेवाधर्म आदि सात्त्विक गुणोंका उसमें सहज विस्तार होता है। लोभ, कृपणता, आसक्ति आदि हेय वृत्तियोंसे वह विमुक्त रहता है। अभिमान उसको स्पर्श नहीं कर पाता। अपने मनमें उसे सदा सन्तोषकी अनुभूति होती है। दानकर्ममें दानीको अनिर्वचनीय आनन्दकी उपलब्धि होती है। दानीमें निष्कामभाव अथवा निःस्वार्थवृत्ति होना परमावश्यक है। दानी पुरुष यशःकामनासे दूर रहता है। परहित-सम्पादन ही उसका धर्म होता है।

भारतीय वाङ्मय दानकी महिमासे ओतप्रोत है। दानका महत्त्व केवल हमारे देशमें रहा हो, ऐसी बात नहीं, विश्वकी विभिन्न संस्कृतियोंमें भी समान रूपसे दानके महत्त्वको स्वीकारा गया है। आज भी बाहरके अनेक देशोंमें दानवृत्ति वहाँकी संस्कृतिका अंग बनी हुई है। ये देश चाहे पूर्वके हों या पश्चिमके। हमारे देशमें जितने भी हर्षोल्लासके पर्व, प्रसंग/उत्सवादि मनाये जाते हैं, दानकर्मका उनमें प्रमुख स्थान रहता है। दुःखके प्रसंगोंमें भी दानका महत्त्व है।

दानका कोई एक स्वरूप निर्धारित नहीं है। देश, काल, पात्र और परिस्थितिके अनुसार इसका स्वरूप निर्धारित होता है। उस आधारपर दानके स्वरूप भी विविध हो जाते हैं। इनमेंसे कुछ प्रमुख हैं—भूखेको भोजनदान, प्यासेको जलदान, वस्त्रविहीनको तन ढकनेके लिये वस्त्रदान, विपन्न छात्रको उसकी शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्तिहेतु पुस्तकदान, घायल/रुग्ण व्यक्तिको आवश्यकता होनेपर रक्तदान आदि। दानकी सीमा यहीं समाप्त नहीं हो जाती। परिस्थितिके अनुरूप दानकी स्थिति और भी निर्मित हो जाती है। आवश्यक नहीं कि वह उपर्युक्त प्रकारोंमेंसे ही कोई हो। नदीमें अचानक डूबते हुए व्यक्तिको देखकर किसी व्यक्तिका अपने प्राणोंकी चिन्ता न करते हुए तत्काल नदीमें कूदकर उसकी जान बचा लेना डूबते व्यक्तिको जीवनदान/प्राणदान देनेका उदाहरण है।

दान-प्रसंगमें पात्रकी पात्रतापर भी दाताको विचार करना उचित होता है। दान यदि किसी असतपात्र/कुपात्रको पहुँच जाय, तो दानका उद्देश्य विफल हो जाता है। विद्यादानके विषयमें मनुस्मृतिका स्पष्ट वचन है कि जबतक कोई अपना जिज्ञासुभाव प्रकट न करे अथवा जबतक उसमें तदनुकूल आचरणकी अभिव्यक्ति न हो, तबतक विद्वान्‌को ज्ञान होते हुए भी ऐसे व्यक्तिको विद्याका दान नहीं करना चाहिये, बल्कि अज्ञानीकी तरह आचरण करना चाहिये—

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्॥

(मनु० २।११०)

दानकी परम्परा इस देशमें प्राचीनकालसे चली आ रही है। राजा हरिश्चन्द्रद्वारा अपने वचनकी रक्षाहेतु अपना समस्त राजपाट दान कर देना अपने-आपमें दानकी अलौकिक घटना है। महादानी कर्णका अपने वचनकी रक्षा हेतु अपने स्वयं की किंचित् भी चिन्ता किये बिना अपने कवच-कुण्डलोंको दान कर देना भी अपने-आपमें विलक्षण उदाहरण है। इसी प्रकार महाराज शिबिका एक कपोतके प्राणोंको बचानेहेतु बाजपक्षीको अपने शरीरका माँस अर्पित कर देना प्राणदानकी अपूर्व घटना है।

महाभारतके वनपर्वके १३१वें अध्यायमें उल्लेख आता है कि महाराज शिबि अपनी उदारता, दृढ़ निश्चय तथा दयालुताके लिये विख्यात थे। उनकी कीर्ति विश्वविदित थी। एक समय उनकी परीक्षा लेनेके लिये कपोतके रूपमें अग्निदेव तथा बाजपक्षीके रूपमें इन्द्रदेव उनके यहाँ उपस्थित हुए। बाजपक्षी कबूतरको मारकर उसका

भक्षण करना चाहता था और कबूतर अपने प्राणोंकी रक्षा हेतु महाराज शिबिसे निवेदन कर रहा था। दया-द्रवित महाराज शिबिने बाजसे कबूतरको छोड़ देनेका आग्रह किया। किंतु बाज अपने शिकारको छोड़नेके लिये तैयार नहीं था। इसपर राजा शिबिने कबूतरके वजनके बराबरका मांस अपने शरीरसे देनेका प्रस्ताव बाजके समक्ष रखा। बाजने अपनी स्वीकृति दे दी। तदनुसार कबूतरको तराजूके एक पलड़ेपर बैठाया गया और दूसरे पलड़ेपर राजा शिबिने अपने शरीरका मांस काट-काट कर रखना प्रारम्भ किया। किंतु कबूतरके वजनके बराबर मांसकी पूर्ति हो ही नहीं रही थी। महाराज शिबि अपने शरीरसे मांस काट-काटकर तुलापर रखे जा रहे थे फिर भी वजनकी पूर्ति नहीं हुई। अतः महाराज शिबि स्वयं तुलापर बैठ गये। इसपर आकाशसे पुष्प-वृष्टि हुई। महाराज शिबिकी दयालुता और प्राणिरक्षाकी भावनासे प्रसन्न हुए दोनों पक्षी अपने मूल स्वरूपमें—इन्द्र और अग्निके रूपमें प्रकट हो गये तथा उन्होंने महाराज शिबिकी दया एवं अद्‌भुत दानशीलताकी सराहना की। पर-प्राणरक्षा हेतु अपने शरीरके मांसको दान करनेकी निर्मल प्रवृत्तिसे महाराज शिबिकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैल गयी। महाराज शिबिने अपने जीवनमें सदा दुःखसन्तप्त प्राणियोंके दुःख-निवारणकी जो कामना की, वह निम्न भावसे सम्पन्न थी—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

रामायणमें वृद्ध जटायुका प्रसंग है। वहाँ किसी आततायीके पंजेसे एक असहाय नारीको मुक्त करानेके लिये एक विहंगयोनिधारी अपने प्राणोंको दाँवपर लगा देता है। अपने चौदह वर्षके वनवासकालमें श्रीराम, लक्ष्मण और सीता पंचवटीमें एक पर्णकुटीमें निवास कर रहे थे। एक समय कुटीमें राम, लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें लंकापति रावण साधुके वेशमें भिक्षायाचनाके बहाने वहाँ पहुँचा और उस स्थानको सुनसान पाकर उसने सीताका अपहरण कर लिया तथा लंकाकी ओर वह प्रस्थित हो गया। वृद्ध जटायुने देखा कि आततायी रावण रघुवंशकी कुलवधू सीताका अपहरणकर अपने रथपर बैठाकर लंका लिये जा रहा है। सीताका क्रन्दन स्वर सुनकर सबसे पहले उसने सीताको सान्त्वना दी और विश्वास दिलाया कि वह आततायी रावणको मारकर उसे मुक्त करा लेगा—

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा॥

(रा०च०मा० ३।२९।९)

इसके बाद पहले तो उसने रावणको इस अनैतिक कृत्यको न करनेका परामर्श दिया, किंतु जब रावणने अपनी हठ नहीं छोड़ी तो उसने उसे युद्धके लिये ललकारा। दोनोंके बीच घमासान युद्ध होने लगा। दोनोंने एक-दूसरेपर घातक प्रहार किये। रावणने शस्त्रोंका प्रयोग किया तथा जटायुने अपनी तीक्ष्ण चोंच और पैने पंजोंका। इस भीषण संघर्षमें उसने रावणका धनुष तोड़ डाला। उसका रथ नष्ट कर दिया। अश्वोंसहित सारथिका वध कर दिया। रावण धराशायी हो गया—

स भग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अङ्केनादाय वैदेहीं पपात भुवि रावणः॥

(वाल्मीकि० ३।५१।१९)

फिर भी सीताको लेकर वह आकाशकी ओर उड़ा। जटायुने उसका पीछा किया और अपनी नुकीली चोंच तथा पैने पंजोंसे रावणको क्षत-विक्षत कर दिया। इससे क्रुद्ध हुए रावणने भी जटायुपर घातक प्रहार किये और अपनी तलवारसे उसके पंख कतर दिये। जटायु भूमिपर गिर पड़ा।

'काटेसि पंख परा खग धरनी।'

(रा०च०मा० ३।२९।२२)

इसी बीच रावण सीताको लेकर लंकाकी ओर प्रस्थित हो गया। जटायुके शरीरसे निरन्तर रक्तस्राव हो रहा था। वह अपने जीवनके अन्तिम क्षणकी ओर बढ़ रहा था। उसके प्राणपखेरू सम्भवतः रामके दर्शनके लिये रुके हुए थे। सीताको खोजते हुए श्रीराम अपने अनुजसहित उस स्थलपर पहुँचे। जटायुने मरणासन्न स्थितिमें ही श्रीरामको सारी स्थितिसे अवगत करा दिया तथा श्रीरामको लंका-

विजयका आशीर्वाद प्रदानकर अपने नेत्र सदाके लिये मूँद

लिये। श्रीरामने जटायुकी मृत्युपर प्रभूत सन्ताप किया और उसका अन्तिम संस्कार स्वयं अपने हाथोंसे किया—

'तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥'

(रा०च०मा० ३।३२)

समस्त विश्वके सांस्कृतिक इतिहासमें जटायुके बलिदानकी घटना पहली है, जहाँ एक खगयोनिधारीने नरतनधारी (नारी)-के सतीत्व-सम्मानकी रक्षामें अपने प्राणोंका दान दिया हो। जटायुका यह प्राणोत्सर्ग विश्वके सांस्कृतिक इतिहासमें सदा अंकित रहेगा।

भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें प्राणदानकी इन घटनाओंमें एक तथ्य स्पष्ट होता है कि परिस्थितियाँ भिन्न हो सकती हैं, किंतु दयाभाव, कर्तव्य-निष्पादनवृत्ति तथा दानप्रवृत्ति (प्राणोत्सर्गभाव) सबके हृदयोंमें समान रूपसे उपस्थित है। दानवृत्ति इस देशमें सर्वश्रेष्ठ सात्त्विक गुण माना गया है। उसमें भी प्राणदानका स्थान भारतीय संस्कृतिमें सर्वोपरि है।

यह विडम्बना है, कि वर्तमान युगमें हमारे समस्त सांस्कृतिक मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं। जिस देशमें दान और दया-जैसे उदात्त मूल्योंकी पवित्र गंगा बहती थी, वहीं आज स्वार्थ, लोभ, अत्याचार, अनाचार, हिंसा-जैसी हृदयविदारक घटनाओंने संस्कृति-जाह्नवीके पवित्र जलको प्रदूषित कर रखा है। इस विडम्बनाको दूर करना होगा और अपने देशको पुनः उसी रूपमें प्रतिष्ठित करना होगा, जिसके लिये कहा गया है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

'नास्ति अहिंसासमं दानम्'

(श्रीअमितकुमारजी मिश्र)

'मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च।'

(अथर्व० ३।२९।६)

अर्थात् मनुष्य और पशुओंको मन, वाणी एवं कर्मसे कष्ट न दो। अपनी विभूतियोंके वर्णनमें भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीसे कहते हैं—

'धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः।'

(श्रीमद्भा० ११।१६।२६)

धर्मोंमें कर्म-संन्यास अथवा प्राणियोंको अभयदान रूप सच्चा संन्यास हूँ।

सभी वर्णोंका साधारण धर्म यह है कि मन, वाणी और शरीरसे किसीकी हिंसा न करे। सत्यपर दृढ़ रहे, चोरी न करे, काम-क्रोध-लोभसे बचे तथा जिन कर्मोंके करनेसे प्राणियोंका हित हो, वही करे—

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥

(श्रीमद्भा० ११।१७।२१)

ब्रह्मवादी पुरुषोंने मन, वाणी तथा कर्मसे हिंसा न करना तथा मांस-भक्षण नहीं करना—इन चार उपायोंसे अहिंसा धर्मका पालन बतलाया है। जो मनुष्य सभी भूत-प्राणियोंको अपने ही समान समझता है, किसीपर प्रहार नहीं करता और क्रोधको अपने वशमें रखता है वही परलोकमें उत्तम गति प्राप्त करता है। धर्मका संक्षिप्त लक्षण यह है कि जो बात स्वयंको अच्छी न लगे, वह दूसरोंके प्रति नहीं करनी चाहिये। जैसे एक मनुष्य दूसरे प्राणीपर आक्रमण करता है, वैसे ही अवसर आनेपर दूसरे भी उसपर आक्रमण करते हैं। धर्मशास्त्रोंमें हिंसा-दोषके प्रधान तीन कारण बतलाये गये हैं—

त्रिकारणं तु निर्दिष्टं श्रूयते ब्रह्मवादिभिः।
मनो वाचि तथाऽऽस्वादे दोषा ह्येषु प्रतिष्ठिताः॥

(महा० अनु० ११४।९)

मन, वाणी तथा आस्वाद—ये तीन ही हिंसा-दोषके

आधार हैं।

इस जन्ममें जिस जीवकी हिंसा होती है, वह दूसरे जन्ममें सदा ही घातकका वध करता है। इस कारण शास्त्रोंमें सर्वत्र अहिंसाका उपदेश दिया गया है। चूँकि अपनी आत्मासे बढ़कर प्रियतर वस्तु दूसरी नहीं है, अतः मनुष्य जैसे अपने ऊपर दया चाहता है, उसी प्रकार दूसरोंपर भी दया करे। महाभारतका कथन है—

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परं फलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्॥

(महा० अनु० ११६। २८-२९)

अहिंसा परम धर्म है; अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम तप है। अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है तथा अहिंसा ही परम सुख है।

यज्ञोंमें जो दान दिया जाता है; तीर्थोंमें जो स्नान किया जाता है तथा सम्पूर्ण दानोंका जो फल है, वह सब मिलकर भी अहिंसाकी बराबरी नहीं कर सकता। हिंसा नहीं करनेवाला मनुष्य सभी प्राणियोंका माता-पिता बन जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—यदि हिंसा और उसके फल मांस-भक्षणमें राग ही हो, उसका त्याग सम्भव नहीं हो तो यज्ञमें ही हिंसा करे—यह परिसंख्या विधि है। यह स्वाभाविक प्रवृत्तिका संकोच है। यह अपूर्व-विधि नहीं है। विषयलोलुप पुरुष हिंसाका खिलवाड़ करते हैं तथा दुष्टतावश अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये वध किये गये पशुओंके मांससे यज्ञ करके देवता-पितर तथा भूतपतियोंके यजनका ढोंग करते हैं। (श्रीमद्भा० ११। २१। २९-३०)

वैसे तो कलियुगमें दानको ही श्रेष्ठ माना गया है, परंतु सम्पूर्ण दानोंमें एक ही दान सर्वोत्तम है और वह है—अभयदान। जो मनुष्य चराचर प्राणियोंको अभयदान देता है, वह सब प्रकारके भयसे मुक्त होकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त करता है। अहिंसाके समान न तो कोई दान है और न ही तप है—

'नास्त्यहिंसासमं दानं नास्त्यहिंसासमं तपः।'

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड १८। ४४३)

अहिंसाके द्वारा ही सभी धर्म प्राप्त हो जाते हैं। चूँकि मन, वाणी और कर्मसे हिंसा नहीं करना अहिंसा धर्म कहलाता है; अतः भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीसे कहते हैं—

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥

(श्रीमद्भा० ११। २९। १९)

मेरी प्राप्तिके जितने साधन हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ साधन है—समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें मन, वाणी और शरीरकी समस्त वृत्तियोंसे मेरी ही भावना की जाय।

अगर सभी भूत-प्राणियोंके हृदयमें भगवान् रहते हैं—ऐसी भावना बन जाय तो अहिंसा धर्मका स्वतः पालन हो जायगा—

लोके यः सर्वभूतेभ्यो ददात्यभयदक्षिणाम्।
स सर्वयज्ञैरीजानः प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम्॥

(महा० शान्ति० २६२। २९)

जो जगत्में सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयकी दक्षिणा देता है, उसने मानो समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया है तथा उसे भी सब ओरसे अभयदान प्राप्त हो जाता है। पद्म-पुराण (सृष्टिखण्ड ८२। ३९)-में भी ये बातें स्पष्ट की गयी हैं—

सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम्।
अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम्॥

सभी दानोंमें समस्त भूतोंको अभय देना—यही सर्वोत्तम दान है।

दरिद्रको दान दो। धनीको दान देना व्यर्थ है; क्योंकि उसको आवश्यकता नहीं है, इसी कारण वह आनन्दित नहीं होता। आत्मज्ञान, सत्पात्रमें दान और सन्तोषका आश्रय करनेपर ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। असन्तुष्ट मनुष्य किसीको भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता; जो सर्वदा सन्तुष्ट रहता है, वह सबको प्रफुल्ल कर सकता है। जिह्वा पापकी बातें कहनेमें बहुत ही तत्पर रहती है, उसको संयत करना आवश्यक है।—**महात्मा श्रीतैलंग स्वामीजी**

बलिदान-रहस्य

(स्वामी श्रीदयानन्दजी महाराज)

दक्षिणमार्गीय इष्ट-पूजाके षोडश उपचारोंमें तो नहीं, किंतु वामाचारमें नैवेद्यके बाद बलिदान भी उपचारमें सम्मिलित है। भाव यह कि यदि उपासकने उपासनाके अन्तमें सर्वस्व समर्पणकर, पूजकने पूजाके अन्तमें उपास्य—पूज्य इष्टदेवको अपना सब कुछ बलिदान देकर उपास्यदेवसे अपना भेदभाव मिटा न दिया, वह उपास्यमें विलीन, तन्मय होकर तद्रूप न हो गया, उसे '**ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति**', '**शिवो भूत्वा शिवं यजेत्**'—यह भाव न प्राप्त हुआ, '**दासोऽहम्**' का '**दा**' नष्ट होकर '**सोऽहम्**' न रह गया तो पूजाकी पूर्णता ही क्या हुई? इसी कारण बलिदान भी पूजाका एक अंग है। बलिदानके बिना न जगन्माता ही प्रसन्न होती हैं और न भारतमाता ही। जिस देशमें जितने बलिदानी देश-सेवक, देश-नेता उत्पन्न होते हैं, उस देशकी उतनी ही सच्ची उन्नति होती है।

यह बलिदान चार प्रकारका है। सबसे उत्तम कोटिका बलिदान 'आत्म-बलिदान' है। इसमें साधक जीवात्मभावको काटकर परमात्मापर चढ़ा देता है। इस बलिदानद्वारा अज्ञानवश परमात्मासे जीवात्माका जो भेद दीखता है, वह एकाएक नष्ट हो जाता है और साधक स्वरूपस्थित होकर अद्वितीय ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है। जबतक यह न हो सके तबतक द्वितीय कोटिका बलिदान करना चाहिये। इसमें कामरूपी बकरे, क्रोधरूपी भेड़, मोहरूपी महिष आदिका बलिदान किया जाता है। अर्थात् 'षड्रिपुका बलिदान' ही द्वितीय कोटिका बलिदान है। तृतीय कोटिमें इतना न हो सकनेपर किसी-न-किसी इन्द्रियप्रिय वस्तुका बलिदान होता है। प्रत्येक विशेष पूजाके अन्तमें जिस वस्तुपर लोभ होता है उसका बलिदान अर्थात् संकल्पपूर्वक त्याग कर देना चाहिये। यही तृतीय कोटिका बलिदान है। इस प्रकारसे मिठाई, प्याज, लहसुन, मादक वस्तु आदिके प्रति आसक्ति छूट सकती है। यदि ऐसा भी न हो सके तो क्रमशः छुड़ानेके लिये चतुर्थ कोटिका बलिदान है।

मैथुन, मांस-भक्षण, मद्यपान—इनमें लोगोंकी प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। महाराज मनुने भी '**प्रवृत्तिरेषा भूतानाम्**' कहकर इसी सिद्धान्तकी पुष्टि की है; किंतु '**निवृत्तिस्तु महाफला**' अर्थात् मनुष्यको प्रवृत्ति छोड़कर क्रमशः मोक्षफलदायक निवृत्तिकी ओर अग्रसर होना चाहिये। इसी कारण व्यवस्था बाँधकर इन वृत्तियोंको क्रमशः नियमित करते हुए इनसे निवृत्ति करानेके निमित्त विवाह, यज्ञ और सोमपान आदिका विधान राजसिक अधिकारमें किया गया है। यही कारण है कि विवाहके समय स्त्री-पुरुष प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं कि संसारसे कामभाव उठाकर अपनेमें ही केन्द्रीभूत करके क्रमशः निवृत्तिपथके पथिक बनेंगे। राजसिक, वैदिक, तान्त्रिक यज्ञमें हिंसादिका भी यही समाधान है। अर्थात् स्वभावतः सात्त्विकप्रकृति मनुष्योंके लिये यह यज्ञ नहीं है। जो लोग मांस-मद्य आदिका सेवन पहलेसे करते हैं, वे पूजादिके नियममें बँधकर क्रमशः मांसाहार आदि छोड़ दें। जो अबाधरूपसे मांस-मद्यादिका सेवन करते हैं, वे वैसा न करें और संयत होकर क्रमशः ऐसा करें, जिससे उनकी मांस-मद्यकी प्रवृत्ति कम होते-होते अन्तमें बिलकुल छूट जाय, यही इसका वास्तविक रहस्य है। यह सबके लिये नहीं है; परंतु जब वेद पूर्ण ग्रन्थ है तो इसमें केवल सात्त्विक ही नहीं, अपितु सभी प्रकारके अधिकारियोंके कल्याणके लिये विविध विधान होने चाहिये, इसी कारण राजसिक अधिकारीको क्रमशः सात्त्विक बनानेकी ये विधियाँ यज्ञरूपसे शास्त्रोंमें बतायी गयी हैं। ये संयमके लिये हैं, न कि यथेच्छाचारके लिये। किसीके संहार, मारण, मोहन, उच्चाटन आदिके लिये विधिहीन, अमन्त्रक पूजादि तामसिक हैं।

दक्षिणाचारके अनुसार सात्त्विक पूजामें पशु-बलिका विधान नहीं है। राजसमें कूष्माण्ड, ईख, नीबू आदिकी बलि है। केवल वामाचारमें पशु-बलिका विधान है। महाकाल-संहितामें स्पष्ट कहा गया है—

सात्त्विको जीवहत्यां वै कदाचिदपि नाचरेत्।
इक्षुदण्डं च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम्॥
क्षीरपिण्डैः शालिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद् बलिम्॥

'सात्त्विक अधिकारके उपासक कदापि पशु-बलि देकर जीवहत्या न करें, वे ईख, कोहड़ा या वन्य फलोंकी बलि दें अथवा खोवा, आटा या चावलके पिण्डसे पशु बनाकर बलि दें।' यह सब भी रिपुओंके बलिदानका निमित्तमात्र ही है, जैसे कि महानिर्वाणतन्त्रमें कहा है—

'कामक्रोधौ पशू द्वाविमावेव बलिमर्पयेत्।'
'कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत्॥'

काम और क्रोधरूपी दोनों विघ्नकारी पशुओंका बलिदान करके उपासना करनी चाहिये। यही शास्त्रोक्त बलिदान-रहस्य है।

सेवारूपी दान

(श्रीगोपालदास वल्लभदासजी नीमा, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०)

वल्लभसम्प्रदायमें भगवान् बालकृष्णकी मानसी सेवाकी विशेष महिमा है। भगवान्‌में चित्तकी प्रवणता ही सेवा है। इस हेतु भक्त बालकृष्णको अपनी समस्त सेवाएँ अर्पण करता है। इस सेवारूपी दानसे ही उसे भगवान्‌के अनुग्रहसे उनकी भक्ति प्राप्त होती है, जो पुष्टि भक्ति कहलाती है।

दानका अर्थ है देनेका सामर्थ्य। जब भी दानका प्रश्न उठता है तो लोग साधारणतया पहले सोचते हैं कि धनदान अर्थात् रुपये-पैसेका दान। रुपया-पैसा ही तो मात्र धन नहीं है। धनके और भी तो कई प्रकार हो सकते हैं। आपके पास ज्ञान हो, अनुभव हो, खुशी हो, मुसकराहट हो, कोई गुण हो, कोई विशेषता हो, स्नेह-सहानुभूति हो, शारीरिक श्रम हो, जो कुछ भी हो, वह सब धन है—वही दान कीजिये, वही मनुष्योंके कल्याणमें समर्पित कीजिये। यह ईश्वरीय सेवा भी है।

कई लोग सोचते हैं कि उनके पास रुपये-पैसे नहीं हैं या फिर ऐसी कोई भौतिक सम्पन्नता नहीं है। फिर इस स्वर्णिम सूत्रका उपयोगकर कोई जीवनको कैसे समृद्ध करे? परंतु देनेके लिये भौतिक समृद्धिसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है भावकी समृद्धि। दूसरेमें उमंग-उत्साहका संवर्धन करना, उनके लिये भावना और मंगल-कामनाके आशीर्वादोंकी वर्षा, अनेक तरहके शारीरिक-मानसिक सम्बन्धोंका सहयोग इत्यादि जो भी आप दूसरोंकी सेवामें समर्पित कर सकते हैं, कीजिये। ऐसा करनेसे समृद्धिका अवरुद्ध प्रवाह परमात्मासे सहज ही आपकी ओर मुड़ जायगा।

अपने अन्दर यह दृढ़ संकल्प धारण करें कि प्रतिदिन कुछ-न-कुछ या जितना ज्यादा आप कर सकते हैं, उतना अपने सम्बन्ध—सम्पर्कमें आये लोगोंको अवश्य दें। दानका सूक्ष्म सदाव्रत हमेशा चलता रहे। एक फूल, एक प्रेमपूर्ण मुसकान, दो मीठे बोल, शुभ विचार और प्रार्थनाकी मौन अभिव्यक्ति—ये बिना किसी अपेक्षाके आपको सदैवके लिये महादानी बना देंगे। उच्च विचारोंके बीज बोनेसे जीवनमें अनेक उच्चतम विचारोंके फल अपने-आप लगते हैं। इसलिये शुभ भाव और विचारोंकी सौगात लिये बिना आपके पाससे कोई भी खाली हाथ नहीं लौटे। इस विधिको आप अभीसे प्रयोग करना शुरू करें और परिणामोंको देखें, क्या होते हैं? सफल-जीवनका राज इसी कुंजीमें समाहित है।

भूमिदान

प्रभु भी दानकी अपेक्षा रखते हैं अपने भक्तोंसे। बलिके परिप्रेक्षमें भगवान्‌की इस भावनाका परमानन्ददासजीने एक पदमें वर्णन किया है—

बलिके द्वारे ठाड़े वामन।
चारों वेद पढ़त मुख पाठी अति सुमन्द स्वर गावन॥
बानी सुनी बलि बूझन आये अहो देव कहो आवन।
तीन पेंड बसुधा हम मांगे पर्णकुटी एक छावन॥
अहो अहो बिप्र कहा तुम मांग्यो अनेक रतन देहु गामन।
'परमानंद' प्रभु चरन बढ़ायो लाग्यो पीठ नपावन॥

'दधिदान' (गोरसदान)

दधि, माखन, गोरस और छाछ भगवान् श्रीकृष्णके प्रिय खाद्य पदार्थ रहे हैं, अपनी गोकुल-लीलामें भगवान्‌ने इनका अपने सखाओंमें भी खूब वितरण किया। इन प्रिय खाद्य पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये वे परब्रह्म परमात्मा गोपियोंके गृहकार्य करने और उनके कहनेपर नाचनेमें भी संकोच नहीं करते थे। यहाँ एक पदमें भगवान् श्रीकृष्णके गोरसदान माँगनेका सुन्दर वर्णन हुआ है—

'गोवर्धनकी सिखरते हो मोहन दीनी टेर।
अति तरंग सो कहत हैं सब ग्वालिन राखो घेर॥
नागरी दान दे॥
ग्वालिनी रोकी ना रहे हो ग्वाल रहे पचिहार।
अहो गिरिधारी दोरियो सो कह्यो न मानत ग्वार।
मोहन जान दे॥
चली जात गोरस मदमाती मानो सुनत नहीं कान।
दोरि आये मन भावते सो तो रोकी अंचल तान॥
एक भुजा कंकन गहे हो एक भुजा गही चीर।

दान लेन ठाढ़े भये सो तो गहवर कुंज कुटीर॥

× × × ×

तेरो गोरस चाखिवे हो मेरो मन ललचाय।
पूरन ससि कर पायके सो चकोर न धीर धराय॥
मोहन कंचन कलसिका हो लीनी सीस उतार।

'रसिक' उपनामसे श्रीहरिरायचरनने उपर्युक्त पदकी रचना की है। इसी प्रकार अष्टछापके शिरोमणि सन्त कवि भक्त सूरदासजीने भी बालकृष्णद्वारा गोपीसे दहीका दान माँगनेका सुन्दर चित्रण किया है—

गढ़तें ग्वालिनी ऊतरी शीश महीको माट।
आडो कन्हैया है रह्यो रोकी ब्रज बधू बाट॥
नागरी दान दे॥

× × × ×

ले मटुकी आगे धरी परी श्याम के पाँय।
मन भावे सो लीजिये बचे सो बेंचन जाँय॥
सुख बाढ्यो आनंद भयो रही श्याम गुन गाय।
सुन्दर शोभा देखि के 'सूरदास' बलि जाय॥

कृपा-अवलोकन दान

श्रीराधाजी भगवान् श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति हैं। राधा-कृष्ण अभिन्न हैं; परंतु ब्रज-लीलामें श्रीकृष्ण राधाजीसे कृपा-कटाक्षका दान माँगते हैं। अष्टछापके एक अन्य भक्त कवि गोविन्दस्वामीने अपने एक पदमें इस लीलाका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है—

कृपा अवलोकन दान दे री। महादानी वृषभान नंदनी॥
तृषित लोचन चकोर मेरे तुव वदन इन्दू किरण पान दै री।

× × × ×

'गोविन्द' प्रभु पिय चरन परसि कह्यो कछू तो मान दे री॥

भगवान्‌का अनुग्रह ही पुष्टि है। प्रस्तुत पदमें भगवान् कृष्णकी सेवा-भक्तिकी याचना की गयी है—

हौं याचक श्रीवल्लभ तुम्हारो याचन तुमको आयो हो।
महा उदार देत सबहिन को यह सुन के उठि धायो॥

× × × ×

मन प्रसन्न गिरिधरकी सेवा दीजे परम दयाल।
तुम्हारे श्रीमुख वचन सुननको कीजे मनहि मराल॥

'अभौतिक दान' की महानता और वर्तमानमें बढ़ती उसकी प्रासंगिकता

(श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल, एम०ए०, बी०एड०)

कई बार हमारे मनमें दान करनेकी इच्छा होती है, लोगोंको दुःखी देखकर उनके दुःख मिटानेकी चाह होती है, किंतु परिस्थितिवश हम उनकी भौतिक सहायता करनेमें खुदको असमर्थ पाते हैं या अनेक बार भौतिक पदार्थ भी सामनेवालेकी सहायता करनेमें असमर्थ होते हैं, तब क्या हम दान-धर्मका निर्वाह नहीं कर सकते? इस सन्दर्भमें विख्यात रूसी साहित्यकार इवान तुर्गनेवकी निम्नांकित लघुकथा 'दाता और दाता' पढ़नेयोग्य है—

मैं सड़कके किनारे-किनारे जा रहा था कि एक बूढ़े भिखारीने मुझे टोका। लाल सुर्ख और आँसुओंमें डूबी आँखें, नीले होंठ, गन्दे हाथ और सड़ते हुए घाव····। ओह, गरीबीने कितने भयानक रूपसे इसे खा डाला है। उसने अपना सूजा हुआ गन्दा हाथ मेरे सामने फैला दिया। एक-एक करके मैंने अपनी सारी जेबें टटोलीं, लेकिन मुझे न तो अपना बटुआ मिला और न ही घड़ी हाथ लगी, यहाँतक कि रूमाल भी नदारद था····। मैं अपने साथ कुछ भी नहीं लाया था और भिखारीका फैला हुआ हाथ इन्तजार करते हुए बुरी तरह काँप रहा था।

लज्जित होकर मैंने उसका वह गन्दा, काँपता हुआ हाथ पकड़ लिया, 'नाराज मत होना मेरे दोस्त, इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है।' भिखारी अपनी सुर्ख आँखोंसे मेरी ओर देखता रह गया। उसके नीले होंठ मुसकरा उठे और उसने मेरी ठण्डी उँगलियाँ थाम लीं, 'तो क्या हुआ भाई' वह धीरेसे बोला, 'इसके लिये शुक्रिया, यह भी तो मुझे कुछ मिला ही न!' और मुझे ज्ञात हुआ कि मैंने भी अपने उस भाईसे कुछ पा लिया है।

उक्त अत्यन्त मार्मिक और प्रेरणाप्रद लघुकथामें मानवताकी गरिमा शिखरपर है, प्रेमके सागरमें सौहार्दकी

तरंगें ठाठें मार रही हैं और साथ ही दिखता है दानका वह महान् रूप, जिसमें भौतिक वस्तुओंका लेन-देन बिलकुल भी न होनेके बावजूद दान-तत्त्वका मर्म नयी ऊँचाइयाँ छू रहा है।

आज जब हम देखते हैं कि समाजमें आपसी प्रेम-विश्वास, संवेदना-सहानुभूतिपर हृदयहीनताके काले बादल मँडरा रहे हैं, भाग-दौड़भरी जीवन-शैली और गिरते जीवन-मूल्योंके बीच मनुष्यके पास इन बातोंके लिये न तो समय है और न ही उत्कट सदिच्छा, तब इस प्रकारके अभौतिक दानकी विशेष महत्ता और प्रासंगिकता है। ऐसा दान करनेके लिये जेबमें पैसे नहीं, हृदयमें सद्भावना होनी चाहिये। कई बार लोग रुपये-पैसे-जैसी भौतिक चीजोंके आकांक्षी नहीं होते, वे बस इतना चाहते हैं कि कोई उनसे दो मीठे बोल बोल ले, शान्तिसे उनके दिलकी बात सुन ले, उनका दुःख बाँट ले, सहानुभूति जताकर उसपर सांत्वनाका मलहम लगा दे, अपनी बातोंसे उन्हें ठण्डक पहुँचा दे या उसका न्यूनतम सम्मान ही बनाये रखे; ऐसी परिस्थितियोंमें यदि सामनेवालेके हृदयमें थोड़ी भी संवेदनशीलता होगी तो वह ऐसे महान् अभौतिक दानका सुअवसर अपने हाथसे कभी नहीं जाने देगा। ऐसा दान, जिसमें जेबपर भार नहीं पड़ता है, दी हुई चीज (प्रेम, सद्भावना) कम तो होती नहीं, अपितु बाँटनेसे स्वयं भी बढ़ती है और सबके हृदयमें हर्षोल्लासके नये-नये पुष्प खिलाती है। ऐसा दान, जिससे धीरे-धीरे दाता स्वयं ही ग्रहीता भी बनने लगता है और ग्रहीता दाता भी हो जाता है; क्योंकि मानवतासे भरे इस महादानकी धाराएँ दोनों ओरसे दोनों ओरको प्रवाहित होने लगती हैं, वातावरण उदात्त भावनाओंकी क्रीडास्थली बन जाता है।

इसी सन्दर्भमें स्वामी विवेकानन्दजीकी एक बात याद आती है, जो उन्होंने अपनी पुस्तक राजयोगमें कही है, 'प्रत्येक गति वर्तुलाकारमें ही होती है। यदि तुम एक पत्थर लेकर आकाशमें फेंको, उसके बाद यदि तुम्हारा जीवन काफी हो और पत्थरके मार्गमें कोई बाधा न आये, तो घूमकर वह ठीक तुम्हारे हाथमें वापस आ जायगा। ....प्रेम और घृणाके बारेमें भी यही नियम लागू होता है। अतएव किसीसे घृणा करनी उचित नहीं; क्योंकि यह घृणा, जो तुमसे निकलेगी, कालान्तरमें घूमकर फिर तुम्हारे ही पास वापस आयेगी। यदि तुम मनुष्योंसे प्यार करो, तो वह प्यार घूम-फिरकर तुम्हारे पास ही लौट आयेगा।'

उक्त उद्धरणके प्रकाशमें स्पष्ट है कि सद्भावनारूपी अभौतिक दान न केवल ग्रहीताका कल्याण करता है, अपितु वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे देखें तो यह आत्मकल्याणका भी बीजारोपण है। ऐसेमें जिस अभौतिक दानसे ग्रहीताका कल्याण हो, जो दान दाताकी उत्तम नियतिका आधार बनता हो, जिस दानसे समाजमें प्रेम और सौहार्दकी रसधाराएँ वातावरणको प्लावित करती हों, जिस दानमें न हर्र लगे, न फिटकरी फिर भी रंग चोखा हो, ऐसा श्रेष्ठ दान करनेसे हम पीछे क्यों हटें?

एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाकी दानोंमें तो आज सुपात्रका मिलना भी कठिन हो गया है, लेकिन इस प्रकारके अभौतिक दानके सुपात्र हमारे दैनिक जीवनमें पग-पगपर हमारे सम्पर्कमें आते हैं। एक मेहनती मजदूर या रिक्शावाला, जिसे हम सम्मानपूर्वक सम्बोधित करके सुख पहुँचा सकते हैं; अकेलेपनसे जूझते लोग, जिनके पास थोड़ा समय गुजारकर हम उन्हें मानसिक शान्ति दे सकते हैं; अपने प्रियजन या प्रिय वस्तुके विछोहसे शोक-संतप्त किसी मनुष्यको हम सान्त्वना दे सकते हैं।

और तो और यदि हमारे प्रत्यक्ष सम्पर्कमें ऐसा कोई सुपात्र भी न आये तो भी हम ऐसा अभौतिक दान बिना कहीं गये, बिना किसीसे मिले या बोले, एकान्त कमरेमें बैठकर भी कर सकते हैं, अपने सद्भावना-युक्त शुभ विचारों, अपनी सर्वहितकारी प्रार्थनाओं और सदिच्छाओंकी मानसिक तरंगोंको वातावरणमें प्रक्षेपित-प्रवाहित करके।

तो फिर देर किस बात की है; आइये, चाहे अपना कर्तव्य मानकर परोपकारकी भावनासे या समाज-कल्याणकी भावनासे, चाहे अपनी शुभ नियतिके निर्माणहेतु आत्म-कल्याणकी भावनासे या फिर तत्काल सन्तोषप्राप्तिकी चाहतसे आजसे और अभीसे संसारके कण-कणको ऐसे अभौतिक दानसे रससिक्त करनेका प्रयास आरम्भ कर दें।

सोलह महादान

शास्त्रोंमें दानकी अपरिमित महिमा आयी है और दानमें देय-द्रव्योंकी भी संख्या अपरिगणित ही है, किंतु उसमें विशेष बात यह है कि देयवस्तुमें दाताका स्वत्वाधिकार होना चाहिये। पुराणों तथा स्मृतियोंमें दानके कुछ पदार्थोंकी संख्या भी नियत रूपमें आयी है, जैसे सोलह महादान, दसदान, अष्टदान, पंचधेनुदान आदि। यहाँ सोलह महादानोंकी संक्षेपमें चर्चा प्रस्तुत है—

एक बारकी बात है, सूतजीसे ऋषियोंने प्रश्न किया कि हे सूतजी! सभी शास्त्रोंमें न्यायपूर्वक धनार्जन, सत्प्रयत्नपूर्वक उसकी वृद्धि, उसकी रक्षा और सत्पात्रको उसको दान करना—कहा गया है तो कृपया बतायें कि वह कौन-सा दान है, जिसके करनेसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है?

ऋषियोंके प्रश्न सुनकर सूतजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—ऋषियो! वह दान सामान्य दान नहीं, अपितु महादान कहलाता है। वह सर्वश्रेष्ठ दान है, वह सभी पापोंको नष्ट करनेवाला तथा दुःस्वप्नोंका विनाशक है—**'सर्वपापक्षयकरं नृणां दुःस्वप्ननाशनम्॥'** (मत्स्यपुराण २७४।४) उस महादानको भगवान् विष्णुने पृथ्वीलोकमें सोलह रूपोंमें विभक्त बताया है। वे सभी सोलह दान पुण्यप्रद, पवित्र, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले, सभी पापों के विनाशक तथा अत्यन्त मङ्गलकारी हैं। वे दान ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि देवताओंद्वारा पूजित हैं—

यत्तत्षोडशधा प्रोक्तं वासुदेवेन भूतले।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापहरं शुभम्॥
पूजितं देवताभिश्च ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः।

(मत्स्यपु० २७४।५-६)

इन दानोंकी अतीव महिमा है। सकाम इनका सम्पादन करनेपर जो फल है, वह तो है ही; जो निष्काम भावसे इन सोलह महादानोंको करता है, उसे पुनः इस मर्त्यलोकमें आना नहीं पड़ता, वह मुक्त हो जाता है—

षोडशैतानि यः कुर्यान्महादानानि मानवः।
न तस्य पुनरावृत्तिरिह लोकेऽभिजायते॥

(मत्स्यपु० २८९।१६)

ये सोलह दान इस प्रकार हैं—

(१) तुलापुरुषदान, (२) हिरण्यगर्भदान, (३) ब्रह्माण्डदान, (४) कल्पवृक्षदान, (५) गोसहस्रदान, (६) हिरण्यकामधेनुदान, (७) हिरण्याश्वदान, (८) हिरण्याश्वरथदान, (९) हेमहस्तिरथदान, (१०) पञ्चलांगलकदान, (११) धरादान, (१२) विश्वचक्रदान, (१३) कल्पलतादान, (१४) सप्तसागरदान, (१५) रत्नधेनुदान तथा (१६) महाभूतघटदान।

सोलह महादानोंकी परम्परा—प्राचीन कालमें इन दानोंको भगवान् वासुदेवने किया था, उसके बाद राजर्षि अम्बरीष, भृगुवंशी परशुरामजी, सहस्रबाहुवाले राजा कार्तवीर्यार्जुन, भक्तराज प्रह्लाद, आदिराज पृथु तथा भरत आदि अन्यान्य श्रेष्ठ राजाओंने किया था। ये सभी दान सामान्य सामर्थ्यवालेके लिये कठिन प्रतीत होते हैं। अतः साधनसम्पन्न पुरुषोंद्वारा अपने कल्याणके लिये इन महादानोंका अनुष्ठान होता रहा है। इन दानोंमेंसे यदि एक भी दान सम्पन्न हो जाय तो उसके सत्फलकी इयत्ता नहीं है। इन दानोंको करनेसे पूर्व भगवान् वासुदेव, शंकर और भगवान् विनायककी आराधना करनी चाहिये तथा ब्राह्मणोंकी आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये। किसी तीर्थ, मन्दिर या गोशालामें, कूप, बगीचा या नदीके तटपर, अपने घरपर या पवित्र वनमें अथवा पवित्र तालाबके किनारे इन महादानोंको करना चाहिये। चूँकि यह जीवन अस्थिर है, सम्पत्ति अत्यन्त चंचल है, मृत्यु सर्वदा केश पकड़े खड़ी है; इसलिये दानादि धर्माचरण करना चाहिये—

अनित्यं जीवितं यस्माद् वसु चातीव चञ्चलम्।
केशेष्वेव गृहीतः सन्मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

(मत्स्यपु० २७४।२४)

महादानोंको कब करे—मत्स्यभगवान्ने मनुजीको बताया है कि हे राजन्! संसार-भयसे भयभीत मनुष्यको अयनपरिवर्तनके समय (कर्क तथा मकरकी संक्रान्ति), विषुवयोगमें, पुण्यदिनों, व्यतीपात, दिनक्षय तथा युगादि तिथियोंमें, सूर्य-चन्द्रग्रहणके समय, मन्वन्तरके प्रारम्भमें, संक्रान्तिके दिन, द्वादशी तथा अष्टमी (हेमन्त, शिशिर ऋतुओंके कृष्णपक्षकी चारों अष्टमी) तिथियों तथा यज्ञ एवं विवाहके अवसरपर, दुःस्वप्न देखनेपर या किसी अद्भुत उत्पातके होनेपर यथेष्ट

द्रव्य तथा ब्राह्मणके मिलनेपर अथवा जब जहाँ श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, इन दानोंको करना चाहिये।

इन सोलह महादानोंमें तुलादान या तुलापुरुषदान सर्वप्रथम परिगणित है, इसकी विस्तृत विधि पुराणोंमें बतायी गयी है। तुलापुरुषदानमें तुलाका निर्माणकर तुलाके एक ओर तुलादान करनेवाला तथा दूसरी ओर दाताके भारके बराबरकी वस्तु तौलकर ब्राह्मणको दानमें दी जाती है। तुलादानमें इन्द्रादि आठ लोकपालोंका विशेष पूजन होता है। तुलामें अधिरोहणसे पूर्व तुलादाताको श्वेत वस्त्र धारणकर अंजलिमें पुष्प लेकर उस तुलाकी तीन बार परिक्रमा करनी चाहिये और इन मन्त्रोंसे उसे अभिमन्त्रित करना चाहिये—

नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमास्थिता॥
साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना।
एकतः सर्वसत्यानि तथानृतशतानि च॥
धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापितासि जगद्धिते।
त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता॥
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते।
योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः॥
स एकोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नमः।
नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक॥
त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात् संसारकर्दमात्।

(मत्स्यपु० २७४।५९—६४)

हे तुले! तुम सभी देवताओंकी शक्तिस्वरूपा हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम सत्यकी आश्रयभूता, साक्षिस्वरूपा, जगत्को धारण करनेवाली और विश्वयोनि ब्रह्माद्वारा निर्मित की गयी हो, जगत्की कल्याणकारिणि! तुम्हारे एक पलड़ेपर सभी सत्य हैं, दूसरेपर सौ असत्य हैं। धर्मात्मा और पापियोंके बीच तुम्हारी स्थापना हुई है। तुम भूतलपर सभी जीवोंके लिये प्रमाणरूप बतलायी गयी हो। मुझे तोलती हुई तुम इस संसारसे मेरा उद्धार कर दो, तुम्हें नमस्कार है। देवि! जो ये तत्त्वोंके अधीश्वर पचीसवें पुरुष भगवान् हैं, वे एकमात्र तुम्हींमें अधिष्ठित हैं, इसलिये तुम्हें बारम्बार प्रणाम है। तुलापुरुष नामधारी गोविन्द! आपको बारम्बार अभिवादन है। हरे! आप इस संसाररूपी पंकसे हमारा उद्धार कीजिये।

तदनन्तर दाता तुलामें आरोहणकर स्थित हो जाय। ब्राह्मणगण तुलाके दूसरी ओर स्वर्ण आदि (तुलनीय द्रव्य) तबतक रखते जायँ, जबतक तराजूका वह पलड़ा भूमिपर स्पर्श न कर ले।

तुलाको नमस्कार—तदनन्तर निम्न मन्त्रसे तुलाको नमस्कार करना चाहिये—

नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि।
पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना॥
त्वया धृतं जगत् सर्वं सहस्थावरजङ्गमम्।
सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि॥

(मत्स्यपु० २७४।६९-७०)

सभी जीवोंकी साक्षीभूता सनातनी देवि! तुम पितामह ब्रह्माद्वारा निर्मित हुई हो, तुम्हें नमस्कार है। तुले! तुम समस्त स्थावर-जंगमरूप जगत्को धारण करनेवाली हो, सभी जीवोंको आत्मभूत करनेवाली विश्वधारिणि! तुम्हें नमस्कार है।

इसके अनन्तर तुलासे उतरकर उस स्वर्णका दान कर देना चाहिये। यह बताया गया है कि बुद्धिमान् पुरुष उस तौले हुए स्वर्णको अधिक देरतक अपने घरमें न रखे **'न चिरं धारयेद् गेहे सुवर्णं प्रोक्षितं बुधः॥'** (मत्स्यपुराण २७४।७३) ऐसा करनेसे अर्थात् देरतक रखनेसे वह भय, व्याधि तथा शोक आदिको देनेवाला होता है। अतः शीघ्र ही उसका दान कर देना चाहिये। उसे शीघ्र ही दूसरेको दे देनेसे मनुष्य श्रेयका भागी हो जाता है। तुलापुरुषदानकी महिमामें कहा गया है कि तुलापुरुषका दान करनेवाला विष्णुलोकको जाता है। इतना ही नहीं, इस दानकी प्रक्रियाको जो देखता-सुनता है, पढ़ता है अथवा उसका स्मरण करता है, वह भी इन्द्र होकर दिव्य लोक प्राप्त करता है।

दानमयूखमें बताया गया है कि रत्न, रजत (चाँदी), लौह आदि धातु, घृत, लवण, गुड़, शर्करा, चन्दन, कुमकुम, वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, कर्पूर, फल तथा अन्नादि द्रव्योंसे भी विविध कामनाओंकी पूर्तिके लिये तुलादान किया जाता है। इसी प्रकार विविध रोगोंकी शान्तिके लिये तथा मृत्युंजय देवताकी प्रसन्नताके लिये भी विविध वस्तुओंसे तुलादान किया जाता है, सभी रोगोंकी शान्तिके लिये लौहसे तुलादान किया जाता है—**'अथ लोहं प्रदातव्यं सर्वरोगोपशान्तये'** (दानमयूखमें गरुडपुराणका वचन)।

महादानोंमें दूसरा महादान हिरण्यगर्भदान है, इसकी विधि भी तुलापुरुषदानके समान है। इसमें सुवर्णमय कलशका विशेष विधिसे दान किया जाता है, तीसरा दान है ब्रह्माण्डदान। इसमें सुवर्णका ब्रह्माण्ड बनाकर दान किया जाता है, चौथे कल्पपादपदानमें सुवर्णमय कल्पवृक्षका दान होता है। पाँचवें गोसहस्रदानके अन्तर्गत एक नन्दिकेश्वर तथा हजार गौओंका दान होता है, इन्हें सुवर्णसे निर्मित किया जाता है। छठें कामधेनुदानमें सुवर्णकी धेनु तथा सुवर्णका ही वत्स बनाकर दान किया जाता है। इसी प्रकार सुवर्णमय अश्व तथा सुवर्णमय अश्वरथका दान होता है। नौवाँ दान सुवर्णनिर्मित हस्तिरथका होता है, ऐसे ही दसवाँ दान पंचलांगल दान है। लांगल हलको कहते हैं। इसमें सुवर्णनिर्मित पाँच हल और दस वृषभके साथ भूमिका दान होता है। ग्यारहवाँ दान सुवर्णमयी पृथ्वीका दान है। इसका नाम हेमधरादान भी है। इसमें जम्बूद्वीपके आकारकी भाँति सोनेकी पृथ्वी बनवाकर उसका दान किया जाता है। बारहवें विश्वचक्रदानमें सोनेसे विश्वचक्र बनाकर उसके नाभिकमलपर चतुर्भुज विष्णुकी प्रतिमाको स्थापितकर उसका दान किया जाता है। तेरहवाँ दान कनककल्पलता नामक महादान है। चौदहवाँ सप्तसागर नामका दान है। इसमें सुवर्णमें सात कुण्ड बनाकर प्रथम कुण्डको लवणसे, द्वितीय कुण्डको दुग्धसे, इसी प्रकार घृत, गुड़, दही, चीनी तथा सातवें को तीर्थोंके जलसे भरकर उसमें विविध देवताओंकी सुवर्णमय प्रतिमाका स्थापनकर विशेष विधिसे दान किया जाता है। पन्द्रहवाँ महादान रत्नधेनुदान है, इसमें पृथ्वीपर कृष्ण मृगचर्म बिछाकर उसके ऊपर लवण बिछाकर उसके ऊपर रत्नमयी धेनुको स्थापित करे, विविध रत्नोंद्वारा रत्नमयी धेनुका निर्माण होता है। तदनन्तर विधिपूर्वक उसका आवाहनकर दान किया जाता है। सोलहवाँ दान महाभूतघटदान कहा जाता है। इसमें रत्नोंसे जटित सुवर्णमय कलशकी स्थापनाकर दुग्ध और घृतसे उसे परिपूर्ण किया जाता है। उस घटमें देवताओं तथा वेदोंका आवाहन करना चाहिये। तदनन्तर यथाविधि उसका दान किया जाता है।

'उनका सब दिन कल्याण है'

(श्रीभागवताचार्यजी 'आनन्दलहरीमहाराज')

कुछ दान करो, कुछ दान करो, नर-जीवन का कल्याण करो।
यदि पढ़े लिखे हो कुछ तुम तो, अनपढ़ को अक्षर दान करो।
यदि धन-दौलत कुछ पास में है, तो निर्धन को धन दान करो॥
कुछ दान करो...

यदि पास नहीं कुछ है तो भी, मीठे वचनों से मान करो।
आये यदि कोई दरवाजे, आसन-जल दे सन्मान करो॥
कुछ दान करो...

गुरुजन आयें तो उठ करके, चरणों में सिर रख मान करो।
उनकी आज्ञा को पालन कर, उनके हिय को सुख दान करो॥
कुछ दान करो...

प्यासे को जल का दान करो, भूखे को अन्न प्रदान करो।
रोगी को औषध दान करो, निर्बल को शक्ति प्रदान करो॥
कुछ दान करो...

यदि मानव हो शिक्षित भी हो, तो शिक्षा का सन्मान करो।
सत्पथ में चलकर लोगों को, परमार्थिक ज्ञान प्रदान करो॥
कुछ दान करो...

कामना-रहित यह दान-धर्म, परमश्रेय सोपान है।
जो दान-धर्म में दृढ़ रहता, उनका सब दिन कल्याण है॥

और्ध्वदैहिक दान

जीवकी सद्‌गतिके लिये जो दान दिया जाता है, उसे और्ध्वदैहिक दान कहते हैं। मृत प्राणीकी गति ऊर्ध्व (ऊपरकी ओर) हो, अधः (नीचेकी ओर) न हो, इस आशयसे जीवितावस्थामें स्वयंके द्वारा अथवा मरणासन्न-अवस्थामें स्वयं अशक्त होनेपर अथवा मृत्युके अनन्तर पुत्र-पौत्रादिके द्वारा उत्तम लोकोंकी प्राप्तिके लिये जो दान दिया जाता है, वह और्ध्वदैहिक दान कहलाता है। गरुडपुराणने बताया है कि जो अपने पिता आदिके निमित्त और्ध्वदैहिक दानादि नहीं करता, उसके पितर अत्यन्त कष्टपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं, इसलिये अपनी शक्तिके अनुसार इन दानोंको अवश्य देना चाहिये—

और्ध्वदैहिकदानानि यैर्न दत्तानि काश्यप।
महाकष्टेन ते यान्ति तस्माद् देयानि शक्तितः॥

(ग०पु० प्रेत० १९। १३)

इन दानोंको देनेसे जीव परलोकमें सुख प्राप्त करता है—

महादानेषु दत्तेषु गतस्तत्र सुखी भवेत्॥

(ग०पु० प्रेत० १९। ३)

और्ध्वदैहिक दानोंमें मुख्य रूपसे गोदान, दस महादान, आठ महादान और पंचधेनुदान आते हैं।

और्ध्वदैहिक दानोंमें दस महादान और आठ महादान—इन दोनोंका विशेष महत्त्व है। इसलिये इनके नाम यहाँ दिये जाते हैं—

१. दस महादान[1]			२. आठ महादान[2]		
क्र०सं०	वस्तु-नाम	देवता	क्र०सं०	वस्तु-नाम	देवता
१.	सवत्सा नयी गाय	रुद्र	१.	तिल	प्रजापति
२.	भूमि	विष्णु	२.	लोहा	महाभैरव
३.	तिल	प्रजापति	३.	स्वर्ण	अग्नि
४.	स्वर्ण	अग्नि	४.	कपास	वनस्पति
५.	घृत	मृत्युंजय	५.	लवण	सोम
६.	वस्त्र	बृहस्पति	६.	सप्तधान्य[3]	प्रजापति
७.	धान्य	प्रजापति	७.	भूमि	विष्णु
८.	गुड़	सोम	८.	गाय	रुद्र
९.	चाँदी	चन्द्र			
१०.	लवण	सोम			

यथासम्भव मरणासन्न व्यक्तिके द्वारा यह कार्य सम्पन्न कराना चाहिये। यदि यह सम्भव न हो सके तो उत्तराधिकारी व्यक्ति इस कार्यको सम्पन्न कर सकते हैं। इतर व्यक्ति भी उसके निमित्त अधिकारप्राप्तिके लिये यथाशक्ति गोनिष्क्रयका दानकर इस कार्यको सम्पन्न कर सकते हैं।

समय और सामर्थ्य होनेपर प्रत्येक वस्तुका दान पृथक्-पृथक् करना चाहिये, किंतु अलग-अलग दान न कर सके तो एक साथ दस वस्तुओंका दान भी संकल्पपूर्वक किया जा सकता है।

---

१. गोभूतिलहिरण्याज्यं वासो धान्यं गुडानि च। रौप्यं लवणमित्याहुर्दशदानान्यनुक्रमात्॥ (निर्णयसिन्धुमें मदनरत्नका वचन)

२. तिलं लौहं हिरण्यञ्च कार्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥ (ग०पु०२।४।३९)

३. (क) जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा—ये सप्तधान्य कहलाते हैं—
यवधान्यतिलाः कङ्गुः मुद्गचणकश्यामकाः। एतानि सप्तधान्यानि सर्वकार्येषु योजयेत्॥
(ख) मतान्तरसे जौ, गेहूँ, धान, तिल, टाँगुन, साँवा तथा चना—ये सप्तधान्य कहलाते हैं—
यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुस्तथैव च। श्यामाकं चीनकञ्चैव सप्तधान्यमुदाहृतम्॥ (षट्त्रिंशन्मत)

इसी प्रकार आठ वस्तुओंका दान भी पृथक्-पृथक् करना चाहिये। यदि ऐसा सम्भव न हो तो आठों वस्तुओंके रूपमें निष्क्रयद्रव्यका एक साथ दान कर दें।

सम्भव हो तो प्रत्यक्ष गोदान करना चाहिये या निष्क्रयद्रव्य देकर दानकी पूर्ति करनी चाहिये।

पंचधेनुदान—सब प्रकारके अभ्युदयोंकी प्राप्ति तथा सद्‌गतिके लिये पाँच प्रकारकी गौओंके दानका विधान है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) ऋणापनोदधेनु, (२) पापापनोदधेनु, (३) उत्क्रान्तिधेनु, (४) वैतरणीधेनु तथा (५) मोक्षधेनु। इनके दानका उद्देश्य इस प्रकार है—

जन्म लेनेके साथ ही मनुष्यपर तीन ऋण लग जाते हैं—१. देव-ऋण, २. पितृ-ऋण तथा ३. मनुष्य-ऋण। इनके अतिरिक्त मनुष्य आवश्यकतानुसार अन्य ऋण भी ले लेता है। इन सभी ऋणोंसे लगे पापको नष्ट करनेके लिये और भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये '**ऋणापनोदधेनु**'का दान दिया जाता है। इसी तरह ज्ञात-अज्ञात पापोंसे छुटकारा पानेके लिये एवं भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये '**पापापनोदधेनु**'का दान दिया जाता है। अन्तिम समयमें प्राणोत्सर्गमें अत्यधिक कष्टकी अनुभूति होती है। अतः सुखपूर्वक प्राणोत्सर्गके लिये '**उत्क्रान्तिधेनु**'का दान दिया जाता है। इसी प्रकार यममार्गमें स्थित घोर वैतरणीनदीको सुखपूर्वक पार करनेके लिये '**वैतरणीधेनु**'का दान दिया जाता है और मोक्षप्राप्तिके लिये '**मोक्षधेनु**'का दान दिया जाता है। पंचधेनुका दान द्रव्य-निष्क्रयरूपमें भी किया जा सकता है।

पितरोंके लिये पिण्डदान (श्राद्ध)

(श्रीमती रश्मि शुक्ला)

पिण्डदान एवं श्राद्धकी परम्परा बहुत प्राचीनकालसे ही सम्पूर्ण भारतदेशमें प्रचलित है। वेदकी संहिताओं, गृह्यसूत्रों, धर्मशास्त्रों, स्मृतियों, निबन्धग्रन्थों तथा पुराणोंमें इस विषयमें प्रचुर ज्ञान उपलब्ध है। यह एक ऐसी अनिवार्य भावनात्मक परम्परा है, जिसका निर्वहन पुत्र या पौत्रद्वारा अपने दिवंगत पिता, पितामह एवं अन्य पितरोंके प्रति सम्मान व्यक्त करनेहेतु कर्तव्यकी दृष्टिसे पूर्ण श्रद्धासे किया जाता है; जिसके फलस्वरूप पितरोंको शान्ति, तृप्ति, सद्‌गति एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है तथा पिण्डदानकर्ता और उसके परिवारजनोंको उनसे असीम आशीर्वाद सहज ही प्राप्त हो जाते हैं, जिनका उत्तम फल प्रत्यक्ष लक्षित होता है। मुख्यरूपमें पितृपूजासे भौतिक सुखकी प्राप्ति होती है।

'दान' की महिमा सभी धर्मशास्त्रोंमें वर्णित है, परंतु यह भी प्रायः देखा जाता है कि कितनी भी मूल्यवान् उपयोगी वस्तु दान की जाय, ग्रहणकर्ता पूर्ण सन्तुष्ट नहीं होता, जबकि पितर जो सूक्ष्म वायुतत्त्वके रूपमें पुत्र, पौत्रद्वारा अर्पित पिण्डदान ग्रहण करते हैं, अतितृप्त हो जाते हैं और आशीर्वादोंकी वर्षा करते हैं। यहाँ केवल कर्ताद्वारा कुछ विशेष सावधानीभर रखनी होती है। देवता क्षमाशील होते हैं तथा पूजनमें हुई त्रुटियोंको क्षमाकर कर्ताकी पूजा स्वीकार कर लेते हैं, जबकि पितर कार्यमें शुद्धताको महत्त्व देते हैं, वे क्रिया एवं उच्चारणकी शुद्धतासे प्रसन्न हो जाते हैं—

'पितरो वाक्यमिच्छन्ति भावमिच्छन्ति देवताः।'

इसलिये पितृकार्यको शुद्धता एवं सावधानीपूर्वक बिना चापल्यता (जल्दबाजी)-के शान्तिपूर्वक सम्पन्न करना चाहिये।

पिण्डदानकी आवश्यकता—वैदिक संस्कृतिसहित विश्वके प्रायः सभी धर्मशास्त्र इस तथ्यको स्वीकार करते हैं कि शरीर नश्वर एवं आत्मा अमर है। जीवात्माके शरीर त्यागते ही यह नश्वर शरीर 'शव' कहलाने लगता है एवं आत्मीय स्वजन इसे पंचमहाभूतोंमें विलीन करनेकी तैयारीमें तत्परतासे जुट जाते हैं। हमारी यज्ञीय संस्कृतिमें इस देहका दाहसंस्कार किया जाता है। इस समय चर्म-चक्षुओंसे न दिखायी पड़नेवाली अति सूक्ष्म जीवात्मा वायुतत्त्वके रूपमें नश्वर शरीर (शव)-से लगावके कारण उसके आसपास मँडराती रहती है तथा शवके साथ की जा रही क्रियाओंको देखकर विचलित होती रहती है। इस जीवात्माको 'प्रेत' कहा जाता है। दाहकर्ताद्वारा

श्रद्धापूर्वक किये जा रहे विभिन्न कृत्यों (अनुष्ठानों)-जैसे—पिण्डदान, जलतर्पण, दीपदान, जलदान (सन्ध्याको दिया गया), गरुडपुराण-पाठ आदिसे यह प्रेत अनेक आशीर्वाद दाहकर्ता एवं उसके परिवारको देता है। प्रेत एवं पितरोंकी तृप्तिहेतु विधि-विधानसे पिण्डदान दिया जाना एक अनिवार्यता है।

पिण्डदानके प्रकार—१. मृत्यु-दिवससे लेकर दसवें दिनतक सोलह पिण्डदान, २. एकादशाह तथा द्वादशाहके पिण्डदान, ३. वार्षिक तिथिके समय पिण्डदान, एकोद्दिष्ट तथा पार्वण श्राद्ध एवं ब्राह्मण-भोजनात्मक श्राद्ध, ४. विभिन्न तीर्थस्थलोंपर किया जानेवाला पिण्डदान।

१. मृत्यु दिवससे लेकर दसवें दिनतकके सोलह पिण्डदान—

(अ) अन्त्येष्टि कर्ममें छः पिण्डदान—अशौचकालमें दिया गया यह पिण्डदान 'मलिनषोडशी' कहलाता है। 'शव' नाम पहला पिण्डदान घरके अन्दर जहाँ शवको स्नान आदि कराकर तैयार किया जाता है, वहाँ किया जाता है। प्रोक्षित भूमिपर तीन कुश बिछाकर उनके ऊपर पिण्डदान किया जाता है, इसे बादमें उठाकर शवके ऊपर कटिप्रदेशपर रख दिया जाता है। 'पान्थ' नामक दूसरा पिण्डदान शवको घरके बाहर दरवाजेपर लाकर अर्थीपर रखनेके बाद पहले पिण्डदानकी भाँति ही भूमिपर दिया जाता है, पुनः उठाकर अर्थीपर रख दिया जाता है। पहले पिण्डदानसे घरके भूम्यधिष्ठातृ देवता एवं दूसरे पिण्डदानसे गृहवास्त्वधिष्ठातृ देवता सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होते हैं। शवयात्रा श्मशान पहुँचनेके पूर्व विश्राम-स्थलपर रुकती है एवं अर्थीको नीचे रखा जाता है। यहाँ 'खेचर' नामक तीसरा पिण्डदान भूमिपर ही किया जाता है, फिर उठाकर अर्थीपर रख दिया जाता है। चौथा 'भूत' नामक पिण्डदान भी इसी विश्राम-स्थलपर दिया जाता है। इन दोनों पिण्डदानसे राक्षस, पिशाच, बाहरी बाधाएँ एवं अन्य दुष्ट आत्माएँ हवनीय देहको अपवित्र नहीं कर सकते हैं और न कोई उपद्रव कर सकते हैं। पाँचवाँ 'साधक' नामक पिण्डदान शवको चितापर रखनेके बाद सिरकी ओर दिया जाता है। इससे हवनीय शवकी पवित्रता बनी रहती है। दाहक्रियामें बाधा नहीं उत्पन्न होने पाती। छठा पिण्डदान 'अस्थिसंचयन पिण्डदान' कहलाता है। यह अग्नि शान्त होनेपर किया जाता है, इससे दाहजन्य पीड़ा शान्त हो जाती है।

(आ) दशगात्रके दस पिण्डदान—अन्त्येष्टि-संस्कार पूर्ण होनेपर नश्वर शरीर पंचतत्त्वमें विलीन हो जाता है, किंतु जीवित-अवस्थामें उक्त शरीरधारी प्राणीने जो कर्म किये थे, उनका वांछित फल भोगनेहेतु जीवात्माको यमदूतोंके साथ यमलोक जाना पड़ता है। इस महाप्रस्थानहेतु जीवात्माको पुनः शरीर (अंगुष्ठपर्वपरिमित आतिवाहिक शरीर) धारण करना पड़ता है। यथा—

तत्क्षणात् सोऽथ गृह्णाति शारीरं चातिवाहिकम्।
अंगुष्ठपर्वमात्रं तु स्वप्राणैरेव निर्मितम्॥

(स्कन्दपुराण १।२।५०।६२)

यह सूक्ष्म-शरीर दशगात्रके दस पिण्डदानसे निर्मित होता है। यथा—

शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा।
द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकाश्च समासतः॥
गलांसभुजवक्षांसि तृतीयेन यथाक्रमात्।
चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानि च॥
जानुजङ्घे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा।
सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः॥
दन्तलोमाद्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च।
दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः॥

(श्राद्धविवेक, द्वितीयपरि०)

अर्थात् 'दशगात्रके पहले पिण्डदानसे आतिवाहिक शरीरका सिर, दूसरेसे कर्ण, नेत्र और नासिका, तीसरेसे गला, स्कन्ध, भुजा और वक्षःस्थल, चौथेसे नाभि, लिंग या योनि तथा गुदा, पाँचवेंसे जानु, जंघा और पैर, छठवेंसे सभी मर्मस्थान, सातवेंसे सभी नाड़ियाँ, आठवेंसे दाँत, लोम आदि, नवेंसे वीर्य अथवा रज और दशम पिण्डदानसे शरीरकी पूर्णता, तृप्तता और क्षुद्विपर्यय होता है।' यदि दशगात्रके दस पिण्डदान न किये जायँ तो जीवात्मा भटकती रहती है एवं कष्ट पाती है; इसलिये ये पिण्डदान अवश्य किये जाने चाहिये—

'पिण्डं प्रतिदिनं दद्युः सायं प्रातर्यथाविधि।'

(कूर्मपुराण उ०वि० २३।८०)

अर्थात् 'प्रेतके निमित्त यथाविधि पिण्डदान अवश्य करना चाहिये।'

पिण्डदान एवं श्राद्धकी सामग्री नदी या जलाशयमें डाल देनी चाहिये—सम्भव हो तो 'पिण्ड' गायको खिला दिया जाय। किसी कारण प्रतिदिन पिण्डदान न किया जा सके तो दसवें दिन सभी दस पिण्डदान योग्य पुरोहितके मार्गदर्शनमें एक साथ अवश्य देने चाहिये। प्रथम दिन जिस द्रव्य (खीर या जौके सत्तू)-से पिण्डदान किया जाय, दस दिनतक उसी द्रव्यका उपयोग किया जाना चाहिये।

२. एकादशाह तथा द्वादशाहको भी पिण्डदान होता है। द्वादशाहको सपिण्डीकरणका श्राद्ध होता है। इसमें प्रेतके पिण्डको पितरोंके पिण्डके साथ मिलाया जाता है।

३. मासिक एवं वार्षिक-तिथिपर पिण्डदान एवं श्राद्ध—पिताकी मृत्युपर पुत्रद्वारा एक वर्षतक मृत्युतिथिपर प्रतिमाह पिण्डदान किया जाना चाहिये तथा एक सुयोग्य ब्राह्मणको सादर भोजन करवाया जाना चाहिये। वार्षिक तिथि आनेपर एकोद्दिष्ट श्राद्ध (सांवत्सरिकैकोद्दिष्टश्राद्ध) किया जाना चाहिये। इसका समय दिनमें १० बजकर ४८ मिनटसे मध्याह्न १ बजकर १२ मिनटके मध्य होता है। इसी अवधिमें योग्य ब्राह्मणके निर्देशनमें पिण्डदान एवं ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। प्रत्येक वर्ष आश्विन पितृ-पक्षमें पिताकी मृत्युतिथिके दिन पार्वण श्राद्ध करना चाहिये।

४. तीर्थस्थलोंमें पिण्डदान—

'गङ्गायामक्षयं श्राद्धं प्रयागेऽमरकण्टके।'

(कूर्मपुराण उ०वि० २०।२९)

गंगा, प्रयाग और अमरकंटकमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलदाता होता है, गया पितरोंका अत्यन्त प्रिय तीर्थ है, वहाँ पिण्डदान करनेसे मानव पुनः जन्म नहीं लेता। गया जाकर पिण्डदान करनेसे पितर नरक आदि कष्टप्रद लोकोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्माजीद्वारा निर्मित ब्रह्मकुण्ड (पुष्कर तीर्थ)-में पिण्डदान एवं श्राद्ध पितरोंको तृप्ति एवं मुक्ति प्रदान करता है। सोमावती अमावस्याको काशीमें कपिलधारा (शिवगया)-में; बदरीनारायण तीर्थ, हरिद्वार, शिप्राकिनारे उज्जैन, नासिक, ओंकारेश्वर, नैमिषारण्य आदि तीर्थोंमें पिण्डदान एवं श्राद्ध पितरोंको प्रसन्नता एवं मुक्ति प्रदान करता है। सिद्धपुरमें 'मातृगया' है, वहाँ माताका श्राद्ध किया जाता है।

पितरोंकी शान्ति एवं मोक्षहेतु पिण्डदान एक अनिवार्य परम्परा है, जिसका निर्वहन अवश्य किया जाना चाहिये।

पिण्डदान

मृत प्राणी (प्रेत)-की सद्गति (प्रेतत्वसे मुक्ति) तथा पितरोंकी सन्तृप्तिके लिये श्राद्ध करनेका विधान है। श्राद्धमें पिण्डदान देना मुख्य क्रिया है। व्यक्तिकी मृत्युके अनन्तर १२वें दिन अर्थात् सपिण्डीकरण श्राद्धतक जीवके निमित्त कुल पचास पिण्डोंका दान होता है। बारह दिनतककी यह पिण्डदानात्मक क्रिया तीन भागोंमें बँटी है, जो मलिनषोडशी, मध्यमषोडशी तथा उत्तमषोडशीके नामसे जानी जाती है। सोलह पिण्ड मलिनषोडशीमें, सोलह पिण्ड मध्यमषोडशीमें तथा सोलह पिण्ड उत्तमषोडशीमें दिये जाते हैं। एक पिण्ड आद्यश्राद्ध—महैकोद्दिष्टश्राद्धका तथा एक पिण्ड सपिण्डीकरणश्राद्धके दिन प्रेतके निमित्त दिया जाता है। इस प्रकार पचास पिण्ड पूरे हो जाते हैं। इन पिण्डदानोंकी प्रक्रियाका संक्षेपमें आगे वर्णन दिया जा रहा है—

१-मलिनषोडशी—मृत्युतिथिसे लेकर दसवें दिनतक होनेवाली पिण्डदानकी क्रिया मलिनषोडशी कहलाती है। इसमें सोलह पिण्ड दिये जाते हैं। मृत्युस्थानसे लेकर अस्थिसंचयनतक शवयात्रा-सम्बन्धी छः पिण्ड और दशगात्रके दस पिण्ड होते हैं। दस दिनतक मृत्युसम्बन्धी मरणाशौच रहता है। अतः यह आशौचकालिक पिण्डदान है, इसका विवरण इस प्रकार है—

(क) षट्पिण्डदान—शवयात्रामें मृत्युस्थानसे लेकर अस्थिसंचयनतक छः पिण्ड दिये जाते हैं। पहला पिण्ड जहाँपर मृत्यु हुई है, वहाँपर दिया जाता है। इस शवनिमित्तक पहले पिण्डदानसे वहाँकी भूमिके जो अधिष्ठाता देवता होते हैं, वे सन्तुष्ट होते हैं। दूसरा पिण्ड द्वारदेशमें दिया जाता है। पान्थनिमित्तक इस पिण्डदानसे घरके जो

वास्तुदेवता होते हैं, वे प्रसन्न होते हैं। तीसरा पिण्ड चौराहेपर दिया जाता है, खेचरनिमित्तक इस पिण्डदानसे शवपर कोई उपद्रव नहीं होता। भूतनिमित्तक चौथा पिण्ड विश्रामस्थानपर तथा साधकनिमित्तक पाँचवाँ पिण्ड काष्ठचयनके स्थानपर दिया जाता है। इन पिण्डदानोंसे राक्षस-पिशाच आदि प्राणी हवनीय देहको अपवित्र नहीं करते। छठे अस्थिसंचयन-निमित्तक पिण्डदानसे चितादाहजन्य ताप, तृषा और पीड़ा शान्त हो जाती है।

(ख) दशगात्रके दस पिण्डदान—गरुडपुराणके अनुसार स्थूलशरीरके नष्ट हो जानेपर यममार्गमें यात्राके लिये आतिवाहिक शरीरकी प्राप्ति होती है। इस आतिवाहिक शरीरके अंगोंका निर्माण दशगात्रके दस पिण्डोंसे होता है। दशगात्रके दस पिण्डोंका दान न करनेसे वह जीव वायुरूपमें ही अतृप्त होकर इधर-उधर भ्रमण करता रहता है। इसी कारण मृत्युतिथिसे लेकर १०वें दिनतक दस पिण्ड दिये जाते हैं, जो दशाहकृत्य कहलाता है।

२-मध्यमषोडशी एवं ३-उत्तमषोडशीके बत्तीस पिण्ड—एकादशाहके दिन (११वें दिन) मध्यमषोडशीश्राद्ध होता है, जिसमें १५ पिण्ड देवताओंके निमित्त तथा एक पिण्ड प्रेतके निमित्त दिया जाता है।

इसी दिन आद्य (महैकोद्दिष्ट)-श्राद्ध होता है, जिसमें एक पिण्ड प्रेतके निमित्त दिया जाता है। इसके बाद उत्तमषोडशश्राद्ध होता है, जिसमें १६ पिण्ड दिये जाते हैं, जो वर्षभरके मासिक तिथियों तथा चार ऊनिकाओंका अपकर्षण करके होते हैं।

सपिण्डीकरणका प्रेतश्राद्ध—बारहवें दिन सपिण्डीकरणश्राद्धमें प्रेतके निमित्त पिण्डदानकर उस पिण्डको पितरोंके पिण्डमें मिला दिया जाता है। उसी दिनसे जीवके प्रेतत्वकी निवृत्ति हो जाती है तथा उसे पितरोंकी पंक्ति प्राप्त हो जाती है और उसकी गणना पितरोंमें होने लगती है।

इस प्रकार मृत्युतिथिसे बारहवें दिनतक विभिन्न श्राद्धोंमें जीवके प्रेतत्वमुक्ति तथा पितरोंकी स्थिति प्राप्त करनेके लिये विविध रूपोंमें पिण्डदान किया जाता है।

वर्षभरके बाद मृत्युतिथिको सांवत्सरिकश्राद्ध होता है। उसमें एक पिण्डदान होता है तथा प्रतिवर्ष आश्विनके पितृपक्षमें पार्वणश्राद्धमें पितरोंके निमित्त पिण्डदान होता है।

इस प्रकार शवकी विशुद्धिके लिये आद्य (महैकोद्दिष्ट)-श्राद्ध तथा प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये षोडशत्रय—मलिनषोडशी, मध्यमषोडशी तथा उत्तमषोडशीके ४८ पिण्ड होते हैं। शवविशुद्धि तथा प्रेतत्वनिवृत्ति हो जानेके कारण ४९ पिण्डोंसे पितरोंकी पंक्तिका सामीप्य प्राप्त हो जाता है और सपिण्डीकरणके प्रेतश्राद्धसे पितृपंक्ति प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार पिण्डदानसे प्रेत प्रेतत्वसे मुक्त होकर पितर बन जाता है। श्राद्ध—पिण्डदान न होनेसे जीव अतृप्तात्माके रूपमें इधर-उधर भ्रमण करता हुआ बड़े कष्टसे रहता है। अतः पिण्डदान अवश्य करना चाहिये।

पिण्डदान करनेसे न केवल जीव प्रेतत्वसे मुक्त होता है, न केवल पितरोंकी ही तृप्ति होती है, न केवल श्राद्धकर्ताका ही कल्याण होता है; बल्कि ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, आठों वसु, वायु, विश्वेदेव, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीसृप और ऋषिगण आदि तथा अन्य समस्त भूतप्राणी भी तृप्त होते हैं।*

इस प्रकार पिण्डदान एक आवश्यक कर्तव्यकर्म है। अतः इसे अवश्य सम्पादित करना चाहिये। श्राद्धसे पितरोंको बहुत प्रीति होती है। वे श्राद्धकर्ताका परम कल्याण करते हैं।

पितरोंकी प्रसन्नतासे श्राद्धकर्ताका परम कल्याण

पितर अत्यन्त दयालु तथा कृपालु होते हैं। वे अपने पुत्र-पौत्रादिकोंसे पिण्डदान तथा तर्पणकी आकांक्षा रखते हैं। श्राद्धादि क्रियाओंद्वारा पितरोंको परम प्रसन्नता तथा संतुष्टि होती है। प्रसन्न होकर वे पितृगण श्राद्धकर्ताको दीर्घ आयु, संतति, धन-धान्य, विद्या, राज्य, सुख, यश, कीर्ति, पुष्टि, बल, पशु, श्री, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करते हैं (मार्कण्डेयपुराण, याज्ञ०स्मृति आ०गण० २७०), (यमस्मृति, श्राद्धप्रकाश)।

(क) **आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।**
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः॥

(ख) **आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।**
पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥

* ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्याग्निवसुमारुतान् । विश्वेदेवान् पितृगणान् वयांसि मनुजान् पशून्॥
सरीसृपान् ऋषिगणान् यच्चान्यद्भूतसंज्ञितम्। श्राद्धं श्रद्धान्वितः कुर्वन् प्रीणयत्यखिलं जगत्॥ (विष्णुपुराण ३। १४। १-२)

छत्र और उपानहकी उत्पत्ति-कथा तथा इनके दानकी महिमा

श्राद्धकर्ममें पितरोंके निमित्त तथा अन्य पुण्यके अवसरोंपर भी छत्र (छाता) और उपानह (जूते)-का दान किया जाता है। यमलोकका मार्ग अत्यन्त कष्टप्रद है, वहाँ अत्यन्त ग्रीष्मकी तपन है और निरन्तर भीषण वर्षा होती रहती है, मार्गमें बालू, कण्टक (काँटे) आदि हैं। छातेसे यममार्गमें प्रेतकी ग्रीष्मके ताप एवं वर्षासे रक्षा होती है और उपानहसे उसके पैरोंकी रक्षा होती है। विशेष रूपसे एकादशाहश्राद्धके दिन और शय्यादानमें इन दोनोंका दान किया जाता है। ग्रीष्मऋतुमें भी इनके दानकी सनातन परम्परा है।

एक बारकी बात है, महाराज युधिष्ठिरने पितामह भीष्मसे पूछा—हे भरतश्रेष्ठ! श्राद्धकर्म तथा अनेक पुण्यके अवसरोंपर छत्र और उपानह दान देनेकी जो परम्परा चली आयी है, उसे किसने चलाया तथा इसका रहस्य क्या है, बतानेकी कृपा करें।

इसपर भीष्मजी बोले—राजन्! इन दोनों वस्तुओंकी उत्पत्ति कैसे हुई और कैसे इसकी दान-परम्परा चली तथा इसका क्या फल है, इस विषयमें एक प्राचीन आख्यान है, आप ध्यानसे सुनें।

पूर्वकालकी बात है, एक दिन भृगुनन्दन महर्षि जमदग्नि धनुष चलानेकी क्रीड़ा कर रहे थे। वे बार-बार धनुषपर बाण रखकर चलाते और उन बाणोंको उनकी धर्मपत्नी देवी रेणुका ला-लाकर उन्हें दिया करती थीं। ज्येष्ठ मासका समय था। सूर्य दिनके मध्यभागमें आ पहुँचे थे। महर्षि बाण चला ही रहे थे, माता रेणुका बार-बार बाण लाकर दे रही थीं, धूपकी तपन अधिक होनेसे वे पेड़ोंकी छायामेंसे होकर गुजरतीं, उनके पैर और सिर धूपसे जल रहे थे। उन्हें बड़ा कष्ट हो रहा था। वे कुछ समय के लिये छायामें ठहर गयीं। बाण लेकर जब ये देरसे पहुँचीं तो महर्षिने पूछा—देवि! तुम्हारे आनेमें इतनी देर क्यों हुई? इसपर उन्होंने प्रचण्ड धूपके कष्टकी बात उन्हें बता दी।

यह सुनकर महर्षि क्रुद्ध हो उठे और बोले—रेणुके! जिसने तुम्हें कष्ट पहुँचाया है, उस सूर्यको आज ही मैं अपने बाणोंकी अस्त्राग्निके तेजसे गिरा डालूँगा।

ऐसा कहकर वे अपने दिव्य धनुषपर बहुतसे बाणोंको रखकर सूर्यकी ओर मुँह करके खड़े हो गये। उन्हें युद्धके लिये तैयार देख सूर्यदेव भयभीत हो ब्राह्मणका रूप धारणकर उनके पास आये और बोले—ब्रह्मन्! सूर्यने आपका क्या अपराध किया है। सूर्यदेव तो आकाशमें स्थित होकर अपनी किरणोंद्वारा वसुधाका रस खींचते हैं और बरसातमें पुनः उसे बरसा देते हैं, वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है और अन्न ही जीवोंका प्राण है। औषधियाँ, लताएँ, पत्र-पुष्प—ये सब भगवान् सूर्यकी कृपासे ही उत्पन्न होते हैं, भला सूर्यको गिराकर आपको क्या लाभ होगा! सूर्यदेवके इस तरह प्रार्थना करनेपर भी महर्षिका क्रोध शान्त नहीं हुआ। वे ब्राह्मणरूपमें उपस्थित सूर्यको पहचान गये। सूर्य ब्रह्मर्षिके तेजसे भयभीत हो उनके शरणागत हो गये, तब महर्षिने कहा—शरणागतकी रक्षा करना महान् धर्म है, फिर भी आप अपने तेजसे रक्षाका कोई समाधान सोचिये। तब भगवान् सूर्यने उन्हें शीघ्र ही छत्र और उपानह—ये दो वस्तुएँ प्रदान कीं—**'अथ सूर्योऽददत् तस्मै छत्रोपानहमाशु वै॥'** (महा०अनु० ९६।१३)

उस समय सूर्यदेवने कहा—ब्रह्मन्! यह छत्र मेरी किरणोंका निवारण करके मस्तककी रक्षा करेगा तथा ये जूते पैरोंको जलनेसे बचायेंगे। आजसे ये दोनों वस्तुएँ जगत्‌में प्रचलित होंगी और पुण्यके अवसरोंपर इनका दान उत्तम तथा अक्षय होगा।

इस प्रकार छाता और जूता—इन दोनोंका प्राकट्य और इन दोनोंको लगाने तथा पहननेकी प्रथा सूर्यने ही जारी की है। इन वस्तुओंका दान तीनों लोकोंमें पवित्र माना गया है—

छत्रोपानहमेतत् तु सूर्येणैतत् प्रवर्तितम्।
पुण्यमेतदभिख्यातं त्रिषु लोकेषु भारत॥

(महा०अनु० ९६।१६)

छत्र और उपानहका दान—ग्रीष्ममें आतप तथा वर्षा आदिसे रक्षाके लिये छाता तथा जूताका दान तो किया ही जाता है, विशेष रूपसे मृत्युसे ग्यारहवें दिन होनेवाले एकादशाहश्राद्धके दिन जो आद्यश्राद्ध (महैकोद्दिष्टश्राद्ध) किया जाता है, उसमें मुख्य रूपसे प्रतिज्ञा-संकल्प एवं पिता आदिके लिये आसनदान देनेके अनन्तर छाता और जूता देनेकी शास्त्रीय विधि है।

पहले छत्रदान करना चाहिये, तदनन्तर उपानह-दान करना चाहिये। छत्रदानके संकल्पमें इसके दानका प्रयोजन इस प्रकार बताया गया है—**प्रेतस्य एकादशाहे यममार्गे वर्षातपजन्यकष्टनिवारणार्थं इदमुत्तानाङ्गिरो दैवत्यं छत्रं ....गोत्राय ....शर्मणे भवते सम्प्रददे।**

इसी प्रकार उपानह-दानके संकल्पमें दानका प्रयोजन इस प्रकार बताया गया है—

....प्रेतस्य एकादशाहे यममार्गे सन्तप्तबालुकाऽसिकण्टकितदुर्गभूसन्तरणकामः उत्तानाङ्गिरो दैवत्ये इमे उपानहौ ....गोत्राय ....शर्मणे भवते सम्प्रददे।

छत्र और उपानह—इन दोनोंके अधिदेवता उत्तानाङ्गिरस हैं, अतः संकल्पमें उनका उल्लेख किया गया है।

छत्र और उपानहदानके मन्त्र—श्राद्धके अतिरिक्त अन्य पुण्यके अवसरोंपर जब छाते और जूतेका दान किया जाता है तो दानके समय पृथक्-पृथक् निम्न मन्त्र पढ़ने चाहिये—

क-छत्रदानमन्त्र—

इहामुत्रातपत्राणं कुरु मे केशव प्रभो।
छत्रं त्वत्प्रीतये दत्तं ममास्तु च सदा शुभम्॥

अर्थात् हे केशव! हे प्रभो! यह छत्र मैंने आपकी प्रसन्नताके लिये दिया है, यह मेरे लिये इस लोक तथा परलोकमें धूपसे रक्षा करनेवाला हो, इसके दानसे मेरा सदा कल्याण-मंगल होता रहे।

ख-उपानहदानमन्त्र—

उपानहौ प्रदत्ते मे कण्टकादिनिवारणे।
सर्वमार्गेषु सुखदे अतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

काँटों आदिसे पैरोंकी रक्षा करने तथा सभी मार्गोंमें सुख प्रदान करनेवाले ये उपानह (जूते) मेरे द्वारा दानमें दिये गये हैं, ये मुझे शान्ति प्रदान करें।

वाराहपुराणमें वर्णित कथानुसार राजा निमिके पुत्र मिथि हुए, जिनका दूसरा नाम राजा जनक था। इनकी पत्नीका नाम रूपवती था, जो निरन्तर अपने पति (मिथि)-के हितमें तत्पर रहती थीं। रानी रूपवती सती साध्वी एवं पतिव्रता थीं। राजाकी जब सारी सम्पत्ति भृत्यों, ब्राह्मणों और परिजनोंके प्रबन्धमें समाप्त हो गयी तो राजा मिथिने अपनी पत्नीसे कहा—देवि! अब अपने लिये कहीं चलकर कोई उपयुक्त भूमि तथा लौह आदि द्रव्यकी खोज करनी चाहिये, जिससे कुदाल आदि बनवाकर सुगमतासे कृषिकार्य कर सकूँ। राजा मिथिके पीछे-पीछे रानी रूपवती चल रही थीं। सूर्यदेव जब आकाशके मध्यमें आये तो उनका ताप उग्र हो गया। सहसा रानी प्याससे व्याकुल हो गयीं, उनके पैरके तलवे लाल हो गये जिससे सन्तप्त होकर वे पृथिवीपर गिर गयीं। गिरते समय ही उनका नेत्र सूर्यदेवके ऊपर गया और सूर्यदेव भी आकाशसे गिरकर पृथिवीपर आ गये। राजा मिथिसे सूर्यदेवने विनयपूर्वक कहा—राजन्! ये पतिव्रता मुझपर अत्यन्त क्रुद्ध हो गयी थीं, अतः मैं आकाशसे आपकी आज्ञाके पालनार्थ यहाँ आया हूँ। इस समय त्रिलोकमें इनके समान कोई पतिव्रता स्त्री नहीं है। सूर्यदेवने जलसे भरे हुए एक पात्रको प्रकट किया। तदनन्तर वह पात्र, एक जोड़ा पादुका तथा दिव्य अलंकारोंसे युक्त एक छत्र—ये सभी वस्तुएँ राजा मिथिको उन्होंने प्रदान कीं।

तिलदान

तिल ब्रह्माजीद्वारा उत्पन्न हैं। ये पितरोंके सर्वश्रेष्ठ खाद्यपदार्थ हैं, इसलिये तिलदान करनेसे पितरोंको बड़ी प्रसन्नता होती है—

पितृणां परमं भोज्यं तिलाः सृष्टाः स्वयम्भुवा।
तिलदानेन वै तस्मात् पितृपक्षः प्रमोदते॥

(महा० अनु० ६६।७)

तिल पौष्टिक पदार्थ हैं, सेवन करनेसे शक्ति, ऊर्जा एवं आरोग्य प्रदान करते हैं, सुन्दर रूप देनेवाले हैं, पितरों तथा देवोंके अतिप्रिय हैं। इसलिये तिलका दान सब दानोंसे बढ़कर है—**'तिलदानं विशिष्यते'** (महा० अनु० ६६।११)। महाभारतमें आया है कि आपस्तम्ब, शंख, लिखित तथा गौतम आदि ऋषि सदा तिलका दान किया करते थे, इसीके प्रभावसे वे दिव्यलोकको प्राप्त हुए।

तिल अत्यन्त पवित्र हैं और पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाले हैं। ये अत्यन्त स्निग्ध होते हैं, इनमें जो स्निग्ध द्रव्य रहता है, वह इन्हींसे निर्गत होनेसे तैल या तेल कहलाता है। देवताओंके निमित्त तिलतेलका दीपक प्रज्वलित किया जाता है। तिलोंमें पापोंका शमन करनेकी अद्भुत सामर्थ्य है। शुक्लपक्षमें देवताओंके निमित्त तथा पितृपक्षमें पितरोंके निमित्त तिलोदकका दान करना चाहिये।

तिलोंका आविर्भाव कैसे हुआ, इस विषयमें आदित्य-पुराणमें बताया गया है कि एक बार महर्षि दुर्वासाजीने भगवान् सूर्यसे पूछा—हे देव! तिलोंकी उत्पत्ति कैसे हुई, बतानेकी कृपा करें। इसपर भगवान् सूर्य बोले—मुने! सत्ययुगकी बात है, सभी पितरोंने दिव्य सहस्र वर्षोंतक महान् तप किया। तपसे प्रसन्न हो प्रजापति ब्रह्माजी उनके पास आये और बोले—आपलोग ऐसा महान् तप किस अभिलाषासे कर रहे हैं, आपके तपसे मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो। इसपर पितरोंने कहा—हे महाभाग! तिल हमें बहुत प्रिय हैं, वे ही हमारे भोज्य हैं, स्वर्गलोकमें तिलके बिना किसीकी स्थिति सम्भव नहीं है और तिलके बिना हम जीवित नहीं रह सकेंगे, अतः हमें तिल प्रदान करनेकी कृपा करें—

तिलान् दद महाभाग कांक्षितान् वै न संशयः।
तिलैर्विना न जीवामो नातिलस्तिष्ठते दिवि॥

तब पितामहने कहा—आपलोग प्रसन्न हों, आपको तिल प्राप्त होंगे।

इस प्रकार तिलोंका प्रादुर्भाव प्रजापति ब्रह्माजीने किया।

मत्स्यपुराणके एक आख्यानमें बताया गया है कि मधु दैत्यके वधके समय भगवान् विष्णुकी देहसे उत्पन्न पसीनेकी बूँदोंसे तिल, कुश और उड़दकी उत्पत्ति हुई।* ये तिल हव्य-कव्यमें प्रतिष्ठित होकर हव्य-कव्यकी भूत-प्रेतोंसे रक्षा करते हैं और उसे देवों तथा पितरोंतक पहुँचाते हैं।

पुनः ये ही तिल महर्षि कश्यपके अंगोंसे प्रकट होकर विस्तारको प्राप्त हुए हैं, इसलिये दानके निमित्त इनमें दिव्यता आ गयी है—

महर्षेः कश्यपस्यैते गात्रेभ्यः प्रसृतास्तिलाः।
ततो दिव्यं गता भावं प्रदानेषु तिलाः प्रभो॥

(महा० अनु० ६६।१०)

इस प्रकार तिल यथासमय देवों तथा ऋषियोंसे उत्पन्न होनेसे अत्यन्त पवित्र हैं।

तिल कृष्ण तथा श्वेत दो प्रकारके होते हैं। दानके लिये तथा पितरोंके श्राद्ध एवं तर्पण आदिके लिये कृष्ण तिल प्रशस्त हैं और श्वेत तिल विष्णुपूजन आदिमें प्रयुक्त होते हैं।

तिलदानकी बड़ी महिमा है। इसके दान करनेकी, इसके द्वारा हवन करनेकी तथा इसके भक्षण आदिकी भी महिमा है। षट्तिला एकादशीमें तिलका छः प्रकारसे उपयोग किया जाता है। उस दिन तिलका उबटन लगाने, जलमें तिल डालकर स्नान करने, तिलका होम करने, तिलोदकका पान करने, तिलका दान करने तथा तिलका भक्षण करने—इस तरह छः प्रकारसे प्रयोग किया जाता है—

तिलोद्वर्ती तिलस्नायी तिलहोमी तिलोदकी।
तिलदाता तिलभोक्ता च षट्तिलाः पापनाशकाः॥

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें बताया गया है कि तिल, गौ, सुवर्ण, अन्न, कन्या तथा भूमिका दान महान् भयसे रक्षा करता है—

तिला गावो हिरण्यञ्च अन्नं कन्या वसुन्धरा।
दत्तान्येतानि विधिवत्तारयन्ति महाभयात्॥

माघमासभर तिलदान तथा तिलके सेवनकी बड़ी

* यस्मान्मधुवधे विष्णोर्देहस्वेदसमुद्भवाः। तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छान्त्यै भवन्त्विह॥ (मत्स्यपु० ८७।४)

महिमा है। माघमासमें प्रयागादिमें कुम्भपर्व रहता है। श्रद्धालु आस्तिकजन कल्पवास करते हैं और तिलका दान करते हैं। तिलके लड्डू तथा तिलपिष्टी आदिका दान होता है तथा सेवन भी किया जाता है। सेवन करनेसे तिल शीतका निवारणकर उष्णता प्रदान करते हैं। इसी प्रकार वैशाखकी पूर्णिमा तथा ज्येष्ठमासकी पूर्णिमाको तिलदान करनेसे सभी पापोंसे मुक्ति मिलती है। तिलमें महान् पापोंको क्षय करनेकी शक्ति है। अतः मुनियोंने पापक्षयके लिये तिलदानकी प्रशस्ति गायी है। पितरोंके निमित्त तिलदानसे अग्निष्टोमयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो माघमासमें ब्राह्मणोंके लिये तिलदान करता है, वह जीवजन्तुओंसे परिपूर्ण नरकका दर्शन नहीं करता—

माघमासे तिलान् यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।
सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति॥

(महा० अनु० ६६।८)

कूर्मपुराणमें बताया गया है कि कृष्णमृगचर्मके ऊपर एक द्रोण (३२ सेर) तिल रखकर साथमें सुवर्ण, मधु तथा घृत रखकर उसे वस्त्रसे आच्छादितकर दक्षिणाके साथमें ब्राह्मणको दान करनेसे सब प्रकारके पापोंसे छुटकारा मिल जाता है—**'सर्वं तरति दुष्कृतम्।'**

तिलके देवता सोम हैं, अतः जब भी तिलदान करना हो, संकल्पमें **'सोमदैवतं तिलम्'** इस प्रकारसे कहना चाहिये।

तिलपात्रदान—ब्रह्मपुराणमें नित्य तिलपात्रदानकी महिमा आयी है और बताया है कि ताँबेके पात्रमें प्रस्थभर (एक सेर) तिल भरकर सुवर्णके साथ श्रद्धापूर्वक जो प्रतिदिन ब्राह्मणको दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर पवित्र हो जाता है और अन्तमें परम गति प्राप्त करता है—

ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रं द्विजाय च।
सहिरण्यं च यो दद्यात् प्रत्यहं श्रद्धयान्वितः।
सर्वपापविशुद्धात्मा लभते परमां गतिम्॥

तिलपात्रका दान करते समय निम्न मन्त्र पढ़ना चाहिये—

तिलाः स्वर्णयुक्तास्तुभ्यं प्रदत्ता ह्यघनाशनाः।
विष्णुप्रीतिकरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

माघमासमें तो प्रतिदिन तिलदान, तिलपात्रदान करनेकी विधि है। दुःस्वप्ननिवारणके लिये तथा विभिन्न रोगोंके शमनके लिये भी तिलदान किया जाता है।

तिलका दान अनेक प्रकारसे होता है, जो तिलपात्रदान (ताम्रपात्रपर या कांस्यपात्रपर), तिलपीठदान, तिलादर्शदान, तिलकुम्भदान, तिलगर्भदान, तिलमृगदान, तिलराशिदान, तिलकरकदान, तिलपद्मदान, तिलपर्वतदान तथा तिलधेनुदान आदिके रूपमें होता है।

दस धेनुओंमें तिलधेनुदान भी एक दान है। तिलधेनुदानमें बताया गया है कि गोबरसे अनुलिप्त भूमिपर कुशके ऊपर वस्त्र बिछाकर उसके ऊपर तिलोंसे धेनुका आकार बनाये। उसे सभी रत्नोंसे अलंकृत करे। एक द्रोण (३२ सेर) तिलसे धेनु तथा आढ़कभर (चार सेर) तिलसे गोवत्स बनाये। वह सुवर्णशृंगी, रौप्यखुरी हो। उसकी जिह्वाके स्थानपर शर्करा रखे, पावोंके स्थानपर ईख रखे, आँखोंके स्थानपर मोती रखे, पूँछके स्थानपर रस्सीमें माला लपेटकर रखे, स्तनोंके स्थानपर नवनीत रखे। इसी प्रकार अन्य पदार्थोंसे गाय तथा वत्सके तत्तद् अंगोंकी कल्पना करे। इस प्रकार सवत्सा धेनुका निर्माणकर उसे श्वेतवस्त्रसे आच्छादित कर दे। कांस्यदोहनी भी रख दे। तब पूजनकर भगवान् केशवको निवेदितकर ब्राह्मणको दान करे। उस समय निम्न मन्त्र पढ़े—

या लक्ष्मीः सर्वदेवानां या च देवेष्ववस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥
देहस्था या च रुद्राणी शंकरस्य सदा प्रिया।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥

वह्निपुराणमें तिलधेनुदानका निम्न मन्त्र आया है—

तिलाश्च पितृदैवत्या निर्मिताश्चेह गोसवे।
ब्राह्मणा तन्मयी धेनुर्दत्ता प्रीणातु केशवम्॥

ऐसे ही तिलोंका पर्वत बनाकर तिलाचल या तिलशैलका दान किया जाता है।

मातृ-ऋणसे मुक्तिके लिये तिलदान

पुराणोंमें बताया गया है कि माताका पुत्रपर महान् ऋण होता है, उस ऋणकी निवृत्ति तो किसी प्रकार सम्भव नहीं है तथापि अपने कर्तव्यकी दृष्टिसे मातृ-ऋणसे उऋण होनेके लिये कांस्यपात्रमें तिल भरकर दक्षिणासहित उसका दान किया जाता है। इसमें हवन, मातृश्राद्ध आदि करनेका भी विधान है। सौभाग्यवती स्त्रियोंको वस्त्र, आभूषण आदि भी दिया जाता है, ब्राह्मणभोजन होता है।

इसकी विधिमें बताया गया है कि माघी पूर्णिमा, सूर्य-चन्द्रग्रहण, संक्रान्तियों, युगादि तिथियों अथवा निर्दिष्ट

पुण्यकालके दिन नित्यक्रिया सम्पन्नकर द्वादशकमलदलके ऊपर तिलपूर्ण कांस्यपात्रको स्थापितकर विष्णुभगवान्का पूजनकर अग्निमें विष्णुमन्त्रसे अष्टोत्तरशताहुति घृताक्त तिलोंसे दे और दानग्रहीता ब्राह्मणको उत्तरमुख बिठाकर पादप्रक्षालन आदि करके मातृश्राद्ध सम्पन्न करे, तदनन्तर पवित्र होकर संकल्पपूर्वक सुवर्णसहित तिलपूर्ण कांस्यपात्र ब्राह्मणको दान करे, उस समय ब्राह्मणोंको उद्देश्यकर निम्न मन्त्रोंको पढ़े—

कांस्यपात्रं मया दत्तं मातुरानृण्यकाम्यया।
भगवन् वचनात्तुभ्यं यथाशक्ति तथा वद॥
दशमासाश्च उदरे जनन्याः संस्थितस्य मे।
क्लेशिता बालभावेन स्तनपानाद्द्विजोत्तम॥
मलमूत्रादिमल्लेपलिप्ता या च कृता मया।
भवतो वचनादद्य मम मुक्तिर्भवेदृणात्॥
तिलसंख्याकृतं दुःखं जनन्या मम सेवितम्।
कांस्यपात्रप्रदानेन कृतकृत्यो भवाम्यहम्॥

मन्त्रोंका भाव यह है कि 'हे भगवन्! माताके ऋणसे मुक्त होनेकी अभिलाषासे मैंने यथाशक्ति यह तिलपूर्ण कांस्यपात्र आपको प्रदान किया है, इसका जो फल हो, वह बतानेकी कृपा करें। मैं दस मासतक माताके गर्भमें रहा, उस समय मैंने माताको महान् कष्ट पहुँचाया, हे द्विजोत्तम, पुनः जन्मके समय तथा बालकपनमें स्तनपान आदिसे उसे दुःख ही दिया। मैंने उसे अपने मल-मूत्रादिसे लिप्त किया। मैंने माताको जो कष्ट दिया, उससे मेरी मुक्ति आप ब्राह्मणोंके वचनोंसे हो जाय। मैंने ये जो तिल दिये हैं, उतनी संख्यामें, बल्कि उससे भी अधिक दुःख माताको प्रदान किये हैं और माताने इस तिलसंख्यासे भी अधिक दुःख मेरे लिये सहन किये हैं, अतः इस तिलपूरित कांस्यपात्रके दानसे मैं कृतकृत्य हो जाऊँ—ऐसी आपलोग कृपा करें।'

—ऐसा कहकर संकल्पसहित वह सोपस्कर तिलपूर्ण कांस्यपात्र ब्राह्मणको दान कर दे। दान लेकर दानग्रहीता ब्राह्मण बोले—'**त्वयैतत्कृततिलपूर्णकांस्यपात्रदानेन जननी-संभवादृणात्त्वं मुक्तो भवेत्**' अर्थात् इस तिलपूर्ण कांस्यपात्रके दानसे तुम मातृ-ऋणसे उऋण हो जाओ।

तदनन्तर व्याहृतियोंसे आज्यहोम करके विसर्जन करे और ब्राह्मणभोजन कराये।

इस प्रकार माघमासकी पूर्णिमाको माताके निमित्त जो कुछ भी दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है—ऐसा भगवान् शंकरका कहना है—

तथान्यदपि यद्दत्तं माघ्यामुद्दिश्य मातरम्।
तदक्षय्यफलं सर्वं पुरा प्राह महेश्वरः॥

इस प्रकार तिलोंके दानकी बड़ी महिमा है। जप-तप, अनुष्ठानादि सत्कर्मोंमें विकलता आदि दोषोंकी निवृत्तिके लिये भी कर्मसमाप्तिके अनन्तर अच्छिद्रदान होता है, जिसमें तिलोंका दान किया जाता है, इससे कर्मका वैकल्य पूर्ण हो जाता है।

नवग्रहोंके निमित्त दान

(श्रीश्रीनारायणजी शर्मा, ज्योतिषाचार्य)

दानेन प्राप्यते स्वर्गः श्रीर्दानेनैव लभ्यते।
दानेन शत्रून् जयति व्याधिर्दानेन नश्यति॥

स्वर्गप्राप्तिके साथ-साथ भौतिक साधनोंकी प्राप्तिमें भी दानकी महत्ता है अर्थात् दानद्वारा मानव इहलोक एवं परलोकमें शान्ति एवं श्रेयस् प्राप्त करता है।

ज्योतिषशास्त्रद्वारा सभी मानवोंका जीवन प्रभावित है, वस्तुतः ज्योतिषमें वर्णित ग्रहयोग सम्पूर्ण मानव-जीवनमें महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार नवग्रहोंकी शुभाशुभ स्थितिसे मानव-जीवनके क्रिया-कलाप संचालित होते हैं। जीवनका सम्पूर्ण सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि नवग्रहोंपर आधारित है। इसका कारण २७ नक्षत्रों और १२ राशियोंपर ये ग्रह सतत भ्रमण करते रहते हैं, जिससे ऋतुएँ, वर्ष, मास और दिन-रात बनते हैं। ग्रहोंकी अनुकूल परिस्थिति होनेपर सुख एवं प्रतिकूल परिस्थिति होनेपर मनुष्य दुःखानुभूति प्राप्त करता है।

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु—ये नौ ग्रह हैं। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार नक्षत्रों तथा राशियोंके स्वामी ग्रह हैं। अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्र हैं और मेष, वृष आदि बारह राशियाँ हैं। सवा दो नक्षत्रकी

एक राशि होती है। नवग्रह-मण्डलमें सूर्य तथा चन्द्रमा राजाके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, मंगल सेनापति है, बुध राजकुमार है, बृहस्पति तथा शुक्र सचिवरूपसे एवं गुरुरूपमें स्थित हैं, शनि सेवक है और राहु तथा केतु शनिके अनुगामी हैं। मंगल पृथ्वीका पुत्र है, बुध चन्द्रमाका पुत्र है, शनि सूर्यका पुत्र है तथा राहु-केतुको पृथ्वीका छाया पुत्र माना गया है। मेष और वृश्चिक राशिका स्वामी मंगल है, वृष और तुलाराशिका स्वामी शुक्र है, मिथुन और कन्या राशिका स्वामी बुध है, कर्क राशिका स्वामी चन्द्रमा एवं सिंह राशिका स्वामी सूर्य है। धनु तथा मीन राशिका स्वामी बृहस्पति है तथा मकर और कुम्भ राशिका स्वामी शनि ग्रह है।

महर्षि पराशरके अनुसार मनुष्यकी आयु १२० वर्ष मानी गयी है, जिसमें सभी ग्रह एक निश्चित क्रमसे अपना-अपना समय भोग करते हैं। इसे विंशोत्तरी महादशा कहते हैं। इसके अतिरिक्त अष्टोत्तरी महादशा तथा योगिनी दशाके अनुसार अच्छा-बुरा समय परिवर्तित होता रहता है। विंशोत्तरी महादशाके लिये कृत्तिकासे प्रारम्भकर क्रमशः नवों ग्रह अपनी दशाका भोग करते हैं। कृत्तिका, उत्तरा फाल्गुनी तथा उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें जन्म होनेपर सूर्यकी महादशा होती है। रोहिणी, हस्त तथा श्रवण नक्षत्रमें जन्म होनेपर चन्द्रमाकी दशा होती है। इसी प्रकार आगे भी जन्म-नक्षत्रके अनुसार ग्रहोंकी महादशाका क्रम आता है। सूर्यकी महादशा ६ वर्ष, चन्द्रमाकी महादशा १० वर्ष, मंगलकी महादशा ७ वर्ष, राहुकी महादशा १८ वर्ष, गुरुकी महादशा १६ वर्ष, शनिकी महादशा १९ वर्ष, बुधकी महादशा १७ वर्ष, केतुकी महादशा ७ वर्ष तथा शुक्रकी महादशा २० वर्षतक रहती है। ग्रहोंके महादशा-भोगका यह क्रम तथा समय नियत है।

जब जन्म-कुण्डलीमें या वर्ष-कुण्डलीमें या ग्रहगोचर आदिमें कोई ग्रह खराब स्थितिमें हो तो अरिष्ट-निवारणके लिये ग्रहोंके निमित्त दान-पुण्य करनेकी विधि है।

ज्योतिषशास्त्रमें ग्रहोंके आनुकूल्य-प्राप्तिहेतु विभिन्न प्रकारके दान बताये गये हैं। ग्रहोंके भिन्न-भिन्न प्रकारके दान कहे गये हैं, जो संक्षेपमें निम्न प्रकारसे हैं—

(१) **सूर्य**—सूर्य सभी ग्रहोंका राजा है एवं सभी ग्रहोंमें बली है, किंतु यदि मनुष्यकी जन्म-कुण्डलीमें सूर्य प्रतिकूल स्थितिमें हो तो 'धेनु' का दान करना चाहिये। 'संहिताप्रदीप' ग्रन्थके अनुसार सूर्यहेतु 'ताम्बूल' का दान करना चाहिये। दानचन्द्रिकाग्रन्थमें उद्धृत 'ज्योतिःसार' ग्रन्थमें बताया गया है कि सूर्यहेतु लाल-पीले रंगसे मिश्रित वर्णका वस्त्र, गुड़, स्वर्ण, ताम्र, माणिक्य, गेहूँ, लाल कमल, सवत्सा गौ तथा मसूरकी दालका दान करना चाहिये, यथा—

कौसुम्भवस्त्रं गुडहेमताम्रं
माणिक्यगोधूमसुवर्णपद्मम् ।
सवत्सगोदानमिति प्रणीतं
दुष्टाय सूर्याय मसूरिकाश्च॥

(२) **चन्द्रमा**—चन्द्रमाकी अनुकूलताके लिये श्रीखण्ड चन्दनका दान करना चाहिये। चन्द्रमाकी प्रीतिके लिये घृत कलश, श्वेत वस्त्र, दही, शंख, मोती, स्वर्ण तथा चाँदीका दान करना चाहिये। यथा—

घृतकलशं सितवस्त्रं दधिशङ्खं मौक्तिकं सुवर्णं च।
रजतं च प्रदद्याच्चन्द्रारिष्टोपशान्तये त्वरितम्॥

(३) **मंगल**—मंगल ग्रहकी शान्तिके लिये लाल पुष्प एवं ब्राह्मणको भोजनदान देना चाहिये। मूँगा, गेहूँ, मसूरकी दाल, लाल वर्णका बैल, कनेर पुष्प, लाल वस्त्रयुक्त, गुड़, स्वर्ण, ताम्र एवं रक्त-चन्दनका दान करनेसे मंगलका दोष नष्ट होता है—

प्रवालगोधूममसूरिकाश्च
वृषं सताम्रं करवीरपुष्पम्।
आरक्तवस्त्रं गुडहेमताम्रं
दुष्टाय भौमाय च रक्तचन्दनम्॥

(४) **बुध**—जन्म-कुण्डलीमें यदि बुधकी स्थिति ठीक नहीं हो तो स्वर्ण एवं पुष्पदान करना चाहिये। बुधकी प्रीतिके लिये नीला वस्त्र, मूँग, स्वर्ण, पन्ना, दासी, स्वर्णयुक्त घी, कांस्य (कांसा धातु), हाथीदाँत, भेड़, धन, धान्य, पुष्प-फल-लताका दान करना चाहिये—

नीलं वस्त्रं मुद्गहैमं बुधाय
रत्नं पाचिं दासिकां हेमसर्पिः।
कांस्यं दन्तं कुञ्जरस्याथ मेषो
रौप्यं सस्यं पुष्पजात्यादिकं च॥

(५) बृहस्पति—बृहस्पतिकी शान्तिके लिये अश्व, स्वर्ण, मधु (शहद), पीला वस्त्र, पीला धान्य जैसे—धान, चनेकी दाल इत्यादि, नमक, पुष्प (पीला), शर्करा तथा हल्दी [पुस्तक, पुखराज रत्न, भूमि एवं छत्र]-का दान करना चाहिये। यथा—

अश्वः सुवर्णं मधुपीतवस्त्रं
सपीतधान्यं लवणं सपुष्पम्।
सशर्करं तद्रजनीप्रयुक्तं
दुष्टाय शान्त्यै गुरवे प्रणीतम्॥

(६) शुक्र—शुक्रका दोष निवारण करनेहेतु श्वेत अश्व एवं श्वेत वस्त्रका दान करना चाहिये। चित्रित सुन्दर वस्त्र, चावल, घी, स्वर्ण, धन, हीरा, सुगन्धित दिव्य पदार्थ तथा श्रृंगार-सामग्री एवं सवत्सा श्वेत गौ [स्फटिक, कपूर, शर्करा, मिश्री एवं दही इत्यादि]-का दान करना चाहिये—

चित्रवस्त्रमपि दानवार्चिते
दुष्टगे मुनिवरैः प्रणोदितम्।
तण्डुलं घृतसुवर्णरूप्यकं
वज्रकं परिमलो धवला गौः॥

(७) शनि—जन्मपत्रिकामें यदि शनिकी स्थिति शुभफलदात्री न हो तो काले वर्णकी गाय एवं तैलका दान करना चाहिये। शनिदोषकी शान्तिहेतु नीलम, भैंसा, काला वस्त्र, लोहा तथा जटा नारियल [धन, उड़द, तिल, छाता, जूता एवं कम्बल]- का दान दक्षिणाके साथ करना चाहिये। यथा—

नीलकं महिषं वस्त्रं कृष्णं लौहं सदक्षिणम्।
विश्वामित्रप्रियं दद्याच्छनिदुष्टप्रशान्तये॥

(८) राहु—राहु ग्रहके दोष-निवारणहेतु बहुमूल्य खड्ग (तलवार)-का दान करना चाहिये। काली भेड़, गोमेद, लोहा, कम्बल, स्वर्ण, नाग, तिलपूर्ण ताम्रपात्रका दान करनेसे राहुजनित दोष शान्त होते हैं—

राहोर्दानं कृष्णमेषो गोमेदो लौहकम्बलौ।
सुवर्णं नागरूपं च सतिलं ताम्रभाजनम्॥

(९) केतु—जन्म-कुण्डलीके अनुसार यदि केतु-ग्रह दोषकारक हो तो छाग (बकरी)-का दान करना चाहिये। केतु ग्रहकी प्रीतिके लिये स्वच्छ वैदूर्य (लहसुनिया), तैल, कस्तूरी, तिलयुक्त ऊनी वस्त्र [कम्बल, लोहा, छाता एवं उड़द]-का दान करना चाहिये—

केतोर्वैदूर्यममलं तैलं मृगमदं तथा।
ऊर्णास्तिलैस्तु संयुक्तां दद्यात्क्लेशानुपत्तये॥

इस प्रकारसे नवग्रहोंहेतु विशिष्ट दान शास्त्रोंमें बताये गये हैं। पंचांग आदिमें भी नवग्रहोंके दानकी सारणी दी हुई रहती है। योग्य दैवज्ञके परामर्शसे कार्य सम्पन्न करना चाहिये। दान देते समय उसके साथ दक्षिणा भी अवश्य देनी चाहिये—ऐसा शास्त्रोंमें बताया गया है।

नवग्रहोंके निमित्त दान सामान्यतया उस ग्रहके वारको किया जाता है, यथा सूर्यहेतु दान रविवारको, चन्द्रहेतु दान सोमवारको इत्यादि।

नवग्रहोंका दान

ब्रह्माण्डपुराणके अनुसार ग्रहोंकी प्रसन्नताके लिये नवग्रहमण्डलका दान भी किया जाता है। किसी चौकोर वेदीपर स्वच्छ वस्त्र बिछाकर नौ कोष्ठक बनाये। नौ

पूर्व

	बुध	शुक्र	चन्द्रमा	
उत्तर	बृहस्पति	सूर्य	मंगल	दक्षिण
	केतु	शनि	राहु	

पश्चिम

कोष्ठकोंमें सूर्य आदि ग्रहोंकी यथासम्भव सुवर्णकी प्रतिमा स्थापित करे। मध्य कोष्ठकमें सूर्य, दक्षिणमें मंगल, उत्तरमें गुरु, उत्तरपूर्वमें बुध, पूर्वमें शुक्र, दक्षिणपूर्वमें चन्द्रमा, पश्चिममें शनि, पश्चिमदक्षिणमें राहु तथा पश्चिमोत्तरकोणमें केतुको यथाविधि स्थापित करे। तदनन्तर उनके नाम-मन्त्रोंसे गन्धपुष्पादिसे अर्चनकर निम्न प्रार्थना करे—

सूर्यदेव—

पद्मासनः पद्मकरो द्विबाहुः
पद्मद्युतिः सप्ततुरङ्गवाहः।

दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी
मयि प्रसादं विदधातु देव॥

हे सूर्यदेव! आप रक्तकमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, आपके दो हाथ हैं तथा आप दोनों हाथोंमें रक्तकमल लिये रहते हैं। रक्तकमलके समान आपकी आभा है। आपके वाहन—रथमें सात घोड़े हैं, आप दिनमें प्रकाश फैलानेवाले हैं, लोकोंके गुरु हैं तथा मुकुट धारण किये हुए हैं, आप प्रसन्न होकर मुझपर अनुग्रह करें।

चन्द्रमा—

श्वेताम्बरः श्वेतविभूषणश्च
श्वेतद्युतिर्दण्डधरो द्विबाहुः।
चन्द्रोऽमृतात्मा वरदः किरीटी
श्रेयांसि मह्यं विदधातु देव॥

हे चन्द्रदेव! आप श्वेत वस्त्र तथा श्वेत आभूषण धारण करनेवाले हैं। आपके शरीरकी कान्ति श्वेत है। आप दण्ड धारण करते हैं, आपके दो हाथ हैं, आप अमृतात्मा हैं, वरदान देनेवाले हैं तथा मुकुट धारण करते हैं, आप मुझे कल्याण प्रदान करें।

मंगल—

रक्ताम्बरो रक्तवपुः किरीटी
चतुर्भुजो मेषगमो गदाभृत्।
धरासुतः शक्तिधरश्च शूली
सदा मम स्याद्वरदः प्रशान्तः॥

जो रक्त वस्त्र धारण करनेवाले, रक्त विग्रहवाले, मुकुट धारण करनेवाले, चार भुजावाले, मेषवाहन, गदा धारणकरनेवाले, पृथ्वीके पुत्र, शक्ति तथा शूल धारण करनेवाले हैं, वे मंगल मेरे लिये सदा वरदायी और शान्त हों।

बुध—

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी
चतुर्भुजो दण्डधरश्च हारी।
चर्मासिधृक् सोमसुतः सदा मे
सिंहाधिरूढो वरदो बुधश्च॥

जो पीत वस्त्र धारण करनेवाले, पीत विग्रहवाले, मुकुट धारण करनेवाले, चार भुजावाले, दण्ड धारण करनेवाले, माला धारण करनेवाले, ढाल तथा तलवार धारण करनेवाले, सिंहासनपर विराजमान रहनेवाले हैं, वे चन्द्रमाके पुत्र बुध मेरे लिये सदा वरदायी हों।

बृहस्पति—

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी
चतुर्भुजो देवगुरुः प्रशान्तः।
दधाति दण्डञ्च कमण्डलुञ्च
तथाक्षसूत्रं वरदोऽस्तु मह्यम्॥

जो पीला वस्त्र धारण करनेवाले, पीत विग्रहवाले, मुकुट धारण करनेवाले, चार भुजावाले, अत्यन्त शान्त स्वभाववाले हैं तथा जो दण्ड, कमण्डलु एवं अक्षमाला धारण करते हैं, वे देवगुरु बृहस्पति मेरे लिये वर प्रदान करनेवाले हों।

शुक्र—

श्वेताम्बरः श्वेतवपुः किरीटी
चतुर्भुजो दैत्यगुरुः प्रशान्तः।
तथाक्षसूत्रञ्च कमण्डलुञ्च
जयञ्च बिभ्रद्वरदोऽस्तु मह्यम्॥

जो श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले, श्वेत विग्रहवाले, मुकुट धारण करनेवाले, चार भुजावाले, शान्तस्वरूप, अक्षसूत्र, कमण्डलु तथा जयमुद्रा धारण करनेवाले हैं; वे दैत्यगुरु शुक्राचार्य मेरे लिये वरदायी हों।

शनिदेव—

नीलद्युतिः शूलधरः किरीटी
गृध्रस्थितस्त्राणकरो धनुष्मान्।
चतुर्भुजः सूर्यसुतः प्रशान्तो
वरप्रदो मेऽस्तु स मन्दगामी॥

जो नीली आभावाले, शूल धारण करनेवाले, मुकुट धारण करनेवाले, गृध्रपर विराजमान, रक्षा करनेवाले, धनुषको धारण करनेवाले, चार भुजावाले, शान्तस्वभाव, एवं मन्द गतिवाले हैं, वे सूर्यपुत्र शनि मेरे लिये वर देनेवाले हों।

राहु—

नीलाम्बरो नीलवपुः किरीटी
करालवक्त्रः करवालशूली।

चतुर्भुजश्चर्मधरश्च राहुः
सिंहासनस्थो वरदोऽस्तु मह्यम्॥

नीला वस्त्र धारण करनेवाले, नीले विग्रहवाले, मुकुटधारी, विकराल मुखवाले, हाथमें ढाल-तलवार तथा शूल धारण करनेवाले एवं सिंहासनपर विराजमान राहु मेरे लिये वरदायी हों।

केतु—

धूम्रो द्विबाहुर्वरदो गदाभृत्
गृध्रासनस्थो विकृताननश्च।
किरीटकेयूरविभूषिताङ्गः
सदास्तु मे केतुगणः प्रशान्तः॥

धुएँके समान आभावाले, दो हाथवाले, गदा धारण करनेवाले, गृध्रके आसनपर स्थित रहनेवाले, भयंकर मुखवाले, मुकुट एवं बाजूबंदसे सुशोभित अंगोंवाले तथा शान्त स्वभाववाले केतुगण मेरे लिये सदा वर प्रदान करनेवाले हों।

इस प्रकार ग्रहोंके पूजन-अर्चनके अनन्तर ग्रहोंकी प्रतिमाओंको ब्राह्मणोंको दान कर दे। यह नवग्रहदान सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला, सभी पापोंका शमन करनेवाला तथा शान्ति प्रदान करनेवाला है। यह दान विषुवत् संक्रान्ति, सूर्यचन्द्र-ग्रहण, जन्मनक्षत्र, सोमवार, पूर्णिमा एवं अमावस्याको शुभ कहा गया है। यदि यह दान प्रतिदिन किया जाय तो सर्वोत्तम फलदायक होता है—

विषुवत्ययने राहुग्रहणे शशिसूर्ययोः।
जन्मर्क्षे सोमवारे वा पञ्चदश्यां तथैव च॥
पुण्यकालेषु सर्वेषु पुण्यदेशे विशेषतः।
ग्रहदानं तु कर्तव्यं नित्यं श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणा॥

बारह महीनोंके दान

भारतवर्ष अध्यात्म एवं संस्कृतिप्रधान देश है। यहाँका धार्मिक जीवन व्रत, पर्व, उत्सव, दान, जप, तप, पूजन आदि सत्कर्मों एवं पुण्यार्जनके कार्योंसे सदासे अनुस्यूत रहा है। परार्थके लिये उत्सर्ग एवं त्याग यहाँकी सनातन संस्कृतिका अभिन्न अंग है। दाताके लिये विशेष कल्याणकारी तथा ग्रहीताके लिये परम उपयोगी होनेसे दान एक मुख्य कर्म है। यूँ तो संवत्सरपर्यन्त प्रत्येक मासकी प्रत्येक तिथिमें कुछ-न-कुछ दान अपने सामर्थ्यानुसार देना ही चाहिये, तथापि चैत्र आदि विशेष-विशेष मासोंमें ऋतुचर्या और ऋतुपरिवर्तनकी दृष्टिसे उस मासकी प्रकृतिके अनुसार कुछ विशिष्ट वस्तुएँ दानमें दी जाती हैं, जैसे—ग्रीष्मऋतुमें तापके निवारणके लिये जलदान, प्रपादान (प्याऊ-स्थापन), छाता, पंखा आदिका दान, ऐसे ही शीतऋतुमें शीतबाधाके निवारणके लिये अग्निदान, वस्त्रदान, लवण, गुड़ आदि वस्तुओंका दान। मेष तथा मकरकी संक्रान्ति अर्थात् वैशाख तथा माघके महीनेमें क्रमशः सत्तू तथा खिचड़ीका दान तो शास्त्रतः प्रचलित ही है और प्रायः लोगोंकी जानकारीमें भी है, किंतु वर्षके शेष दस महीनोंमें शास्त्रानुसार किस विशेष अन्न एवं विशेष पदार्थका दान करना चाहिये, इसकी जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। तदनुसार यहाँपर चैत्र आदि मासके क्रमसे प्रत्येक मासकी अन्नादि देय वस्तुओंका यथासम्भव संक्षेपमें दानविवरण दिया जा रहा है—

१-चैत्रमास

संवत्सर (वर्ष)-का प्रारम्भ चैत्रमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे होता है। इसी तिथिसे पितामह ब्रह्माजीने सृष्टिनिर्माण प्रारम्भ किया था। इसी तिथिको भगवान्‌ने मत्स्यरूपमें अवतार धारण किया था। इस दिन पंचांगश्रवण होता है। पंचांगश्रवणके अनन्तर पंचागका दान करना चाहिये। इसीमें नवरात्र-सम्बन्धी पूजन तथा दान भी होता है। चैत्रमासमें प्रायः गेहूँकी फसल एवं आमके फल तैयार रहते हैं, अतः विशेषरूपसे प्रतिदिन संकल्पपूर्वक गेहूँ तथा आम्रफलका दान करना चाहिये। दान करते समय निम्न मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये—

गोधूम (गेहूँ)-दानमन्त्र—

धान्यचूडामणेर्जम्बूद्वीपे गोधूमसम्भवः।
गन्धर्वसौख्यतृप्तिः स्यादतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

आम्रफलदानमन्त्र—

मनोहराणि रम्याणि नित्यं स्वादुकराणि च।
फलानां सम्प्रदानेन सन्ततिस्त्वमला भव॥

यदि सामर्थ्य रहे तो चैत्रमासमें प्रतिदिन स्वर्ण आदिके अथवा मिट्टीके जलपात्र या बर्तनोंका दान करना चाहिये। इससे भगवान् सूर्य तथा वरुणदेवता प्रसन्न होते हैं और वर्षभर आरोग्य प्रदान करते हैं। पात्रदान निम्न मन्त्रसे करना चाहिये—

हिरण्यादीनि भाण्डानि पात्राणि मृण्मयानि च।
गृहाणेमानि वै यस्माद् भास्करः प्रीयतां मम॥

भविष्यपुराणमें बताया गया है कि चैत्रमासमें जल, अन्न, शय्या, गेहूँ, अरहर, दही-भात, बेलफल और आमके फलका दान करना चाहिये। दानसंग्रहमें बताया गया है कि वस्त्र, शय्या, जलपात्र और कमण्डलुका दान करना चाहिये तथा वायु एवं लिंगपुराणने पात्र (बर्तन)-दानकी महिमा बतायी है।

२-वैशाखमास

स्कन्दपुराणने बताया है कि वैशाखके समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है, वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है और गंगाजीके समान कोई तीर्थ नहीं है—

न माधवसमो मासो न कृतेन युगं समम्।
न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गंगया समम्॥

धर्मके साधनभूत मासोंमें वैशाखमास (माधवमास) सर्वश्रेष्ठ है। यह मास भगवान् विष्णुको विशेष प्रिय है। वैशाखमासमें जलदान करनेकी विशेष महिमा है। शास्त्रने तो यहाँतक परामर्श दिया है कि यदि स्वयं जलदान न कर सके तो दूसरोंको इसका महत्त्व बताये तथा जलदानके लिये उन्हें प्रेरित करे। जो वैशाखमासमें मार्गमें प्याऊ लगाता है (प्रपादान करता है), वह देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंको अत्यन्त प्रिय होता है, वैशाखमासमें जलकी इच्छा रखनेवालेको जल, छाया चाहनेवालेको छाता, पंखेकी इच्छा रखनेवालेको पंखा देना चाहिये। इसी प्रकार जो पादुकादान तथा मार्गमें रुकनेवालोंके लिये विश्रामशाला बनाता है, वह अक्षय पुण्य प्राप्त करता है। मेष-संक्रान्तिमें धर्मघटका भी दान किया जाता है। वैशाखमासकी अक्षय तृतीयाको किया गया दान अक्षय हो जाता है। इसी तिथिसे त्रेताका प्रारम्भ हुआ था। परशुरामजीका आविर्भाव इसी तिथिमें हुआ था।

मेषकी संक्रान्ति या वैशाखमासमें प्रतिदिन जौके सत्तू तथा जलका दान निम्न मन्त्रोंसे करना चाहिये—

सत्तूदानमन्त्र—

सक्तवो धर्मदा नित्यं ब्रह्मणः प्रीतिकारकाः।
त्वद्दानान्मम दुष्कर्मक्षयोऽस्तु सुखमस्तु मे॥
प्राजापत्या यतः प्रोक्ताः सक्तवो यज्ञकर्मणि।
तस्मादेषां प्रदानेन प्रीयतां मे प्रजापतिः॥

यदि सत्तूका अभाव हो तो खड़े यवका भी दान किया जा सकता है।

जलदान (धर्मघट)-मन्त्र—

उदकुम्भो मया दत्तो ग्रीष्मकाले दिने दिने।
शीतोदकप्रदानेन प्रीयतां मधुसूदनः॥

वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षयतृतीया)-को अथवा वैशाखकी पूर्णिमाको या सामर्थ्य होनेपर पूरे वैशाख महीनेमें प्रतिदिन पंखेका दान करना चाहिये। पंखा दान करते समय निम्न मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

व्यजनं वायुदैवत्यं ग्रीष्मकाले सुखप्रदम्।
अस्य प्रदानात् सफलाः मम सन्तु मनोरथाः॥

धूपसे बचानेके लिये छत्र (छाते)-का दान भी करना चाहिये तथा तक्र (मट्ठे) तथा आम्रके पन्ने एवं शर्बतका दान करना चाहिये।

३-ज्येष्ठमास

ज्येष्ठमासमें ग्रीष्मसे रक्षा करनेवाले पदार्थोंका दान करना चाहिये। वटसावित्री, गंगादशहरा, निर्जला एकादशी आदि इस मासके मुख्य पर्व हैं। अतः तद्व्रतसम्बन्धी दान तो आवश्यक ही है। विशेष रूपसे ज्येष्ठमासमें दध्योदन (दही-भात) और सन्तानवृद्धिके लिये अश्वत्थवृक्षके निमित्त जलदानकी महिमा है। दही और ओदन (भात)की पृथक्-पृथक् दानकी भी परम्परा है। निम्न मन्त्रसे दध्योदनका दान करना चाहिये—

चन्द्रमण्डलमध्यस्थं चन्द्राम्बुदसमप्रभम्।
दध्यन्नं चास्य दानेन प्रीयतां वामनो मम॥

अश्वत्थमूल (पीपलके मूल)-में निम्न मन्त्रसे जल देना चाहिये—

सिञ्चामि तेऽश्वत्थमूलं मम सन्ततिवृद्धये।
अश्वत्थरूपी भगवान् प्रीयतां मे जनार्दनः॥

सामर्थ्य रहनेपर ज्येष्ठमासभर प्रत्येक दिन उपानह (जूता)-का दान करना चाहिये। ऐसे ही ज्येष्ठमासमें गोदान, जलदान, अन्नदान, उदकुम्भदान, व्यजन (पंखा) दान, छत्रदानकी विशेष महिमा है।

४-आषाढ़मास

भगवान् जगन्नाथजीकी रथयात्रा तथा गुरुपूर्णिमा—ये आषाढ़के दो मुख्य पर्व हैं। आषाढ़मासमें आमलक (आमड़ा)-के फलके दानका माहात्म्य है। यदि शक्ति हो तो आषाढ़मासभर अथवा पूर्णिमाके दिन कपूरके सहित चन्दन तथा ग्रन्थ (पुस्तक)-का दान करना चाहिये।

वस्त्र, अन्न, जल तथा भगवान् वामनकी प्रसन्नताके लिये जूता, छाता, नमक और आमलकका दान करना चाहिये। वेद, अठारह पुराणों, गीता, रामायण, महाभारत, स्मृतियोंके ग्रन्थोंका दान करना चाहिये। पुस्तकदानका मन्त्र इस प्रकार है—

सर्वविद्याश्रया यज्ञाः करणं लिखिताक्षरम्।
पुस्तकस्य प्रदानेन प्रीणातु मम भारती॥
सरस्वति जगन्मातः शब्दब्रह्माधिदैवते।
अस्याः प्रदानाद्वागीशा प्रसन्ना जन्मजन्मनि॥

५-श्रावणमास

श्रावणमास भगवान् शंकरको अति प्रिय है। अतः रुद्रसम्बन्धी अभिषेकादि तथा श्रावणके सोमवारको व्रत रखनेका विशेष माहात्म्य है। इसी मासके मंगलवारको मंगलागौरीव्रत तथा व्रतसम्बन्धी दान-पूजन आदि होता है। ऐसे ही अशून्यशयनव्रत, तीज, नागपंचमी तथा रक्षाबन्धन एवं श्रावणी-उपाकर्म इस मासके मुख्य पर्व हैं। यह मास पूजन, दान तथा स्वाध्यायका मास है। श्रावणमासमें प्रतिदिन शाक-दान करना चाहिये। श्रावणमासमें नदीसन्तरणके लिये नौका आदिका दान करना चाहिये। इसके साथ ही वस्त्र, घृत, दूध, रत्न, अन्न आदि चातुर्मास्यसम्बन्धी द्रव्योंका दान करना चाहिये। श्रावण उपाकर्म (श्रावणी पूर्णिमा)-को प्रतिष्ठित यज्ञोपवीतका दान करना चाहिये और ब्राह्मणोंको पायस (खीर)-से सन्तृप्त करना चाहिये। निम्न मन्त्रसे यज्ञोपवीत दान करे—

ब्रह्मसूत्रं महादिव्यं मया यत्नेन निर्मितम्।
ब्राह्मं तन्मेऽस्तु ते देव ब्रह्मसूत्रप्रदानतः॥

६-भाद्रपदमास

भाद्रपदमास व्रतपर्वोंका मास है। इसमें श्रीकृष्णजन्माष्टमी, गोवत्सद्वादशी, कुशोत्पाटिनी अमावास्या, हरितालिकातीज, गणेशचतुर्थी, ऋषिपंचमी, राधाष्टमी, वामनद्वादशी तथा अनन्तचतुर्दशी आदि पर्व पड़ते हैं। इनमें व्रतके विधानके अनुसार विविध दानोंका विधान है। सिंहकी संक्रान्ति या भाद्रपदमासमें प्रतिदिन खीर और शहद-दानकी विधि है। पृथक्-पृथक् रूपसे दूध, शर्करा, श्यामाक (साँवा), मधु आदि भी दान किया जाता है, पायस (खीर)-के दानका मन्त्र निम्न है—

पायसं शर्करायुक्तं सघृतं कांस्यभाजने।
प्रदानान्मे फलं चास्तु ऐहिकामुष्मिकं च यत्॥

सामर्थ्य होनेपर भाद्रपदमासमें प्रत्येक दिन छत्र (छाता) दान करना चाहिये। सुवर्णछत्रकी भी विशेष महिमा है।

७-आश्विनमास

कन्याके सूर्य या आश्विन (क्वार)-में प्रतिदिन तिल और घृतका दान करना चाहिये। इस मासमें रोगोंकी सम्भावना अधिक रहती है। अतः आरोग्यता-सम्पादनके लिये विशेष रूपसे औषधिका दान करना चाहिये। औषधिदानका मन्त्र इस प्रकार है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्।
अतो भैषज्यदानेन भवेत्प्रीतश्चतुर्भुजः॥

आश्विनमासमें घृतदान करनेसे सुरूपताकी प्राप्ति होती है।

इसी मासके कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे अमावास्यातक पितरोंका पर्व पितृपक्ष पड़ता है, उसमें पितरोंके निमित्त पिण्डदान आदि श्राद्धकर्मका विधान है। पितृपक्षमें प्रतिदिन

अथवा माता-पिता आदि पूर्वजोंकी तिथियोंपर उनके निमित्त ब्राह्मणोंको भोजन, अन्न, वस्त्र तथा दक्षिणा आदिका दान करना चाहिये। इससे पितरोंकी तृप्ति होती है तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त होता है। आश्विन शुक्लपक्ष प्रतिपदासे नवमीतक शारदीय नवरात्रमहोत्सव होता है, जिसमें व्रत, पाठ, पूजन, हवन, दान आदिकी विधि है। इस कालमें कुमारी कन्याओं तथा सुवासिनी (सौभाग्यवती स्त्री)-को भोजन-वस्त्र तथा दक्षिणाका दान करना चाहिये।

आश्विनशुक्ल पूर्णिमा शरत्पूर्णिमा कहलाती है। यह महालक्ष्मीका पर्व है। इस दिन कोजागरव्रत होता है। इस दिन महानिशामें चन्द्रकिरणोंसे अमृतकी वर्षा होती है। अत: खीरसे भरे पात्रको चाँदनीमें रखा जाता है और उसका दान तथा भोग होता है। इस दिन कांस्यपात्रमें घी भरकर सुवर्णसहित उसका दान किया जाता है। भगवान्ने इसी दिन महारासोत्सवकी लीला की थी, अत: इसे रासोत्सव या कौमुदीमहोत्सव भी कहते हैं। इस रात्रिमें खीरका प्रसाद बाँटनेकी परम्परा है।

८-कार्तिकमास

'मासानां कार्तिकः श्रेष्ठः' इस वचनसे कार्तिक मास सभी मासोंमें श्रेष्ठ है। कार्तिकमास तो दान-पूजनका ही मास है। करवाचौथ, गोवत्सद्वादशी, धनतेरस, गोत्रिरात्रव्रत, नरकचतुर्दशी, हनुमज्जयन्ती, दीपावली, अन्नकूट, गोवर्धनपूजन, यमद्वितीया, सूर्यषष्ठी, गोपाष्टमी, अक्षयनवमी, देवोत्थानी एकादशी, तुलसीविवाह, वैकुण्ठचतुर्दशी, कार्तिकपूर्णिमा आदि महोत्सवोंका मास है कार्तिक। यह मास प्रकाशपर्व तथा दीपदानके लिये प्रसिद्ध है। इन पर्वोंपर विशेष-विशेष वस्तुओंका दान होता है। तुलाकी संक्रान्ति अथवा कार्तिक मासमें प्रतिदिन चनेका दान तथा गोसेवा करनी चाहिये और नित्य गोपरिचर्या करके गोग्रास देना चाहिये। गोग्रास देते समय निम्न मन्त्र बोलना चाहिये—

सुरभि त्वं जगन्मातर्नित्यं विष्णुपदे स्थिता।
सर्वदेवमयं ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस॥

प्रत्येक दिन सायंकाल दीपदान करना चाहिये। साथ ही इस मासमें धान्य, बीज, चाँदी, दीप, नमक आदिका दान करना चाहिये तथा सम्पूर्ण मास गायोंकी सेवा करनी चाहिये।

गायोंके लिये चारे आदिका दान, गोशालानिर्माण आदि कार्य भी विशेष रूपसे इस मासमें करने चाहिये।

९-मार्गशीर्ष (अगहन)-मास

वृश्चिकके सूर्य या अगहन महीनेको भगवान्ने अपनी विभूति बताया है—**'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्'**। इस महीनेभर गुड़ तथा नमकके दानकी विशेष महिमा है। इसी महीनेमें कपास या सूती वस्त्रका दान करना चाहिये। उस समय निम्न मन्त्र पढ़े—

शरण्यं सर्वलोकानां लज्जाया रक्षणं परम्।
देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

इस मासमें कालभैरवाष्टमी तथा विवाहपंचमी—ये दो मुख्य पर्व हैं। मार्गशीर्षपूर्णिमा दत्तावतार तिथि है तथा मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशीको गीताजयन्ती पड़ती है।

१०-पौषमास

पौषमासमें धनुकी संक्रान्ति होती है तथा धनुर्माससम्बन्धी उत्सव होते हैं। पौषपूर्णिमासे माघस्नानके नियम प्रारम्भ होते हैं। पौषमासमें रविवारको व्रत करके भगवान् सूर्यकी आराधना होती है तथा सूर्यको अर्घ्यदान दिया जाता है। इस मासमें नीवार धान्य (तिन्नी) तथा गुड़का दान दिया जाता है। दानके मन्त्र इस प्रकार हैं—

धान्यदानमन्त्र—

धान्यं करोति दातारमिह लोके परत्र च।
तस्मादस्य प्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः॥

गुडदानमन्त्र—

प्रणवं सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा।
तथा रसानां प्रवरः ददस्व गुड सर्वदा॥

पौषमासमें शीतबाधा आदिके निवारणके लिये ऊनी वस्त्र तथा कम्बल आदि देनेकी विधि है। स्कन्दपुराणने बताया है कि पौषमासमें गो, वस्त्र, धान्य, लवण, गुड़, चाँदी, घृत आदिका दान करना चाहिये। कम्बल तथा ऊनीवस्त्रके दानका मन्त्र इस प्रकार है—

कम्बलदानमन्त्र—

शीतवर्षाहरः पुण्यो हृष्टो बलविवर्धनः।
कम्बलस्य प्रदानेन शान्तिरस्तु सदा मम॥

ऊर्णावस्त्रप्रदानमन्त्र—

ऊर्णावस्त्रं चारुचित्रं देवानां प्रीतिवर्धनम्।
सुखस्पर्शकरं यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

११-माघमास

माघमास स्नान, दान, पूजन तथा नामजप एवं सत्संगपूर्वक रात्रिजागरणका मास है। सभी दानोंके लिये माघमास अत्यन्त प्रशस्त है। गंगादि पुण्यतोया नदियोंके तटपर कुम्भ आदि पर्व इसी मासमें पड़ते हैं। अतः कल्पभर (मासभर) दान-ही-दान होता है। मकरसंक्रान्ति, षट्तिला एकादशी, मौनी अमावास्या, वसन्तपंचमी, अचलासप्तमी, माघीपूर्णिमा इस मासके मुख्य पर्व हैं, कल्पभरके स्नानके बाद विशेष दान-पुण्यकी परम्परा है।

माघमासमें प्रतिदिन घृत, नमक, हल्दीसहित और तिल-गुड़से बने लड्डूके साथ खिचड़ी तथा पात्र देनेका विधान है। खिचड़ी तथा लड्डूदानके मन्त्र इस प्रकार हैं—

कृशरं सर्वशीतघ्नं शनिप्रीतिकरं सदा।
तस्मादस्य प्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः॥
सतिलं गुडसंयुक्तं रसप्रीतिकरं नृणाम्।
वर्धितं संगृहाणेदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

विशेष करके माघकी अमावास्या या पूर्णिमा अथवा सामर्थ्य होनेपर पूरे मासभर प्रतिदिन अग्नि और ईंधन (लकड़ी)-के दानसे महाफल होता है।

साथ ही इस मासमें तिल, तिलधेनु, कृशरान्न (खिचड़ी), पान, गुड़, ईंधन, अग्नि, ऊनी वस्त्र आदिका दान होता है।

१२-फाल्गुनमास

कुम्भके सूर्य या फाल्गुनमासमें प्रतिदिन धान और गौके लिये जल तथा तृण (घास-चारा) आदिका दान करना चाहिये। विशेष रूपसे फाल्गुनभर आसन और बिछानेके लिये वस्त्रका दान करना चाहिये। वायुपुराणमें बताया गया है कि फाल्गुनमें विष्णुकी प्रसन्नताके लिये धान, गाय, कृष्णमृगचर्म तथा वस्त्रका दान करना चाहिये।

इस मासकी कृष्णचतुर्दशी महाशिवरात्रि कहलाती है, जिसमें भगवान् शंकरकी पूजा तथा उनके निमित्त दानकी परम्परा है। रंगोंका त्यौहार होली भी फाल्गुनका ही पर्व है। इसमें सौजन्य, सौहार्द एवं मैत्रीकरणके लिये परस्पर अभिवादन तथा आलिंगनदानकी परम्परा है।

पुरुषोत्तममास

पुरुषोत्तममासके अधिष्ठाता स्वयं भगवान् मधुसूदन विष्णु हैं। इस मासमें प्रत्येक दिन अपूप (पुआ)-दानकी विधि है। निम्न मन्त्रसे अपूपदान करना चाहिये—

विष्णुरूपी सहस्रांशुः सर्वपापप्रणाशनः।
अपूपान्नप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु॥

हेमाद्रिमें बताया गया है कि मलमास प्राप्त होनेपर गुड़, घृत मिले चावल आदिके आटेसे पुए बनाकर ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इस मासमें द्वादशी तिथिको अन्नदानकी विशेष महिमा है। इस मासमें थोड़ेसे भी दानका महान् फल है—**'किञ्चिद्दानान्महत्फलम्।'**

दानात्मक व्रत

१-वारिव्रत—भविष्योत्तरपुराणमें कुछ ऐसे व्रत बताये गये हैं, जो दानप्रधान हैं। यथा—चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ़—इन चारों महीनोंमें बिना माँगे ही जलका दान करना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर अन्न, वस्त्र, घृतके सहित सप्तधान्य, तिलपात्र और सुवर्णयुक्त घटका दान करना चाहिये। यह वारिव्रत कहलाता है।

२-वैष्णवव्रत—सावन, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक—इन चार महीनोंमें गोदान और घृतकुम्भका दान करे, यह वैष्णवव्रत है।

३-वैश्वानरव्रत—हेमन्त, शिशिर ऋतुमें जलानेकी लकड़ी और घृतधेनु दान करनेवाला महान् फलको प्राप्त करता है, यह वैश्वानरव्रत है।

आग्नेयपुराणमें बताया गया है कि कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ—इन चार महीनोंमें कसार (चावल आदिके आटेको घीमें भूनकर शक्कर डालकर बनाया गया द्रव्यविशेष), फाल्गुन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठमें खिचड़ी तथा आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद तथा आश्विनमें ब्राह्मणोंको खीरका दान करना चाहिये।

संक्रान्ति एवं ऋतुओंके दान

(श्रीश्रीरामशर्माजी, ज्योतिषाचार्य)

भारतीय संस्कृति एवं शास्त्रोंमें दानका विशेष महत्त्व परिलक्षित होता है। दानके विभिन्न प्रकार, देय वस्तु, दाता, दान-पात्र इत्यादिका विवेचन विविध आचार्योंने शास्त्रोंमें किया है। भारतीय संस्कृतिमें वर्णित चारों आश्रमोंमें गृहस्थाश्रमको महत्ता दी गयी है, साथ ही दान-प्रकरणमें भी गृहस्थको ही योग्य एवं प्रथम बताया गया है। यथा—

'दानमेव गृहस्थानां शुश्रूषा ब्रह्मचारिणाम्।'

(हेमाद्रिकृत चतुर्वर्गचिन्तामणिमें यमका वचन)

दान करनेसे विद्या, ऐश्वर्य, पुत्रादि सन्तति, कीर्ति, यश, बल, देवलोक एवं अभीष्टकी प्राप्ति होती है—**'दानेन प्राप्यते स्वर्गः श्रीर्दानेनैव लभ्यते।'** भारतीय संस्कृतिमें वर्णित पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्तिहेतु दानको ही सर्वोत्तम कहा है—

'धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम्॥'

(हेमाद्रि)

दान करनेकी सीमाएँ बताते हुए कहा गया है कि मनुष्य दानका संकल्प यथाशक्ति करे। अन्यथा दानका संकल्प लेकर दान न करनेसे पापका भागी होता है। नारद एवं बृहस्पतिके अनुसार मनुष्यको अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान नहीं करनी चाहिये; ऐसा करनेसे वह अपने कुटुम्बजनोंका अहित करता है तथा उनके शापका भागी बनता है, किंतु जो व्यक्ति धनादिसे समृद्ध है, उसे यथाविभव दान करना चाहिये; क्योंकि दान ही धनके सदुपयोगका एकमात्र उपाय है।

यूँ तो दान नित्य करणीय कर्म है तथापि शास्त्रोंमें विभिन्न अवसरोंपर दिये जानेवाले दानोंका विशेष महत्त्व प्रतिपादित है। यथा—पर्वोंपर, ग्रहणकालमें, तीर्थोंमें इत्यादि। संक्रान्तिकाल एवं ऋतु-प्रवेशकालमें दिये जानेवाले दान भी उनमेंसे हैं।

भारतीय ज्योतिषशास्त्रके अनुसार मेष आदि द्वादश राशियोंमें सूर्यका प्रवेश करना ही 'संक्रान्ति' कहा जाता है। सूर्यके एक राशिसे दूसरे राशिमें प्रवेशका काल संक्रान्ति-काल कहलाता है। सूर्यद्वारा कर्क राशिमें प्रवेश करनेपर 'दक्षिणायन'-प्रवृत्ति तथा मकर राशिमें प्रवेश करनेपर 'उत्तरायण'-प्रवृत्ति होती है। मेष आदि द्वादश राशियोंमें सूर्यके संक्रमणसे ही षड् ऋतुएँ बनती हैं एवं क्रमशः परिवर्तित होती हैं। इन संक्रान्ति तथा ऋतुपरिवर्तनके समय दिये जानेवाले दानोंका राश्यादिक्रमसे संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. जब सूर्य मेष राशिमें प्रवेश करता है तो मेष (भेड़)-का दान करना चाहिये **'मेषसंक्रमणे भानोर्मेषदानं महाफलम्।'** (हेमाद्रि) मेष राशिमें सूर्य संक्रान्ति होनेपर ग्रीष्मऋतु प्रारम्भ होती है। ग्रीष्मऋतुके आरम्भमें जल, शीतल-प्रकृतिवाले अन्य पौष्टिक पेय एवं छाता दान करना चाहिये—

'पानकानां तथा ग्रीष्मे छत्राणां दानमुच्यते।'

(हेमाद्रिमें विष्णुधर्मोत्तरका वचन)

२. वृष राशिमें सूर्यकी संक्राति होनेपर गोदान अथवा गोवंशका दान श्रेष्ठ होता है **'वृषसंक्रमणे दानं गवां प्रोक्तं तथैव च।'** (हेमाद्रि) गोदान करनेसे मनुष्य दिव्य लोक प्राप्त करता है।

३. मिथुन राशिमें सूर्यका संक्रमण होनेपर वस्त्र, अन्न एवं जलदान करना चाहिये। मिथुन राशिमें सूर्य-संक्रान्ति होनेपर वर्षाऋतु प्रारम्भ होती है। इस समय ब्राह्मणों अथवा ब्राह्मण-कन्याओंको तिलका दान करना चाहिये। इससे देवी उनपर प्रसन्न होती हैं।

४. कर्ककी संक्रान्ति होनेपर घृतधेनु या घी एवं गोका दान करना श्रेयस्कर होता है। सूर्यद्वारा दक्षिणायनमें प्रवेशके समय अन्न, वस्त्र, घी तथा गोदान करना चाहिये।

५. सिंह राशिमें सूर्यके प्रवेश करनेपर स्वर्ण एवं छाताका दान करना चाहिये। इसी समयसे शरद् ऋतु प्रारम्भ होती है, अतः इस दिन अन्नदानका भी अत्यधिक महत्त्व है।

६. सूर्यके कन्या राशिमें संक्रमण होनेपर वस्त्र, गौ एवं औषधिका दान करना चाहिये। जैसा कि विदित है शरद् ऋतुमें अनेक प्रकारके रोगोंका प्रकोप होता है, अतः औषध-दान भारतीय ज्योतिषशास्त्रकी वैज्ञानिकताको भी प्रदर्शित करता है।

७. तुला-संक्रान्ति होनेपर धान्य-दान एवं बीजका दान श्रेयस्कर होता है। अन्नकूट-महोत्सव भी इसी तुला संक्रान्ति मासमें ही मनाया जाता है, जो कि अन्न एवं बीजदानका मुख्य अवसर होता है। तुला-संक्रान्ति होनेपर हेमन्त ऋतु आरम्भ होती है, इस समय ऊनी वस्त्रों एवं अग्निका दान करना चाहिये।

८. वृश्चिक राशिमें सूर्य-संक्रमणके समय वस्त्र तथा गृहदान हितकर है। पुराणोंके अनुसार गृहदान करनेसे ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है।

९. धनु-संक्रान्तिके समय वस्त्र एवं वाहनका दान करना चाहिये। वाहन-दान करना उत्तम लोककी प्राप्तिमें सहायक होता है। धनु-संक्रान्तिके साथ ही शिशिर ऋतुका प्रारम्भ होता है। इस अवसरपर ब्राह्मणोंको तिल, केशर, अग्नि, घी एवं दलिया दान करना उत्तम होता है। घीका दान करनेसे आरोग्यप्राप्ति होती है। अग्नि इत्यादिका दान करनेसे शत्रु भी नष्ट होते हैं—

शिशिरे सततं वह्निं तर्पयित्वा तथा तिलैः।
कुल्माषं सघृतं दत्त्वा यथाशक्त्या द्विजातिषु॥
कायाग्निदीप्तिप्राकाश्यं शत्रुनाशञ्च विन्दति॥

(हेमाद्रिमें विष्णुधर्मोत्तर)

१०. मकर राशिमें सूर्यका प्रवेश होनेपर जूता, काष्ठ (लकड़ी) एवं अग्निका दान करना चाहिये। इस समय सूर्य उत्तरायणकी ओर प्रवृत्त होता है, अतः तिलधेनु या गो एवं तिलका दान करना श्रेयस्कर होता है—

धेनुं तिलमयीं राजन् दद्याद्यश्चोत्तरायणे।
सर्वकामानवाप्नोति विन्दते परमं सुखम्॥

(हेमाद्रिमें स्कन्दपुराण)

इस समय वस्त्र, तिल एवं गोवंश (वृषभ)-का दान करनेसे रोगोंका नाश होता है यथा—

उत्तरे त्वयने विप्रा वस्त्रदानं महाफलम्।
तिलपूर्णमनड्वाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते॥

(चतुर्वर्गचिन्तामणिमें विष्णुधर्मोत्तरका वचन)

११. सूर्यद्वारा कुम्भ राशिमें प्रवेश करनेपर गोदान, जलदान एवं तृणदान (पशुओंहेतु चारा) करना श्रेयस्कर होता है। कुम्भ-संक्रान्तिके समय वसन्त ऋतु आरम्भ होती है। ऋतुराज वसन्तके आगमनपर स्नान आदिके द्रव्य एवं लेपनादि सुगन्धित द्रव्य, जल, पात्र, तेल, काजल इत्यादि प्रसाधनोंका दान करना चाहिये—

'स्नानानुलेपनादीनां वसन्ते दानमिष्यते।'

(हेमाद्रिमें विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

१२. मीन-संक्रान्तिके अवसरपर स्नानादिके पदार्थ, विभिन्न पुष्प तथा पुष्पमालाओं इत्यादिका दान करना चाहिये।

धर्मसिन्धुमें संक्रान्तिकालके दानको इस प्रकार बताया गया है—**'मेषे मेषदानम्। वृषे गोदानम्। मिथुने वस्त्रान्नादिदानम्। कर्के घृतधेनुः। छत्रं सुवर्णं च सिंहे। कन्यायां गृहं वस्त्रं च। तुलायां तिला गोरसाश्च देयाः। वृश्चिके दीपः। धनुषि वस्त्रं यानं च। मकरे काष्ठान्यग्निश्च। कुम्भे गोर्जलं तृणं च। मीने भूमिर्मालाश्च देयाः।'**

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार यदि किसी व्यक्तिके लिये कोई भी संक्रान्ति अशुभ फलदात्री हो तो उसके लिये विशेष दान देना चाहिये। एक पात्रमें तिल भरकर उसपर किसी अन्य धान्यसे चक्र, त्रिशूल एवं त्रिकोणाकृति अंकित करनी चाहिये। पश्चात् उसपर स्वर्ण रखकर दानमें देना चाहिये। यथा—

तिलोपरि लिखेच्चक्रं त्रिशूलं च त्रिकोणकम्।
तत्र हेमं विनिःक्षिप्य दद्याद्दोषानुपत्तये॥

(नारद)

सभी प्रकारके दानोंके साथ यथाशक्ति दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये।

सूर्यद्वारा राशि-संक्रमणके कुछ समय पूर्व अथवा पश्चात्‌का समय पुण्यकाल कहलाता है, सामान्यरूपसे संक्रान्तिका पुण्यकाल सोलह घड़ी माना जाता है, किंतु शास्त्रोंमें संक्रान्तिके पृथक्-पृथक् पुण्यकाल निर्धारित किये गये हैं। यथा—मेषकी संक्राति तथा तुलाकी संक्रान्तिसे पहले तथा बादमें १५-१५ घटी (अर्थात् ६ घण्टे पहले तथा ६ घण्टे बादतक) पुण्यकाल होता है, कोई १० घटी बताते हैं। कर्कसंक्रान्तिमें पूर्वकी ३० घटीका समय (१२ घण्टा) तथा मकरमें ४० घटी बादका समय (१६ घण्टा) पुण्यकाल बताया गया है। इसी प्रकार अन्य संक्रान्तियोंका भी अलग-अलग पुण्यकाल रहता है। उपर्युक्त दान पुण्यकालमें अतिशुभ फलदायी कहे गये हैं। इस प्रकार विभिन्न अवसरोंपर विभिन्न प्रकारके दान करनेसे मनुष्य पुरुषार्थचतुष्टयको प्राप्तकर अपना जीवन धन्य बनाते हैं—

'दानानि ये प्रयच्छन्ति कृतार्थास्ते नरा भुवि।'

नक्षत्रोंमें विभिन्न वस्तुओंका दान

महाभारतमें भीष्म-युधिष्ठिर-संवादमें दानकी बहुत-सी बातें आयी हैं, उसी सन्दर्भमें युधिष्ठिरजीने भीष्मजीसे पूछा—पितामह! मुझे यह बताइये कि किस नक्षत्रका योग प्राप्त होनेपर किस-किस वस्तुका दान करना उत्तम है।

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! इस विषयमें जानकार मनुष्य देवकीदेवी और महर्षि नारदके द्वारकामें हुए संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। वे ही बातें मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो—

कृत्तिका नक्षत्र आनेपर मनुष्य घृतयुक्त खीरके द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तृप्त करे। इससे वह सर्वोत्तम लोकोंको प्राप्त होता है। **रोहिणी** नक्षत्रमें पके हुए फलके गूदे, अन्न, घी, दूध तथा पीनेयोग्य पदार्थ ब्राह्मणको दान करने चाहिये। इससे उनके ऋणसे छुटकारा मिलता है। **मृगशिरा** नक्षत्रमें दूध देनेवाली गौका बछड़ेसहित दान करके दाता मृत्युके पश्चात् इस लोकसे सर्वोत्तम स्वर्गलोकमें जाते हैं। **आर्द्रा** नक्षत्रमें उपवासपूर्वक तिलमिश्रित खिचड़ीका दान करनेवाला मनुष्य बड़े-बड़े दुर्गम संकटोंसे तथा तलवारकी-सी धारवाले पर्वतोंसे भी पार हो जाता है। **पुनर्वसु** नक्षत्रमें पूआ और अन्नदान करके मनुष्य उत्तम कुलमें जन्म लेता है और वहाँ यशस्वी, रूपवान् एवं प्रचुर अन्नसे सम्पन्न होता है। **पुष्य** नक्षत्रमें सोनेका आभूषण अथवा केवल सोना ही दान करनेसे दाता प्रकाशशून्य लोकोंमें भी चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता है। जो **आश्लेषा** नक्षत्रमें चाँदी अथवा बैलका दान करता है, वह इस जन्ममें सब प्रकारके भयसे मुक्त हो दूसरे जन्ममें उत्तम कुलमें जन्म लेता है। जो मनुष्य **मघा** नक्षत्रमें तिलसे भरे हुए पात्रोंका दान करता है, वह इहलोकमें पुत्रों और पशुओंसे सम्पन्न हो परलोकमें भी आनन्दका भागी होता है। **पूर्वाफाल्गुनी** नक्षत्रमें उपवास करके जो मनुष्य ब्राह्मणोंको मक्खनमिश्रित भक्ष्य पदार्थ देता है, वह सौभाग्यशाली होता है। **उत्तराफाल्गुनी** नक्षत्रमें विधिपूर्वक घृत और दुग्धसे युक्त साठीके चावलसे बने भातका दान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। **हस्त** नक्षत्रमें उपवास करके ध्वजा, पताका, चँदोवा और किंकिणीजाल—इन चार वस्तुओंसे युक्त हाथी जुते हुए रथका दान करनेवाला मनुष्य पवित्र कामनाओंसे युक्त उत्तम लोकोंमें जाता है। जो लोग **चित्रा** नक्षत्रमें वृषभ एवं पवित्र गन्धका दान करते हैं, वे अप्सराओंके लोकमें विचरते और नन्दनवनमें रमण करते हैं। **स्वाती** नक्षत्रमें अपनी अधिक-से-अधिक प्रिय वस्तुका दान करके मनुष्य शुभ लोकोंमें जाता है और इस जगत्‌में भी महान् यशका भागी होता है। जो **विशाखा** नक्षत्रमें गाड़ी ढोनेवाले बैल, दूध देनेवाली गाय, धान्य, वस्त्र और शकट दान करता है, वह देवताओं और पितरोंको तृप्त कर देता है तथा मृत्युके पश्चात् अक्षय सुखका भागी होता है। वह जीते-जी कभी संकटमें नहीं पड़ता और मरनेके बाद स्वर्गलोकमें जाता है। जो मनुष्य **अनुराधा** नक्षत्रमें उपवास करके ओढ़नेका वस्त्र और उत्तम अन्न दान करता है, वह सौ युगोंतक स्वर्गलोकमें सम्मानपूर्वक रहता है। जो मनुष्य **ज्येष्ठा** नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको समयोचित शाक और मूली दान करता है, वह अभीष्ट समृद्धि और सद्‌गतिको प्राप्त होता है। **मूल** नक्षत्रमें एकाग्रचित्त हो ब्राह्मणोंको मूल-फल दान करनेवाला मनुष्य पितरोंको तृप्त करता और अभीष्ट गतिको पाता है। **पूर्वाषाढ़ा** नक्षत्रमें उपवास करके कुलीन, सदाचारी एवं वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणको दहीसे भरे हुए पात्रका दान करनेवाला मनुष्य मृत्युके पश्चात् ऐसे कुलमें जन्म लेता है, जहाँ गोधनकी अधिकता होती है। जो **उत्तराषाढ़ा** नक्षत्रमें जलपूर्ण कलशसहित सत्तूकी बनी हुई खाद्य वस्तु, घी और मक्खन दान करता है, वह सम्पूर्ण मनोवांछित भोगोंको प्राप्त कर लेता है। जो धर्मपरायण पुरुष **अभिजित्** नक्षत्रके योगमें मनीषी ब्राह्मणोंको मधु और घीसे युक्त दूध देता है, वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। जो **श्रवण** नक्षत्रमें वस्त्रवेष्टित कम्बल दान करता है, वह श्वेत विमानके द्वारा स्वर्गलोकमें जाता है। जो **धनिष्ठा** नक्षत्रमें एकाग्रचित्त होकर बैलगाड़ी, वस्त्रसमूह तथा धन दान करता है, वह मृत्युके पश्चात् शीघ्र ही राज्य पाता है। जो **शतभिषा** नक्षत्रके योगमें अगरु और चन्दनसहित सुगन्धित पदार्थोंका दान करता है, वह परलोकमें अप्सराओंके समुदाय तथा अक्षय गन्धको पाता

है। **पूर्वाभाद्रपदा** नक्षत्रके योगमें बड़ी उड़द या सफेद मटरका दान करके मनुष्य परलोकमें सब प्रकारकी खाद्य वस्तुओंसे सम्पन्न हो सुखी होता है। जो **उत्तराभाद्रपदा** नक्षत्रके योगमें फलका गूदा दान करता है, वह पितरोंको तृप्त करता और परलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है। जो **रेवती** नक्षत्रमें काँसेके दुग्धपात्रसे युक्त धेनुका दान करता है, वह धेनु परलोकमें सम्पूर्ण भोगोंको लेकर उस दाताकी सेवामें उपस्थित होती है। जो नरश्रेष्ठ **अश्विनी** नक्षत्रमें घोड़े जुते हुए रथका दान करता है, वह हाथी, घोड़े और रथसे सम्पन्न कुलमें तेजस्वी पुत्ररूपसे जन्म लेता है। जो **भरणी** नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको तिलमयी धेनुका दान करता है, वह इस लोकमें बहुत-सी गौओंको तथा परलोकमें महान् यशको प्राप्त करता है—

भरणीषु द्विजातिभ्यस्तिलधेनुं प्रदाय वै।
गाः सुप्रभूताः प्राप्नोति नरः प्रेत्य यशस्तथा॥

(महा० अनु० ६४। ३५)

कार्तिकमासका दान—दीपदान

(पं० श्रीघनश्यामजी अग्निहोत्री)

मासानां कार्तिकः श्रेष्ठो देवानां मधुसूदनः।
तीर्थं नारायणाख्यं हि त्रितयं दुर्लभं कलौ॥
न कार्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम्॥
न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्।
रोगापहं पातकनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम्।
मुक्तेर्निदानं नहि कार्तिकव्रताद् विष्णुप्रियादन्यदिहास्ति भूतले॥

(स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड)

अर्थात् 'मासोंमें कार्तिकमास, देवोंमें मधुसूदन और तीर्थोंमें नारायणतीर्थ श्रेष्ठ एवं दुर्लभ है। कार्तिकमासके समान कोई मास, सत्ययुगके समान कोई युग, वेदोंके समान कोई शास्त्र और गंगाजीके समान कोई तीर्थ नहीं है। इस मासको रोग एवं पातकविनाशक; सद्बुद्धि, मुक्ति एवं पुत्र-धनधान्य प्रदान करनेवाला तथा विष्णुप्रिया देवी महालक्ष्मीकी उपासनाहेतु भूतलपर श्रेष्ठतम मास बताया गया है।'

जलदान करनेवाला तृप्ति, अन्नदान करनेवाला अक्षय सुख, तिलदान करनेवाला इच्छित संतान और कार्तिकमासमें दीपदान करनेवाला उत्तम ज्योति (नेत्र) प्राप्त करता है—

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षयमन्नदः।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥

(कूर्मपुराण उपरिविभाग २६। ४४)

इसी प्रकार स्कन्दपुराण, पद्मपुराण तथा भविष्यपुराण आदिमें कार्तिकमासमें दीपदानका महत्त्व वर्णित है। कार्तिकमासमें दीपदान करनेमात्रसे न केवल धन-धान्य एवं ऐश्वर्यकी देवी महालक्ष्मीसहित श्रीहरि वरन् समस्त देवगण, सूर्यपुत्र यमराज, पितर आदि अत्यधिक प्रसन्न होते हैं तथा दीपदान करनेवालेपर अपनी असीम कृपा सहज ही प्रदानकर धन-धान्य, सुख-समृद्धि, पुत्र-पौत्रादिहेतु आशीर्वादोंकी वर्षा कर देते हैं।

भविष्यपुराणके उत्तरपर्वमें यदुनन्दन श्रीकृष्ण भगवान्ने महाराज युधिष्ठिरको बताया है कि दीपदान करनेवाला सुन्दर विमानमें बैठकर स्वर्ग जाता है और प्रलयपर्यन्त वहीं वास करता है, वह व्यक्ति दीपककी ज्योतिकी तरह प्रकाशवान् होता है।

पद्मपुराण उत्तरखण्डमें भगवान् श्रीशंकरने पुत्र कार्तिकेयको बताया है कि कार्तिकमासमें जो श्रीविष्णुभगवान्के निमित्त घी अथवा तिल्लीके तेलसे युक्त दीपदान करते हैं, वे अश्वमेध यज्ञ एवं समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लेनेका फल पाते हैं। कार्तिक कृष्णपक्ष त्रयोदशीसे शुक्लपक्ष द्वितीयातक पाँच दिन रात्रिके प्रथम प्रहरमें यदि दीपदान किया जाता है और देवमन्दिरों, गोशाला, जलस्थान, देववृक्षोंके नीचे तथा अँधेरे मार्गमें दीपक जलाये जाते हैं तो इससे जिनका कभी तर्पण और श्राद्ध नहीं हुआ है, वे पितर भी मोक्ष पा जाते हैं।

सभी मासोंमेंसे कार्तिकमास भगवान् नारायणको सर्वाधिक प्रिय है। इस मासमें प्रतिदिन उनके निमित्त दीपदानके अतिरिक्त आकाश-दीपदान घर या देवमन्दिरके ऊँचे स्थानपर अवश्य करना चाहिये। इससे भगवान् राधादामोदर अति प्रसन्न होते हैं तथा सभी मनोरथ पूर्ण करते हैं। स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डमें श्रीब्रह्माजीने नारदजीको बताया कि आकाशदीप देते समय निम्न मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

दामोदराय विश्वाय विश्वरूपधराय च।
नमस्कृत्वा प्रदास्यामि व्योमदीपं हरिप्रियम्॥

(स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड कार्तिकमास-माहात्म्य)

अर्थात् 'मैं सर्वस्वरूप एवं विश्वरूपधारी भगवान् दामोदरको नमस्कार करके यह आकाशदीप देता हूँ; जो उन्हें परम प्रिय है।'

आकाशदीप ब्राह्ममुहूर्तमें स्नान करके एवं रात्रिके प्रथम प्रहरमें—दोनों समय दिया जाता है, दीपदान करनेवालेके पाप-कर्म नष्ट हो जाते हैं।

दीपदान पूरे कार्तिकमासभर किया जाना चाहिये; किंतु कतिपय कारणोंसे ऐसा न बन सके तो इस मासमें आनेवाले विशिष्ट पर्वोंपर अवश्य विधिपूर्वक दीपदान करना चाहिये। कार्तिकमासमें पड़नेवाले दीपदानके विशिष्ट पर्व इस प्रकार हैं—

कार्तिक कृष्णपक्ष त्रयोदशी—धनतेरसपर्वको दीपदान—कार्तिकमासमें इस दिनसे पंचदिवसीय दीपोत्सव प्रारम्भ होता है। यह पंचदिवसीय पर्व उत्साह और उल्लाससे मनाया जाता है। इसदिन सायंकाल (प्रदोषकालमें) घरके बाहरी मुख्य द्वारपर एक पात्रमें गेहूँ या चावल भरकर उसपर मृत्युके देवता धर्मराज यमराजके निमित्त तेलका दीपक जलाकर उसका गन्ध, अक्षत, पुष्पसे पूजनकर नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। दीपदानकर निम्न प्रार्थना करनी चाहिये—

मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह।
त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड १२२।५)

अर्थात् हे सूर्यपुत्र यमराज! मृत्युपाशधारी काल और पत्नीसहित आप त्रयोदशीके दिन दिये गये इस दीपदानसे प्रसन्न हों।

इस प्रकार प्रार्थनासहित दीपदानके उपरान्त दीपकमें यमराजका गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि उपचारोंसे पूजनकर उन्हें नैवेद्य अर्पित करना चाहिये।

इसी दिन रात्रिके प्रथम प्रहरमें घरके देवपूजन-कक्षमें विष्णुरूपी देवचिकित्सक धन्वन्तरिजी एवं तिजोरी या रुपये-पैसे रखनेके स्थानपर धनाध्यक्ष कुबेरजीके निमित्त दीपदान करना एवं इनका पूजन-अर्चनकर नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। इसके उपरान्त घरके आँगनमें तुलसी एवं देववृक्षोंके नीचे तथा द्वार आदि स्थानोंपर दीपक जलाने चाहिये। घरमें छतपर (ऊँचे स्थानपर) चार बत्तियोंका घीका आकाशदीप भगवान् विष्णु, यम, पितरों, प्रेतों एवं भगवान् शंकरके निमित्त निम्न मन्त्रके साथ जलाना चाहिये—

नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे।
नमो यमाय रुद्राय कान्तारपतये नमः॥

(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, कार्तिकमास-माहात्म्य)

अर्थात् पितरोंको नमस्कार है, प्रेतोंको नमस्कार है, धर्मस्वरूप विष्णुको नमस्कार है, यमराजको नमस्कार है तथा दुर्गम पथमें रक्षा करनेवाले भगवान् रुद्रको नमस्कार है। चतुर्दशी एवं दीपावलीको भी इस मन्त्रसे दीपदान करना चाहिये।

कार्तिक कृष्णपक्ष चतुर्दशी—नरक चतुर्दशीको दीपदान—पौराणिक मान्यताके अनुसार इस दिन तेलमें महालक्ष्मी एवं जलमें गंगाजीका वास रहता है। अरुणोदय-कालमें तेल-उबटन लगाकर स्नानकर भीगे (गीले) वस्त्रोंमें ही घरके बाहरी द्वारपर मृत्युपुत्रोंहेतु दीपदान करना चाहिये। दीपदानकर निम्न मन्त्र बोलना चाहिये—

शुनकौ श्यामशबलौ भ्रातरौ यमसेवकौ।
तुष्टौ स्यातां चतुर्दश्यां दीपदानेन मृत्युजौ॥

(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, कार्तिकमास-माहात्म्य)

अर्थात् काले और चितकबरे रंगके दो श्वान जो मृत्युके पुत्र, यमराजके सेवक एवं दोनों आपसमें भाई हैं; चतुर्दशीको दिये इस दीपदानसे मुझपर प्रसन्न हों। इसके उपरान्त हाथ धोकर भीगे (गीले) वस्त्र बदल लें। रात्रिका प्रथम प्रहर प्रारम्भ होनेपर पहलेसे तैयारकर रखी गयी नयी रूईकी बत्तीके चौदह यमोंके नाम*से दीपक जलाने चाहिये एवं गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि उपचारोंसे इनका पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् परिवारके सदस्य घरके सभी कक्षोंमें, तुलसी एवं देववृक्षोंके नीचे, घरके मुख्यद्वार, आँगन, घरके निकटके चौराहे आदि स्थानोंपर भी दीपक जलाकर रख दें। इसके उपरान्त त्रयोदशीकी भाँति आकाशदीप (चार बत्तीका घीका

* यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र तथा चित्रगुप्त—ये चौदह यमोंके नाम हैं।

दीया)-का भगवान् विष्णु, रुद्र तथा पितरों आदिकी प्रसन्नताहेतु दान करना चाहिये। इस दिन श्रीहनुमानमन्दिर जाकर दर्शन एवं दीपदान भी करना चाहिये।

कार्तिक कृष्णपक्ष अमावस्या—दीपावलीपर दीपदान—पुराणोंमें दीपावली मनाये जानेकी विस्तृत विधि लिखी गयी है। दीपदानका यह विलक्षण पर्व है। इस दिन हजारोंकी संख्यामें चारों ओर दीप जलाये जाते हैं, जिनसे अमावस्याकी कालिमा दीपोंकी रोशनीमें नहा जाती है। दीपावली पर्व भारतका राष्ट्रीय त्योहार है। इस दिन किये गये दीपदानसे हमारे पितर अति प्रसन्न होते हैं और अपने वंशजोंको धन-वैभव, सुख-समृद्धि एवं दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दे जाते हैं।

श्रीगणेश-लक्ष्मी-सरस्वती-महाकाली आदिके पूजनोपरान्त थालीमें ११, २१ या ५१ दीपक रखकर उनमें बत्ती लगाकर तेलसे पूर्णकर प्रज्वलितकर '**ॐ दीपावल्यै नमः**' नाममन्त्रसे गन्ध, अक्षत, पुष्पसे उनका पूजन करे, नैवेद्य अर्पित करे, धानका लावा विशेषरूपसे अर्पित करे एवं निम्न प्रार्थना करे—

त्वं ज्योतिस्त्वं रविश्चन्द्रो विद्युदग्निश्च तारकाः।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपावल्यै नमो नमः॥

इन पूजित दीपकोंसे घर-आँगनके विभिन्न हिस्सोंको जगमगाये; देववृक्षों (पीपल, आँवला, बरगद, बेल इत्यादि)

एवं तुलसीके नीचे इन्हें रखे; पूजनकी थालीमें रखे दीपकोंके अतिरिक्त अपने सामर्थ्यके अनुसार दीपक जलाकर उन्हें घरकी छतपर, निकटके चौराहेपर, विष्णु-शिव-मन्दिरमें, कुआँ-बावड़ी, घरके जलके स्थान, स्नानागार, गोशाला आदि स्थानोंपर रखना चाहिये। देव-मन्दिर या घरकी छतपर ऊँचे स्थानपर चार या सात बत्तीका घीका आकाशदीप जलाना चाहिये।

इसके अतिरिक्त पीपल वृक्षके समीप सरसोंके तेलका एक दीपक शनिदेवकी प्रसन्नताहेतु रखे एवं '**ॐ शं शनिश्चराय नमः**' बोले।

कार्तिक शुक्लपक्ष प्रतिप्रदा—गोवर्धनपूजाको दीपदान—इस दिन प्रबोधकाल (ब्राह्ममुहूर्त)-से पूर्व घरकी स्त्रियाँ सूप बजाकर दरिद्राका निस्सारण एवं लक्ष्मीजीका आवाहन करती हैं तथा घर-आँगनमें दीपक लगाकर महालक्ष्मीकी प्रसन्नताकी कामना करती हैं। इस वेलामें दीपदानसे महालक्ष्मी प्रसन्न होती हैं एवं धन-सम्पत्तिकी कमी परिवारमें पूरे वर्ष नहीं होने देतीं। प्रातःकाल गोवर्धन-पूजा एवं रात्रिके प्रथम प्रहरमें भगवान् श्रीकृष्णके लिये आकाशदीप देना चाहिये। इस समय यह मन्त्र बोलना चाहिये—

दामोदराय श्रीकृष्णाय विश्वरूपधराय च।
नमस्कृत्वा प्रदास्यामि व्योमदीपं हरिप्रियम्॥

कार्तिक शुक्लपक्ष द्वितीया—यमद्वितीया (भाई-दूज)-को दीपदान—स्नान आदिसे निवृत्त हो श्वेत वस्त्र पहनकर श्वेत चन्दन लगाकर प्रसन्नतापूर्वक गूलर (औदुम्बर) वृक्षके नीचे भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, महेशके साथ वीणावादिनी माँ शारदाका पूजनकर उनके निमित्त दीपदान करना चाहिये। दोपहरमें बहनके यहाँ भोजनकर रोचना करवाना और बहनको भेंट देना चाहिये। प्रदोषकालमें घर-आँगनमें दीपदान करना चाहिये, देववृक्षोंके नीचे दीपक जलाना चाहिये।

कार्तिक शुक्लपक्ष एकादशी—देवोत्थानी एकादशीको दीपदान—भगवान् श्रीविष्णु शयन (देवशयनी एकादशी)-के बाद उठते हैं। इस दिन प्रदोषकालमें भगवान् शालग्राम (श्रीविष्णु)-का तुलसीके साथ विवाह-समारोह आयोजित करके दीपावलीके दिनकी भाँति रोशनी एवं दीपदान किया जाना चाहिये।

कार्तिकपूर्णिमाको दीपदान—इस दिन कार्तिक-मासका स्नान एवं दीपदान पूर्ण होता है। बहती नदियोंमें महिलाएँ स्नानकर उषाकालमें भगवान् शिवके निमित्त एवं

प्रदोषकालमें भगवान् विष्णुके निमित्त जलते दीपक नदीमें प्रवाहितकर जल-दीपदान करती हैं। इस दीपदानकी विलक्षण छटा पवित्र नदियोंके किनारे बसे नगरों—जैसे हरिद्वार, वाराणसी, ॐकारेश्वर, उज्जैन आदि जगहोंपर देखते ही बनती है। यह पर्व देवदीपावलीके नामसे प्रसिद्ध है।

नदियोंमें बहते दीपकोंको देखकर यमराज बहुत प्रसन्न होते हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अंगिरा, आदित्य आदि सायंकालके दीपदानसे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसी दिन सायंकाल भगवान् विष्णुने मत्स्यावतार लिया था। इस कारण आजके दिनके दान, जप आदिका फल दस यज्ञोंके समान होता है। पद्मपुराणमें वर्णित है—

वरान् दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवत् ततः।
तस्यां दत्तं हुतं जप्तं दशयज्ञफलं स्मृतम्॥

(पद्मपुराण)

इस दिन सायंकाल देव-मन्दिरों; घर-आँगन, तुलसी एवं देववृक्षोंके समीप (विशेषकर पीपलके नीचे जड़के समीप), चौराहों, जलस्थान आदि स्थानोंपर दीपदान किया जाना चाहिये।

कार्तिक शुक्लपक्ष नवमी—'आँवला नवमी', 'अक्षयनवमी' को कूष्माण्डदान

कार्तिकमास शुक्लपक्ष नवमीको 'धात्रीनवमी' एवं 'कूष्माण्डनवमी' भी कहा जाता है। इस दिन पूजन, तर्पण, स्नान-अन्नदान, दीपदान आदि करनेका अक्षयफल प्राप्त होता है, ऐसा पुराणोंमें वर्णित है।

इस दिन आँवलेके वृक्षका पूजन एवं इसके नीचे भगवान् ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवसहित धर्मराज यमराजकी प्रसन्नताहेतु घीके दीपक या कपूरसे दीपदान करना चाहिये। वृक्षके नीचे परिवारसहित भोजन करना चाहिये। पुत्रीका पुत्र (दौहित्र) यदि उस दिन आ सके तो उसे अथवा विद्वान् सदाचारी ब्राह्मणको आँवलेके वृक्षके नीचे आदरपूर्वक तिलककर भोजन करवायें एवं कूष्माण्डदान करे—इससे अक्षय सुख, सौभाग्य प्राप्त होता है।

कूष्माण्डदान-विधि—कूष्माण्ड यानी कुम्हड़ा या पका हुआ कद्दू लेकर उसमें श्रद्धापूर्वक रुपये, रजत, सुवर्ण (अपनी सामर्थ्यके अनुसार) रखे और उसे किसी ऊनी वस्त्रमें लपेट ले एवं आँवलेके वृक्षके पास रखकर संकल्पपूर्वक द्रव्यदक्षिणासहित वह कूष्माण्ड ब्राह्मण अथवा दौहित्रको देकर प्रणाम करे। फिर प्रार्थना करे—

कूष्माण्डं बहुबीजाढ्यं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं पितॄणां तारणाय च॥

इस प्रकार कूष्माण्डदानसे देव एवं पितर—दोनों प्रसन्न होते हैं।

विविध देय-द्रव्योंके मन्त्र

'दान' कल्याणप्राप्तिका एक श्रेष्ठ साधन है। यह सबके लिये उपयोगी तथा सहज साध्य भी है; क्योंकि इसकी सीमा न न्यूनतम है और न अधिकतम ही। इसीलिये कहा गया है कि सागरका तो अन्त है, किंतु दानका कोई अन्त नहीं है—**'विद्यते सागरस्यान्तो दानस्यान्तो न विद्यते।'** इसी कारण यथाशक्ति नित्य दान करनेकी विधि बतायी गयी है। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन्त्रका उच्चारण करते हुए विधिवत् दान करनेकी विशेष महिमा है। दान लेने तथा दान देनेमें कई विधि-निषेध हैं, तथापि दान देनेवालेको सर्वप्रथम संकल्पपूर्वक दान देनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। तदनन्तर दानग्रहीता ब्राह्मणका दान लेनेके लिये वरण करना चाहिये। वरण करनेके अनन्तर दानग्रहीता ब्राह्मणको **'वृतोऽस्मि'** अर्थात् मैं (आपके द्वारा) वरण कर लिया गया हूँ या मेरा वरण हो चुका है, यह वचन कहना चाहिये। इसके बाद गन्धाक्षतसे ब्राह्मणका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर जिस वस्तुको दानमें देना हो (देयद्रव्य), उसका भी प्रोक्षणपूर्वक पूजन कर लेना चाहिये। इसके उपरान्त दानका संकल्प और देयद्रव्यका मन्त्र पढ़कर उस वस्तुको ब्राह्मणके हाथोंमें दे दे। दान लेकर ब्राह्मण **'स्वस्ति'** बोले। संक्षेपमें दान देने-लेनेकी यह सामान्य प्रक्रिया है।

इस प्रक्रियामें वस्तुको किस मन्त्रका उच्चारणकर देना चाहिये, यह मुख्य बात है। यथासम्भव इसकी जानकारी होनी आवश्यक है। यद्यपि दानकी वस्तुएँ

अनेकानेक हैं और मन्त्र भी विविध हैं तथापि दानसम्बन्धी कुछ मुख्य वस्तुओंके मन्त्र यहाँपर दिये जा रहे हैं—

अन्नदान

दानोंमें अन्नदानकी विशेष महिमा है। अन्नसे जीवनयात्राका निर्वाह होता है। अन्नमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। अन्न ही शरीरके बलको बढ़ानेवाला है और अन्नके आधारपर ही प्राण टिके हुए हैं। अतः अन्नका दान अवश्य करना चाहिये। इसमें देश, काल-पात्रका भी विचार नहीं है। अन्नदान करनेवाला पुरुष प्राणदाता और सर्वस्व देनेवाला कहलाता है—**'अन्नदः प्राणदो लोके सर्वदः प्रोच्यते तु सः॥'** (महा० अनु० ६३। २६)

इस प्रकारकी अनन्त महिमावाले अन्नदानको करते समय अर्थात् अन्न देते समय (आमान्न—कच्चा अन्न अथवा सिद्धान्न—पक्वान्न), भोजन कराते समय निम्न मन्त्र बोलना चाहिये—

अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः।
अन्नं ब्रह्माखिलत्राणमस्तु मे सर्वजन्मनि॥

(दानचन्द्रिका)

अर्थात् अन्न ही लक्ष्मी है। अन्न ही जनार्दन विष्णु है और अन्न ही ब्रह्मा है। अतः इस अन्नके दानसे ये तीनों सभी जन्मोंमें मेरी रक्षा करें।

सत्तूदान

ग्रीष्म ऋतु विशेषकर वैशाख मासमें सत्तूदानका बहुत फल है। सत्तूदानके समय निम्न मन्त्र पढ़ना चाहिये—

प्राजापत्या यतः प्रोक्ताः सक्तवो यज्ञकर्मणि।
तस्मादेषां प्रदानेन प्रीयतां मे प्रजापतिः॥

यज्ञकार्यमें सत्तू (भुने हुए जौके आटे)-को प्राजापत्यस्वरूप कहा गया है। अतः सत्तूदानसे भगवान् प्रजापति मुझपर प्रसन्न हों।

शर्करादान

शर्करा तथा इक्षु (ईख) अमृतके कुलमें उत्पन्न हैं और भगवान् सूर्यको नित्य प्रीति पहुँचानेवाले हैं। अतः इस दानसे वे मुझे शान्ति प्रदान करें। इक्षुरससे उत्पन्न शर्करा सदा स्वाद पहुँचानेवाली है और प्रिय है। इसके दानसे द्विजदेवता मुझपर नित्य सन्तुष्ट हों—

अमृतस्य कुलोत्पन्ना इक्षवोऽप्यथ शर्करा।
सूर्यप्रीतिकरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥
शर्करेक्षुरसोद्भूता सदा स्वादुकरा प्रिया।
दानेनास्यास्तु मे नित्यं तुष्टाः स्युर्द्विजदेवताः॥

गुड़दान

जिस प्रकार सभी मन्त्रोंमें प्रणव (ओंकार), सभी नारियोंमें देवी पार्वती श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सभी रसोंमें इक्षुरस (गन्नेका रस) सर्वश्रेष्ठ है। अतः गुड़दानसे मुझे परम शान्ति प्राप्त हो। गुड़दान सर्वदा करना चाहिये—

प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा।
तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः॥
मम तस्मात्परां शान्तिं ददस्व गुड सर्वदा।

घृतदान

घृत कामधेनुसे उत्पन्न तथा देवताओंके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है। दाताकी आयुको बढ़ानेवाला है, ऐसा वह घृत सदा मेरी रक्षा करे—

कामधेनोः समुद्भूतं देवानामुत्तमं हविः।
आयुर्विवर्धनं दातूराज्यं पातु सदैव माम्॥

फलदान

फल मनको प्रसन्न करनेवाले, सुन्दर तथा नित्य स्वादको बढ़ानेवाले हैं, ऐसे फलोंके दानसे मेरी सन्तानपरम्परा विशुद्ध संस्कारसम्पन्न हो। फल मधुर तथा मुनि और देवताओंके प्रिय हैं, अतः उनके दानसे मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हों—

मनोहराणि रम्याणि नित्यं स्वादुकराणि च।
फलानां सम्प्रदानेन सन्ततिस्त्वमला मम॥
फलानि मधुराणीह मुनिदेवप्रियाणि च।
तस्मात्तेषां प्रदानेन सफला मे मनोरथाः॥

व्यजन (पंखा)-दान

पंखे (व्यजन)-के अधिदेवता वायु हैं और पंखा ग्रीष्मकालमें सुख प्रदान करनेवाला है, इसके दानसे मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हों—

व्यजनं वायुदैवत्यं ग्रीष्मकाले सुखप्रदम्।
अस्य प्रदानात्सफला मम सन्तु मनोरथाः॥

कम्बलदान

ऊनसे बना कम्बल शीत तथा वर्षाका हरण करनेवाला

है, पवित्र है तथा दृष्टिके बल (नेत्रज्योति)-को बढ़ानेवाला है। ऐसे कम्बलके दानसे मुझे सदा शान्ति प्राप्त हो—

शीतवर्षाहरः पुण्यो दृष्टीबलविवर्धनः।
कम्बलस्य प्रदानेन शान्तिरस्तु सदा मम॥

पुस्तकदान

वेदादि शास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र तथा गीता-रामायण आदि पुस्तकोंका जो दान करता है, उसके फलके विषयमें बताया गया है कि हजार गोदान करनेका जो फल होता है। वह फल एक पुस्तकके दान करनेसे प्राप्त होता है। हे सरस्वती! हे जगन्माता! हे शब्दब्रह्मकी अधिदेवता! इस सरस्वतीके दान (ग्रन्थदान)-से वाणीके अधिष्ठाता देव प्रत्येक जन्ममें मुझपर प्रसन्न रहें—

धेनुदानसहस्रेण सम्यग्दानेन यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति पुस्तकैकप्रदानतः॥
सरस्वति जगन्मातः शब्दब्रह्माधिदेवते।
अस्याः प्रदानाद्वागीशा प्रसन्ना जन्मनि जन्मनि॥

सिन्दूरदान

सिन्दूर अत्यन्त शुभकारक, रमणीय तथा गणेशजीको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला है, इसके दानसे मेरा ऐश्वर्य तथा मेरी सन्तानपरम्परा अविचल बनी रहे—

सिन्दूरं शोभनं रम्यं गणेशस्य प्रियं परम्।
दानेनास्य परा लक्ष्मीः स्थिरा मे चास्तु सन्ततिः॥

गलन्तिकादान

भगवान् शिवके निरन्तर अभिषेक—जलधाराके लिये जिस छिद्रयुक्त पात्र आदिकी लटकाकर या तिपाईपर स्थापना की जाती है, उसे गलन्तिका कहते हैं। भविष्यपुराणमें बताया गया है कि वसन्त-ऋतुमें भगवान् शिव, विष्णु, सूर्य अथवा अपने इष्टदेवताके मस्तकपर छिद्रयुक्त कुम्भकी स्थापना की जाती है, जिससे बूँद-बूँद करके जल आदिकी धारा देवताके मस्तकपर गिरती रहती है। यह पात्र गलन्तिका कहलाता है। ग्रीष्ममें चार मासतक यह कुम्भ स्थापित रहना चाहिये। इसका फल बताया गया है कि जलधाराके रूपमें रात-दिन जितने बिन्दु भगवान्‌के मस्तकपर गिरते हैं, उतने वर्षोंतक वह उत्तम लोकमें आनन्दित होकर निवास करता है। गलन्तिका बाँधते समय निम्न मन्त्र पढ़ना चाहिये—

ॐ नमः शङ्करः शम्भुर्भवो धाता शिवो हरः।
प्रीयतां मे महारुद्रो जलसेकप्रदानतः॥

प्रपा (प्याऊ)-दान

फाल्गुनमासके व्यतीत हो जानेपर चैत्रमासमें नगरके मध्यमें, चौराहेपर, वृक्षके मूलमें अथवा जलरहित स्थानमें किसी पुण्य दिनको प्याऊके लिये सुन्दर मण्डपकी स्थापनाकर उसके मध्यमें सुगन्धित शीतल जलसे युक्त कुम्भोंकी स्थापनाकर किसी ब्राह्मण बालकको प्रपापाल (प्याऊकी रक्षा करनेवाले, पानी पिलानेवाले)-के रूपमें नियुक्त करना चाहिये। प्रपाकी स्थापना करते समय निम्न मन्त्र बोलना चाहिये—

प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता।
अस्याः प्रदानात् सफला मम सन्तु मनोरथाः॥

अर्थात् यह प्रपा (प्याऊ) सभी प्राणियोंके लिये बनायी गयी है। यह सर्वसामान्यके उपयोगके लिये है, इसके दान (उत्सर्ग)-से मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हों।

इस प्रकार ग्रीष्मके तापका शमन करनेके लिये जो जलदान करता है, वह सौ कपिलादानका फल प्राप्त करता है और सभी देवताओंद्वारा पूजित होता है।

अग्निदान

हेमन्त तथा शीत ऋतुमें किसी तीर्थस्थान, देवालय, मठ तथा शीतके स्थानपर तापनेके लिये जो आगकी व्यवस्था करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

धर्मघटदान

वसन्त तथा ग्रीष्मकालमें शीतल सुगन्धित जलसे भरे हुए घटदानका विशेष माहात्म्य है। ब्राह्मणको घटदानसे पूर्व यह मन्त्र पढ़े—

नमोऽस्तु विष्णुरूपाय नमः सागरसम्भव।
अपां पूर्णोद्धरास्मांस्त्वं दुःखसंसारसागरात्॥

हे समुद्रसे उत्पन्न घट! आप विष्णुस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, आप जलसे परिपूर्ण हैं। इस दुःखसंसार-सागरसे आप हमारा उद्धार करें।

देते समय निम्न मन्त्रका पाठ करें—

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
अस्य प्रदानात्सफला मम सन्तु मनोरथाः॥

अर्थात् यह धर्मघट ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवस्वरूप है, इसके दानसे मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हों।

भगवान् सूर्य और सूर्यार्घ्यदान

भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं और सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के आत्मस्वरूप हैं—'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।**' श्रुतियोंमें आदित्यकी ब्रह्मरूपमें उपासना करनेका विधान मिलता है—'**आदित्यो ब्रह्म इत्यादेशः**' (छान्दोग्योपनिषद्)। नित्य सम्पादित की जानेवाली सन्ध्योपासनाके उपास्य देव भगवान् सविता (सूर्य) ही हैं। सवितृमण्डलमें रक्ताम्बुजासनपर वे सूर्यनारायणके रूपमें प्रतिष्ठित रहते हैं। सृष्टिका प्रसवन इन्हींके द्वारा होता है। ये समस्त जगत्‌के नेत्रज्योतिस्वरूप और जीवके शुभाशुभ सभी कर्मोंके साक्षी हैं। ग्रहोंके, नक्षत्रोंके अधिष्ठाता हैं। भगवान् सूर्य अत्यन्त दयालु और उपकारक हैं। वे अपने उपासकको सब कुछ प्रदान कर देते हैं और अपना लोक—आदित्यलोक उपलब्ध करा देते हैं। अर्घ्यदान उनकी विशिष्ट उपासनाका श्रेष्ठ साधन है।

सूर्यार्घ्यदान

जैसे भगवान् शिवको जलधारा एवं अभिषेक प्रिय है, भगवान् विष्णुको तुलसीसे अर्चन प्रिय है, भगवान् गणेशको मोदकार्चन एवं दूर्वा प्रिय है, भगवती दुर्गाको रक्त पुष्प अतिप्रिय है, वैसे ही भगवान् भुवनभास्कर सूर्यको अर्घ्यका जल अत्यन्त प्रिय है, इसीलिये उन्हें अर्घ्यदान दिया जाता है। भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करनेकी विशेष महिमा है। शारदातिलक आगमशास्त्रका अत्यन्त प्रौढ़ एवं प्राचीन ग्रन्थ है, जो आचार्य लक्ष्मणदेशिकेन्द्रकी रचना है, इसका चतुर्दश पटल सौरप्रकरण कहलाता है, जो भगवान् सूर्यकी विशिष्ट उपासना-पद्धतिको व्याख्यायित करता है। वहाँ अर्घ्यदानकी महिमामें बताया गया है कि अर्घ्यदानसे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य दाताके सभी मनोरथोंको पूर्ण कर देते हैं। अर्घ्यदान आयु तथा आरोग्यकी वृद्धि करनेवाला है तथा धन, धान्य, पशु, क्षेत्र, पुत्र, मित्र, कलत्र, तेज, वीर्य, यश, कान्ति, विद्या, वैभव तथा उत्तम सौभाग्य देनेवाला है—

तेन तृप्तो दिनमणिर्दद्यादस्मै मनोरथान्।
अर्घदानमिदं पुंसामायुरारोग्यवर्धनम्॥
धनधान्यपशुक्षेत्रपुत्रमित्रकलत्रदम्।
तेजोवीर्ययशःकान्तिविद्याविभवभाग्यदम्॥

(शारदातिलक १३। ५७-५८)

सामान्य रूपसे उपासनाकी दृष्टिसे सूर्यवार अथवा प्रतिदिन सूर्यके उदय होनेपर सूर्यार्घ्यदान दिया जाता है, ऐसे ही पौषमासमें प्रत्येक रविवारको व्रतोपवासपूर्वक सूर्यपूजन तथा सूर्यार्घ्यदान दिया जाता है। सप्तमी तिथि भगवान् सूर्यकी तिथि है, इस दिन इन्हें विशेषरूपसे अर्घ्य समर्पित किया जाता है, तथापि सन्ध्याकर्म जो नित्यकर्म है, उसमें सूर्यार्घ्यदान तथा सूर्योपस्थान ही मुख्य आवश्यक कर्म है। सन्ध्यामें प्रातः, मध्याह्न तथा सायं तीनों कालोंमें भगवान् सूर्यको अर्घ्यदान दिया जाता है। प्रातः और मध्याह्न-सन्ध्यामें खड़े होकर तथा सायं-सन्ध्यामें बैठकर सूर्यार्घ्य दिया जाता है। सुबह और शाम तीन-तीन अंजलि दी जाती है और दोपहरको एक अंजलि। सन्ध्याकर्ममें गायत्री-मन्त्र पढ़कर सूर्यार्घ्यदान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जिनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ, ऐसे पुरुष तथा स्त्रियों—सभीको पौराणिक मन्त्रसे प्रतिदिन भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये।

देवोपासनामें जो विभिन्न देवोंका पंचोपचार या

षोडशोपचार पूजन होता है, उसमें प्रारम्भमें गणेश आदि पंचदेवोंको स्मरणपूर्वक पुष्पांजलि दी जाती है और नमस्कार किया जाता है। तदनन्तर अर्घ्यकी स्थापना करके सर्वप्रथम भगवान् सूर्यको अर्घ्य देनेका विधान है।

यूँ तो सामान्यरूपसे ताम्रपात्र (लोटा, पंचपात्र आदि)-में शुद्ध जल लेकर उसमें रक्त चन्दन, रक्त पुष्प तथा अक्षत आदि छोड़कर भगवान् सूर्यके अभिमुख होकर उन्हें अर्घ्य दिया जाता है, किंतु शास्त्रोंमें अर्घ्यदान देनेसे पूर्व अर्घ्यस्थापनकी एक विशेष प्रक्रिया वर्णित है, तदनुसार पहले अर्घ्यपात्र (ताँबेका बना एक विशेष पात्र जिसमें जलके लिये स्थान बना रहता है तथा जलधारा निकलनेके लिये पतली नाली-जैसी बनी रहती है) स्थापित किया जाता है, उसमें विविध पदार्थ छोड़े जाते हैं, तदनन्तर उस पात्रको हाथमें लेकर सूर्यकी ओर मुँह करके घंटानाद करते हुए अर्घ्यजल दिया जाता है। ये सभी क्रियाएँ मन्त्रोच्चारणके साथ होती हैं, संक्षेपमें इस प्रक्रियाको यहाँपर दिया जा रहा है—

रक्तचन्दनसे भूमिपर त्रिकोण, उसके ऊपर वर्तुलाकार वृत्त तथा उसके ऊपर चौकोर मण्डल बनाकर उसमें शंख, चक्रका अंकन करे, गन्धाक्षतसे उस मण्डलकी पूजा करे, उस मण्डलके ऊपर पुष्पका आसन रखकर उसपर ताँबेका अर्घ्यपात्र रखे। **'शं नो देवीति०'** यह मन्त्र पढ़कर अर्घ्यपात्रको शुद्ध जलसे पूरित करे।* उस जलमें निम्न मन्त्र पढ़ते हुए गंगा आदि पुण्यतोया नदियोंके तीर्थजलका आवाहन करे—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

तदनन्तर अर्घ्यस्थ जलमें रक्त चन्दन, अक्षत तथा रक्त पुष्प आदि छोड़े। इस प्रकार अर्घ्यकी स्थापना कर ले।

भगवान् सूर्यकी स्थापना—किसी ताँबेकी थालीमें भगवान् सूर्यका मण्डल (प्रतिमा) बनाकर अक्षत छोड़कर उसकी प्रतिष्ठा कर ले और निम्न मन्त्रसे भगवान् सूर्यका ध्यान करे—

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं
भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि।
पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जै-
र्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम्॥

(शारदातिलक १३।६१)

अर्थात् जो लाल कमलके आसनपर आसीन हैं, समस्त गुणोंके एकमात्र सिन्धुस्वरूप हैं, समस्त जगत्के अधिपति हैं, अपने करकमलोंमें दो कमल तथा अभय एवं वर-मुद्रा धारण किये हैं, जिनका मुकुट मणियोंसे बना हुआ है, जो तीन नेत्रवाले हैं तथा जिनके शरीरकी कान्ति अरुण वर्णकी है, ऐसे भगवान् सूर्यका मैं ध्यान करता हूँ। ध्यानके अनन्तर निम्न मन्त्रोंसे उनका आवाहन करे—

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥
जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं सूर्यमावाहयाम्यहम्॥

यदि ध्यानमन्त्रसे ध्यान न कर सके तो निम्न मन्त्रसे भी उनका ध्यान किया जा सकता है—**'ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्।'**

इस प्रकार ध्यान करके स्थापित किया हुआ अर्घ्यपात्र दाहिने हाथमें ले ले और बायें हाथमें घंटी ले ले। तब घंटानाद करते हुए पूर्वमें स्थापित ताम्रस्थाली, जिसमें भगवान् सूर्यका प्रतिमा-मण्डल बना है, निम्न मन्त्रोंको पढ़ते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य-जल (सूर्यार्घ्य) प्रदान करे—

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घं दिवाकर॥
नमोऽस्तु सूर्याय नमोऽस्तु भानवे नमोऽस्तु वैश्वानर जातवेदसे।
ममैतदर्घ्यं गृहाण देव देवाधिदेवाय नमो नमस्ते॥

अर्थात् हे सहस्रकिरणोंवाले! तेजके राशिस्वरूप! सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् सूर्य! आप यहाँ आयें। हे दिवाकर! श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मेरेद्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यको आप ग्रहण करें और मेरे ऊपर कृपा करें।

भगवान् सूर्यको नमस्कार है, भगवान् भानुको नमस्कार है, वैश्वानर तथा जातवेदाको नमस्कार है, हे देव! मेरेद्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यको आप ग्रहण करें। देवाधिदेव भगवान्

* 'चन्दनेन भूमौ त्रिकोणं वृत्तं चतुरस्रमण्डलं च लिखित्वा तत्र शङ्खचक्रे लिखित्वा गन्धाक्षतपुष्पैः सम्पूज्य अर्घ्यं संस्थाप्य 'शं नो देवीति०' जलेनापूर्य।' (संस्कारदीपक पृ० १०१)

सूर्यको बार-बार नमस्कार है।

इस प्रकार अर्घ्यदानके अनन्तर भगवान् सूर्यको प्रणाम करे, पुष्पांजलि दे और प्रदक्षिणा करे। अर्घ्यपात्रको स्वच्छकर यथास्थान रख ले तथा पात्रस्थ जलादिको किसी ऐसे पवित्र स्थानपर छोड़े जहाँ किसीका पैर न पड़ता हो या किसी वृक्षकी जड़में अथवा नदी आदिमें छोड़ दे।

इस प्रकार जहाँ देवोपासनामें सूर्यार्घ्य-दानका महत्त्व है, वहीं आयु तथा आरोग्यप्राप्तिके लिये भी विशेष रूपसे उन्हें अर्घ्य दिया जाता है। भगवान् सूर्य आरोग्यके अधिष्ठाता हैं और आरोग्यकी प्राप्ति करानेवाले हैं। आरोग्यता चतुर्वर्गप्राप्तिका मूल है—**'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्'** (चरक०सू० १। १५)। अतः आरोग्य-प्राप्तिकी कामनासे भगवान् सूर्यकी उपासना करनी चाहिये—**'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'** (मत्स्य०)। विज्ञानका यह मानना है कि प्रातःकाल सूर्यके सम्मुख खड़े होकर उन्हें जल देनेसे सूर्यकी जो सतरंगी किरणें हैं, वे जलका स्पर्श करती हुई शरीरमें प्रविष्ट होती हैं, जिसका एक विलक्षण सूक्ष्म प्रभाव होता है, जो शरीर तथा मन-बुद्धिको स्फूर्ति प्रदान करता है।

विशेष—पूजामें सूर्यार्घ्यदानके अनन्तर उसी प्रकारसे पुनः दुबारा अर्घ्य स्थापित करके रख लिया जाता है और जब पूजनमें पादप्रक्षालनके लिये **'पादयोः पाद्यम्'** मन्त्र बोलकर जल दिया जाता है, हाथ धोनेके लिये **'हस्तयोरर्घ्यम्'** कहकर जल दिया जाता है और आचमनके लिये **'मुखे आचमनीयम्'** कहकर जल दिया जाता है तो उस समय यही स्थापित अर्घ्यका जल भगवान्को निवेदित किया जाता है। तीनों ही जल हैं, किंतु पावोंको धोनेवाला जल भिन्न होता है, हाथ धोनेवाला अर्घ्यजल भिन्न होता है और आचमन करनेवाला जल भिन्न होता है, तीनोंके मन्त्र भी पृथक्-पृथक् हैं। यहाँ तीनों जलोंका क्या वैशिष्ट्य है, दिया जा रहा है—

पाद्यजल—

गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्य आनीतं तोयमुत्तमम्।
पाद्यार्थं सम्प्रदास्यामि गृह्णन्तु परमेश्वराः॥

अर्थात् हे परमेश्वर! गंगा आदि सभी तीर्थोंसे यह उत्तम जल लाया गया है, इसे मैं पाद्यके रूपमें आपको प्रदान करता हूँ, आप स्वीकार करें।

अर्घ्यजल—

गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तमर्घ्यं सम्पादितं मया।
गृह्णन्त्वर्घ्यं महादेवाः प्रसन्नाश्च भवन्तु मे॥

अर्थात् हे महादेव! गन्ध, पुष्प, अक्षतसे युक्त यह अर्घ्य (अर्घ्यजल) मेरेद्वारा निर्मित किया गया है, इसे आप स्वीकार करें और मुझपर प्रसन्न हों।

आचमनीय जल—

कर्पूरेण सुगन्धेन वासितं स्वादु शीतलम्।
तोयमाचमनीयार्थं गृह्णन्तु परमेश्वराः॥

अर्थात् हे परमेश्वर! यह जल कर्पूरकी सुगन्धसे सुवासित, स्वादिष्ट तथा शीतल है, इसे आप आचमनके लिये ग्रहण करें।

षडर्घ्य—शास्त्रने बताया है कि छः ऐसे पुरुष हैं, जो अर्घ्य हैं अर्थात् पूजा प्राप्त करनेयोग्य हैं, उन्हें भी अर्घ्य प्रदान किया जाता है। पारस्करगृह्यसूत्रमें आया है कि आचार्य, ऋत्विक्, वर (वैवाह्य), राजा, प्रियजन तथा स्नातक—ये छः अर्घ्यार्ह हैं—**'षडर्घ्या भवन्त्याचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति।'** (१।३।१)

कार्तिकमासमें भीष्मपंचकव्रत (प्रबोधनी एकादशीसे पूर्णिमातक) होता है, जिसमें निम्न मन्त्रोंसे पितामह भीष्मजीको अर्घ्य प्रदान किया जाता है—

वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च।
अनपत्याय भीष्माय उदकं भीष्मवर्मणे॥
वसूनामवताराय शान्तनोरात्मजाय च।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे॥

इसी प्रकार गणेशपूजनके अन्तमें विशेषार्घ्य दिया जाता है तथा अगस्त्योदय होनेपर (प्रायः सिंह राशिका २२वाँ अंश बीत जानेपर) महर्षि अगस्त्य तथा इनकी धर्मभार्या माता लोपामुद्राके निमित्त पूजनपूर्वक निम्न मन्त्रोंसे अर्घ्य दिया जाता है—

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥
विन्ध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह।
रत्नवल्लभ देवेश लङ्कावास नमोऽस्तु ते॥

वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा।
लोपामुद्रापतिः श्रीमान् योऽसौ तस्मै नमो नमः॥
राजपुत्रि नमस्तुभ्यं ऋषिपत्नि नमोऽस्तु ते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं महादेवि शुभानने॥

सूर्यषष्ठीव्रत एवं सूर्यार्घ्यदान—भगवान् सूर्यकी आराधनाका मुख्य व्रत सूर्यषष्ठी है, जिसमें प्रधानरूपसे सूर्यको अर्घ्य देनेकी क्रिया होती है। व्रतकी विधिमें बताया गया है कि कार्तिकमासके शुक्लपक्षमें सात्त्विक रूपसे रहना चाहिये। पंचमीको एक बार भोजन करे। वाक्संयम रखे, षष्ठीको निराहार रहे तथा फल-पुष्प, घृतपक्व नैवेद्य, धूप, दीप आदि सामग्रीको लेकर नदीतटपर जाय और गीत-वाद्य आदिसे हर्षोल्लासपूर्वक महोत्सव मनाये। भगवान् सूर्यका पूजनकर भक्तिपूर्वक उन्हें रक्त चन्दन तथा रक्त पुष्प, अक्षतयुक्त अर्घ्य निवेदित करे—

कार्तिके शुक्लपक्षे तु निरामिषपरो भवेत्।
पञ्चम्यामेकभोजी स्याद् वाक्यं दुष्टं परित्यजेत्॥
षष्ठ्याञ्चैव निराहारः फलपुष्पसमन्वितः।
सरित्तटं समासाद्य गन्धदीपैर्मनोहरैः॥
धूपैर्नानाविधैर्दिव्यैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः।
गीतवाद्यादिभिश्चैव महोत्सवसमन्वितैः॥
समभ्यर्च्य रविं भक्त्या दद्यादर्घ्यं विवस्वते।
रक्तचन्दनसम्मिश्रं रक्तपुष्पाक्षतान्वितम्॥

सम्प्रति इस व्रतका सर्वाधिक प्रचार बिहारमें दिखायी पड़ता है। सम्भव है, इसका आरम्भ भी यहींसे हुआ हो और अब तो बिहारके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रोंमें भी इस व्रतका व्यापक प्रसार हो गया है। इस व्रतको सभी लोग अत्यन्त भक्ति-भाव, श्रद्धा एवं उल्लाससे मनाते हैं। सूर्यार्घ्यके बाद व्रतियोंके पैर छूने और उनके गीले वस्त्र धोनेवालोंमें प्रतिस्पर्धाकी भावना देखते ही बनती है। इस व्रतका प्रसाद माँगकर खानेका विधान है। सूर्यषष्ठीव्रतके प्रसादमें ऋतु-फलके अतिरिक्त आटे और गुड़से शुद्ध घीमें बना ठेकुआका होना अनिवार्य है, ठेकुआपर लकड़ीके साँचेसे सूर्यभगवान्के रथका चक्र भी अंकित करना आवश्यक माना जाता है। षष्ठीके दिन समीपस्थ किसी पवित्र नदी या जलाशयके तटपर मध्याह्नसे ही भीड़ एकत्रित होने लगती है। सभी व्रती महिलाएँ नवीन वस्त्र एवं आभूषणादिकोंसे सुसज्जित होकर फल, मिष्टान्न और पक्वान्नोंसे भरे हुए नये बाँससे निर्मित सूप और दौरी (डलिया) लेकर षष्ठीमाता और भगवान् सूर्यके लोकगीत गाती हुई अपने-अपने घरोंसे निकलती हैं। भगवान्के अर्घ्यका सूप और डलिया ढोनेका भी महत्त्व है। यह कार्य पति, पुत्र या घरका कोई पुरुष सदस्य ही करता है। घरसे घाटतक लोकगीतोंका क्रम चलता ही रहता है और यह क्रम तबतक चलता है जबतक भगवान् भास्कर सायंकालीन अर्घ्य स्वीकारकर अस्ताचलको न चले जायँ। सूपों और डलियोंपर जगमगाते हुए घीके दीपक गंगाके तटपर बहुत ही आकर्षक लगते हैं। पुनः ब्राह्ममुहूर्तमें ही नूतन अर्घ्य सामग्रीके साथ सभी व्रती जलमें खड़े होकर हाथ जोड़े हुए भगवान् भास्करके उदयाचलारूढ होनेकी प्रतीक्षा करते हैं। जैसे ही क्षितिजपर अरुणिमा दिखायी देती है वैसे ही मन्त्रोंके साथ भगवान् सविताको अर्घ्य समर्पित किये जाते हैं। यह व्रत विसर्जन, ब्राह्मण-दक्षिणा एवं पारणाके पश्चात् पूर्ण होता है।

सूर्यषष्ठीव्रतके अवसरपर सायंकालीन प्रथम अर्घ्यसे पूर्व मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर षष्ठीदेवीका आवाहन एवं पूजन करते हैं। पुनः प्रातः अर्घ्यके पूर्व षष्ठीदेवीका पूजनकर विसर्जन कर देते हैं। मान्यता है कि पंचमीके सायंकालसे ही घरमें भगवती षष्ठीका आगमन हो जाता है। इस प्रकार भगवान् सूर्यके इस पावन व्रतमें शक्ति और ब्रह्म दोनोंकी उपासनाका फल एक साथ प्राप्त होता है। इसीलिये लोकमें सूर्यार्घ्यदानका यह पर्व 'सूर्यषष्ठी' के नामसे विख्यात है।

सूर्यनमस्कार

भगवान् सूर्यको जैसे अर्घ्यजल प्रिय है, वैसे ही उन्हें नमस्कार अति प्रिय है। कहा भी गया है—'**नमस्कारप्रियो भानुः।**' यूँ तो सन्ध्यादि कर्मोंमें उपस्थान आदिमें नमस्कारकी परम्परा तो है ही, तथापि सूर्योपासनामें तृचाकल्पनमस्कार तथा सूर्यनमस्कार अपना विशेष महत्त्व रखता है। सूर्यनमस्कारादिसे जहाँ पारमार्थिक लाभ होता है, वहीं उत्तम स्वास्थ्य एवं आरोग्य भी प्राप्त होता है। इसमें व्यायामकी एक विशेष प्रक्रिया है। प्रायः १५ मुद्राएँ—आसन होते हैं और प्रत्येक मुद्रा (आसन)-द्वारा भगवान् सूर्यको नमस्कार किया जाता है। संक्षेपमें वे मुद्राएँ—आसन यहाँ प्रस्तुत हैं—

सूर्यनमस्कार
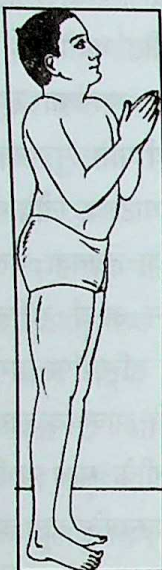
नमस्कार-आसन १ १४
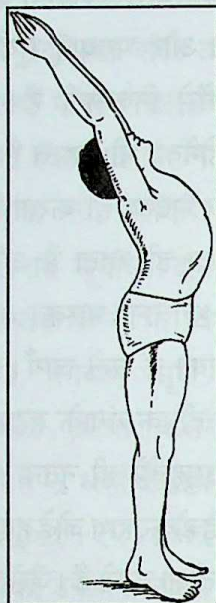
ऊर्ध्व-नमस्कार-आसन २ १५

हस्त-पादासन ३ १२

उपवेशासन १३
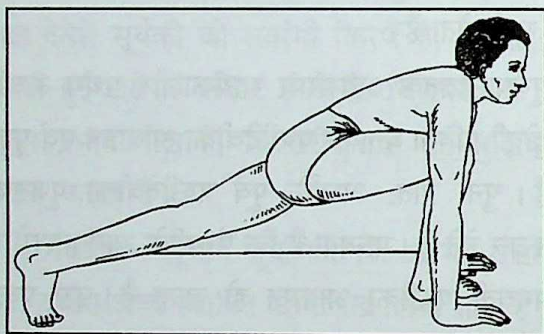
एकपाद-प्रसरणासन ४ ११
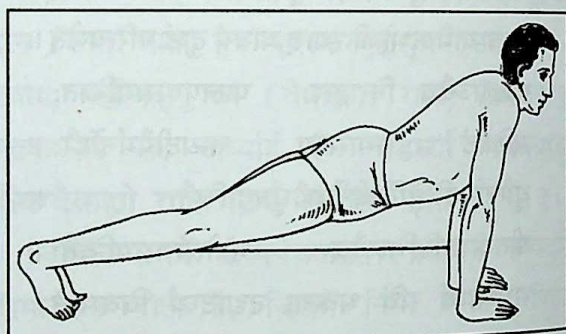
द्विपाद-प्रसरणासन ५ १०
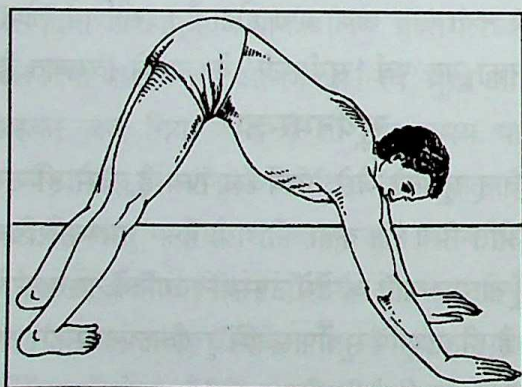
भूधरासन ६ ९
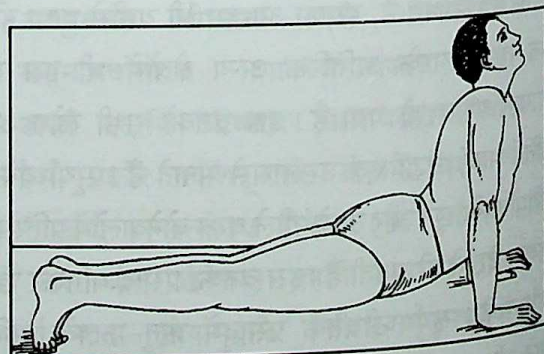
सर्पासन ८
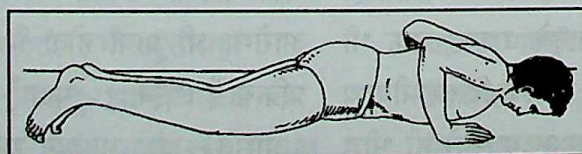
अष्टांग-प्रणिपातासन ७

१-नमस्कार-आसन—सीधे खड़े होकर पाँव, नितम्ब, पीठ, गला और सिर समसूत्रमें रखकर दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करना।

२-ऊर्ध्व-नमस्कार-आसन—दोनों हाथोंको सीधे ऊपर ले जाकर ऊर्ध्व दिशामें हाथ जोड़कर नमस्कार करना। इसमें पेटको किसी कदर आगे बढ़ाकर हाथोंको जितना हो सके उतना पीछे हटाना होता है।

३-हस्त-पादासन—हाथोंको ऊपरसे नीचे लाकर दोनों पाँवोंके दोनों ओर भूमिके ऊपर रख दें। घुटने सीधे रहें और पेट अन्दर आकर्षित रहे।

४-एकपाद-प्रसरणासन—एक पाँव जितना जा सके पीछे ले जाकर सीधा फैलाना। हाथ जहाँ थे, वहीं रहें।

५-द्विपाद-प्रसरणासन—दूसरे पाँवको भी पीछे ले जाकर सीधे फैलाना। इसमें भूमिमें पाँवके साथ पाँव और हाथके साथ हाथ रखना होता है।

६-भूधरासन—पाँव जितने पीछे ले जा सकें ले जायँ, परंतु घुटने सीधे रहने चाहिये और पाँवके तलवे जमीनको पूरे लगने चाहिये। कोहनीके साथ हाथ सीधे होने चाहिये। ठोढ़ी कण्ठकूपमें लगनी चाहिये और पेट अन्दर आकर्षित होना चाहिये।

७-अष्टांग-प्रणिपातासन—दोनों पाँव, दोनों घुटने, दोनों हाथ, छाती और मस्तक भूमिपर स्पर्श करने चाहिये। पेट भूमिको न लगना चाहिये। पेटको बलके साथ अन्दर खींचना चाहिये।

८-सर्पासन—फणी साँपके समान इस आसनमें सिर जितना पीछे जाय, ले जायँ और छाती जितनी आगे बढ़ सके बढ़ायें। हाथ और पाँव ही भूमिको स्पर्श करें, शेष शरीर भूमिसे कुछ अन्तरपर रहे।

९-भूधरासन—संख्या ६ में देखें।

१०-द्विपाद-प्रसरणासन—संख्या ५ में देखें।

११-एकपाद-प्रसरणासन—संख्या ४ में देखें।

१२-हस्त-पादासन—संख्या ३ में देखें।

१३-उपवेशासन—हस्त-पादासनमें हाथ और पैरको अपने स्थानमें रखते हुए सरल रीतिसे बैठ जायँ।

१४-नमस्कारासन—संख्या १ में देखें।

१५-ऊर्ध्व-नमस्कारासन—संख्या २ में देखें।

सक्तुदान (यज्ञ)

(आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा)

एक ब्राह्मणपरिवार चार दिनोंसे भूखा था, वह कहींसे कुछ सत्तू माँगकर लाया और उसे जलसे सानकर उसका एक गोल आकार बनाया।

उसी बीच दूसरे एक ब्राह्मणने आकर कहा—मैं सपरिवार छः दिनोंसे भूखा हूँ। प्रथम ब्राह्मणने सने हुए सत्तूके उस गोलेको उन्हें दे दिया। बुभुक्षित ब्राह्मण सपरिवार उस सत्तूको खाकर तृप्त हुआ और उन्होंने वहींपर हाथोंको धोया।

वहाँ एक नेवला आकर हाथ धोये हुए स्थानपर अपनी पूँछसे लोटने लगा। उसकी आधी पूँछ स्वर्णमयी हो गयी। वह नेवला पूरी पूँछ सोनेकी कैसे हो? इसी विचारमें इधर-उधर घूमने लगा।

उसी समय महाराज युधिष्ठिरने राजसूययज्ञ करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया। वह नेवला वहाँ भी पहुँच गया। नेवलेने अपनी पूँछको ब्राह्मणोंद्वारा धोये हुए हाथोंके जलमें लोटाया, परंतु वह अंश वैसा-का-वैसा ही रहा, सोनेका न बन सका।

युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे प्रश्न किया—यह क्या हो गया? भगवान्‌ने कहा—आपका ब्राह्मणभोजन आडम्बरका था, इसीलिये नेवलेकी पूँछका एक भाग सोनेका नहीं हो सका। छः दिनोंसे सपरिवार भूखे ब्राह्मणके हाथ धोनेके स्थानपर नेवलेके लोटनेसे उसकी आधी पूँछ स्वर्णमयी हो गयी। युधिष्ठिरको समझते देर नहीं लगी कि दान, यज्ञ, तप आदिमें आडम्बर होनेसे कोई फल नहीं होता और ये सभी दानादि कर्म न्यायोपार्जित द्रव्यसे किये जाने चाहिये। अन्यायोपार्जित द्रव्यद्वारा सत्कर्म करनेसे कोई फल नहीं होता।

महापुरुष वल्लभाचार्यकी यात्रामें कालपुरुषदानकी घटना

(नित्यलीलास्थ श्रीकृष्णप्रियाजी 'बेटीजी')

पृथ्वी-परिक्रमामें आचार्यश्री महाप्रभु वल्लभाचार्य (१४७९—१५३० ई०) प्रतिदिन आठ कोसतक चलते थे। दक्षिणकी यात्रा करते समय आप तीर्थों, नगरों तथा ग्रामोंमें होते हुए ताम्रपर्णीनदीके तटपर आये। वहाँ आप प्रभुसेवासे निवृत्त होकर सुखपूर्वक विराजे थे। उसी समय एक दुःखी ब्राह्मण आया। उसे देखकर आपने शिष्योंद्वारा उसके दुःखका कारण पुछवाया। तब उसने कहा कि यहाँसे दो कोसपर पालकोटा नामका नगर है, वहाँका राजा कालज्वरसे पीड़ित है। उसकी शान्तिके लिये राजगुरुने कुण्डमण्डप बनाकर सोनेका एक बड़ा कालपुरुष स्थापित किया है। जब कोई उसे दानमें लेने आता है, वह कालपुरुष जीवित हो उसको एक अँगुली दिखाकर हुँकार करता है। यह देखकर देश-विदेशके सब विद्वान् भाग गये। अब मुझे सब कहते हैं कि तुम राजाके पुरोहित हो, तुम यह दान लो। अब मैं पात्र खोजता हूँ कि कोई वह दान ले ले, अन्यथा मुझे वह लेना ही पड़ेगा। तब आचार्यश्रीने दया करके अपने शिष्योंमेंसे एक ब्रह्मज्ञानके तेजसे प्रकाशमान पात्रको आज्ञा देकर उस ब्राह्मणके साथ भेजा और आज्ञा दी कि गायत्री अग्निमुख हैं, उनका ध्यान करके दान ग्रहण करना। इस प्रकारसे दान लेनेवालेकी मृत्यु नहीं होगी। गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य करके वह शिष्य ब्राह्मणके साथ कालपुरुषके पास आया। उसे देखकर कालपुरुषने एक अँगुली दिखायी। तब उस शिष्य ब्राह्मणने दो अँगुली दिखायी। यह देखकर कालपुरुषने सिर झुका लिया। तब उस शिष्य ब्राह्मणने दान लिया, किंतु दान लेते ही उसके दोनों हाथ काले पड़ गये, उसने तुरन्त ही सोनारको बुलाकर उस कालपुरुषके टुकड़े-टुकड़े करा दिये और सब ब्राह्मणोंको बाँट दिये। ऐसा करनेसे उसके हाथ फिर पहले की तरह हो गये और राजा भी तुरंत स्वस्थ हो गया। तब राजाने पूछा कि यह ब्राह्मण कौन है? पुरोहितने आचार्यश्रीकी सारी व्यवस्था कही। राजा-रानी पालकी लेकर आपको पधराने गये और प्रार्थना की कि अपने चरण-रजसे राज्यको पवित्र करें। तब आचार्यश्री पैदल चलकर नगरमें पधारे। वहाँ रानी-राजा सबने उनसे दीक्षा ली और पूछा कि प्रभो! कालपुरुषके अँगुली उठानेका कारण क्या है? तब आपने कहा कि कालपुरुष पूछता था कि यदि तुम नियमसे एक बार भी सन्ध्या करते हो, तो मेरा दान लो। तब मेरे शिष्यने दो अँगुली दिखायी कि मैं नियमित दो बार सन्ध्या करता हूँ। कालपुरुषने माथा झुकाकर स्वीकृति दी कि तू मेरा दान ग्रहण कर। ब्राह्मणने जानबूझकर कुदान लिया, इससे उसके हाथ काले हो गये और जब उसने दानको वितरित कर दिया, तब पुनः उसके हाथ शुद्ध हो गये।

इससे यह शिक्षा मिलती है कि अपने स्वधर्मका अवश्य नियमित पालन करना चाहिये और किसी प्रकारका दान ले तो उसमेंसे अवश्य थोड़ा दूसरेको देना चाहिये। आचार्यश्रीके शिष्योंमें यह प्रताप था। जैसे अपने स्वार्थके कारण किया हुआ पशुवध दुःखका कारण होता है, वैसे कुदान भी दुःखका कारण हो जाता है। जहाँ दान लेनेवाला भी स्वधर्मका पालन करनेवाला है और दाताका द्रव्य भी धर्मसे उपार्जित है, वहाँ लेनेवाले और देनेवाले—दोनों कल्याणके पात्र होते हैं।

जिन्होंने संसारको ही सर्वस्व मान लिया है, उनकी बात नहीं, पर जो संसारके उस पारपर भी विश्वास करते हैं—उन्हें भगवान्‌का भजन करना आवश्यक है। भजनमें बड़ा सुख है, पर जबतक भजन नहीं किया जाय, कैसे पता चले।

मन नहीं लगता, कोई बात नहीं। बिना मनके नाम रटो, रटते जाओ। अभ्याससे तीक्ष्ण मिर्च भी प्रिय लगने लगती है। भगवन्नाम तो बहुत मधुर है। रात-दिन सोनेमें ही मत बिताओ। कितने जन्म और कितने कालसे सोते आये हो। अब जग जाओ, सजग हो जाओ। भगवान्‌को पानेके लिये चल दो, तुरंत चलो। नहीं तो सदा रोते ही रहोगे।

मन, वाणी और शरीरसे पवित्र रहो।

भगवान्‌का गुण गाओ, सुनो। भगवान्‌का सभी गुण-गान करें—इसके लिये प्रयत्न करो। पर पहले स्वयं गुणगान करो। तुम्हारा मंगल होगा—**संत श्रीपयोहारी बाबाजी**

कालपुरुषदानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—यदुश्रेष्ठ! सभी पापोंके नाश करनेवाले, मंगलप्रद, पवित्र अन्य दानोंको आप मुझसे कहें; क्योंकि ज्ञान-विज्ञानके एकमात्र आश्रय और संसार-सागरसे उद्धार करनेवाला आपके अतिरिक्त कोई नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! मैंने अनेक प्रकारके दानोंकी आपसे चर्चा की, फिर भी यदि आपको उत्कण्ठा है तो मैं पुनः कह रहा हूँ। आप सबसे पहले दस महादानोंके विषयमें सुनें। उनमेंसे पहला दान है—कालपुरुषदान, दूसरा है—सप्तसागरदान, इसी प्रकार महाभूतघटदान, शय्यादान, आत्मप्रतिकृतिदान, सुवर्णाश्वदान, सुवर्णाश्वरथदान, कृष्णाजिन-दान, विश्वचक्रदान तथा हेमगजरथदान—ये दस महादान हैं। नृपश्रेष्ठ! आप दान करनेमें अपनी सद्बुद्धि लगायें और अन्य लोगोंको भी दान-कर्ममें प्रेरित करें। धनीके लिये दानसे अतिरिक्त और कोई भी उपकार नहीं है। देनेवाले व्यक्तिका धन घटता नहीं है, अपितु देनेसे बढ़ता ही रहता है।

राजन्! अब आप कालपुरुषदानके विषयमें सुनें। कालपुरुषकी एक प्रतिमा बनानी चाहिये। चतुर्थी, चतुर्दशी अथवा विष्टि (भद्रा)-में यह प्रतिमा काले तिलोंसे एक समतल भूमिपर पुरुषके आकारकी बनवाये। उसके दाँत चाँदीके, आँखें सोनेकी बनाये, उसके हाथमें भयंकर तलवार हो, जपाकुसुमके समान उसके कानोंमें कुण्डल हों, लाल माला तथा लाल वस्त्र पहने हो, शंखकी माला भी पहने हो। धनुष-बाण लिये हो। जूते पहने हो तथा बगलमें काला कम्बल लिये हो। इस प्रकार कालपुरुषकी प्रतिमा बनाकर गन्ध, पुष्प और नैवेद्य आदिसे उसकी अर्चना करे। '**त्र्यम्बकं०**' (यजु० ३।६०) इस मन्त्रसे स्वगृह्योक्त विधानसे तिल और घृतद्वारा १०८ आहुतियाँ दे। अनन्तर प्रसन्नहृदयसे इस मन्त्रका उच्चारण करे—

सर्वं कलयसे यस्मात् कालस्त्वं तेन भण्यसे।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां त्वमसाध्योऽसि सुव्रत॥
पूजितस्त्वं मया भक्त्या प्रार्थितश्च तथा सुखम्।
यदुच्यते तव विभो तत् कुरुष्व नमो नमः॥

(भवि०, उत्तरपर्व १८१।२१-२२)

'कालपुरुष! सब कुछ आपसे ही घटित होता है। इसलिये आप काल कहे जाते हैं। सुव्रत! ब्रह्मा, विष्णु, शिवसे भी आप असाध्य हैं। आपकी मैंने भक्तिपूर्वक आनन्दके साथ पूजा की है। विभो! मुझे आपसे सुखकी कामना है। आप उसे कृपापूर्वक पूर्ण करें, आपको बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार पूजाकर प्रतिमा ब्राह्मणको समर्पित करे। वस्त्र और अलंकारोंसे ब्राह्मणकी पूजाकर उसे यथाशक्ति दक्षिणा भी प्रदान करे। इस विधिसे कालपुरुषका दान करनेवालेको मृत्यु एवं व्याधिका भय नहीं रहता। वह सभी बाधाओंसे रहित होकर अपार सम्पत्ति और अन्तमें सूर्यलोकका भेदनकर परमपदको प्राप्त करता है। पुण्य क्षीण होनेपर वह पुनः यहाँ आकर पुत्र-पौत्र तथा लक्ष्मीसे सम्पन्न धार्मिक राजा होता है।

दानकी महिमा और रक्तदान

(डॉ० मधुजी पोद्दार, फिजीशियन)

भारतीय संस्कृति एवं धर्मके तीन अभिन्न अंग हैं—व्रत (तप), दान और सेवा। मनुष्यके जीवनमें दानका अत्यधिक महत्त्व है। इसे एक प्रकारसे नित्यकर्म ही माना गया है।

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहवनं सन्तोषोऽस्तेयमेव च॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः॥

(अग्निपुराण १७५।१०-११)

उदित अर्थात् वेद-वेदांगाध्ययन करनेवाले प्रशस्त पात्रमें अर्थके श्रद्धापूर्वक प्रतिपादनको दान कहा जाता है, जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है—

अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥

(कूर्मपुराण)

किसी भी जीवकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियोंपर दया करना, मन और इन्द्रियोंपर काबू रखना तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान देना गृहस्थाश्रमका उत्तम धर्म है—

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमम्॥

वेदों और पुराणोंमें कहा गया है कि सत्ययुगमें धर्मरूपी बैलके चार पैर थे—सत्य, शौच, दया और दान। त्रेतामें सत्यरूपी चरण एवं द्वापरमें सत्य एवं शौचरूपी दो चरण क्षीण हो गये तथा कलियुगमें केवल चौथा चरण रह गया—दान।

वस्तुतः दान क्या है? दानका अर्थ है देना। कर्मफलसिद्धान्तके अनुसार व्यक्ति जैसा बोता है, वैसा ही काटता है, जो देता है वही पाता है—यही प्रकृति एवं दुनियाका भी नियम है। इस हाथ दो, उस हाथ लो। विज्ञानके अनुसार भी प्रत्येक क्रियाकी विपरीत प्रतिक्रिया होती है, अतः जो देगा, वह लौटकर उसके पास ही आयेगा। दूसरे शब्दोंमें प्राप्तिका ही दूसरा नाम दान है। जो ठगता है वह स्वयं ठगा जाता है, जो लूटता है वह स्वयं लुटता है, जो प्रसन्नता बाँटता है वह प्रसन्नता पाता है, जो किसीको शारीरिक या मानसिक पीड़ा देता है, उसे भी दुःख ही प्राप्त हो जाता है, जो विद्या या ज्ञानका दान देता है वही ज्ञानी बन जाता है, जो दूसरोंको कुछ सिखाता है या शिक्षित करता है वह स्वयं सीख जाता है तथा शिक्षित हो जाता है; क्योंकि सिखानेवालेको पहले स्वयं अभ्यास करना पड़ता है। अतः स्वयं पानेके लिये देना अर्थात् दान देना बहुत जरूरी है। जैसे अन्न और फल-फूल पानेके लिये धरतीको बीजका दान देना पड़ता है तथा वही दान सैकड़ों-हजारों गुना बनकर लौटता है, उसी तरह हम जितना दान देते हैं, उसका सैकड़ों-हजारों गुना होकर पाते हैं।

दानके छः अधिष्ठान माने गये हैं—१-धर्मदान (बिना काम तथा फलकी इच्छाके सुपात्रको धर्मबुद्धिसे दान), २-अर्थदान (मनमें प्रयोजन रखकर प्रसंगवश दान), ३-कामदान (नशे आदिमें अनधिकारीको दान), ४-लज्जादान (सभा आदिमें किसीके माँगनेपर लज्जावश दान), ५-हर्षदान (प्रिय कार्य देखकर हर्षोल्लासमें दान), ६-भयदान (अनुपकारीको विवश होकर दिया गया दान)।

सभी दानोंमें अन्नदानको श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि अन्न ही मनुष्योंका जीवन है, उससे जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति होती है तथा अन्नमें ही सभी लोक प्रतिष्ठित हैं। अन्नदानसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है और इस लोकमें समस्त कामनाएँ भोगकर मृत्युके बाद भी सुख भोगता है।

इसके अलावा भूदान तथा कन्यादानको भी इस लोकमें दान कहा गया है। दान श्रद्धापूर्वक, न्यायोपार्जित धनसे वह अंश सुपात्रको देना चाहिये, जो कुटुम्बके भरण-पोषणसे अधिक हो। मनुष्यको हर अवस्थामें न्यायोपार्जित द्रव्यका ही दान करना चाहिये। जो मनुष्य अपने धनको पाँच भागोंमें बाँट लेता है—कुछ धर्म (दान, यज्ञ, तप तथा परोपकार), कुछ यशार्जन, कुछ धनकी अभिवृद्धिके लिये, कुछ भोगोंके लिये तथा कुछ स्वजनोंके लिये, वही इस लोक और परलोक दोनोंमें सुख पाता है—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

बिना श्रद्धाके, जो अपात्रको दिया जाय या जिसे देकर पश्चात्ताप हो, वह दान नष्ट हो जाता है। जिस तरहसे कोई भी चीज दूसरेको देते हुए हमें देखना होता है कि उसे उस चीजकी जरूरत है या नहीं, उससे उसे दुःख तो नहीं मिल रहा है, उसी तरह दान भी सुपात्रको ही देना चाहिये तथा जिस तरहसे किसीकी मदद करनेमें सुखकी अनुभूति होती है, उसी तरह दान देनेमें जो सुख मिलता है, उसी सुखके लिये दान देना चाहिये, दुःखी मनसे नहीं; क्योंकि दुःखी मनसे दिया हुआ दान लौटकर प्राप्त नहीं होगा। साथ ही कभी किसीको ऐसी वस्तुका दान नहीं देना चाहिये, जिससे लेनेवालेको पीड़ा हो; क्योंकि देते समय लेनेवाला जो अनुभव करता है वही अनुभूति लौटकर दाताके पास आती है, जैसे कि सही फल पानेके लिये सही बीजका चयन करना होता है, वैसे ही सही वस्तुका चयन, दूसरेकी मनोदशा, जरूरत तथा इच्छाको देखते हुए करना चाहिये और यह सोचकर करना चाहिये कि हम स्वयंको ही दे रहे हैं; क्योंकि प्राप्तिका नाम ही दान है तथा स्वयंको अगर अच्छा पाना है तो अच्छा ही दान करना चाहिये। किसीको कुछ भी देना, जो उसे तथा आपको स्वयं प्रसन्नता प्रदान करे, दानका ही स्वरूप है अथवा समर्पण, त्याग तथा प्रेम ही दान है।

जो दान नहीं करते, वे दरिद्री, रोगी, मूर्ख और सदा दूसरोंके सेवक होकर दुःखके भागी होते हैं। दानवीर होना या दान देना अत्यन्त दुष्कर कार्य है; क्योंकि मानवने सैकड़ों प्रयासोंसे जो धन कमाया होता है, वह उसे प्राणोंसे भी प्यारा हो जाता है, उसका त्याग वास्तवमें कठिन हो जाता है।

शतेषु जायते शूरः सहस्त्रेषु च पण्डितः।
वक्ता शतसहस्त्रेषु दाता जायेत वा न वा॥

(स्कन्दपुराण)

सैकड़ों मनुष्योंमें कोई शूरवीर हो सकता है, सहस्त्रोंमें कोई पण्डित भी मिल सकता है, लाखोंमें कोई वक्ता भी निकल सकता है, परंतु इनमें एक भी दाता हो सकता है या नहीं, इसमें सन्देह है।

भारतमें दानको सदैव सर्वोपरि माना गया है। कबीरने कहा है—*कर साहिब की बंदगी और भूखे को दो अन्न।* प्राचीनकालसे ही दानकी महत्ताको समझा गया है। महाराज रघुद्वारा स्वर्णकोषका दान, दानवीर कर्णद्वारा कुण्डल तथा कवचका दान, शिवाजीद्वारा गुरु रामदासको अपना राज्य दान करनेके बाद गुरुकी धरोहर समझकर शासन सँभालना, संत विनोबाभावेद्वारा भूदानयज्ञ (जरूरतसे ज्यादा भूमि रखनेवालोंसे अतिरिक्त भूमि दानमें लेकर जरूरतमंदोंको देना), भगतसिंह-जैसे स्वतन्त्रता-सेनानियोंद्वारा प्राणदान, सत्यवादी हरिश्चन्द्रद्वारा राजपाटके साथ-साथ स्वयंका दान, महान् असुर राजा बलिद्वारा वामनरूपमें भगवान् विष्णुको दो पगमें भूलोक तथा स्वर्गलोक और तीसरे पगमें स्वयंके सिरपर पग रखवाकर स्वयंका दान-जैसे अनेक महनीय आख्यान भारतीय इतिहासकी धरोहर हैं। बाइबिलमें भी गुप्तदान अर्थात् दायाँ हाथ दान करे तथा बायेंको पता न चले, का उल्लेख है। पहलेके राजा-महाराजा ऋषियों, संतों तथा ब्राह्मणोंको गौ एवं धनदान दिया करते थे, जिससे उनका जीवन-यापन होता था। नगरोंमें सेठ लोग धन, वस्त्र, पशु इत्यादिके दानके साथ-साथ जगह-जगह कुएँ खुदवाते थे। महाराज अग्रसेनद्वारा वैश्यसमाजके प्रत्येक परिवारसे एक ईंट तथा एक रुपयेके दानकी अपील जगप्रसिद्ध है, जिसमें उन्होंने नगरवासियोंको कहा था कि हर आनेवाले नये परिवारको एक ईंट एवं एक रुपयेका दान दो तो इससे नवागन्तुकका घर बन जायगा तथा आर्थिक सहायतासे वह अपने परिवारका पालन-पोषण कर लेगा एवं कारोबार शुरू कर सकेगा।

दान करके मनुष्य परोपकारके साथ-साथ स्वका भी उपकार करता है; क्योंकि इससे जरूरतमंदोंकी भलाईके साथ-साथ आत्मिक सन्तुष्टि मिलती है एवं पुण्यका भाव आता है। वृक्ष, नदियाँ तथा गौएँ नित परोपकारका ही कार्य करती हैं, यह शरीर भी परोपकारके लिये ही है, स्वार्थके लिये नहीं—

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः
परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः
परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥

रक्तदान

रक्तदान मानवजीवनमें किया गया एक पुनीत कार्य है, जिसमें रक्तकी कमीसे मृत्युशय्यापर लेटे रोगीकी जान बचायी जा सकती है। मानवजीवन बड़े यत्नों तथा शुभकर्मोंसे एक बार ही मिलता है। रक्तदानसे किसीकी भी जिन्दगी बच सकती है तथा स्वयंको भी कभी रक्तकी जरूरत पड़ सकती है। रक्तका कोई विकल्प नहीं होता एवं न ही यह कृत्रिम रूपसे तैयार हो सकता है। मनुष्यको जानवरोंका रक्त भी नहीं चढ़ाया जा सकता। अतः हर मनुष्यको अपने जीवनकालमें रक्तदान-जैसा महान् कार्य अवश्य करना चाहिये। रक्तदानसे सम्बन्धित कुछ भ्रान्तियोंको दूर करके सत्यता जानना तथा रक्तदान करना बहुत जरूरी है—

(१) रक्तदानसे कोई कमजोरी नहीं आती और न ही इससे मृत्यु हो सकती है; क्योंकि हर मनुष्यके शरीरमें ४.५-५.५ लीटर रक्त होता है, जिसमेंसे सिर्फ ३५०-४०० मिली० रक्त निकाला जाता है। अगर इतने रक्तके निकालनेसे मृत्यु सम्भव होती तो महिलाएँ मासिक स्त्रावके बाद ही मृत्युका ग्रास बन जातीं।

(२) १७ वर्षसे ज्यादा एवं ६५ वर्षसे कम एवं ४५ किलोसे अधिकका कोई भी व्यक्ति रक्तदान कर सकता है (एड्स, पीलिया एवं कैंसरसे पीड़ितको छोड़कर)।

(३) हर व्यक्ति सालमें ३-४ बार या हर तीन महीनेमें एक बार रक्तदान कर सकता है।

(४) रक्तदानके पश्चात् ५-१० मिनटके विश्रामके बाद ही सामान्य कामपर जाया जा सकता है।

(५) रक्तदानके लिये रक्त ब्लडबैंकमें ही निकाला जाता है और ब्लडग्रुप इत्यादि चेक करनेके बाद रक्तकी बोतलमें ५० एम०एल० दवा जो खूनको जमने न दे, डाल दी जाती है, जिसे डॉक्टर रोगीको अस्पतालमें पूरी सावधानीके साथ चढ़ाता है। विज्ञापनोंमें जो दर्शाया जाता

है कि रक्त देनेवाला तथा लेनेवाला पास-पास लेटे हुए हैं तथा एकका रक्त डायरेक्ट दूसरेके शरीरमें चढ़ाया जा रहा है, वह गलत एवं भ्रामक चित्रण है। न तो ऐसे रक्त लिया जाता है और न ही चढ़ाया जाता है।

रक्तदान-जैसे पुनीत कार्यके लिये अपना ब्लडग्रुप अवश्य जानकर रखें, रक्त देने या लेनेकी जरूरत कभी भी पड़ सकती है। रक्तदान करके मानवीय सेवामें योगदान करें।

वास्तवमें चाहे अन्न, जल, धन, भूमि, गौ इत्यादिका दान हो या रक्तदान हो, दानका मनुष्य-जीवनमें एक खास महत्त्व है। दानसे एक तरफ जरूरतमन्दका भला होता है तो दूसरी तरफ दान देनेवालेको आत्मसंतुष्टिके साथ-साथ कर्मफल सिद्धान्तके अनुसार इस लोक एवं परलोक दोनोंमें सुख मिलता है, अतः जीवनमें दान अवश्य करना चाहिये। रामधारीसिंह 'दिनकरजी' ने सही कहा है—

दान जगत्का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है,
एक रोज तो हमें स्वयं, सब कुछ देना पड़ता है।
बचते वही समय पर, जो सर्वस्व दान करते हैं,
ऋतुका ज्ञान नहीं जिनको, वे देकर भी मरते हैं॥

आधुनिक दान*

(श्रीभानुशंकरजी मेहता)

दानकी महिमा निर्विवाद है। कहते हैं कि सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके पास जब देव, दानव और मानव गये तो उन्होंने तीनोंको द-द-दका उपदेश दिया। देवताओंको 'द' से दम, दानवोंको दया और मानवोंको दानका आदेश मिला। हमारे आर्षग्रन्थ दानकी महिमासे भरे पड़े हैं। ऋषि दधीचिका इन्द्रके वज्र बनानेके लिये अपना अस्थिदान आज भी श्रेष्ठतम दान माना जाता है। बालक नचिकेताने जब पितासे पूछा—'मुझे किसे दानमें देंगे ?' तो पिताने कहा—'यमको'। और यह दान दर्शन-जगत्का महान् इतिहास बन गया। दानकी महिमा बताते हुए यहाँतक कहा है कि किसीको प्राणदान देनेके लिये असत्य वचन भी क्षम्य है। आत्मदान, जीवनदान, सर्वस्वदानकी महिमासे प्राचीन ग्रन्थ भरे पड़े हैं।

पर दान कोई साधारण कार्य नहीं है। कुपात्रको दान नहीं देना चाहिये। निःस्वार्थ भावसे दान देना चाहिये। वायुपुराणके अनुसार दान तीन प्रकारके होते हैं—श्रेष्ठ, कनिष्ठ और मध्यम। श्रेष्ठ दानसे मोक्ष प्राप्त होता है तो कनिष्ठ दानसे स्वार्थसाधन। दयावश संवितरण ही मध्यम दान है। निषिद्ध और बेईमानीसे अर्जित धन दान देनेसे कोई लाभ नहीं होता। शीतकालमें सर्दीसे ठिठुरते आदमीको कम्बल देना तो अच्छा है, पर उसकी फोटो खिंचाना, अखबारोंमें समाचार प्रकाशित कराना दानकी महिमाको घटाता है। लोग अपने यशके लिये धर्मशाला, दातव्य औषधालय, अस्पताल, स्वास्थ्य-शिविर, नेत्रशिविर आदिके लिये दान देते हैं, पर इससे उनका अपना नाम होता है, दानका नहीं। वास्तवमें दान बड़ा कठिन धर्म है। कहते हैं ग्रहीताके प्रति कृतज्ञ होकर दान देना कि आपने मेरा दान स्वीकारकर बड़ी कृपा की और ईश्वरका आभार प्रकट करना कि आपने मुझे इस योग्य बनाया कि मैं यह दान दे सका, इस भावनासे दान देना ही असली दान है। दानकी महिमा सभी सम्प्रदायोंने गायी है। इस्लामका आदेश है कि अपनी आयका दशमांश जकातमें दो। ईदके अवसरपर सभी मुसलमान जकात बाँटते हैं। ईसाई-सम्प्रदाय भी दानकी महिमा गाता है। रासीकूरियन्स सम्प्रदाय तो कहता है कि दान दो तो ऐसे कि बायें हाथको पता न चले कि दायें हाथने क्या किया। गुप्तदानकी महिमा सभी गाते हैं।

दानकी महिमाका वर्णन करते हुए हम आधुनिक युगमें आते हैं। आजकल अनेक नये दानोंकी चर्चा है। यहाँ कुछकी चर्चा प्रस्तुत है—

१. रक्तदान—महादान—मानवशरीरमें करीब छः लीटर रक्त रहता है और इसमेंसे केवल एक लीटर संचारमें होता है। बाकीका निरन्तर क्षय और निर्माण होता

* विज्ञानकी प्रगतिके आधारपर आजकल शरीरके अंगोंका प्रत्यारोपण अभावग्रस्त दूसरे व्यक्तिके शरीरमें करनेका प्रत्यक्ष लाभ दिखायी पड़ता है। शास्त्रकी दृष्टिसे जीवितावस्थामें किया गया अपने किसी अंगका दान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं पुण्यप्रद है, परंतु मृत्युके उपरान्त और्ध्वदैहिक क्रियाके पूर्व अंग-भंग होनेपर शास्त्रानुसार अगले जन्ममें उस अंगसे हीन होकर जन्म लेना पड़ता है। अतः जीवितावस्थामें किया गया दान पूर्णतः शास्त्रसम्मत है।

रहता है, अस्तु स्वस्थ नीरोग व्यक्ति आसानीसे तीन सौ सी०सी० रक्त दान कर सकता है और इस रक्तसे किसी रोगीकी प्राणरक्षा हो सकती है। दाताको कुछ ही दिनमें दिया हुआ रक्त मय सूद-ब्याजके मिल जाता है (शरीरकी रक्तनिर्माण-प्रक्रियासे) और वह चाहे तो बिना किसी हानिके वर्षमें तीन-चार बार रक्तदान कर सकता है। इस प्रकार बिना किसी हानि या खर्चके वह पुण्य अर्जित कर सकता है।

वर्तमानका अभिशाप यह है कि लोग अच्छे कार्योंको भी व्यापार बना लेते हैं। स्वैच्छिक रक्तदानका स्थान अब रक्तविक्रयने ले लिया है। कुछ निर्धन लोग तो कई-कई बार अपना रक्त बेचते हैं। इसमें दलालोंकी बड़ी भूमिका है और उतनी ही आपराधिक भूमिका गैरकानूनी ब्लड बैंकोंकी भी।

रक्तविक्रयके स्थानपर स्वैच्छिक रक्तदान करना चाहिये; क्योंकि यह मानवताके हितमें है और पुण्य कार्य है। यदि आप किसी विरले ब्लड ग्रुपके हैं तो अपना नाम, पता रजिस्टर करायें और आवश्यकता पड़नेपर रक्तदान दें। यदि आपको कोई रोग है तो दान न करें।

२. किडनी (गुर्दा)-दान—आज उन्नत शल्यविधिके कारण अंग-प्रत्यारोपण सम्भव हो गया है। जिस रोगीके दोनों गुर्दे अक्षम हो गये हैं, वह गुर्दा-प्रत्यारोपण कराकर नवजीवन प्राप्त कर सकता है। गुर्दा रोगीके अनुकूल स्वभावका और स्वेच्छासे दिया दानरूप होना चाहिये। सामान्यतः प्रत्येक मनुष्यके पास दो गुर्दे होते हैं और एक गुर्देसे काम चल सकता है। अतः अपने प्रियजनकी प्राणरक्षाके लिये व्यक्ति एक गुर्देका दान कर सकता है। यहाँ भी व्यापार और लालची वृत्तिने पाँव पसारे हैं।

धन-अर्जनके लिये कतिपय दुष्ट चिकित्सक छलसे गुर्दे निकाल लेते हैं। गुर्दा बेचनेवाले भी पैदा हो गये हैं। अस्तु, एक महान् दान कलुषित हो रहा है।

३. अस्थिदान—हमारे शरीरमें कुछ अस्थियाँ ऐसी हैं, जो दानमें दी जा सकती हैं, जैसे—पैरकी फिबुला।

४. नेत्रदान—आँखकी बनावटमें कनीनका या कार्निया बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इसका पारदर्शक और निर्मल होना आवश्यक है। बहुत-से लोग कार्नियाके दागदार होनेके कारण अन्धत्व भोगते हैं। किसीके मरनेके कुछ देर बाद शवकी आँखसे कार्निया निकाल लिया जाय तो उसे रोगीमें आसानीसे प्रत्यारोपित किया जा सकता है। इससे शवकी कोई हानि नहीं होती, बल्कि मृत्युके उपरान्त पुण्य ही मिलता है और किसीको ज्योति मिल जाती है। यह बड़ा उत्तम दान है, नेत्रदानकी इच्छावाला व्यक्ति किसी नेत्रबैंकमें इसे रजिस्टर करा सकता है कि मृत्युके बाद यह कार्निया दानमें ले लिया जाय।

५. शरीरदान—चिकित्साविज्ञानके विद्यार्थियोंको शरीररचनाके ज्ञानके लिये शवकी जरूरत होती है। वर्तमान कानूनके अनुसार आप वसीयत कर सकते हैं कि मृत्युके बाद मेरा शरीर जलाया या गाड़ा न जाय, बल्कि एनाटॉमी विभागको दे दिया जाय।

६. हृदयदान—किसी दुर्घटनामें मरे स्वस्थ व्यक्तिका हृदय (परिवारकी अनुमतिसे) निकालकर किसी हृदयरोगीको प्रत्यारोपित किया जा सकता है। बात केवल उदारचेता सम्बन्धियोंकी है।

७. मज्जादान—हमारी अस्थिके अन्दर खोखले भागमें मज्जा होती है। इसमें रक्त बनता है। कई लोगोंको रक्त कैंसर, रक्तनिर्माण बन्द होना-जैसे असाध्य रोग हो जाते हैं। यदि कोई अनुकूल व्यक्ति अपनी मज्जा दान करे और रोगीमें उसे प्रत्यारोपित किया जा सके तो उसे जीवनदान मिल सकता है। यह कठिन कार्य है, पर इस दानकी महिमा कम नहीं है और अच्छी बात यह है कि इससे दाताको कोई हानि नहीं होती।

८. अंगप्रत्यारोपण—उच्च विज्ञान अन्य अंगोंमें प्रत्यारोपणकी तकनीकें विकसित कर चुका है। यह कोई नयी बात नहीं है। पुराणोंमें अंगोंके प्रत्यारोपणकी कथा है—जैसे गणेश, हयग्रीव आदिकी कथाएँ।

देनेको आप चश्मे, बैसाखी, ह्वीलचेयर, अपंगके लिये विशेष वाहन, अन्धोंके लिये ब्रेल लिपिकी पुस्तकें, विशेष दवाएँ, नकली दाँत, पेस बैटरी आदि दे सकते हैं। आज हजार गोदान देनेकी बात कहानी ही रह गयी है। प्रतीक गोदान देकर वैतरणी पार की जा सकती है। ऐसेमें मरणोपरान्त इस प्रकारके परम्परासे हटकर नये दान देकर पीड़ित मानवताकी सेवाकर भी पुण्यफल पाया जा सकता है। सोचिये, पब्लिसिटीभरे शिविर, मीडियामें दिखते दान, अपनी गौरवमयी फोटो, दानी सेठके गौरवभरे परिचयसे तो यह उत्तम और पुण्यप्रद होगा।

आत्मदानके आदर्श

(डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या)

त्याग दानका मूलार्थ, अपरिग्रह गूढ़ार्थ एवं कल्याण फलार्थ है। वस्तुतः यही सृष्टि और समष्टिका ब्रह्मसूत्र है। दानमें त्याग और त्यागमें शान्ति स्वतः निरूपित है—**'त्यागाच्छान्तिः'** (गीता १२। १२)। गूढ़तः दान त्याग और शान्तिका युग्माणु है; यही कल्याणका गर्भ है। दाताको पन्द्रहवाँ रत्न कहा गया है—**'दाता पञ्चदशो रत्नः।'**

समुद्रमन्थनमें प्राप्त चौदह रत्नोंकी ध्रुव सीमा समाप्तकर पन्द्रहवीं संज्ञा आविर्भूत करना स्वतः ही दानकी महत्ता और दानकर्ताके विशिष्ट स्थानको परिलक्षित करता है।

दान कल्याणका परम साधन है। यह जीवनका परम हेतु है। सुर-असुर संग्राममें महर्षि दधीचिने अपने-आपकी आहुति देकर देवराज इन्द्रको अपनी अस्थियोंका दान देकर वज्र-निरूपित होनेमें अपना उत्कृष्ट देखा। वृत्रासुर अजेय था और उसके रहते देवराजका शासन असम्भव था और देवताओंके सुशासनके बिना मानवीय उत्कर्ष असंभव था, अतः महर्षिने इसे अपना ध्येय बना कल्याणको पुष्ट और दानको गौरवान्वित किया। महर्षि दधीचिके इसी महोत्सर्गने आज दानकी महिमाको मण्डित किया और ईश्वरीय अनुवंशको प्रदीप्त कर दिया। कल्याणके हेतु दानाचारको धर्म और आदर्शके रूपमें ध्रुव स्थापित कर दिया।

धन्य है भारतका दान-वैभव और शील-सौरभ, जो आज शताब्दियों, युगानुयुग हजारों वर्ष उपरान्त भी क्लान्त नहीं है।

दान वैभवतः देव, दानव, मनुष्य, पशु सभीमें समान रूपसे व्याप्त है; क्योंकि यह किसी योनि या जातिविशेषमें नहीं, ईश्वरके अंश जीवमात्रमें संस्तुत्य है। ऐसी ही एक गौरव-गाथा यहाँ उद्धृत है—

प्राचीनकालकी बात है। एक राक्षस था बलासुर। बल यथानाम बड़ा बलवान् एवं प्रतापी था। उसने इन्द्रादि सभी देवोंको पराजित कर दिया था। उसे जीतनेमें देवता सर्वथा असमर्थ थे। अतः देवोंने एक यज्ञ करनेका संकल्प लिया और योजना बनायी कि किसी तरह बलको यज्ञपशु बननेहेतु प्रेरित किया जाय।

देवगण इन्द्रसहित असुरराज बलासुरके पास गये तथा यज्ञकी सफलताके लिये यज्ञपशु बननेकी अभ्यर्थना की। सामूहिक स्तवनसे बलासुर प्रसन्न हुआ और उसने अपना शरीर देवोंको दानमें दे दिया। पूर्वसंचित पुण्योंसे, देव-समागमसे और पापोंका क्षय समीप होनेसे बलके हृदयमें यह संचार हुआ और परमार्थसाधनके लिये आत्मदानकी प्रबल प्रेरणा हुई।

वचनपर अडिग, पशु-शरीरवाले उस असुरने संसारके कल्याणार्थ एवं देवोंकी हितेच्छासे यज्ञमें अपने शरीरका परित्याग किया। बलासुरके उस विशुद्ध कल्याण कर्मसे उसका शरीर भी विशुद्ध सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो उठा था। अतः उसके शरीरके सभी अंग रत्नोंके बीजके रूपमें परिणत हो गये—

तस्य सत्त्वविशुद्धस्य सुविशुद्धेन कर्मणा।
कायस्यावयवाः सर्वे रत्नबीजत्वमाययुः॥

(शब्दकल्पद्रुम)

कथानुसार प्रयोजनोपरान्त देवता, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध तथा नाग जब विमानसे बलासुरके मृत शरीरको आकाश-मार्गसे ले जाने लगे तो यात्रावेगके कारण उसका शरीर स्वतः खण्ड-खण्ड होकर पृथ्वीपर इधर-उधर गिरने लगा।

बलासुरके शरीरके अंग खण्ड-खण्ड होकर समुद्र, नदी, पर्वत, वन अथवा जहाँ-कहीं भी गिरे, वहाँ रत्नोंकी खान बन गयी और उन खानोंमें विविध प्रकारके रत्न उत्पन्न होने लगे; जो राक्षस, विष, सर्प, व्याधि तथा विभिन्न प्रकारके पापोंको नष्ट करनेमें समर्थ थे। यह है बलका कल्याणार्थ आत्मोत्सर्गका पुण्य परिणाम। रत्नोंके बीजरूप उस बलोत्सर्गको हमारा कोटि-कोटि नमन।

इस प्रकार सत्कर्म अर्थात् कल्याणके लिये किया गया आत्मदान सर्वथा स्तुत्य, महिमायुक्त एवं अक्षय शीलभूषण है। दानका यही हेतु है।

दानोंमें आत्मदान सर्वश्रेष्ठ है, तभी तो भगवान्‌ने समुद्र-मन्थनके अवसरपर कछुआ बनकर मन्दराचलको धारण किया और उन्हीं श्रीहरिने मोहिनीरूप धारणकर देवोंको अमृत पिलाया। यही आत्मोत्सर्ग विश्व-कल्याणका प्राणहेतु है। जगदीश्वर शम्भुका विषपान तो इस शृंखलामें सर्वथा प्रथम

उद्धरण है। दानकी महत्ताको प्रतिपादित करनेमें सूर्यपुत्र महापराक्रमी दानवीर कर्णका आचरण तो तीनों लोकोंमें अन्यत्र दुर्लभ है। दानाकाशमें कर्ण पूर्णचन्द्रस्वरूप हैं।

दान सर्वथा तप है, जिसकी प्रतिष्ठाके लिये भगवान्‌ने वामनरूप लिया, वहीं महाराज शिबिने एक कबूतरके प्राणरक्षक बनकर अपने-आपको उत्सर्ग कर दिया। मेवाड़के भावी महाराज बालक उदयके लिये महादानी महाभागा पन्नाधायद्वारा अपने पुत्रका दान इसी महादानकी श्रेणीमें आता है, तभी यह उक्ति बार-बार कहनेको जी चाहता है—'**दाता पञ्चदशो रत्नः।**'

राष्ट्रके लिये बलिदान सर्वोपरि दान है

(डॉ० श्रीश्यामजी शर्मा 'वाशिष्ठ', एम०ए०, पी-एच०डी०, शास्त्री, काव्यतीर्थ)

बल+इन्=बलि, शब्दका अर्थ है हवि, भेंट, उपहार, अन्न, कर आदि। इनका देना अर्थात् दान ही बलिदान है। धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानोंमें बलिदान इसी सन्दर्भमें प्रयुक्त हुआ है, किंतु राष्ट्रीय सन्दर्भमें बलिदानका अर्थ है राष्ट्र या देशके लिये तन, मन, धनका पूर्ण समर्पण, त्याग तथा आत्मोत्सर्ग।

वेदोंमें बलि शब्दका व्यापक अर्थमें प्रयोग हुआ है, वहाँ मातृभूमिके लिये सर्वस्व-समर्पणके अर्थमें भी बलिदान शब्दका प्रयोग हुआ है। वेदमें कहा गया है—

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

(अथर्व० १२।१।१२)

अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। यह पृथिवी ही वह पवित्र स्थान है, जहाँ सभी भाषाभाषी, नाना धर्मोंके लोग अपनी विविधताओंको समेटे एक कुटुम्बकी तरह निवास करते रहे हैं। वेदमें कहा है—

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्॥ (अथर्व० १२।१।४५)

यह पृथिवी उन लोगोंके लिये सुवर्णपुष्पा होती है, जो शूर होते हैं, विद्वान् होते हैं और मातृभूमिकी सेवामें समर्पित होते हैं। अतएव कविने कहा है—

सुवर्णपुष्पां पृथ्वीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्॥

अर्थात् इस पृथिवीसे तीन प्रकारके लोग ही सुवर्ण-पुष्पोंका चयन कर पाते हैं, जो शूर होते हैं, कृतविद्य अर्थात् विद्वान् होते हैं एवं जो पृथिवीकी सेवा करना जानते हैं।

वेदमें मातृभूमि या राष्ट्रके लिये बलिदानकी प्रेरक भावनाको व्यक्त करते हुए ही लिखा है—

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥

(अथर्व० १२।१।६२)

'हे मातृभूमे! तुझसे उत्पन्न हम सब रोग-रहित, यक्ष्मारहित, तुम्हारे पास रहनेवाले, लम्बी आयुवाले तथा ज्ञानयुक्त हों तथा तेरे लिये बलिदान देनेवाले हों।

मातृभूमिके लिये सर्वस्वत्यागका सन्देश तो धर्मशास्त्रों तथा काव्योंमें बहुशः मिलता है, किंतु बादमें राष्ट्रके लिये आत्मोत्सर्गहेतु बलिदान शब्द रूढ़ हो गया है। वेदमें सिर (मस्तक)-की बलि देनेको अर्थात् प्राण न्यौछावर करनेके अर्थमें '**बलिं शीर्षाणि**' (ऋक्० ७।१८।१९) वाक्य मिलता है। वेदमें लिखा है—

यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति।

(अथर्व० १०।७।३९)

अर्थात् जिसके लिये देव अर्थात् विद्वान् भी बलि देते हैं।

भारतवर्षमें राष्ट्रीय आदर्शों तथा राष्ट्रके लिये बलि-दानकी परम्परा बहुत प्राचीन है। इस गौरवमयी परम्परामें महर्षि दधीचि, महाराज शिबि, दिलीप, रघु तथा कर्णके साथ-साथ स्वाधीनतासेनानी मंगलपाण्डे, महाराणा प्रताप, शिवाजी, झाँसीकी रानी, गुरु तेगबहादुर, लोकमान्य तिलक, सुभाषचन्द्रबोस, चन्द्रशेखर आजाद-जैसे शीर्ष सेनानियों एवं लाखों अनाम बाल-वृद्ध बलिदानियोंका गौरवपूर्ण इतिहास स्वर्णाक्षरोंमें अंकित है, जिनके कारण मानवताको दानवतासे त्राण मिला। देशके लिये दिया गया यह बलिदान ही सच्चा राष्ट्रधर्म है। लोक-मान्य तिलकके शब्दोंमें राष्ट्रकी आजादी ही मानव-मात्रका प्रथम कर्तव्य होती है। राष्ट्रके स्वाधीन होनेपर ही राष्ट्रसेवा होती है तथा राष्ट्रका उत्थान होता है। इसीलिये वेदमें जागरणका सन्देश दिया गया है—'**वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।**'

'बड़ो दान सम्मान'

(पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र, एम०ए०, एम०एड०)

चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज श्रीदशरथजीके चारों कुमार अपने बालसखाओंके साथ अब राजसदनसे बाहर भी गलियोंमें गोली, भमरा और लट्टू, डोरी खेलने आने लगे हैं। अहा—

सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग,
देखि नर-नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे।
खेलत अवध-खोरि, गोली भौंरा चक डोरि,
मूरति मधुर बसै तुलसीके हियरे॥
(गीतावली १।४३।३)

अवस्था अभी पाँच-सात वर्षकी ही है। आज बालकोंका यह दल मनभावनी वासन्ती सन्ध्यामें कोसलपुरवासियोंके प्राणोंमें प्राणसंचरण करता हुआ श्रीरामभद्रके आनुगत्यमें सरयू-पुलिनमें आ गया। सेवकों एवं अंगरक्षकोंका दल दूरसे ही जागरूक होकर निहारता चल रहा है, पर कोई भी निकट रहकर सुषमा-सरित्के निर्बाध-प्रवाहमें अवरोध उत्पन्न करनेका साहस नहीं कर रहा है। एक ओर निर्मलसलिला सरयू प्रवहमान हैं तो दूसरी ओर श्रीरघुनन्दनके श्रीअंगकी सुषमा-सरित् तीनों कुमारों एवं सखाओंके दलके साथ पृथक् ही प्रवाहित हो रही है। अब सभी सरयू-पुलिनके उस क्रीड़ा-प्रांगणमें आ गये, जो कुमारोंकी क्रीड़ाके लिये विशेष रूपसे बनाया गया था। धनुष और बाण—छोटी-छोटी धनुहियाँ, छोटे-छोटे बाण और तूणीर निकालकर रख दिये गये।

सभी कुछ कालके लिये दूर्वा-प्रांगणमें चक्राकार विराज गये हैं। श्रीरामभद्रके दक्षिण पार्श्वमें कुमार लक्ष्मण हैं तथा वाम पार्श्वमें श्रीभरत तथा कुमार शत्रुघ्न हैं। अन्य सखागण गोलाईसे बैठे हैं। सुहावना त्रिविध समीर अंगसेवामें सन्नद्ध है। सभी श्रीरामके मुखचन्द्रचन्द्रिकाका पान कर रहे हैं। खेल हो, परंतु कौन-सा खेल खेला जाय? यही निर्णय करनेके लिये यह गोष्ठी राज रही है। सभी बालक पैदल ही चलकर आये हैं, रथोंको तो जाने कब कहाँसे, लगभग राजसदनसे निकलते ही छोड़ दिया गया था, अतः किंचित् श्रमापनयन भी हो रहा है।

हाँ भाई, बताइये कि आज कौन-सा खेल खेला जाय?

श्रीरामभद्रने सखाओंकी ओर निहारते हुए पूछा। सभीकी सहमति हो तो आज पदकन्दुक-क्रीड़ा हो जाय। कुमार मणिभद्रने प्रस्ताव किया और सभीने 'ठीक है-ठीक है' कहकर अनुमोदन किया। इस कन्दुकक्रीड़ाके लिये तो दो दल होने चाहिये। जोड़ियोंका विभाजन होने लगा। बालकोंके दो दल पृथक्-पृथक् होने लगे। एक दलके नायक तो श्रीराम होंगे—यह तो निश्चित ही था, परंतु प्रतिपक्षका नायकत्व कौन करे? श्रीरामकी दृष्टि श्रीलक्ष्मण और भरतजीकी ओर गयी।

प्रभो! मैं तो आपके ही पक्षसे खेलना चाहूँगा। नहीं तो मुझे दर्शक ही रहने दिया जाय। कुमार लक्ष्मणने अपना दो टूक मत स्पष्ट कर दिया।

श्रीरामने प्यारसे उन्हें निहारते हुए, उनके निर्णयमें अपनी सहमति दे दी।

अब दृष्टि श्रीभरतपर गयी। शील, संकोच और समर्पण-धर्मके मूर्तरूप भरतकी आँखों-से-आँखें मिलाते हुए श्रीरामने मानो अनुरोध किया—भरत! क्या तुम भी ऐसा ही निर्णय करने जा रहे हो? बस, प्रभो! इस प्रकारकी नजरोंसे न निहारा जाय। प्रभुकी क्रीड़ाका सम्पादन हो, मैं प्रतिपक्षका नायकत्व स्वीकार करूँगा।

यह बात श्रीभरतने बोलकर नहीं, आँखों-ही-आँखोंके संकेतसे निवेदन कर दी और श्रीरामने घोषित कर दिया कि प्रतिपक्षका नायकत्व श्रीभरत करेंगे।

राम-लषन इक ओर, भरत-रिपुदवन लाल इक ओर भये।
सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि-गनि गोइयाँ बाँटि लये॥
(गीतावली १।४५।१)

गगनमण्डलमें इस दिव्य क्रीड़ारसका आस्वादन करनेके लिये देवताओंके विमान दर्शकों और खिलाड़ियोंके समूहपर छाया किये हुए स्थिर हो रहे हैं। कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मन्द-मन्द वर्षा हो रही है। कन्दुक मध्यमें रखा गया। श्रीरघुनन्दनने कन्दुकपर प्रथम पद-प्रहार करके

क्रीड़ाका श्रीगणेश किया। गगनसे पुनः पुष्पवृष्टि हुई। कन्दुक श्रीभरतके दलमें आ गया। क्रीड़ाने गति ली।

एक लै बढ़त एक फेरत, सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये।

(गीतावली १। ४५। ४)

पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों सम्पूर्ण प्रयासके साथ अपनी-अपनी विजयके लिये प्रयासरत हैं। गेंद श्रीभरतके समीप आयी। श्रीभरतने वेगसे पद-प्रहार किया, मानो सन्देश दिया—अभागी गेंद, तू शान्तिके लिये बार-बार इधर क्यों आ रही है? शाश्वत-शान्ति चाहती है तो जा प्रभुके चरण चूम।

गेंद (जीवात्मा) प्रभुके चरणोंके पास पहुँच गयी। प्रभुने पुनः प्रहार किया और गेंद श्रीभरतके चरणोंके समीप आ गयी। मानो प्रभुने कहा—

अरी गेंद! शाश्वत शान्तिके प्रदाता तो श्रीभरत (सन्त)-के ही चरण हैं। मैं तो सदासे हूँ, सर्वत्र ही हूँ। सभीके हृदयमें निवास भी करता हूँ, परंतु—

अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

अतः मुझे प्रकट करके सभीके लिये उपयोगी बनानेवाले तो श्रीसन्त (भरत)-के ही अधिकारकी बात होती है। जा-जा तू उन्हींके चरणोंका आश्रय ले।

प्रभुके श्रीचरणका स्पर्श पाकर गेंद पुनः भरतके पास आयी। श्रीभरतने इस बार उसे इतने तेजसे लौटाया कि गेंद पुनः वापस नहीं आयी। सम्भवतः वह वहाँ पहुँच गयी, जहाँसे लौटनेकी प्रक्रिया विराम ले लेती है।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

लोगोंने देखा कि गोल हो गया। सभीके मुखसे ध्वनि गुंजरित हुई श्रीभरतलाल विजयी हो गये।

एक कहत भइ हार रामजूकी,
एक कहत भइया भरत जये॥

कन्दुकक्रीड़ाने विराम लिया। परंतु इधर एक अन्य क्रीड़ाका श्रीगणेश हो गया। श्रीराम आज अत्यन्त हर्षसे फूले नहीं समा रहे हैं। महादान प्रारम्भ हो गया है। हाथी, घोड़े, वस्त्र और आभूषण, जो कुछ भी सम्मुख दिखा, अयोध्यानरेशके बड़े राजकुमार आज खुले हाथ लुटाये जा रहे हैं। लक्ष्मण कुमारसे नहीं रहा गया और पूछ बैठे—

प्रभो! आज यह दान किस उपलक्ष्यमें दिया जा रहा है?

लक्ष्मण! तुम्हें तो ज्ञात ही है कि हमारी आजकी इस क्रीड़ामें हमारे लाडले भरत विजयी हुए हैं। अतः उनकी विजयके उपलक्ष्यमें यह दान दिया जा रहा है।

लक्ष्मण—विजयके उपलक्ष्यमें या अपनी हारके उपलक्ष्यमें?

श्रीराम—लक्ष्मण! हार और जीत तो क्रीड़ामें होती ही है। क्रीड़ाका मुख्य उद्देश्य तो मनोरंजन है।

लक्ष्मण—प्रभो! वह तो ठीक है, परंतु यह दानका विधान कुछ समझमें नहीं आया।

राम—लक्ष्मण! अच्छा यह बताओ कि दान किस-किस वस्तुका दिया जाता है?

लक्ष्मण—प्रभो! जिन वस्तुओंका दान दिया जाता है, वे सभी तो श्रीचरणसे अविदित नहीं हैं।

श्रीराम—लक्ष्मण! क्या सम्मानका दान भी दानकी किसी कोटिमें आता है? मैं सोचता हूँ कि यदि हम दूसरोंको सम्मान देना सीख जायँ तो जीवनके अनेक विवाद स्वयं समाप्त हो जायँ। हाथी, घोड़ोंका दान तो एक निमित्त है लक्ष्मण! यथार्थ तो सम्मान देना है। कविके मानसदृगोंने इस दृश्यको निहारा और वे उद्घोष कर उठे—

गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन दान।
तुलसी कहत पुकार के बड़ो दान सम्मान॥

इधर प्रभु दान देनेमें लगे हैं, परंतु अत्यन्त आश्चर्य कि उधर श्रीभरत भी मनमाना दान देनेमें लगे हैं—किसीने पूछा—

कुमार! आपका यह दान किस उपलक्ष्यमें दिया जा रहा है?

आजकी इस क्रीड़ामें मेरे प्रभु शरीरसे तो हार गये हैं, परंतु उनका स्वभाव विजयी रहा है।

श्रीभरतने बताया—

'संतत दासन देहु बड़ाई' यह प्रभुका स्वभाव है। तथा ***'प्रभु अपने नीचहु आदरहीं'*** यह उनकी वाणी है।

मेरा दान अपने प्रभुके शील-स्वभावकी विजयके उपलक्ष्यमें है।

धन्य है ऐसा दान और धन्य हैं ऐसे दानके दानी चक्रवर्ती महाराजके ये कुमार।

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा गोपियोंको दिया गया प्रेमदान

[अंकन भरि सबकौं उर लाऊँ]

(श्रीअर्जुनलालजी बंसल)

सन्ध्याका समय था। हलकी-हलकी सुरमई आभासे आकाशमण्डल रचने लगा, ग्वाल-बाल वनसे गोधन ले आये। गोपियाँ घरके काम-काजमें व्यस्त हैं। कुछ गोपियाँ गौओंका दूध दोहन कर रही हैं, कहीं-कहीं खिरकमें बछड़े अपने माताओंका दुग्ध पान कर रहे हैं। किसी-किसी गोपीने दूधसे भरी हांडी चूल्हेपर रख दी, कोई गोपी अपने छोटे-से बालकको अपना स्तनपान करा रही है, कोई अपने शृंगारमें लगी है, कोई पूजा-पाठमें तो कोई अपने पतिको भोजन करा रही है। इस प्रकार अपना-अपना कर्तव्यपालन करते हुए अर्धरात्रिका समय हो गया, उधर आकाशमें शरद् पूर्णिमा अपने पूर्ण यौवनके साथ विकसित हो गयी। इस अवसरपर श्रीकृष्णको अपने उस वचनका स्मरण हो आया जो उन्होंने एक समय गोपियोंको दिया था—सूरदासजीने लिखा है—

सरद-रास तुम आस पुराऊँ। अंकन भरि सबकौं उर लाऊँ॥
यह सुनि सब मन हरष बढ़ायौ। मन-मन कह्यौ कृस्न पति पायौ॥
जाहु सबै घर घोष कुमारी। सरद रास देहौं सुख भारी॥
सूर स्याम प्रगटे गिरिधारी। आनन्द सहित गईं घर नारी॥

(सूरसागर १४१५)

श्रीकृष्णने कहा था—गोपियो! मैं तुम्हारे त्याग और तपस्यासे प्रसन्न होकर वचन देता हूँ कि शरद् पूर्णिमाके अवसरपर महारासकी रचनाकर तुम सबकी मनोकामनाओंको अपने प्रेमदानसे पूर्ण करूँगा। श्रीकृष्णके मुखसे ऐसे मधुर वचन सुनकर गोपियाँ हर्षित हो गयीं और भविष्यके सपने सँजोये अपने घरोंको लौट गयीं।

आज शरद्की वही पूर्णिमा है। श्रीकृष्णने अपना वचन पूर्ण करनेके लिये श्रीवृन्दावनमें वंशीवटपर महारासके आयोजनका निश्चय किया। इस संकल्पको पूरा करनेके लिये श्रीश्यामसुन्दरने अपनी योगमायासे यमुनातटपर उस दिव्य स्थलीको मनमोहक स्वरूप प्रदान करनेकी आज्ञा दी।

मध्य रात्रिका समय हो गया था। आकाशमण्डलमें पूर्ण चन्द्र उदित हो गया था। उसकी शीतल चाँदनीसे समस्त वनप्रदेश आलोकित हो उठा। इस समयको रासक्रीड़ाके लिये सर्वथा उपयुक्त जानकर श्रीकृष्णने व्रजसुन्दरियोंको मोहनेवाला

वेणुवादन प्रारम्भ कर दिया। सूरदासजीने इस लीलाका सरस वर्णन करते हुए लिखा है—

जबहिं बन मुरली स्त्रवन परी।
चकित भईं गोप कन्या सब, काम धाम बिसरी॥
कुल मर्जाद वेद की आज्ञा, नैकहुँ नहीं डरीं।
स्याम-सिन्धु सरिता-ललना-गन जलकी ढ़रनि ढरीं॥
अंग-मरदन करिबै कौं लागीं, उबटन तेल धरीं।
जो जिहिं भाँति चली सो तैसैहिं, निसि बन कौं जु खरीं॥
सुत, पति, नेह भवन जन संका, लज्जा नाहिं करीं।
सूरदास-प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरी॥

(सूरसागर १६१८)

मुरलीकी मधुर ध्वनिको सुनकर गोपियाँ चकित हो गयीं। उन्हें जब आभास हुआ कि आज शरद् पूर्णिमा है, प्रियतमसे मिलनकी रात है, वे सारा काम-काज बीचमें छोड़कर यमुनाके किनारे रासस्थल—वंशीवटकी ओर चलने लगती हैं। मध्य रात्रिके समय घर-परिवार, पति-पुत्र आदिको छोड़कर श्रीकृष्णसे मिलने जानेमें ये गोपियाँ कुलकी मर्यादा और वेदोंकी आज्ञासे भी विचलित नहीं हुईं। रासपंचाध्यायीमें वर्णन आया है—

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः॥
परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम्॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।५-६)

श्रीकृष्णद्वारा वेणुवादनके माध्यमसे आह्वान सुनते ही जो गोपियाँ दूध दुह रही थीं, उन्होंने बीचमें ही दुहना छोड़ दिया, जो चूल्हेपर दूध गरम कर रही थीं, उन्होंने उफनता हुआ ही छोड़ दिया, जो हलुवा पका रही थीं, उसे चूल्हेपर ही छोड़ा, कोई पति-पुत्रादिको भोजन परोस रही थी, कोई अपने अबोध बालकको स्तनपान करा रही थी, कोई अपने पतिकी चरणसेवा कर रही थी, वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और जो भोजन कर रही थीं, वे भोजन करना छोड़कर अपने प्यारे कृष्णके पास चल पड़ीं और कुछ गोपियाँ—

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।७)

—अपने शरीरपर केसर-चन्दन अथवा उबटन लगा रही थीं, कोई अपनी आँखें काजलसे सजा रही थी, कोई वस्त्र धारण कर रही थी, श्रीकृष्ण-मिलनकी उत्सुकतामें सबने अपने कार्य अधूरे ही छोड़ दिये। प्रेम-मतवाली गोपियाँ चल पड़ी हैं अपने प्रियतमसे मिलने। सूरदासजीने लिखा है—

चली बन बेनु सुनत सब धाई।
मातु पिता-बांधव अति त्रासत जाति कहाँ अकुलाई॥
सकुच नहीं, संका कछु नाहीं, रैनि कहाँ तुम जाति।
जननी कहत दई की घाली, काहे कौं इतराति॥
मानति नहीं और रिस पावति निकसी नातौ तोरि।
जैसे जल-प्रवाह भादौं कौं, सो को सकै बहोरि॥
ज्यौं कैंचुरी भुअंगम त्यागत, मात पिता यौं त्यागे।
सूर स्याम कैं हाथ बिकानी, अलि अंबुज अनुरागे॥

(सूरसागर १६२१)

पागलोंकी भाँति दौड़ती हुई इन गोपियोंको परिजनोंने रोकना चाहा, परंतु जैसे भादों मासमें बरसाती नदीका प्रवाह रोका नहीं जा सकता, उस समय जैसे नदीकी धारा सागरमें विलीन होनेको तटोंके बन्धन तोड़ देती है, उसी प्रकार ये गोपियाँ भी परिवारके सारे बन्धन तोड़ निर्भय होकर आधी रातके समय श्रीकृष्णसे मिलने रासस्थलपर पहुँच गयीं। योगेश्वर श्रीकृष्ण उनसे प्रश्न करने लगे—

मातु-पिता तुम्हरे धौं नाहीं।
बारम्बार कमल दल लोचन, यह कहि कहि पछिताहीं॥
उनकैं लाज नहीं, बन तुमकौं, आवत दीन्हीं राति।
सब सुन्दर, सबै नवजोवन, निठुर अहीरकी जाति।
की तुम कहि आई, की ऐसेहिं कीन्ही कैसी रीति।
सूर तुमहि यह नहीं बूझियै, करी बड़ी विपरीति॥

(सूरसागर १६३१)

री गोपियो! क्या तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं, जो तुम इस समय यहाँ चली आयीं और यदि वे हैं तो तुम्हारे यहाँ आनेके बारेमें क्या सोचेंगे? देखो, तुम सब सुन्दर हो, सयानी हो, क्या अहीर जातिमें युवा बहू-बेटियोंको रातमें भेजते समय लज्जा नहीं आती? यदि तुम्हारे परिजन यहाँ आनेके विषयमें अनभिज्ञ हैं, तो तुम्हारा यह आचरण वेद और कुलकी परम्पराके विपरीत है। तुमने मर्यादाविरुद्ध कार्य करके पाप किया है, अतएव उचित यही है कि तुम सब अभी और इसी समय अपने घरोंको लौट जाओ।

इतना सुनकर गोपियोंने विनयपूर्वक उत्तर दिया—

हे व्रजराज! हम गाँवकी गँवार अहीरनी अवश्य हैं, परंतु हम वेदकी मर्यादा, कुलकी रीति, परिजनोंके प्रति कर्तव्यबोध, नारीसुलभ लज्जा, रात्रिके समय घर त्यागकर वनमें अकेले पुरुषसे मिलनेका परिणाम भली प्रकार समझती हैं। हे श्यामसुन्दर! हम धर्म, लज्जा, पति तथा स्वजनादिका त्यागकर आपकी

चरणरज-प्राप्तिके लिये यहाँ आयी हैं, इस प्रकारके कटु वचन बोलकर हमें हमारे मार्गसे विचलित करनेकी चेष्टा न करो। हे स्वामी! हम दीन-हीनोंपर प्रसन्न होकर हमारी मनोकामना पूर्ण करो। सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीकृष्णने कहा—

किधौ जिहिं काज तप घोष नारी।
देहु फल हौं तुरत लेहु तुम अब घरी हरष चित करहु दुख देहु डारी॥
रस रच रचौं मिलि संग बिलसौ, सबै वस्त्र हरि कहि जो निगम बानी।
हंसत मुख मुख निरखि, वचन अमृत बरषि, कृपा रस भरे सारंग पानी॥
ब्रज जुवति चहुँ पास मध्य सुन्दर स्याम राधिका बाम अति छबि बिराजै।
सूर नव जलद तनु, सुभग स्यामल कांति, इंदु बहु पाँति बिच अधिक छाजै॥

(सूरसागर १६५३)

हे गोपियो! मैं तुम्हारी भावसाधनासे अति प्रसन्न हूँ। तुमने जिस फलकी प्राप्तिके लिये एकनिष्ठ भावसे मेरी आराधना की थी, मुझे पतिरूपमें प्राप्त करनेहेतु तुमने कठोर साधना की, अब मैं तुम्हें उसका फल दे रहा हूँ। आओ, मैं तुम्हारे कार्यसिद्धिहेतु रासकी रचना करता हूँ।

रासपंचाध्यायीमें इस लीलाका सरस वर्णन करते हुए लिखा है—

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम्।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।४५)

श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ यमुनाके परम रमणीय पुलिनपर पदार्पण किया। यह पुलिन यमुनाकी शीतल तरंगों और सुगन्धित वायुसे परिसेवित था। इस प्रकारके आनन्दप्रद पुलिनपर भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंके संग दिव्य महारास करने लगे। इस अवसरकी शोभाका वर्णन करते हुए सूरदासजीने लिखा है—

मानो माई घन घन अंतर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर, शोभित हरि-ब्रज भामिनि॥
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद-सुहाई-जामिनि।
सुंदर ससि गुन रूप-राग-निधि, अंग अंग अभिरामिनि॥
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भईं गुन ग्रामिनि।
रूप-निधान स्याम सुन्दर घन, आनंद मन बिस्त्रामिनि॥
खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक, भाइ-भेद गज गामिनि।
को गति गनै सूर मोहन संग, काम बिमोह्यौ कामिनि॥

(सूरसागर १६६६)

महारासका शुभारम्भ हुआ, इसमें श्रीकृष्ण और गोपियाँ बादल और बिजलीके समान सुशोभित हैं। रासमण्डलके मध्यमें श्रीराधाके संग श्रीकृष्ण नृत्यमुद्रामें खड़े हैं। इनके चारों ओर घेरा बनाकर गोपियाँ भगवान्‌के आदेशकी प्रतीक्षामें हैं। श्रीकृष्णका संकेत पाकर रासनृत्य प्रारम्भ हुआ। इस नृत्यकी गति इतनी तीव्र थी, ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो एक-एक गोपीके संग एक-एक कृष्ण नृत्य कर रहे हों। यमुनाकी शीतल जलधारा, शरद् पूर्णिमाकी शीतल चाँदनी और इस चाँदनीसे युक्त रात्रि—ऐसे मनोरम वातावरणमें रसिकशिरोमणि योगयोगेश्वर, महारासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने इन समस्त गोपियोंको अपने प्रेमका दान देकर उनकी युगों-युगोंकी मनोकामना पूर्ण कर दी।

गुड़िया और भिखारी

(श्रीरामबिहारीजी टण्डन)

इंग्लैण्डकी महारानी विक्टोरियाके बचपनकी घटना है—लन्दनकी एक दूकानपर उन्हें एक गुड़िया पसन्द आ गयी, परंतु जेबमें उस गुड़ियाके मूल्यके बराबर पैसे नहीं थे। विक्टोरियाने उस दिनके बाद कोई अन्य वस्तु नहीं खरीदी, ताकि गुड़िया खरीदनेलायक पैसे हो जायँ, वे अपना जेबखर्च प्रतिदिन जमा कर देतीं और एक दिन उनके पास गुड़ियाके मूल्यके बराबर धनराशि इकट्ठी हो गयी तो वे दूकानपर गयीं और गुड़िया खरीद ली।

बालिका गुड़ियाको हाथमें लेकर खुशीसे झूमती दूकानसे बाहर निकली, सड़कपर एक दीन-हीन भिखारी दिखायी पड़ा, उसने हाथ फैलाकर कहा—'मैं बहुत गरीब हूँ, मेरी मदद करो, ईश्वर तुमपर प्रसन्न होगा।'

विक्टोरियाके पास गुड़ियाके सिवा कुछ भी न था। वे लौटकर दूकानपर गयीं और बोलीं—'आज इस गुड़ियाको रहने दीजिये, फिर किसी दिन ले जाऊँगी, इस समय एक आवश्यक खर्च याद आ गया।'

दूकानदारने दाम लौटा दिये और गुड़िया रख ली। उन पैसोंको लेकर विक्टोरिया बाहर आयीं और उन्होंने सब पैसे भिखारीके हाथपर रख दिये। **[प्रेषिका—सुश्री सुधाजी टण्डन]**

वैदिक परम्परामें दानका महत्त्व

(स्वामी श्रीविवेकानन्दजी सरस्वती, कुलाध्यक्ष)

प्रकृति जब स्रष्टाकी सिसृक्षाके अनुसार अपनी साम्यावस्थाको छोड़कर कार्यरूपमें परिणत होती है, तब उसमें दो क्रियाएँ—सवन और हवन सतत रूपसे गतिशील बनी रहती हैं या उसे इस रूपमें कहा जा सकता है कि उन दोनों क्रियाओंके कारणसे ही सृष्टिका कार्यकलाप चलता रहता है। ये सवन और हवनकी क्रियाएँ ही प्रकृतिको गतिशील एवं सुव्यवस्थित बनाये हुए रहती हैं। वैदिक भाषामें जिसे सवन और हवन कहा जाता है, उसीको लौकिक भाषामें आदान-प्रदान, संग्रह-वितरण, संकोचन-प्रसारण आदि विविध शब्दोंसे अभिव्यक्त किया जाता है। जब प्रकृतिके नियन्ता परमात्माकी ही व्यवस्थामें ये दोनों क्रियाएँ शाश्वत रूपसे परिलक्षित होती हैं तो इनकी अपरिहार्यता, उपादेयता स्वतः सिद्ध हो जाती है और परमात्माकी ही यही व्यवस्था आगेके मानवजीवनकी व्यवस्थाओंमें अनुकरणीय एवं अपरिहेय बन जाती है; क्योंकि जब प्रकृति विषमावस्थामें होती है, तभी वह सृष्टिका रूप धारण करती है और उस विषमावस्थाकी* विविधतामें एक सामंजस्यपूर्ण ऐक्य बना रहे, इसके लिये कुछ व्यवस्थाएँ स्थापित की जाती हैं।

सृष्टिमें सभी मनुष्य बुद्धि, पराक्रम एवं साधनकी दृष्टिसे समान नहीं होते तो ऐसे विषम मनुष्योंके द्वारा कोई सामंजस्यपूर्ण कार्य कैसे हो? यह एक विचारणीय प्रश्न प्रत्येक मनीषी व्यक्तिको इस समस्याकी मीमांसाके लिये उद्वेलित करता है। वेदोंमें विशेष करके ऋग्वेदमें इस समस्याके समाधानके लिये एक बहुत सरल उपाय बताया गया है और वह उपाय 'धनान्नदानप्रशंसा' सूक्तके नामसे प्रसिद्ध है। यह ऋग्वेदके दशममण्डलका ११७वाँ सूक्त है, जिसमें कुल नौ मन्त्र हैं। इस सूक्तके पहले मन्त्रमें धनके अति आकर्षणसे दूर करते हुए कहा गया है कि यदि कोई यह समझता हो कि केवल भूखके कारणसे ही मृत्यु होती है तो उसका यह मानना सर्वथा मूर्खतापूर्ण है; क्योंकि जिनके पास बहुत धन है और जो दिनमें दो-चार बार ही नहीं, अपितु अपने इच्छानुसार जब चाहें तब भोजन कर सकते हैं, उनको भी मृत्युका ग्रास बनना ही पड़ता है। इसलिये जिनके पास खाने-पीने या जीवन-यापनके साधन नहीं, उनके लिये लोभ छोड़ करके मुक्तहस्तसे दान करना चाहिये। उससे उन दाताओंका धन कभी नष्ट नहीं होता, किंतु जो दान नहीं देते हैं, उन्हें कभी सुख प्राप्त नहीं होता। उनके सहायक मित्र भी नहीं होते। मन्त्र इस प्रकार है—

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते॥

(ऋक्० १०।११७।१)

आगेके मन्त्रमें भी कहा गया है कि दान न देनेवाला व्यक्ति औरोंके सम्मुख धनका भोग करते हुए भी सुखको प्राप्त नहीं करता। एक मन्त्रमें तो स्पष्ट ही कहा गया है—

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्॥

(ऋक्० १०।११७।४)

वह मित्र नहीं है, जो अपनी आवश्यकताके पात्र अपने मित्रको नहीं देता है। धनकी अस्थिरताको दिखाते हुए तथा दानके महत्त्वका प्रतिपादन करते हुए अगले मन्त्रमें कहा गया है—

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः॥

(ऋक्० १०।११७।५)

यह धन कभी किसीके पास स्थिर रहनेवाला नहीं

* कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् (सांख्यदर्शन ६।४१)।

है। इसलिये अपनी क्षमताके अनुसार पात्रताप्राप्त लोगोंके लिये दान करना ही चाहिये—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋक्० १०।११७।६)

जो व्यक्ति दूसरेको दान न देकर केवल स्वयं ही धनका उपभोग करता है, वह केवल पापरूप ही हो जाता है। इस सूक्तके अन्तमें जो मन्त्र आया है, वह दानके महत्त्व एवं दानकी आवश्यकताको प्रतिपादित करता है—

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः संमातरा चिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः॥

(ऋक्० १०।११७।९)

इस मन्त्रमें यह स्पष्ट कहा गया है कि दोनों हाथ समान होनेपर भी सभी मनुष्योंके अन्दर एक-जैसी पुरुषार्थकी शक्ति नहीं होती या एक-जैसी कार्य करनेकी क्षमता नहीं होती। एक माताकी समान बछड़ियाँ भी एकसमान दूध नहीं देतीं। युगल साथ जन्म लेनेवाले भाई भी पराक्रममें तुल्य नहीं होते और एक ही कुलमें उत्पन्न होनेवाले व्यक्ति भी समान रूपसे दान करनेवाले नहीं होते। इसलिये मनुष्यमात्रको इस विषमताको दूर करनेके लिये परस्पर दान तथा आदान-प्रदानकी व्यवस्थाके द्वारा विषमताको दूरकर समताका सामाजिक साम्राज्य स्थापित करना चाहिये और इसका एक सरल उपाय है, जो वेदमें अन्यत्र कहा गया है—

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।

(अथर्व० ३।३०।१)

सद्यःप्रसूता गौ जैसे अपने बछड़ेसे प्यार करती है, वैसे ही समाजके सभी लोग एक-दूसरेसे प्यार करें और जब इस स्नेहसूत्रमें बन्धनकी अनुभूति होगी तब दानकी भावना स्वतः प्रस्फुटित होगी। वैदिक युगके पश्चात् जब दानकी यह शाश्वत परम्परा कुछ क्षीण होने लगी तब उपनिषद्के एक आचार्यने दान देनेपर बल देते हुए या इसकी अनिवार्यताको प्रख्यापित करते हुए यहाँतक कहा—

श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्॥ (तैत्तिरीयोपनिषद् १।११)

अर्थात् जब दान देनेकी तुम्हारे अन्दर श्रद्धा न हो, तब भी तुम समाजके इस समतामूलक प्रवाहमें साधक बनकर लज्जासे ही सही दान करो और यदि लज्जा भी नहीं है, तो सामाजिक भयसे या ईश्वरके भयसे कि आज जो हमारे पास धन है, वह कभी नष्ट भी हो सकता है, इस भयसे भी तुम दान करो। जिस धनका तुमने अपने परिश्रमसे, पुरुषार्थसे उपार्जन किया है, उसमें आसक्त मत रहो। धनके प्रति आसक्ति, ममत्वको दूर करनेके लिये तथा अकिंचनोंके साथ बन्धुत्वभाव स्थापित करनेके लिये तुम दान दो। वेदकी दान-परम्पराकी उपदेशमालाको अग्रगामी बनाते हुए सामान्यजनोंको प्रेरित करनेके लिये दानके सम्बन्धमें अनेक आख्यानोंका सृजन हुआ और उनकी ऐतिहासिक दृष्टिसे पुष्टि भी हुई। कविगुरु कालिदासने तो कहा है—

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।

(रघुवंश ४।८६)

सज्जनोंका धन-संग्रह जलवर्षक मेघोंके तुल्य दूसरोंको प्रदान करनेके लिये होता है तथा **सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः** (रघुवंश १।१८)। भगवान् भास्कर सहस्रों गुना दान देनेके निमित्त ही जलको ग्रहण करते हैं। इस उपमाके द्वारा कविने उस वैदिक दानके उपदेशको ही अपने शब्दोंमें वर्णित किया है।

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेद् रुशतीं पापलोक्याम्॥
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्या वा मर्मसु ये पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु॥

दूसरोंके मर्मपर आघात न करे। क्रूरतापूर्ण बात न बोले, औरोंको नीचा न दिखाये। जिसके कहनेसे दूसरोंको उद्वेग होता हो, वह रुखाईसे भरी हुई बात पापियोंके लोकमें ले जानेवाली होती है। अतः वैसी बात कभी न बोले। वचनरूपी बाण मुँहसे निकलते हैं, जिनसे आहत होकर मनुष्य रात-दिन शोकमें पड़ा रहता है। अतः जो दूसरोंके मर्मस्थानोंपर चोट करते हैं, ऐसे वचन विद्वान् पुरुष दूसरोंके प्रति कभी न कहे। (महा०अनु०)

वेद-पुराणोंमें अन्न-जलदानका माहात्म्य

(श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी, रत्नमालीय, एम०ए० द्वय, बी०एड०, पी-एच०डी०)

सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम्।
सद्यः प्रीतिकरं हृद्यं बलबुद्धिविवर्धनम्॥
अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति।
(शि०पु०, उ०सं० ११।१७, २९)

दद्यादहरहस्त्वन्नं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे।
(कू०पु०, उ०वि० २६।१७)

अन्नस्य हि प्रदानेन नरो याति परां गतिम्।
सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम्॥
(ब्रह्मपुराण)

पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा।
सर्वेषां जीवपुञ्जानां तर्पणं जीवनं स्मृतम्॥
(शि०पु०, उ०सं० १२।१)

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षयमन्नदः।
(कू०पु०, उ०वि० २६।४४)

उपर्युक्त वचनोंका आशय है—अन्नदान सभी दानोंमें श्रेष्ठ है। यह तत्काल तृप्त करनेवाला, मनको प्रिय लगनेवाला, बल और बुद्धिको बढ़ानेवाला है। अन्नके समान न तो कोई दान हुआ है और न होगा। श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचारीको प्रतिदिन अन्न देना चाहिये। अन्नदानसे मनुष्यको परमगति प्राप्त होती है। उसे इस लोक और परलोकमें सुखप्राप्ति होती है। जलदान सभी दानोंमें उत्तम है। यह समस्त जीवसमूह, चराचरको तृप्त करनेवाला है, जीवनदायी है। जल देनेवालेको तृप्ति और अन्न देनेवालेको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है।

भौतिक जगत्के सभी जीवनीय पदार्थोंमें अन्न और जलका सर्वाधिक महत्त्व है। ये ही पृथ्वीके वास्तविक रत्न हैं—**'पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।'** अतः सभी सक्षम मानवोंको इनका दान करना ही चाहिये। इनके दानसे मनुष्योंके साथ-साथ देवता, असुर, यक्ष, किन्नर, नाग, पितर, गन्धर्व, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष, लता, वनस्पति सबको संतृप्ति मिलती है। पितरोंके निमित्त दिये जानेवाले पिण्डदान, जलदान, देवताओंके निमित्त दिये जानेवाले आहुति और अर्घ्यदान, श्वान-बलि, गोबलि, काकबलिके पवित्र विधानमें यही रहस्य छिपा है। भूखे-प्यासे, थके-माँदे मनुष्योंकी तृप्ति तो अन्न-जलदानके बिना हो ही नहीं सकती। अतः अन्नदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सद्यः फलप्रद है। वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, स्मृतिग्रन्थ, साहित्यके विविध ग्रन्थोंमें इसका विस्तृत विवरण पाया जाता है। प्रायः सभी आर्षग्रन्थोंमें अन्नकी महिमा समझाते हुए अन्नोत्पादन, अन्न-संवर्धन, अन्न-संरक्षण एवं उसके मङ्गलमय वितरणका सत्परामर्श दिया गया है। आनर्त्तनरेश 'वसुषेण', विदर्भनरेश 'श्वेत' और राजा 'विनीताश्व' (स्कन्दपुराण-नागरखण्ड, भविष्यपुराण-उत्तरपर्व)-के आख्यान अक्षय आलोक दीपकी तरह हैं।

अन्न-माहात्म्य

(क) **अन्नं वै प्रजापतिः।** (प्रश्नोपनिषद् १।१४)

(ख) **अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।** (तैत्तिरीयोपनिषद् ३।२।१)

(ग) **अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीः श्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति।"" अन्नः हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते।** (तैत्तिरीयोपनिषद् २।२।१)

(घ) **अन्नं न परिचक्षीत। तद् व्रतम्। अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम्।** (तैत्तिरीयोपनिषद् ३।८।१, ३।९।१)

अन्नके वितरणका आदेश

(क) **मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।"" केवलाघो भवति केवलादी** (ऋक्० १०।११७।६)

(ख) **यावद् भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम्।**
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥
(श्रीमद्भागवत)

अन्न ही प्रजापति है। अन्नसे उद्भूत रज-वीर्यसे

प्राणियोंका जन्म होता है। भृगुमुनिने दीर्घ तपस्यापूर्वक यह अनुभव किया कि अन्न ही ब्रह्म है। ये सभी जीव अन्नसे ही उत्पन्न होते हैं। अन्न खाकर ही जीवित रहते हैं। अन्तमें वे संसारसे विदा होकर अन्नमें ही अनुप्रविष्ट हो जाते हैं। पृथ्वीपर जितने प्राणी हैं, वे अन्नसे ही उत्पन्न होकर, उसे खाकर ही जीवित रहते हैं। मरणोपरान्त भी वे अन्नमें ही लीन हो जाते हैं। इसलिये अन्न सबसे महत्त्वपूर्ण है, वह सर्वौषध कहा जाता है। अन्नकी निन्दा न करना और अधिकाधिक अन्न उपजाना व्रतस्वरूप है।

अन्नकी सार्थकता क्षुधितोंके भरण-पोषणमें ही है। जितने अन्नसे मनुष्यकी क्षुधापूर्ति हो जाय, उतनेपर ही उसका न्यायपूर्ण अधिकार है। उससे अधिक जो संग्रह कर रखता है, वह चोर है और दण्डका अधिकारी है, सामाजिक निन्दाका पात्र है।

पुराण-साहित्यमें अन्न-जलदानका विशद विवेचन—भारतीय संस्कृतिके अक्षय कोष 'पुराण' उदात्त जीवन-मूल्योंके पिटारेकी तरह हैं। इनमें स्थल-स्थलपर अन्न-जलदानका महत्त्व उपदेश-वाक्यों एवं आख्यान-परम्पराके माध्यमसे समझाया गया है, जिसका संक्षिप्त निदर्शन यहाँ प्रस्तुत है—

शिवपुराण—

नान्नदानसमं दानं विद्यते मुनिसत्तम।
अन्नाद् भवन्ति भूतानि तदभावे म्रियन्ति च॥
अतएव महत्पुण्यमन्नदाने प्रकीर्तितम्।
तथा क्षुधाग्निना तप्ता म्रियन्ते सर्वदेहिनः॥
अन्नमेव प्रशंसन्ति सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।
अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति॥
अन्नेन धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं मुने।
अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणा ह्यन्ने प्रतिष्ठिताः॥

[सनत्कुमारजी कहते हैं—] हे मुनीश्वर व्यास! अन्नदानके समान कोई दान नहीं है, क्योंकि अन्नसे ही सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्नके अभावमें मर जाते हैं। इसके दानसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है। अन्नमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। अन्नके समान न तो कोई दान हुआ है, न होगा। यह सम्पूर्ण जगत् अन्नसे ही धारण किया जाता है। लोकमें अन्नको बलकारक बतलाया गया है, क्योंकि अन्नमें ही प्राण प्रतिष्ठित हैं। (शिवपुराण, उ०सं० ११। १८, २४, २९-३०)

अग्निपुराण—

अन्नदानात् परं नास्ति न भूतं न भविष्यति।
हस्त्यश्वरथदानानि दासीदासगृहाणि च॥
अन्नदानस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
कृत्वापि सुमहत्पापं यः पश्चादन्नदो भवेत्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोति चाक्षयान्।
पानीयं च प्रपां दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्॥

(अग्निपुराण २११। ४४—४६)

अन्नदानसे श्रेष्ठ कुछ नहीं है, न होगा। हाथी-घोड़े, रथ, गृह, दासी-दासके दान अन्नदानकी सोलहवीं कलाके समान पुण्यप्रद और प्रसन्नता प्रदान करनेवाले नहीं हैं। महान् पाप करनेवाला भी अन्नदान करनेसे सभी पापोंसे मुक्त होकर अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है। पानी दान करनेवाले, पौसरा चलानेवाले प्राणी भी उत्तम लोकोंको प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मपुराण—इसमें सब दानोंमें अन्नदानको श्रेष्ठ बतलाया गया है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह सरलतापूर्वक सब प्रकारके अन्नोंका दान करे। अन्न ही मनुष्योंका जीवन है। उसीसे जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति होती है। अन्नमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं। अतः अन्नको श्रेष्ठ बताया जाता है। देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं। अन्नदानसे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। स्वाध्यायशील ब्राह्मणोंके लिये न्यायोपार्जित उत्तम अन्नका प्रसन्न मनसे दान करना चाहिये। जिसके प्रसन्नचित्तसे दिये अन्नको दस ब्राह्मण भोजन कर लेते हैं, वह कभी पशु-पक्षीकी योनिमें नहीं पड़ता। सदा पापोंमें संलग्न रहनेवाला मनुष्य भी यदि दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन करा दे तो वह अधर्मसे मुक्त हो जाता है। जो गृहस्थ प्राणाग्निहोत्रपूर्वक अन्न-भोजन करता है, वह प्रत्येक दिनको सफल बनाता है। जो मनुष्य वेद, न्याय, धर्म और इतिहासके ज्ञाता सौ विद्वानोंको

प्रतिदिन भोजन कराता है, वह घोर नरकमें नहीं पड़ता और संसार-बन्धनमें भी नहीं बँधता। अन्यायरहित अन्नका ही दान करना चाहिये।

कूर्मपुराण—

दद्यादहरहस्त्वन्नं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणः स्थानमाप्नुयात्॥
गृहस्थायान्नदानेन फलं प्राप्नोति मानवः।
आममेवास्य दातव्यं दत्त्वाप्नोति परां गतिम्॥

ब्रह्मचारीको प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अन्नदान करना चाहिये। इससे दाता सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। गृहस्थ ब्राह्मणको अन्नदान करनेसे मनुष्य महान् फल प्राप्त करता है। उसे आमान्न (अपक्व) ही देना चाहिये। (कूर्मपुराण, उ०वि० २६। १७-१८)

वराहपुराण—अन्नका दान करनेसे मनुष्य स्मरण-शक्ति और बुद्धिसे सम्पन्न होता है। प्राणियोंको जल पिलानेसे पुरुष सदा तृप्त रहता है। अन्न और जल दोनोंका दान करनेसे प्राणियोंकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। खिचड़ी दान करनेसे सौभाग्य और कोमलताकी प्राप्ति होती है। खीरदान करनेवाले व्यक्तिका शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। (वराहपुराण अ० २०६)

वामनपुराण—

दासीदासमलङ्कारमन्नं षड्रससंयुतम्।
पुरुषोत्तमस्य तुष्ट्यर्थं प्रदेयं सार्वकालिकम्॥

(९४। ३६)

पुरुषोत्तमकी सन्तुष्टिके लिये सभी समय दासी, दास, आभूषण और मधुरादि षड्रसयुक्त अन्नका दान करना चाहिये। घृतसे संस्कृत जौ, गेहूँ, शालिधान्य, तिल, मूँग, उड़द आदि अन्न हरिको प्रिय हैं—**'हविषा संस्कृता ये तु यवगोधूमशालयः। तिलमुद्गादयो माषा प्रीतये मधुघातिनः॥'** (वामनपु० ९४। २२)

मत्स्यपुराण—

अन्नः ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते॥
अन्नमेव ततो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः।
धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम॥

हे पर्वतश्रेष्ठ! अन्नको ही ब्रह्म कहा जाता है, क्योंकि अन्नमें प्राणियोंके प्राण प्रतिष्ठित हैं। अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्नसे जगत् वर्तमान है। अतः अन्न ही लक्ष्मी है, अन्न ही भगवान् जनार्दन है। इसलिये धान्य-शैलके रूपसे तुम मेरी रक्षा करो। (म०पु० ८३। ४२-४३)

पद्मपुराण—महादेवजीने कहा—हे देवर्षिप्रवर नारद! सुनो, लोकमें सज्जन पुरुष अन्नदानकी ही प्रशंसा करते हैं, क्योंकि सब कुछ अन्नमें ही प्रतिष्ठित है। अतएव साधु-महात्मा विशेषरूपसे अन्नका ही दान करना चाहते हैं। यह चराचर जगत् अन्नपर ही टिका है। लोकमें अन्न ही बलवर्धक है। अन्नमें ही प्राणोंकी स्थिति है, अतः कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषको उचित है कि वह भिक्षा माँगनेवाले महात्मा ब्राह्मणको अवश्य दान दे। थके-माँदे अपरिचित राहगीरको जो बिना क्लेशके अन्न देता है, वह सब धर्मोंका फल प्राप्त करता है। अतिथिकी न तो निन्दा करे और न उससे द्रोह ही रखे। (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

अन्नदाताको अभीष्ट सम्पत्ति और गोदान करनेवालेको सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। जो वेदविद्याविशिष्ट ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार अन्न देता है, वह मृत्युके पश्चात् स्वर्गका सुख भोगता है। गौओंको अन्न देनेसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। (पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड)

कुटुम्बको भोजन और वस्त्र देनेके बाद जो शेष रहे, उसीका दान करना चाहिये, अन्यथा कुटुम्बका भरण-पोषण किये बिना जो कुछ दिया जाता है, वह दान दानका फल देनेवाला नहीं होता। वैशाखमासकी पूर्णिमाको धर्मराजके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको घी और अन्न-सहित जलका घड़ा दान करनेवाला भयसे छुटकारा पा जाता है। (पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड)

भविष्यपुराण—प्राणियोंके लिये अन्नसे बढ़कर कोई पदार्थ नहीं। अन्न जीवोंका प्राण है। अन्न ही तेज, बल, सुख है। भूखा व्यक्ति जिस व्यक्तिके घर आशा लेकर जाता है और उसके यहाँसे सन्तुष्ट होकर आता है तो भोजन देनेवाला धन्य हो जाता है। उसके समान पुण्यकर्मा अन्य कौन होगा? अन्नसे बढ़कर कोई संजीवनी नहीं।

अन्नको ही अमृत जानना चाहिये। सत्यसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं, सन्तोषसे बड़ा कोई सुख नहीं और अन्नदानसे बढ़कर कोई दान नहीं। (अ० १६९)

स्कन्दपुराण—देवता, पितर और मनुष्योंको देकर खानेवाला मनुष्य अमृत-भोजन करता है। जो केवल अपना पेट भरनेवाला है और अपने लिये रसोई बनाता है, वह पापमय भोजन करता है—

पितृदेवमनुष्येभ्यो दत्त्वाश्नात्यमृतं गृही।
स्वार्थं पचन्नघं भुङ्क्ते केवलं स्वोदरम्भरिः॥
(स्कन्दपु०, का०पू० ३८। ३७)

विद्वान् और विनयशील वेदज्ञ ब्राह्मण जब घरपर आता है तो घरके अन्न हर्षसे उछलने लगते हैं कि अब हम उत्तम गतिको प्राप्त होंगे। गृहस्थ पुरुष दीनों, अन्धों, दरिद्रोंको विशेषरूपसे अन्नदानकर गृह-कर्मोंका अनुष्ठान करता रहे तो वह कल्याणका भागी होता है। बलिवैश्वदेव, होम, देवपूजा करनेवाले वेदपाठी ब्राह्मणका अन्न अमृत कहा गया है।

गरुडपुराण—भूमि, दीप, अन्न, वस्त्र और घी प्रदान करनेसे प्रदाता लक्ष्मी प्राप्त करता है। घर, धान्य, छाता, माला, जल, शय्या, यान प्रदान करनेसे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। '**भूदीपांश्चान्नवस्त्राणि सर्पिर्दत्त्वा व्रजेच्छ्रियम्।**' (गरुडपुराण ९८)

तिला लोहं हिरण्यं च कर्पासं लवणं तथा।
सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥
एतान्यष्टौ महादानान्युत्तमाय द्विजातये।
(ग०पु० २। ४। ७-८)

तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, भूमि और गौ—ये पापसे शुद्धिके लिये पवित्रतामें एक-से-एक बढ़कर हैं। इन आठ दानोंको महादान कहा जाता है। इन्हें उत्तम प्रकृतिवाले ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इस महापुराणका स्पष्ट उद्घोष है—**दानमेव परो धर्मो दानात्सर्वमवाप्यते।** दान ही परम धर्म है। इससे सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं। (ग०पु० २२१। ४)

नारदीय पुराण—(धर्मराज-भगीरथ-संवाद)—हे नरेश! अन्न और जलके समान न तो कोई दूसरा दान हुआ है न होगा। अन्नदान करनेवाला प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है, वह सब कुछ देनेवाला है। जलदान तत्काल सन्तुष्ट कर देनेवाला है। नृपश्रेष्ठ! इसलिये ब्रह्मवादी मनुष्योंने जलदानको अन्नदानसे श्रेष्ठ माना है।

शिवपुराण, पद्मपुराण, नारदपुराण, मत्स्यपुराणमें स्थायीरूपसे जलदानके परम्परागत स्रोतों—कुएँ, बावली, तडाग आदि खुदवानेके महत्त्वका प्रतिपादन सुन्दर ढंगसे हुआ है—

जलदान सदा सब दानोंमें श्रेष्ठ है। इसलिये बावली, कुआँ और पोखरा बनवाना चाहिये। जिसके खोदे गये जलाशयमें गौ, ब्राह्मण और साधु पुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने कुलको तार देता है। हे नारद! जिसके पोखरेमें गर्मीके समयतक पानी टिकता है, वह कभी दुर्गम और विकट संकटका सामना नहीं करता। पोखरा बनवानेवाला तीनों लोकोंमें सर्वत्र सम्मानित होता है। मनीषी धर्म, अर्थ और कामका यही फल मानते हैं कि अपनी भूमिमें पोखरा बनाया जाय। (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

जलाशयका निर्माण इस लोकमें और परलोकमें भी महान् आनन्दकी प्राप्ति करानेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह कुआँ, बावली और तालाब बनवाये। कुएँमें जब पानी निकल आता है, तो वह पुरुषके समस्त पापोंको हर लेता है, जिसके खुदवाये जलाशयमें गौ, ब्राह्मण तथा साधु सदा पानी पीते हैं, वह अपने वंशका उद्धार कर देता है। जिसके जलाशयमें गर्मीके मौसममें अनिवार्य रूपसे जल टिका रहता है, वह कभी दुर्गम तथा विषम संकटमें नहीं पड़ता। (शिवपुराण, उमा० १२। २—६)

दान-दोहावली

(श्रीयुगलकिशोरजी शर्मा)

सभी मनुज के पास है प्रभु का दिया शरीर। जिसमें देही वास कर होता नहीं अधीर॥
शुचिता वैभव दान धर करे धर्म पुरुषार्थ। मानव जीवन मिला है करने को परमार्थ॥
रत्न निकाले अनवरत होकर गोताखोर। करे दान उस रत्न का बारंबार बटोर॥
पावनतम सद्दान से चुके न नर अविराम। परम भक्ति के दान से बढ़े भक्त निष्काम॥
संत मात्र सत्संग का देते अविरल दान। उनके परम सुयोग से होते नित उत्थान॥

उपनिषदोंमें दानका स्वरूप

(श्रीबद्रीनारायणसिंहजी, एम० ए०)

विश्वके समस्त मानव-समाजको नव चेतना देकर आत्यन्तिक शान्ति प्रदान करनेका श्रेय 'औपनिषद-सिद्धान्त' को है। जगन्नियन्ता ईश्वरके ज्ञानके अतिरिक्त आध्यात्मिक, वैचारिक और पारमार्थिक तत्त्वोंका निरूपण और नियमन उपनिषदोंका प्रतिपाद्य विषय है। औपनिषद-दर्शन ही सम्यग्दर्शन है, जिसके प्रसादसे भवभयका निरसन होकर आत्यन्तिक आनन्दकी प्राप्ति होती है। इस विशुद्ध दृष्टिको प्राप्त कर लेना ही मनुष्यजीवनका परम उद्देश्य है।

मानवमात्रके आध्यात्मिक उत्थानहेतु उपनिषदोंमें सूत्रवत् निर्देश दिये गये हैं। यों तो 'दान' की महिमाका वर्णन अनेकानेक धर्मग्रन्थों, पुराणों और आख्यानोंमें मिलता है, परंतु उपनिषद्के कुछ उदाहरण ऐसे हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि हमारे ऋषियों और मुनियोंने कितना उच्च आदर्श उपस्थित किया है।

बृहदारण्यकोपनिषद्के पंचम अध्यायके द्वितीय ब्राह्मणमें 'द-द-द' से दम, दान और दयाका उपदेश करनेका बड़ा ही संक्षिप्त परंतु सारगर्भित वर्णन मिलता है। प्रजापतिके तीन पुत्रों 'देव', 'मनुष्य' और 'असुर' ने पिताके पास जाकर उपदिष्ट होनेकी प्रार्थना की। पिताने देवोंसे 'द' यह अक्षर कहा और पूछा 'समझ गये क्या?' देवोंने उत्तर दिया 'हाँ, आपने हमसे 'दमन करो' ऐसा कहा है।' प्रजापतिने उसका अनुमोदन करते हुए कहा, 'ठीक है, तुम समझ गये।'

इसी प्रकार मनुष्योंसे भी प्रजापतिने 'द' अक्षर ही कहा और पूछा 'समझ गये क्या?' मनुष्योंने उत्तर दिया 'हाँ, समझ गये। आपने हमसे 'दान करो—ऐसा कहा है।' प्रजापतिने इसका अनुमोदन किया।

प्रजापतिने तत्पश्चात् असुरोंसे भी 'द' कहकर पूछा और उत्तर मिला 'हाँ, समझ गये। आपने हमसे 'दया करो ऐसा कहा है।' प्रजापतिने इस उत्तरको भी स्वीकार किया।

इस प्रकार प्रजापतिका उद्घोष और अनुशासनकी मेघगर्जना आज भी 'द-द-द' का इस प्रकार अनुवाद करती है अर्थात् भोगप्रधान देवो! इन्द्रियोंका दमन करो। संग्रहप्रधान मनुष्यो! भोग-सामग्रीका दान करो। क्रोध, हिंसा-प्रधान असुरो! जीवोंपर दया करो।

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि प्रजापतिने मनुष्योंको 'संग्रह-प्रधान' शब्दसे उद्बोधित किया और संग्रह की गयी वस्तुओंके दानका ही अनुशासन किया। आज इस कलिकालमें विषय-भोगोंमें अनुरक्त मनुष्य अपनी संग्रहप्रवृत्तिको नहीं छोड़ता, ऐसा कहा गया है—

न ददाति च नाश्नाति धनं रक्षति जीववत्।
प्रातरस्मरणीयत्वात् कृपणः कस्य नाप्रियः॥

अर्थात् कृपण मनुष्य न तो देता है और न उसका भोग ही करता है, अपितु धनकी रक्षा उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार प्राणी अपने जीवकी रक्षा करता है। ऐसे कृपणका नाम प्रातःकाल कोई लेना नहीं चाहता और किसीके द्वारा प्रिय नहीं कहा जाता। कहा गया है 'धनकी तीन गतियाँ होती हैं। प्रथम और श्रेष्ठतम गति 'दान' ही है।'

कठोपनिषद्में दानके विषयमें एक अत्यन्त रोचक एवं आदर्श आख्यान आता है। गौतम-वंशीय वाजश्रवा ऋषिके पुत्र अरुणके पुत्र उद्दालक ऋषिने 'विश्वजित्' नामक एक महान् यज्ञ किया। इस यज्ञके नियमानुसार अपना सर्वस्वदान करनेका विधान है। फलतः ऋषिने भी अपना सारा धन ऋत्विजों और सदस्योंको दक्षिणामें दे दिया। उद्दालक ऋषिका नचिकेता नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र था। उस कालमें 'गोधन' ही प्रधान धन था और वाज-श्रवस् (वाज—अन्न, श्रव—उसके दानसे प्राप्त यश) उद्दालकके घरमें 'गोधन' की प्रचुरता थी। जिस समय ऋत्विजोंको देनेके लिये गौएँ लायी जा रही थीं, उस समय नचिकेताने उन्हें देख लिया। उन गायोंकी दयनीय दशा देखकर नचिकेता विचलित हो गया। पितासे उसने कहा—'पिताजी! दान तो उसी वस्तुका करना चाहिये, जो अपनेको सुख देनेवाली हो, प्रिय हो और उपयोगी हो तथा जिनको दी जाय उन्हें भी सुख और लाभ पहुँचानेवाली हो। दुःखदायिनी और अनुपयोगी वस्तुओंको दानके नामपर देना तो दानके बहाने अपनी विपत्ति टालना है और

दानग्रहीताको धोखा देने-जैसा है।' नचिकेताने इस प्रकारके दानके वैगुण्य और उसके निम्नस्तरीय 'यज्ञ-फल' का वर्णन करके पिताको समझानेकी चेष्टा की।

इस आख्यानका तात्पर्य केवल इतना ही द्रष्टव्य है कि नचिकेताद्वारा यह बताया गया है कि दानका स्वरूप किस प्रकारका होना चाहिये। दाता देते समय यह भाव मनमें न लाये कि मैं जो कुछ दे रहा हूँ, उसके फलस्वरूप मैं महान् हो जाऊँगा, ऐसा भाव मनमें आते ही वह निकृष्ट फलका भागी होता है। तैत्तिरीयोपनिषद्के एकादश अनुवाकमें शिष्यकी शिक्षा पूर्ण होनेपर गुरु जो दीक्षास्वरूप ज्ञानोपदेश देता है, इसका सविस्तार वर्णन हुआ है। गृहस्थ-जीवनमें प्रवेशके पश्चात् शिष्यका जैसा आचरण होना चाहिये, इसका पूर्ण अनुशासन इस अनुवाकका उद्देश्य है। इसमें अन्य बातोंके अतिरिक्त दान देनेके विषयमें कहा गया है—

'श्रद्धया देयम्।' अर्थात् श्रद्धापूर्वक देना चाहिये।

'अश्रद्धयादेयम्' बिना श्रद्धाके दान नहीं देना चाहिये।

'श्रिया देयम्।' अपनी आर्थिक स्थितिके अनुसार देना चाहिये।

'ह्रिया देयम्। भिया देयम्।' लज्जासे और भयसे भी देना चाहिये।

'संविदा देयम्।' जो कुछ भी दिया जाय, वह विवेकपूर्वक दिया जाय।

बृहदारण्यकोपनिषद्में जनक और याज्ञवल्क्यका संवाद भी प्रेक्षणीय है। प्रश्न करते और उसका उत्तर प्राप्त करते हुए अन्तमें जनकजीने याज्ञवल्क्यजीसे कहा—'मैं आपको हाथीके समान हृष्ट-पुष्ट बैल उत्पन्न करनेवाली एकसहस्र गौएँ देता हूँ।' ऋषिने कहा 'मेरे पिताका विचार था कि शिष्यको उपदेशद्वारा कृतार्थ किये बिना उसका धन नहीं लेना चाहिये।' उन्होंने दक्षिणा नहीं ली। दान देनेवाले और लेनेवालेका यह अनुपम एवं अनुकरणीय दृष्टान्त है।

मत्स्यपुराणमें वर्णित विविध दान

(श्रीमहेशप्रसादजी पाठक, एम०एस-सी०)

भारतवर्ष दानवीरोंकी भूमि है। यहाँ रन्तिदेव, दधीचि, शिबि, कर्ण आदि अनेक दानवीर हुए हैं। लोकमें दानशील व्यक्तिकी सदा-सर्वदा प्रतिष्ठा होती है। दानपरायण व्यक्ति केवल भूलोकको ही नहीं, अपितु दुर्जय देवराज इन्द्रके लोक—जहाँ देवताओंका वास है, को भी जीत लेते हैं। दानसे देवताओंतकको प्रसन्न एवं स्वाधीन किया जा सकता है। **'दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्'** (मत्स्यपुराण २२४। २) इसे नित्यकर्मके अन्तर्गत परिगणित किया गया है। श्रद्धासे दिया गया दान ही उत्तम, श्रेष्ठ एवं सात्त्विक कहलाता है। सत्साहित्यमें दानकी महत्ताका विशद वर्णन मिलता है। महर्षि वेदव्यासजीने पुराणोंमें दानके विस्तृत रूपको समाविष्ट किया है। दान-धर्मकी दृष्टिसे मत्स्यपुराणका विवरण बड़ा ही उपयोगी है। मत्स्यपुराणमें २९१ अध्याय और चौदह हजार श्लोक हैं, जिनमेंसे लगभग ३० अध्यायोंमें दानका विस्तारसे वर्णन हुआ है।

दाननीतिकी प्रशंसामें स्वयं श्रीमत्स्यभगवान् कहते हैं कि दान सभी उपायोंमें सर्वश्रेष्ठ है—

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्।

(मत्स्यपुराण २२४। १)

श्रीमत्स्यभगवान् स्वयं दानस्वरूप हैं, दान देते समय स्वयं उपस्थित होकर दाताका कल्याण करते हैं। श्रीमत्स्यपुराणमें स्वयं भगवान् मत्स्यने मनुजीसे विविध दानोंका वर्णन किया है।

धेनुदान—मत्स्यपुराणमें बताया गया है कि गुड़धेनु, घृतधेनु, तिलधेनु, जलधेनु, क्षीरधेनु, मधुधेनु, शर्कराधेनु, दधिधेनु, रसधेनु एवं दसवीं प्रत्यक्षतः धेनुका श्रद्धापूर्वक विधि-विधानसे मन्त्रोच्चारसहित दान करना चाहिये।

उभयतोमुखी धेनुका दान—इस दानमें गौओंके सींग स्वर्णजटित हों, खुर चाँदीसे मढ़े गये हों, पूँछ मोतियोंसे सुशोभित हो, ऐसी सवत्सा गौका दान करनेवाला युगों-युगोंतक देवलोकमें पूजित होता है। ब्याती हुई ऐसी गाय जिसके बछड़ेका मुख ही बाहर रहता है, उभयतो-

मुखी धेनु कही जाती है। इस प्रकारकी गाय वन-पर्वतोंसहित पृथ्वीका स्वरूप मानी जाती है और उसका दान पृथ्वीदानके समतुल्य माना जाता है। इस प्रकारका दान करनेवालेको गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाते हैं (मत्स्यपुराण २०५।१—९)।

गुडधेनुदान—मत्स्यपुराणमें गुडधेनुदानकी भी महिमा आयी है। उत्तरायण अथवा दक्षिणायनमें, पुण्यप्रद विषुवयोग, व्यतीपातयोग अथवा चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहणके साथ ही अन्य पर्वोंपर भी गुडधेनुदान करना चाहिये। इससे दाता एक कल्पतक देवताओंद्वारा पूजित होता है। चार भार (दो हजार पल अर्थात् तीन मन वजनका एक भार होता है) गुडकी बनी धेनुके साथ एक भार गुडका बना बछड़ा पूजित कर दान करना चाहिये (मत्स्यपुराण अध्याय ८२)।

गौओंके दानसे पूर्व उनकी निम्न प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु॥
देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः।
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये॥
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च।
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे॥
स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां च या।
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥

(मत्स्यपुराण ८२।११—१५)

जो समस्त प्राणियों तथा देवताओंमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, धेनुरूपसे वही देवी मुझे शान्ति प्रदान करें। जो सदा शंकरजीके वामांगमें विराजमान रहती हैं तथा उनकी प्रिय पत्नी हैं, वे रुद्राणीदेवी धेनुरूपसे मेरे पापोंका विनाश करें। जो लक्ष्मी विष्णुके वक्षःस्थलपर विराजमान हैं, जो स्वाहारूपसे अग्निकी पत्नी हैं तथा जो चन्द्र, सूर्य और इन्द्रकी शक्तिरूपा हैं, वे ही धेनुरूपसे मेरे लिये सम्पत्तिदायिनी हों। जो ब्रह्माकी लक्ष्मी हैं, जो कुबेरकी लक्ष्मी हैं तथा जो लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुरूपसे मेरे लिये वरदायिनी हों। जो लक्ष्मी प्रधान पितरोंके लिये स्वधारूपा हैं, जो यज्ञभोजी अग्नियोंके लिये स्वाहारूपा हैं, समस्त पापोंको हरनेवाली वे ही धेनुरूपा हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान करें।

वृषोत्सर्ग—जिस वृषभके शरीरमें शक्ति, ध्वज, पताकाओंकी रेखाएँ बनी हों, सिर और कन्धे समुन्नत हों, नेत्र लाल हों, उसका प्रयत्नपूर्वक उत्सर्ग करना चाहिये। जिस वृषभके चारों चरण, मुख तथा पूँछ श्वेत हों, परंतु शेष शरीरका रंग लाहरसके समान हो, उसे नील वृषभ कहते हैं—

चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः।
लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत्॥

(मत्स्यपुराण २०७।३८)

ऐसे वृषभका उत्सर्ग महान् फलदायी एवं मोक्षकारक होता है। श्राद्धादि कर्मोंमें नील वृषभके दानकी बड़ी महिमा है। इसका दान पितरोंको बहुत प्रिय है, इस विषयमें एक गाथा बड़ी प्रसिद्ध है—

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
गौरीं चाप्युद्वहेत् कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥

(मत्स्यपुराण २०७।४०)

अर्थात् बहुतसे पुत्रोंकी कामना करनी चाहिये; क्योंकि उनमेंसे कोई भी तो गयाकी यात्रा करेगा या गौरी कन्याका दान करेगा या नील वृषभका उत्सर्ग करेगा।

मत्स्यपुराणमें दानोंकी विविध शृंखलाओंका विस्तृत विवरण मिलता है। इन्हींमें पर्वतदानका भी वर्णन मिलता है, जो अनन्त पुण्यदायी है। पर्वतदानका क्रम इस प्रकार है—धान्यशैल, लवणाचल, गुडाचल, हेमपर्वत, तिलशैल, कार्पासपर्वत, घृतशैल, रत्नशैल, रजतशैल एवं शर्कराचल (मत्स्यपुराण ८३।४—६)। इन पदार्थोंसे पर्वत विधिसे बनाकर उसका दान किया जाता है।

इन पर्वतोंका दान शास्त्रोक्त शुभ तिथिमें करना चाहिये। कुछका वर्णन इस प्रकार है—

लवणाचल—लवण (नमक) सौभाग्य-सरोवरसे प्रादुर्भूत हुआ है और खाद्य-पदार्थ इसके बिना स्वादिष्ट नहीं बनते, अतः इसकी विशेष महिमा है। सोलह द्रोणका

बना लवणाचल उत्तम माना गया है। इसके दानसे मनुष्य शिव-संयुक्त लोकोंको प्राप्त करता है। '**यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति शिवसंयुतान्**॥' (मत्स्यपुराण ८४।१)

लवणाचलदानके मन्त्र इस प्रकार हैं—

सौभाग्यरससम्भूतो यतोऽयं लवणाचलः।
तद्दानकर्तृकत्वेन त्वं मां पाहि नगोत्तम॥
यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना।
प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥
विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्धनम्।
तस्मात् पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात्॥

(मत्स्यपु० ८४।६—८)

हे पर्वतश्रेष्ठ! चूँकि यह नमकरूप रस सौभाग्य-सरोवरसे प्रादुर्भूत हुआ है, इसलिये उसके दानसे तुम मेरी रक्षा करो। चूँकि सभी प्रकारके अन्न एवं रस नमकके बिना उत्कृष्ट नहीं होते, अर्थात् स्वादिष्ट नहीं लगते तथा तुम शिव और पार्वतीको सदा परम प्रिय हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। चूँकि तुम भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए हो और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाले हो, इसलिये तुम पर्वतरूपसे मेरा संसारसागरसे उद्धार करो।

शर्कराशैल—आठ, चार अथवा दो भारके शक्करसे बना शैल क्रमशः उत्तम, मध्यम एवं साधारण कहा गया है। पुराणोंके अनुसार शर्करा (शक्कर) कामदेवके धनुषके मध्य भागसे प्रादुर्भूत है। शर्कराशैलका आवाहन, स्थापन, पूजन विधिपूर्वक करके देनेका विधान है (मत्स्यपुराण अ० ९२)।

तिलशैल—मधुदैत्यके वधके समय भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न स्वेदबिन्दुओंके पृथ्वीपर पड़नेसे तिल, कुश एवं उड़दकी उत्पत्ति हुई। अतः हव्य एवं कव्य दोनों ही रूपोंमें श्रेष्ठ तिलशैलके दानसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। (मत्स्यपुराण ८७।१—७)

घृताचल—अमृत एवं अग्निके संयोगसे उत्पन्न घृतसे अग्निस्वरूप विश्वात्मा श्रीशंकर प्रसन्न होते हैं। बीस, दस एवं पाँच घड़ेसे बना घृताचल क्रमशः उत्तम, मध्यम एवं साधारण कहा गया है। (मत्स्यपुराण ८९।१—१०)

कार्पासाचल—कार्पास (कपास-रूई) समस्त प्राणियोंके लोक-लज्जाका निवारण तथा शरीराच्छादन करनेवाला है। ऐसे कार्पाससे कार्पासाचलका निर्माणकर भक्तिभावसे प्रार्थनाकर दान देनेवाला रुद्रलोकमें निवास करता है। (मत्स्यपुराण ८८।१—५)

रत्नाचल—सभी देवगणोंका निवास रत्नोंमें माना गया है। इसलिये रत्नोंका दान श्रीहरिको प्रसन्न करनेवाला होता है। एक हजार, पाँच सौ एवं तीन सौ मुक्ताफलों (मोतियों)-से बना रत्नाचल क्रमशः उत्तम, मध्यम एवं साधारण होता है। इसके दानसे ब्रह्महत्या-जैसे पाप विनष्ट हो जाते हैं। (मत्स्यपुराण ९०।१—११)

रजताचल—चाँदीद्वारा रजतशैलका निर्माणकर उसे विधिपूर्वक प्रतिष्ठितकर प्रार्थना करनी चाहिये कि आप पितरों, श्रीहरि, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र एवं शिवके परम प्रिय हैं। आप इस शोकरूपी संसारसे मेरी रक्षा करें। इसके दानसे दस हजार गोदानका फल मिलता है (मत्स्यपुराण ९१।१—१०)।

इसी प्रकार धान्यशैल (मत्स्यपुराण अ० ८३), गुडाचल (मत्स्यपुराण अ० ८५) तथा सुवर्णाचल (मत्स्यपुराण अ० ८६) आदि पर्वतोंके दानकी भी विशेष महिमा है।

षोडश महादान—मत्स्यपुराणका षोडश महादान-प्रकरण बहुत ही महत्त्वका है, जिसे ऋषियोंके प्रश्न करनेपर सूतजीने उन्हें बतलाया। यह २८४वें अध्यायसे २८९वें अध्यायतक विस्तारसे वर्णित है। षोडश महादान इस प्रकार बताये गये हैं—(१) तुलादान, (२) हिरण्यगर्भदान, (३) ब्रह्माण्डदान, (४) कल्पवृक्षदान, (५) गोसहस्रदान, (६) हिरण्यकामधेनुदान, (७) हिरण्याश्वदान, (८) हिरण्याश्वरथदान, (९) हेमहस्तिरथदान, (१०) पंचलांगलदान, (११) हेमधरादान, (१२) विश्वचक्रदान, (१३) कनककल्पलतादान, (१४) सप्तसागरदान, (१५) रत्नधेनुदान तथा (१६) महाभूतघटदान।

ये सभी दान पुण्यप्रद, पवित्र, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले, सभी पापोंके विनाशक, मंगलकारी तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश आदि देवताओंद्वारा पूजित हैं।

मत्स्यपुराणके दान-धर्म-प्रकरणको विशेष महत्त्वका होनेसे परवर्ती सभी निबन्ध-ग्रन्थों—कृत्यकल्पतरु (दान-खण्ड), हेमाद्रि (चतुर्वर्गचिन्तामणि), दानमयूख तथा दानसागर आदिमें प्रायः यथावत् उद्धृत किया गया है।

कूर्मपुराणमें वर्णित दानका स्वरूप

(श्रीरणवीरसिंहजी कुशवाहा)

यह मानवशरीर भगवत्कृपासे ही अनेक भोगयोनियोंमें भटकनेके बाद मिलता है, जिसका परम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति एवं आत्मकल्याण है। ऐसा जानते हुए भी मनुष्य अर्थलिप्सा, अधिकारोंकी लड़ाई, मान-प्रतिष्ठा एवं भोगोंकी तृप्तिमें सारा समय बिता देता है और त्याग एवं उत्सर्गकी भावनासे हटकर क्षणिक सुखके लिये अशान्तिका ही संग्रह करता है। जो सुख और आनन्द त्याग तथा उत्सर्गकी भावनामें है, वह भोगादिविषयोंके अनुरागमें कहाँ ? कलिकालमें आत्मोद्धारके लिये शास्त्रों, पुराणों, गीता, महाभारत, श्रीरामचरितमानस आदि ग्रन्थोंमें दानके महत्त्वपर विशेष वर्णन मिलता है। मत्स्यपुराणमें आत्मशुद्धिके लिये गोदान, अन्नदान, भूमिदान, पर्वतदान—धान्यशैल, गुडपर्वत, सुवर्णाचल आदि दानोंका महत्त्व विस्तारसे बताया गया है। इससे अन्त:करण पवित्र होनेके साथ-साथ लोभ, आसक्ति एवं संग्रह, कृपणता आदि दोषोंका उन्मूलन होता है। सहयोग, सेवा, परोपकार, उदारता, सदाशयताका विस्तार होकर सात्त्विक भावोंकी अभिवृद्धि होती है। सच्चा सात्त्विक दानी तीर्थरूप होकर अपना ही नहीं, अपने पूर्वजों तथा कई पीढ़ियोंका उद्धार करनेमें सक्षम होता है। इतिहास, पुराण, महाभारत आदि ग्रन्थोंके अध्ययनसे पता चलता है कि परहितके लिये राजा हरिश्चन्द्र, महाराजा दिलीप, राजा रन्तिदेव, महर्षि दधीचि, शिबि-जैसे महापुरुषोंके द्वारा आत्मोत्सर्गतक किया गया है।

दानका अर्थ है देना अर्थात् किसी स्थान (भूमि), गौ, विद्या, द्रव्य, अन्न आदिका देना जिसको वापस लेनेकी अपेक्षा न हो, वह दान है। नि:स्वार्थभावसे कुछ भी इच्छा न रखते हुए दान देना ही यथार्थ दान है। कूर्मपुराणान्तर्गत दानधर्मका निरूपण इस प्रकार हुआ है—

अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥

(उपरिविभाग २६। २)

अर्थके श्रद्धापूर्वक प्रतिपादनको दान कहा गया है। यह भोग तथा मोक्षरूप फलको देनेवाला है।

विशिष्ट अर्थात् सदाचारसम्पन्न व्यक्तियों (ब्राह्मणों)-को अत्यन्त श्रद्धासम्पन्न होकर जो धन दिया जाता है, वही श्रेष्ठ दान है। इस प्रकार नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य तीन प्रकारके दान कहे गये हैं। इससे भिन्न एक चौथा दान विमल दानके नामसे जाना जाता है, जो सभी दानोंमें उत्तमोत्तम है।

प्रत्येक दिन बिना किसी स्वार्थ तथा फलप्राप्तिरूप प्रयोजनके, नि:स्वार्थभावसे कर्तव्य समझकर जो कुछ भी अनुपकारी—जिससे अपना उपकार करानेकी तनिक भी आशा तथा इच्छा न हो दिया जाता है, वह **नित्यदान** कहलाता है। पापके शमनार्थ विद्वान् ब्राह्मणोंको जो दान दिया जाता है, उसे **नैमित्तिकदान** कहा जाता है।

सन्तान, विजय, ऐश्वर्य तथा स्वर्गप्राप्तिके लिये अनुष्ठानके द्वारा दिया गया दान धर्मविचारक ऋषियोंके द्वारा **काम्यदान** कहा गया है और ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये धर्मभावनासे ब्रह्मज्ञानियोंको जो दिया जाता है, वह कल्याणकारी दान **विमलदान** कहलाता है—

यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते।
चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम्॥

(उपरिविभाग २६। ८)

दानके लिये पात्र-अपात्रका विशेष ध्यान करना चाहिये। सत्पात्रको दान करनेसे पुण्यलाभ होता है। सत्पात्र उपलब्ध होनेपर यथाशक्ति दानधर्मका पालन करना चाहिये; क्योंकि सत्पात्र कदाचित् सौभाग्यसे ही मिलता है, जो दाताका हर प्रकारसे उद्धार कर देता है। परिवारके भरण-पोषणसे अवशिष्ट पदार्थका दान करना चाहिये। इससे भिन्न प्रकारका दिया गया दान फलप्रद नहीं होता। प्रतिग्रहीताको भी दान लेनेकी योग्यता न होनेसे लोभवश दान नहीं लेना चाहिये।

श्रोत्रिय, कुलीन, विनयी, तपस्वी, सदाचारी तथा धनहीन (ब्राह्मण)-को भक्तिपूर्वक भूमिका दान करना चाहिये। जो पवित्र, शान्त, धर्माचरणसम्पन्न ब्राह्मणको विधि-विधानसे विद्या प्रदान करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा पाता है। अन्नदान करनेसे मानव महान् फल प्राप्त करता है। अन्न ही प्रथम द्रव्य है तथा उत्तम लक्ष्मीरूप है। अन्नसे ही प्राण, तेज, वीर्य और बलकी पुष्टि होती है।

जो पुरुष एकाग्रचित्त हो स्वयं भूखा रहकर भी अतिथिको अन्नदान करता है, वह ब्रह्मवेत्ताओंके लोकोंमें जाता है। अन्नदाता कठिन-से-कठिन आपत्तिमें पड़नेपर भी उस आपत्तिके

पार हो जाता है तथा पापसे भी उद्धार पा जाता है और भविष्यमें होनेवाले दुष्कर्मोंका भी नाश कर देता है।

जलदान करनेवाला तृप्ति प्राप्त करता है, अन्नदान करनेवाला अक्षय सुख प्राप्त करता है, तिलदान करनेवाला इच्छित सन्तान प्राप्त करता है और दीपदान करनेवाला ज्योति (चक्षु) प्राप्त करता है। भूमिदानसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। स्वर्णदानसे दीर्घायु, गृहदानसे ऊँचे महल तथा चाँदी (रौप्य)-दानसे उत्तम रूप प्राप्त होता है। वस्त्रदानसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। गौका दान करनेवालेको ब्रह्मलोक तथा अभयदाताको ऐश्वर्य प्राप्त होता है। धान्यदाता शाश्वत सौख्य तथा वेदविद्याका दाता ब्रह्मतादात्म्यको प्राप्त करता है।

जो गौओंको घास प्रदान करता है, वह पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो रोगीके रोग-शान्तिके लिये औषधि, स्नेह (तेल, घृतादि) तथा आहार प्रदान करता है; वह रोगरहित, सुखी तथा दीर्घ आयुवाला होता है।

अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन), विषुव (मेष, तुला-संक्रान्ति), चन्द्र और सूर्यग्रहण तथा अन्य संक्रान्ति आदि समयोंमें दिया हुआ दान अक्षय होता है। प्रयाग आदि तीर्थोंमें, पवित्र मन्दिरों, नदियोंके किनारों तथा नैमिष आदि पुण्यप्रद अरण्योंमें दान देनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है—

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥
प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च।
दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदीषु च वनेषु च॥

(उपरिविभाग २६। ५४-५५)

इस संसारमें दानसे बढ़कर अन्य कोई धर्म या पुण्यप्राप्तिका साधन नहीं है। इसलिये दान देना चाहिये। जो व्यक्ति मोहवश गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवताओंके निमित्त दिये जा रहे दानको रोकता है, वह पापात्मा तिर्यग्योनिमें जाता है।

पुराणेतिहासमें गोदानकी महिमा

(श्रीहंसराजजी डावर)

कलियुगमें दानकी महिमा अनन्त है। कठिन परिश्रम एवं न्यायसंगत तरीकेसे कमाये हुए धनका एक हिस्सा उत्तम देश, काल एवं सुअवसरपर उचित पात्रको दान देनेपर वह दान दानदाताको सहनशीलता एवं शान्ति प्रदान करता है और उसका कल्याण करता है।

विभिन्न दानोंमें गोदानका विशेष महत्त्व है। गौ हमारी माता है। वेदोंमें गौको पृथिवी, अन्न और धन कहा गया है। गोदान दस महादानोंमेंसे एक है।

पद्मपुराणमें भगवान् विष्णु राजा वेनसे कहते हैं—राजन्! जो व्यक्ति श्रद्धायुक्त चित्तसे सुपात्र ब्राह्मणको गौका दान करता है, मैं उसकी हर इच्छाको पूर्ण कर देता हूँ।

गायका महत्त्व बताते हुए ब्रह्माजी कहते हैं, देवताओंको हविष्य गौसे प्राप्त होता है। गाय सब कार्योंमें उदार एवं समस्त गुणोंकी खान है। वह साक्षात् देवताओंका स्वरूप है। गायका दूध, दही, घी, गोबर एवं मूत्र (पंचगव्य)-का पान कर लेनेपर शरीरके सब पाप दूर हो जाते हैं। गाय सब अवस्थाओंमें, सभी देश-कालमें एवं सब समयमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाली है। अतः सभी समय, अवस्थाओंमें एवं देश-कालमें गोदानका विशेष महत्त्व है।

गरुडपुराणमें भगवान् विष्णुजी कहते हैं—हे गरुड!

अग्निका पुत्र स्वर्ण है, पृथिवी विष्णुपुत्री वैष्णवी है तथा गाय सूर्यपुत्री है। अतः जो व्यक्ति स्वर्ण, गौ एवं पृथिवीका दान करता है, उसने मानो त्रैलोक्यका दान कर दिया। गौ, पृथिवी और विद्या—तीनोंके दानको अतिदान कहा है—**'त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।**

श्रीकृष्णजी कहते हैं—हे खगराज! गौका दूध अमृत है, इसलिये जो मनुष्य दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह अमृतत्वको प्राप्त करता है।

पद्मपुराणमें व्यासजी कहते हैं कि भगवान् विष्णुसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं, ब्राह्मणोंसे उत्तम कोई दूसरा पात्र नहीं, गंगासे श्रेष्ठ कोई तीर्थ नहीं एवं गोदानकी तुलनामें कोई दान नहीं है। गौओंका दान देनेकी शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा की गयी है। गौएँ लक्ष्मीकी जड़ हैं। उनमें पाप लेशमात्र भी नहीं है। गौएँ मनुष्यको अन्न, धन एवं दुहनेपर अमृत देती हैं, ऐसी गौओंके दानसे मनुष्यके सब पाप दूर हो जाते हैं।

पद्मपुराणमें गायकी महत्ता बतलाते हुए ब्रह्माजीने नारदसे कहा—भगवान् विष्णुकी तरह गौ भी वन्दनीय एवं पूजनीय है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर गौ और उसके घीका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिस घरमें गौ नहीं है, वह बन्धुरहित घर है। सम्पूर्ण वेद, उपवेद गायके मुखमें निवास करते हैं। उसके सींगोंमें भगवान् शंकर और भगवान् विष्णु निवास करते हैं, उदरमें कार्तिकेय, मस्तकमें ब्रह्मा, ललाटमें महादेव, सींगोंके अग्रभागमें इन्द्र, दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य, दाँतोंमें गरुड़, जिह्वामें सरस्वती, गुदामें सम्पूर्ण तीर्थ, मूत्रस्थानमें गंगाजी, रोमकूपोंमें ऋषि, मुखके ऊपरी भागमें यमराज, दाहिने भागमें गरुड़ एवं कुबेर, वामभागमें यक्ष, नासिकामें नाग, खुरोंके पिछले भागमें अप्सराएँ, गोबरमें लक्ष्मी एवं थनोंमें चारों समुद्र निवास करते हैं। कहनेका भावार्थ यह है कि गायमें सभी देवी-देवता निवास करते हैं।

शुकदेवजीद्वारा पूछे जानेपर श्रीवेदव्यासजीने कहा—गौएँ परम पावन, पवित्र और पुण्यस्वरूपा हैं। उन्हें ब्राह्मणोंको दान देनेसे मनुष्य स्वर्गमें सुख भोगता है एवं गोलोकमें जाता है। महाराजा मान्धाता, ययाति और नहुष सवा लाख गौओंका प्रतिदिन दान किया करते थे।

गोदानका महत्त्व बताते हुए महाभारतमें भीष्मजी महाराज युधिष्ठिरसे कहते हैं कि जो व्यक्ति अपनी पैतृक सम्पत्तिसे प्राप्त हुए धनसे गौएँ खरीदकर दान करता है, वह अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति दानमें ली हुई गौओंको फिर दान दे देता है, उसे भी अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति पवित्र मनसे सत्यमें निष्ठा रखकर गौका दान करता है, उसे राजसूय यज्ञके अनुष्ठानका फल प्राप्त होता है, जो व्यक्ति एक समयमें भोजन करके दूसरे समयके भोजनद्वारा बचे हुए धनसे गौ खरीदकर दान करता है, वह गौके रोएँ जितने गोदानका फल प्राप्त करता है।

गोदान कैसे पात्रको देना चाहिये—कठिन परिश्रम एवं न्यायपूर्वक अर्जित किये हुए धनका अथवा गौका दान उत्तम देश-काल एवं उचित पात्रका विचार करके करना चाहिये। महाभारतमें महाराज युधिष्ठिरके पूछनेपर कि दान किस व्यक्तिको देना चाहिये, महर्षि मार्कण्डेयजी कहते हैं राजन्! जो सम्पूर्ण शास्त्रोंका विद्वान् एवं अपनेको तथा दाताको तारनेकी शक्ति रखता हो, ऐसे विद्वान् ब्राह्मणको गाय दान देनी चाहिये। जिनसे अपना कोई उपकार न होता हो, ऐसे ब्राह्मणको गाय दान करनी चाहिये। एक गाय एक ही व्यक्तिको दानमें देनी चाहिये,

कैसी गाय दान देनी चाहिये—दान देनेवाले दाताको कैसी गाय दान देनी चाहिये—इस विषयमें महाभारतमें भीष्मजी महाराज युधिष्ठिरसे कहते हैं कि बेटा! वात्सल्य गुणोंसे युक्त उत्तम लक्षणोंवाली, हृष्ट-पुष्ट, सीधी-सुलक्षणा, जवान एवं उत्तम गन्धवाली गायको वस्त्र ओढ़ाकर ब्राह्मणको दान देनेपर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। रोगिणी, बूढ़ी, जीर्ण-शीर्ण शरीरवाली, क्रोध करनेवाली, मरकही, दूध न देनेवाली अथवा जिस गायका दाम न चुकाया गया हो, ऐसी गायका दान करना वर्जित है।

आनन्दरामायणमें वर्णित श्रीरामकी दानशीलता

(आचार्य श्रीसुदर्शनजी मिश्र, एम० ए०)

संसारमें विशेष रूपसे एक-से-एक महान् दानी होते आये हैं, जिनमें महाराजा बलिके दानपर तो बलिदान सर्वप्रसिद्ध है। कर्णका नाम भी महादानियोंमें अग्रगण्य है, किंतु प्रभु श्रीरामके महान् अनोखे अद्वितीय दानोंकी तुलना कहीं नहीं। सर्वप्रथम तो जब प्रभुको वनवासकी आज्ञा हुई तो उन्होंने अपने राजभवनका समस्त धन-धान्य, रत्न आदि ब्राह्मणोंको दान कर दिया। वनवासमें भी यथासम्भव ऋषि-मुनियोंका सत्कार-पूजन करते रहे, स्वयं राजा बननेसे पूर्व अपने मित्र वानरराज सुग्रीवको किष्किन्धाका राजा बनाया। तत्पश्चात् परम वैभवयुक्त स्वर्णमयी लंकाको जीतकर अपने मित्र विभीषणको दे दिया।

आनन्दरामायणमें वर्णन आया है कि भगवान् श्रीराम राज्याभिषेकके पश्चात् महारानी श्रीसीताजीके निवेदनपर सरयू और गंगाके संगमपर पूजनादिके लिये प्रस्थान करते हैं। मार्गमें महर्षि मुद्‌गलमुनिके आश्रमपर पहुँचनेपर मुद्गल मुनिके अनुरोध करनेपर वे वहीं सरयू और गंगाजीका संगम बनाकर 'दद्री' नामक तीर्थकी स्थापना करते हैं, जिसका महत्त्व बदरीनाथधामसे भी कुछ अधिक माना गया है (आनन्द० यात्रा० ४। ९८)। वहीं सीतासहित पूजन करके अनेक ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं और रत्न-आभूषणोंका दान करते हैं। अनेक गौ, हाथी-घोड़ा आदि ब्राह्मणोंको दान किया जाता है और लक्ष्मणजी से कहते हैं कि यह स्थान बड़ा रमणीय है, यहाँ हम नौ दिन निवास करेंगे। अतः यहाँसे समस्त सीमाओंपर श्रेष्ठ, विनम्र सेवकोंको नियुक्त कर दो, जिससे आनेवाले मार्गोंमें कोई भी ब्रह्मचारी-गृहस्थी-वानप्रस्थी-संन्यासी आदि हमारे सत्कार किये बिना न जा पाये—

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः।
यः कश्चिद्वा समायाति पथिकः स ममाज्ञया॥
मया संपूजितो नैव गन्तुं देयः समन्ततः।

(आनन्द० यात्रा० ५। १५-१६)

इस प्रकार वहाँ रामजीके अन्न-क्षेत्रमें नित्य ही हजारों ब्राह्मण, साधु-संन्यासी-अतिथिगण भोजन करते थे। रामजी ब्राह्मणोंका सत्कार ताम्बूल और दक्षिणा देकर करते थे।

इसी बीच एक दिन कुम्भोदरमुनिद्वारा रामजीपर रावणादिकी ब्रह्महत्याका आरोप लगानेपर उसके निवारणके लिये वसिष्ठजीद्वारा तीर्थयात्रा और अश्वमेध यज्ञका आदेश पाकर वे तीर्थयात्राका निर्णय ले लेते हैं। पुष्पकविमानपर अयोध्यामें रहनेवाले तीर्थयात्राके इच्छुक सभी नागरिकोंको भी बुला लेते हैं। रामजीके आदेशानुसार पुष्पकविमान भी अपना विस्तार कर लेता है। जिसमें सभीके रहनेकी यथोचित व्यवस्था हो जाती है।

प्रभु सर्वप्रथम तीर्थराज प्रयागकी ओर प्रस्थान करते हैं। संगमसे एक कोस दूर विमानसे उतरकर श्रीजानकीजी-सहित और सभी भ्राताओं-माताओं, मंत्रिगणादिसहित पैदल ही संगमपर पहुँचते हैं। वहाँ श्रीरामजी भाइयोंसहित मुण्डन कराते हैं। सीता महारानी भी अपनी वेणीके चार अंगुल अग्रभागको आभूषणसहित त्रिवेणीमें अर्पित करती हैं। श्रीराम प्रयागमें माघमासमें महीनेभर निवास करते हैं और वहाँके तीर्थपुरोहित तथा ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारका दान देकर सन्तुष्ट करते हैं। तत्पश्चात् विन्ध्याचल आदि तीर्थोंमें स्नान-दानकर काशीनगरीकी ओर प्रस्थान करते हैं। वहाँ भी काशीमें बाहर ही विमानसे उतरकर सबके साथ पैदल चल पड़ते हैं। भगवान् शंकर भी रामजीके स्वागतके लिये काशीसे बाहर आकर रामजीको प्रणाम करते हैं। श्रीरामजी उनका आलिंगन करते हैं और उनके द्वारा दी हुई भेंट स्वीकारकर अनेक वस्त्राभूषणोंसे शिवजीका पूजन करते हैं। श्रीरामजी विश्वनाथजीके सुन्दर हाथको पकड़कर काशीमें प्रवेश करते हैं—'**विवेश काशिनाथस्य धृत्वा हस्तेन सत्करम्।**' (आनन्द० यात्रा० ६। २६) वहाँ एक वर्ष प्रभुका निवास होता है। प्रतिदिन एक नये घाटका निर्माण भी किया जाता था। श्रीहनुमान्‌जी भी वहीं प्रभुके दर्शनार्थ आ जाते हैं। इस प्रकार श्रीरामघाट, श्रीजानकीघाटके

साथ ही सभी माताओं-भ्राताओंके नामसे घाटोंका निर्माण होता है। श्रीहनुमान्‌जीके नामसे भी घाट बनता है। भगवान्‌ने कार्तिक-मासमें सीताजीसहित महीनेभर पंचगंगाघाटपर स्नान किया। वहाँ वर्षभरमें समस्त तीर्थवासियोंको पृथक्-पृथक् रत्न आदिके आभूषण, नाना प्रकारके वस्त्र, सोने-चाँदीके पात्र, गाय-घोड़ा आदिका दान भी करते हैं। गृहस्थ-ब्राह्मणोंके अतिरिक्त संन्यासियों और तपस्वियोंको भी उनके आवश्यकतानुसार वस्तुओंका दान करते हैं। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियोंको, पुजारियोंको, रासक्रीड़ा करनेवाले कलाकारोंको भी उनके आवश्यकतानुसार इतना धन आदि देते हैं कि उनको जीवनभर किसी वस्तुका अभाव न प्रतीत हो।

उन्होंने मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करवाया, चूनादिसे पुतवाया, रंगशालाएँ बनवायीं, जिनमें सुन्दर चित्रकारी करवायी। मन्दिरोंमें भजन-कीर्तन, नृत्य-संगीत आदिकी व्यवस्था करायी। अन्नक्षेत्रकी व्यवस्था की, ग्रीष्म-ऋतुमें प्याऊ, जाड़ोंमें तापनेके लिये ईंधन तथा वर्षा-ऋतुके लिये आच्छादन छातादिकी व्यवस्था की। देवालयोंमें पंचामृतके स्नानका प्रबन्ध, त्रिकाल पूजाके लिये पुष्प-मालादिका प्रबन्ध किया तथा शंख-नगाड़ा, मृदंग आदि वाद्योंका प्रबन्ध किया। त्रिकाल पूजा जप-तप-होम-स्तोत्रपाठ आदिकी व्यवस्था की। शिवनामोच्चारणपूर्वक काशीकी प्रदक्षिणा भी की।

इस प्रकार वर्षभरका काशीवासकर वहाँके समस्त निवासियोंको सन्तुष्टकर भगवान् श्रीराम विश्वेश्वरको प्रणामकर, स्तुति करके उनकी आज्ञा लेकर अन्य तीर्थोंमें जानेके लिये पुष्पकविमानपर सभीके साथ विराजमान हुए—

वर्षमेकमुषित्वा तु कृत्वा तीर्थान्यनेकशः॥
दीनानाथांश्च सन्तर्प्य नत्वा विश्वेश्वरं विभुम्।
ब्रह्मचर्यादिनियमैर्ऋतुकालागमेन च॥
सत्यसम्भाषणेनापि तीर्थमेवं प्रसाद्य च।
नत्वा पुनर्विश्वनाथं कालराजं गणाधिपम्॥
अन्नपूर्णां दण्डपाणिं दृष्ट्वा स्तुत्वा प्रणम्य च।
अनुज्ञातः शिवेनाथ विमानेन रघूत्तमः॥

(आनन्द० यात्रा० ६।५७—६०)

इसके बाद प्रभु श्रीराम आकाशमार्गसे च्यवनमुनिके आश्रमपर पहुँचे। विमानसे उतरकर उनका दर्शन-पूजनकर भगवान्‌ने वहाँ भी रामतीर्थ स्थापित किया। अनेक तीर्थोंमें चारों भाई, सीताजी, हनुमान्‌जीसहित विशेष पूजन करते थे। कहीं तीन रात, कहीं पाँच रात, कहीं एक सप्ताह, कहीं एक पक्ष, कहीं अट्ठारह दिन, कहीं इक्कीस दिन, कहीं तीन मास धर्मपूर्वक रहे। जिन-जिन तीर्थोंमें गये, वहाँ पूर्व तीर्थसे अधिक ही उन्होंने दानादि पुण्यकर्म किया—

यानि यानि हि तीर्थानि राघवश्च गमिष्यति॥
उत्तरोत्तरतस्तेषु दानाधिक्यं करिष्यति।

(आनन्द० यात्रा० ६।६४-६५)

भारतके पूर्व दिशास्थित गया आदि तीर्थोंमें होते हुए श्रीराम दक्षिणभारतकी ओर मत्स्य-तीर्थ, नृसिंहतीर्थ, श्रीशैलपर्वत आदि होते हुए किष्किन्धानगरीमें पहुँचे, वहाँ सुग्रीव आदिने सीतारामजीका विशेष पूजन किया तथा रामजीके आज्ञानुसार वे वानरोंसहित पुष्पकविमानपर तीर्थ-यात्राहेतु सवार हो गये। अनेक तीर्थोंमें स्नान-दान करते हुए वेतालतीर्थमें स्नान करके भैरवतीर्थ पहुँचे, वहाँसे पैदल चलते हुए अग्नितीर्थ, धनुष्कोटितीर्थ आदि होते हुए गन्धमादनपर्वत पहुँचे। ताम्रपर्णीके किनारे-किनारे अनेक पवित्रस्थानोंको देखते, पूजन-दान आदि करते हुए सिन्धुतीर-निवासिनी कन्याकुमारीको दर्शन दिये, जो हाथमें माला लिये उनकी राह देख रही थी। वहीं आगे चलकर श्रीरामेश्वरभगवान्‌को प्रणाम किया है और प्रयागराजसे जो हजार घड़े भरकर गंगाजल लाये थे, उससे रामेश्वरम्‌का अभिषेक किया—

'रामेश्वरं ततो नत्वा कृत्वा गंगाभिषेचनम्।'

(आनन्द० यात्रा० ७।३३)

इसके पश्चात् पश्चिम दिशाकी ओर अनेक तीर्थोंका दर्शन करते हुए श्रीरामजी राजतीर्थ पुष्कर आ गये। वहाँ विमानसे उतरकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका अभिवादन-पूजन करते हुए उन्होंने विधिवत् सवस्त्र-स्नान करके तीर्थश्राद्ध किया। यह बात भी जाननेयोग्य है कि जहाँ-जहाँ तीर्थ आदिमें प्रभु श्रीरामजी गये हैं, वहाँ-वहाँ काशीसे भी अधिक दान-

पुण्य करते रहे—

स्नात्वा सचैलं विधिना तीर्थश्राद्धं विधाय च॥
दत्त्वा दानान्यनेकानि काश्याः कोट्यधिकानि तु।
द्रव्यालङ्कारवस्त्रान्नैस्तोषयामास भूसुरान्॥

(आनन्द० यात्रा० ८। ४८-४९)

यहाँ विशेष बात यह भी ध्यातव्य है कि दानके हेतु सभी सामग्री प्रभु श्रीरामको कौस्तुभमणिद्वारा प्राप्त होती रहती थी।

अब उत्तरभारतकी यात्रामें ज्वालामुखी, श्रीबदरीनाथ, श्रीकेदारनाथ आदिका दर्शन-पूजनकर, देवप्रयागमें भी स्नान करके दान देकर वे मानसरोवरपर गये, जहाँ स्नानदान करके **'दृष्ट्वा ब्रह्मसभां दिव्यां मेरुस्थसदृशीं पराम्।'** (आनन्द० यात्रा० ९। १०) ब्रह्मसभाके निकट पहुँचकर सीताजीसहित विमानसे उतरकर उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम किया और ब्रह्माजी भी श्रीरामजीको प्रणाम करने लगते हैं। तब श्रीरामजी ब्रह्माजीका आलिंगनकर अश्वमेध यज्ञका निमन्त्रण देते हैं तथा ब्रह्माजीसहित सभी देवताओंका पूजन करते हैं, पश्चात् ब्रह्माजी भी श्रीरामजीका पूजनकर उन्हें कामधेनु प्रदान करते हैं। तब श्रीरामजी ब्रह्माजी तथा सभी देवताओंको और कामधेनुको विमानपर चढ़ाकर कैलासपर्वतकी ओर चलते हैं। भगवान् शिव श्रीरामजीके आगमनकी वार्ता ज्ञातकर नन्दीपर पार्वतीसहित सवार होकर स्वागतार्थ आते हैं। श्रीरामजी कैलासपतिको आता देख सीताजीसहित विमानसे उतरकर उन्हें प्रणाम करते हैं तो शिवजी रामजीको गले लगा लेते हैं तथा पार्वतीजी सीताजीका आलिंगनकर दिव्य चन्दन, अलंकार-वस्त्रादिसे पूजितकर प्रसन्न होती हैं। भगवान् शंकरको भी अश्वमेधका निमन्त्रण देकर उनसे अनुमति लेकर—मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, गोवर्धन, नैमिषारण्य आदि तीर्थोंमें दर्शन-स्नान, दान आदि देते हुए श्रीरामजी अयोध्या आ जाते हैं।

यहाँतक तो श्रीरामजीके सामान्य दानोंकी कथा है, अब कुछ विशेष महादानका अवसर आता है। अच्छे मुहूर्तमें श्रीरामजीने अश्वमेध यज्ञके लिये तैयारियाँ प्रारम्भ करवा दीं। वे श्यामकर्ण घोड़का विधिवत् पूजनकर उसे वस्त्रालंकारसे सुशोभितकर पृथ्वीकी प्रदक्षिणाहेतु छोड़ देते हैं। श्रीशत्रुघ्नजीको सेनासहित पुष्पकविमानपर आरूढ़कर अश्वकी रक्षाके लिये भेज देते हैं। स्वयं यज्ञकी दीक्षा ग्रहणकर श्रीवसिष्ठजीके आदेशानुसार शुभमुहूर्तमें अयोध्यासे बाहर दशयोजनकी भूमिको सोनेके हलसे ब्राह्मणोंसहित जोतकर शोधन करते हैं।

श्रीभरतजीको सभी अतिथियोंके स्वागत-सत्कारका दायित्व प्रदानकर श्रीलक्ष्मणजीसे कहते हैं कि यज्ञभूमिको चन्दन-केसरमिश्रित जलसे लीपकर शुद्धकर सुन्दर मण्डप, वेदियाँ आदि बनवायें तथा अतिथि, नृपगण तथा मुनिगण आदिके निवासार्थ उनके अनुकूल ही सुन्दर आवासादिकी सुव्यवस्था करें। इस यज्ञमें आये हुए मुनिगणों तथा ब्राह्मणोंको श्रीरामजी स्वयं सत्कारपूर्वक मधुपर्क आदि अर्पण करते हैं। शुभमुहूर्तमें वेदध्वनि, नववाद्योंकी ध्वनि तथा पुरवासियोंकी स्त्रियोंद्वारा मंगल गीतोंकी ध्वनिमें श्रीसीतारामजीका मंगल-स्नान होता है।

भगवान् श्रीराम सुन्दर पवित्र वस्त्रोंको धारणकर गुरुदेव तथा विप्रोंको, माताओं-भ्राताओंके साथ ही सभी मन्त्रियों आदिको भी सुन्दर वस्त्र-अलंकार प्रदान करते हैं। श्रीलक्ष्मणजीको आदेश करते हैं कि इस यज्ञमें जो भी आये, उसका यथोचित सम्मान किया जाय। मुनिगण, उनकी स्त्रियाँ, उनके बच्चे तथा अन्य जन दास-दासी आदि जो भी वस्तु चाहें, उनको प्रदान की जाय। चाण्डालसे लेकर विप्रतक प्रत्येक प्राणीको सन्तुष्ट रखना है, किसीको भी किसी भी प्रकारका कष्ट न होने पाये। जो भी जो चाहे, उसकी अभिलाषा पूर्ण करना है, अयोध्याका कोषागार भी यदि कोई माँगे तो मुझसे पूछे बिना ही दे देना। कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, यह मेरी आज्ञा है।

इस प्रकार श्रीलक्ष्मणजीको आदेश देकर प्रभु श्रीराम यज्ञमें जिस देवताका आवाहन करते हैं, वे प्रत्यक्ष प्रकट होकर श्रीरामजीसे पूजित होते हैं। अनेक देश-देशान्तरोंके मुनिगण, विप्रगण, नृपगण नित्य ही आते हैं, सबका स्वागत भरतजीद्वारा होता है।

अश्वमेध यज्ञ पूर्ण उल्लासके साथ हर्षपूर्वक सम्पन्न हो जाता है। अवभृथ स्नानके लिये श्रीरामजी सीताजीसहित

सरयूस्नानके लिये रथमें बैठकर जाते हैं। सभी आगंतुक प्रसन्न होकर श्रीसीतारामपर तथा परस्पर चन्दन-केसरमिश्रित दधि-हल्दी दूर्वासे छिड़क रहे हैं। वेदध्वनि तथा नव-वाद्योंकी ध्वनिके मध्य श्रीसीतारामजीका मंगल-स्नान होता है। स्नानोपरान्त श्रीरामजी वहीं सरयू-तटपर दिव्य आसनपर विराजमान हो भरतजीसे कहते हैं कि हमारे यज्ञमें जो विप्रगण आये हैं, इन्हें कोषागारमें भेज दीजिये। सेवक तथा वाहन भी साथ कर दीजिये। जो भी विप्र मणि, माणिक, रत्न, सुवर्णादि जितना भी चाहें, सेवकोंद्वारा वाहनोंपर रखकर ले जायँ। यज्ञकी पूर्णाहुतिपर रामजीने विस्तारपूर्वक अनेक दान दिये—

'ततो रामोऽप्यनेकानि कृत्वा दानानि विस्तरात्।'

(आनन्द० याग० ८। ८६)

प्रभु श्रीरामजीने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं तथा सभीमें नाना प्रकारके दान दिये हैं। ऐसे ही अनेक प्रसंग प्रभु श्रीरामके जीवनमें आये हैं, जो भक्तोंको आनन्दित करते हैं। श्रीरामका जन्म और उनकी लीलाएँ परम मंगलकारिणी हैं। श्रीरामजी-जैसा अप्रतिम दानी न तो कोई हुआ, न भविष्यमें होगा—**'न भूतो न भविष्यति।'**

[**प्रेषक—आचार्य श्रीदीप्तिमानजी मिश्र**]

गीतामें त्रिविध दान

(पं० श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, व्याकरण-साहित्य-वेदान्ताचार्य)

द्रव्यका स्वत्वनिवृत्तिपूर्वक परप्रीत्यर्थ विनियोग करना दान कहलाता है। 'दा' धातुसे 'ल्युट्' प्रत्यय करनेपर दान शब्द निष्पन्न होता है। दानग्रहणका अधिकारी श्रोत्रिय होता है। जन्मसे ब्राह्मण जातिका, संस्कारसे द्विजत्वप्राप्त और विद्यासे विप्रत्वमें पहुँचा व्यक्ति—इन तीनों विषयोंसे युक्त होनेपर श्रोत्रिय कहलाता है—**'त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते।'** महर्षि पाणिनिके **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** इस सूत्रमें बहुलग्रहणका प्रयोजन **'क्वचिदन्यदेव'** का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए आचार्य श्रीभट्टोजिदीक्षितने **'दीयते अस्मै इति दानीयो विप्रः'** कहकर दानका पात्र विप्र अर्थात् श्रोत्रिय निर्दिष्ट किया है। यद्यपि परमभागवत पितामह भीष्मने धर्मराज युधिष्ठिरको दान-धर्मका उपदेश करते हुए कहा—**'दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।'** हे कुन्तीनन्दन! जो सर्वसाधनहीन विपन्न व्यक्ति है, उसका भरण-पोषण करो अर्थात् उन असहाय मनुष्योंको अन्न-वस्त्र-भूमि-भवन आदि देकर समाजमें उत्तम जीवन धारण करनेयोग्य बनाओ। धन-सम्पदासे परिपूर्ण अभिजन, आजीविकासे युक्त, सामर्थ्यवान् पुरुषको कभी कोई द्रव्य नहीं देना; क्योंकि वैसा व्यक्ति तुम्हारी दी हुई वस्तुका दुरुपयोग कर सकता है। इस प्रकार दानका पात्र दरिद्र मनुष्य कहा है। वह किसी भी वर्ण या वर्गका हो सकता है, फिर विप्र या श्रोत्रियको पात्र कैसे कहते हैं? तथापि दानकी विविधताको ध्यानमें रखकर उक्त बात कही गयी है। दाता-ग्रहीताके देश-काल-नाम-गोत्रादि उच्चारणपूर्वक द्रव्यका विसर्जन-ग्रहण दान शब्दसे अभिहित होता है। भेदभावरहित किसी भी वर्गके किसी भी वर्ण-जातिके व्यक्तिकी अन्न-वस्त्र-भूमि-भवन-स्वर्ण आदि द्रव्योंसे सहायता करना दानकी श्रेणीमें नहीं आता। अतः लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने त्रिविध दानका स्वरूप और उनमें सात्त्विक दानकी उत्कृष्टता बतायी है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

(गीता १७। २०)

यह मेरे जीवनमें मेरी कभी सहायता कर पायेगा—इस भावनासे रहित ऐसे पुरुषको जो दान दिया जाता है, उसको सात्त्विक दान कहते हैं। इसी प्रकार पवित्र देश, पवित्र काल और सुपात्रमें दिया हुआ दान भी सात्त्विक होता है। ऐसे दानसे दाता और ग्रहीता दोनोंका श्रेय होता है। प्रस्तुत पद्यकी 'तत्त्वप्रकाशिका' व्याख्यामें श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके परवर्ती पूर्वाचार्यचरण जगद्विजयी श्रीकेशव-काश्मीरि-भट्टाचार्यजीने भाव स्पष्ट किया है—**'दातव्यमित्येव निश्चयेन न तु फलोद्देशेन यद्दानं दीयते, अनुपकारिणे**

प्रत्युपकाराकर्त्रे अयं मम प्रत्युपकारं करिष्यतीत्युद्देश्याविषयायेत्यर्थः। देशे माथुरपुष्करकुरुक्षेत्रे गंगादिक्षेत्रे, काले कार्तिकसहोमाघमासादौ, पात्रे च शमदमतितिक्षायुक्ताय श्रोत्रियाय यद्दानं दीयते तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।' भाव है कि संसारमें प्रत्येक मनुष्य संग्रहप्रिय होता है, वस्तुओंका अपार संग्रह चाहता है, संग्रहीत द्रव्यकी शुद्धि दानसे ही होती है। प्रजापति ब्रह्माने भी देवों, दानवों और मानवोंको एक ही वर्ण 'द' के उपदेशसे दम-दया-दानकी शिक्षा प्रदान की थी। अतः 'देना चाहिये' इस बुद्धिसे न कि फलाकांक्षासे जो दान दिया जाता है, वह सात्त्विक होता है। वह दाता-भोक्ता दोनोंका कल्याणकारक बनता है। इसी प्रकार जो दान अनुपकारी पुरुषको अर्थात् जिनसे प्रत्युपकारकी आशा न हो, उनको दिया जाता है; मथुरा, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गंगा आदि शुभ स्थान जो समस्त पवित्र देशके उपलक्षण हैं उन सबमें दिया जाता है; कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ, वैशाख आदि मास जो युगादि तिथि, जन्म-नक्षत्र, व्यतिपात योग आदि पुण्यदायक समयके उपलक्षण हैं, उनमें दिया जाता है। पूर्वोक्त देश-कालभावनाके सुयोगमें शम-दम-तितिक्षा आदि गुणोंसे युक्त सुपात्र श्रोत्रिय ब्राह्मणको जो दान दिया जाता है, वह सात्त्विक एवं अनन्तफलदायक होता है। ऐसा सुयोग भक्तराज दानवेन्द्र बलिको प्राप्त हुआ था। त्रिलोकाधीश दानव तो दाता और जगदीश्वर भगवान् श्रीवामन याचक (ग्रहीता) थे। देवनदी नर्मदाका तटवर्ती प्रदेश, भृगुकच्छ नामक पवित्र स्थान, सौ अश्वमेध यज्ञकी पूर्णाहुतिका समय, ब्राह्मणत्व-द्विजत्व-विप्रत्वसे भूषित श्रोत्रिय थे भगवान् वामन। कितनी विलक्षण बात थी। ऐसे अवसरपर भूमिदानके लिये उद्यत उदारमना यजमानको देखकर गुरुदेव शुक्राचार्य दान न देनेका आदेश देते हैं, राजन्! जिसमें अपनी जीवनवृत्ति नष्ट हो जाती हो, वह दान प्रशंसनीय नहीं है, अतः मत दो; क्योंकि यह विप्र छली-कपटी प्रतीत होता है। एक ओर सुपात्र श्रोत्रियको दान देनेका संकल्प किया जा चुका है, दूसरी ओर गुरुदेवका निषिद्ध आदेश; जिनके तपोबलके प्रभावसे त्रिलोकको वशमें किया गया था। उभयतः पाशारज्जु अर्थात् घोरधर्मसंकट। स्वयंके अतिरिक्त बलिको इस धर्मसंकटसे उबारनेवाला कोई नहीं था, ऐसी ही परिस्थितिमें धीर पुरुषकी पहचान होती है।

महाराज बलिने अन्ततः स्वविवेकसे निश्चय किया दातव्यम्, उधर वामनसे प्रत्युपकारकी अपेक्षा कतई नहीं थी, अतः अनुपकारित्वलक्षण भी पूर्ण घटित था, देशकालकी पावनता पूर्वोक्त प्रकारसे सुस्थिर है ही। विप्रवेशधारी भगवान् वामन-जैसा पात्र कहाँ मिलेगा! भगवन्निर्दिष्ट दानके स्वरूपका एकत्र मिलन अनन्त कालतक उपलब्ध नहीं हो सकेगा। गुरु-अवज्ञाका दोष या अपराध तो मुझे अकेले भोगना होगा, किंतु वचनबद्ध होकर दान न देनेका दोष तो अनन्त जीवोंको दीर्घकालतक भोगना होगा—इस प्रकार निश्चय करके राजा बलिने भूमिदान दिया, फलतः श्रीहरिने विश्वरूपसे सब आवृत कर लिया, बलिके इस सर्वस्व दानने भगवान्‌को ही वशमें कर लिया, उस दाताके द्वाररक्षक हो गये वे, उन्होंने इस सर्वस्व दानके सुफलमें राजा बलिको बिन माँगे अष्टम मन्वन्तरमें इन्द्र बनानेका वचन दिया। यह है सात्त्विक दानका स्वरूप और फल। दाता-भोक्ता दोनों प्रसन्न।

अब राजस दानका स्वरूप-फल बताते हैं—

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥

(गीता १७। २१)

यहाँ 'तु' शब्दका प्रयोग सात्त्विक दानसे राजस दानको निकृष्ट बताना है। जिसको दान दिया जा रहा है, उससे यह अपेक्षा रखना कि समय आनेपर यह व्यक्ति कृतज्ञतावश मेरी सहायता करेगा—ऐसी प्रत्युपकारकी भावनासे जो दान दिया जाता है, वह राजस कहलाता है। इससे अतिरिक्त इस दानका शुभ फल इस लोकमें या परलोकमें अवश्य मिलेगा—ऐसी फलाकांक्षासे दिया जानेवाला और किसीकी प्रेरणा या प्रशंसाके वशीभूत होकर भावुकतामें अपनी शक्तिसे अधिक मात्रामें दान देकर पश्चात्ताप करना कि यह मैंने क्या किया, किसीके बहकावेमें आकर इतना

ज्यादा धन दे दिया? इस प्रकार कष्टकारक दान भी राजस कोटिमें गिना जाता है। इसमें लेनेवाला तो प्रसन्न रहता है, किंतु देनेवाला अप्रसन्न।

तीसरा तामस दान है—

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥

(गीता १७। २२)

इसकी व्याख्यामें आचार्यप्रवर लिखते हैं—'**अदेशकाले इत्यनेन च अदेशे म्लेच्छामेध्यादिसंसृष्टेऽशुद्धे इत्यर्थः। अकाले संक्रान्तिद्वादशीदर्शव्यतीपातादिपुण्यकालरहिते। अपात्रेभ्यश्च नटनर्तकमूर्खकर्षकादिभ्यः। कथं चिद्-देशकालादौ प्राप्तेऽपि असत्कृतम् पादप्रक्षालनादि-सत्काररहितम्, अवज्ञातम् तिरस्कारवचनपूर्वकं यद्दानं दीयते तत्तामसं उदाहृतम्।**'

कोई भी दाता-ग्रहीता देशकालभिन्नमें दान-ग्रहण नहीं कर सकता, अतः अदेशका तात्पर्य अपुण्यदेश अर्थात् म्लेच्छादिसे आक्रान्त, अपवित्र वस्तुओंसे आच्छन्न स्थलका ग्रहण है—ऐसे अपवित्र भू-भागमें दिया गया दान तामस होता है। इसी प्रकार अकाल शब्दका अभिप्राय भी संक्रान्ति-द्वादशी, अमावस्या-पूर्णिमा-व्यतीपात योगादि पुण्य-कालसे व्यतिरिक्त कालको लिया गया है एवं पर्व-तिथियोंमें भी जननाशौच, मरणाशौच आ जाय तो वह अकाल माना जायगा, ऐसे समयमें दिया गया दान तामस होता है। नट, नाचनेवाले, मूर्ख, हलवाहक कृषक आदि अपात्रोंको दिया जानेवाला दान भी तामस होता है। यदि कदाचित् देश-काल-पात्र मिल भी जाय, किंतु पाद-प्रक्षालनादि सत्कार-विधिरहित साभिमान तिरस्कारपूर्वक दिया जानेवाला दान तामस श्रेणीमें गिना गया है। अतः श्रेयस्कामी पुरुषोंको सात्त्विक भाव या भगवत्सेवा भावसे ही दान देना चाहिये। तामस दानसे दाता-ग्रहीता दोनोंका श्रेय सिद्ध नहीं हो सकता।

दाताको दान देते समय देशकाल-पात्रकी उपलब्धिपर '**ॐ तत् सत्**' इन त्रिविध ब्रह्माक्षरोंका उच्चारण करते हुए अत्यन्त प्रसन्न मनसे अन्नवस्त्रभूमिभवनस्वर्णादि द्रव्योंका परप्रीत्यर्थ विसर्जन करना चाहिये। पूर्वोक्त भगवद्वचनोंसे त्रिविध दानोंमें सात्त्विक दानकी महिमा सर्वोपरि वर्णित है। यज्ञ, दान, तप आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान सात्त्विक भाव एवं भगवत्सेवाकी भावनासे सम्पादित किया जाय तो भगवत्प्राप्ति अर्थात् भगवद्भावापत्तिरूप मोक्षकी प्राप्ति सहजमें हो सकती है। साधन तत्त्वोंका निरूपण करते हुए वैष्णवाचार्योंने कर्म-ज्ञान-भक्ति और प्रपत्तिको भगवत्प्राप्तिके लिये प्रमुख साधन निर्दिष्ट किया है। कर्मसे तात्पर्य भगवदाराधनास्वरूप पूर्वोक्त यज्ञ-दान-तप आदि क्रियाओंको ही समझना चाहिये।

सद्गुरुद्वारा पंचसंस्कारपूर्वक दीक्षा-विधिसे ब्रह्मविद्याका उपदेश भी दान है, जो जीवको भव-बन्धनसे मुक्त कराता है। कहा भी है—

दीयते ऐश्वरं ज्ञानं क्षीयते पापपञ्जरः।
आप्यते वैष्णवं धाम तस्माद्दीक्षोच्यते बुधैः॥

एक बार मैं अपने दीक्षा-गुरुजीसे नित्य अर्चनाहेतु शालग्राम-विग्रह प्रदान करनेकी प्रार्थना कर रहा था। तब आपश्रीने बड़े ही मधुरभावसे कहा—वत्स! कन्या दिये जानेवाले वरकी और अर्चाविग्रह दिये जानेवाले भक्तकी बहुत प्रकारसे परीक्षा करनी पड़ती है, कहीं वर अपनी सहधर्मिणीके पालन-पोषणरूप पतिधर्म निभानेमें असमर्थ न हो, इसी प्रकार भक्त शिष्य भी भगवत्पूजा-आराधनामें उपेक्षा न करने लग जाय। निष्ठापूर्वक सेवा करना—ऐसा कहकर अपनी झोलीसे आँवलेके फलतुल्य एक हिरण्यगर्भ स्निग्ध श्यामल शालग्राम-विग्रह सानुग्रह मुझे प्रदान किया, तबसे मैं उस अर्चाविग्रहमें अपने उपास्यस्वरूप नित्यनिकुंज-विहारी भगवान् श्रीराधाकृष्णयुगलका भावनापूर्वक अर्चन करता हूँ, जिससे अपार आनन्द और सद्गुरुदेवके अनुग्रहकी अनुभूति होती है।

अब अधिक विस्तारमें न जाकर साधकोंके प्रति यही निवेदन करता हूँ कि जो भी यज्ञ-दान-तप आदि सत्कर्मोंका सम्पादन किया जाय, उनमें सात्त्विक भाव और भगवदाराधनाबुद्धि सतत बनी रहे, जिससे कर्मका बन्धन साधकको अवरुद्ध न करे, श्रेयकी प्राप्ति हो सके।

धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थोंका दानसाहित्य

(श्रीसीतारामजी शर्मा)

पुराण, निरुक्त एवं धर्मशास्त्रोंके द्वारा वेदोंको सरल शब्दोंमें व्यक्त करने और सामान्यजनतक पहुँचानेका प्रयत्न ऋषियोंने किया। धर्मशास्त्रको ही स्मृति नामसे कहा गया है। ऋषियोंद्वारा प्रणीत स्मृतिग्रन्थ संख्यामें अनेक हैं। इनमें दिये गये विषय तथा सिद्धान्तोंमें कोई वैमत्य तो नहीं, परंतु कभी-कभी विरोधाभासकी आशंका होने लगती है। अत: ऐसी आशंकाओंके निराकरणहेतु विभिन्न ग्रन्थोंमें दिये गये विषयोंको संकलन करनेकी दृष्टिसे निबन्धग्रन्थोंकी परम्परा प्रचलित हुई। धर्मशास्त्रीय वचनोंके एकत्र संग्रह होने और सन्देहोंके समाधान होनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका होनेसे इन निबन्धग्रन्थोंको निर्णयग्रन्थ भी कहा जा सकता है। इनमें दिये गये दानखण्डमें सभी प्रकरणोंको एकत्रित किया गया है। निबन्धग्रन्थोंकी परम्परा भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें राजा-महाराजाओंके संरक्षणमें अनेक विद्वानोंके सहयोगसे चलती रही। विभिन्न लेखकोंद्वारा धर्मशास्त्रनिर्माणके लिये ही धर्म-सम्पादनहेतु प्रयत्न किया गया। देश, कालके अनुसार समझने-समझानेकी प्रक्रियाओंमें अन्तर होता है, यही कारण है कि विभिन्न धर्मशास्त्रों, निबन्धग्रन्थोंके निर्माणकी आवश्यकता हुई। वे सब-के-सब श्रद्धास्पद हैं। उनका सर्वत्र समादर हुआ। कुछ निबन्धग्रन्थों एवं निबन्धकारोंका, जिन्होंने अपने ग्रन्थोंमें दानप्रकरणको प्रमुखता दी, एक संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है—

कृत्यकल्पतरु

पं० लक्ष्मीधरभट्टद्वारा विरचित कृत्यकल्पतरु बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध निबन्धग्रन्थ है। सारे भारतमें इसकी बहुत प्रतिष्ठा है। बंगाल, मिथिला तथा उत्तर भारतमें इसका विशेष प्रभाव है। लक्ष्मीधरभट्ट कान्यकुब्जनरेश गोविन्दचन्द्रके महामन्त्री थे। इनका समय १२वीं शतीका पूर्वार्ध है। इनके दरबारमें अनेक विद्वान् ग्रन्थप्रणयन तथा धर्मशास्त्रीय निर्णयोंके विषयमें विचार-विमर्श किया करते थे।

'कृत्यकल्पतरु' धर्मशास्त्रीय कृत्योंका एक विख्यात ग्रन्थ है, जिसमें ब्रह्मचारी, गृहस्थ, नियतकाल, श्राद्ध, प्रतिष्ठा, तीर्थ, शुद्धि, राजधर्म, व्यवहार, शान्ति, आचार तथा मोक्षकाण्डोंके अतिरिक्त दानकाण्ड भी दिया गया है। दानकाण्डमें दानधर्मकी मीमांसा हुई है। ये सभी काण्ड बहुत महत्त्वके हैं। दानकाण्डके प्रारम्भमें दानका स्वरूप, देयादेय-वस्तुनिरूपण, पात्रलक्षणके अनन्तर विस्तारमें षोडश महादानोंका वर्णन है, तदनन्तर पर्वतदान, गुडधेनु आदि दान तथा भूमि, अन्न, आरोग्य, अभय आदि दानों और प्रकीर्ण दानोंका विस्तारमें वर्णन आया है। पूरा दानकाण्ड २२ प्रकरणोंमें विभक्त है।

स्मृतिचन्द्रिका

बारहवीं शतीके प्राचीन निबन्धकारोंमें देवण्णभट्टने स्मृतिचन्द्रिकाकी रचना की। दक्षिण भारतमें न्याय तथा व्यवहारसम्बन्धी वार्ताके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है। यह भी अनेक काण्डोंमें विभाजित है। इसमें तत्कालीन निबन्धकारोंके मतोंका भी संग्रह है। दानकाण्डमें इन्होंने दानसम्बन्धी अनेक विषयोंका संग्रह किया है।

दानसागर

विजयसेनके पुत्र बल्लालसेन बंगालके प्रतिष्ठित राजा थे। इन्होंने चार कृतियोंकी रचना की—आचारसागर, प्रतिष्ठासागर, दानसागर और अद्भुतसागर। इनमें दानसागर प्रसिद्ध रचना है, जिसमें सोलह महादानों तथा अन्य छोटे-छोटे दानोंका वर्णन किया गया है। १२वीं शतीके उत्तरार्धमें बल्लालसेनके साहित्य-सृजनका काल रहा। ये बंगालके प्रसिद्ध धर्मशास्त्री अनिरुद्धके शिष्य थे। आचार्य बल्लालसेन दानसागरके उपोद्घातमें बताते हैं कि इसमें पुराणों, उपपुराणों, मन्वादि स्मृतिग्रन्थों तथा धर्मसूत्रोंके वचनोंका संग्रह है। दानके विषयमें वे लिखते हैं कि इसमें षोडश महादान, गुडादि धेनुदान, पर्वतदानोंका वर्णन है। गोदान, भूमिदानके अनेक रूप निरूपित हैं, इसके प्रारम्भमें ब्राह्मणमाहात्म्य, दानमहिमा, सत्पात्रप्रशंसा, दानस्वरूप, दानकी विधि, दानके काल-देश, सद्दान, असद्दान, प्रतिग्रहविधि आदि विषय प्रतिपादित हैं।

चतुर्वर्गचिन्तामणि

इस ग्रन्थके प्रणेता 'हेमाद्रि' हैं। इस ग्रन्थकी इतनी प्रसिद्धि हुई कि चतुर्वर्गचिन्तामणिको हेमाद्रि नामसे ही जाना गया। १३वीं शतीमें इस ग्रन्थका प्रणयन हुआ। यह ग्रन्थ पाँच काण्डोंमें लिखा गया—व्रत, दान, तीर्थ, मोक्ष तथा परिशेष।

दानखण्डमें तेरह अध्याय हैं। मुख्यत: दानप्रशंसा,

दानमहिमा, दानका अनन्तफल, दानका स्वरूप, लक्षण, परिभाषा, दानभेद, दानके विविध प्रकार, षोडश महादान, अतिदान, दशमहादान, तुलादान, कृष्णाजिनदान, दशधेनुदान, पर्वतदान, रत्नदान, वैतरणीधेनुदान, कपिलादान, विद्यादान, देवप्रतिमादान, ग्रन्थदान आदि कालविशेष और निमित्तभेदसे किये जानेवाले दानोंके विषयोंका संग्रह है। ग्रन्थारम्भमें ही दानकी प्रशंसामें नन्दिपुराणके वचनसे कहा गया है कि दान ही मनुष्योंका बन्धु है, दान ही सर्वश्रेष्ठ निधि है, दान ही माता-पिता है, दानके बिना कोई भी मनोभिलषित फल प्राप्त नहीं किया जा सकता—

'दानेन न विना किञ्चित् प्रार्थितं फलमाप्यते।'

स्मृतिरत्नाकर

चौदहवीं शतीके प्रथम चरणमें चण्डेश्वर एक राज्यमन्त्री थे। मिथिलाके धर्मशास्त्रीय निबन्धकारोंमें इनका स्थान सर्वोच्च है। स्मृतिरत्नाकर ग्रन्थमें इन्होंने कृत्य, व्यवहार, शुद्धि, पूजा, विवाद, गृहस्थ तथा दान नामक सात अध्याय लिखे। दानके विषयमें दानरत्नाकरमें विस्तृत वर्णन किया है। संक्षेपमें इसके विषय इस प्रकार हैं— दानविधि-निरूपण, दानस्वरूपकीर्तन, देयादेयनिरूपण, पात्र-विवेचन, महादान-वर्णन, अचलदान, मासदान, ऋतुदान, वापीकूपतडागादिदानविधि, आश्रमदानविधि आदि।

नृसिंहप्रसाद

१५वीं शतीके दलपतिराजकी रचना 'नृसिंहप्रसाद' धर्मशास्त्रका विश्वकोष माना जाता है। यह ग्रन्थ बारह सारोंमें विभाजित है। संस्कार, आह्निक, व्रत, शान्ति, तीर्थ, श्राद्ध, काल, व्यवहार, प्रायश्चित्त, कर्मविपाक, प्रतिष्ठा तथा दानसार। चूँकि इस बृहद् ग्रन्थके प्रत्येक सारके अन्तमें भगवान् नृसिंहकी स्तुति की गयी। अतः इसे नृसिंहप्रसादका नाम दिया गया। दानसारकी अनुक्रमणिकामें बताया गया है कि इसमें दानस्वरूप, दानभेद, दानका फल, दानके अंग, देश-काल-पात्रनिरूपण, सुवर्ण, रजत आदिका परिमाण, कुण्ड-मण्डप-वेदीका लक्षण, षोडश महादान, दशमहादान, अतिदान, देवप्रतिमादान, वर्ष-मास-तिथिके दान, अभयदान, अन्नदान, अलंकारदान, शय्यादान आदिका वर्णन है।

मदनरत्न (दानविवेकोद्योत)

मदनरत्न एक बृहद् निबन्धग्रन्थ है, जिसे मदनरत्नप्रदीप या मदनप्रदीप भी कहा जाता है। राजा शक्तिसिंहके पुत्र मदनसिंहने राजाश्रयमें विद्वानोंको ग्रन्थरचनाके लिये प्रेरित किया, जिन्होंने मदनरत्न ग्रन्थ निर्मित किया। इसमें सात उद्योत हैं, जिनमें काल, आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त, दान, शुद्धि तथा शान्तिसम्बन्धी स्मृति आदि शास्त्रोंके विषयोंका समावेश है। दानविवेकोद्योतके अनुक्रमणिकाध्यायमें ४९ श्लोकोंमें ग्रन्थका प्रतिपाद्यविषय निरूपित है, जिसमें दान-सम्बन्धी सभी विषयोंका समावेश हुआ है। दानकी प्रशंसामें आरम्भमें ही तैत्तिरीय श्रुतिका वचन देते हुए कहा गया है कि दानसे वैरी भी मित्र हो जाते हैं, दानमें सब कुछ प्रतिष्ठित है, इसलिये दानको महान् कहा गया है—

'दानेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्माद्दानं परमं वदन्ति॥'

दानकौमुदी

१६वीं शतीमें बंगालके बाग्री ग्रामके निवासी गयापति भट्टके पुत्र गोविन्दानन्द बहुत बड़े विद्वान् थे। उनका उपनाम कंकणाचार्य भी था। वे महान् वैष्णव थे। दानकौमुदी, क्रियाकौमुदी, श्राद्धकौमुदी, वर्षकृत्यकौमुदी, शुद्धिकौमुदी तथा गोविन्दानन्दीय धर्मशास्त्रका इन्होंने प्रणयन किया। इनका लिखा दानकौमुदी ग्रन्थ विशेष महत्त्वका है।

भगवन्तभास्कर या स्मृतिभास्कर

नीलकण्ठभट्टकी १७वीं शतीके पूर्वार्धके प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंमें गणना होती है। ये प्रसिद्ध मीमांसक शंकरभट्टके पुत्र एवं नारायणभट्टके पौत्र थे। ये मीमांसा, धर्मशास्त्र, न्याय तथा वेदान्त आदि शास्त्रोंके ज्ञाता रहे। इन्होंने भगवन्तभास्कर या स्मृतिभास्कर नामक ग्रन्थकी रचना की। इस धर्मशास्त्रीय ग्रन्थमें बारह प्रकरण विवेचित हैं। सब विषयोंके साथ मयूख पदकी योजना की गयी है। इनके नाम हैं—संस्कार, आचार, समय, श्राद्ध, नीति, व्यवहार, उत्सर्ग, प्रतिष्ठा, प्रायश्चित्त, शान्ति और दानमयूख। दानमयूखमें दानतत्त्व एवं दानभेदोंका सांगोपांग वर्णन है, जो अन्य मयूखोंसे बड़ा भी है। दानके विषयमें दानमयूखका विवरण अत्यन्त महत्त्वका है।

स्मृतिकौस्तुभ

स्मृतिकौस्तुभके प्रणेता अनन्तदेव महाराष्ट्रीय थे, पर इनकी सारी साधना कुमायूँके नरेश बाजबहादुरचन्दके राज्याश्रयमें हुई। ये राजमान्य सभापण्डित थे और राजाने

इनके काशीमें रहने आदिका पूर्ण व्यय वहन किया।

अनन्तदेवने १७वीं शतीके पूर्वार्धमें १५ ग्रन्थोंका प्रणयन किया, जिनमें स्मृतिकौस्तुभ, प्रायश्चित्तदीपिका, कालबिन्दुनिर्णय आदि प्रसिद्ध हैं।

स्मृतिकौस्तुभ एक विशाल ग्रन्थ है, जो सात कौस्तुभोंमें विभक्त है—संस्कार, उत्सर्ग, आचार, राजधर्म, प्रतिष्ठा, तिथि-संवत्सर तथा दानकौस्तुभ। दानकौस्तुभमें दानविषयक बातें संग्रहीत हैं।

इसी प्रकार पं० दिवाकरकृत दानचन्द्रिका ग्रन्थ भी बड़े महत्त्वका है, ऐसे ही पं० श्रीसुदामामिश्रकृत श्रीदानदीपिका भी है, जिसमें बारह मासोंमें दिये जानेवाले देय-द्रव्योंके दानकी बातें संग्रहीत हैं।

'मानस' में दान-महिमा

(श्रीरामसनेहीजी साहू)

श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीने कतिपय प्रसंगोंमें दान-धर्मकी महिमा दरसायी है। उत्तरकाण्डमें कलि-युगके वर्णनमें तो दान-धर्मको ही श्रेयस्कर बताया है। यथा—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

अर्थात् इस कलिकालमें दान ही प्रमुख धर्म है, चाहे जैसे भी बन पड़े उदारतापूर्वक उचित पात्रोंको अपने स्वत्वोंका उत्सर्ग करना कल्याणका हेतु है।

मानसमें तीन प्रकारके दानियोंका उल्लेख है—

१. उदार (समर्थदानी), २. महादानी और ३. सर्वस्व-दानी। विभिन्न प्रसंगोंके माध्यमसे इनपर विचार प्रस्तुत है।

१. उदार (समर्थदानी)—याचकोंकी अभिलाषा पूर्ति करनेवाले समर्थदानी सर्वत्र उल्लेखनीय हैं, जिनमें देशकाल-परिस्थितिके अनुसार दान करनेकी परम्परा अद्यतन चली आ रही है। मानसमें विभिन्न स्थलोंपर दान-परम्पराका उल्लेख है। राजा प्रतापभानुके प्रसंगमें हम देखते हैं कि वह धर्मशील, उदारदानी राजा था, जो प्रतिदिन याचकों एवं ब्राह्मणोंको भरपूर दान दिया करता था। साथ ही यज्ञ-दानादि शुभ कार्य करके उनका फल ईश्वरको अर्पण करता था। यथा—*'करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥'* इतनेपर भी राजा नृगकी तरह उन्हें अल्प भूलवश प्रायश्चित्तस्वरूप अगले जन्ममें राक्षस होना पड़ा।

राजा दशरथने भी प्रभु श्रीरामके जन्म एवं विवाहके सुअवसरोंपर याचकों एवं भूसुर (ब्राह्मण-ऋषि-मुनि) आदिको विविध प्रकारके दान-मानसे सन्तुष्ट किया। माता कौसल्या आदिने भी दानादिकसे याचकोंको खुश किया था।

२. महादानी—श्रीमानसके मनु-शतरूपा प्रसंगमें उनके घोर तपसे प्रसन्न होकर स्वयं साकेतवासी प्रभु अपनी पराशक्ति सीताजीके साथ प्रकट हुए और नृप-दम्पतिसे वर माँगनेका आग्रह किया। प्रभुके असीम शोभा-वपुके दर्शनकर मनुमहाराज अपनी सुध-बुध भूलकर मग्न हो गये और प्रभुको ही सदैवके लिये अपना बनानेकी कामना मनमें रखकर संकोचवश प्रकट न कर पाये; क्योंकि प्रभुकी रूपमाधुरीके दर्शनकर उनमें वात्सल्य भाव जाग्रत् हो गया। तब अन्तर्यामी प्रभुने उनसे कहा कि राजन्! मैं पूर्वमें आनेवाले त्रिदेवोंकी तरह केवल वरदानी ही नहीं, बल्कि महादानी हूँ। अतएव *'मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥'* और निःसंकोच अपनी इच्छा प्रकट करो तथा *'सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही॥'* अर्थात् यदि तुम्हारे मनमें मुझे ही पानेकी आकांक्षा है तो निःसंकोच होकर मुझसे कहो। मैं तुम्हारी इस इच्छाको भी पूर्ण करूँगा। तब मनु महाराजने कहा कि— *'चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥'* प्रभुने भी अपने-जैसा अनुपम रूप अन्यत्र न खोजने एवं स्वयं ही पुत्ररूपमें अवतरित होनेका वर दे दिया। पुनश्च माता शतरूपाजीको उनकी विनम्रतासे ज्ञानी-भक्तकी सुगतिका वर दिया। ऐसे हैं हमारे प्रभु महादानी, जो अपने भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेहेतु स्वयंको भी सौंप देते हैं। यहाँतक कि आर्त, अर्थार्थी भक्त विभीषण, सुग्रीव आदिपर भी प्रसन्न होकर उन्हें कष्टोंसे मुक्ति दिलाकर ऐश्वर्यादि (भुक्ति-मुक्ति) प्रदान करके भी स्वयं ही संकोचमें पड़ जाते हैं कि *'प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥'* मैंने इन्हें

अपनी गरिमाके अनुसार कुछ भी नहीं दिया और—*'जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ। सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥'* ऐसे प्रभुके दानकी महिमा अपार है।

३. सर्वस्वदानी—वे उदारदानी, जो अपने याचकोंको अपना सबकुछ दे डालते हैं, सर्वस्वदानी कहलाते हैं। जैसे कि ऋषि दधीचिने इन्द्रकी याचनापर अपना जीवन दानकर अस्थियाँ प्रदान कीं तथा राजा हरिश्चन्द्रने अपना राजपाट ऋषि विश्वामित्रको देकर दक्षिणा चुकानेहेतु अपनेको रानी एवं पुत्रसहित बेचकर कठिन परीक्षा दी थी।

प्रभु श्रीरामके प्राकट्यपर राजा दशरथ एवं रानियोंने प्रेममग्न होकर विविध प्रकारके दानोंके अलावा अपने जीवनधन श्रीरामको ही सबकी गोदमें दे दिया। तब गोस्वामीजीने उस दृश्यका चित्रण इस प्रकार किया है *'हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह।* तथा *जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥'* तथापि *'सर्बस दान दीन्ह सब काहू।* (फिर) *जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥'* यहाँतक कि दान पानेवाले भी पाया हुआ सबकुछ लुटाकर दानी हो गये। यह सर्वस्वदानका अनूठा उदाहरण है। यहाँ दानी ही नहीं दान लेनेवाले भी सर्वस्वदानी बन गये। सन्तोंके मतानुसार श्रीदशरथ-कौसल्याजीने अपने जीवनधनसर्वस्व प्राणप्रिय प्रभु श्रीरामजीको ही वहाँ उपस्थित लोगोंकी गोदमें समर्पित कर दिया, फिर तो लेनेवाले भी एक-दूसरेको वही सर्वस्वदान देकर प्रसन्नताका अनुभव करने लगे।

पुराणोंके अनुसार राजा बलिने भी वामनभगवान्‌को यज्ञमें उनके इच्छानुसार तीन पग भूमिदानका संकल्प किया, उनके गुरु शुक्राचार्यजीके समझानेपर भी कि ये भगवान् विष्णु हैं, जो तुम्हें छल करके सर्वस्व हर लेंगे, तब भी राजा बलिने सहर्ष कृतज्ञतापूर्वक प्रभुको भूमिदानके बहाने अपना सम्पूर्ण त्रिलोकीका ऐश्वर्य समर्पित करते हुए स्वयंका शरीर भी उनके चरणोंपर न्यौछावर कर दिया। तब भगवान्‌ने राजा बलिको वर देकर स्वयंको उनका सेवक बना दिया। तभी तो प्रभु अपने भक्तोंकी पराधीनता स्वीकार करके उनके वशमें हो जाते हैं, यही सर्वस्वदानकी अतुलनीय महिमा है, जो परात्परब्रह्म अखिल ब्रह्माण्डनायकको भी भक्तके सामने आत्मसमर्पण करनेको बाध्य कर देती है।

स्वरविज्ञान और दान

(श्रीपवनजी अग्रवाल)

भगवान् शिव पार्वतीजीसे कहते हैं—

श्वासे सकारसंस्थे तु यद्दानं दीयते बुधैः। तद्दानं जीवलोकेऽस्मिन् कोटिकोटिगुणं भवेत्॥

(शिवस्वरोदय)

'अर्थात् विद्वान् लोगोंद्वारा सकारयुक्त बायें स्वरमें जो दान दिया जाता है, उससे इस मृत्युलोकमें कोटिगुणा फल प्राप्त होता है।'

सकारयुक्त बायें स्वरसे तात्पर्य है कि मनुष्य जब बायीं नासिकासे श्वास ग्रहण कर रहा हो। प्रायः हमारी एक नासिका क्रियाशील होती है। श्वास लेनेमें नासिकाका क्रम प्रायः बदलता रहता है, कभी हम बायीं नासिकासे श्वास लेते हैं, कभी दायीं नासिकासे और क्रम-परिवर्तन अर्थात् संक्रमणके समय कुछ समयके लिये हम दोनों नासिकाओंसे श्वासको लेते तथा छोड़ते हैं। सकारसे तात्पर्य उस कालसे है, जब हम श्वासको अन्दर ग्रहण कर रहे होते हैं। इसके विपरीत हकारसे तात्पर्य श्वासको निकालनेके समयसे है, यह काल दान करनेके योग्य नहीं है। अतः शिवजीके कथनानुसार हमें दानका करोड़ों गुना फल प्राप्त करनेके लिये जब हमारा बायाँ अर्थात् चन्द्रस्वर चल रहा हो, तब श्वासको खींचते हुए दान करना चाहिये। चन्द्रयोगमें अमृतस्राव तथा सूर्यके समान द्युति होती है। एक और गोपनीय नियम व्यवहारके हेतु भगवान् शिवजीने कहा है कि जिस समय जो स्वर चल रहा हो, उस स्वरको खींचते हुए उसी स्वरवाले हाथसे शुभ कार्य तथा कार्यकी सिद्धिहेतु लेन-देन करना चाहिये। ऐसा करनेसे कार्य सिद्ध होता है। जब दोनों स्वर (सुषुम्ना स्वर) चलें अथवा स्वर-संक्रमणके समय कोई लेन-देन (भजन, ध्यान तथा दानके अतिरिक्त) न करें, इस समय किया गया लेन-देन निष्फल तथा हानिप्रद होता है। श्वासको छोड़ते हुए किया गया लेन-देन भी लाभप्रद नहीं होता।

वीरशैवधर्ममें दान-महिमा

(श्रीष०ब्र०डॉ० सुज्ञानदेव शिवाचार्यजी स्वामी, शिवाद्वैत साहित्यभूषण)

योगजागममें कहा गया है—

देहदानात्सत्यसिद्धिरर्थदानाच्च निर्वृतिः।
प्राणदानाज्ज्ञानसिद्धिरेवं सर्वं स्थिरं भवेत्॥

देहदानसे सत्य वस्तुकी सिद्धि होती है, द्रव्यदानसे सुखकी प्राप्ति होती है और प्राणार्पणसे ज्ञानका लाभ होता है। इस तरह इस दानत्रयीसे सर्वसिद्धि होती है।

वीरशैवधर्ममें मान्यता है कि गुरु, लिंग और जंगमोंका

सदा अर्चन करना, नैवेद्य निवेदन करना तदनन्तर उन्हें दक्षिणा अथवा दान देना आवश्यक है। शरीर, मन और धन हमारे जीवनकी प्रमुख सम्पत्ति हैं। इन तीनोंका क्रमशः गुरु, लिंग और जंगमके लिये अर्पण करना ही उत्तम दान कहा जाता है। श्रीगुरुको पूर्ण प्रणिपात होकर समर्पित भावसे अपना मनुष्यरूप शरीर अर्पण करना चाहिये। उस समय वे बहुत आनन्दित होते हैं और नित्य सत्य परमात्माकी प्राप्तिहेतु साधनाकी ओर ले जाते हैं। यही सत्यसिद्धि देहार्पणसे मिला हुआ फल है। लिंगमें जीवभाव अर्पित करना चाहिये। महालिंगमें लीन होकर सदा अखण्डानन्दाम्बुधिमें रहना ही जीवभावका फल होता है। अन्तमें जंगमको धनादि अर्पण करना चाहिये। ज्ञानोपदेश पाकर इष्टदेवपूजन करनेहेतु मन्दिर आदिका निर्माण करना चाहिये। सदा गुरूपदेशके अनुसार नित्य मनन, ध्यान, निदिध्यासन करनेपर शिवतत्त्व प्राप्तकर चिद्घनाम्बुधिमें रहना ही जंगमार्पणका फल है। उसीको ज्ञानसिद्धि कहा जाता है।

भगवत्पाद श्रीजगद्गुरु श्रीरेणुकाचार्यजी बताते हैं कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि दशविध धर्मोंमें दान भी एक धर्म है, अतः सत्पात्रमें धनका समर्पण ही दान है। शिवाचार्य और शिवयोगियोंको अपनी भक्ति और शक्तिके अनुसार हमेशा दान करना चाहिये। सिद्धान्त-शिखामणिमें **'दानं तु त्रिविधं प्रोक्तं सोपाधिनिरुपाधिकं सहजं च इति'**—कहकर दानके तीन भेद बतलाये हैं—सोपाधिकदान, निरुपाधिकदान और सहजदान।

१-सोपाधिकदान—शिवभक्तको लोक-व्यवहारके साथ काम करते हुए अन्तरंगमें अध्यात्मसाधन करना चाहिये। गुरु, लिंग, जंगमको क्रमशः तन, मन, धन अर्पण करना चाहिये। प्रतिफलकी अपेक्षासे किया गया दान ही सोपाधिक दान कहा जाता है। प्रशस्त होनेपर भी मुमुक्षु इसका आदर नहीं करते। **'प्रयोजनमनुद्देश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते'** इस लोकोक्तिके अनुसार हर एक मनुष्य किसी कार्य या आचरणको करनेसे पहले फलके बारेमें विचार करता है। मनुष्यकी प्रवृत्ति स्वाभाविक फलात्मक रहनेसे ही हर एक लौकिक और पारलौकिक कर्मोंका फल-विचार बतलाया गया है। हर एक क्षेत्रमें मनुष्य व्यापारिक दृष्टिकोणसे देखता है। वह जो भी करता है तो उसका प्रतिफल चाहता है। इसी तरह मनुष्य बुद्धि, लाभ और लोभसे इच्छा रखता है।

फल नामक लोभ जिनके मनमें रहता है, उसके द्वारा कोई भी कार्य होनेपर फलापेक्षा नामक मनोवृत्तिका उसके मनमें हमेशा उद्भव होता रहता है। ऐसा कार्य करनेवाले

मनुष्यमें फलापेक्षावृत्तिका उद्भव होनेसे उसका कार्य सम्पूर्ण मनोयोगसे सम्भव नहीं होता। इस प्रकार पूर्णमनोयोग न होनेके कारण वह कार्य उतना सुचारुरूपसे सम्भव नहीं हो सकता। इसलिये फलापेक्षारूप जो भी कार्य हो, मुमुक्षुको उसका आदर नहीं करना चाहिये।

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' ईशावास्योपनिषद्के इस वचनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य किसी वस्तुका उपभोग करता है तो उसका कुछ अंश उसे दान भी करना चाहिये। दान करनेसे मनुष्यकी संकुचित एवं स्वार्थभावना न्यून होकर उसमें निःस्वार्थ एवं समष्टिभाव उत्पन्न होता है। आध्यात्मिक प्रवृत्तिके कारण इस दानको धर्मके नामसे कहा जाता है। अपने सम्पादित धन-धान्य, वस्त्र-वाहन आदि हर एक पदार्थका मनुष्य दान कर सकता है। दान करनेसे हमें उसका फल मिलता है। ज्यादा लोग पहले प्रतिफलकी योजना करके ही दानादि कार्य करते हैं। प्रतिफलापेक्षासे किया गया दान सामान्य जनोंको इष्ट होते हुए भी मुमुक्षुजनोंके लिये प्रिय नहीं होता। मुमुक्षुओंको जिनके मनमें ऐहिक या पारलौकिक कोई भी फल नहीं रहता, उनके लिये यह सोपाधिक दान प्रशस्त नहीं। यद्यपि मुमुक्षुओंसे यह दान अनादृत है तो भी सामान्यजनोंको धर्ममार्गकी ओर ले जानेमें यह दान सहकारी होता है। इसलिये इसको भी धर्म ही मानते हैं।

देवताओं और ब्राह्मणोंकी पूजा, शिवभक्तों एवं विशेषरूपसे ब्राह्मणोंको दान करना—यह शिवागमोंके मार्गका अनुकरण करनेवालोंका सनातनधर्म है—

दानानि शिवभक्तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।
राज्ञा शिवागमस्थानामेष धर्मः सनातनः॥

(पा० आ० १७। १७)

२-निरुपाधिक दान—लौकिक या पारलौकिक किसी भी फलकी अपेक्षा न करते हुए (निष्काम) दान करना ही निरुपाधिक दान कहा जाता है। इसीको भगवत्पाद श्रीरेणुकाचार्यजीने एक उपदेशमें कहा है—

फलाभिसन्धिनिर्मुक्तमीश्वरार्पितकाङ्क्षितम्।
निरुपाधिकमाख्यातं दानं दानविशारदैः॥

फलाकांक्षासे रहित होकर ईश्वरार्पित बुद्धिसे दान देनेको दानतत्त्वके जाननेवाले निरुपाधिक दानके नामसे पुकारते हैं।

लोक-लोकान्तरके फलकी इच्छा मनुष्यको पुनः संसार-बन्धनमें बाँध देती है। इसीलिये मुमुक्षुजन किसी भी प्रतिफलकी कोई अपेक्षा नहीं करते हैं। केवल ईश्वरार्पणबुद्धिसे दान-धर्मादि करते रहते हैं। ऐसे बिना प्रतिफलकी अपेक्षासे किये हुए दानको निरुपाधिक दान कहते हैं। ईश्वरार्पणके अतिरिक्त दूसरी इच्छा यहाँ न रहनेसे इसको निष्कामदानके नामसे पुकारते हैं।

हिरण्यकशिपु, भस्मासुर और त्रिपुरासुर आदिने अत्यन्त कठोर तप करके उसके प्रतिफलस्वरूप परमात्मासे वर प्राप्त किया तो भी उनको सुख नहीं मिला। यह विषय सब जानते हैं। इसलिये जो भक्त हो, उसे किसी प्रतिफलकी अपेक्षा न करके केवल ईश्वरार्पण बुद्धिसे दानादि धर्मोंका आचरण करना चाहिये। ईश्वर भक्तोंको देनेयोग्य फल देते ही हैं। ईश्वर सर्वज्ञ होनेसे भक्तके हित-अहितके बारेमें जानते हैं। अल्पज्ञ भक्त अपने ही हित-अहितके विषयमें नहीं जानता। इसलिये शिवभक्तको अपनी बुद्धिसे अपनेको योग्य समझकर अपने-आप निर्णय न करके निर्णयको ईश्वरके ऊपर छोड़कर अपना हर एक धर्माचरण ईश्वरार्पणबुद्धिसे ही करना चाहिये। ऐसे भक्तोंका सर्वांगीण विकास होता है। प्रतिफलकी अपेक्षा न करते हुए ईश्वरार्पणबुद्धिसे किये हुए दानको ही निरुपाधिक दान या निष्कामदान कहा जाता है।

३-सहजदान—दानको स्वीकार करनेवाला, दान करनेवाला एवं दान करनेके पदार्थ—सबमें शिवस्वरूपकी भावना करके अपनेमें अकर्तृत्व भाव लेकर किया गया दान ही सहजदान कहा जाता है। सोपाधि, निरुपाधि दानोंसे यह सहजदान श्रेष्ठ है। इस दानके परिणामस्वरूप ही शिवभक्त जनन-मरणात्मक संसाररोगका निवारण करनेवाला शिवतादात्म्यरूप ज्ञान प्राप्त करता है। शिवजीको या शिवभक्तको अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे जो कुछ भी दिया जाता है, उसको भी सहजदान कहते हैं—

अदातृदातृदेयानां शिवभावं विचिन्तयन्।
आत्मनोऽकर्तृभावं च यद्दत्तं सहजं भवेत्॥
सहजं दानमुत्कृष्टं सर्वदानोत्तमोत्तमम्।
शिवज्ञानप्रदं पुंसां जन्मरोगनिवर्तकम्॥
शिवाय शिवभक्ताय दीयते यदि किञ्चन।
भक्त्या तदपि विख्यातं सहजं दानमुत्तमम्॥

(सि॰ शि॰ ८४—८६)

दानरूपी व्यवहार चलानेके लिये दान करनेवाला व्यक्ति, दान लेनेवाला व्यक्ति और दानकी वस्तु—इन त्रिपुटियोंकी आवश्यकता रहती है। इनमें एकके भी न रहनेपर दानरूपी व्यवहार सम्भव नहीं होता। दान देनेवाले व्यक्तिके मनमें 'मैं दे रहा हूँ, वह ले रहा है और यह देनेकी वस्तु है'—इन त्रिपुटियोंकी भावना आनेपर उसे असहज-दानके नामसे पुकारते हैं। उस समय ऐसी भावना न आनेपर और सहज भावसे क्रिया होनेपर ही उसे सहज दान कहते हैं।

शिवभक्त समष्टिभाव रखकर दान आदिके आचरणको ही सहजदानके नामसे पुकारते हैं। यह दान दोनों दानोंसे सर्वश्रेष्ठ है। इस दानके फलसे ही दाता शिवज्ञान पाकर जन्म-मरणात्मक रोगसे निवृत्त हो जाता है।

दाता भोक्ता स्वयं शिवः—ऐसा उत्कृष्ट भाव रहनेसे शिवज्ञानकी प्राप्ति होती है। इसलिये शिवभक्तों, गुरु, लिंग, जंगमादिकोंको दान करते रहना चाहिये। गीता आदि शास्त्रोंमें सकाम और निष्काम दानके बारेमें उल्लेख आया है, लेकिन इस सहजदानकी कल्पना केवल श्रीसिद्धान्तशिखामणिमें है, जो अत्यन्त वैशिष्ट्यपूर्ण है।

संस्कृत वाङ्मयमें दानधर्मनिरूपण

(महामहोपाध्याय डॉ॰ श्रीवागीशजी शास्त्री)

महाभारतके शान्तिपर्वमें धर्मके अन्तर्गत दानका वर्णन किया गया है। स्व-स्वत्वनिवृत्तिपूर्वक दी गयी वस्तु दानके अन्तर्गत परिगणित होती है। हिरण्य, भूमि, अन्न, गौ, कन्या, विद्या, ज्ञान, अभय इत्यादिका दान किया जाता है। विद्या, ज्ञान तथा अभय किसी वस्तुके अन्तर्गत नहीं आते। अतः इन्हें संकल्पपूर्वक देनेकी व्यवस्था नहीं है। भावनाके उच्चावचत्वके अनुसार दानकी उच्चावचता ठहरती है। दानके चार प्रकार बताये गये हैं—१. नित्य, २. नैमित्तिक, ३. काम्य तथा ४. विमल। किसी फलकी कामनाके बिना अनुपकारी व्यक्तिको प्रतिदिन जो दान दिया जाता है, वह **नित्यदान** कहा जाता है। जो दान पापशान्तिके उद्देश्यसे विद्वानोंके करकमलोंमें समर्पित किया जाय, उसे **नैमित्तिकदान** कहते हैं। पुत्र, धन, ऐश्वर्य तथा स्वर्गकी प्राप्तिके लिये जो दान दिया जाय, वह **काम्यदान** कहलाता है। ईश्वर-प्रीतिके लिये सात्त्विक चित्तसे ब्रह्मवेत्ताओंको जो दान दिया जाता है, उसे **'विमलदान'** कहते हैं।

दान-समर्पणमें पात्रापात्रका विचार आवश्यक है। अपात्रको जैसे दिये गये दानसे विपरीत फल मिलता है। जिस प्रकार दुर्गन्धयुक्त बर्तनमें सुगन्धित वस्तुके रखनेपर वह दुर्गन्धयुक्त हो जाती है, उसी प्रकार दुर्गुणयुक्त पात्रको दिया गया दान प्रदूषित हो जाता है। वह दाता तथा भोक्ता दोनोंके लिये अहितकर होता है। अग्निपुराणमें सोलह अपात्रोंका उल्लेख हुआ है। इनमें दिये गये दानको वृथा दान कहा गया है। तैत्तिरीय उपनिषद्के एकादश अनुवाकमें निर्देश है कि दान श्रद्धापूर्वक दिया जाना चाहिये—**'श्रद्धया देयम्, अश्रद्धयादेयम्।'**

मोक्ष या कल्याणकी कामनावाले पुरुष **'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'** इस भावसे फलको न चाहकर नाना प्रकारकी यज्ञ-तपरूप तथा दानरूप क्रियाओंका सम्पादन करते हैं (श्रीमद्भगवद्गीता १७। २५)। दानमें वस्तुके उच्चावचत्वका महत्त्व नहीं, अपितु श्रद्धा-भक्तिका महत्त्व है। भगवान् श्रीकृष्णकी श्रीमद्भगवद्गीता (९। २६)-में प्रतिज्ञा है कि जो व्यक्ति प्रेमपूर्वक श्रद्धासे मुझे पत्र, पुष्प, फल और जल समर्पित करता है, उस शुद्धात्माकी इन वस्तुओंको मैं प्रीतिके साथ ग्रहण करता

हूँ। द्रौपदी, गजराज, विदुरानी और रन्तिदेव इनके क्रमशः उदाहरण हैं।

प्रदत्त दानका फल अवश्य मिलता है—भुक्ति या मुक्ति। जो दान नहीं देता है, उसे इन दोनोंकी प्राप्ति नहीं होती। मनुजीका यह वचन सत्य है कि अदत्त वस्तु (जिसका दान नहीं किया गया, वह) उपस्थित नहीं मिलती, पृथ्वीके जलसे पूर्ण रहनेपर भी वह चातकके लिये मरुस्थली रहती है—

सत्यं सत्यं मनोर्वाक्यं नादत्तमुपतिष्ठते।
अम्बुभिः पूरिता पृथ्वी चातकस्य मरुस्थली॥

(उद्भटसागर ११९)

जिस-जिस भावनासे दान दिया जाता है, उसी-उसी भावनासे प्रतिपूजित दाता उसे प्राप्त करता है—

येन येन तु भावेन यद् यद् दानं प्रयच्छति।
तत् तत् तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः॥

(मनुस्मृति ४। २३४)

मनुजीका कथन है कि सत्ययुगमें तप, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दानका महत्त्व है (१। ८६)। उनके अनुसार दान-धर्मका आचरण अनुपेक्ष्य है—**'दानधर्मं निषेवेत'** (४। २२७)। चतुर्थ अध्यायके २२९ से २३२ तकके श्लोकोंमें उन्होंने दानका वैज्ञानिक स्वरूप प्रतिपादित किया है। उन्होंने बताया है कि अभीप्सित सन्तानप्राप्तिके लिये तिलका, उत्तम नेत्रप्राप्तिके लिये दीपकका, अक्षय सुखकी प्राप्तिके लिये अन्नका, तृप्तिप्राप्तिहेतु जलका, दीर्घायुप्राप्तिहेतु स्वर्णका, उत्तम रूपप्राप्तिहेतु चाँदीका और उत्तम भार्याप्राप्तिहेतु यान-शय्याका दान देना चाहिये। गरुडपुराणमें विस्तृत सूची दी गयी है।

हारीतसंहिताने रोगोंके शमनार्थ दानका विधान किया है। पाण्डुरोग-शान्तिहेतु गोदान, भूमिदान या स्वर्णदान, कुष्ठरोग-शान्तिहेतु गो, भूमि-हिरण्यदान तथा मिष्टान्नदान, मधुमेह, शूल, श्वास और भगन्दर रोग-निवारणहेतु स्वर्णदान, अर्श, श्वास और कास-निवारणार्थ अन्नदान, मेह (प्रमेह) तथा अश्मरी रोग-निवारणार्थ लवणदानका विधान बताया है।

मनुस्मृतिमें कन्यादानकी चार विधियाँ प्रशस्त बतायी गयी हैं—१. ब्राह्म, २. दैव, ३. आर्ष तथा ४. प्राजापत्य। इन विधियोंको धर्म भी बताया गया है।

शुद्धितत्त्वमें दानके छः अंग बताये गये हैं—१. देश, २. काल, ३. मन, ४. पात्र, ५. भूमि तथा ६. जल। विशिष्ट देश और कालमें शुद्ध मनसे (श्रद्धापूर्वक) सत्पात्रके लिये संकल्पपूर्वक जलको भूमिपर छोड़ना—

देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानि षड् विदुः।
मनसा पात्रमुद्दिश्य भूमौ तोयं विनिःक्षिपेत्॥

गरुडपुराणमें वैशाखपूर्णिमाकी विशेष महिमा बतायी गयी है। सभी पर्वोंपर सत्पात्रको दिया दान अक्षय होता है। विशेषतः सूर्य-चन्द्र ग्रहणके अवसरपर दिया दान अभीष्ट प्रदान करता है। गरुडपुराणमें इसका विवेचन है—

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥
प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायां च विशेषतः।
दानधर्मात् परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते॥
स्वर्गायुर्भूतिकामेन देयं पापोपशान्तये।

सम्राट् हर्षवर्धनने सप्तम शताब्दीमें प्रयाग-संगमस्थलीपर सर्वस्वदान दिया था। यहाँतक कि शरीरके वस्त्रालंकारतक दानमें दे दिये थे और अपनी बहनसे याचित वस्त्रद्वारा तन ढँका था। दानकी यह परम्परा अनादि कालसे चली आ रही है। महाराज हरिश्चन्द्रने स्वप्नमें विश्वामित्रको राज्य दानमें दे दिया। दिये गये दानकी दक्षिणा भी देनी होती है। स्वयं विक्रीत होकर उन्होंने दक्षिणा दी थी। यज्ञमें भी दक्षिणा देनी पड़ती है—**'वृथा यज्ञस्त्वदक्षिणः।'** यज् धातुका अर्थ दान भी होता है। यज्ञोंका आयोजन दाननिमित्तक होता है। पुराणों और अभिलेखोंके अनुसार समुद्रगुप्तने विजय प्राप्त करनेके अनन्तर यज्ञमें ब्राह्मणोंको सुवर्ण मुद्राओंका दान दिया था। महाराज रघुने विश्वजित् यज्ञमें सर्वस्व दान कर दिया था। वे मृण्मय पात्रोंमें भोजन करते थे। इसलिये अतिथिका सत्कार भी उन्हींसे किया—

स मृन्मये वीतहिरण्मयत्वात् पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः।
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः॥

(रघुवंश ५। २)

मनुस्मृति (७।८६।७-८)-में स्पष्ट कहा है कि संग्राममें जीते गये धनका दान द्विजोंको समर्पित करे। यह परम धर्म है—

एष एव परो धर्मः कृत्स्नो राज्ञ उदाहृतः।
जित्वा धनानि संग्रामाद् द्विजेभ्यः प्रतिपादयेत्॥
देशकालविधानेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्।
पात्रे प्रदीयते यत्तु तद् धर्मस्य प्रसाधनम्॥

मानवकी स्वभावतः धनसंग्राहक प्रवृत्ति रहती है। दिन-प्रतिदिन लोभ बढ़ता जाता है। अन्तःकरणके अनैर्मल्यका कारण परिग्रह भी है। दानद्वारा उसकी शुद्धि होती है। बृहदारण्यक उपनिषद्में कथा आती है कि देव, असुर तथा मानव ब्रह्माजीकी शरणमें गये कि उन्हें कुछ उपदेश दिया जाय। ब्रह्माजीने उन्हें 'द' का उपदेश दिया। देवताओंने अपनी भोग-प्रवृत्तिको लक्ष्यकर उसका अर्थ लगाया 'दम'—इन्द्रियोंका संयम। असुरोंने अपनी क्रूर और हिंसक प्रवृत्तिको लक्ष्यकर उसका अर्थ लगाया 'दया' और मनुष्योंने अपनी लोभी प्रवृत्तिको लक्ष्यकर उसका अर्थ लगाया 'दान'। उपनिषद्के इस दानका स्रोत पुरातनतम ऋग्वेदसंहितामें विद्यमान है। वहाँ भूमिदान तथा गोदानका स्पष्ट उल्लेख है—

'अहं भूमिमददामार्यायाऽहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।'

(४।२६।२)

वहाँ चार हजार गायोंके दानका विवरण प्राप्त हैं—

'भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन् गवां चत्वारि ददतः सहस्रा।'

(५।३०।१२)

संक्षेपतः दानकी, दान-धर्मकी महिमा अपार है। पुत्र-प्राप्तिकी प्रसन्नतामें दशरथजीने सर्वस्व दान दिया था। इसका निरूपण तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें किया है—

सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥

धनकी तीन ही गतियाँ होती हैं—दान, भोग तथा नाश। जो न दान देता है और न ही उसका भोग करता है तब उसकी तीसरी गति (नाश) होती है—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

आयुर्वेदशास्त्र और आरोग्यदान

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' तथा **'धर्मार्थकाम-मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्'** (चरकसू० १।१५) इत्यादि वचनोंसे सिद्ध है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धिके लिये सर्वतोभावेन शरीर तथा मनका स्वस्थ एवं नीरोग रहना नितान्त आवश्यक है। रोगोंसे आक्रान्त शरीरके द्वारा कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं किया जा सकता। स्वास्थ्य अथवा आरोग्यताका निर्वचन करते हुए आचार्य सुश्रुतका कहना है कि जिसके जीवनमें दोष (वात, पित्त, कफ), अग्नि, धातु, मलक्रिया सम हो तथा जो निर्मल शरीर, प्रसन्न इन्द्रिय और मनसे सम्पन्न हो, वह स्वस्थ है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सुश्रुतसू० १५।४०)

चिकित्साशास्त्रका उद्देश्य ही है कि स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षा की जाय और जो आतुर है, रोगी है, उसके रोगकी निवृत्ति की जाय—**'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनम्'** (चरकसू० ३०।२६)। स्थूलरूपसे इन्हीं दो प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये आरोग्यशास्त्र प्रवृत्त हुआ है और जो चिकित्सक 'प्राणिमात्रपर दया करना धर्म है'—यह समझकर चिकित्साक्षेत्रमें प्रवृत्त होता है, वही सिद्धार्थ और वही वास्तविक सुख और सुयश प्राप्त करता है—**'परो भूतदया धर्म इति मत्वा चिकित्सया वर्तते यः स सिद्धार्थः सुखमत्यन्तमश्नुते'** (चरकचिकि० १।४।६२)।

साथ ही **'वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा'** कहकर मैत्री और कारुण्यको ही चिकित्सकका मुख्य धर्म बताया गया है।

इस प्रकार आरोग्यशास्त्रने चिकित्साके क्षेत्रमें दयाधर्म और सेवाधर्मको ही मुख्य माना है। प्रकारान्तरसे उसके द्वारा यह आरोग्यताका दान है। किंतु सर्वसामान्यरूपसे

आरोग्यदानका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, न केवल चिकित्सा करना आरोग्यदान है अपितु धनहीन रोगीको औषधि देना, उसकी सेवा करना, उसके लिये पथ्य-आहार आदिकी व्यवस्था करना, उसे रहनेके लिये स्थान देना अथवा स्थानकी व्यवस्था करा देना, उसके मनोबलको बढ़ाते हुए उसे धैर्य प्रदान करना, उसके परिजनोंकी यथासम्भव व्यवस्था करना तथा रोगियोंके उपचारके लिये आरोग्यशाला (अस्पताल)-का निर्माण करना अथवा निर्माणमें सहयोग प्रदान करना, आरोग्यशालाओंका जीर्णोद्धार कराना, उत्तम चिकित्सकों तथा सेवाकर्मियोंकी व्यवस्था करना आदि अनेक क्षेत्र हैं, जहाँ सहयोग, सेवा, धन आदि प्रदानकर महान् परोपकारका कार्य किया जा सकता है। सर्वभूतदया तथा **'सर्वभूतहिते रताः'** की दृष्टिसे आरोग्यदानकी बड़ी महत्ता है।

शास्त्रोंने आरोग्यदानको अनन्त फलदायी दान बताया है। चतुर्वर्गचिन्तामणि (हेमाद्रि)-के दानखण्डमें कहा गया है कि आरोग्यदान, अभयदान, पान्थशुश्रूषा (पथिककी सेवा), अन्नोदकका दान तथा वृक्षदान (वृक्षारोपण)—ये अनन्त फल देनेवाले हैं तथा दाताका परम कल्याण करनेवाले हैं, अतः व्यक्तिको ऐसे पुण्यदायी उत्तम कार्योंमें प्रवृत्त होना चाहिये। महर्षि विश्वामित्रने बताया है कि आरोग्यदानसे बड़ा कोई दान नहीं है—**'आरोग्यदानात्परमं न दानं विद्यते क्वचित्।'** अतः अपने सौभाग्यकी वृद्धिके लिये रोगियों तथा दुःखी प्राणियोंके लिये आरोग्यका दान करना चाहिये अर्थात् उनकी सब प्रकारसे सेवा करनी चाहिये। आगे वे बताते हैं कि जो रोगियोंके लिये औषध, पथ्यभोजन, तैलाभ्यंग तथा उन्हें आश्रय (रहनेके लिये स्थान) प्रदान करता है, वह सब प्रकारकी आधि-व्याधियोंसे रहित रहता है।

महात्मा संवर्तजीका वचन है कि जो रोगिजनोंके रोगकी शान्तिके लिये औषध, स्नेह (तैल आदि), आहार आदि देता है अथवा ऐसी व्यवस्था करता-करवाता है, वह रोगरहित, सुखी तथा दीर्घायु होता है—

औषधं स्नेहमाहारं रोगिणां रोगशान्तये।
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च॥

नन्दिपुराणमें आरोग्यदानकी विशेष महिमा आयी है, वहाँ बताया गया है कि जो पुरुष महान् औषधियोंसे समन्वित अत्यन्त कुशल विशिष्ट चिकित्सकों तथा सेवकोंसे युक्त आरोग्यशाला (चिकित्सालय)-का निर्माण करवाता है, वह पुण्यात्मा व्यक्ति लोकमें धार्मिक, कृतार्थ तथा महान् बुद्धिमान् कहलाता है—**'स पुमान् धार्मिको लोके स कृतार्थः स बुद्धिमान्'** क्योंकि उसके धनका वास्तविक उपयोग जीवदया और परोपकारके कार्योंमें होता है। निर्धनके लिये औषध आदिकी व्यवस्था करा देना महान् फलदायी है।

स्कन्दपुराणमें बताया गया है कि जिस प्रकार आकाशका अन्त पानेमें देवता भी समर्थ नहीं हैं, वैसे ही आरोग्यदानके फलकी भी कोई सीमा नहीं है—

आकाशस्य यथा नान्तः सुरैरप्युपलभ्यते।
तद्वदारोग्यदानस्य नान्तो वै विद्यते क्वचित्॥

करुणासे प्रपूरित चित्तवाले चिकित्सकके द्वारा यदि एक भी रोगीको स्वस्थ कर दिया जाता है तो उसका महान् फल होता है। आरोग्यदानसे व्यक्ति शिवलोक प्राप्त करता है। आरोग्यदान भोग तथा अपवर्ग दोनोंको प्रदान करनेवाला है। अतः रोगी तथा आर्तजनकी परिचर्या करनी चाहिये—

तस्माद्भोगापवर्गार्थं रोगार्तं समुपाचरेत्।

रोगीको देखकर उद्वेलित नहीं होना चाहिये तथा न रोगीसे घृणा करनी चाहिये। जो यह समझे कि भगवान्‌की कृपासे मुझे दिन-प्रतिदिन रोगियोंकी सेवा तथा आरोग्यदानका अवसर प्राप्त हुआ है, अतः मुझे रोगीके कष्टको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये—ऐसी भावना रखकर प्रयत्न करनेवाले व्यक्तिके द्वारा भवसागर पार कर लिया गया है, ऐसा समझना चाहिये—

योऽनुगृहीतमात्मानं मन्यमानो दिने दिने।
उपसर्पेत रोगार्तस्तीर्णस्तेन भवार्णवः॥

(स्कन्दपुराण)

भगवान्‌का शील-स्वभाव बड़ा ही विचित्र है। वे न अवगुण देखते हैं न दोष। वे देखते हैं—केवल वर्तमानकी चाह तथा आसक्ति। जिसके मनमें उनकी चाह तथा उनमें आसक्ति होती है, वे उसे सर्वथा विशुद्ध करके अपना बना लेते हैं और स्वयं उसके बन जाते हैं। भूलना तो वे जानते ही नहीं। सारी स्मृतियोंके प्राण—आत्मा वे ही हैं। अतः हम सदा उनके रसमें अपनेको सराबोर रखें।

नीतिमंजरीमें दानकी प्रशस्ति

(डॉ० श्रीरूपनारायणजी पाण्डेय)

वेदोंमें ऋग्वेदका विशेष महत्त्व है। ऋग्वेदके अभिप्रायके आधारपर कर्तव्य-अकर्तव्यका सरलतासे परिचय करानेके लिये श्रीलक्ष्मीधरके पुत्र श्रीद्याद्विवेदने 'नीतिमंजरी' नामक ग्रन्थकी रचना की। इसपर उन्होंने अपना भाष्य भी लिखा। भाष्यमें नीतिमंजरीके पद्योंमें उक्त तथ्योंकी पुष्टि सम्बद्ध ऋग्वेदके मन्त्रों, ब्राह्मणवचनों तथा बृहद्देवता आदि ग्रन्थोंके उद्धरणोंसे की गयी है। यहाँपर आचार्यवर्य श्रीद्याद्विवेदकी नीतिमंजरीकी उन कतिपय सूक्तियोंको उपस्थित किया जा रहा है, जिनमें दान या दाता आदिकी महिमाका वर्णन किया गया है—

नृषु यो धनदो धन्यः इन्द्रतुल्यैः प्रशस्यते।
सुष्टुत्या द्रविणोदःसु सव्यो नाहेति दुष्टुतिः॥

(नीति० १९)

मनुष्योंमें जो धनका दान करता है, वह धन्य है। उसकी प्रशंसा इन्द्रतुल्य पुरुषोंके द्वारा उत्तम स्तुतियोंसे की जाती है। उसकी निन्दा नहीं की जाती है। ऋग्वेदमें धनदाता इन्द्रकी स्तुति इन्द्रतुल्य महर्षि सव्यने की है। सव्य महर्षि अंगिराके पुत्र थे। इन्द्रके समान पुत्र पानेके लिये महर्षि अंगिराने इन्द्रदेवताकी उपासना की थी। स्वयं इन्द्र उनके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए थे—

दाता सुख्यजरः सूरिर्दुःख्यदाता सदाऽस्तु हि।
मा पृणन्त इति प्राह कक्षीवान् स्वनयस्तुतौ॥

(नीति० ५१)

दाता सदा सुखी, युवा तथा विद्वान् होता है तथा अदाता (दान न देनेवाला) दुःखी होता है। महर्षि कक्षीवान्ने इस तथ्यको राजा स्वनयकी स्तुतिमें '**मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः। अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः॥**' (ऋग्वेद १। १२५। ७) इस मन्त्रके माध्यमसे अभिव्यक्त किया है।

महर्षि दीर्घतमाके पुत्र कक्षीवान् थे। कक्षीवान्ने गुरुकुलमें चिरकालतक ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित होकर वेदाभ्यास किया। समुचित प्रकारसे वेदाध्ययन पूर्ण करके वे गुरुके आदेशसे स्वगृहकी ओर जा रहे थे। रात्रि होनेपर उन्होंने मार्गमें विश्राम किया। प्रातःकाल भावयव्यके पुत्र राजा स्वनय अकस्मात् उनके समीप आये। वे सहसा उठे। राजाने उनका हाथ पकड़कर अपने आसनपर बैठाकर उनके सौन्दर्यसे आकृष्ट हो करके अपनी कन्याका दान करनेकी इच्छासे उनके नाम तथा पिता आदिके सम्बन्धमें प्रश्न किया। ऋषि कक्षीवान्ने अपने तथा अपने माता-पिताके बारेमें निवेदन किया। प्रसन्नमन राजा स्वनयने उन्हें अपने भवनमें ले जाकर मधुपर्क प्रदान करके तथा वस्त्रमालादिसे पूजा करके रथसहित दस कन्याएँ, शत निष्क (स्वर्णमुद्राएँ), शत अश्व, शत पुंगव (बैल), एक हजार साठ गायें आदि दीं। वे विधिपूर्वक सब कुछ ग्रहण करके अपने पिता महर्षि दीर्घतमाके समीप आये। राजा स्वनयके इसी दानकी प्रशस्ति ऋग्वेदके दानस्तुतिसूक्तमें की गयी है। इस सूक्तके सातवें मन्त्रका अर्थ प्रस्तुत सूक्तिमें उक्त है।

को यष्टुः कर्कशं कर्तुं शक्नुयाद् दानदं मनः।
गा दत्त्वा बभ्रवेऽतृप्तो ददौ घर्ममृणञ्चयः॥

(नीति० ७९)

दान देनेके उदार यज्ञकर्ताके मनको कौन कठोर कर सकता है। राजा ऋणंचयने बभ्रु महर्षिको चार हजार गायें दीं, किंतु वे इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने पुनः बभ्रु महर्षिको यज्ञके प्रवर्ग्यकर्मके लिये उपयोगी सुवर्णमय घर्म (महावीर पात्र)-को प्रदान किया। इस दानकथाका उल्लेख ऋग्वेदके निम्नलिखित मन्त्रमें है—

चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः॥

(५। ३०। १५)

धन्यपि निर्धनोऽयष्टा यष्टाऽधनो धनी भवेत्।
यतोऽयष्टुर्गृहे शक्रो यष्टुर्थं तस्करोऽभवत्॥

(नीति० ८१)

यज्ञ न करनेवाला (आत्मपोषक) धनी भी निर्धन होता है; क्योंकि वह देवताओंको हवि नहीं प्रदान करता है। यज्ञकर्ता (देवताओंको हवि प्रदान करके प्रसन्न करनेवाला) निर्धन होकर भी धनी होता है। यज्ञ न करनेवाले धनीके गृहमें देवराज इन्द्र यज्ञार्थ धनहरणहेतु गये। इन्द्रके इस कर्मका संकेत ऋग्वेदके निम्नांकित मन्त्रमें उपलब्ध है—

समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत्॥

(५।३४।७)

लोभी व्यवसायीके गृहमें इन्द्र यज्ञार्थ धन-हरणके लिये जाते हैं और उसके धनको लेकर हवि प्रदान करने वाले यजमानको उत्तम पुत्र एवं धनधान्यसे सम्पन्न करते हैं। यज्ञ न करके जो इन्द्रके क्रोधको उत्पन्न करता है, वे उसे महती विपत्तिमें डाल देते हैं। इस प्रकार इन्द्र अयज्ञकर्ताके धनका अपहरण करके यज्ञकर्ताको धनवान् करते हैं।

ऋग्वेदके इस मन्त्रका अभिप्राय भगवान् श्रीकृष्णके निम्नलिखित वचनमें अन्यथा अभिव्यक्त है—

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥

(गीता ३।१२)

दाता श्रेष्ठतमः पुंसामर्थिनां यो धनार्त्तिहृत्।
श्यावाश्व इति के ष्ठेति तुष्टाव मरुतोऽर्थदान्॥

(नीति० ८३)

पुरुषोंमें वह दाता सर्वश्रेष्ठ है, जो दरिद्रतासे पीड़ित याचकोंकी धन-सम्बन्धी पीड़ाको दूर करता है। ऋषि श्यावाश्वने '**के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय। परमस्याः परावतः॥**' (ऋग्वेद ५।६१।१) इत्यादि मन्त्रोंसे अर्थदाता मरुतोंकी स्तुति की।

महर्षि आत्रेय अर्चनानाने स्वपुत्र श्यावाश्वके साथ राजा रथवीति दाल्भ्यके यज्ञको सम्पन्न कराया। राजाकी पुत्री रूपवती थी। महर्षि आत्रेयने अपने पुत्र श्यावाश्वके लिये उसकी राजासे याचना की। राजाने अपनी रानीसे पुत्रीके दानके विषयमें बात की। रानीने कहा कि इसके पूर्व किसी अनृषि (जो ऋषि नहीं है)-को कन्यादान नहीं किया गया है। ऋषिपुत्र श्यावाश्व अभी ऋषि नहीं है। राजाने महर्षि अर्चनानासे कन्यादान करनेमें असमर्थता व्यक्त की। राजपुत्रीकी प्राप्तिकी कामनासे श्यावाश्वने ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित होकर कठोर तप किया। भिक्षार्थ पर्यटन करते हुए वह राजा तरन्तकी रानीके समीप गया। राजा एवं रानीने उसे धनादि देकर सम्मानित किया और राजाने उसे अपने अनुज पुरुमीढके निकट प्रेषित किया। मार्गमें मरुद्गण श्यावाश्वके समक्ष प्रकट हुए। मरुद्गणोंकी कृपासे वह ऋषि हो गया। तत्पश्चात् पुरुमीढके समीप जाकर उसने सौ गायोंको प्राप्त किया। राजा रथवीतिने भी ऋषि श्यावाश्वके साथ अपनी पुत्रीका ससम्मान विवाह किया। इस प्रकार दानादिसे पूर्ण सन्तुष्ट ऋषि श्यावाश्वने श्रेष्ठतम दानीके रूपमें मरुद्गणों तथा धनदाता राजा तरन्त आदिकी प्रशंसा की—

आयं दृष्ट्वा व्ययं कुर्यात् स एव चतुरो नृणाम्।
प्रस्तोको गुरवे प्रादात् कोशादि वसु शाम्बरम्॥

(नीति० ९६)

जो आयको देखकर (आयसे थोड़ा कम) व्यय करता है, वही मनुष्योंमें चतुर होता है। राजा प्रस्तोकने (शम्बरासुरको मारकर इन्द्रके द्वारा प्रदत्त) शम्बरासुरकी सम्पत्तिको गुरुदेव गर्गको प्रदान किया। यह तथ्य ऋग्वेदकी निम्नांकित ऋचासे विदित होता है—

प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म॥

(६।४७।२२)

अतः सम्पत्तिका दान आयकी सीमामें करना चाहिये।

न ते मनुष्यास्ते देवा यज्ञियं कर्म कुर्वते।
याचकश्चैति यं पृष्ट्वा वसिष्ठः स्तौति देववत्॥

(नीति० १००)

जो मनुष्य यज्ञसम्बन्धी कर्मोंको पूर्ण करते हैं और जिनके विषयमें जिज्ञासा करता हुआ भूख-प्यास इत्यादिसे पीड़ित या धनका इच्छुक याचक आता है, वे मनुष्य नहीं

देवता हैं। एक देवताके समान महर्षि वसिष्ठ उनकी स्तुति निम्नलिखित मन्त्रमें करते हैं—

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम्।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति॥

(ऋक्० ७। १। २३)

याच्यमानो महत्सूनुर्ददाति मनसोऽधिकम्।
नाहुषायाम्बुकामाय ब्रह्मजाऽदाद् घृतं पयः॥

(नीति० १०७)

याचना करनेपर महापुरुषोंकी सन्तान मनकी कामनासे भी अधिक दान करती है। जलके इच्छुक नाहुषको ब्रह्माकी पुत्री भगवती सरस्वतीने दूध और घी प्रदान किया।

राजा नाहुषने सहस्रवर्षपर्यन्त यज्ञ करनेके लिये भगवती सरस्वतीसे जलकी याचना की। भगवती सरस्वतीने राजा नाहुषको सहस्रवर्षपर्यन्त यज्ञार्थ प्रभूत मात्रामें घृत एवं दुग्ध दियां। महर्षि वसिष्ठ इस तथ्यको निम्नांकित ऋचामें व्यक्त कर रहे हैं—

एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय॥

(ऋक्० ७। ९५। २)

इस मन्त्रमें भगवती सरस्वतीकी स्तुति एक नदीके रूपमें है।

पिता वापि स्तुतो दद्यात् पुत्रेणापि सुसम्पदः।
नाभानेदिष्ठपुत्राय सत्रे प्रीतो मनुर्ददौ॥

(नीति० १५२)

पुत्रके द्वारा स्तुति करनेपर पिता उत्तम सम्पत्ति प्रदान करता है। मनुने यज्ञमें अपने पुत्र नाभानेदिष्ठको स्तुतिसे प्रसन्न होनेपर श्रेष्ठ धन प्रदान किया। नाभानेदिष्ठ धनप्रदाता अपने पिताकी स्तुति निम्नलिखित ऋचामें कर रहा है—

सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम्॥

(ऋक्० १०। ६२। ११)

सहस्रों गायोंका दाता तथा जनपदोंका कर्ता मनुकी कोई भी हिंसा न करे। इनकी दक्षिणा सूर्यके सामीप्यको प्राप्त करे। (तीनों लोकोंमें इनका दान प्रसिद्ध हो।) देवगण सवर्णपुत्र मनुकी आयुको समृद्ध करें। निरलस होकर कर्म करते हुए हम मनुसे गाय आदि प्राप्त करें—

मृतो योऽप्यमृतो रक्षेद् दक्षिणया गलद्धनम्।
दक्षिणादं मृतं भोजं दिव्यस्तुष्टाव चामृतम्॥

(नीति० १५५)

दानके द्वारा धनका व्यय करता हुआ मानव मृत होकर भी अमृत (अमर) होता है। दक्षिणादाता मृतकी अमरके समान महर्षि दिव्य निम्नलिखित मन्त्रमें प्रशंसा कर रहे हैं—

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति॥

(ऋक्० १०। १०७। ८)

धनादिके दाता नहीं मरते हैं। वे निम्न गति (नरकादि)-को नहीं प्राप्त करते हैं। वे किसीसे हिंसित नहीं होते हैं। वे दुःखी नहीं होते हैं। दक्षिणा स्वयं इन्हें सम्पूर्ण जगत् तथा स्वर्ग प्रदान करती है। इस प्रकार धनदाता मरकर भी अमर होते हैं—

पितृदेवार्थिशेषान्नं योऽश्नीयात् सोऽमृतं द्विजः।
मोघं शेषमभुञ्जानो भिक्षुणा गदितोऽघभुक्॥

(नीति० १५९)

पितृयज्ञ, देवयज्ञ तथा याचकको देनेके पश्चात् शेष अन्न जो भोजन करता है, वह अमृतका भोजन करता है। पितृजनों, देवों तथा याचकोंको भोजन न देकर जो भोजन करता है, वह महर्षि भिक्षुके अनुसार केवल पापका भोजन करता है। देवता आदिको दान न देनेवालेकी निन्दा महर्षि भिक्षु निम्नांकित मन्त्रमें कर रहे हैं—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋक्० १०। ११७। ६)

जो दानादिके द्वारा देवताओं, पितरों, मित्रों तथा अतिथियों आदिको सन्तुष्ट नहीं करता है, उसका अन्न (धनादि) व्यर्थ है, मृत्युतुल्य है; वह केवल पापका भोक्ता (पापी) होता है। अतः किसी भी रूपमें दान देना चाहिये।

नीतिग्रन्थोंमें दानका माहात्म्य

(डॉ० श्रीवागीशजी 'दिनकर', एम०ए०, पी-एच०डी०)

नीतिग्रन्थोंमें धनदानके साथ-साथ विद्यादानकी भी महत्ता वर्णित करते हुए कहा गया है कि यह याचकोंको दिया जाता हुआ निरन्तर परम वृद्धिको प्राप्त होता है—

'अर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।'

इतना ही नहीं **'काले शक्त्या प्रदानम्'** कहकर अवसर आनेपर शक्तिके अनुसार दान करना सब शास्त्रोंमें कल्याणका अखण्डित विधानवाला मार्ग बताया गया है।

दान किससे लेना चाहिये, किससे नहीं—इसका उल्लेख भी हमारे नीतिग्रन्थ करते हैं—

'असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।'

सज्जनोंको असज्जनोंसे और निर्धन मित्रोंसे भी याचना नहीं करनी चाहिये।

सानपर खरादी हुई मणि, शस्त्रोंसे घायल हुआ युद्ध-विजयी, मदके कारण क्षीण हाथी, शरद्-ऋतुमें सूखे पुलिनों (बालूके तटों)-वाली नदियाँ, जिसकी (केवल एक) कला शेष है—ऐसा चन्द्रमा (अर्थात् द्वितीयाका चन्द्रमा), याचकोंके प्रति (दान देनेके कारण) नष्ट हुए वैभववाले लोग—ये सब कृशतासे ही शोभा पाते हैं—'....**निम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु जनाः।**' पद्यांश दानकी सर्वोत्कृष्टताका स्पष्ट संकेत कर रहा है।

राजाओंकी नीतियोंके अनेक रूपोंकी चर्चामें '**नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च** '**तथा**' **हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।**' पद्यांशमें '**नित्यव्यया**' एवं '**वदान्या**' पद दान देनेमें उदार, दानशील, नित्य व्यय—खर्चवाली मनोहर दृष्टिके परिचायक ही हैं।

नीतिग्रन्थोंमें राजाओंके छः गुणोंकी चर्चा करते हुए स्पष्ट निर्देश है कि जिन राजाओंमें ये छः गुण नहीं हैं, उनका आश्रय नहीं लेना चाहिये—

आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्रसंरक्षणञ्च।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण॥

अर्थात् जिन (राजाओं)-के पास आज्ञा देनेकी शक्ति, कीर्ति, ब्राह्मणोंका पालन, दान, भोग और मित्रोंकी रक्षा करना—ये छः गुण विद्यमान नहीं हैं, उनका आश्रय लेनेसे क्या लाभ?

दयालु लोगोंका शरीर परोपकारसे शोभा पाता है, चन्दनसे नहीं; उनके कान शास्त्रोंको सुननेसे ही शोभा पाते हैं, कुण्डलसे नहीं; हाथ दानसे शोभा पाते हैं, कंगनसे नहीं। लगता है हाथोंकी सार्थकता दानसे ही है—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन॥

सन्त पुरुषोंका उद्योग दूसरोंके हितमें, उन्हें देनेमें ही होता है; नीतिग्रन्थोंमें कहा गया है—

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः॥

सूर्य कमलसमूहको खिला देता है, चन्द्रमा कुमुदोंके समूहको खिला देता है, बादल भी बिना माँगे ही जल देता है। सन्तलोग स्वयं दूसरोंके हितमें अच्छी प्रकार उद्योग करनेवाले होते हैं। जिस प्रकार सुख-दुःखमें दूध जलका साथ देता है और जल दूधका। पहले दूधद्वारा अपनेमें मिले हुए जलको सम्पूर्ण अपने गुण दे दिये गये। उसके द्वारा दूधमें ताप (१ गरमी, २. विपत्ति या दुःख)-को देखकर अपनेको अग्निमें डाल दिया गया। वह दूध मित्र (जल)-को विपत्तिमें देखकर अग्निमें जानेके लिये व्याकुल हो गया। उस जलसे युक्त होकर (वह दूध) फिर शान्त हो जाता है, यह सज्जनोंकी मित्रता निश्चित रूपसे उनकी दानशीलतापर ही निर्भर है। '**दुःखिते कुरु दयामेतत् सतां लक्षणम्।**' दुःखियोंपर दया करना सज्जनोंका लक्षण है, जहाँ यह बताया गया है, वहीं '**वित्तस्य पात्रे व्ययः**' अच्छे पात्रपर खर्च करना धनका भूषण बताया गया है।

अच्छा और सच्चा मित्र शास्त्रों एवं नीतिग्रन्थोंके आधारपर वही है जो पापोंसे बचाता है, हितमें लगाता है,

छिपानेयोग्यको छिपाता है, गुणोंको प्रकट करता है, आपत्तिमें पड़े हुए (मित्र)-को छोड़ता नहीं है और समयपर धन आदि देता है। सज्जनलोग इसे अच्छे मित्रका लक्षण बताते हैं—

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥

श्लोकके तीसरे पदमें यह दानकी महत्ता ही प्रतिपादित है। संसारमें दानसे ही परस्पर सम्बन्ध बने रहते हैं, तभी तो नीतिग्रन्थ कहते हैं—

तावत्प्रीतिर्भवेल्लोके यावद्दानं प्रदीयते।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम्॥

संसारमें जबतक दान दिया जाता है, तभीतक प्रेम होता है। दूधके नाशको देखकर बच्चा भी माँको छोड़ देता है।

केवल सांसारिक मनुष्य या जीव ही दान देनेसे प्रसन्न होते हों ऐसा नहीं है, देवता भी दानसे प्रसन्न होकर अभीष्ट प्रदान करते हैं—

नोपकारं विना प्रीतिः कथञ्चित्कस्यचिद् भवेत्।
उपयाचितदानेन यतो देवा अभीष्टदाः॥

उपकार किये बिना (अन्य) किसी भी प्रकारसे किसीका प्रेम नहीं होता; क्योंकि देवता भी भेंट या उपहार देनेसे ही इच्छित वस्तु देते हैं।

शत्रु भी दान मिलनेपर कैसे तुरंत मित्र बन जाता है, इसका सजीव चित्रण देखिये—

पश्य दानस्य माहात्म्यं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
यत्प्रभावादपि द्वेषी मित्रतां याति तत्क्षणात्॥

तत्काल विश्वास करनेवाले दानके महत्त्वको देखो, जिसके प्रभावसे शत्रु भी तत्क्षण मित्र बन जाता है।

देखो, जिस कारणसे बच्चेवाली भैंस भी खल (पशु-खाद्य)-को देनेपर सारा दूध पशुपालकको दे देती है, उससे ज्ञात होता है कि बुद्धिहीन पशुके लिये भी दान पुत्रसे बढ़कर प्रिय होता है, मैं ऐसा मानता हूँ—

पुत्रादपि प्रियतरं खलु तेन दानम्
मन्ये पशोरपि विवेकविवर्जितस्य।
दत्ते खले नु निखिलं खलु येन दुग्धम्
नित्यं ददाति महिषी ससुतापि पश्य॥

सामान्य जल-जैसी वस्तुको भी देता हुआ बादल सारे प्राणीसमूहका प्रिय बन जाता है, इसके विपरीत सदा किरणरूपी हाथ फैलानेवाला सूर्य भी देखा नहीं जाता—

यच्छञ्जलमपि जलदो वल्लभामेति सर्वलोकस्य।
नित्यं प्रसारितकरः सवितापि भवत्यचक्षुष्यः॥

देश-कालको ध्यानमें रखकर सुपात्रको दिया जानेवाला दान अनन्त कालतक फलता है—

सत्पात्रं महती श्रद्धा देशे काले यथोचिते।
यद्दीयते विवेकज्ञैस्तदानन्त्याय कल्पते॥

यदि सुपात्र हो और बहुत श्रद्धाभाव हो तो उचित देश और कालपर विवेकशील पुरुषोंके द्वारा जो दान दिया जाता है, वह अनन्त पुण्यफल देनेवाला माना जाता है।

दान देनेके सम्बन्धमें यह सोचना व्यर्थ है कि जब मेरे पास इतना धन हो जायगा तो मैं इतना दान अवश्य ही करूँगा। अपने पास जो भी हो, उसीमेंसे थोड़ा-अधिक दान कर देना चाहिये—

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न यच्छसि।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥

एक ग्रासमेंसे भी अथवा उसका आधा भी भिक्षुकोंको क्यों नहीं देते; क्योंकि इच्छाके अनुरूप सम्पत्ति किसीके पास भी कब हो पायेगी?

थोड़ी पूँजीमेंसे थोड़ा भी दान देनेवाला नीतिग्रन्थोंमें प्रशंसनीय माना गया है—

ईश्वरा भूरिदानेन यल्लभन्ते फलं किल।
दरिद्रस्तच्च काकिण्या प्राप्नुयादिति नः श्रुतम्॥

सामर्थ्यशाली लोग बहुत दानसे जिस पुण्यरूपी फलको प्राप्त कर सकते हैं, उसी फलको निर्धन एक कौड़ीके दानसे प्राप्त कर लेता है, हमने यह पूर्वपुरुषोंसे सुना है।

दान देनेवाला छोटा व्यक्ति भी सेवायोग्य होता है,

कंजूस धन-सम्पत्तिसे बड़ा होते हुए भी सेवायोग्य नहीं होता। अपनेमें स्वादिष्ट जलवाला कुआँ ही लोगोंका प्रिय होता है, समुद्र तो अधिक जलवाला होता हुआ भी प्रिय नहीं बताया गया है—

दाता लघुरपि सेव्यो भवति न कृपणो महानपि समृद्ध्या।
कूपोऽन्तः स्वादुजलः प्रीत्यै लोकस्य न समुद्रः॥

सदा मदजलके प्रवाहसे अत्यधिक क्षीण हुआ गजराज ही प्रशंसित माना गया है, दानसे रहित गधा तो मोटा होते हुए भी निन्दायोग्य समझा गया है—

सदा दानपरिक्षीणः शस्त एव करीश्वरः।
अदानः पीनगात्रोऽपि निन्द्य एव हि गर्दभः॥

अच्छे स्वभाववाला भी, अच्छी प्रकार शीतल रहनेवाला भी, सुन्दर बना हुआ भी या अच्छे चरित्रवाला भी घड़ा या मनुष्य जल न देनेसे या धन आदिका दान न करनेसे नीचे ही रखा रहता है, किंतु जल देनेसे टेढ़ी भी, छिद्रवाली भी तूती (कर्करी=पानी पिलानेवाला छिद्रवाला पात्र) घड़ेके ऊपर रखी जाती है—

सुशीलोऽपि सुवृत्तोऽपि यात्यदानादधो घटः।
पुनः कुब्जापि काणापि दानादुपरि कर्करी॥

इस प्रकार हमारे नीतिग्रन्थोंमें दानके माहात्म्यके अनेक प्रेरक श्लोक मिलते हैं, जिनको आचरणमें उतारनेसे जीवनमें सुधार आता है और परमार्थ-पथ प्रशस्त होता है।

बृहस्पतिसूरिकी 'कृत्यकौमुदी' का दानप्रकरण

(डॉ० श्रीश्रीनिवासजी आचार्य)

बृहस्पतिसूरि उत्कलीय धर्म-निबन्धकारोंमें अन्यतम स्मृतिकार माने जाते हैं। इनका ग्रन्थ 'कृत्यकौमुदी' एक विशाल धर्मशास्त्रीय निबन्ध-ग्रन्थ है, जो उत्कलके प्राचीनतम स्मृति-ग्रन्थके रूपमें मान्य है। इस ग्रन्थमें तीन प्रकरण हैं, यथा—कालविवेकप्रकरण, प्रायश्चित्तप्रकरण एवं दानप्रकरण। अपने ग्रन्थमें उन्होंने शतानन्द, लक्ष्मीधरभट्ट, विज्ञानेश्वर, दिवाकर, जीमूतवाहनादि टीकाकारों एवं निबन्धकारोंके मतोंकी चर्चा की है।

रघुनाथदास, विश्वनाथमिश्र, कृष्णमिश्र आदि उत्कलीय निबन्धकारोंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें बृहस्पतिसूरिजीका नाम अत्यधिक आदरके साथ लिया है। बृहस्पतिसूरिजीका काल चौदहवीं शतीका शेषार्द्ध माना जाता है।

बृहस्पतिजीका दान-सम्बन्धी विवरण बहुत लम्बा-चौड़ा है, जिसमें दानके विभिन्न स्वरूपोंपर प्रकाश डाला गया है।

दानप्रकरण ग्रहपूजाविधिसे प्रारम्भ होता है। उसमें दानप्रतिग्रहमें कर्तव्यता-निर्णय, विष्णुदैवत भूमिदान, प्रजा-पति-दैवत धान्यदान, सोमदैवत लवणदान, सोमदैवत दुग्ध-दधिदान, विष्णुदैवत घृतदान, वरुणदैवत गुडलवणैक्षवदान, प्रजापतिदैवत अन्नदान, बृहस्पतिदैवत वस्त्रदान, विष्णुदैवत यज्ञोपवीतदान, विष्णुदैवत छत्रदान, उत्तानांगिरोदैवतोपानहदान, उत्तानांगिरोदैवत काष्ठपादुकादान, वरुण-दैवत जलभाजनदान, वायुदैवत व्यजनदान, विष्णुदैवत रत्नदान, विष्णुदैवत गृहदान, रुद्रदैवत धेनुदान, सोमदैवत दुग्धदधिदान, दश महादान, कनकदान, तुलापुरुषदान, गृहदान, कन्यादान, गोचर्मभूमिदान, विद्यादान, कालपुरुषदान, शालग्रामदानविधि, शिवसम्प्रदानादि, हरिसम्प्रदानादि, प्रतिग्रह-निर्णय, मूल्याध्याय तथा होमद्रव्यपरिमाण आदि विषय वर्णित हैं।

'कृत्यकौमुदी' ग्रन्थमें विभिन्न प्रकारके दान-कृत्योंमें प्रतिनिधि-देवताओंके नामका उल्लेख करके वेद, पुराण तथा आर्ष ग्रन्थोंसे दानोंकी विधियाँ और फलश्रुतियोंका सम्यक् विवेचन किया गया है। शास्त्रोंमें हर वस्तुके देवताका नाम निर्धारित कर दिया गया है। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके दानसे भिन्न-भिन्न फलोंकी उपलब्धि होनेके प्रमाण ग्रन्थसे प्राप्त होते हैं।

भूमि, घृत, यज्ञोपवीत, छत्र, रत्न, अलंकार, दीप आदिके अधिष्ठाता देवता विष्णु; धान्य, अन्न, शय्या, आसन, तिल आदिके देवता प्रजापति; लवण, दुग्ध, वस्त्रके देवता सोम; ताम्बूल, गन्धद्रव्यादिके देवता गन्धर्व; जलके देवता वरुण; व्यजनके देवता वायु, धेनुके देवता रुद्र तथा महिषीके देवता यम माने जाते हैं।

स्मृतिशास्त्रके अनुसार दानमें किसी दूसरेको अपनी वस्तुका स्वामी बना दिया जाता है। दान लेनेकी स्वीकृति मानसिक, वाचिक अथवा शारीरिक रूपसे हो सकती है। विष्णुधर्मोत्तर, अग्नि, लिंगपुराणादिमें दान लेनेकी विधियोंके बारेमें विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। धर्मशास्त्रमें प्रतिग्रह शब्दका विशेष महत्त्व है। ग्रहणमात्र प्रतिग्रह नहीं है, प्रतिग्रह विशिष्ट स्वीकृतिका परिचायक है, अर्थात् जब उसे स्वीकार किया जाय तो दाताको अदृष्ट आध्यात्मिक पुण्य प्राप्त हो और जिसे देते समय वैदिक मन्त्र पढ़ा जाय, जब कोई भिक्षुकको भिक्षा देता है तब कोई मन्त्रोच्चारण नहीं करता। अतएव वह शास्त्रविहित दान या प्रतिग्रह नहीं है। फिर भी दान-धर्मकी बड़ी महत्ता कही गयी है। बहुत-सी स्मृतियोंमें उल्लेख है कि बहुत कम लोग स्वार्जित-धन दानमें देते देखे जाते हैं, व्यासजीने उल्लेख किया है—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥

(व्यास० ४। ६०)

अर्थात् सौमें एक शूर, सहस्रोंमें एक विद्वान्, शत सहस्रोंमें एक वक्ता मिलता है, दाता तो शायद ही मिल सकता है और नहीं भी।

बृहस्पतिजीने दानमें देय पदार्थ एवं उपकरणोंकी विस्तृत सूची बनायी है। देय पदार्थोंको तीन वर्गोंमें विभाजित किया गया है, यथा उत्तम, मध्यम एवं निकृष्ट। उत्तम पदार्थोंमें भूमि, गाय, सोना, भोजन, दही, दूध आदि, मध्यम वर्गमें विद्या, आश्रय, गृह-गृहोपकरण आदि एवं निकृष्ट वर्गमें यान, छत्र, आसन, लकड़ी, पादुका आदि माने गये हैं।

दानप्रकरणके विष्णुदैवत भूमिके दान-प्रसंगमें महाभारत, स्कन्दपुराण, विष्णुधर्मोत्तर, वृहद्वसिष्ठ, दानसागर, दानविवेक आदि ग्रन्थोंके वचन उद्धृत हैं। प्राचीन कालसे ही भूमि-दानको सर्वोच्च पुण्यकारी कृत्य माना गया है। वसिष्ठ धर्मसूत्र (२९। १६), मत्स्यपुराण, महाभारत (अनुशासनपर्व ६२। १९) आदिमें भूदानकी महिमा वर्णित है, अनुशासन पर्वमें उल्लेख है कि परिस्थितिवश व्यक्ति जो कुछ पाप कर बैठता है, वह गोचर्ममात्र भूदानसे मिट सकता है—

यत्किंचित्पुरुषः पापं कुरुते वृत्तिकर्शितः।
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन पूयते॥

(महा० अनु० ६२। १९)

पृथ्वीदान, सुवर्णदान एवं गोदान—तीनोंको प्रदान करनेवाला सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है। यथा—

सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं च वृत्रहन्।
ददद‍ेतान् महाप्राज्ञः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(महा० अनु० ६२। ५५)

गृहनिर्माणयोग्य भूमि प्रदान करनेसे वसुलोक प्राप्त होनेका उल्लेख विष्णुधर्मोत्तरमें मिलता है—**'गृहभूमिं नरो दत्त्वा वसूनां लोकमाप्नुयात्।'**

ग्रन्थकारने विद्यादानके विषयमें महाभारत और नन्दीपुराणके वचनोंका उल्लेख किया है। महाभारतके अनुसार विद्यादानसे सहस्र वाजपेय यज्ञका फल मिलता है—

वाजपेयसहस्रस्य सममिष्टस्य यत् फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति विद्यादानान्न संशयः॥

नन्दीपुराणका कथन है कि वेदविद्या प्रदान करनेपर कल्पत्रयतक स्वर्गमें स्थान मिलता है। विद्यार्थियोंको भिक्षा, भोजन, आवास देनेसे निःसन्देह दाताकी सारी कामनाएँ पूरी होती हैं—

वेदविद्यां नरो दत्त्वा स्वर्गे कल्पत्रयं विशेत्।
छात्राणां भोजनं भृङ्गं यस्तु भिक्षामथापि वा॥
दत्त्वाप्नोति च पुरुषः सर्वकामान्न संशयः॥

विद्यादान एक विलक्षण दान है, जिसे देनेपर उसकी वृद्धि होती है और संचय करनेपर क्षय होता है। जैसा कि कहा गया है—

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात्॥

सभी दानोंमें विद्यादानकी प्रभूत महिमा बतलायी गयी है। महर्षि मनुके अनुसार—

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।

सोमदैवत दुग्धदधिदानके प्रसंगमें ग्रन्थकारने विष्णुपुराणके वचनोंका उल्लेख किया है, जिसके अनुसार जो भक्तिमान् होकर ब्राह्मणोंको क्षीर, दधि, घृत, मधु, तैल तथा गुडका दान करता है, वह दिव्य माला धारण करके, गन्धर्वोंका गान सुनते

हुए यानपर आरूढ होकर इन्द्रपुर जाता है।

देवता तथा ब्राह्मणोंको यज्ञोपवीत प्रदान करनेसे वस्त्र-दानका फल प्राप्त होता है और विप्र चतुर्वेदी बनता है—

यज्ञोपवीतदानेन सुरेभ्यो ब्राह्मणाय च।
भवेद् विप्रश्चतुर्वेदी शुद्धवीर्य्यो न संशयः॥

ग्रन्थमें नारदपुराणोक्त सालग्रामप्रदानविधि वर्णित है, जिसमें संकल्पवाक्यके साथ पुरुषसूक्तानुसार पूजन, प्रार्थना और अन्तमें दानके साथ सुवर्णदक्षिणा देनेकी व्यवस्था है।

कूर्मपुराणोक्त दस महादानोंका ग्रन्थकारने उल्लेख करके प्रत्येक दानकी फलश्रुति बतलायी है और दस महादानोंका परिगणन इस प्रकार किया है—कनकदान, अश्वदान, तिलपुरुषदान, गजदान, दासीदान, रथदान, महागृहदान, कन्यादान, भूमिदान एवं कपिलाधेनुदान।

बृहस्पतिने दानसागरके ५६वें अध्यायसे शिवसम्प्रदानादि और ५७वें अध्यायसे हरिसम्प्रदानादिका उद्धरण लिया है। शिवसम्प्रदानादि प्रकरणमें विष्णुधर्मोत्तर, शिवपुराण, स्कन्दपुराणके वचन उद्धृत हैं। हरिसम्प्रदानादिमें विष्णुधर्मोत्तर (३। ३०१। १४—२८)-का विवरण ग्रन्थकारने दिया है। विष्णुसे सम्बन्धित मन्दिरों, शंख, घण्ट, कुम्भ, कमण्डलु, दर्पणादिके दानके फलोंका उसमें सुन्दर विवेचन है। यथा—

विष्णोरायतने दत्त्वा तत्कथापुस्तकं नरः।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति बहूंश्च वत्सरान् द्विजाः॥
विष्णोः शङ्खप्रदानेन वारुणं लोकमश्नुते।
तथा घण्टप्रदानेन महान्यशस्तथाऽश्नुते॥

अर्थात् विष्णुमन्दिरमें विष्णुकथावर्णित पुस्तकके दानसे बहुकालतक ब्रह्मलोकमें स्थान मिलता है। शंख प्रदान करनेसे वारुणलोक एवं घण्ट प्रदान करनेवालेको महान् यशकी प्राप्ति होती है।

रुद्रदैवतधेनुदानके विषयमें बृहस्पतिसूरिने रामायण, महाभारत, बृहन्नारदीय, वराहपुराण, विष्णुधर्म, भविष्योत्तर आदि पुराणवचनोंके साथ अंगिरा, मनु, मार्कण्डेय, याज्ञवल्क्यादिके वाक्योंका उल्लेख किया है। अधिकांश पुराणों एवं स्मृतियोंने गायके दानकी बड़ी प्रशंसा की है। 'कृत्यकौमुदी' में निहित मनुवचनानुसार (४। २३१) गोदान करनेवाला सूर्यलोकको प्राप्त होता है।

गोदानकी महत्ताके बाद कपिलाधेनुदानकी महिमा तथा विधिका उल्लेख है।

इस प्रकार कृत्यकौमुदीकार बृहस्पतिसूरिने स्वीय ग्रन्थके दानप्रकरणमें कलियुगके प्रमुख धार्मिक कृत्य दान तथा विभिन्न प्रकारके दाताओंके दानोंकी प्रशस्ति गायी है।

ज्ञानेश्वरीमें दानका प्रतिपादन

(डॉ० श्रीभीमाशंकरजी देशपांडे, एम०ए०, पी-एच०डी०, एल-एल०बी०)

चौदहवीं शताब्दीमें महाराष्ट्रमें जन्मे संत श्रीज्ञानेश्वरजी महाराज सिद्ध सन्तोंकी परम्परामें अग्रगण्य हैं। उनका गीतापर लिखा गया ज्ञानेश्वरीभाष्य न केवल महाराष्ट्र, अपितु समस्त भारतमें आदरका पात्र है। गीतामें दिये हुए गूढ़ तत्त्वोंको सुबोध एवं ज्ञानगम्य बनानेमें ज्ञानेश्वरीका विशेष योगदान है। अपने ज्ञानेश्वरीभाष्यके १७वें अध्यायमें सन्त ज्ञानेश्वरने दानके सम्बन्धमें विस्तारसे मर्मग्राही जानकारी दी है।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे तपका विवेचन करनेके बाद कहते हैं कि अर्जुन! अबतक मैंने तप और उसके तीन भेदोंको स्पष्टतासे समझाया है। उसी प्रकार दानके भी तीन प्रकार हैं—सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक।

स्वधर्मके द्वारा प्राप्त किये हुए धनका दान करना कर्तव्य है—ऐसी बुद्धिद्वारा प्राप्त धनका दान करना सात्त्विकदान है। जिससे प्रत्युपकारकी अपेक्षा नहीं, ऐसे पात्रको, योग्य स्थान तथा कालको देखकर यह दान किया जाता है। अतः स्वधर्माचरणसे जो हमें प्राप्त हुआ, वह बड़े सम्मानसे दिया जाय। जैसे उत्तम बीज बोनेके लिये उत्तम भूमि तथा योग्य समय—यह सब एक साथ संयोग होना कठिन रहता है, उसी प्रकार सात्त्विक दानके लिये योग्य देश, योग्य काल, योग्य पात्र तथा योग्य धनका समागम होना भी दुर्लभ होता है।

जैसे मूल्यवान् रत्न हाथमें आनेपर वह जिसमें जड़ा जा सके, ऐसा सोना रहता नहीं तथा दोनों प्राप्त होनेपर उस अलंकारको धारण करनेयोग्य शरीरका अवयव नहीं होता। बस, इसी तरहकी बात दानके विषयमें भी दृष्टिगत होती है, पर वैसे भाग्यकी ऊर्जितावस्थाका समय आनेपर त्यौहार, आप्त और ऐश्वर्य एक साथ आ जाते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट प्रकारके दानका संयोग होनेपर सत्त्वगुणकी उत्पत्ति होती है। तब देश, काल, पात्र, द्रव्य—इन चारों बातोंका संगम होता जाता है। प्रथमतः काशी या कुरुक्षेत्र या तत्सम देश (स्थान) पवित्र देशमें जाय। जब ऐसे पवित्र स्थानमें सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण अथवा अन्य कोई पुण्य काल रहे, तब यह दानके लिये पवित्र काल रहता है। इस प्रकारके पवित्र कालमें दानके योग्य कोई उपयुक्त पात्र ढूँढ़ना चाहिये। वह पात्र मूर्तिमान् तथा शुद्ध ही होना चाहिये। वह पात्र ऐसा परम पवित्र ब्राह्मणश्रेष्ठ होना चाहिये, जो सदाचारका उत्पत्ति-स्थान तथा वेदज्ञानका संग्रहालय हो। जब इस प्रकारका उत्तम पात्र मिल जाय, तब अपनी सम्पत्तिपरसे अपना स्वामित्व हटाकर वह सम्पत्ति उसे उसी प्रकार अर्पण करनी चाहिये जैसे पतिको पत्नी अपना सर्वस्व अर्पण करती है अथवा सज्जन व्यक्ति अपने पास रखी धरोहरको उसके स्वामीको देकर भारमुक्त होता है अथवा जैसे कोई सेवक राजाको अत्यन्त विनम्रतापूर्वक ताम्बूल अर्पण करता है; वैसे ही पवित्र अन्तःकरणसे उस ब्राह्मणश्रेष्ठको भूमिदान आदि दे। वहाँ फलेच्छाको स्थान ही न रहे और जिसको दान दे, वह हमें दानका कभी प्रत्युपकार न करे। जिस प्रकार आकाशको आवाज देनेपर उससे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता तथा दर्पणके पिछले भागको देखनेपर प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर नहीं होता, जैसे पानीपर फेंकी गयी गेंद उछलकर फिरसे हाथमें नहीं आती, जैसे कृतघ्न व्यक्तिसे प्रेम करने तथा सहयोग करनेपर भी वह प्रेमका आदर नहीं करता। उसी प्रकार दानदाताको चाहिये कि वह ग्रहीतासे किसी प्रकारका बदला न चाहे, न प्राप्त करे। इस प्रकारका जो दान होता है, वह सर्वश्रेष्ठ सात्त्विक दान होता है।

राजस दान उसको कहते हैं कि जो उपकारका पारिश्रमिक समझकर या फलकी अपेक्षा रखकर अतिशय कष्टसे दिया जाता है। गौका पालन-पोषण दुग्धकी आशासे करना, धान्यसंग्रह करनेके उद्देश्यसे बीज बोना, उपहार-प्राप्तिकी इच्छा रखकर सगे-सम्बन्धियोंको निमन्त्रित करना, पैसे वसूल करनेके पश्चात् काम करना, द्रव्य लेकर रोगीका औषधोपचार करना, इस इच्छासे दान करना कि वह दान लेनेवाला हमारे उपयोगमें आये—इस भावनासे जो दान दिये जाते हैं, वे राजस दान हैं। मार्गमें चलते हुए किसी ऐसे उत्तम ब्राह्मणके मिल जानेपर जिसे दिया हुआ दान कभी किसी रूपमें वापस नहीं मिल सकता, उसे दानरूपमें एक कौड़ी दे दी जाती है और अपने समस्त वंशजोंके प्रायश्चित्तके संकल्पका जल उसके हाथपर रख दिया जाता है, ठीक वैसे ही नाना प्रकारके परलोकविषयक सुखपूर्ण फलोंका ध्यान रखकर इतना अल्प दान दिया जाता है, जो किसीकी भूखकी निवृत्तिके लिये यथेष्ट न हो और वह अत्यल्प दान भी जिस समय ब्राह्मण लेकर चलने लगता है, उस समय यजमानको ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे घर डाका पड़ा है और हमारा सर्वस्व हरण कर लिया गया है और इस कारणसे वह अपने मनमें बेचैन होने लगता है—ऐसी मनोवृत्तिसे जो दान दिया जाता है, उस दानको राजस दान कहते हैं।

तामस दान उसको कहते हैं, जो दान अयोग्य स्थानमें, अनुचित समयमें, अयोग्य व्यक्तिको, सत्काररहित अथवा तिरस्कारपूर्वक दिया जाता है।

जो दान म्लेच्छोंके निवासस्थानमें, अरण्यमें, धर्मकृत्यके लिये अयोग्य स्थलमें, शहरके चौराहेपर, सायंकाल अथवा रातके समय और वह भी चोरी करके लाया हुआ द्रव्य दान करना और वह दान भी भाट, बाजीगर, वेश्या, जुआरी-जैसे लोगोंको देना तामस दान है।

ऐसे दानमें दाताके अन्तःकरणमें श्रद्धा नहीं होती। वह दानग्रहीता ब्राह्मणश्रेष्ठको झुककर नमस्कार भी नहीं करता। पधारे हुए सत्पात्र ब्राह्मणको विराजमान होनेके लिये आसन भी नहीं बिछाता; फिर गन्ध, अक्षत-समर्पण तो दूर रहा। तामस पुरुष यदि याचकका सत्कार भी करता

है तो बस इतना ही जैसे साहूकार देनदारको थोड़ा बहुत देकर उससे पिण्ड छुड़ाते हैं, ऐसे तमोगुणी खरी-खोटी भी सुनाते हैं तथा उसे अपमानित करके खदेड़ देते हैं। इस प्रकारका यह दान तामसदान कहलाता है।

इस प्रकार श्रीभगवान्ने अर्जुनको तीनों प्रकारके दानोंके लक्षण बताये। रजोगुणी और तामसगुणी दानसे बचनेका प्रयास करना चाहिये। ऐसेमें यह आशंका होती है कि यदि सात्त्विक दान इतना श्रेष्ठ है और वह संसारजालसे छुड़ानेवाला है तो रज-तमका वर्णन किसलिये किया। तो इसका समाधान यह है कि जैसे भूतोंको दूर किये बिना भूमिमें गड़ा हुआ धन हाथमें नहीं आता या धूम्र सहन किये बिना दीपक प्रज्वलित नहीं होता, इसी प्रकार शुद्ध सत्त्वगुणके विरोधमें रज-तम आते हैं। अतएव उन्हें दूर करना, हटाना बुरा नहीं। श्रद्धासे आरम्भ करके दानतक समस्त कर्मसमूह तीनों गुणोंसे व्याप्त हैं। सत्त्वगुणके स्वरूपको प्रकट करनेहेतु रजोगुण तथा तमोगुणका विवेचन करना पड़ता है, परंतु इनमें प्रशस्त सत्त्वगुण ही है, अतः दान भी सात्त्विक भावसे ही करना चाहिये।

सभी धर्मोंमें दानसे कल्याण

(श्रीरामपदारथसिंहजी)

न्यायार्जित धनको सत्पात्रको देनेका नाम दान है—**'दानं न्यायार्जितधनस्य पात्रे प्रतिपादनम्।'** (गीता १६। १ श्रीरामानुजभाष्य)। वैदिक सनातन धर्मसे लेकर जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मोंके ग्रन्थ दानकी महिमाके वर्णनसे भरे हैं। वेदोंमें वर्णित है कि दानमें दिया गया धन नष्ट नहीं होता, वह दाताके साथ चिरकालतक रहता है, यथा—

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह॥

(ऋक्० ६। २८। ३, अथर्व० ४। २१। ३)

अर्थात् वे धन, जो देवपूजन और दानमें दिये जाते हैं, नष्ट नहीं होते, उन्हें चोर चुराते नहीं और न पीड़ा पहुँचानेवाला शत्रु पीड़ित-तिरस्कृत करता है। उन धनोंसे संयुक्त धनपति चिरकालतक शोभायमान रहता है। दानमें दिया गया धन हाथसे निकलता हुआ प्रतीत होता है, किंतु इस वेद-वचनसे विदित होता है कि दानमें दिया गया धन निरापद निवेश है। गुणवान् एवं योग्य पात्रको दान देनेवाला सहस्र गुना पाता है—**'सहस्रगुणमाप्नोति गुणार्हाय प्रदायकः।'** (महा० अनु० २२। ३७) दान दैवी-सम्पद् बन जाता है। दैवी-सम्पद्से मोक्ष मिलता है—**'दैवी संपद्विमोक्षाय'''।'** (गीता १६। ५)

जैनधर्ममें दान, शील, तप और शुभ भावनाको धर्मका अंग माना गया है और कहा है कि सुपात्रको दिया गया दान भवसागरसे पार कर देता है। बौद्ध धर्ममें नैतिक जीवनको सुचारु रूपसे संचालित करनेके लिये दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान और प्रज्ञा नामक षड्पारमिताओंकी साधनाकी शिक्षा दी गयी है। दान पारमिता-साधनाकी आधारशिला है; क्योंकि यह प्रथम पारमिता है।

ईसाई धर्मके ग्रन्थ बाइबिलमें दान करनेके लिये प्रचुर प्रेरणाएँ हैं। बाइबिलके ओल्ड टेस्टामेंटकी पुस्तक नीति-वचनके अध्याय तेरह नीति सातमें दानकी महिमा प्रकाशित करते हुए कहा गया है—'कोई तो धन बटोरकर अपनेको धनी बनाता है, तो भी उसके पास कुछ नहीं रहता है और कोई धन दानकर अपनेको गरीब बनाता है, तो भी उसके पास बहुत कुछ रहता है। बाइबिलके न्यू टेस्टामेंटमें सन्त मत्तीरचित सुसमाचारके छठे अध्यायमें दान करनेवालोंको चेताया गया है—'जब तू दान करे, तो जो तेरा दाहिना हाथ करता है, उसे तेरा बायाँ हाथ न जानने पाये; ताकि तेरा दान गुप्त रहे और तब तेरा पिता जो गुप्त रहकर देखता है, तुझे प्रतिफल देगा। दान देकर कहनेकी मनाही मनुस्मृति-महाभारतादिमें भी है, यथा—**'न दत्त्वा परिकीर्तयेत्।'** (मनु० ४। २३६)

इस्लाम धर्ममें दानको जकात कहते हैं। जकात इस्लाम धर्ममें नियत किये गये फर्जोंमें एक है। इस धर्मकी

मान्यता है कि लोगोंपर अल्लाहके बाद अल्लाहके बन्दोंका भी हक है। 'दीन' या धर्म वास्तवमें अल्लाह और उसके बन्दोंके हकको अदा करनेका ही दूसरा नाम है। नमाज और जकातके द्वारा दोनों प्रकारके हककी अदायगी होती है। जकातके दो रूप हैं—एक है 'सदका' अर्थात् स्वैच्छिक दान और दूसरा है कानूनके अनुसार अपने धनसे निश्चित मात्रामें राशि निकालकर जमा करना। इस्लाम धर्मके ग्रन्थ कुरानमें किसी तरहसे भी सदका देनेकी हिदायत है, यथा—यदि तुम खुले तौरपर सदका दो, तो यह भी अच्छी बात है और यदि उसे छिपाकर गरीबोंको दो, तो यह तुम्हारे लिये ज्यादा अच्छा है और वह तुम्हारी कितनी ही बुराइयोंको दूर कर देगा। (सूराअलबकता २७१) इस सूरामें दानको पापोंका प्रक्षालक माना गया है। महाभारतका भी मत है कि दान मनुष्यको निःसन्देह पापसे मुक्त कर देते हैं—'**दानानि हि नरं पापान्मोक्षयन्ति न संशयः।**' (अनु० ५९।६)

इस्लाम-धर्ममें सूफी साधकोंकी एक विशिष्ट श्रेणी है। सूफियोंकी दान-भावना बड़ी ही उच्चकोटिकी है। सूफी सन्त मलिक मुहम्मद जायसी दानकी महिमाका बखान करते हुए दानको जप और तप सबसे श्रेष्ठ कहते हैं—

धनि जीवन औ ताकर जिया। ऊँच जगत मँह जाकर दिया॥
दिया सो सब जप तप उपराहीं। दिया बराबर जग किछु नाहीं॥
एक दिया तेइँ दसगुन लाहा। दिया देखि धरमी मुख चाहा॥
दिया सो काज दुहूँ जग आवा। इहाँ जो दिया उहाँ सो पावा॥
दिया करै आगें उजियारा। जहाँ न दिया तहाँ अँधियारा॥
दिया मँदिल निसि करै अँजोरा। दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा॥
हातिम करन दिया जौं सिखा। दिया अहा धरमन्हि महँ लिखा॥
निरमल पंथ कीन्ह तिन्ह जिन्ह रे दिया कछु हाथ।
किछु न कोइ लै जाइहि दिया जाइ पै साथ॥

(पद्मावत १४५)

दानकी महिमाके सम्बन्धमें वैदिक सनातन धर्मसे जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मोंकी किसी-न-किसी अंशमें सहमति दिखायी पड़ती है और दानको कल्याणकारी साधन बताया गया है।

'सब ग्रंथन को रस' श्रीरामचरितमानस दान-विषयक विचारमें नानापुराणनिगमागमकी परम्परागत मान्यताओंका सबल समर्थक है। इसमें शास्त्रोंमें वर्णित नित्य, नैमित्तिक, काम्य अथवा गीतामें वर्णित सात्त्विक, राजस, तामस सभी प्रकारके दानोंका वर्णन पाया जाता है।

कर्तव्य समझकर निष्काम भावसे प्रतिदिन दिया जानेवाला दान नित्य और सात्त्विक दानके अन्तर्गत है। श्रीराम-जन्मके अवसरपर महाराज श्रीदशरथने नान्दीमुख श्राद्ध करके जातकर्मादि संस्कार किये और ब्राह्मणोंको सोना, गौ, वस्त्र और मणियोंका दान दिया। यथा—

नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥

(रा०च०मा० १।१९३)

वैदिक संस्कृतिमें मनुष्यके जन्मसे लेकर मरणतक सभी संस्कारोंमें दान करनेका विधान है। रोग और शोककी स्थितियोंमें भी दान देनेका परामर्श है। श्रीरामचरितमानसमें भी सुख और दुःख दोनों प्रकारके अवसरोंपर दान करनेके प्रसंग प्राप्त होते हैं। भगवान् श्रीरामका जन्म सुखका मूल था। उस सुखद समयमें महाराज श्रीदशरथने गुणोंका गान करनेवाले मागध, सूत, वन्दीजन और गायक सब किसीको भरपूर दान दिया; जिसने पाया उसने भी नहीं रखा, दान कर दिया। यथा—

मागध सूत बंदिगन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक॥
सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥

(रा०च०मा० १।१९४।६-७)

चारों पुत्रोंके विवाहके उपलक्ष्यमें महाराज श्रीदशरथने चार लाख कामधेनुके समान अच्छे स्वभाववाली और सुहावनी तथा श्रेष्ठ गायें सब प्रकारसे गहनों-कपड़ोंसे सजाकर प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको दीं। यथा—

चारि लच्छ बर धेनु मगाईं। काम सुरभि सम सील सुहाईं॥
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्ही। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही॥

(रा०च०मा० १।३३१।२-३)

विवाहोपरान्त वर-वधुओंके अयोध्या आनेपर उन्हें आशीर्वाद देनेके लिये राजमहलके आँगनमें बहुतसे ब्राह्मण आ गये। उनकी भीड़ देखकर रानियाँ बड़ा भाग्य समझकर

सादर उठीं और उन्होंने स्वयं सबके पाँव धोकर नहलवाया। महाराज श्रीदशरथने भलीभाँति पूजन करके भोजन करवाया और उन्हें आदर, दान तथा प्रेमसे परिपुष्ट किया—

भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥
पाय पखारि सकल अन्हवाए। पूजि भली बिधि भूप जेवाँए॥
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे॥

(रा०च०मा० १।३५२।२—४)

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यारोहणके आनन्दमय अवसरपर पुत्रको राजसिंहासनासीन देखकर हर्षमग्न माताओंने बारम्बार आरती उतारीं और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये तथा याचकोंको अयाचक बना दिया। यथा—

सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी॥
बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥

(रा०च०मा० ७।१२।६-७)

राज्यारोहणके पश्चात् स्वयं भगवान् श्रीरामने अपने राज्यकालमें करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये। यथा—

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥

(रा०च०मा० ७।२४।१)

आनन्द और उमंगकी स्थितियोंमें दानोल्लेखके अतिरिक्त आपद् और अनिष्टकी आशंका और उसकी उपस्थितिपर भी दान करनेका वर्णन श्रीरामचरितमानसमें मिलता है।

श्रीरामवनगमन एवं पितामरणजन्य शोकके समय भरतजीने धैर्य धारणकर पिताके श्राद्धमें गोदान, वाजिदान, गजदान, शिविकादि वाहनदान, सिंहासनदान, भूषणदान, वस्त्रदान, अन्नदान, भूमिदान, धनदान एवं गृहदान किये; जिन्हें पाकर भूदेव ब्राह्मण परिपूर्णकाम हो गये। यथा—

भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥
सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम॥

(रा०च०मा० २।१७०।८, २।१७०)

ऊपरके विवरणसे विदित होता है कि दान करना कल्याणकारी है। दानकी कल्याणकारिता और अद्भुत महिमाका प्रबल प्रतिपादन निम्नांकित दोहेमें हुआ है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

(रा०च०मा० ७।१०३ख)

जैनाचारमें दान-प्रवृत्ति

(डॉ० श्रीविमलचन्द्रजी जैन, एम०ए०, एल-एल०बी०, पी-एच०डी०)

भारतीय संस्कृतिमें श्रमण-संस्कृति एवं वैदिक संस्कृति—ये दर्शनकी दो परम्पराएँ समानान्तर धाराओंके रूपमें सदैव विद्यमान रही हैं। अहिंसा एवं अपरिग्रह (संग्रहवृत्तिका त्याग) श्रमण-संस्कृति एवं जैन धर्म-भावनाके उत्स हैं। इनकी साधनाके लिये ममत्वका त्याग करने दानकी प्रवृत्तिके आश्रयसे श्रेष्ठ अन्य कोई पुण्य कृत्य नहीं है। जैन-दर्शनमें दानकी अवधारणा एवं प्रवृत्ति विशद रूपमें सर्वत्र प्रच्छन्न एवं अप्रच्छन्न रूपसे व्याख्यायित है। दानकर्मके दो मुख्य पक्ष हैं—दानदाता एवं दानग्रहीता। जैन संघ चतुर्विध है—जिसके अन्तर्गत श्रमण, श्रमणी, श्रावक एवं श्राविका सम्मिलित हैं। श्रमण-वर्ग एवं श्रावक-वर्ग—दोनोंका लक्ष्य लोक-व्यवहारके माध्यमसे आत्म-कल्याणकी साधना करके पुण्यार्जन करना, पापकर्मोंको रोकना तथा अन्ततोगत्वा मोक्षको प्राप्त करना है।

'जैनधर्म' के अस्तित्वका मुख्य आधार उसका साधना-प्रधान जीवन-व्यवहार है। जैनाचार आत्मसाधना एवं निवृत्तिप्रधान है। दान, आत्मसंयम, तपस्या, शीलभावना इसी निवृत्तिके अंग हैं। श्रमण-संस्कृतिके अनुसार महाव्रतों एवं दान आदि सद्गुणोंका पालन करते हुए अपरिग्रहकी स्थिति मानवके लिये असम्भव नहीं है। अणुव्रतों एवं महाव्रतोंके पालनसे इस साधनाका उपक्रम प्रारम्भ होता है। जैनाचारके दो प्रकार वर्णित किये गये हैं—प्रथम श्रमणाचार द्वितीय श्रावकाचार।

श्रमण एवं श्रावक जैनधर्मके विशिष्ट एवं सापेक्ष पारिभाषिक शब्द हैं। जैनाचारको समझनेके लिये दोनोंको समझना आवश्यक है। श्रमणका अर्थ है—श्रमकी प्रधानतावाला जीवन। जो पाँच महाव्रतों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह)-का दृढ़तासे पालन करता है; आत्मसंयम, मौन, तपस्या आदि करते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्ररूप रत्नत्रयकी आराधना करता है; जीवनमें प्रमादका सेवन नहीं करता; शुद्ध भिक्षाचर्या या दान-ग्रहणद्वारा ही जीवन-यापन करता है—ऐसा घर-परिवारविहीन साधक 'श्रमण', 'निर्ग्रन्थ', 'भिक्षु', 'मुनि' या 'साधु' कहलाता है। श्रमणके जीवनको एक आदर्शके रूपमें रखकर गृहस्थाश्रममें रहकर भी विषय-वासनाओंसे निवृत्त रहते हुए मर्यादापूर्ण संयमी जीवन व्यतीत करनेवाला अणुव्रती सामान्य तौरपर 'श्रावक' कहलाता है। श्रावक वह है, जो वीतराग वचनोंमें पूर्ण श्रद्धा रखता हो, न्यायोपार्जित द्रव्यका सामाजिक एवं धार्मिक कार्योंमें यथावसर तथा यथाशक्ति प्रसन्नतापूर्वक दान करता हो और गृहस्थद्वारा आचरणीय कर्तव्योंके प्रति सदैव सचेष्ट रहता हो।

दानका सद्भाव—जैनाचारमें दानकी प्रवृत्तिका सर्वोपरि महत्त्व है और धर्ममय जीवनका शुभारम्भ दानसे ही होता है। तीर्थंकर भी संयम करनेसे पहले एक वर्षतक निरन्तर दान देते हैं। दान एक प्रकारसे ईश्वरकी ही पूजा है। यह आत्माको शान्ति एवं सन्तोष देनेवाला उत्तम गुण है। समाजमें दानी ही पुण्यवान् माने जाते हैं और यश प्राप्त करते हैं। दानीका जीवन सफल माना जाता है।

दान देनेके लिये सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि अपने अधिकारकी दातव्य (दानमें दी जानेवाली) वस्तुके प्रति ममता अर्थात् पुद्गल—आसक्तिका त्याग किया जाय। चूँकि ममत्व और मोहासक्ति उसीपर होती है, जो हमारे स्वामित्वमें हो, अतः दानका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष आत्म-प्रदेशोंमें घटित होनेवाला यह परिणमन अर्थात् ममत्व-विच्छेद ही है, जो परिग्रह-विरतिके लिये भी अपरिहार्य है।

श्रावकाचार (सागार धर्म)

आगारयुक्त व्रतके धारक (घर-गृहस्थीमें रहकर धर्माराधन करनेवाले) सागार धर्मी 'श्रावक' कहलाते हैं। श्रावकके लिये दान एक प्रधान और अनुकरणीय कर्तव्य है। श्रावकके लिये दान, शील, तप तथा भावनामें सर्वप्रथम दानकी ही गणना है। मोक्षरूपी महलके सोपानकी प्रथम सीढ़ी दान ही है। आचार्य श्रीउमास्वातिने दानका स्वरूप इस प्रकार बताया है—**'अनुग्रहार्थं स्वस्याति सर्गो दानम्'** अर्थात् किसीपर अनुग्रह करनेके लिये अपना सर्वस्व प्रमुदित भावसे दे डालना दान है और वह दान विधि, दाता, पात्र और द्रव्य आदिकी विशेषतासे और भी उत्कृष्टताको प्राप्त होता है। 'वसुनन्दि श्रावकाचार' में कहा गया है कि भोजन, औषधि, शास्त्र और अभय—ये चार प्रकारके दान हैं। इन्हें अवश्य देना चाहिये।

श्रावकाचारके अन्तर्गत व्यवहारमें दानके सद्गुणका विशेष सद्भाव रखनेवाले कतिपय बिन्दु निम्न प्रकारसे हैं—

१-दया—अर्थात् दयालुता, करुणा। मानवीय संवेदनाओंमें उद्बुद्ध होनेवाला प्रथम सद्भाव दया ही है। साधन-सुलभता एवं अन्य सुयोग उपस्थित हो जानेपर यही दान-प्रवृत्तिके रूपमें परिणमित हो जाती है। दया ही धर्मका मूल है। दयाका भाव विभिन्न प्रकारसे दानकी प्रवृत्तिको उत्प्रेरित करता है। सत्साहित्यमें उल्लिखित है—

न सा दीक्षा न सा भिक्षा न तद्दानं न तत्तपः।
न तज्ज्ञानं न तद्ध्यानं दया यत्र न वर्तते॥

अर्थात् जिसके हृदयमें दया नहीं है, उसकी दीक्षा, भिक्षा, ध्यान, तप, ज्ञान, दान सब मिथ्या है।

२-अपरिग्रहवृत्ति एवं दान—जैनाचारमें पाँच अणुव्रत एवं महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं। अपरिग्रह व्रतकी विचारणा दानकी भावनाको पुष्ट करती है। धर्म-साधनके लिये रखे हुए उपकरणों, साधनों तथा श्रावकके सन्दर्भमें घर-गृहस्थीकी सामान्य आवश्यकताओंकी पूर्तिके पश्चात् अतिरिक्त धन-सम्पदा, जमीन-जायदाद आदिका संग्रह परिग्रह-रतिमें आता है। धन-धान्य आदि बाह्य परिग्रह या द्रव्य-परिग्रह हैं तथा उनके प्रति मूर्च्छा (ममत्व भाव) भाव-परिग्रह है, इसे अभ्यन्तर परिग्रह भी कहते हैं। परिग्रहके मूलमें तृष्णा एवं लोभ हैं। **'तृष्णायां परमं दुःखम्'** 'तृष्णा परम दुःखका

कारण है।' अतः परिग्रहवृत्तिको हेय मानकर धन-सम्पदाके वास्तविक स्वरूपको समझकर श्रावकको परिग्रह, तृष्णा और लोभसे विरत रहना चाहिये। यदि तृष्णा तथा लोभका पूर्णतः त्याग सम्भव न हो तो तृष्णादिको मर्यादित अवश्य रखना चाहिये और दानके प्रशस्त कर्मका आश्रय लेकर धीरे-धीरे उससे छुटकारा पा लेना चाहिये।

३-कृतज्ञता एवं प्रत्युपकार-भावना—अकृतज्ञता कृतघ्नता होती है। कृतज्ञता श्रावकके २१ गुणोंमें एक महत्त्वपूर्ण सद्‌गुण है। प्रत्युपकार करनेकी भावनाकी परिणति दान-कर्ममें होती है। **'परोपकारः पुण्याय'** परोपकार पुण्यका मुख्य हेतु है। **'कृते च प्रतिकर्तव्यं एष धर्मः सनातनः'** के अनुसार हम जिससे उपकृत होते हैं, तो वह हमारे ऊपर ऋण हो जाता है, उससे उऋण होनेके लिये श्रावकको दानका सद्भाव रखते हुए प्रत्युपकार अवश्य करना चाहिये।

४-उदारता, क्रियावादिता एवं वैराग्य भाव—श्रावकके २१ लक्षणोंमें ये दानकी भावनाको उत्प्रेरितकर पुष्ट करनेवाले सबल भाव हैं। श्रावक पाप-पुण्यकी अवधारणाको जाननेवाला और शुभ कार्योंद्वारा पुण्य बन्ध करनेवाला होता है। धन-सम्पत्ति और कुटुम्ब-परिवारके प्रति गहरी आसक्ति न रखकर उदारतापूर्वक दान तथा धर्ममें अधिक रुचि रखता है तथा उदार स्वभावके कारण धनके द्वारा धर्मोन्नतिके कार्योंकी उत्कृष्टतामें विश्वास रखता है। द्रव्यका विवेकपूर्वक व्यय करके दान आदि सत्कर्म करता है।

५-उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत—आहार, अन्न, पानी, पकवान, शाक, ताम्बूल आदि जो वस्तु एक ही बार भोगी जाती है, वह उपभोग कहलाती है और स्थान, वस्त्र, आभूषण, शयनासन आदि जो वस्तुएँ बार-बार भोगी जाती हैं, वे परिभोग कहलाती हैं। इन दोनों प्रकारकी वस्तुओंकी मर्यादा रखना अभीष्ट है। अपनी आवश्यकताओंको कम करके सन्तोषवृत्ति बढ़ाना तथा अतिशेष वस्तुओंका सुपात्र या भिक्षुको दान कर देना, इस व्रतका प्रयोजन है।

६-सम्यक्त्वकी रक्षाहेतुदान-यतना—सम्यक्त्व गुणकी रक्षाके लिये जैनाचारमें छः यतनाएँ प्ररूपित हैं—आलाप, संलाप, दान, मान, वन्दना एवं नमस्कार। तृतीय यतना दानकी है, जो अनाथ, अपंग, दुःखी, दरिद्री आदिपर करुणा करके दान देनेका दायित्व बोध कराती है।

७-दानान्तरायका बोध—दानकी सामग्री तैयार हो, गुणवान् पात्र दानग्रहीताके रूपमें हो, दाता दानका फल भी जानता हो तथा दान देनेकी इच्छा भी हो, इसपर भी जिस कर्मके उदयसे दान नहीं किया जा सके, उसे दानान्तराय कर्म कहते हैं। अर्थात् दान आदि सत्कर्मोंमें विघ्न डालनेवाला कर्म अन्तराय कहलाता है। अतः विवेकपूर्वक सदैव सजग रहकर किसीको दानमें बाधा नहीं डालना चाहिये।

८-अतिथि संविभाग व्रत—श्रावकके १२ व्रतों (५ अणुव्रत+३गुणव्रत+४शिक्षाव्रत) में अन्तर्भावित ४ शिक्षाव्रतोंमें अन्तिम व्रत श्रेष्ठ दानकी श्रेणीमें आता है। दान देना श्रावकके प्रतिदिनके कार्योंमेंसे एक है, जिसकी पूर्ति यह व्रत करता है। इस व्रतमें संयमी सुपात्रको शुद्ध आहार आदि वस्तुओंका दान करनेका विधान है। अपने न्यायोपार्जित धनका सुपात्रके लिये संविभाग करना एवं दान देना इस व्रतका उद्देश्य है। जैन मान्यताके अनुसार श्रावकको चाहिये कि प्रतिदिन प्राप्त भोजनादिमेंसे कुछ भाग 'अतिथि' को देनेका मनोरथ रखे तथा साधु-साध्वीका योग मिलनेपर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दान करे। जिसके हाथसे दान दिया जाता है, वही दानके फलका अधिकारी होता है। दान देते समय असत्य भाषण नहीं करना चाहिये और विनम्रतापूर्वक अहोभाग्य मानना चाहिये कि सुपात्रने दान ग्रहण किया।

१-निन्दासे बचने या प्रशंसाके भावसे प्रेरित होकर दान नहीं देना चाहिये। २-अच्छी वस्तु होते हुए भी खराब वस्तु दानमें नहीं देनी चाहिये। ३-निरभिमानितासे दान देना चाहिये। ४-अहसान करते हुए दान नहीं देना चाहिये अर्थात् अनुपकारी भावसे दान देना चाहिये।

श्रमणाचार (अनगार धर्म)—'श्रमण' अर्थात् जैन 'मुनि' या 'निर्ग्रन्थ' या 'साधु' या 'भिक्षु'। श्रमणाचार जैनाचारका उत्कृष्ट पक्ष है, क्योंकि श्रावक वर्गमें सद्भावोंकी प्ररूपणा इनके द्वारा ही की जाती है। श्रावक दानदाता है,

तो श्रमण-वर्ग दान ग्रहण करनेवाले सुपात्र हैं। जैनाचारमें जिस प्रकार दानदाता श्रावकके लिये मर्यादाएँ हैं, उसी प्रकार दान-ग्रहीता भिक्षु वर्गके लिये भी अत्यन्त कठोर मान्यताएँ, सीमाएँ, निषेध एवं वर्जनाएँ हैं। साधुको सर्वप्रथम भिक्षेषणाके ज्ञानकी अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि इसीसे आहारकी शुद्धि होती है और आहारसे ही मन शुद्ध होता है। मन शुद्ध होनेपर इन्द्रियाँ कुमार्गगमनसे हटकर साधनामें स्थित हो जाती हैं और मोक्षप्राप्ति सुगम हो जाती है। प्रत्युपकारकी आशा न रखकर निःस्वार्थ बुद्धिसे दान देनेवाला दाता निश्चय ही दुर्लभ है और इसी तरह निःस्पृह एवं निरपेक्ष भावसे तथा निःस्वार्थ बुद्धिसे शुद्ध भिक्षा लेकर संयमपूर्वक जीवन-यात्राका निर्वाह करनेवाला भिक्षु भी दुर्लभ है। निःस्वार्थ भावसे दान देनेवाले दाता और निरपेक्ष एवं निःस्पृह भावसे दान लेनेवाले मुनि दोनों ही सुगतिमें जाते हैं।

आगमोक्त दानके प्रकार

'स्वपरानुग्रहार्थं अर्थिने दीयते इति दानम्' अर्थात् स्व और परके अनुग्रहके लिये जो दिया जाता है, वह दान है। अथवा **'स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वोत्पादनं दानम्'** अपने अधिकारमें रही हुई वस्तु दूसरेको देना दान कहलाता है अर्थात् उस वस्तुपरसे अपना अधिकार हटाकर दूसरेका अधिकार कर देना दान है। त्याग तथा दान-धर्म दोनों ही पूर्ण हैं, किंतु त्यागका स्वभाव दयालु है तथा दानका ममतामय। त्यागसे मूलधन चुकता होता है, तो दानसे उसका ब्याज। दानके लिये सुपात्र वह है, जो शारीरिक, आर्थिक और सामाजिक असुविधाओंके कारण असमर्थ हो। व्यक्तिकी आवश्यकताके समय उसे दान मिलना महत्त्वपूर्ण है, अतः दान कालापेक्षी है। ***'का बरषा सब कृषी सुखानें'*** भूखके समय ही भोजनकी उपयोगिता होती है—दो दिन बाद नहीं। समयपर प्रदत्त अल्पमात्रा भी सार्थक होती है, असमयमें अधिक देना भी व्यर्थ होता है, उदारता अधिक देनेमें नहीं, अपितु समयपर देनेमें है। आवश्यकताके समय देना ही उदारता है। दान देते समय रहनेवाली भावनाका अपरिमित महत्त्व है। दातव्य द्रव्यके प्रति ममत्व-त्यागके अतिरिक्त सकारात्मक सात्त्विक भावोंका उद्‌बोध दानको पुण्य बना देता है। दान सहज भावसे सम्मानपूर्वक देना ही उचित होता है। याचकको तिरस्कृत करनेसे दानकी गरिमा समाप्त हो जाती है। दानका उद्देश्य पीड़ा-हरण या दूसरेको ऊँचा उठाना होता है, अतएव याचकको पतित बनाना अशोभनीय है। ऐसा दान पाकर कोई भी प्रसन्न नहीं हो सकता। स्वेच्छापूर्वक तथा मानके साथ दान देनेसे साधारण वस्तु भी असाधारण बन जाती है। ऐसा दानग्रहीता अपमानित भी अनुभव नहीं करता है और दाताका अहंकार भी प्रकट न होकर सम्मानके भाव ही प्रदर्शित होते हैं। दान देनेमें स्वार्थवृत्ति नहीं होनी चाहिये। स्वार्थ परमार्थको निष्फल कर देता है। दानसे सभी प्राणी वशमें हो जाते हैं और शत्रुताका नाश होता है। पराये भी अपने बन जाते हैं तथा सभी प्रकारकी विपत्तियोंका शमन होने लगता है। दान आत्मिक आनन्दका स्रोत है तथा इससे आत्मबल बढ़ता है। सबसे महत्त्वपूर्ण तो यह है कि यदि हम मानते हैं कि ज्ञान देनेसे ज्ञान बढ़ता है, सुख देनेसे सुख बढ़ता है, तो दान देनेसे भी निश्चित रूपसे मान बढ़ता है। धनका दान देनेसे धनकी आवक और बढ़ जाती है। स्थानांग सूत्रके दशम स्थान भेदके अध्ययनमें दानके अनुकम्पा आदि १० भेद बताये गये हैं—

अणुकम्पा संगहे चेव, भए कालुणिए इ वा।
लज्जाए गारवेणं, च अहम्मे पुण सत्तमे॥
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते, काही इ य कतन्ति य।

१-अनुकम्पादान—किसी दुःखी, दीन, अनाथ प्राणीपर अनुकम्पा (दया) करके जो दान दिया जाता है, वह 'अनुकम्पा' दान है। अभयदानका ही दूसरा पर्यायवाची नाम 'अनुकम्पा दान' है, सूयगडांग सूत्रके श्रुतस्कन्ध एककी २३वीं गाथामें उल्लिखित यह सर्वश्रेष्ठ दान है। भयसे भयभीत बने हुए प्राणीकी रक्षा करना अभयदान है।

एकतः काञ्चनो मेरुः बहुरत्ना वसुन्धरा।
एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम्॥

अर्थात् सोनेका मेरु पर्वत और अपार रत्नोंसे भरी सारी पृथ्वीका दान एक तरफ रख दिया जाय और दूसरी तरफ भयसे डरे हुए प्राणीके प्राणोंकी रक्षा की जाय तो उपर्युक्त दोनोंसे प्राणरक्षारूप दान बढ़ जाता है।

दीयते म्रियमाणस्य कोटिं जीवितमेव वा।
धनकोटिं परित्यज्य जीवो जीवितुमिच्छति॥

मृत्युको प्राप्त हुए प्राणीको एक करोड़ मोहरें ईनाममें दी जायँ और दूसरी तरफ जीवनदान दिया जाय तो वह करोड़ मोहरोंको छोड़कर जीवन लेना पसन्द करता है। इसलिये अभयदान सर्वश्रेष्ठ है।

अहिंसा जैनधर्मका प्राण है। प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है।

आयुःक्षणलवमात्रं न लभ्यते हेमकोटिभिः क्वापि।
तद् गच्छति सर्वमृषतः काऽधिका हानिः॥

अर्थात् करोड़ों मोहरें खर्च करनेपर भी क्षण या लवमात्र भी आयु प्राप्त नहीं हो सकती। अतएव प्राणघातसे बढ़कर कोई हानि नहीं है। सम्यक् दृष्टि जीव सब प्राणियोंको अपने प्राणोंके समान समझते हुए सदैव दया एवं अनुकम्पाके सद्भावमें तत्पर रहते हैं और यथाशक्ति अभय देनेकी भावना रखते हैं।

दानसे भी अनुकम्पा और दया अधिक कही गयी है; क्योंकि धन समाप्त हो जानेपर दान देना बन्द हो जाता है, किंतु अनुकम्पाका झरना हृदयमें निरन्तर झरता है। वस्तुतः अनुकम्पा, दया, करुणा आदि सभी सद्गुण अहिंसाके निमित्त ही हैं। जिनागमोंका सार अहिंसामें ही सन्निहित है।

२-संग्रह-दान—संग्रह अर्थात् सहायता प्राप्त करना। आपत्ति आदि आनेपर सहायता प्राप्त करनेके लिये किसीको कुछ देना संग्रह-दान है। यह दान अपने स्वार्थको पूरा करनेके लिये होता है, इसलिये मोक्षका कारण नहीं होता है।

३-भयदान—राजा, मन्त्री, पुरोहित आदिके भयसे अथवा राक्षस एवं पिशाच आदिके डरसे दिया जानेवाला दान भयदान है।

४-कारुण्यदान—पुत्रादिके वियोगके कारण होनेवाला शोक 'कारुण्य' कहलाता है। यह मोहग्रस्ततासे होता है। शोकके समय पुत्रादिके नामसे दान देना 'कारुण्यदान' है। इसको आगममें 'कालुणिए' दान कहा है।

५-लज्जादान—लज्जाके कारण जो दान दिया जाता है—

अभ्यर्थितः परेण तु यद्दानं जनसमूहगतः।
परचित्तरक्षणार्थं लज्जायास्तद्भवेद्दानम्॥

अर्थात् जनसमूहके अन्दर बैठे हुए किसी व्यक्तिसे जब कोई आकर माँगने लगता है, उस समय लज्जाके वश याचकको कुछ दे देना लज्जादान है।

६-गौरवदान—यश, कीर्ति या प्रशंसा प्राप्त करनेके लिये गर्वपूर्वक दान देना गौरवदान है। मनमें गर्वका भाव आनेसे इस दानका पुण्य नष्ट हो जाता है।

७-अधर्मदान—अधर्मकी पुष्टि करनेवाला अथवा जो दान अधर्मका कारण है, वह अधर्मदान है—हिंसा, झूठ, चोरी, परदारगमन और आरम्भ-समारम्भरूप परिग्रहमें आसक्त लोगोंको जो कुछ दिया जाता है, वह अधर्मदान है।

अपात्रेभ्यस्तु दत्तानि दानानि सुबहून्यपि।
वृथा भवन्ति राजेन्द्र भस्मन्याज्याहुतिर्यथा॥

अर्थात् जिस प्रकार राखमें घीकी आहुति डालना व्यर्थ है, उसी प्रकार कुपात्रको दान देना व्यर्थ है।

८-धर्मदान—धर्म-कार्योंमें दिया गया अथवा धर्मका कारणभूत दान धर्मदान कहलाता है। स्वार्थरहित भावसे दिया गया गुप्त दान भी धर्मदान ही है।

समतृणमणिमुक्तेभ्यो यद्दानं दीयते सुपात्रेभ्यः।
अक्षयमतुलमनन्तं तद्दानं भवति धर्माय॥

अर्थात् जिनके लिये तृण, मणि और मोती एक समान हैं, ऐसे सुपात्रोंको जो दान दिया जाता है, वह दान धर्मदान होता है। ऐसा दान कभी व्यर्थ नहीं होता। इसके बराबर उत्कृष्ट कोई दान नहीं है। यह दान अनन्त सुख एवं पुण्यका कारण होता है। धर्मदानमें तीन दानोंका समावेश होता है—(१) अभयदान, (२) ज्ञानदान एवं (३) सुपात्रदान।

९-करिष्यतिदान—भविष्यमें प्रत्युपकारकी आशासे जो कुछ दिया जाता है, वह करिष्यतिदान है। प्राकृतमें इसे 'काही' दान कहा है।

१०-कृतदान—पहले किये हुए उपकारके बदलेमें जो कुछ किया जाता है, उसे कृतदान कहते हैं—

शतशः कृतोपकारो दत्तं च सहस्त्रशो ममानेन।
अहमपि ददामि किञ्चित्प्रत्युपकाराय तद्दानम्॥

अर्थात् इसने मेरा सैकड़ों बार उपकार किया है। मुझे

हजारों बार दान दिया है। इसके उपकारका बदला चुकानेके लिये मैं भी कुछ देता हूँ। इस भावनासे दिये गये दानको कृतदान या प्रत्युपकार दान कहते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैनागमोंमें दान एक प्रशस्त पुण्य कर्मके रूपमें सद्भावित है और जैनाचारके अन्तर्गत श्रावकाचार एवं श्रमणाचारमें पुण्यार्जनका मुख्य हेतु माना गया है। एतद् सन्दर्भित मर्यादाओंका पालन करते हुए पापकर्मोंकी निर्जरा करते हुए मोक्षप्राप्तिके साधना-मार्गको सुगम बनाया जा सकता है। कहा भी है—

दानं ख्यातिकरं सदा हितकरं संसारसौख्यकरम्।
नृणां प्रीतिकरं गुणास्करं लक्ष्मीकरं किङ्करम्॥
स्वर्गावासकरं गतिक्षयकरं निर्वाणसम्पत्करम्।
वर्णायुर्बलबुद्धिवर्धनकरं दानं प्रदेयं बुधैः॥

अर्थात् दान इस संसारमें ख्याति, सुख, गुण, आयु, बल, लक्ष्मी तथा मनुष्योंका प्रेम दिलानेवाला होता है तथा इस लोकके बाद स्वर्ग तथा अन्तमें जन्म-मरणके बन्धनसे छुटकारा दिलाकर मोक्षकी भी प्राप्ति कराता है। अतः बुद्धिमान् मनुष्योंको दान अवश्य देना चाहिये। धन नहीं भी है, तो मंगलकामना, आशीर्वाद तो दे ही सकते हैं। सहानुभूति-दान, क्षमादान, विनयदान आदिमें कुछ भी व्यय नहीं होता है और ऐसा कौन है, जो किसी को कुछ नहीं दे सकता? कहा भी है—

तन से सेवा कीजिये, मन से भले विचार।
धन से इस संसार में, करिये पर उपकार॥

मसीही धर्ममें दानका स्वरूप

(डॉ० ए० बी० शिवाजी)

विश्वके धर्मोंमें दानका विशेष महत्त्व है। दानद्वारा ही धर्मोंके बहुतसे कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं और दानदाता यह मानते हैं कि दान प्रदान करनेपर वे धर्मलाभ प्राप्त करते हैं।

एक प्रश्न मौलिक है कि क्या ईश्वर दानसे प्रसन्न होता है? क्या ईश्वरको दानकी आवश्यकता है? नहीं; क्योंकि धन देनेवाला तो ईश्वर ही है। एक धनी व्यक्ति ईश्वरकी दृष्टिमें धनी नहीं होता जैसा कि 'लूकारचित सुसमाचार' अध्याय १२। १४। २१ में एक सुन्दर दृष्टान्तद्वारा बताया गया है कि 'किसीका जीवन उसकी सम्पत्तिकी बहुतायतसे नहीं होता। सम्पत्ति इसलिये है कि मनुष्य खाये-पीये और सब प्रकारसे सुखी रहे।' (समोपदेशक ३। १३) धन ईश्वरद्वारा प्रदान किया जाता है; क्योंकि जिस सामर्थ्यसे मनुष्य धन अर्जित करता है, वह सामर्थ्य भी ईश्वरद्वारा प्रदत्त है। बाइबलमें स्पष्ट बताया गया है कि 'चाँदी तो मेरी और सोना भी मेरा ही है' (हाग्गै २। ८) धन जहाँ ईश्वरका आशीष है, वहीं धन वर्तमानमें अभिशाप बन मनुष्यके जीवनको अनैतिकताकी ओर ले जा रहा है, जिसके बुरे परिणाम मनुष्यको भुगतने होंगे। इसी कारण धनाढ्योंको एक चेतावनी है। नये नियमके 'याकूबकी पत्ती' ५। १। ६ में कहा गया है, 'हे धनवानो! सुन तो लो, तुम अपने आनेवाले क्लेशोंपर चिल्लाकर रोओ। तुम्हारा धन बिगड़ गया और तुम्हारे वस्त्रोंको कीड़े खा गये। तुम्हारे सोने-चाँदीमें काई लग गयी और वह काई तुमपर गवाही देगी और आगकी भाँति तुम्हारा मांस खा जायगी। तुमने अन्तिम युगमें धन बटोरा है। देखो, जिन मजदूरोंने तुम्हारे खेत काटे, उनकी वह मजदूरी जो तुमने धोखा देकर रख ली है, चिल्ला रही है और उन मजदूरोंकी दोहाई सेनाओंके प्रभु (ईश्वर)-के कानोंतक पहुँच गयी है। तुम पृथ्वीपर भोग-विलासमें लगे रहे और बड़ा ही सुख भोगा; तुमने इस वधके दिनके लिये अपने हृदयका पालन-पोषण करके मोटा-ताजा किया। तुमने धर्मीको दोषी ठहराकर मार डाला; वह तुम्हारा सामना नहीं करता।' कितने अद्‌भुत शब्दोंमें यह शाब्दिक चित्रण किया गया है। वर्तमानमें यही स्थिति है। भ्रष्टाचारद्वारा धन अर्जित किया जा रहा है। धनने ईश्वरका स्थान ग्रहण कर लिया है, किंतु धनी यह नहीं जानता कि अगले क्षण क्या होनेवाला है। इसी कारण मसीही

धर्मका महान् प्रथम प्रचारक पौलुस लिखता है, 'रुपयोंका लोभ सब प्रकारकी बुराइयोंकी जड़ है, जिसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हुए कितनोंने विश्वाससे भटककर अपने आपको नाना प्रकारके दुःखोंसे छलनी बना लिया है' (१ तिमुथियुस ६।१९।२०)। मनुष्यके जीवनमें जब अवसादपूर्ण स्थिति और त्रासदी प्रवेश करती है तब वह अपनी सम्पत्तिमेंसे कुछ अंश दान करता है। वह यह सोचता है कि ऐसा करनेसे ईश्वर उसे सांत्वना देंगे, शान्ति देंगे, बीमारियोंसे मुक्त करेंगे, किंतु ऐसा होता नहीं है; क्योंकि धनरूपी आसुरी शक्तिने—शैतानी आत्माने उसको बन्धनमें जकड़ लिया है और वह सत्तर वर्षकी आयुसे पहले (सत्तर वर्षकी आयु मनुष्यकी औसत आयु है, जो ईश्वरने निर्धारित कर रखी है) मृत्युको प्राप्त करता है। ऐसी अवस्थामें मनुष्य जपका सहारा लेता है किंतु ईश्वर जानता है कि उसका मन-हृदय उससे दूर है। इस कारण पवित्र शास्त्र बाइबलमें निर्देश है, 'जब तू दान करे, तो अपने आगे तुरही न बजाना, जैसा कपटी सभाओं और गलियोंमें करते हैं, ताकि लोग उनकी बड़ाई करें। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वे अपना फल पा चुके, परंतु जब तू दान करे तो जो तेरा दाहिना हाथ करता है, उसे तेरा बायाँ हाथ न जानने पाये, ताकि तेरा दान गुप्त रहे और तेरा पिता (ईश्वर) जो गुप्तमें देखता है, तुझे प्रतिफल देगा।' (पत्ती रचित सुसमाचार ६।२।४) मसीही धर्मके पुराने नियमकी पुस्तक दशाय्याह ६४।६ में कहा गया है, 'हम तो सबके सब अशुद्ध मनुष्यके-से हैं। हमारे धर्मके काम सब-के-सब मैले चिथड़ोंके समान हैं। हम सब-के-सब पत्तेकी भाँति मुरझा जाते हैं और हमारे अधर्मके कामोंने हमें वायुकी भाँति उड़ा दिया है।'

मनपर संयम रखना आवश्यक है; क्योंकि मनकी चंचलता ही वह आसुरी शक्ति है; जो हमारा ध्यान अधर्म, पापकी ओर खींचती है। पुराने नियमकी पुस्तक 'मिर्मयाह १७।९' में लिखा है, 'मन तो सब वस्तुओंसे अधिक धोखा देनेवाला होता है, उसमें असाध्य रोग लगा है; उसका भेद कौन समझ सकता है।' प्रभु यीशु मसीह कहते हैं, 'जहाँ तुम्हारा धन है, वहाँ तुम्हारा मन भी लगा रहेगा। (लूका १२।३४) दाउद राजा अपने भजनमें कहता है, 'चाहे धन-सम्पत्ति बढ़े तो भी उसपर मन न लगाना' (भजनसंहिता ६२।१०) बाइबलमें एक धनवान्‌के विषयमें सुन्दर वृतान्त है जो प्रभु यीशुके पास आता है और पूछता है, 'हे उत्तम गुरु! अनन्त जीवनका अधिकारी होनेके लिये मैं क्या करूँ?' प्रभु यीशु प्रत्युत्तरमें कहते हैं, 'तुझमें एक बातकी घटी है, जा, जो कुछ तेरा है, उसे बेचकर कंगालोंको दे और तुझे स्वर्गमें धन मिलेगा और आकर मेरे पीछे हो ले।' इस बातसे उसके चेहरेपर उदासी छा गयी और वह शोक करता हुआ चला गया; क्योंकि वह बहुत धनवान् था। (मरकुसरचित सुसमाचार १०।१७,२२) इसी अध्यायकी २५वीं आयतमें प्रभु यीशु कहते हैं, 'परमेश्वरके राज्यमें धनवान्‌के प्रवेश करनेसे ऊँटका सूईके नाकेमेंसे निकल जाना सहज है।'

मसीही धर्मके इतिहाससे ज्ञात होता है कि जगत्‌के आरम्भसे ही ईश्वरने मनुष्यको जो कुछ दिया है, उसमेंसे वे दसवाँ अंश दानके रूपमें चाहते हैं। भूमिसे उत्पन्न उपजके विषयमें बाइबलके पुराने नियमकी पुस्तक 'लैव्य व्यवस्था २७।३० में लिखा है' भूमिकी उपजका सारा दशमांश चाहे वह भूमिका बीज हो, चाहे वृक्षका फल वह यहोवा (ईश्वर)-का ही है, वह यहोवाके लिये पवित्र ठहरे। इसी प्रकार व्यवस्था-विवरणकी पुस्तक ६४।२२ में पढ़ते हैं, 'बीजकी सारी उपजमेंसे जो प्रतिवर्ष खेतमें उपजे उसका दशमांश अवश्य अलग करके रखना।' यह गरीबोंके लिये, अपाहिजोंके लिये, रोगियोंके लिये होता है। 'निगर्मन' पुस्तकके अध्याय २३।१०-११ में आवश्यक निर्देश दिया गया है कि 'छः वर्ष तो अपनी भूमिमें बोना और उसकी उपज इकट्ठी करना परंतु सातवें वर्षमें उसको परती रहने देना और वैसा ही छोड़ देना, जिससे तेरे भाई-बन्धुओंमेंसे दरिद्र लोग उससे खाने पायें और जो कुछ उनसे भी बचे वह बनैले पशुओंके खानेके काममें आये और अपनी दाख और जलपाई (जैतून)-

की वारियोंको भी ऐसे ही करना।' इसी कारण नबी मलाकी अपनी पुस्तक मलाकी (३। १०) में लिखता है जो ईश्वरीय वाणी है कि 'सारे दशमांश भण्डारमें ले आओ कि मेरे भवनमें भोजन वस्तु रहे; और सेनाओंका यहोवा यह कहता है कि ऐसा करके मुझे परखो कि मैं आकाशके झरोखे तुम्हारे लिये खोलकर तुम्हारे ऊपर अपरम्पार आशीषकी वर्षा करता हूँ कि नहीं।'

मसीही धर्मके अनुसार दानका सम्बन्ध सीधा प्रभु यीशुके सेवकों, परदेशियों, अनाथों, विधवाओं, दमित और दलित व्यक्तियोंसे होता है जैसा कि व्यवस्था-विवरणकी पुस्तक ६४। २८-२९ में कहा गया है, 'तीन-तीन वर्षके बीतनेपर तीसरे वर्षकी उपजका सारा दशमांश निकालकर अपने फाटकोंके भीतर इकट्ठाकर रखना; तब लेवीय (पुरोहित, सेवक आदि) जिसका तेरे संग कोई निज भागका अंश न होगा, वह और जो परदेशी और अनाथ और विधवाएँ तेरे फाटकोंके भीतर हों, वे भी आकर पेटभर खायें, जिससे तेरा परमेश्वर यहोवा तेरे सब कामोंपर तुझे आशीष दे।'

जब हम नये नियम (New Testament) को पढ़ते हैं तब दानके विषयमें अन्य बातें भी स्पष्ट होती जाती हैं कि ईश्वर मनुष्यको कई प्रकारके दान देता है। किसीको उपदेश देनेका वरदान है, तो किसीको लेखनका, किसीको भविष्यवाणी करनेका वरदान है तो किसीको किसी अन्य विद्यामें महारत हासिल है। अतः नये नियमकी पुस्तक 'याकूबकी पत्ती' में लिखा है, 'हर एक अच्छा वरदान और हर एक उत्तमदान ऊपर ही से है और ज्योतियोंके पिता (ईश्वर)-की ओरसे मिलता है।' (याकूबकी पत्ती ६। १७) इस कारण कहा गया है 'हर एक जन जैसा मनमें ठाने वैसा ही दान करे' (२ कारीन्थियोंकी पत्ती ९। ७); क्योंकि प्रभु यीशुकी वाणी है 'कि तुमने जो मेरे इन छोटे-से-छोटे भाइयोंमेंसे एकके साथ किया, वह मेरे ही साथ किया' (पत्ती २५। ४०)। अतः मसीहीका अनुयायी दानके इस विषयको समझकर प्रार्थना करता है जो एज्रानबीके द्वारा बतायी गयी है कि 'मैं क्या हूँ? और मेरी प्रजा (इस्राएल) क्या है कि हमको इसी रीतिसे अपनी इच्छासे भेंट देनेकी शक्ति मिले। तुझीसे तो सब कुछ मिलता है और हमने तेरे हाथसे पाकर तुझे दिया है।' (१ इतिहास १९। १४) दानके देनेसे ईश्वरके प्रति प्रेम, विश्वास और परिपक्वताका परिचय व्यक्त होता है और ईश्वरको धन्यवाद कहनेका अवसर प्राप्त होता है।

दानदाताओंको ध्यानमें रखना चाहिये कि केवल दान देनेके द्वारा वह धर्मी होनेकी डिग्री नहीं पा जाता, किंतु वह ईश्वरका अनुग्रह पानेके लिये दिन-प्रतिदिन अपने चरणको उस लक्ष्यकी ओर बढ़ाता है, जहाँ वह स्वयं भी लाभान्वित होता और दूसरोंके दुःख-दर्दको हटानेमें सहायक होता है। वास्तवमें मसीही धर्मका दानका यह सिद्धान्त अनुकरणीय है।

तृष्णा विष-लताके समान है। वह बढ़ते हुए महान् मोहको देनेवाली और भयंकर है। वह मनुष्यको केवल मूर्च्छा (अज्ञान) ही देती है (ज्ञानजनित सुख नहीं)। वर्षा-ऋतुकी अँधेरी रातके समान मनमें अनन्त विकार (भय आदि) उत्पन्न करनेवाली यह तृष्णा जब-जब प्रकट होती है, तब-तब महामोह प्रदान करती है। संसारमें जो दुरन्त, दुर्जर और महान् दुःख हैं, वे तृष्णारूपिणी विष-लताके ही फल हैं। तृष्णासे पीड़ित मनुष्यमें दीनता प्रत्यक्ष देखी गयी है। वह मन मारे रहता है, उसका तेज नष्ट हो जाता है, वह बहुत नीचे गिर जाता है। वह मोहग्रस्त होता, रोता और गिरता रहता है। निश्चय ही जहाँ तृष्णारूपिणी काली रात नष्ट हो गयी है, वहाँ शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति सत्कर्म ही बढ़ते हैं। जिस पुरुषरूपी वृक्षमें तृष्णारूपी घुन नहीं लगे हैं, उसमें सदा पुण्यरूपी फूल खिलते हैं और वह विकासशील अवस्थाको प्राप्त होता है। तृष्णाद्वारा ये सब लोग सूतमें बँधे हुए पक्षीके समान देश-विदेशमें भटकाये जाते, शोकसे जर्जर किये जाते और अन्ततोगत्वा मारे जाते हैं। जैसे हिरन तिनकोंसे आच्छादित हुए गड्ढेके ऊपर रखी हुई हरी-हरी घासकी शाखाको चरनेके लिये जाकर उस गड्ढेमें गिर जाता है, उसी प्रकार तृष्णाका अनुसरण करनेवाला मूढ़ मनुष्य नरकमें गिरता है। [योगवासिष्ठ]

इस्लाममें दानका विधान

(मो० सलीम खाँ फरीद)

दानके विविध प्रकारोंकी सरणियोंसे गुजरते हुए अध्ययन-कालमें पढ़े हुए बहुत सारे संस्कृत-श्लोकों और हिन्दी-दोहों तथा कवित्तोंके आलोकमें जो प्रभासित हुआ, वह आजतक मन-मस्तिष्कमें यथावत् विद्यमान है। '**अन्नदानं परं दानं**......... **यावत् जीवं च विद्यया।**' '***दोऊ हाथ उलीचिए यही सयानो काम***, '***दान दिये धन ना घटै***', '***भीर में जानिये दान दिये को***', '***दातार से सूम भलो तुरता उत्तर देय***', '***सबके दाता राम***' तथा '***दानकी बछियाके दाँत न गिनो***'- जैसे विभिन्न प्रसंग लोकमें प्रचलित हैं। दानकी महिमा देश, काल, प्रसंग और दानकी प्रकृति-प्रवृत्तिपर स्थित है। कभी वरदान श्रेष्ठ हो जाता है, तो कभी बलिदान (आत्मोत्सर्ग)।

इस्लाममें रमजानका महीना पूरा-का-पूरा दानके विपुल अवसरोंसे भरा हुआ है, जिसे 'जकात' के नामसे अभिहित किया गया है। परिवारके हर सदस्यपर वाजिब तयशुदा रकम या सोना-चाँदी, अनाज, वस्त्र, भोजन-पानीका सदका उतारकर जरूरतमन्दोंमें वितरित करना एक स्थायी और अति आवश्यक परम्परागत 'विधान' है। जकात और सदका उतारे बिना ही उस दिन (इदुल-फितरको) नमाज पढ़ना विधि-सम्मत नहीं माना जाता।

—दान करनेवाला जिस भावसे दान करता है, उसका रूपान्तरित अनुवाद कुरान शरीफके अनुसार—'हम तुमको प्रभु की प्रसन्नताके लिये खिला रहे हैं, एवजमें एक भी प्रतिदान और धन्यवादकी लालसा नहीं रखते।' अर्थात् ईश्वरकी राहमें जो भी दान करें, उसकी खुशीके लिये ही करें, किसी और मंशा या प्रशंसा प्राप्त करनेके लिये नहीं।

—दिखावे और आडम्बरसे बचकर दान करें, क्योंकि दिखावा अच्छे-से-अच्छे अमलको नष्ट कर देता है।

—उसकी नजरमें उसी अमल (दान) की कीमत है, जो निष्ठा और प्रेमके साथ किया गया हो, प्रभु उसे अपनी छत्रच्छायामें रखेगा, जिसने गोपनीय तरीकेसे दान किया हो, जैसे बाएँ हाथको कुछ खबर न हो कि दाहिने हाथने क्या खर्च किया।

—दानके बाद न अहसान जतायें और न उन्हें दु:खी करें जो लाभान्वित हुए हैं। देनेके बाद वंचितों और दीन-हीनोंके साथ क्षुद्रताका व्यवहार करना, उनके स्वाभिमानको ठेस पहुँचाना घृणास्पद कर्म हैं।

—दान देनेके बाद घमण्ड न करें, अपनी बड़ाईका प्रदर्शन न करें, अपितु यह सोचकर हतप्रभ बने रहें कि क्या पता खुदाके यहाँ मेरा सदका स्वीकार हुआ या नहीं?

—भिक्षुकों और मुहताजोंके साथ विनम्रताका सुलूक करें, डाँट-फटकार न लगायें। अगर आपके पास कुछ देनेके लिये नहीं, तब भी बहुत विनयके साथ अच्छे आचरणसे उनसे क्षमा माँग लें ताकि वह कुछ न मिलनेपर भी दुआएँ देता हुआ विदा हो जाय; क्योंकि परवरदिगारका आदेश है—'माँगनेवालोंको झिड़की न दो।'

—परमेश्वरकी डगरपर खुले दिलसे आनन्दके साथ खर्च करें। खीझ, कुढ़न, जबर्दस्तीका दण्ड समझकर व्यय न करें। कृपणता, तंगदिली और आर्थिक विपन्नताकी भावनाको तिलांजलि देनेवाले ही 'दानी' की सफल श्रेणीमें गिने जाते हैं।

—सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उसकी राहमें हलाल (उचित तरीकेसे कमाया हुआ, स्व-परिश्रमार्जित, शुद्ध कमाईका) माल खर्च करें। परमात्मा वही चीज अंगीकार करता है, जो पवित्र और हलाल हो। प्रभु स्वयं कहते हैं—'ईमानवालो! खुदाकी राहमें अपनी पाक कमाई खर्च करो।'

—उस प्रकाशवान्के मार्गमें बेहतरीन माल खर्च कीजिये। पवित्र कुरान शरीफमें लिखा है—'तुम हरगिज नेकी हासिल न कर सकोगे, जबतक वह माल खुदाकी राहमें न दो, जो तुम्हें प्यारा है।' सदकेमें दिया गया माल आखिरतकी हमेशाकी जिन्दगीके लिये जमा हो रहा है, तो कोई भी मुस्लिम हमेशाके लिये खराब और नाकारा माल क्यों संचित करेगा?

विश्वमें 'उपयोग करो और फेंको' प्रवृत्तिके कारण ही दानके प्रकार बदल गये हैं, मगर 'दानी' बननेकी होड़में '***होड़ करैं बड़ लोगन की पर दानन में नहिं देत हैं धेला***' वाले पाखण्डी ज्यादा हैं, जो 'टका लो और मुझे भी गाओ'-जैसी रीति अपनाये हुए हैं।

[आदाबे जिन्दगी: मौ० मो० यूसुफ इस्लाही]

इस्लाममें दान—ज़कात

(सुश्री शबीना परवीन)

ज़कात शरीअत[1] में उस मालको कहते हैं, जिससे अपना लाभ होनेके बाद, अपनी जरूरत पूरी करनेके बाद जो अल्लाहकी राहके लिये खर्च करे। इसमें कमाईका चालीसवाँ हिस्सा यानि २.५% ज़कातके तौरपर देना होता है।

इस्लामकी बुनियाद पाँच बातोंपर है—

१. कलमा[2], २. नमाज़, ३. ज़कात, ४. हज और ५. रमजानके रोज़े।

नमाज़के बाद जिस इबादतका जिक्र है, वह है ज़कात। ज़कात न देनेवालोंपर मुहम्मद साहबने लानत भेजी है।

ज़कातकी अदायगीसे गरीब मुस्लिम भाइयोंकी जरूरतें पूरी हो जाती हैं और उनके दिलमें खुशी होती है। इसमें एक धनवान् मुसलमान अपने गरीब मुस्लिम भाइयोंको ज़कात देकर समाजमें सर उठाकर जीनेका हौसला पैदा करता है। इससे निर्धन व्यक्ति तनाव, ईर्ष्या आदि अन्य बुराइयोंसे बच जाता है।

ज़कातके कई लाभ होते हैं—

१. ज़कात भाईचारा मजबूत बनानेमें अहम योगदान देता है।

२. ज़कात देनेसे लालच, कन्जूसीसे बचता है।

३. ज़कात देनेवालोंपर रहमते इलाही[3] की बरसात होती है।

४. ज़कात देनेवाला गुनाहोंसे दूर रहनेकी कोशिश करता है।

५. ज़कात देनेवाला कामयाब लोगोंकी फेहरिस्तमें शामिल हो जाता है।

६. अल्लाह ज़कात देनेवालेकी मदद करता है।

७. ज़कातसे निर्धन लोगोंके दिलमें खुशी होती है और देनेवालेको सबाब मिलता है।

८. ज़कात भाईचारेका बेहतरीन इज़हार है।

९. ज़कात देनेसे माल पाक हो जाता है।

१०. मालमें बरकत[4] होती है।

११. बुराईसे निजात (छुटकारा) मिल जाता है।

मोहम्मद साहबने कहा है कि तुम अपने मालोंकी ज़कात दो, यह इस्लामका अहम अरकान[5] है। लेकिन इस ज़कातमें उस मालकी ज़कात नहीं होती, जो हराम[6] की हो जैसे—चोरी, रिश्वत, सूदखोरी, किसीके मालपर जबरदस्ती कब्जा करनेवालोंपर ज़कात नहीं, अल्लाहका हुक्म है कि यह माल जिसका हो उसीको वापस करो; क्योंकि यह माल तुम्हारी मेहनतका नहीं, जिसका हो उसे लौटा दिया जाय। इस तरह इस्लाम ज़कात देनेमें उन लोगोंसे परहेज़ करता है, जो बुरी नीयत या दूसरोंको नुकसान देकर अपनेको फायदा पहुँचानेका मकसद रखते हैं।

ज़कात नाबालिग या पागलपर वाजिब नहीं, ज़कात उन्हींपर निकलती है, जिनके पास साढ़े सात तोला सोना या साढ़े बावन तोले चाँदी या मालियत[7] हो। यह हर बालिग औरत और मर्दपर वाजिब[8] है।

इस तरह ज़कात अपनी मालियतसे २.५% का निकला धन है, जो गरीब, बेसहारा, विधवा, बीमार, तालिबेइल्म (पढ़नेवाले बच्चे) आदिपर खर्च किया जाता है, इससे एक ओर तो गरीबी दूर होती है, दूसरी ओर लालच, भ्रष्टाचार आदि बुरी आदतोंसे भी बचा जा सकता है।

नित्यकर्म प्रेमकी शोभा है; उसे अवश्य करना चाहिये। मनमें उत्तरोत्तर प्रभु-पदमें परम अनुराग बढ़ता रहे; फिर जगत्का राग अपने-आप ही नष्ट हो जायगा। सूर्यके सामने अन्धकार रह ही नहीं सकता; इसी प्रकार भगवान्के अनुरागके सामने भोगासक्ति रहती ही नहीं। अतएव मनमें सर्वथा निश्चिन्त रहकर भगवच्चरणोंमें सदा संलग्न रहना चाहिये। भगवान् आप ही सब चिन्ता करेंगे, उन्हींपर सारा भार है, पर उनको भार लगता ही नहीं, यही उनकी सहज प्रीतिका स्वरूप है। वरं वे अपनेको उलटे प्रेमीका ऋणी मानते हैं।

१. इस्लामी धर्मशास्त्र, २. मुसलमानोंके धर्म-विश्वासका मूल मन्त्र, ३. ईश्वरीय कृपा, ४. वृद्धि, ५. आधार-स्तम्भ, ६. निषिद्ध, ७. दौलत, ८. कर्तव्य।

महाराजा विक्रमादित्यकी दान-शैली

(श्रीइन्द्रदेवप्रसादसिंहजी)

भारतीय श्रुति-परम्परा अथवा अनुश्रुतियोंमें मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामके बाद परम परोपकारी और न्यायी शासकोंके आदर्श उदाहरणोंमें अवन्तिपुरीके अधीश्वर सम्राट् विक्रमादित्यका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। ये न्यायके पर्याय थे। दानशीलताके देवत्वसे परिवेष्ठित थे। हिन्दू धर्मके प्राणद पुरोधा थे। हिन्दू तीर्थोंके संरक्षक, परिपोषक एवं प्रवीण गवेषक थे। खासकर अयोध्यापुरीकी गवेषणामें अन्यतम इस सहृदय सम्राट्ने नृशंस एवं बर्बर शक जातिसे संकटाक्रान्त भारत-वसुन्धराको आजादकर आज दो सहस्राधिक वर्षोंसे भारतीय जनमानसपर अपना अटल आधिपत्य जमा लिया है। इसीलिये तो इन्हें 'शकारि' संज्ञासे संपृक्त किया गया है। शकोंको पराजित करनेके प्रतिफल-स्वरूप ही विक्रम संवत्का प्रादुर्भाव भारतीयोंमें मान्य है। कुछ लोगोंकी मान्यता है कि सम्राट् विक्रमादित्यने मालव संवत् चलाया था। इनके दरबारके महार्घरत्न कवि कालिदासने अपने आश्रयदाता और जनाधीश्वर महाराजा विक्रमादित्यके यशका वर्णन **'विक्रमोर्वशीयम्'** नाटकमें महाराज पुरूरवाकी ओटमें अप्रत्यक्षरूपसे किया है। अनुश्रुति दृढ़तापूर्वक बतलाती है कि विक्रमादित्य उज्जयिनीके महाराज गन्धर्वसेन महेन्द्रादित्यके सुपुत्र थे। उनकी पत्नीका नाम भानुमती था।

उनकी सभा नवरत्नोंसे सुशोभित थी, जिनमें महाकवि कालिदास सर्वश्रेष्ठ थे। ये अद्वितीय पराक्रमी, परम साहसी, निर्भीक, प्रजावत्सल, गुणग्राही, साहित्यरसिक और अनुपम दानी थे। विविध कलाओंमें अति प्रवीण थे तथा उनका चरित्र परम पवित्र था। दानियोंमें शिरमौर थे। उनके दानमंडित आदर्श चरित्रके बारेमें कतिपय सूक्तियाँ यहाँ ध्यातव्य हैं—

तत्कृतं यन्न केनापि तद् दत्तं यन्न केनचित्।
तत्साधितं असाध्यं यद् विक्रमार्केण भूभुजा॥

(कथासरित्सागर)

अर्थात् राजा विक्रमादित्यने वह किया, जो किसीने नहीं किया; वह दिया, जो किसीने नहीं दिया और उस असाध्य कार्यको पूर्ण किया, जो किसीसे साध्य नहीं था। धन्य हैं सनातन धर्मरक्षक विक्रमादित्य, जिनकी प्रशस्ति प्रांजलपूत वाणीमें की गयी है। खासकर यह उक्ति ***'वह दिया, जो किसीने नहीं दिया'*** स्वर्णाक्षरांकित करनेयोग्य है। इसे परम प्रेरक विशिष्ट विरासत स्वीकारना चाहिये।

विविध आयामोंमें दानवीरताके प्रतीक विक्रम संवत्सराधीशके प्रति निम्नांकित उक्ति उन्हें प्रजापति पदभाजन बना डालती है—

स पिता पितृहीनानामबन्धूनां स बान्धवः।
अनाथानाञ्च नाथः सः प्रजानां कः स नाभवत्॥

अर्थात् वह पितृहीनोंका पिता, बन्धुहीनोंका बान्धव और अनाथोंका नाथ था; प्रजाके लिये वह क्या नहीं था? अतएव राजा विक्रमादित्य निश्चय ही प्रजाको पुत्रवत् मानते थे और पिताकी भाँति प्यार-दुलारका स्नेहिल दान देते थे। अनाथोंको आश्रयदान देते थे। सचमुच वे प्रजाके लिये सर्वस्वपदभाजन थे।

उनकी दानशीलताके सम्बन्धमें अनुश्रुतियोंमें अनेकशः कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि उन्होंने अपने कोषाध्यक्षसे यह कह रखा था कि यदि कोई गुणीपुरुष मेरे समक्ष आ जाय तो उसे एक सहस्र, वार्तालाप करे तो दस सहस्र, यदि मैं उसकी बातोंपर प्रसन्नमुख हो मुसकरा दूँ तो एक लाख और यदि उसपर आत्यन्तिक रूपसे प्रसन्नतापूरित हो जाऊँ तो एक करोड़ मुहरें दी जायँ—

आप्ते दर्शनमागते दशशती संभाषिते चायुतं
यद्वाचा च हसेहमाशु भवता लक्षोऽस्य विश्रायताम्।
निष्काणां परितोषके मम सदा कोटिर्मदाज्ञापरा
कोशाधीश सदेति विक्रमनृपश्चक्रे वदान्यस्थितिम्॥

(मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि)

कैसी विचित्र श्रद्धाभावना थी राजा विक्रमकी दानशीलताके प्रति। कैसी उदारता थी उनमें कि उन्होंने दानराशिकी एक विलक्षण नियमावली पूर्वमें ही निर्धारित कर रखी थी। कहा जाता है कि एक बार उनकी

दानशीलता एवं अन्यान्य गुणावलियोंको सुनकर कोई समधीत विद्वान् उनके दरबारमें आया। उसने महाराजा विक्रमादित्यकी दानशीलतामें न्यूनता दिखलाते हुए उनके दातापनमें कुछ कमीकी बात कह दी। सभामें मौन—मूकता छा गयी। कुछ आक्रोशके तेवर भी दिखायी पड़े, परंतु सहनशील एवं गम्भीर धैर्यवृत्तिके राजा विक्रमने विद्वान्का मुँह जोहा। विद्वान् पण्डितने राजाकी इंगिति समझकर निम्नांकित श्लोकका उच्चारण किया—

सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे बुधैः।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः॥

अर्थात् हे राजन्! आप सर्वदा सब कुछ देनेवाले हैं—आपकी ऐसी प्रशंसा पण्डित लोग व्यर्थ ही करते हैं। आपने न तो शत्रुओंको कभी पीठ दी और न पर-स्त्रियोंको कभी वक्षःस्थल—इतना सुनना था कि राजाने उस पण्डितको छातीसे लगा लिया। धन्य है पण्डितकी व्याजनिन्दा। इधर कोषाध्यक्षका हाल बेहाल; क्योंकि आह्लादित हो आलिंगनके लिये कोई दानकी सरणि निर्धारित नहीं थी। अन्ततोगत्वा महाराजा विक्रमने पण्डितको मुँहमाँगा दान देनेकी आज्ञाका उद्घोष किया। कोशपालने यथावत् आज्ञाका पालन किया और पण्डितजीने मनमाना दान पाकर मनभर आशीर्वाद दिया। उपर्युक्त वृत्तान्त जनश्रुतिपर आधारित है। जनश्रुति ही आर्यजातिका जीवनधन है। जनश्रुतिके विलोपनसे हमारे अनेक ऋषि-महर्षि और अवतार विस्मृतिके गर्तमें जा छिपेंगे। विक्रमादित्यका विक्रम, न्यायशीलता और दिव्य दानशीलता भारतीय जनजीवनमें प्रतीक बनकर उपर्युक्त गुणोंकी वहि प्रज्वलित करती रहें—यही सद्भावी कामना है।

राजस्थानके भक्तिसाहित्यमें दानकी महिमा

(डॉ० श्रीओंकारनारायणसिंहजी)

अध्यात्मपरायण भारतीय संस्कृतिका प्रत्येक जीवन-व्यवहार शास्त्रोक्त अनुशासनसे आबद्ध रहता है। इसके अन्तर्गत शरीर, युग एवं आश्रमके अनुरूप धर्मकी व्यवस्था निर्दिष्ट होती है। बृहदारण्यकोपनिषद्के पंचम अध्यायके द्वितीय ब्राह्मणमें प्रजापति ब्रह्माद्वारा देवताओं, मनुष्यों तथा असुरोंके कल्याणार्थ उपदिष्ट 'द' क्रमशः दम, दान और दयाका प्रतीकार्थी है। मनुस्मृतिके अनुसार जहाँ कृत, त्रेता और द्वापरयुगके प्रधान आध्यात्मिक साधन क्रमशः तप, ज्ञान एवं यज्ञ निर्दिष्ट किये गये हैं, वहीं कलियुगका एकमात्र श्रेयस्कर साधन 'दान' ही घोषित किया गया है। यथा—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

(मनु० १।८६)

चारों आश्रमों—संन्यास, वानप्रस्थ, गृहस्थ तथा ब्रह्मचर्यके धर्म क्रमशः शम, उपवास, दान और शुश्रूषा निर्दिष्ट किये गये हैं—

यतीनां तु शमो धर्मस्त्वनाहारो वनौकसाम्।
दानमेव गृहस्थानां शुश्रूषा ब्रह्मचारिणाम्॥

(यमस्मृति)

इस प्रकार कलियुगमें मनुष्योंहेतु एवं गृहस्थाश्रमका एकमात्र कल्याणकारी धर्म दान ही सिद्ध होता है। ऋग्वेद (१०।१०७।२,७)-के अन्तर्गत भी गौ, अश्व तथा स्वर्णदानकी प्रशस्ति समुपलब्ध होती है। देवलके अनुसार शास्त्रद्वारा उचित माने गये पात्रहेतु शास्त्रानुमोदित विधिसे प्रदत्त धनको 'दान' की संज्ञासे अभिहित किया जाता है। यथा—

अर्थानामुदिते पात्रे यथावत्प्रतिपादनम्।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं व्याख्यानं तस्य वक्ष्यते॥

(देवलस्मृति)

देवलने दानके दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा, धर्मयुक्त देय, उचित काल और उचित देश इत्यादि छः अंग वर्णित किये हैं। उन्होंने दानके नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य—इन तीन प्रकारोंका उल्लेख किया है। गीता (१७।२०—२२)-के अन्तर्गत भी दानकी सात्त्विक, राजस तथा तामस श्रेणियोंका विवरण प्राप्त होता है। इस प्रकार भारतीय वाङ्मयमें दानमहिमा अनेकशः वर्णित हुई है। यही सनातनपरम्परा मध्यकालीन राजस्थानके भक्तिसाहित्यके अन्तर्गत भी निदर्शित होती है। तत्कालीन विविध सम्प्रदायोंके आचार-नियमों और वाणी-साहित्यमें दान-महिमाके निर्देश प्रभूतरूपसे

सम्प्राप्त होते हैं—

१-निरंजनी-सम्प्रदाय—सम्प्रदायप्रणेता हरिदास निरंजनी-द्वारा तुलादानके परिप्रेक्ष्यमें स्वर्णदानका उल्लेख किया गया है—

तुला वैसि कंचन दे काटि।....

(हरिदासवाणी पद ९६)

तुरसीदासनिरंजनीने शीलयुक्त आचरणके सन्दर्भमें व्रत, तपस्या एवं दानकी चर्चा की है—

सील विना एकादसी, सील विना तप दान।

(हरिदासवाणी उत्तरखण्ड साषी ६)

सेवादास निरंजनीद्वारा अश्व, गज, भूमि तथा स्वर्णदान (तुलादान)-का निर्देश करते हुए ब्राह्मणभोजन और उन्हें प्रदत्त दानदक्षिणाका उल्लेख किया गया है—

हेवर गेवर भोमि हेम, संगि देह तुलीजै।
करे तप बहु भाँति, दान छाया लै दीजै।
राजवर्ग सो बिप्र न्योति, मिस्टान्न जीमावै।
बड़ा बड़ा धनवान, ताही लै दान दीवावै॥
भावै अड़सठ तीरथ न्हाइ, दान बिप्र कूँ देहु।

(हरिदासवाणी उत्तरखण्ड कवित्त १-२)

हरिरामदास निरंजनीने जप, तप, तीर्थ, व्रत, योग, यज्ञके समान ही दानकी महत्ता निदर्शित करते हुए कर्तापनके अभिमानसे रहित दानको सर्वश्रेष्ठ घोषित किया है—

जप तप तीरथ शील व्रत योग यज्ञ पुनि दान॥
योग यज्ञ पुनि दान, इते करि मान न आनै।

(हरिदासवाणी, उत्तरखण्ड कुण्डलियाँ २६)

कोमलदास निरंजनीद्वारा विद्यादानके परिप्रेक्ष्यमें वाणी-ग्रन्थके गुटके प्रेम-प्रीतिपूर्वक दानकी चर्चा की है—

प्रेमवान प्रीतवान गोटकों का करै दान।

(हरिदासवाणी, उत्तरखण्ड, सवैया ३)

२-विश्नोई-सम्प्रदाय—सम्प्रदायप्रवर्तक जाम्भोजीकी सबद-वाणीके अन्तर्गत दानमहिमा अनेक व्यावहारिक उदाहरणोंके माध्यमसे निर्दिष्ट की गयी है। उनके अनुसार थोड़ी वस्तु हो तो उसमेंसे भी थोड़ी-सी देनी ही चाहिये। परंतु वस्तु पासमें होते हुए इनकार नहीं करना चाहिये—

थोड़ै मांहि थोड़ैसे दीजै, होतै नाँहिं न कीजै।

(सबद ९२:२)

अन्यत्र लक्ष्मण-मूर्च्छासम्बन्धी सबदके अन्तर्गत ब्राह्मणभोजनका उल्लेख हुआ है—

कै तैं बाम्भण निवति बहोड्या।

(सबद ५९:५)

निष्काम एवं सकामदानके प्रसंगमें जाम्भोजीद्वारा विदुर तथा कर्णकी चर्चा की गयी है—

मन मुखि दान ज दीन्हौं करणैं,
आवागवण ज आइयै।
गुर मुखि दान ज दीन्हौं विदरै,
सुर की सभा समाइयै।

(सबद २८:६०—६३)

उनके मतानुसार विष्णुके नामपर प्रदत्त दानका फल अनन्त गुना होता है। यथा—

जोय जोय नाँय विसन कै दीजै।
अनंत गुणां लिख लीजै।

(सबद ९२:३-४)

अन्यत्र आयका दसवाँ भाग दान करनेके निर्देश हैं—

गुर गहणाँ जो लीवै नाँहीं दसवंध धरि वोसायस्यैं।

(सबद ९०:५)

शास्त्रीय परम्पराके अनुरूप जाम्भोजीने स्वर्ण, वस्त्र, गौ, गज, अश्व और कन्यादानका उल्लेख किया है—

कंचण दांनूं कछू न मानूँ, कापड़ दांनूं कछू न मानूँ।
चौपड़ दांनूं कछू न मानूँ, हसती दांनूं कछू न मानूँ।
तुरंगम दांनूं कछू न मानूँ, तया दांनूं कछू न मानूँ।

(सबद १००:१—६)

३-जसनाथी-सम्प्रदाय—जसनाथजीद्वारा प्रतिपादित सम्प्रदायके छत्तीस धर्मनियमोंके अन्तर्गत नियमसंख्या सोलहमें आयका बीसवाँ भाग धर्मार्थ-दान किये जानेका प्रावधान है। नियम संख्या बाईसमें गौ, बकरों एवं मेढ़ों (भेड़)-की कसाइयोंसे रक्षानिमित्त पशुशालाओंके निर्माणहेतु धन व्यय किये जानेका निर्देश है। नियमसंख्या छत्तीसके अनुसार दैनिक चर्यामें अन्नदानके सन्दर्भमें पशु-पक्षियोंको नियमपूर्वक चुग्गा-पानी दिये जानेकी बात कही गयी है।

४-दादू-सम्प्रदाय—दादूदयालने दानकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए उसे जगत्‌में यश-कीर्तिदायक तथा परलोकका पाथेय घोषित किया है। उन्होंने दानके अभावमें प्राप्य वस्तुके भी अप्राप्य हो जानेकी चर्चा की है। यथा—

दादू दीया है भला, दिया करौ सब कोइ।
घर में धर्‍या न पाइये, जे कर दिया न होइ॥
दीये का गुण ते लहैं, दीया मोटी बात।
दीया जग में चाँदना, दीया चालै साथ॥

(दादूदयालकी बानी, गुरुदेवको अंग, साखी ३७-३८)

दादूके शिष्य रज्जबने अपनी वाणीके अन्तर्गत दान निदांन पुंनि प्रवीनका अंग रचकर दानको प्रवीण (श्रेष्ठ) पुण्यका कारक निर्दिष्ट करते हुए महिमाका बखान किया है।

संत सुन्दरदास बूसरने निजकरसे अन्न-जल एवं वस्त्रदानके समानान्तर ज्ञान-दानके रूपमें तत्त्वोपदेशकी महत्ता निदर्शित की है। उन्होंने बोई जानेवाली भूमिकी उर्वरताके समान ही दानके पात्र-कुपात्रके भली प्रकार अन्वेषणका निर्देश किया है—

एक दान कर दीजिये, एक दान उपदेश।…
…दूसर जल अरु अन्न बसन करि पोषै कोई।
पात्र कुपात्र विशेष भली भू निपजय धानं।
सुन्दर देखि बिचारि उभय विधि कहिये दानं॥

(ज्ञानसमुद्र, अष्टांगयोगनिरूपण २७)

अन्यत्र उन्होंने ब्राह्मणोंको गोदानकी चर्चा की है—

एक कोऊ दाता देत ब्राह्मण को गऊ दान…

(सुन्दर विलास, ब्रह्म निष्कलंकको अंग १)

५-रामसनेही-सम्प्रदाय—सम्प्रदायकी रेण शाखाके प्रतिष्ठापक सन्त दरिया साहब (मारवाड़वाले)-द्वारा जप, तप, संयम, तन-मन-निग्रह, सांख्य, योग और व्रत-उपवासके समानान्तर दानकी महिमा निर्दिष्ट की गयी है—

जप तप संजम काया कसनी, सांख जोग ब्रत दाना।

(दरियासाहबकी बानी, मिश्रित अंग)

सिंहस्थल शाखाके प्रवर्तक सन्त हरिरामदासने अपनी अनुभववाणीके अन्तर्गत मायारूप सांसारिक धन-वैभवका सर्वश्रेष्ठ उपयोग हरिको समर्पितकर हरिके जनोंके निमित्त अधिकाधिक दान घोषित किया है—

माया देवण जोग है, जे कोई देवण जोग।
हरीया हरिजन पूजीयै, लागै हरि कै भोग॥

(हरिरामदासवाणी, माया षरचन षांन को अंग, साषी २४)

उन्होंने धन-मायाकी असारता चित्रित करते हुए प्रभुप्रसाद मानकर इसका नित्यप्रति दान ही श्रेयस्कर निर्दिष्ट किया है। अन्यथा अपनी मानकर संचित की जानेवाली अर्थ-सम्पदा बन्धनकी हेतु ही सिद्ध होगी तथा अन्ततः नाशको प्राप्त होगी—

न कोई ल्यायौ ओथि सूँ, नाँ इत सूँ ले जाय।…
…हरिया माया जौ भली, वाँटै रांम निवन्त।…
…हरिया माया सूंब की, हाथ न दीनी जाय।
का डंडै का घर मुसै, का कोई ठगि ले जाय॥
हरिया जो कुछि दीजियै, माया हरि कै नाँय।
जौ करि जाँणि आपनी, तौ हरि कै नहिं भाँय॥

(हरिरामदासवाणी, माया षरचन षान० साखी १,२,१३,२७)

६-चरणदासी-सम्प्रदाय—सम्प्रदायप्रणेता चरणदास-द्वारा आदर्श जीवनचर्याके प्रमुख आधार प्रभु-उपासना एवं प्रभुके प्राणियोंको दान घोषित किये गये हैं—

साहब की कर बन्दगी, दे भूखे को दाना।
समुझावैं सुकदेवजी, चरनदास अयाना॥

(चरणदास-वाणी, प्रथम भाग, चेतावनीका अंग शब्द २६)

उन्होंने दानविमुख जनोंको दया-धर्मके पथसे च्युत मानकर उनकी भर्त्सना की है—

दया धर्म दोऊ मारग छाँड़े, मँगतन को नहिं दान दयो।

(चरणदास-वाणी, द्वितीय भाग, मिश्रित अंग, शब्द १७)

अन्यत्र उन्होंने अन्नदानकी महत्ता भूखोंद्वारा दाताहेतु दुआके प्रसंगमें निदर्शित की है—

फे फ़ाके का गुन यही, राज़िक करे यादा।

(चरणदास-वाणी, प्रथम भाग, चेतावनीका अंग, शब्द २२)

७-मीराँबाई—भक्त कवयित्री मीराँबाईने भी स्वरचित पदोंके अन्तर्गत अनेकशः दानकी महिमा वर्णित की है। उन्होंने सांसारिक सुखोपभोगको व्यर्थ निर्दिष्ट करते हुए परोपकार और दानको ही साथ चलनेवाली वास्तविक सम्पत्ति घोषित किया है—

काँईं रे खाइयो, काँईं रे खरचियो, काँईं रे कियो उपकार।
दियो रे लियो तेरे संग चलेगो, और नहीं चलै लार॥

(मीराँ बृहत्पदावली, पद १४७)

अन्यत्र उन्होंने हाथोंकी सार्थकता दान देनेमें निर्दिष्ट करते हुए कार्तिक मासके अन्तर्गत किये जानेवाले स्नान-दानकी चर्चा की है। यथा—

पाँव दिये तोहि तीरथ करने, हाथ दिये कर दान।

नयन दिये तोहि दरसन करने, श्रवण दिये सुन ज्ञान॥

× × × ×

आठ मास कातिक लौं न्हाई, दान पुन्य बहु कीना॥

(मीराँ बृहत्पदावली, पद ४९५, ५६५)

इसके अतिरिक्त राजस्थानके भक्ति-सम्प्रदायोंके मठ, मन्दिरों एवं दादूद्वारों-रामद्वारोंके अन्तर्गत चलनेवाले राम-रसोड़े तथा सदाव्रत सनातन दान-परम्पराके ही उदाहरण हैं। जानश्रुति पौत्रायणने भी वैदिक युगमें स्थान-स्थानपर ऐसी ही भोजनशालाओंका निर्माण करवाया था—

जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस। स ह सर्वत आवसथान्मापयाञ्चके सर्वत एव मेऽत्स्यन्तीति॥

(छान्दोग्योपनिषद् ४।१।१)

सारांशतः राजस्थानके भक्तों-सन्तोंद्वारा चराचर जगत्को प्रभुका मानते हुए यहाँकी प्रत्येक वस्तुपर सबका समान रूपसे अधिकार घोषित किया गया है। इसी परमार्थवादी विचारदृष्टिसे उन्होंने प्रत्येककी आधिक्ययुक्त वस्तुको प्रभुका प्रसाद समझकर उसका अन्य प्राणियोंमें कर्तव्यबुद्धिसे दानके रूपमें प्रभुप्रीत्यर्थ हस्तान्तरण अथवा वितरण श्रेयस्कर निर्दिष्ट किया है। इस हेतु उनके द्वारा सम्प्रदायगत नियमों एवं आचारगत उद्‌बोधनोंके अन्तर्गत दान-महिमा बारंबार प्रतिपादित की गयी है।

प्राचीन अभिलेखोंमें दान-निरूपण

(डॉ० श्रीराकेशकुमारजी सिन्हा 'रवि')

प्राचीनकालसे भारतदेश राजा-रजवाड़ोंकी भूमि रहा है। प्राचीन भारतीय राजवंशोंके राजाओंने न सिर्फ प्रजापालक रूपमें राजाकी भूमिका अदा की वरन् भारतीय आदर्शोंके अनुरूप दान-पुण्यपर भी ध्यान दिया। यही कारण है कि भारतीय राजाओंकी दानशीलताकी कथा आज भी यत्र-तत्र-सर्वत्र सुनी जाती है।

प्राचीन भारतीय इतिहासके अध्ययन-अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि कितने ही भारतीय राजाओंने विशाल भवन, मन्दिर, खेतीयोग्य भूमि, जलाशय, स्मारक एवं मूर्त्त-शिल्प आदिका दानकर भारतीय समाजमें अनेक आदर्श स्थापित किये।

भारतवर्षके प्राचीन ज्ञात राजवंशोंमें एक है वृहद्रथवंश। इस वंशके शासकोंमें बिम्बिसारके बारेमें वर्णन है कि उसने कूरदन्त नामक ब्राह्मणको खानुमत गाँव (वर्तमान नवादा जिलाका खनयाँ गाँव) और ब्राह्मण सोनदण्डको चम्पानगरकी आय दानके रूपमें दी थी। राजा अजातशत्रु भी एक दानी राजा था, जिसके दरबारसे याचक कुछ-न-कुछ प्राप्त करके ही लौटते थे।

इतिहासमें यह जानकारी मिलती है कि सम्राट् अशोकने धम्म-प्रवेशके बाद दानके स्थानपर 'धम्मदान' की व्यवस्था की। ११वें शिलालेखमें अंकित है कि 'धम्मदान करनेसे मनुष्यको इस लोकमें भी सुख मिलता है और परलोकके लिये भी अत्यन्त पुण्य मिलता है।' राजा अशोक और उसके योग्य पौत्र दशरथने गया-क्षेत्रके बराबर पर्वतपर सात-सात पाषाण गुफा बनवाकर उन्हें आजीवक साधुओंके निवासार्थ दान कर दिया था।

कलिंगनरेश खारवेलके हाथीगुम्फा अभिलेखसे स्पष्ट होता है कि इसने उदयगिरि पहाड़ीपर विशाल सभा-भवन एवं एक घरका निर्माण करवाकर जैन-साधुओंको दान कर दिया। गौतमीपुत्र शातकर्णीके नासिक अभिलेखसे उसके द्वारा दिये गये दानोंके विषयमें पता चलता है। प्रजाकी खुशीके लिये वह उत्सव करवाता था और जरूरतमन्दोंको दान देता था, इसी कारण इसे 'दानशील' कहा गया है। वशिष्टिपुत्र पुलुमावीके नासिक-गुफाके अभिलेख स्पष्ट करते हैं कि गौतमी बलश्रीने, जो गौतमीपुत्र-शातकर्णीकी माँ और पुलुमावीकी पितामही थीं, त्रिरश्मी पर्वतपर एक गुफा उत्खनित करवाकर उसे बौद्धजगत्के 'भ्रदायणी सम्प्रदाय' को भेंट की थी। इस युगमें राजा और धनी लोग दान देकर भिक्षुओंके निवासार्थ चैत्यगृह, विहार एवं सभा-भवनका निर्माण करवाते थे। रुद्रदामन प्रथमका गिरनार अभिलेख स्पष्ट करता है कि राजा हरेक याचकोंको दान देकर तृप्त किया करता था। राजा नाहपानके नासिक गुफा अभिलेखोंमें तीन भिन्न दानोंकी चर्चा की गयी है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह गुफा सभी संघके भिक्षुओंके लिये दान दी गयी। इन अभिलेखोंसे यह भी

जानकारी होती है कि राजकीय दानकी घोषणा 'निगम-सभा' में की जाती थी और उसका फलकपर आलेखन होता था।

गुप्तकालमें भी दान-पुण्यका कार्य चलता रहा और इस युगमें न सिर्फ भारतीय राजाओंने वरन् पड़ोसी राजाओंने भी इसका अनुसरण किया। चीनीलेखक वांग ह्वेनसेके अनुसार सिंघल-नरेश मेघवर्णने जब अपने दूत राजा समुद्रगुप्तके पास बोधगयामें मठ बनानेके लिये जमीनकी माँगके लिये भेजा तो उसे समुद्रगुप्तने सहर्ष स्वीकार कर लिया। समुद्रगुप्तके एरण अभिलेखमें इसकी तुलना पृथु एवं रघुकी दानशीलतासे की गयी है। अभिलेखोंमें इसकी चर्चा आयी है कि इस राजाने लाखों गायें दान की थीं। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यके साँची स्तूपसे स्पष्ट होता है कि राजाके सेनापति अम्रकद्दिवने काकनादबाट (साँची) नामक महाविहारमें एक गाँव तथा पचीस दीनार दानमें दिया था। इसकी आयमें पाँच भिक्षुओंका भोजन तथा रत्नगृहमें दीपक जलानेका कार्य चलता था। गुप्तराजा कुमारगुप्तके धनदैह ताम्रपत्रमें राजाद्वारा वाराहस्वामी नामक एक ब्राह्मणको भूमिदान दिये जानेका वर्णन मिलता है। स्कन्दगुप्तके भीतरी स्तम्भलेखसे ज्ञात होता है कि इसके पिताकी कीर्तिके निमित्त मूर्तिकी स्थापनाकर एक ग्राम दानमें दे दिया। देवीप्रतिमा तथा तत्सम्बन्धी अग्रहारसे स्कन्दगुप्तने पिताके धार्मिक यशवृद्धिके लिये अनेक कार्य किये। महाराज विष्णुगुप्तके मंगराव अभिलेख स्पष्ट करते हैं कि राजाने भगवान् श्रीसुप्रभेश्वरके दीपननिमित्त नित्य तेलदान किया है, जो पृथ्वी, चन्द्र एवं सूर्यके समयतक शाश्वत रूपमें स्थिर रहे। गुप्त संवत् १३१ के साँचीसे प्राप्त अभिलेख स्पष्ट करते हैं कि दानमें प्राप्त ब्याजकी राशिसे एक भिक्षुको प्रत्येक दिनका भोजन और रत्नगृहमें भगवान् बुद्धके निमित्त तीन दीप जलाये जाते थे।

मौखरि नरेश ईशानवर्मनके हरहा अभिलेख राजाके दान-पुण्यका स्पष्ट वर्णन करते हैं। राजा हर्षवर्द्धनके बाँसखेड़ा ताम्रपत्र-अभिलेखमें हमें अग्रहारकी जानकारी मिलती है, जिसे देवताओं और ब्राह्मणोंको दिया जानेवाला दानका रूप जाना-समझा जा सकता है। इस अभिलेखमें भूमिदानसे सम्बन्धित दो ब्राह्मण यथा बालचन्द्र और भद्रस्वामिनका उल्लेख है। इस समय प्रयागमें हरेक पाँच सालपर 'दान-सभा' होती थी। पुलकेशिन द्वितीयके ऐहोल अभिलेखसे राजाके दान-पुण्यकी विस्तृत जानकारी मिलती है। गुजरातके चालुक्यवंशके राजा जयसिंह सिद्धराजकी दाननीतिका ही पराक्रम था कि उसने सोमनाथके दर्शनके लिये जानेवाले तीर्थयात्रियोंपर बहुलोड़ नगरमें लगनेवाले सभी करोंको समाप्त कर दिया और अनेक ब्राह्मणोंको मुक्तकर विशाल रुद्र महालयका निर्माण कराया। इसके पुत्र कुमारपालने जैनप्राचार्य हेमचन्द्रको दानादि देकर राजकीय संरक्षण प्रदान किया।

गुर्जर प्रतिहार मिहिरभोजकी 'ग्वालियर-प्रशस्ति' राजाकी प्रशंसाके साथ-साथ उसकी दाननीतिकी स्पष्ट व्याख्या करती है। अभिलेखोंमें राजा भोजको 'महादानी' कहा गया है। त्रिपुरीके कलचुरि-वंशके राजा युवराज प्रथमकी पत्नी चालुक्यवंशीय कन्या नोहलाने बिल्हारीके निकट एक शिवमन्दिर बनवाया और इसके लिये कई गाँव दानमें दिये। नन्यौरा लेखसे ज्ञात होता है कि चन्देलनरेश धंगने काशीमें भट्ट यशोधर नामक ब्राह्मणको एक गाँव दानमें दिया था।

लगभग तीन सौ वर्षतक आधुनिक बंगाल एवं बिहार क्षेत्रपर शासन करनेवाले पालवंशके कितने ही शिलालेखोंमें हमें दानमहिमाकी विशेष जानकारी सहजमें मिल जाती है। इसमें राजा देवपालके नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेखमें राजाद्वारा जावाके राजा बालपुत्रदेवके दूत बलवर्मनकी प्रार्थनापर पाँच गाँव यथा नन्दिवनाम, मणिवाटक, नाहिका, हस्तिग्राम एवं पालामक श्रीनगर मुक्तिके अन्तर्गत थे, जिनकी वर्तमान अवस्थिति वर्तमान पटना-गया क्षेत्रमें बतायी जाती है। राजा नारायणपालके भागलपुत्र ताम्रपत्र अभिलेख स्पष्ट करते हैं कि बौद्ध धर्मके राजा नारायणपालने शिवमन्दिरका दानपात्र जारी किया। सेनवंशके राजा विजयसेनके देवपाड़ा अभिलेखकी पंक्तियोंमें भी राजाकी दानशीलताकी स्पष्ट चर्चा की गयी है। यह गौरवकी बात है कि न सिर्फ साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्योंमें वरन् विदेशी यात्रियोंके विवरणमें भी यहाँके राजाओंकी दानकथाका स्पष्ट एवं रोचक वर्णन लिपिबद्ध है। चीनी यात्रियोंमें फाह्यान चन्द्रगुप्त द्वितीयका और ह्वेनसांग राजा हर्षवर्द्धनकी दानवृत्तिका स्पष्ट व्याख्यान करता है तो अरबी यात्री सुलेमान राजा भोजको पृथ्वीका महादानी राजा लिखता है। अस्तु!

उपर्युक्त तथ्य इस बातके स्पष्ट प्रमाण हैं कि भारतीय राजाओंने पूरी ईमानदारी एवं निष्ठाके साथ भारतीय सभ्यता-संस्कृतिके सार तत्त्वोंमें एक दान-धर्मको अपनाया और भारतीयोंके बीच एक आदर्श स्थापित किया, जिसका गौरव युगों-युगोंतक जीवन्त बना रहेगा।

विदेशोंकी दान-महिमाके कुछ दृश्य

(श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

जापानमें द्वितीय महायुद्धसे पूर्व स्थापित एक धार्मिक संस्था है 'क्योसेक्यो', जिसका भाव या उद्देश्य है धरतीपर स्वर्गकी स्थापना। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये वे तीन स्तरोंपर कार्य करते हैं—पहला तो 'जोरे'-पद्धतिसे व्यक्तियोंमें पवित्रीकरण-प्रक्रियाका अभ्यास और प्रचार करना। यह बहुत सरल प्रक्रिया है, जिसके अनुसार एक व्यक्ति अपने सामने दूसरे व्यक्तिको बैठाकर अपनी बायीं या दायीं हथेली उसके पूरे शरीरपर कुछ दूरीसे फिराता है और यह विश्वास करता है कि सामनेवालेके सूक्ष्म-शरीरमें बैठे विषाणु न दिखायी देनेवाले बादलोंकी तरह निकल रहे हैं और वह अन्दरसे पवित्र और बाहरी शरीरसे निरोग हो रहा है। थाईलैण्डमें इस संस्थाकी शाखाके कुछ वर्ष पूर्वतक लगभग चार लाख सदस्य थे। इसी प्रकार अन्य देशोंमें भी इसके अनुयायी फैले हुए हैं। मैंने इस प्रक्रियासे सैकड़ों लोगोंको निरोग होते हुए स्वयं देखा। जो 'जोरे' कराता है, उसे जापानी-पद्धतिसे एक प्रकारकी दीक्षा लेनी होती है और उसे एक लाकेट भी गलेमें पहनना होता है, जो जापानी मन्त्रसे अभिषिक्त होता है।

इस संस्थाने जापानमें दो, ब्राजील और थाईलैण्डमें एक-एक धरतीपर स्वर्गके मॉडल बनाये हैं, जो कई-कई वर्ग-मीलोंमें फैले होते हैं। संस्थाका दूसरा आधारभूत कार्यक्रम है परम्परागत खेती, जो निरोगी कायाके लिये जरूरी है। इसमें रासायनिक खादोंका इस्तेमाल नहीं होता। उनका तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम है उद्यान-सज्जा, पुष्प-सज्जा, कलाकृतियों आदिके माध्यमसे सौन्दर्यकी अनुभूति। तीनों मिलकर सत्य, शिव और सुन्दर बन जाते हैं। थाईलैण्डमें इस संस्थाके शाखा-संस्थापक सन्त वाकूगामी कहते थे कि उनकी संस्थाका दर्शन सनातन-धर्मके अधिक निकट है और वे मानते थे कि भारत उनका गुरु है, प्रेरक है।

पितरोंको दान—इन्हीं जापानी सन्तके साथ जब एक बार मैं उनके निवासपर ठहरा तो मैंने देखा कि उन्होंने अपने एक कमरेमें पितरोंके लिये विराजनेका स्थान बना रखा है और उनके समक्ष फल, पकवान तथा पेय पदार्थ श्रद्धापूर्वक प्रस्तुत कर रखे हैं। मेरे द्वारा जिज्ञासा प्रकट करनेपर उन्होंने बताया कि यह पितरोंको सन्तुष्ट करनेकी क्रिया है ताकि वे हम सभीका कल्याण करें। जब इन सन्तके द्वारा राजधानी बैंकाकसे बाहर साराबूरी प्रान्तमें धरतीपर स्वर्गका मॉडल बनवाया गया तो उसका एक पूरा भवन पितरोंके लिये सुरक्षित कर दिया गया जहाँ रोजाना सुबह पितरोंकी प्रार्थनाके बाद उन्हें फल, सब्जी, अन्य भोज्य पदार्थ, पेय-पदार्थ आदि अर्पित किये जाते हैं। वहाँ नियुक्त अर्चकगण एक विशेष वेशभूषा और विशेष गतिविधिसे पितृदानका कार्य पूरा करते हैं। इसमें लगभग आधे घण्टेका समय लगता है। संस्थासे जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति जब वहाँ जाता है तो उसे एक खाली लिफाफा दिया जाता है, जिसमें वह श्रद्धानुसार दानराशि रखकर और अपना नाम लिखकर पितरोंकी वेदीके सामने रखे हुए बक्समें डाल देता है।

भिक्षुओंको दान—दानकी महिमाका एक बड़ा उदार और व्यापक दृश्य थाईलैण्डसहित अन्य बौद्ध देशोंमें सूर्योदय-पूर्व ऊषाकालसे ही दिखायी पड़ने लगता है, जब इन देशोंकी सड़कों एवं गलियोंमें लाखों बौद्धभिक्षु बड़ी शालीनता और शान्तिपूर्वक भिक्षापात्र हाथमें लेकर सर्वत्र घूमते दिखायी पड़ते हैं। वे प्राय: घरोंके दरवाजे नहीं खटखटाते, गृहणियाँ स्वयं प्रात: जल्दी उठकर उनके लिये भोजन बनाकर प्रतीक्षा करती हैं। थाईलैण्डमें छोटी-बड़ी अनेक नदियाँ हैं, जहाँ आवागमनका साधन छोटी-छोटी नौकाएँ ही हैं। ये भिक्षु उन नावोंमें बैठकर नदी-किनारे बसे हुए घरोंतक पहुँचते हैं अथवा गृहस्थ स्त्री-पुरुष नावोंमें खाद्य पदार्थ रखकर भिक्षुओंतक पहुँचाते हैं। भिक्षा लेकर वे मौन रहकर शुभाशीष देते हैं। सूर्योदयके बाद धीरे-धीरे यह सिलसिला बन्द होने लगता है और भिक्षुगण भिक्षा लेकर अपने-अपने मठोंमें वापस पहुँच जाते हैं, जहाँ धार्मिक शिक्षाकी व्यवस्था रहती है। जिज्ञासु वहाँ बड़ी संख्यामें पहुँचते रहते हैं। कुछ बड़े मठोंमें विद्यालय भी चलते हैं। इस प्रकार भिक्षुगण भोजनका दान लेते हैं और विद्याका दान देते हैं।

इन देशोंका राजधर्म बौद्ध है, किंतु समाजमें धर्मका अनुशासन और प्रशासनद्वारा न होकर बौद्ध-धर्मके प्रधान संघराज और उनके सहयोगियोंद्वारा होता है। प्रत्येक छोटे-बड़े थाईकी कामना या कर्तव्य होता है कि वह जीवनमें एक

बार बौद्ध भिक्षु अवश्य बनकर किसी मठमें रहे, भले ही वह कुछ दिनोंके लिये ही क्यों न हो। इसके अपवाद नरेश भी नहीं होते।

अमेरिकामें जहाजका दान—सन् १९८१ ई० की बात है, अमेरिकाके हवाई द्वीपकी। अत्यन्त स्वादिष्ट एवं सात्त्विक प्रसाद ग्रहण करनेके बाद हम होनोलूलूके तटपर खड़ी 'हरे कृष्ण' नौकाकी ओर चल पड़े। यह नौका अपने आपमें एक कृष्ण-मन्दिर है। नौका भी कोई साधारण नहीं, बल्कि एक छोटा-मोटा जहाज है। यह आधुनिक इसलिये है कि यन्त्रचालित है और प्राचीन इसलिये कि अभी भी तेज हवाओंके सहारे पालद्वारा चलती है और उन पालोंपर बड़े-बड़े अंग्रेजी अक्षरोंमें 'हरे कृष्ण' लिखा है। हवाई द्वीपके सौन्दर्यमें पलनेवाली भौतिकता और विलासिताके वातावरणमें यह एक आध्यात्मिक मन्त्रकी तरह अंकित है। सभी देखते हैं और यह मन्त्र मानो मनमें अंकित होता चलता है। यही इसका उद्देश्य भी है। साथ ही इसके पीछे एक दर्शन यह है कि संसार लौकिक सुख-दुःखका महासागर है, जिसे 'हरे कृष्ण' मन्त्रकी नौकासे पार किया जा सकता है।

इस नौकाकी कहानी भी बड़ी रोचक है। अमेरिकी पश्चिम तटपर स्थित कैलीफोर्नियाके एक धनिक व्यक्ति हेनरी लगभग १६ मीटर लम्बी सागवान-लकड़ीवाले अपने जहाजको किसी परोपकारी संस्थाको दान करना चाहते थे। तभी उन्हें एक पत्रिकामें विज्ञापन दिखायी पड़ा कि 'इण्टरनेशनल सोसॉइटी फार कृष्णा कान्शसनेस' (इस्कॉन)-को अपनी संस्थाके उद्देश्योंके प्रचारके लिये एक बड़ी नौका या जहाज चाहिये, जिससे वे विभिन्न तटवर्ती स्थानोंतक पहुँच सकें। 'इस्कॉन' के नरहरि और हेनरीकी भेंट हुई, हेनरी दो लाख डॉलरकी नौका बिना भलीभाँति समझे-बूझे किसी संस्थाको देना नहीं चाहते थे किंतु नरहरिके स्पष्ट विचारों और अपने आदर्शोंके प्रति समर्पण भावसे वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपनी नौका उनकी संस्थाको ही प्रदान करनेका निश्चय कर लिया। इतना ही नहीं, बल्कि ५० हजार डॉलर और भी दिये ताकि वे नौकाको अपनी संस्थाकी जरूरतोंके अनुसार बना सकें।

इस प्रकार दान देनेकी भारतीय परम्पराके दर्शन विदेशोंमें भी प्राप्त होते हैं, जो भारतीय संस्कृतिकी व्यापकता और दानकी महिमाको ख्यापित करते हैं।

सर्वोत्तम धन

महर्षि याज्ञवल्क्यकी दो स्त्रियाँ थीं। एकका नाम था मैत्रेयी और दूसरीका कात्यायनी। जब महर्षि संन्यास ग्रहण करने लगे, तब दोनों स्त्रियोंको बुलाकर उन्होंने कहा—'मेरे पीछे तुमलोगोंमें झगड़ा न हो, इसलिये मैं सम्पत्तिका बँटवारा कर देना चाहता हूँ।' मैत्रेयीने कहा—'स्वामिन्! जिस धनको लेकर मैं अमर नहीं हो सकती, उसे लेकर क्या करूँगी? मुझे तो आप अमरत्वका साधन बतलानेकी दया करें।'

याज्ञवल्क्यने कहा—'मैत्रेयी! तुमने बड़ी सुन्दर बात पूछी। वस्तुतः इस विश्वमें परम धन आत्मा ही है। उसीकी प्रियताके कारण अन्य धन, जन आदि प्रिय प्रतीत होते हैं। इसलिये यह आत्मा ही सुनने, मनन करने और जाननेयोग्य है। इस आत्मासे कुछ भी भिन्न नहीं है। ये देवता, ये प्राणीवर्ग तथा यह सारा विश्व—जो कुछ भी है, सभी आत्मा है। ये ऋगादि वेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और सारी विद्याएँ इस परमात्माके ही निःश्वास हैं।'

'यह परमात्म-तत्त्व अनन्त, अपार और विज्ञानघन है। यह इन भूतोंसे प्रकट होकर उन्हींके साथ अदृश्य हो जाता है। देहेन्द्रिय-भावसे मुक्त हो जानेपर इसकी कोई संज्ञा नहीं रह जाती। जहाँ अज्ञानावस्था होती है, वहीं द्वैतका बोध होता है तथा अन्यको सूँघने, देखने, सुनने, अभिवादन करने और जाननेका भ्रम होता है; किंतु जहाँ इसके लिये सब कुछ आत्मा ही हो गया है, वहाँ कौन-किसे देखे, सुने, जाने या अभिवादन करे? वहाँ कैसा शोक, कैसा मोह, कैसी मृत्यु, जहाँ सब कुछ एकमात्र विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र दीख रहा है।'

ऐसा उपदेश करके महर्षिने संन्यासका उपक्रम किया तथा उन्हीं के उपदेशके आधारपर चलकर मैत्रेयीने भी परम कल्याणको प्राप्त कर लिया। (बृहदारण्यकोपनिषद्)

कल्याणप्राप्तिका सहज साधन—दान

आध्यात्मिक उन्नतिमें दानकी साधनरूपता

(डॉ० पुष्पारानीजी गर्ग)

मानवजीवनमें दानकी बड़ी महिमा है। दान एक ऐसा सात्त्विक कर्म है, जो मनुष्यकी वृत्तियोंको उदात्त बनाकर उसकी आध्यात्मिक उन्नतिकी भूमि तैयार करता है। दानके द्वारा मनुष्यके भीतर त्यागभावना एवं अपरिग्रहका विकास होता है; उसके अहंकार, उसकी आसक्तियोंपर अंकुश लगता है; उसके अन्दर सेवा, सहयोग, परोपकारकी भावना जाग्रत् होती है तथा करुणा-प्रेम-संवेदनाका विस्तार होता है। ये ही वे सात्त्विक भाव हैं, जो उसकी आध्यात्मिक उन्नतिके सहज सोपान बन जाते हैं। यह आध्यात्मिकता ही उसे आस्थावान् बनाकर कल्याणपथकी ओर ले जाती है।

भारतीय संस्कृति सदासे दानप्रधान रही है। हमारे यहाँ दानको परमार्थका विशेष साधन माना गया है। **'दानमेकं कलौ युगे'** इस कठिन कलिकालमें जप-तप-यज्ञ-व्रत आदि नियमोंका साधन बड़ा कठिन है, इसलिये शास्त्रने दानका विधानकर हमें आत्मकल्याणकी सरल दिशा निर्दिष्ट की है।

इस सृष्टिके कण-कणमें परमेश्वरकी सत्ता विद्यमान है और जीव तो उसकी सत्ताका चेतनरूप है। दानके माध्यमसे हम जीवकी सेवा करके उस परमेश्वरकी ही सेवा करते हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—मैं तो सब भूतोंमें स्थित सबका आत्मा हूँ—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

(गीता १०।२०)

किसी जीवके प्रसन्न होनेपर परमात्मा ही प्रसन्न होते हैं। किसी निर्धनको द्रव्यका दानकर, किसी भूखेको अन्नका दानकर हम उन्हीं परमात्माकी सेवा करते हैं। निर्धनको द्रव्य देकर हम उसकी अनेक प्रकारकी आवश्यकताओंकी पूर्तिमें सहयोग करते हैं, इससे उसके जीवनकी कठिनाइयाँ दूर होती हैं। उसके जीवनमें सुगमता आनेसे हमें उस अनन्त सत्ताका परोक्ष रूपसे आशीर्वाद प्राप्त होता है, साथ ही हमारे भीतर सद्भाव, मैत्री, सहयोग, समता, परोपकार, शील, विनम्रता-जैसे उदात्त भावोंका प्रादुर्भाव होनेपर हमारे जीवनमें मुदिताका सहज समावेश होने लगता है।

निश्चय ही धनका दान किसी अभावग्रस्त व्यक्तिके साथ-साथ सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्थाको पुष्टि प्रदान करता है। किसी सामाजिक संस्था, धार्मिक संस्था, गोशाला आदिको द्रव्य-दान देकर हम समाजकी उन्नतिमें सहयोग करते हैं, जिसका लाभ अप्रत्यक्ष रूपसे हमें भी मिलता है। किसी निर्धनको दान देनेपर उसकी आत्मासे निकला आशीर्वाद परमात्माका ही आशीर्वाद है। एक बात और महत्त्वपूर्ण है कि हमें दान देकर परमात्माका धन्यवाद करना चाहिये कि उसने हमें कृपापूर्वक किसीका सहयोग करनेके लायक बनाया, दूसरा धन्यवाद उस दानग्रहीताका, जिसने हमारा दान स्वीकारकर हमें इस महत्कार्यमें सहयोग किया। ऐसी भावना रखनेसे हमारे भीतर दानका अहंकार नहीं जगेगा।

वस्तुतः स्वयं सृष्टिकर्ता परमात्मा प्रकृतिके माध्यमसे हमें पल-पल दान देते रहते हैं। सूर्यनारायण अपने प्रकाशसे हमें ऊर्जा तथा प्राणशक्तिका दान देते हैं, धरती माँ हमें अन्नरूपी दुग्ध देती हैं, नदियाँ हमें मातृवत् जलदान करती रहती हैं, वृक्ष हमें निःस्पृह भावसे फलदान करते हैं, वायुदेव सतत संचरणकर श्वास-प्रश्वासके रूपमें हमें जीवनदान देते हैं। बादल तो महादानी हैं, वे स्वयं सागरसे जल अवशोषितकर लाते हैं और हमारे लिये जलकी वर्षाकर अपना अस्तित्व ही निःशेष कर देते हैं। इन सबके सहयोगसे ही तो हम जीवन धारण करनेमें

समर्थ होते हैं तो क्या प्रकृतिके सतत दानसे हमें यह प्रेरणा नहीं मिलती कि हम भी अपनी प्राप्त वस्तुओंमेंसे कुछ अंश दान करें? हमारे शास्त्र भी कहते हैं कि हमें अपने अर्जित द्रव्यमेंसे दशम भाग अवश्य दान करना चाहिये।

हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि हमने जो कुछ अर्जित किया है, वह केवल अपने पुरुषार्थसे नहीं किया, अपितु उसमें ईश्वरकी कृपा मुख्य कारण है, साथ ही उसमें अन्य अनेक लोगोंका प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष सहयोग भी हमें प्राप्त हुआ है, अतः उस प्राप्त द्रव्यपर हमारा अकेलेका अधिकार नहीं है। यदि उसका अकेले उपभोग करेंगे तो ईश्वरकी कृपासे वंचित हो जायँगे। उपनिषद्के ऋषि तो स्पष्ट निर्देश देते हैं—**'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** अर्थात् हम त्यागके साथ उसका उपभोग करें। त्यागके साथ उपभोगसे तात्पर्य है कि हम कुछ द्रव्यका दानकर औरोंको भी उसके उपभोगमें सहभागी बनायें। दानके कुछ व्यावहारिक रूपोंपर यहाँ प्रकाश डाला गया है—

द्रव्यदान—द्रव्यका दान करते समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारे भीतर किंचित् भी दानका अहंकार न उत्पन्न हो, अन्यथा हमारा आध्यात्मिक उत्थानके स्थानपर पतन होने लगेगा। दूसरे हमने यह द्रव्य शुद्ध साधनोंसे अर्जित किया हो तभी उसका दान सार्थक होगा। किसीका अधिकार छीनकर, चोरी-बेईमानी, झूठ-कपट, हिंसा-बलात्कारसे अर्जित किया द्रव्य सर्वथा अशुद्ध होता है। इसका कुछ अंश दानकर हमारे पापोंकी निवृत्ति हो जायगी—ऐसा सोचकर किये दानसे हम दूसरोंके साथ ही स्वयं अपने-आपको भी धोखा देते हैं। अतः शुद्ध साधनोंसे प्राप्त द्रव्य ही अपने उपभोगमें लेना चाहिये तथा ऐसे ही द्रव्यका दान करना चाहिये। ईश्वरकी कृपासे हमें अधिक द्रव्य प्राप्त हो गया है तो दान ही उसकी उत्तम गति है। कविवर रहीमने इसके लिये बड़ा सुन्दर दोहा कहा है—

पानी बाढ़ै नाव में घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिए यहै सयानो काम॥

अन्नदान—द्रव्यके समान अन्नदानका भी बहुत महत्त्व है। अन्नदानको महादान कहा गया है। अन्नके द्वारा ही मनुष्यके पंचप्राण पुष्ट होते हैं। उसके द्वारा ग्रहण किये भोजनको स्वयं भगवान् नारायण जठराग्निरूपमें ग्रहण करके उसका पाचन करते हैं। अर्थात् किसी मनुष्यको दिया गया अन्न स्वयं भगवान्को ही प्राप्त होता है। गीता (१५। १४)-में भगवान् कृष्ण स्पष्ट कहते हैं—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

इस प्रकार हमारे दिये अन्नसे उन सर्वभूतस्थित परमेश्वरकी ही सेवा होती है। अतः हमें ध्यान रखना चाहिये कि वह अन्न शुद्ध हो। अर्थात् शुद्ध साधनोंसे अर्जित द्रव्यसे प्राप्त किया गया हो, साथ ही ग्रहणीय भी हो। सड़ा हुआ, उच्छिष्ट, अखाद्य न हो। ऐसे ही अन्नदानकी सार्थकता होती है। उसीसे हमें आन्तरिक प्रसन्नताका अनुभव होगा तथा उसीसे ग्रहीताके अन्दर स्थित नारायण प्रसन्न होंगे। अशुद्ध अन्नका दान करनेसे उपकारके स्थानपर अपकार हो सकता है। ऐसा अन्न ग्रहण करनेवालेको कोई रोग हो सकता है, उसके चित्तमें विभिन्न विकार उत्पन्न हो सकते हैं, जिसका दोष दाताको ही लगेगा। अतः चाहे थोड़ा ही दान करें, किंतु वह शुद्ध हो, भगवान्को नैवेद्य लगानेके योग्य हो, ऐसा दान सच्चा दान है। अन्नदानके सन्दर्भमें एक बात और ध्यान रखनी चाहिये कि इसके लिये किसी पुण्य पर्वकी प्रतीक्षाकी आवश्यकता नहीं। भूखेको तो तुरंत अन्न-भोजन देना चाहिये। यही सच्ची नारायणसेवा है। सत्य ही उसके तृप्त होनेपर दाताको भी विशेष तृप्ति तथा आनन्दका अनुभव होगा; क्योंकि दोनोंके भीतर एक ही आत्माका वास है।

मधुर वचनोंका दान—यह तो हुई धनदान तथा अन्नदानकी बात; लेकिन दानके और भी अनेक रूप हैं, जिनके लिये धन खर्च करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसे मधुर वचनोंका—प्रेमका दान। कोई व्यक्ति बड़े कष्टमें है, उस समय कोई उसे कठोर वचन कह दे तो वह आहत होकर और भी दुःखी हो जाता है। इस स्थितिमें हम उसे प्रेमपूर्ण मधुर वचन कहकर

उसकी आन्तरिक पीड़ाको कुछ कम कर सकते हैं। यूँ भी मधुर वचन सभीको प्रिय लगते हैं। मधुरभाषी व्यक्ति सभीको प्रिय लगता है। अपने मधुर वचनोंसे दूसरोंको प्रसन्न करके अपने-आपको भी प्रसन्नता मिलती है। अभिमानी एवं दुष्ट प्रकृतिके लोगोंको दूसरोंको कठोर वचन कहकर उन्हें आहत करनेमें बड़ा सुख मिलता है। यह आसुरी प्रकृति है। आध्यात्मिक प्रकृतिके सज्जन लोग ऐसा नहीं करते।

आश्वासनदान—किसी संकटग्रस्त व्यक्तिके जीवनमें आश्वासनका दान भी बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। कभी-कभी लोग अपने प्रयासोंमें असफल होनेपर आत्महत्यातक करनेको तत्पर हो जाते हैं। ऐसेमें सहायताका आश्वासन देकर हम उसको हताशाकी स्थितिसे उबार सकते हैं। ईश्वरकी कृपाकी आस्था जगाकर उसे साहसका दान दे सकते हैं। इससे उसका मनोबल बढ़ेगा और वह नयी आस्था एवं शक्तिके साथ संघर्षके लिये तत्पर हो जायगा।

आजीविकादान—किसी गरीबको आजीविकाका दान करके हम उसका जीवन सँवार सकते हैं, उसे स्वावलम्बी बना सकते हैं। कभी-कभी कुछ लोग आजीविकाका कोई साधन न मिलनेके कारण अत्यन्त विवशतावश भिक्षा माँगने लगते हैं। ऐसे लोगोंको भिक्षाके स्थानपर आजीविकाका दान करें तो यह मानवताकी बहुत बड़ी सेवा होगी। इससे उन्हें सम्मानपूर्ण जीवन जीनेका अवसर मिलेगा।

आश्रयदान—किसी निराश्रितको आश्रयदान देकर मानवताकी सेवा की जा सकती है। आजकल बहुत-सी अनाथाश्रम, वृद्धाश्रम-जैसी संस्थाएँ निराश्रितोंको आश्रय देती हैं। इन आश्रमोंमें जाकर भोजन-वस्त्र तथा अन्य वस्तुएँ दी जा सकती हैं। वृद्धोंसे मिलकर उन्हें अपने मधुर भाषण तथा मधुर व्यवहारसे सन्तुष्ट किया जा सकता है। किसी बालक अथवा वृद्धको अपना बनाकर आश्रय दिया जा सकता है। धन-सम्पन्न एवं उदार हृदयवाले लोग धर्मशालाएँ आदि बनवाकर यात्रियोंके लिये अस्थायी आश्रयकी व्यवस्था करते हैं। यह मानवरूपमें ईश्वरकी ही सेवा है। ऐसी सेवासे अवश्य आध्यात्मिक उन्नति होगी।

जलदान—कुछ लोग गर्मियोंमें प्याऊ खोलकर जलदान करते हैं। पशुओंके लिये घरके बाहर जलसे भरी टंकी रखते हैं, पक्षियोंके लिये छतपर पानीसे भरे सकोरे रखते हैं। इस जलदानसे मानो परमात्मा स्वयं तृप्त होते हैं।

श्रमदान—अपने सामर्थ्यके अनुसार श्रमदान करें। आप देखेंगे कि किसी काममें दूसरोंकी सहायता करके आपको कितना आनन्द आता है। यह आनन्द ही हमारी आध्यात्मिक उन्नतिका परिचायक है। एक बात और कि हम किसी औरकी सहायता करते हैं तो प्रकृति भी कहीं आवश्यकता पड़नेपर हमारी सहायताकी व्यवस्था कर देती है। कोई वृद्ध या अशक्त व्यक्ति अपना सामान नहीं उठा पा रहा है तो उसका सामान उठवा दें, हम बाजार जा रहे हैं तो अपने असमर्थ पड़ोसीसे पूछ लें और उसका भी सामान ला दें, ऐसे कितने ही छोटे-छोटे काम हैं, जो श्रमदानके द्वारा किये जा सकते हैं।

विविधदान—थोड़ा समय देकर आप किसी अनपढ़को अक्षरज्ञान करा सकते हैं। समयका दान भी महत्त्वपूर्ण दान है। आजके समयमें अकसर लोगोंको यही शिकायत रहती है कि उनके पास समय नहीं है। इस स्थितिमें किसीको समय देना—जैसे घरके वृद्धोंके पास बैठकर दो मीठी बातें करना, उनके मनकी सुनना, यह भी उनकी सेवा है।

विद्यादान—विद्याका दान तो है ही अति श्रेष्ठ दान। किसी कमजोर विद्यार्थीको उसका कठिन विषय समझा देना या विद्यार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा देना—यह राष्ट्रकी, माँ सरस्वतीकी सेवा है। कुछ लोग गरीब विद्यार्थियोंको पुस्तकें देते हैं, उनका शिक्षणशुल्क आदि देते हैं, यह भी उनके विद्यार्जनमें सहायक होनेसे विद्यादानके अन्तर्गत माना जा सकता है।

मानदान—एक और महत्त्वपूर्ण दान है मानदान। प्रत्येक व्यक्तिको अपना मान प्रिय होता है। यहाँतक कि एक अबोध बालक भी अपना मान-अपमान समझता है। हम किसी व्यक्तिको मान देते हैं तो उसकी अन्तरात्मा

प्रसन्न हो जाती है। किसी व्यक्तिको छोटा या गरीब मानकर अपमानित करनेसे उसकी अन्तरात्मा अत्यन्त दुःखी हो जाती है, इससे परमात्मा भी नाराज होते हैं। ध्यान देनेकी बात यह है कि किसीका अपमान करके हम स्वयं कहीं अपमानित अनुभव करते हैं, किसीको मान देकर हम स्वयं भी सम्मानित होते हैं। दूसरेके अपमानसे हमारा अहंकार बढ़ता है, मानदानसे हमारे भीतर विनम्रता एवं समता बढ़ती है। विनम्रता आध्यात्मिक विकासकी पहली सीढ़ी है।

रक्तदान—आधुनिक समयमें मानवशरीरमें रोगोंकी अधिकता हो रही है। ऐसेमें अनेक बार रोगीको रक्तकी आवश्यकता पड़ती है, कहीं किसी दुर्घटनामें किसी व्यक्तिका अधिक रक्त बह गया हो तो तुरंत रक्त चढ़ाकर उसका जीवन बचाया जा सकता है। इसके लिये बहुत लोग स्वेच्छासे रक्तदानकर मानवताकी सेवा करते हैं। यह भी बहुत उच्चकोटिका दान है।

पुण्यदान—दानके सन्दर्भमें पुण्यदानका भी बड़ा महत्त्व है। यह अप्रत्यक्ष दान है। इसके लिये मनमें आस्था होना आवश्यक है। अपने प्रिय स्वजनोंके लिये लोग व्रत-उपवास आदि करते हैं, उन्हें यह विश्वास भी होता है कि उसका फल उन्हें अवश्य मिलेगा। ऐसे दानकी अपरिमित महत्ता है।

जपदान—पुण्यदानका ही एक और रूप है जपदान। माता-पिता, सन्तान आदिके लिये तो बहुत लोग जप करते हैं, लेकिन किसी दूसरेके भलेके लिये जपदान करना निश्चय ही महत्कार्य है। यह अप्रत्यक्ष दान है, जपदानका फल अवश्य मिलता है। इससे जापकको नामजपका अधिक अवसर मिल जाता है। यह दोहरा लाभ है। निस्सन्देह, ऐसे दान करनेवाले व्यक्ति सहज परोपकारी एवं आध्यात्मिक प्रकृतिके होते हैं।

वास्तवमें ये सभी प्रकारके दान मानव-जीवनके कर्तव्यरूपमें आध्यात्मिक उन्नतिके साधन हैं।

ज्ञानदान—सर्वोत्तम दान

(डॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी)

दान देना प्राकृत—सहज गुण है, इसलिये 'देना कर्तव्य है'—इस उत्कृष्ट भावनासे प्रेरित होकर उपकार करना तथा दान देना श्रेष्ठ ईश्वरीय गुण है। इसमें प्रेम, विश्वास, स्वार्थहीन त्याग तथा ***'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई'*** की भावना आदि मानवीय मूल्य समाहित हैं। यों तो दान कई प्रकारका होता है, परंतु भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय १७। २०—२२)-में सात्त्विक, राजस तथा तामस—तीन प्रकारके दानकी चर्चा की है। जो दान विशुद्ध कर्तव्यबोधकी भावनासे प्रेरित होकर बिना किसी आकांक्षा या उम्मीदसे दिया जाय, उसे सात्त्विक दान कहा जाता है। जो दान फल या प्रत्युपकारको दृष्टिमें रखकर दिया जाय, वह राजस तथा जो दान बिना श्रद्धा एवं प्रेमके किसी कुपात्रको दिया जाय, उसे तामस दान कहते हैं।

हम दानमें क्या देते हैं, उसे हम ध्यानमें रखें तो दानको मुख्यतः दो ही श्रेणियोंमें बाँटेंगे—भौतिक दान तथा आध्यात्मिक दान। भौतिक दानमें द्रव्य, अन्न, वस्त्र, भूमि, गौ तथा इसी प्रकारके अन्य सांसारिक पदार्थोंके दान समाहित हैं। आध्यात्मिक दान मूलतः ज्ञानदान अथवा विद्यादान है। ज्ञानदान हमें सीधे ज्ञानी पुरुषोंसे तथा सद्गुरुओंद्वारा रचित एवं उनके सद्वचनोंके संकलित धर्मग्रन्थोंसे प्राप्त होता है। पहले ऋषि-मुनिगण अपने आश्रममें बैठकर ही ज्ञानवर्षा किया करते थे, जिससे उनके शिष्योंके अतिरिक्त पशु-पक्षी तथा सम्पूर्ण वातावरण भी उस ज्ञान-प्रवाहमें नहाकर ज्ञानमय हो जाया करता था। उदाहरणके लिये वाल्मीकिआश्रममें वाल्मीकिमुनिके तप और अहिंसाव्रतके प्रभावसे खग- मृग भी वैररहित होकर विचरण करते थे—

राम दीख मुनि बासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन॥
सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥

(रा०च०मा० २। १२४। ५—८)

१. ज्ञानदान अन्य भौतिक दानोंसे श्रेष्ठ—'विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।' यानी सभी धनोंमें विद्या

सर्वोच्च है। अन्नदानको उत्तम माना गया है, परंतु इसकी अपनी सीमा है। भूखे व्यक्तिको अन्न देनेसे उसकी भूख तो शान्त हो जाती है, लेकिन पुनः जग जाती है। कबीर कहते हैं—*'दान दिए धन ना घटे'*, परंतु धनकी भी सीमा होनेके कारण उसका घटना स्वाभाविक है। ज्ञानकी कोई सीमा नहीं है। इसे जितनी उदारता, जितने उत्साह तथा प्रेमसे बाँटा जाय, यह उतना ही गहरा तथा विस्तृत होता चला जाता है। धनदान लेनेवाले व्यक्तिमें हीनताकी भावना तथा धनी-दानी व्यक्तिमें उच्चताकी भावना आनेकी पूरी सम्भावना होती है। दान लेनेवालेका हाथ नीचे तथा देनेवालेका ऊपर होता है, किंतु ज्ञानदानी तथा ज्ञानग्राहीमें इस प्रकारकी मनोग्रन्थि पनपनेकी गुंजाइश ही नहीं रहती। प्रकाशमय गुरुसे ज्ञान पाकर शिष्य प्रदीप्त हो जाता है। *'गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा।'* (रा०च०मा० १।७।९)

धन पाकर व्यक्ति सांसारिकतामें बँधने लगता है, दानमें मिले धनसे भोगनेकी प्रवृत्ति जग जाती है—**'भोगो दानेन जायते।'** बिना परिश्रमके धन पाकर दानग्राही पथविचलित या पथभ्रष्ट भी हो सकता है, परंतु ज्ञानदान पाकर व्यक्ति भौतिक सीमाओं तथा पाशविक प्रवृत्तियोंसे मुक्त हो जाता है। इसलिये ज्ञानधन सर्वश्रेष्ठ है। भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञानदानको द्रव्यदानसे श्रेष्ठ मानते हैं—

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥

(गीता ४।३३)

हे परंतप अर्जुन! द्रव्यमययज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा सम्पूर्ण कर्म ज्ञानमें लीन हो जाते हैं। श्रीकृष्ण पुनः कहते हैं—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

(गीता ४।३८)

इस संसारमें ज्ञानके सदृश पवित्र करनेवाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है। जन्म-जन्मान्तरसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने-आपमें स्वयं उस ज्ञानको प्राप्त कर लेता है।

२. ज्ञानदान शिक्षादानसे भी उत्तम—ज्ञान मुख्यतः दो प्रकारका होता है—भौतिक ज्ञान तथा आध्यात्मिक ज्ञान। श्रीकृष्ण गीता (१८।२०—२२)-में सात्त्विक, राजस एवं तामस—तीन प्रकारके ज्ञानकी चर्चा करते हैं। सात्त्विक ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान ही है। राजस तथा तामस ज्ञान वस्तुतः भौतिक ज्ञान है।

शिक्षण संस्थानोंमें जो शिक्षण-प्रशिक्षणकी उपलब्धि होती है, वह ज्ञान नहीं अपितु तद्विषय-सम्बन्धी शिक्षा है, भौतिक ज्ञान है। शिक्षा धनोपार्जन एवं आजीविकोपार्जन करने तथा पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करनेका उपयोगी साधन है।

ज्ञानका अर्थ जानकारी (Knowledge) नहीं बल्कि वह आध्यात्मिक विद्या है, जिससे आत्म-पहचान एवं तत्त्व-पहचान दोनोंकी प्राप्ति होती है, या यों कहें कि ज्ञानमें आत्मज्ञान तथा परमात्मतत्त्वज्ञान दोनों समाहित हैं। इसीलिये आध्यात्मिक ज्ञान साधन तथा साध्य—दोनों है। यह हमें सांसारिक बन्धनों, कुसंस्कारों एवं कुप्रवृत्तियोंसे मुक्त करता है। **'सा विद्या या विमुक्तये।'** शिक्षा बाह्य जगत्‌की जानकारी देती है तथा जीनेका ठोस आधार तलाश करनेमें मदद करती है, परंतु विद्या जीनेकी कला जाग्रत् करनेके साथ ही हमारे आन्तरिक प्रकाश-दीपको प्रज्ज्वलितकर हमें अज्ञानताके अन्धकारसे ज्ञानके प्रकाशकी ओर, असत्यसे सत्यकी ओर तथा मृत्युसे अमरत्वकी ओर ले जाती है। ईशोपनिषद्‌में कहा गया है कि तत्त्वज्ञानी बननेके लिये विद्या तथा अविद्या, प्रकाश तथा अन्धकार—दोनोंको समझना होगा ताकि अविद्यासे मृत्युको पारकर विद्यासे अमरत्व प्राप्त किया जा सके—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयꣳसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

(ईशावास्योपनिषद् ११)

भौतिक ज्ञानकी समाप्ति ही आध्यात्मिक ज्ञानका प्रारम्भ है। अर्जुनने अपने गुरु द्रोणाचार्यसे जो धनुर्विद्या सीखी; वह शिक्षा थी, भौतिक ज्ञान था। अर्जुन महान् धनुर्धर तो हो गये, लेकिन जीवनके कुरुक्षेत्र एवं धर्मक्षेत्रमें

मोह-ममताके चक्रवातमें उलझकर द्वन्द्व-मूर्च्छासे ग्रसित हो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये—

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥

(गीता १। २८-२९)

अर्जुन कहते हैं—'हे कृष्ण! युद्धक्षेत्रमें डटे हुए युद्धके अभिलाषी इस स्वजनसमुदायको देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीरमें कम्पन एवं रोमांच हो रहा है।'

कुरुक्षेत्रमें कृष्णने अर्जुनको द्वन्द्व-मूर्च्छासे मुक्त करनेके लिये जो संजीवनी-विद्या दी, उसे तत्त्वज्ञान कहते हैं, उस आध्यात्मिक ज्ञानके कारण ही अर्जुन मोहके अन्धकारसे मुक्त होकर कर्तव्यनिष्ठ हो पाये। उन्हें कृष्णसे ज्ञान मिला और ज्ञानसे सांसारिक-मोह भंग हुआ। तुलसीदासजी कहते हैं—

'बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।'

(रा०च०मा० ७। ८९क)

गीतामें श्रीकृष्णके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अर्जुन कहते हैं, 'मुझपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जो परम गोपनीय अध्यात्मविषयक उपदेश (ज्ञान) दिया, उससे मेरा यह अज्ञान विलीन हो गया है'—

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम॥

(गीता ११। १)

३. ज्ञानदानकी प्रासंगिकता तथा आवश्यकता—आज हमारे देशमें जो अनैतिकता, अराजकता छायी है; उससे मुक्तिके लिये धन नहीं, बल नहीं, विज्ञान भी नहीं सिर्फ आत्मज्ञानकी ही आवश्यकता है। आज आध्यात्मिक रूपसे बीमार तथा पथभ्रष्ट भारतीय समाजका सही उपचार तथा मार्गदर्शन करना आध्यात्मिक रूपसे प्रबुद्ध व्यक्तियों एवं तत्त्वज्ञानियोंके लिये एक बड़ी चुनौती है। जैसे सूखा—अकाल पड़नेपर वर्षा तथा अन्नकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मोह, ममता, ईर्ष्या, क्रोध तथा कामके अन्धकारमें पड़े व्यक्तिको सच्ची शान्ति तथा मुक्तिहेतु ज्ञानकी आवश्यकता होती है।

आज देशमें शिक्षा मात्र जीविकोपार्जन तथा धनोपार्जनके लिये दी जा रही है, जबकि वर्तमानमें ज्ञानकी अति आवश्यकता तथा प्रासंगिकता है। आज दुर्भाग्यवश सद्ज्ञानीके साथ सद्ज्ञानग्राहीकी भी बेहद कमी है। श्रद्धा और विश्वासके बिना कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। श्रीकृष्ण अर्जुनको श्रद्धा तथा विनम्रताके साथ तत्त्वज्ञानीके पास जानेकी सलाह देते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४। ३४)

उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ। उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमतत्त्वको जाननेवाले महात्मा तुझे तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।

ज्ञानग्राही अगर श्रद्धायुक्त, सचेत तथा ज्ञानपिपासु न हो तो ज्ञानदानीका ज्ञान देना पत्थरपर बीज बोनेके समान होगा—

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥

(रा०च०मा० ६। १६ख)

४. सद्ग्रन्थ ज्ञानदानके सशक्त माध्यम—सद्ग्रन्थ जाग्रत् देवता हैं। उनका अध्ययन-पूजन करके ही हम उनमें निहित ज्ञान—आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं। सद्ग्रन्थ हमारे सच्चे हितैषी, मार्गदर्शक तथा अभिभावकरूपमें विद्यमान हैं। आज सद्गुरुओंका अभाव होता जा रहा है, परंतु हमारा देश सद्ग्रन्थोंका भण्डार है। आवश्यकता है, हम श्रद्धा, लगन तथा एकाग्रचित्तसे इनका अध्ययन-चिन्तनकर अपने जीवनके अर्थ, उद्देश्य तथा जीनेकी कलाको समझें-सीखें। सद्ग्रन्थ वस्तुतः वह ज्ञानगंगा है, जिसमें डुबकी लगाकर हम आन्तरिक तथा बाह्य पवित्रता प्राप्तकर आत्मबोधक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

प्रकृत धर्म—दान

(शास्त्रोपासक आचार्य डॉ० श्रीचन्द्रभूषणजी मिश्र)

'दा' धातुमें 'ल्युट्' प्रत्ययके योगसे दान शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है देना। विद्वान् लोग इसे दानचतुष्टयके रूपमें स्वीकार करते हैं—अन्नदान, ज्ञानदान, औषधदान और अभयदान। मनुष्यके जीवनके लिये यह नित्यकर्म-जैसा है। शास्त्रोंमें लिखा है—**'श्रद्धया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्'** श्रद्धासे, लज्जासे या भयसे भी दिया हुआ दान कल्याणकारी होता है। गोस्वामीजी कलियुगमें दानको ही मुख्य धर्म मानते हैं—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

(रा०च०मा० ७। १०३ ख)

पौराणिक कथाके माध्यमसे यह बताया गया है कि जब देवता, मनुष्य और असुर ब्रह्माजीके पास गये तो ब्रह्माजीने तीनोंके लिये 'द' अक्षरका उपदेश दिया। भोगवादी देवताओंने समझा कि ब्रह्माजी हमलोगोंको इन्द्रियदमनकी सीख देना चाहते हैं। हिंसावृत्तिवाले असुरोंने समझा कि हमारे लिये जीवदयाका उपदेश है। कर्मयोनिमें रहनेके कारण मनुष्योंने समझा कि ब्रह्माजीने 'द' के द्वारा हमें दान करनेकी शिक्षा दी है। विभव और दान महान् तपस्याके फल जाने जाते हैं। वैभवको प्राप्त करना कर्मसे सम्भव है, परंतु अर्जित सम्पत्तिको दूसरेके लिये सहर्ष दान कर देना जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंका फल है।

विभवो दानशक्तिश्च महतां तपसां फलम्॥

भारतीय वाङ्मयमें दानके लिये कालके अनुसार पात्रका भी विस्तृत विचार किया गया है। जरूरतमंद व्यक्तियोंको जब जरूरतवाली चीज दानमें मिल जाती है, तो यह महत्त्वपूर्ण दान माना जाता है। दानको व्यक्तिगत और सामूहिक दो विभागोंमें बाँटा जा सकता है। सनातनधर्ममें संक्रान्ति, अमावास्या, एकादशीको दानके लिये विशेष तिथि माना गया है। घट, पट, भूमि, स्वर्ण आदि दानोंको महादानकी श्रेणीमें रखा गया है, परंतु स्कन्दपुराणमें एक बात स्पष्ट बतायी गयी है कि न्यायपूर्वक अर्जित किये हुए धनका दसवाँ हिस्सा भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये दान करना श्रेष्ठ दान है—

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥

श्रीमद्भागवतके अनुसार भूख लगनेपर जितना व्यक्ति भोजन कर लेता है, उतना ही उसके उपयोगका धन होता है, उससे ज्यादापर अधिकार बनाये रखना चोरी है और दण्डित होनेके लक्षण हैं—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

धनवानोंके लिये उपदेश दिया गया है कि उन्हें अपने द्वारा उपार्जित धनका विभाजन पाँच भागोंमें करना चाहिये—धर्मके लिये, यशके लिये, पदके लिये, कामके लिये और स्वजनोंके लिये। जो विचारपूर्वक अपने धनका उपयोग इन पाँचोंके लिये करता है, उसके धनकी सद्‌गति होती है और व्यक्ति भी सद्‌गतिको प्राप्त करता है—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

भारतीय शास्त्र केवल सिद्धान्तपक्षकी ही नहीं, बल्कि व्यवहारपक्षकी भी भरपूर चर्चा करते हैं। जो निर्धन व्यक्ति है, वह अगर पुण्यके लोभसे माता-पिता और बच्चोंके सदुपयोगमें आनेवाले धनका दान करता है तो वह पुण्यका नहीं बल्कि पापका भागी बनता है—

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥

जो धनी व्यक्ति स्वजनोंको दुःख देता है और उनसे धन बचाकर दान देता है, वह दान शास्त्रोंमें जहर मिले हुए मधु-जैसा बताया गया है। वह दान धर्मके रूपमें अधर्म ही है—

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः॥

जो सद्‌गृहस्थ अपनी कमाईका दसवाँ हिस्सा नियमपूर्वक दूसरेकी भलाईके लिये दान करता है तो उसकी सभी बाधाएँ समाप्त हो जाती हैं। दान देकर हम

अपना ही कल्याण करते हैं, दूसरेका नहीं। तालाबका सड़ा हुआ पानी अगर बहा न दिया जायगा तो साफ पानी भी उसके संसर्गमें आकर दूषित हो जायगा। स्कन्दपुराणमें दानके स्वरूपको बताते हुए एक गम्भीर श्लोक पाया जाता है—

द्विहेतुः षडधिष्ठानं षडङ्गं च द्विपाकयुक्।
चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते॥

स्कन्दपुराणमें वर्णन है कि एक बार नारदजीने कुछ दुःखी ब्राह्मणोंको देखकर उनके दुःखका कारण पूछा। ब्राह्मणोंने कहा कि सौराष्ट्रके राजा धर्मवर्माने आकाशवाणीके द्वारा उपर्युक्त श्लोकका श्रवण किया। राजाके पूछनेपर भी इसका अर्थ दैवी वाणीने नहीं बताया। हम सभी विद्वान् ब्राह्मण भी इसका अर्थ नहीं लगा पाते। यह सुनकर
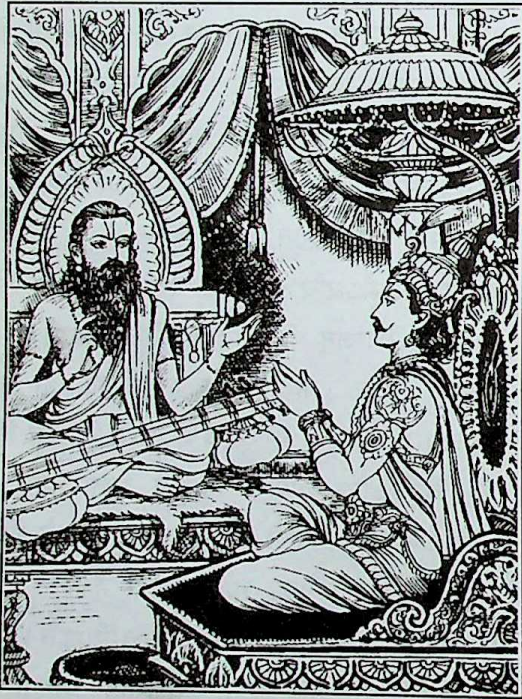
नारदजीने ब्राह्मणके रूपमें जाकर श्लोकका अर्थ समझाया कि दान देनेसे भगवान् शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। श्रद्धा और शक्ति ही दानके दो हेतु हैं। दानके छः अधिष्ठान हैं—धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष और भय। दानके छः अंग भी होते हैं—दाता, प्रतिग्रहीता, शुद्धि, धर्मयुक्त देय वस्तु, देश और काल। दानके दो प्रधान फल होते हैं—लोक और परलोक। दानके चार प्रकार हैं—

१-ध्रुव—सार्वजनिक कार्योंके लिये किया गया दान ध्रुव है। जैसे—कुआँ खुदवाना, सार्वजनिक उपयोगके लिये फल और छायादार वृक्ष लगवाना, विद्यालय, चिकित्सालय, अनाथालय, प्याऊ इत्यादिका निर्माण। यह दान दाताकी कामनाओंको पूरा करता है।

२-त्रिक—प्रतिदिन जो कुछ दिया जाता है, उस नित्यदानको ही त्रिक कहते हैं।

३-काम्य—जो कामनापूर्तिके लिये किया जाता हो, वह दान काम्य है। जैसे—दान देकर आशीर्वाद प्राप्त करना।

४-नैमित्तिक—जो दान विशेष अवसरपर विशेष कर्मके लिये दिया जाता है, वह नैमित्तिक है। नैमित्तिक दानके तीन भेद होते हैं—कालापेक्ष, क्रियापेक्ष और गुणापेक्ष। ग्रहण और संक्रान्ति आदि अवसरोंपर दिया दान कालापेक्ष होता है। श्राद्ध आदि क्रियाओंपर दिया दान क्रियापेक्ष होता है और विद्वान् ब्राह्मणके संस्कार और गुणोंको ध्यानमें रखकर दिया गया दान गुणापेक्ष कहलाता है।

दानके प्रधानतः तीन भेद होते हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। दान देकर पछताना, कुपात्रको दान देना तथा बिना श्रद्धाके दान देना—ये तीनों दाननाशक कहलाते हैं; क्योंकि ऐसे दानका कोई फल प्राप्त नहीं होता है।

महाभारतका एक प्रमुख पात्र कर्ण यद्यपि दुर्योधन-जैसे दुरात्माके पक्षमें था, परंतु अपनी दानवीरताके कारण वह दानका अप्रतिम पर्याय बन गया। उसने अपने प्राणरक्षक कवच-कुण्डलका भी दान इन्द्रको तथा माता कुन्तीको उनके अर्जुनके अतिरिक्त चार पुत्रोंके लिये अभयदान दे दिया था। रामधारीसिंह दिनकरने अपनी कर्णविषयक प्रसिद्ध रचना रश्मिरथीके चतुर्थ सर्गके प्रारम्भमें दानकी महत्ताका वर्णन करते हुए लिखा है—

दान जगत् का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है,
एक रोज तो हमें स्वयं सब कुछ देना पड़ता है।
बचते वही, समय पर जो सर्वस्व दान करते हैं,
ऋतु का ज्ञान नहीं जिनको, वे देकर भी मरते हैं॥

तात्पर्य यह है कि जीवनकी अबाध गति दानबलसे ही चलती है। मन-बेमन जो हम दान करते हैं, उसे अहंकारवश स्वत्वका त्याग मान लेना ठीक नहीं। दान और कुछ नहीं, यह तो जीवनका झरना है, इसको रोक

देना मृत्युसे पहले मरने-जैसा है। पेड़ पके फलोंका दान करते हैं, वे अगर डालीमें लगे रह जायँ तो सड़ने लगेंगे और पेड़को भी खराब कर देंगे। नदियाँ अपने जलका दान करके अपनेको नया जीवन प्रदान करती हैं—वर्षाका पानी उन्हें नया जल देता है। दानमें कृपणता दिखाना अपनेको धोखा देना है। दानियोंकी महत्ताको प्रतिपादित करते हुए रश्मिरथीमें ये पंक्तियाँ लिखी गयी हैं—

जहाँ कहीं है ज्योति जगत में, जहाँ कहीं उजियाला,
वहाँ खड़ा है कोई अन्तिम मोल चुकानेवाला॥

दधीचिने देवताओंके हितके लिये अपनी हड्डियोंका दान कर दिया। राजा शिबिने एक कबूतरको बचानेके लिये अपना मांस काट-काटकर एक बाजको अर्पित कर दिया।

दानकी व्याख्या स्मृतियों, पुराणों, महाभारत, वाल्मीकीय रामायण आदिमें वर्णित है। महाभारतका तो एक पूरा पर्व ही दानधर्मपर्व कहलाता है। महर्षि वेदव्यासद्वारा दानकी व्याख्यामें लिखे गये व्यासस्मृतिके एक खण्डको दानव्यासके नामसे जाना जाता है। अपनी कमाईका धन अपने उपयोगके सिवा अगर किसी सत्पात्रके उपयोगमें लगता है तो उस दानकी तुलना किसी औरसे नहीं है। धनी व्यक्ति वही कहलाता है, जो देश-काल समझकर दान करता है।

महर्षि पराशरने लिखा है कि सतयुगमें लोग दान श्रद्धासे देते थे, त्रेतामें दान आदरके साथ दिया जाने लगा। द्वापरमें माँगनेपर दान दिया जाता है, लेकिन कलियुगमें सेवा कराकर जो मजदूरी देते हैं, उसीको दान मान लेते हैं, ऐसा दान सर्वथा निष्फल माना जाता है।

अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते।
द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ॥
....सेवादानं च निष्फलम्।

बृहस्पतिस्मृतिमें भूमिदान सबसे बड़ा दान माना गया है; क्योंकि धातु और रत्न सभी भूमिसे निकलते हैं, जो शस्यसम्पन्न भूमिका दान करता है, वह जबतक धरतीपर सूर्य है तबतक स्वर्गमें निवास करता है। गोचर्म* के बराबर जो भूमि दान करता है, वह भी शुद्ध हो जाता है—

सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिं रत्नं च वासव।
सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति॥
फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां सस्यशालिनीम्।
यावत् सूर्यकृता लोकास्तावत् स्वर्गे महीयते॥
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति॥

(बृह० स्मृति ५—७)

भीख माँगनेवाले भीख नहीं माँगते, यह उपदेश देते हैं कि दे दो नहीं तो मेरी-जैसी ही स्थिति होगी—

भिक्षुकाः नैव याचन्ते उपदेशन्ते गृहे गृहे।
देयं देयं परं देयं न देयं गतिमीदृशम्॥

भिक्षुक घर-घर जाकर यह उपदेश करते हैं कि देनेकी प्रवृत्ति सदा रखो, नहीं तो आपकी दशा भी मेरी तरह हो जायगी। सामान्यतः दानकी प्रवृत्ति सबके मूलमें होती है, यह समझकर जो दानकी प्रवृत्तिको बढ़ावा देता रहता है, उसका जीवन सदा सुखमय होता है।

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः। किंनु मे पशुभिस्तुल्यं किंनु सत्पुरुषैरिव॥

'यदि मानवतासे पशुतामें न जाना हो—मानव-पशु न बनना हो, तो मनुष्य प्रतिदिन अपने जीवनको देखता रहे और ध्यान रखता रहे—सतत सावधान रहे कि उसका जीवन सत्पुरुषके समान बीतता है या पशुके समान।'

---

* आचार्य बृहस्पतिने 'गोचर्म'-भूमि कितनी लम्बी-चौड़ी होती है, इसे बताते हुए कहा है कि दस हाथके दण्डसे तीस दण्डका एक निवर्तन होता है और दस निवर्तन विस्तारवाली भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है। इस प्रकार (१० हाथ=एक दण्ड, तीस दण्ड=३०० हाथ या एक निवर्तन और १० निवर्तन=३,००० हाथ) तीन हजार हाथ या लगभग $१^{१}/_{४}$ कि० मी० लम्बी-चौड़ी भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है। गोचर्म-भूमिका एक अन्य परिमाप देते हुए कहा गया है कि एक वृषभ तथा बछड़े-बछड़ियोंसहित एक हजार गायें, जितनी भूमिमें आरामसे इधर-उधर टहल सकें, घूम-फिर सकें, उतनी लम्बी-चौड़ी भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है—

दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्तनम्। दश तान्येव विस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम्॥
सवृषं गोसहस्रं च यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम्। बालवत्सप्रसूतानां तद्गोचर्म इति स्मृतम्॥

(बृह०स्मृति ८-९)

दान—धर्ममय जीवनका दिव्य पक्ष

(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)

दानकी महिमा अपार है। दानको धर्मका एक मूलभूत तत्त्व या अंग माना गया है। दान धर्माश्रित आदर्श जीवनका क्रियात्मक स्वरूप है। मानव-जीवनके सर्वांगीण उत्थान अर्थात् अभ्युदय तथा निःश्रेयस अथवा लौकिक एवं पारलौकिक कल्याणहेतु दान देना अनिवार्य है। दान आदर्श जीवनका नित्यकर्म है, जिसका सम्पादन प्रत्येक व्यक्तिको करना चाहिये। इस प्रसंगमें एक कथाका उल्लेख करना उपयुक्त होगा। एक बार देवता, मनुष्य और असुर अपने-अपने दुःखकी निवृत्तिहेतु पितामह ब्रह्माजीके पास गये तथा उनसे कातर प्रार्थना की। ब्रह्माजीने तीनोंको मात्र
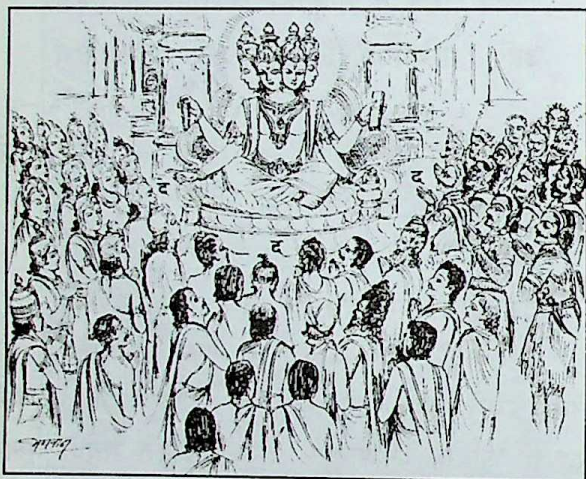
एक अक्षरका उपदेश दिया। वह अक्षर था 'द', जिसका भावार्थ तीनों प्रार्थियोंके लिये भिन्न-भिन्न था। देवगण, जो कभी वृद्ध न होकर स्वर्गमें इन्द्रिय-भोगमें ही रत रहते हैं, को 'द' के द्वारा प्रजापति ब्रह्माने इन्द्रिय-दमनका उपदेश दिया। मनुष्योंको, जो कर्मयोनिमें जन्म लेकर लोभवश सांसारिक सुख-भोग तथा धन-संग्रहमें ही मृत्युपर्यन्त व्यस्त रहते हैं, उन्हें ब्रह्माजीने दान देनेकी आज्ञा दी तथा स्वभावतः हिंसा-वृत्तिवाले क्रूर असुरोंको 'द' के माध्यमसे दुष्कर्म त्यागकर प्राणिमात्रपर दया, करनेकी शिक्षा दी। इस प्रकार 'द' के तीन अर्थ हुए—इन्द्रिय-दमन, दान तथा दया, जो क्रमशः देवताओं, मनुष्यों तथा असुरोंपर लागू हुए।

तात्पर्य यह कि अपने परम कल्याणके लिये मनुष्यको यथाशक्ति दान अवश्य देना चाहिये। दानको महान् तपका फल माना गया है, यथा—'**विभवो दानशक्तिश्च महतां तपसां फलम्।**' अर्थात् विभव तथा दानशीलता महान् तपके ही प्रतिफल हैं। सत्पुरुषोंद्वारा दैनिक जीवनमें सम्पन्न अन्य कर्तव्य-कर्मकी भाँति नित्य-नियमपूर्वक दान भी देना चाहिये। शास्त्रोंमें सज्जनोंके लिये न्यायपूर्वक अर्जित धनका दसवाँ अंश देनेका विधान है—

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥
(स्कन्दपुराण)

दानकी अनिवार्यताके विषयमें तो यहाँतक कहा गया है कि जितनेसे पेट भरे उतनेपर ही मनुष्यका अधिकार है; उससे अधिकपर जो अधिकार जमाता है, वह चोर है तथा दण्डका भागी है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

हमारी गौरवमयी सांस्कृतिक परम्परामें कलियुगमें दानको ही परम कल्याणकारी साधन बताया गया है—'**दानमेकं कलौ युगे।**' वेदका भी उपदेश है—

'**शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।**'
(अथर्ववेद ३।२४।५)

अर्थात् सौ हाथोंसे धनका उपार्जन करो और हजार हाथोंसे उसे दानके रूपमें बाँट दो। दान देनेसे व्यक्तिमें सद्वृत्तियोंका विकास होता है तथा उसमें त्यागकी भावना दृढ़ होती है। दान आत्मशुद्धिका श्रेष्ठ साधन है। दानीकी त्याग-वृत्ति उसे सभीका प्रिय पात्र बना देती है, और-तो-और दानसे तो देवता भी वशीभूत हो जाते हैं, यथा—

'**दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्॥**'
(मत्स्यपुराण २२४।२)

दान देनेसे धन घटता नहीं, अपितु उसमें निरन्तर वृद्धि होती रहती है। उदाहरणार्थ कुएँसे पानी निकालनेपर उसमें एकत्र जल अधिक गतिशील एवं शुद्ध हो जाता है। इस विषयमें निम्न दोहेमें ठीक ही कहा गया है—

तुलसी पंछिन्ह के पिये सागर घटै न नीर।
दान दिए धन ना घटै जो सहाय रघुबीर॥

श्रीतुलसीदासजीने भी कहा है—

'जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥'

दानकी महिमाका निरूपण करते हुए शास्त्रोंमें उल्लेख है कि याचक दाताका उपकार करनेके लिये ही उसके सामने 'देहि' (दीजिये) कहकर याचना करता है; क्योंकि दाता तो ऊपरके लोक (स्वर्ग)-में जाता है और दान लेनेवाला नीचे (पृथ्वीपर) रह जाता है, यथा—

दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थीति देहि मे।
यस्माद्दाता प्रयात्यूर्ध्वमधस्तिष्ठेत् प्रतिग्रही॥

(स्कन्दपुराण मा० कुमा० २।६७)

स्कन्दपुराणमें ही वर्णित है कि सैकड़ों मनुष्योंमें कोई शूरवीर हो सकता है, सहस्रोंमें कोई पण्डित भी मिल सकता है तथा लाखोंमें कोई वक्ता भी निकल सकता है, किंतु इनमें एक भी दाता हो सकता है या नहीं, इसमें सन्देह है—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता जायेत वा न वा॥

(स्कन्दपुराण)

वास्तवमें संसारमें दान देनेसे बढ़कर कोई अन्य दुष्कर कार्य नहीं है; क्योंकि दिन-रात कठिन परिश्रमसे अर्जित, प्राणोंसे भी प्रिय धन-सम्पत्तिको दानके द्वारा त्यागना निश्चय ही बड़ा कठिन कार्य है। ध्यातव्य है कि दानमें दिया जानेवाला धन कभी घटता नहीं। दानके द्वारा दाता एक ही जन्ममें अन्य अनेक जन्मोंके लिये पुण्य अर्जित कर लेता है। संसारमें दानवीरोंकी कीर्ति सदा अक्षुण्ण बनी रहती है। उदाहरणार्थ राजा शिबि, दधीचि, निमि, बलि, कर्ण, परशुराम, राजा हरिश्चन्द्र, हर्षवर्धन इत्यादि दानके कारण ही अमर—कालजयी हो गये।

हमारे वैदिक वाङ्मय तथा पौराणिक आख्यानोंमें तो दान-महिमाके स्तोत्र तथा कथाएँ भरी पड़ी हैं, किंतु विशेषरूपसे ऋग्वेदके दशम मण्डलके ११७वें सूक्तमें तो दान-स्तुतिका प्रतिपादन करनेवाले उपदेशपरक भव्य मन्त्र हैं, जो मानव-जीवनकी नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रगतिके लिये आवश्यक हैं। इस सूक्तको 'भिक्षुसूक्त' भी कहते हैं; क्योंकि इसके ऋषि 'आङ्गिरस भिक्षु' हैं। इसमें १ से ३ तथा ५ से ८ ऋचाओंतक धनवान् व्यक्तिको तथा ऋचा ४ एवं ९ में क्षुधार्त्त याचकको उपदिष्ट किया गया है। ऋग्वेदकी कुछ ऋचाएँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं—

'दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते।'

(१।५५।७)

अर्थात् हे सोमपावन इन्द्र! तेरा मन दानके लिये हो—

'दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते।'

(१।१२५।६)

अर्थात् दानी अमर पद प्राप्त करते हैं—

'प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं उदितं कृधि॥'

(ऋग्वेद १०।१५१।२)

अर्थात् हे श्रद्धे! दाताके लिये हितकर अभीष्ट फल दो—

'श्रद्धया विन्दते वसु।'

(ऋग्वेद १०।१५१।४)

अर्थात् श्रद्धासे धन प्राप्त होता है—

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः प्रणतो नोप दस्यत्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते॥

(ऋग्वेद १०।११७।१)

अर्थात् देवताओंने केवल क्षुधाकी ही सृष्टि नहीं की, अपितु मृत्युको भी बनाया है। जो बिना दान दिये हुए ही खाता है, उस (खानेवाले) व्यक्तिको भी मृत्युके समीप जाना पड़ता है। दाताका धन कभी क्षीण नहीं होता। दान न देनेवाले मनुष्यको कभी सुख प्राप्त नहीं होता है।

स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्॥

(ऋग्वेद १०।११७।३)

अर्थात् घर आकर माँग रहे अति दुर्बल शरीरके याचकको जो भोजन देता है, उसे यज्ञका पूर्ण फल प्राप्त होता है तथा वह अपने शत्रुओंको भी मित्र बना लेता है।

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः॥

(ऋग्वेद १०।११७।५)

अर्थात् जो याचकको अन्नादिका दान करता है, वही धनी है। उसे कल्याणका शुभ मार्ग प्रशस्त दिखायी देता है। वैभव-विलास रथके चक्रकी भाँति आते-जाते रहते हैं। किसी समय एकके पास सम्पदा रहती है, तो कभी

दूसरेके पास निवास करती है।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋग्वेद १०। ११७। ६)

अर्थात् जिसका मन उदार न हो (जिसकी दानमें रुचि न हो), वह व्यर्थ ही अन्न पैदा करता है। संचय ही उसकी हानि (मृत्यु)-का कारण बनता है। जो न तो देवोंको हविष्य-दानसे तृप्त करता है और न ही मित्रोंको तृप्त करता है, वह वास्तवमें पापका ही भक्षण करता है।

'दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन्॥'

(ऋग्वेद १०। १०७। ७)

अर्थात् जो दक्षिणाके रूपमें जीवनोपयोगी अन्न आदिका दान करते हैं, उनके लिये यह पुण्य-फल सुरक्षा-कवचके रूपमें कष्ट-कठिनाइयोंसे रक्षा करनेवाला होता है।

य आध्राय चकमानाय पित्वो ऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते॥

(ऋग्वेद १०। ११७। २)

अर्थात् जो पुरुष अन्नवान् होनेपर भी घर आये हुए दुर्बल एवं अन्नकी याचना करनेवाले भिक्षुकके प्रति दान देनेके लिये अपने अन्तःकरणको स्थिर कर लेता है तथा उसके सामने ही उसे तरसाकर खाता है, उस महाक्रूरको कभी सुख प्राप्त नहीं होता।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने दानका तीन प्रकारसे विभाजन करते हुए सात्त्विक दानकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की है, यथा—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

(१७। २०)

अर्थात् दान देना ही कर्तव्य है—ऐसे भावसे देश, काल और सत्पात्रके प्राप्त होनेपर जो दान उपकार न करनेवालेके प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है। आदिगुरु शंकराचार्यके अनुसार **'दानं संविभागः'** अर्थात् सम्पत्तिका सम्यक् विभाजन ही दान है। वास्तवमें दान सामाजिक यज्ञ अथवा परोपकारका ही एक अभिन्न अंग है; यह सामाजिक तथा आर्थिक विषमता तथा द्वेष-विवादको दूर करनेका उपयुक्त साधन है। संसारके महान् दानवीरोंने दानके माध्यमसे समाजमें समरसता, समानता तथा बन्धुत्वकी उदात्त भावनाको प्रोत्साहित किया। अपने देशमें वर्तमान आर्थिक असमानता एवं कटुताके निराकरणहेतु आचार्य विनोबाजीने सर्वोदयकी श्रेष्ठ विचारधाराको भूदान-आन्दोलनद्वारा चरितार्थ किया।

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि मानव-जीवनको आदर्शमय बनाने तथा उसके अभ्युदय एवं निःश्रेयसके लिये यथाशक्ति दान देना अत्यावश्यक है। श्रद्धायुक्त, विनम्र भावसे दिया गया दान जीवनको सच्चे अर्थोंमें सार्थक बनाता है। अतः लौकिक एवं पारलौकिक परम कल्याणके लिये उदारतापूर्वक दान देनेकी शास्त्रीय व्यवस्था है। दान देते समय मन सर्वथा शुद्ध, सरल तथा निरभिमानयुक्त होना चाहिये; क्योंकि समस्त धन भगवान्‌का है; उसे अपना मानना नैतिक अपराध है। सर्वत्र और सभी पदार्थोंमें परमात्माका निवास है, अतः दान लेनेवाले भी भगवान् ही तो हैं। 'हम किसीपर उपकार कर रहे हैं' ऐसी भावना मनमें अविनय एवं अभिमानको जन्म देती है। अतः स्वाभिमान एवं स्वामित्वकी भावनासे रहित होकर या अभिमानसे ऊपर उठकर ही कर्तव्य-कर्म समझकर दान देना श्रेयस्कर है।

स्कन्दपुराणमें उल्लेख है कि एक बार कात्यायनमुनिने सारस्वतमुनिसे पूछा—'मुनिवर! दान तथा तपमें कौन दुष्कर है तथा इहलोक एवं परलोकमें महान् फल देनेवाला कौन है? इस प्रश्नके उत्तरमें सारस्वतमुनिने दानको तपसे श्रेष्ठ बताया तथा कहा कि पृथ्वीपर दान देनेसे बढ़कर दुष्कर कार्य नहीं है।

संसारके सभी धर्मोंमें दानकी विशद महिमा दरसायी गयी है; क्योंकि वैयक्तिक विकास, सामाजिक समरसता और वैश्विक बन्धुत्व तथा इहलोक एवं परलोकमें वांछित सफलता सुनिश्चित करनेके लिये धनका उत्सर्ग परम कल्याणकारी साधन है। पुरुषार्थ चतुष्टयकी प्राप्तिहेतु दान एक सुदृढ़ सोपान है। ठीक ही कहा गया है कि हाथकी शोभा दानसे होती है, कंकणसे नहीं। अतएव **'दानमेकं कलौ युगे।'** कलियुगमें तो सभी साधनोंसे श्रेष्ठ साधन केवल दान ही है।

धर्मका प्रशस्त द्वार—दान

(डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया, एम०ए०, बी०एस-सी०, एल-एल० बी०, पी-एच०डी०)

भारतीय संस्कृतिमें सत्कर्मके रूपमें परिगणित दानकी महत्ता विशेष रूपसे प्रतिपादित है। दानकी गरिमा तथा महिमा कहीं कथाके माध्यमसे तो कहीं उपदेशोंके वातायनसे प्रस्फुटित है। दान मानवजीवनका श्रृंगार है; क्योंकि यह मानवजीवनको जहाँ निर्मल तथा पवित्र बनाता है, वहीं हृदय और मनको भी विराट् तथा विशाल बनाता है। यह तभी सम्भव है जब मनुष्यका अन्तस् सरलता, नम्रता, मृदुताके साथ त्याग एवं करुणासे सिंचित हो।

आज व्यक्ति धर्मकी नहीं, धनकी दौड़में व्यस्त है, त्रस्त है। चारों ओर धनकी होड़ लगी हुई है। इतना ही नहीं, मनुष्य धनसंग्रहमें ही अपना मूल्यवान् जीवन नष्ट कर रहा है। उसमें दानकी प्रवृत्ति लुप्त होती जा रही है, अपरिग्रहकी भावनाओं और संवेदनाओंका जल सूखता जा रहा है। मनुष्यकी दृष्टि तो धनपर ही केन्द्रित है, फिर चाहे वह अन्याय, अनीतिसे कमाया हुआ हो या अनाचरणीय दुष्कर्म यानी पापकर्मोंसे अर्जित हो। धनके व्यामोहमें व्यक्तिका हृदय अहंकार और तज्जन्य ईर्ष्या-मात्सर्य तथा द्वन्द्व-द्वेषसे घिर जाता है। उसमें स्वार्थ एवं संकीर्णताओंका जाल बिछने लगता है, लोभ और लालसाका नर्तन दिखायी देने लगता है, जो अशान्ति एवं असन्तोषका कारण बनता है। ऐसी स्थितिमें दानकी उपादेयता और अधिक बढ़ जाती है।

दानमें एक विशिष्ट शक्ति निहित है। यह अनन्त आनन्दकी अनुभूति कराता है। इससे मनुष्यकी मनुष्यता ही नहीं जगती, अपितु सोया हुआ देवत्व भी जग जाता है। वास्तवमें दान आचारकी प्रयोगशाला है। यह आत्मशुद्धिका आधार है। अस्तु, दान धर्मका प्रशस्त द्वार है। धर्मके जिन चार अंगों—दान, शील, तप और दयाभावका उल्लेख हुआ है, उनमें दानको प्रथम स्थानपर रखा गया है; क्योंकि दानकी जो प्रक्रिया जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्ततक रहती है, उसके माध्यमसे मनुष्य अपने हृदयको नम्र एवं समरस बनाकर धर्मपथपर सतत आरूढ़ रहता हुआ विषयकषायों अर्थात् दुर्गतियोंमें जानेसे अपने-आपको रोक सकता है। ऋग्वेद (१।१२५।७)-में भी कहा गया है कि दान देनेवाला कभी दुःख नहीं पाता, उसे कभी पाप नहीं घेरता। यथा—'**मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्।**' दाताओंकी कभी मृत्यु नहीं होती, वे अमर हैं। उन्हें न कभी निकृष्ट स्थिति प्राप्त होती है, न वे कभी पराजित होते हैं और न कभी किसी तरहका कष्ट ही पाते हैं। इस पृथ्वी या स्वर्गमें जो कुछ महत्त्वपूर्ण है, वह सब दाताको दान (दक्षिणा)-से मिल जाता है। (ऋग्वेद १०।१०७।८) वास्तवमें दानियोंके पास अनेक प्रकारका ऐश्वर्य होता है। दानीके लिये ही आकाशमें सूर्य प्रकाशमान है। दानी अपने दानसे अमृतत्व पाता है, वह अति दीर्घ आयु प्राप्त करता है। यथा—

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः॥

(ऋग्वेद १।१२५।६)

दानकी यह विशेषता है कि वह व्यक्तिके हृदयका परिवर्तन करनेमें सर्वथा सक्षम है। हृदय-परिवर्तन होनेपर बुरी वृत्तियाँ, दुर्व्यसन अर्थात् कृत पापोंका उच्छेद—नाश हो जाता है और व्यक्ति धर्मकी ओर स्वतः बढ़ने लगता है। लेकिन यह दान सद्भावसे सम्पृक्त होना चाहिये; क्योंकि सद्भावसे दिया गया दान कभी नष्ट नहीं होता। यथा—'**अमृक्ता रातिः**' (ऋक्० ८।२४।९)। ऐसे दान देनेवाले सच्चे दानीको यज्ञका सम्पूर्ण फल भी प्राप्त हो जाता है। (ऋक्० १०।११७।३) इस प्रकार जो दान देते हैं, वे निश्चित ही स्वर्गमें उच्च स्थान पाते हैं। यथा—'**उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुः।**' (ऋक्० १०।१०७।२)

आज जितना भी पाप, अधर्म दिखायी दे रहा है, उसके मूलमें धन और धनकी तृष्णा यानी चाह है। धर्मशास्त्रोंमें धनकी तीन गतियाँ बतायी गयी हैं—दान, भोग, नाश। यह हमारे विवेकपर निर्भर करता है कि हम धनका उपयोग दानमें करते हैं या भोग आदिमें। यदि हम धनका उपयोग दानमें करते हैं तो हमारा हृदय करुणा,

प्रीति, मैत्री, परोपकार, सहानुभूति, विश्वबन्धुत्व तथा समत्वप्रभृति अनेक आत्मिक गुणोंसे परिपूर्ण तथा समृद्ध होता जाता है।

दानके सन्दर्भमें कहा जाता है कि जो दान सत्पात्रको शुद्धताके साथ श्रद्धापूर्वक उचित देश और कालमें दिया जाता है, वह सात्त्विकदान अधिक पुण्यप्रद है। ऐसे दानमें न कोई स्वार्थ होता है, न आकांक्षा, न पदलिप्सा, न प्रतिष्ठाकी कामना और न प्रसिद्धिकी इच्छा। यह दान निःस्वार्थ एवं निष्कामभावसे दिया जाता है। जिससे धर्मकी वृद्धि होती रहे और अधर्मका निवारण हो सके—ऐसे दानकी सभी प्रशंसा करते हैं। उनकी दृष्टिमें दानसे बढ़कर अन्य कुछ दुर्लभ नहीं है। यथा—'**दानमिति सर्वाणि भूतानि प्रशंसन्ति दानान्नाति दुष्करम्**' (तैत्तिरीय आरण्यक नारायणोपनिषद् १०।६२)। दानकी प्रशस्तिमें कहा गया है कि सत्पात्रको दान देनेसे मनुष्य धन-सम्पन्न हो जाता है, धनवान् होकर पुण्यका उपार्जन करता है, फिर पुण्यके प्रभावसे स्वर्गगामी बन जाता है और फिर बार-बार धनवान् और दाता बनता रहता है, लेकिन जो दानमें प्रवृत्त नहीं है, वह दरिद्र हो जाता है और दरिद्र होनेसे वह पाप करने लगता है। पापके प्रभावसे वह नरकगामी बन जाता है और बार-बार दरिद्र तथा पापी होता रहता है।

वास्तवमें हृदयकी उदारताका पावन प्रतीक तथा जीवनके माधुर्यका प्रतिबिम्ब दान एक ऐसा दरिद्रता-नाशक कल्पवृक्ष है, जिसके फल हजारों रूपोंमें प्रकट होते हैं। मनुष्योंको जिलानेवाला, रोते हुओंको हँसानेवाला, रोगियोंको रोगोंसे मुक्ति दिलानेवाला, बुभुक्षितों-तृषितोंकी भूख-प्यास मिटानेवाला है दान। ऐसा कल्याणका कोष एवं अमृतमय दान मनुष्यको अन्ततोगत्वा विश्ववन्दनीय तथा जगत्पूज्य बना देता है। वास्तवमें कलियुगमें एकमात्र दान ही श्रेष्ठ धर्म है। यथा—'**दानमेकं कलौ युगे**' (मनुस्मृति १।८६)।

दानसे अध्यात्मकी ओर

(श्रीहरिशंकरजी जोशी)

मन, वचन तथा कायासे अपनी शक्ति एवं श्रद्धाके अनुसार दान करना चाहिये, यहाँतक कि यदि याचना करनेवाला चाहे उसका अपना शत्रु भी क्यों न हो, तो भी उसे निष्कामभावसे हृदयसे दे। जिस प्रकार वृक्ष अपने फूल, फल, पत्ते एवं छाया किसी आने-जानेवाले राहीसे छिपाकर नहीं रखते तथा निःस्वार्थ हो राहगीरको लाभ पहुँचाते हैं, उसी प्रकार मनसे सम्पत्तिको जरूरतमन्दोंको अपनी शक्तिके अनुसार देनेको तैयार रहना तथा दुःखीजनोंके हितमें धन-सम्पत्ति लगाना 'दान' कहा जाता है।

अध्यात्मजगत्में दान एक ऐसी कड़ी है, जिसके द्वारा मनुष्यमात्र उस परम सत्तातक सहज पहुँच सकता है, बशर्ते दान सत्त्वप्रधान हो। परमात्माकी प्राप्तिके लिये पहला नियम यह है कि व्यक्तिका चित्त पूर्णतया निर्मल बने, तभी वह आत्मा-परमात्माके क्षेत्रमें प्रवेश कर सकता है, जो सात्त्विक दानसे शीघ्र प्राप्त होता है।

संत कबीरका वचन भी है—

कबिरा मन निर्मल भया जैसे गंगा नीर।
पीछे पीछे हरि फिरे कहत कबीर कबीर॥

शास्त्रों तथा वेदोंने बताया कि मनुष्यशरीर बहुत दुर्लभ है, कारण मनुष्यशरीर ही कर्मका कर्ता और फलका अधिकारी है तथा इसी शरीर, इन्द्रियों और मनके द्वारा पुरुषार्थकर उस परम सत्तातक पहुँच सकता है, अन्य योनियोंमें स्थित आत्माओंको यह लाभ नहीं मिल सकता, कारण वे भोगयोनियाँ मानी गयी हैं। इसी प्रकार देवता भी मनुष्यशरीरके लिये लालायित रहते हैं। इस सत्यको जानते हुए यदि मनुष्य उस परम सत्ताको न जान उसे नहीं पाता तो उसका मनुष्यशरीर व्यर्थ है। शास्त्रों तथा विद्वानोंने दानको एक महत्त्वपूर्ण रास्ता उस परम सत्ताको जाननेका बतलाया, बशर्ते वह पूर्णतया सात्त्विक रीतिसे दिया गया हो।

महात्मा चाणक्यने भी दानकी महिमा अपने चाणक्य नीतिशास्त्रमें इस प्रकार दरसायी है—

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम्।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी॥

(चाणक्यनीति ५। ११)

दानसे दरिद्रताका, शीलसे दुर्गतिका, उत्तम बुद्धिसे अज्ञानका तथा भक्तिसे भयका नाश होता है।

समृद्धिशाली व्यक्तिद्वारा दिये गये दानकी अपेक्षा अभावग्रस्त व्यक्तिद्वारा स्वयं कष्टों तथा अभावोंको सहते, दूसरोंके सुखके लिये दान करना अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। जो पुरुष स्वयं कष्ट सहते, दूसरोंके दुःखोंको दूर करनेके प्रयत्नमें रहते हैं, उनका त्याग और पुरुषार्थ वास्तवमें प्रशंसनीय होता है। ऐसे उदार हृदयवालोंके लिये परमात्मा सहज द्रवित होकर उनका दारिद्र्य शीघ्र दूर करते हैं।

महात्मा चाणक्यने दरसाया कि दान भी कैसे पात्रतावालोंको देना, जिससे उन्हें उस द्रव्यका पूरा लाभ हो। उन्होंने इस विषयको इस तरह समझाया—

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम्।
वृथा दानं धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवापि च॥

(चाणक्यनीति ५। १६)

जैसे समुद्रके ऊपर यदि बादल बरसते हैं तो उनका बरसना व्यर्थ माना जाता है, उसी प्रकार तृप्त पुरुषोंको भोजन कराना भी व्यर्थ होता है। जैसे वर्षाकी उपयोगिता खेतोंमें होती है, उसी प्रकार भूखोंको भोजनकी। जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशमें रोशनी करना निरर्थक है, उसी प्रकार समृद्ध व्यक्तियोंको दान देना भी निरर्थक ही है। दानकी महिमा तभी मानी जाती है, जब अभावग्रस्त, पीड़ितोंको उचित समयपर सहायता प्राप्त हो। इस सन्दर्भमें महात्मा चाणक्यका वचन है—

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च
यच्छ्रद्धया स्वल्पमुपैति दानम्।
अनन्तपारं समुपैति राजन्
यद्दीयते तन्न लभेद् द्विजेभ्यः॥

(चाणक्यनीति १२। २)

जो श्रद्धा तथा दयायुक्त हो गरीब और दुःखियोंको दान देता है, अभावपीड़ित ब्राह्मणों, विद्वानों, सन्तोंपर दयाभावसे श्रद्धायुक्त दान करता है तथा उनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है, परम पिता कृपा करके उसे अनन्तगुना धनसे लाभान्वित करते हैं। महात्मा चाणक्यने कहा है—

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः।
न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्वदेहिनाम्॥

(चाणक्यनीति १६। १४)

इस जगत्में यदि किसीने जप, तप, पूजा, यज्ञ, होम तथा अन्य अनुष्ठान किये भी हों तो उनके फल समयानुसार नष्ट हो सकते हैं, लेकिन सुपात्रको दिया दान तथा सभी जीवोंको दिया अभयदान न कभी व्यर्थ जाता है, न उसके फल नष्ट होते हैं, इसलिये अपने आत्मकल्याण तथा उस परम सत्तातक पहुँचनेके लिये जीवमात्रको अभयदान देनेके लिये तत्पर रहना चाहिये।

मनुष्यमात्रके लिये दान मुख्यतः तीन प्रकारके होते हैं—१-द्रव्यदान (अन्न, वस्त्र, जमीन, धन इत्यादि), २-ज्ञानदान (जीवोंको उत्तम मार्ग दिखाकर उस परम सत्ताकी ओर अग्रसारित करना) और ३-संस्कारदान (जीवोंके कल्याण एवं मंगलके प्रति शुभ तरंग देना)।

शास्त्रोंके आदेशानुसार मनुष्यको अपनी आमदनीका छठा हिस्सा दानहेतु निकालना चाहिये, जिससे जीवनमें जो धन-प्राप्त हुआ, वह धन शुद्ध हो जाता है तथा वह उसके जीवनमें सुख प्राप्त कराता है। इस तरह उस व्यक्तिके अन्दर पवित्रताका निर्माण होने लगता है, जो आगे चलकर चित्तको निर्मल करनेमें सहायक हो जाता है, इस तरह उस व्यक्तिके जीवनमें दया, करुणा, प्रेम तथा ईश्वरीय गुणोंकी वृद्धि होने लगती है, जिससे वह आध्यात्मिक पथपर आगे चलकर उस परम सत्ताको पा सकता है।

दान देनेके तीन प्रकार होते हैं—१-सत्त्वगुणीदान, २-रजोगुणीदान तथा ३-तमोगुणीदान।

१-सत्त्वगुणीदानकी व्याख्या स्वयं भगवान्ने गीता (१७। २०)-के माध्यमसे बतायी—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

धर्मपूर्वक और सन्मार्गसे प्राप्त किया गया धन अति आदरपूर्वक अन्यको दान किया जाय। उत्तम बीज मिल जाय, पर उत्तम भूमि और नमी न मिले, वैसे ही दान करनेकी इच्छा हो तो भी दानके योग्य पात्र, देश तथा कालकी प्राप्ति न हो, बहुमूल्य रत्न मिल जाय, पर उसमें जड़नेके लिये सोना न मिल सके, फिर यदि स्वर्ण मिल जाय तो उस अलंकारको धारण करनेयोग्य शरीर न रहे। जब सौभाग्य होता है तभी उत्तम पर्व, स्वजन और सम्पत्ति—तीनोंकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार सात्त्विक दानके लिये उत्तम देश, काल, सत्पात्र, धन—ये सब साधन कभी-कभी अनुकूल मिलते हैं। प्रथम तो दानके लिये पवित्र स्थल हो, तदनन्तर शुभकाल हो, जैसे—सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण हो, उस अवसरपर ऐसा सुपात्र मिले जो मूर्तिमान् पवित्र ही हो, वह सदाचारी वेदवेत्ता हो, उसको अपना न्यायोपार्जित धन अर्पण करे। उसी प्रकारकी बुद्धिसे द्रव्य, भूमि आदिका दान करना और उसमें किसी फलकी आशा न रखना। जिसे दान दिया जाय वह ऐसा होना चाहिये, जिससे अपनेको किसी प्रकारका लाभ होनेकी आशा न हो। दान देनेके विषयमें जरा भी अभिमानका भाव मनमें न लाना, ऐसा दान ही श्रेष्ठ तथा सात्त्विक दान होता है।

२-रजोगुणीदान—

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥

(गीता १७। २१)

जिस प्रकार दान देनेके बाद उसके नामकी प्रशंसा हो अथवा उसके नामका वह प्रतिष्ठान हो या उसके नामकी तख्ती लगे, उसी प्रकार दूधकी इच्छा रख गायको चारा खिलाया जाय, उपहारकी आशासे सगे-सम्बन्धियोंको निमन्त्रित किया जाय अथवा द्रव्य लेकर रोगीको औषधि दी जाय अथवा इस प्रकार एवं इस भावसे दान दिया जाय कि इसमें अमुक याचकका गुजारा हो जायगा, ऐसी मनोवृत्तिसें दिया हुआ दान राजस कहा जाता है।

३-तमोगुणीदान—

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥

(गीता १७। २२)

जहाँ म्लेच्छोंकी बस्ती हो, अरण्य अथवा अपवित्र स्थान हो—ऐसे स्थानमें शाम अथवा रात्रिके समय एकत्रित होकर चोरीसे प्राप्त धनको अपात्रके लिये तिरस्कारपूर्वक दान करना तामसदान कहलाता है।

उपर्युक्त तीनों गुणोंकी व्याख्यासे स्पष्ट ज्ञान होता है कि यदि दान सत्वगुणके आधारसे होता है तो निश्चित सद्‌गति होती है तथा संसारमें जबतक जीवित रहता है, परमात्माकी कृपासे सुखमय जीवन बिताता हुआ संसारके सुख भोगता हुआ हर दुःखी प्राणियोंके दुःखोंको दूर करते नजर आता है, ऐसे सत्त्वगुणी दाताके लक्षण निम्न होते हैं—

(१) जहाँ व्यक्ति दुःखोंसे तड़प रहे हों, वहाँ दानी सबसे आगे मददके लिये आता है।

(२) जहाँ सेवा अथवा मददका कार्य हो, वहाँ सबसे आगे रहता है।

(३) जहाँ उसकी प्रशंसा हो रही हो, वहाँ वह संकोच करता है।

(४) जहाँ निन्दा, चुगली, दुराचार हो रहा हो, वहाँसे दूर हट जाता है।

(५) जहाँ उसे जगत्‌से कष्ट मिल रहा हो तो सहज भावसे सहन करता है।

(६) संसारकी सुविधा उपलब्ध होनेपर भी जीवन सादा होता है।

(७) दानी एवं भक्त सदैव अपने प्रेमभाव तथा दानको गुप्त रखते हैं।

सच्चा दानी प्रभुकी लीला निहारता रहता है तथा सदा उसे धन्यवाद देता रहता है कि उसने मुझे दुःखियोंको दान करनेका अवसर दिया—सेवाका अवसर दिया। ऐसी स्थिति जिस दानीमें हो; समझना चाहिये कि वह बहुत ऊँची स्थितिमें है।

दान—एक महान् मानवधर्म

(डॉ० श्रीलल्लनजी ठाकुर, विद्यावाचस्पति)

बृहदारण्यकोपनिषद्‌में एक आख्यान वर्णित है। प्रजापति ब्रह्माके तीन पुत्र थे—देवता, मानव और दानव। जब ये तीनों ब्रह्मचर्यावस्थामें पहुँचे, तब इन्होंने अपने पिताके पास जाकर उनसे धर्मशिक्षाका उपदेश देनेको कहा—वे इन्हें धर्मशिक्षाका जिज्ञासु जान प्रसन्न हुए। उन्होंने तीनोंको 'द' अक्षरका उपदेश दिया। तीनोंने दमन, दान और दया—यह पृथक्-पृथक् अर्थ समझा। इस प्रकार मानवोंका धर्म है—द=दान।

दान मनुष्योंका परम धर्म है। यही मनुष्यको ममत्वका त्याग सिखाता है। मनुष्यने प्रकृतिसे सीखा, प्रकृति-प्रदत्त वस्तु जितनी मेरी, उतनी तेरी और उतनी ही दूसरेकी। यही दान हमें परोपकारकी शिक्षा देता है। यह हमें दूसरोंसे जोड़ता है और दुर्बल ममताओंको तोड़ता है। यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी रिश्ते और नातेको बनाये रखता है, त्यागकी राह दिखाता है। मानवजीवनमें त्यागवृत्ति और दानवृत्तिकी प्रधानता है। देवताओंका जीवन तो भोगप्रधान है। असुरोंका क्रूरता और निर्दयताप्रधान है, पर मनुष्यको तो अपने धर्मपर चलना है।

मनुष्य विवेकशील प्राणी है। अतः उसमें त्यागवृत्ति है। यह उसकी सांस्कृतिक चेतनाका विस्तार और प्रसार करती है। हमारे आर्षग्रन्थ हमें दान-पुण्यकी शिक्षा देते हैं।

प्रकृति भी हमें प्रेरणा देती है। शिक्षा देती है कि **'परोपकाराय सतां विभूतयः'** के सिद्धान्तको मानना चाहिये। प्रकृतिसे हवा, धूप, जल, शीतलता, ताप सब कुछ बिना मूल्य प्राप्त होता है। आकाशके बादल जल दानकर वसुन्धराको सस्यश्यामल बनाते हैं। धरती हमें अपार खनिज दान करती है। वन हमें विविध अन्न, जल, फल, फूल, औषधिका दान करते हैं, चिड़ियोंकी चहचहाहट, भ्रमरके मधुर गुंजार, नदियोंकी कलकल ध्वनि हमें संगीतसे भर देती है। इस महादानका हम कौन-सा मूल्य चुकाते हैं?

यही प्रकृति-सुन्दरी मानवसमाजकी प्रखर शिक्षिका है। यही हमारी त्यागगुरु है। यही हमें ममत्वका त्याग सिखाती है। कविवर मैथिलीशरणगुप्तने कहा है—

निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी।
हम हों समष्टि के लिये व्यष्टि बलिदानी॥

हमारे मनीषियोंने कहा है कि मानवशरीर दान-पुण्य और परोपकारके लिये ही मिला है। बीमारोंको दवा, भूखेको अन्न, प्यासेको जल, वस्त्रहीनोंको वस्त्र, अशिक्षितको शिक्षा और ज्ञानदान मानवमात्रका कर्तव्य और धर्म है। यह सब कुछ जनकल्याणार्थ और अपने सामर्थ्यानुसार होना चाहिये।

यथार्थ धन-सम्पत्ति मनुष्यको विनम्र बनाती है, अहंकारी नहीं। फलसे वृक्ष झुक जाते हैं। नदी-सरोवर हमें शीतल जल प्रदान करते हैं। ये प्रकृतिके सारे अवयव फल, जल, तेल, औषधि, पुष्प आदि देकर हमें कृतार्थ करते हैं। संत कबीरने कहा है—

वृक्ष कबहुँ न फल भखै नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर॥

राष्ट्रकवि गुप्तजीने कहा है—

मरा वही नहीं है जो जिया न आपके लिये।
वही मनुष्य है कि जो मरे मनुष्य के लिये॥

उदार मनुष्य दान-पुण्य और परोपकारकी भावनासे प्रेरित हो, अनाथालय, धर्मशाला, चिकित्सालय, पौशाला आदि बनवाते हैं। इन सारी कृतियोंके पीछे लोककल्याण और सर्वमंगलकी कामना प्रबल होती है, किंतु संत कहते हैं कि ऐसी कृतियोंके पीछे यदि हमारा अहंकारका भाव खड़ा हो जाय तो यह धर्मार्थ कर्तव्य न होकर मिट्टीके मोल बिकनेवाली तुच्छ वस्तु हो जाती है।

लोभी, लालची लोग अल्पमात्रामें धन दानकर उसके बदलेमें करोड़ोंकी कामना करते हैं। यह तो प्रभुको ठगनेका कुत्सित प्रयास है। भ्रष्टाचरणसे धन अर्जितकर दो-चार प्रतिशत दानकर अपने पापाचारको धोनेका प्रयास निश्चय ही प्रभु और सर्जककी आँखोंमें धूल झोंकनेका प्रयास है। मानवसमाजको ऐसी दुष्कृतियोंसे बचना चाहिये। ऐसे लोग तो उसी प्रकारके दानी हैं, जो सूईका दानकर

स्वर्गसे आनेवाले विमानकी प्रतीक्षामें लग जाते हैं—

ऐरन की चोरी करै, करै सूई का दान।
कोठे पर चढ़कर देखे कितनी दूर विमान॥

दानीको उसका दान स्वयं गौरवान्वित कर देता है। दान यदि गुप्तदान हो, ऐसा कि दायें हाथसे दिया गया दान बायें हाथको न मालूम हो तो यह दान अति उत्तम और महादान कहा जाता है। रहीम कविने कहा है—

त्यों रहीम सुख होत हैं, उपकारी के अंग।
बाँटन वारै को लगै, ज्यों मेंहदी के रंग॥

किसी शरणागतकी प्राणरक्षा, अभयदान, क्षमादान—ये सभी उत्तम कोटिके दान माने गये हैं।

दानके मानदण्ड बनते और बिगड़ते रहे हैं। शास्त्रकारोंने दानकी तीन कोटियाँ बतायी हैं—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक।

त्यागपूर्ण, श्रद्धासहित, अहंकारशून्य, अनासक्त भावसे दिया गया दान सात्त्विक है। यश, फल, धन आदिकी कामनासे दिया गया दान राजसिक दान है। जिस दानमें महान् दानी बननेका भाव हो, हम सबसे बड़े दानी हैं—ऐसा अहंकार हो और कुत्सित भावसे दिया गया हो तथा भ्रष्टाचारसे अर्जित धन हो—ऐसा दान तामसिक दान है।

भारतीय सामाजिक जीवनका एक बीजमन्त्र यही रहा है कि दूसरेकी भलाई-जैसा कोई धर्म नहीं है और दूसरेको पीड़ा या दुःख देनेके समान कोई पाप नहीं है। इसी भावनाको चरितार्थ करते हुए हमारे शास्त्र-पुराणोंने दान-पुण्यपर अनेक आदर्श दानियोंके आख्यान लिखे हैं, जिनके नाम प्रातःस्मरणीय हैं—महाराजा शिबि, रन्तिदेव, महर्षि दधीचि, दानवीर कर्ण, राजा बलि, महाराज रघु आदि। इनके बलिदानोंकी कहानी हमें सदियोंतक प्रेरणा देती रहेगी।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

श्रद्धासूक्त

*[वेदोंमें श्रद्धाकी देवीरूपमें उपासना की गयी है। सत्कर्मानुष्ठानके साफल्य तथा ज्ञानोपलब्धिमें श्रद्धाको हेतुरूप कहा गया है—'**श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्**'। इसके विपरीत अश्रद्धासे किये गये सभी सत्कर्म निष्फल होते हैं—'**अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥**' दानधर्ममें श्रद्धाकी विशेष प्रतिष्ठा है, इसीलिये श्रुतिका आदेश है—'**श्रद्धया देयम्**' अर्थात् श्रद्धासे दे। ऋग्वेदमें श्रद्धाकी उपासना एवं महिमाका एक सूक्त निरूपित है, जिसमें 'हमारे हृदयमें श्रद्धाभाव उत्पन्न हो'—ऐसी प्रार्थना की गयी है, वह सूक्त यहाँ प्रस्तुत है—]*

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः। श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥ १॥
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः। प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि॥ २॥
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे। एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि॥ ३॥
श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते। श्रद्धां हृदय्य३ याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥ ४॥
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि। श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥ ५॥

श्रद्धासे ही अग्निहोत्रकी अग्नि प्रदीप्त होती है। श्रद्धासे ही हविकी आहुति यज्ञमें दी जाती है। धन-ऐश्वर्यमें सर्वोपरि श्रद्धाकी हम स्तुति करते हैं॥ १॥ हे श्रद्धे! दाताके लिये हितकर अभीष्ट फलको दो। हे श्रद्धे! दान देनेकी जो इच्छा करता है, उसका भी प्रिय करो। भोगैश्वर्य प्राप्त करनेके इच्छुकोंके भी प्रार्थित फलको प्रदान करो॥ २॥ जिस प्रकार देवोंने असुरोंको परास्त करनेके लिये यह निश्चय किया कि 'इन असुरोंको नष्ट करना ही चाहिये', उसी प्रकार हमारे श्रद्धालु ये जो याज्ञिक एवं भोगार्थी हैं, इनके लिये भी इच्छित भोगोंको प्रदान करो॥ ३॥ बलवान् वायुसे रक्षण प्राप्त करके देव और मनुष्य श्रद्धाकी उपासना करते हैं, वे अन्तःकरणमें संकल्पसे ही श्रद्धाकी उपासना करते हैं। श्रद्धासे धन प्राप्त होता है॥ ४॥ हम प्रातःकालमें श्रद्धाकी प्रार्थना करते हैं। मध्याह्नमें श्रद्धाकी उपासना करते हैं। सूर्यास्तके समयमें भी श्रद्धाकी उपासना करते हैं। हे श्रद्धादेवि! इस संसारमें हमें श्रद्धावान् बनाइये॥ ५॥ **[ऋग्वेद १०। १५१]**

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या
चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य
वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

'जिसकी लक्ष्मी (धन-सम्पदा) दानके लिये होती है, जिसकी विद्या पुण्यार्जनके लिये होती है, जिसका चिन्तन निरन्तर परब्रह्मतत्त्वके निश्चयमें लगा रहता है और जिसकी वाणी परोपकारमें लगी रहती है—ऐसा पुरुष सबके लिये वन्दनीय है और वह तीनों लोकोंका तिलकस्वरूप है।'

वस्तुतः यथार्थ बात यही है कि भगवान्‌की विशेष कृपासे हमें जो यह मानव-शरीर मिला है, जो परिस्थिति मिली है और जो साधन मिले हैं—वे सब इसीलिये कि हम प्राप्त वस्तु, परिस्थिति और समयका सदुपयोगकर अपने जीवनको सफल बना लें। कदाचित् हम ऐसा न करें तो समझना चाहिये कि महान् हानि सुनिश्चित है—**'महती विनष्टिः'** (केनोपनिषद् २।५)। सफल जीवन उसी व्यक्तिका है, जो निष्काम भावसे परार्थके लिये सर्वस्वका उत्सर्ग कर देता है, अपने लिये जीना—केवल स्वार्थको लेकर जीना तो निष्फल जीवन है। जिस मनुष्यकी लक्ष्मी (सम्पदा) दानवती है, उसीका जीवन सफल है—**'लक्ष्मीर्दानवती यस्य सफलं तस्य जीवितम्।'** बुद्धिमान्‌को उचित है कि वह दूसरेके उपकारके लिये धन और जीवनतकको अर्पण कर दे—क्योंकि इन दोनोंका नाश तो निश्चय ही है, इसलिये सत्कार्यमें इनका विनियोग करना अच्छा है—**'धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्। सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति॥'** दुःखी प्राणियों, दीनों-अनाथों, रोगार्तजनोंके दुःखको जो दूर करता है, लोकमें वह पुण्यात्मा है और उसे नारायणके अंशसे उत्पन्न हुआ समझना चाहिये—**'दुःखितानां हि भूतानां दुःखोद्धर्ता हि यो नरः। स एव सुकृती लोके ज्ञेयो नारायणांशजः॥'** इसीलिये शास्त्रमें दानकी अपार महिमा आयी है और दान-धर्मको अन्तःकरणकी पवित्रताका श्रेष्ठ एवं सुगम साधन बताया गया है। सच्चा दानी जहाँ रहता है, वह भूमि तीर्थस्वरूप हो जाती है। अतः दान प्रतिदिन देना चाहिये। दान दयामूलक भी होता है और श्रद्धामूलक भी। श्रद्धामूलक दानका अधिकारी सत्पात्र ब्राह्मण है और दयामूलक दानके अधिकारी सभी हैं। इसमें पात्रापात्रका विचार नहीं है। अतः जैसे भी बने; दान-धर्मका अवश्य पालन करना चाहिये। इस प्रकारका स्वल्प भी आचरण महान् विपत्तिसे त्राण दिलानेवाला है—**'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥'** (गीता २।४०)

सर्वोत्तम बात तो यही है कि सभी वस्तुएँ भगवान्‌की हैं और सभी प्राणी भगवत्स्वरूप हैं। भगवान्‌की वस्तु केवल भगवान्‌को सर्मर्पित कर देनी है—**'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'** भगवान्‌को सब कुछ समर्पितकर स्वयंको निश्चिन्त हो जाना है—**'न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'** (गीता ६।२५)। यही दान-धर्मका रहस्य है।

भारतीय सनातन संस्कृति सदासे ही त्यागप्रधान रही है, उत्सर्गप्रधान रही है। संग्रह नहीं, बल्कि विसर्ग ही भारतीयताका मूल है। इस त्यागमूलक दानसे भोगासक्ति शनैः-शनैः शिथिल होती जाती है और अनासक्तिकी दृढ़ता होते रहनेसे इन्द्रियोंकी अन्तर्मुखता सहज रूपसे प्रतिष्ठित होने लगती है। इन्द्रियोंके अन्तर्मुख होनेसे भोगोंमें विरसता एवं विराग तथा भगवान्‌के प्रति अनुराग जाग उठता है, फिर यही अनुरागात्मिका वृत्ति आत्मकल्याणका परम हेतु बन जाती है।

दानसे न केवल अपना ही कल्याण होता है, बल्कि अन्य जनोंमें भी सत्प्रवृत्तियोंका उदय और विस्तार होता है तथा सत्कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती है। दानसे परस्पर-सहयोग, सद्भाव, मैत्री, करुणा, सेवा, सौमनस्य, समता, धृति, पवित्रता, सौशील्यता, परोपकार तथा सौजन्य आदि सात्त्विक भावोंका विस्तार होता है। दानकी यह विशेषता है कि दानी व्यक्ति सभीका प्रिय बन जाता है। दानद्वारा सभीको अपने अनुकूल एवं मित्र बनाया जा सकता है। दानसे देवता भी वशीभूत हो जाते हैं—**'दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्॥'** (मत्स्यपु० २२४।२)

आज विश्वमें अर्थलिप्सा तथा अधिकारप्राप्तिके लिये जो संघर्ष चल रहा है और परस्पर द्वेष, घृणा तथा हिंसाकी जो प्रवृत्ति व्याप्त है, जिसके परिणामस्वरूप सर्वत्र अशान्ति छायी हुई है और भयकी स्थिति बनी हुई है, इन सबके मूलमें मानवकी संग्रहात्मक प्रवृत्ति ही प्रधान कारण है और यह भी निश्चित है कि इस संग्रह तथा भोगलिप्साके सर्वांश-निवारणमें एवं भगवत्प्रदत्त संसाधनोंमें सुख-सन्तोषका अनुभव करानेमें दान

देनेकी प्रवृत्ति परम उपयोगी सिद्ध हो सकती है। अत: अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुसार दानशील, दयावान्, परोपकारी और उदार बननेका प्रयत्न करना चाहिये। वर्तमान सन्दर्भोंमें विश्वशान्तिकी स्थापनामें दान परम उपयोगी बन सकता है।

इन्हीं सब दृष्टियोंसे इस वर्ष यह विचार आया कि सन् २०११ ई०के विशेषाङ्कके रूपमें '**दानमहिमा-अङ्क**' प्रकाशित किया जाय। भगवत्कृपासे यह अङ्क आप महानुभावोंकी सेवामें प्रस्तुत है।

इसमें मुख्यरूपसे दानकी महिमा, दानका प्रयोजन तथा उसकी अवश्यकरणीयतापर विशेषरूपसे प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया गया है। इसके साथ ही दानका स्वरूप, विविध प्रकारके दान तथा सत्साहित्यमें उपलब्ध दान-विवरणको भी देनेका प्रयास किया गया है। दानके आदर्श चरित तथा दान-सम्बन्धी प्रेरक आख्यानोंका भी यथास्थान विवरण दिया गया है, जो पाठकोंके लिये रुचिकर तथा प्रेरणादायी सामग्री होगी।

पिछले वर्ष कल्याणका विशेषाङ्क 'जीवनचर्याङ्क' प्रकाशित हुआ था, जिसे पाठक महानुभावोंने बहुत सराहा है और उसकी प्रशस्ति भी हमें निरन्तर प्राप्त हो रही है। '**दानमहिमा-अङ्क**' के प्रकाशनके लिये भी पाठकोंका आग्रह तथा उनके सुझाव आते रहे हैं। अत: इस वर्ष इसे प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है यह विशेषाङ्क सभीके लिये उपयोगी और संग्रहणीय होगा।

इस वर्ष 'दानमहिमा-अङ्क' के लिये लेखक महानुभावोंने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया, वह अत्यन्त सराहनीय तथा अनुपम रहा। भगवत्कृपासे इतने लेख और अन्य सामग्रियाँ प्राप्त हुईं कि उन सबको एक अङ्कमें समाहित करना सम्भव नहीं था, फिर भी विषयकी सर्वांगीणताको ध्यानमें रखते हुए अधिकतर सामग्रियोंका संयोजन करनेका विशेष प्रयत्न अवश्य किया गया है।

लेखक महानुभावोंके हम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने कृपापूर्वक अपना अमूल्य समय लगाकर दान-महिमा-सम्बन्धी सामग्री तैयारकर यहाँ प्रेषित की। हम उनकी सम्पूर्ण सामग्रीको विशेषाङ्कमें स्थान न दे सके, इसका हमें खेद है। यद्यपि इसमेंसे कुछ सामग्रीको आगेके साधारण अङ्कोंमें देनेका प्रयास अवश्य करेंगे, परंतु विशेष कारणोंसे कुछ लेख प्रकाशित न हो सकें तो विद्वान् लेखक हमारी विवशताको ध्यानमें रखकर हमें क्षमा करनेकी कृपा करेंगे।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्र-हृदय संत-महात्माओंके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हैं, जिन्होंने विशेषाङ्ककी पूर्णतामें किंचित् भी योगदान किया। सद्विचारोंके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं; क्योंकि उन्हींकी भावपूर्ण तथा उच्चविचारयुक्त भावनाओंसे '**कल्याण**' को सदा शक्तिस्रोत प्राप्त होता रहता है। हम अपने विभागके और प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहपूर्ण सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। त्रुटियों और व्यवहारदोषके लिये हम सबसे क्षमाप्रार्थी हैं।

'दानमहिमा-अङ्क' के सम्पादनमें जिन महानुभावोंसे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हम अपने मानसपटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। गोधनके सम्पादक तथा विशिष्ट पत्रकार श्रीशिवकुमारजी गोयलके प्रति हम आभारी हैं, जो निरन्तर अपने पूज्य पिता भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआके संग्रहालयसे अनेक दुर्लभ सामग्रियाँ उपलब्ध कराते रहे हैं। साथ ही कई विशिष्ट महानुभावोंसे भी सामग्री एकत्रकर भेजनेका प्रयास करते हैं।

इस विशेषाङ्कके सम्पादन-कार्यमें कल्याणके सह-सम्पादक श्रीप्रेमप्रकाश लक्कड़का सहयोग सहज रूपसे प्राप्त होता रहा। इसके सम्पादन, प्रूफशुद्धि, चित्रनिर्माण तथा मुद्रण आदिमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहायता मिली, वे सभी हमारे अपने हैं। उन्होंने कार्यकी सम्पन्नतामें महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

इस बार '**दानमहिमा-अङ्क**' के सम्पादनकार्यके क्रममें दान-धर्म, त्याग, दया और परोपकारसे सम्बन्धित प्रेरणात्मक सामग्रियोंके अवलोकन, चिन्तन, मनन और स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा। साथ ही यह भी अनुभव हुआ कि मनुष्यके ऐहलौकिक तथा पारलौकिक—सभी प्रकारके कल्याणके लिये जीवनमें दया, दान, त्याग और परोपकारका सर्वाधिक महत्त्व है। आशा है, पाठकगण भी विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे प्रेरणा प्राप्तकर लाभान्वित होंगे।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे पुनः क्षमा-प्रार्थना करते हुए दीनवत्सल अकारणकरुणावरुणालय विश्वात्मा परमात्मप्रभुसे यह प्रार्थना करते हैं कि वे हमें तथा जगत्के सम्पूर्ण जीवोंको सद्बुद्धि प्रदान करें, जिससे हम सब ऋषि-महर्षियोंद्वारा निर्दिष्ट कल्याणपथमें प्रवृत्त होकर जीवनके वास्तविक लक्ष्यको प्राप्त कर सकें।

—राधेश्याम खेमका
(सम्पादक)

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर-प्रकाशन

कोड — मूल्य रु०

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-तत्त्व-विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका) २५१५ प्रश्न और उत्तर-रूपमें विवेचनात्मक हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द

- ■ 1 बृहदाकार १६०
- ■ 2 ,, ग्रन्थाकार विशिष्ट संस्करण ९० [बँगला, तमिल, ओड़िआ, कन्नड, अंग्रेजी, तेलुगु, गुजराती, मराठीमें भी]
- ■ 3 ,, साधारण संस्करण ६५

गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी) गीताके मर्मको समझनेहेतु व्याख्यात्मक शैली एवं सरल, सुबोध भाषामें हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द

- ■ 5 बृहदाकार, परिशिष्टसहित ३००
- ■ 6 ,, ग्रन्थाकार, परिशिष्टसहित १४० [मराठी, तमिल (दो खण्डोंमें), गुजराती, अंग्रेजी (दो खण्डोंमें), कन्नड (दो खण्डोंमें), बँगला, ओड़िआमें भी]
- ■ 8 **गीता-दर्पण**—(स्वामी श्रीरामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश, गीता-व्याकरण और छन्द-सम्बन्धी गूढ़ विवेचन सचित्र, सजिल्द [मराठी, बँगला, गुजराती, ओड़िआमें भी]
- ■ 1562 **गीता-प्रबोधनी**—पुस्तकाकार ३५ (बंगला, ओड़िआ, पंजाबीमें भी)
- ■ 1590 ,, पॉकेट, वि०सं० २५
- ■ 1796 **श्रीज्ञानेश्वरी**-हिन्दी भावानुवाद ७०
- ■ 784 **ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ-दीपिका** (मराठी) १५०
- ■ 748 ,, मूल, गुटका (मराठी) ३५
- ■ 859 ,, मूल, मझला (मराठी) ५०
- ■ 10 **गीता-शांकर-भाष्य** ८५
- ■ 581 **गीता-रामानुज-भाष्य** ५०
- ■ 11 **गीता-चिन्तन**—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता-विषयक लेखों, विचारों, पत्रों आदिका संग्रह) ४०
- ■ 17 **गीता**—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका, टिप्पणी प्रधान लेखसहित, सचित्र, सजिल्द [गुजराती, बँगला, मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिलमें भी] ३०
- ■ 16 **गीता**—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें (मराठीमें भी) ३५
- ■ 1555 **गीता-माहात्म्य (वि०सं०)** ४०
- ■ 19 **गीता**—केवल भाषा (तेलुगु, उर्दू, तमिलमें भी) १०
- ■ 18 **गीता**-भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप [ओड़िआ, गुजराती, मराठीमें भी] १५
- ■ 502 **गीता**- ,, ,, (सजि०) ३० [तेलुगु, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तमिलमें भी]
- ■ 20 ,, -भाषा-टीका, पॉकेट साइज ७ [अंग्रेजी, मराठी, बँगला, असमिया, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तेलुगुमें भी]
- ■ 1566 **गीता**—भाषा-टीका, पॉकेट साइज, सजिल्द १२ [गुजराती, बँगला, अंग्रेजी भी]
- ■ 21 **श्रीपञ्चरत्नगीता**—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) [ओड़िआमें भी] १७
- ■ 1628 ,, **(नित्यस्तुति एवं गजल-गीतासहित)** पॉकेट साइज ७
- ■ 22 **गीता**—मूल, मोटे अक्षरों वाली [तेलुगु, गुजरातीमें भी] ८
- ■ 23 **गीता**—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित ४ [कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम, ओड़िआमें भी]
- ■ 1556 **गीता—श्लोकार्थसहित**—लघु आकार ६
- ■ 1602 **गीता**—सजिल्द (वि०सं०)—लघु आकार १०
- ■ 700 **गीता**—मूल, लघु आकार (ओड़िआ, बँगला, तेलुगुमें भी) २
- ■ 1392 **गीता ताबीजी**—(सजिल्द) (गुजराती, बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) ४
- ■ 566 **गीता**—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ) .२५
- ▲ 388 **गीता-माधुर्य**-सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी) १९ [तमिल, मराठी, गुजराती, उर्दू, तेलुगु, बँगला, असमिया, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, संस्कृतमें भी]
- ▲ 679 **गीतामाधुर्य** (केवल मूल) ६
- ■ 1242 **पाण्डवगीता एवं हंसगीता** ३
- ■ 1431 **गीता-दैनन्दिनी** (२०११) पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) ५५
- ■ 503 **गीता-दैनन्दिनी** (२०११) रोमन, पुस्तकाकार, प्लास्टिक जिल्द ४०
- ■ 1769 **गीता-दैनन्दिनी** (२०११) लघु १५
- ■ 506 **गीता-दैनन्दिनी** (२०११) पॉकेट साइज, (वि० संस्करण) २५
- ▲ 464 **गीता-ज्ञान-प्रवेशिका** १५

रामायण

- ■ 1389 **श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (विशिष्ट संस्करण) ४५०
- ■ 80 ,, बृहदाकार ३५०
- ■ 1095 ,, ग्रन्थाकार (वि०सं०) (गुजरातीमें भी) २४०
- ■ 81 ,, ग्रन्थाकार सचित्र, सटीक, मोटा टाइप, १७० [ओड़िआ, बँगला, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी, नेपालीमें भी]
- ■ 1402 ,, सटीक, ग्रंथाकार (सामान्य) १३५
- ■ 1563 **श्रीरामचरितमानस**—मझला, सटीक विशिष्ट सं० ८५
- ■ 82 ,, मझला साइज, सटीक ८० सजिल्द [गुजराती, अंग्रेजी भी]
- ■ 1318 ,, रोमन एवं अंग्रेजी अनुवादसहित २००
- ■ 456 ,, अंग्रेजी अनुवादसहित १४०
- ■ 786 ,, मझला ,, ,, ७०
- ■ 1436 ,, मूलपाठ बृहदाकार २००
- ■ 83 ,, मूलपाठ, ग्रंथाकार ८० [गुजराती, ओड़िआ भी]
- ■ 84 ,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी] ५०
- ■ 85 ,, मूल, गुटका [,,] ३५
- ■ 1544 ,, मूल गुटका (वि०सं०) ४०
- ■ 790 ,, केवल भाषा ८०

[श्रीरामचरितमानस—अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

- ■ 94 **श्रीरामचरितमानस**-बालकाण्ड २०
- ■ 95 ,, अयोध्याकाण्ड १८
- ■ 98 ,, सुन्दरकाण्ड [कन्नड, तेलुगु, बँगला भी] ६
- ■ 1349 ,, सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें) (श्रीहनुमानचालीसासहित) [गुजरातीमें भी] २०
- ■ 101 ,, लंकाकाण्ड १०
- ■ 102 ,, उत्तरकाण्ड १०
- ■ 141 ,, अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड १०
- ■ 830 ,, **सुन्दरकाण्ड**-मूल, ग्रन्थाकार, मोटा (रंगीन) १२
- ■ 1583 ,, **सुन्दरकाण्ड**, (मूल) मोटा (आड़ी) रंगीन ६
- ■ 99 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, गुटका [गुजराती भी] ३
- ■ 100 **श्रीरामचरितमानस**-सुन्दरकाण्ड मूल, मोटा टाइप ६ [गुजराती, ओड़िआ भी]
- ■ 1378 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल-मोटा टाइप (लाल रंगमें) ७
- ■ 858 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, लघु आकार [गुजराती भी] ३
- ■ 1710 ,, किष्किन्धाकाण्ड २

- ■ 1376 **मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका**—(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार-प० प० प्रज्ञानानन्द सरस्वती (सातों खण्ड) ७६०
  (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

- ■ 86 **मानसपीयूष**-(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड) १४००
  (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

- ■ 1291 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-कथा-सुधा-सागर**
- ■ 75, 76 **श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण**—सटीक, दो खण्डोंमें सेट [तेलुगु भी] ३००
- ■ 77 **रामायण**—केवल भाषा १६०
- ■ 583 ,, (मूलमात्रम्) १००
- ■ 78 ,, सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम् [तमिल भी] १८
- ■ 1549 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण** सुन्दरकाण्ड-सटीक [तमिल भी] ६०
- ■ 452, 453 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण** (अंग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट) ३००
- ■ 1002 **सं० वाल्मीकीय-रामायणाङ्क**
- ■ 74 **अध्यात्मरामायण**—सटीक [तमिल, तेलुगु, कन्नड, मराठी भी] ८०
- ■ 223 **मूल रामायण** [गुजराती, मराठी भी] २
- ▲ 1654 **लवकुश-चरित्र** २०
- ▲ 401 **मानसमें नाम-वन्दना** ८
- ■ 103 **मानस-रहस्य** ४०
- ■ 104 **मानस-शंका-समाधान** १४

अन्य तुलसीकृत साहित्य

- ■ 105 **विनयपत्रिका**—सरल भावार्थसहित ३०
- ■ 1701 **विनयपत्रिका**, सजिल्द ४०
- ■ 106 **गीतावली**— ,, २५
- ■ 107 **दोहावली**—भावार्थसहित १४
- ■ 108 **कवितावली**— ,, १२

☞ **भारतमें डाक खर्च, पैकिंग तथा फारवर्डिंगकी देय राशि:—२ रुपया-प्रत्येक १० रु० या उसके अंशके मूल्यकी पुस्तकोंपर।**
—रजिस्ट्री / वी० पी० पी० के लिये २० रु० प्रति पैकेट अतिरिक्त। [पैकेटका अधिकतम वजन ५ किलो (अनुमानित पुस्तक मूल्य रु० २५०)]

☞ **रंगीन चित्रोंपर २० रु० प्रति पैकेट स्पेशल पैकिंग चार्ज अतिरिक्त।**

☞ **रु० ५००/-से अधिकको पुस्तकोंपर ५% पैकिंग, हैण्डलिंग तथा वास्तविक डाकव्यय देय होगा।**

☞ **पुस्तकोंके मूल्य एवं डाकदरमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य / डाकदर देय होगा।**

☞ **पुस्तक-विक्रेताओंके नियमोंकी पुस्तिका अलग है। विदेशोंमें निर्यातके अलग नियम हैं।**

☞ **रु० २००० से अधिककी पुस्तकें एक साथ लेनेपर १५% छूट (▲चिह्नवाली पुस्तकोंपर ३०%) छूट देय। (पैकिंग, रेल भाड़ा आदि अतिरिक्त)।**

नोट—अन्य भारतीय भाषाओंकी पुस्तकोंका मूल्य एवं कोड पृष्ठ-५०१ से ५०४ पर देखें।

सम्पर्क करें—व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

कोड		मूल्य रु०
■ 109	रामाज्ञाप्रश्न—भावार्थसहित	१०
■ 110	श्रीकृष्णगीतावली ,,	५
■ 111	जानकीमंगल— ,,	५
■ 112	हनुमानबाहुक— ,,	३
■ 113	पार्वतीमंगल— ,,	३
■ 114	वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण	३

सूर-साहित्य

कोड		मूल्य रु०
■ 555	श्रीकृष्णमाधुरी	२४
■ 61	सूर-विनय-पत्रिका	२२
■ 62	श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी	२४
■ 735	सूर-रामचरितावली	१८
■ 547	विरह-पदावली	२०
■ 864	अनुराग-पदावली—	२५

पुराण, उपनिषद् आदि

कोड		मूल्य रु०
■ 28	श्रीमद्भागवत-सुधासागर [गुजराती भी]	१७०
■1490	,, (विशिष्ट संस्करण) (अंग्रेजी भी)	२३०
■ 25	श्रीशुकसुधासागर—बृहदाकार, बड़े टाइपमें	४००
■1190, 1191	श्रीशुकसुधासागर, बड़े टाइपमें ग्रन्थाकार, दो खण्डोंमें सेट	
■1535, 1536	श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट, (विशिष्ट संस्करण)	४००
■ 26, 27	श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट (गुजराती, मराठी, बंगला भी)	३००
■ 564, 565	श्रीमद्भागवतमहापुराण—अंग्रेजी सेट	
■ 29	,,मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी)	१२५
■ 124	,, मूल मझला	७५
■1855	,, मूल गुटका-वि०सं०	८५
■ 571	श्रीकृष्णलीलाचिन्तन	
■ 30	श्रीप्रेम-सुधासागर	७०
■ 31	भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र, सजिल्द [तमिल भी]	२५
■ 728	महाभारत—हिन्दी टीकासहित, सजिल्द, सचित्र [छः खण्डोंमें] सेट	१५६०
	(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)	
■ 38	महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक	२३०
■1589	,, केवल हिन्दी	२००
■ 39, 511	संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें) [बँगला भी]	३२०
■ 44	संक्षिप्त पद्मपुराण—सचित्र, सजिल्द	१७०
■1468	सं० शिवपुराण (वि० सं०)	१९०
■ 789	सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती भी]	१५०
■1133	सं० देवीभागवत [,,]	१७०
■1770	श्रीमद्देवीभागवत-मूल	१२०
■ 48	श्रीविष्णुपुराण—सटीक, सचित्र	१००
■1364	श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी)	७०
■1183	सं० नारदपुराण	१४०
■ 279	सं० स्कन्दपुराणाङ्क	२३०
■ 539	सं० मार्कण्डेयपुराण	६०
■1111	सं० ब्रह्मपुराण	८५
■1113	नरसिंहपुराणम् —सटीक	७०
■1189	सं० गरुडपुराण	१२०
■1362	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)	१३०
■1361	सं० श्रीवराहपुराण	७५
■ 584	सं० भविष्यपुराण	१२०
■1131	कूर्मपुराण—सटीक	८०
■ 631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१५०
■1432	वामनपुराण—सटीक	९०
■1897	देवीभागवतमहापुराण—सटीक, प्रथम खण्ड	१५०
■1898	देवीभागवतमहापुराण—सटीक, द्वितीय खण्ड	१५०
■ 557	मत्स्यमहापुराण—,,	१८५
■1610	देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क	९०
■ 517	गर्गसंहिता	११०
■ 47	पातञ्जलयोग-प्रदीप	१३०
■ 135	पातञ्जलयोगदर्शन—[बँगला भी]	१३
■ 582	छान्दोग्योपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य	८५
■ 577	बृहदारण्यकोपनिषद्—(,,)	१२०
■1421	ईशादि नौ उपनिषद्- (,,) एक ही जिल्दमें	१००
■ 66	ईशादि नौ उपनिषद्—अन्वय-हिन्दी व्याख्या [बँगला भी]	५०
■ 67	ईशावास्योपनिषद्-सानुवाद, शांकरभाष्य [तेलुगु, कन्नड भी]	५
■ 68	केनोपनिषद्— सानुवाद, शांकरभाष्य	१३
■ 578	कठोपनिषद्— ,,	१५
■ 69	माण्डूक्योपनिषद्—,,	२२
■ 513	मुण्डकोपनिषद्— ,,	९
■ 70	प्रश्नोपनिषद्— ,,	१०
■ 71	तैत्तिरीयोपनिषद्— ,,	२०
■ 72	ऐतरेयोपनिषद्— ,,	८
■ 73	श्वेताश्वतरोपनिषद्-,,	२०
■ 65	वेदान्त-दर्शन—हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द	४५
■ 639	श्रीनारायणीयम्—सानुवाद [तेलुगु, तमिल भी]	

भक्त-चरित्र

कोड		मूल्य रु०
■ 40	भक्त चरिताङ्क—सचित्र, सजिल्द	१६०
■1771	जैमिनीकृतमहाभारतमें भक्तोंकी गाथा-सजिल्द	५०
■ 51	श्रीतुकाराम-चरित—जीवनी और उपदेश	३५
■ 121	एकनाथ-चरित्र	१७
■ 53	भागवतरत्न प्रह्लाद	१८
■ 123	चैतन्य-चरितावली-सम्पूर्ण एक साथ	१२०
■ 751	देवर्षि नारद	१५
■ 168	भक्त नरसिंह मेहता [मराठी, गुजराती भी]	१३
■ 169	भक्त बालक-गोविन्द, मोहन आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड, मराठी भी]	६
■ 170	भक्त नारी—मीरा, शबरी आदिकी गाथा	५
■ 171	भक्त पञ्चरत्न—रघुनाथ, दामोदर आदिकी (तेलुगु भी)	८
■ 172	आदर्श भक्त—शिवि, रन्तिदेव आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]	८
■ 175	भक्त-कुसुम—जगन्नाथ आदि छः भक्तगाथा	६
■ 173	भक्त सप्तरत्न-दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड भी]	६
■ 174	भक्त चन्द्रिका—सखू, विट्ठल आदि छः भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड, तेलुगु, मराठी, ओड़िआ भी]	६
■ 176	प्रेमी भक्त-बिल्वमंगल, जयदेव आदि [गुजराती भी]	८
■ 177	प्राचीन भक्त—मार्कण्डेय, उत्तंक आदि	१२
■ 178	भक्त सरोज—गंगाधरदास, श्रीधर आदि (गुजराती भी)	८
■ 179	भक्त सुमन—नामदेव, राँका-बाँका आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	८
■ 180	भक्त सौरभ—व्यासदास, प्रयागदास आदि	८
■ 181	भक्त सुधाकर—रामचन्द्र, लाखा आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	८
■ 182	भक्त महिलारत्न—रानी रत्नावती, हरदेवी आदि [गुजराती भी]	८
■ 183	भक्त दिवाकर—सुव्रत, वैश्वानरआदिकी भक्तगाथा	८
■ 184	भक्त रत्नाकर—माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	८
■ 185	भक्तराज हनुमान्—हनुमान्‌जीका जीवनचरित्र [मराठी, ओड़िआ, तमिल, तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]	६
■ 186	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र [ओड़िआ भी]	५
■ 187	प्रेमी भक्त उद्धव [तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ भी]	५
■ 188	महात्मा विदुर [गुजराती, तमिल, ओड़िआ भी]	४
■ 136	विदुरनीति	१२
■ 138	भीष्मपितामह [तेलुगु भी]	१५
■ 189	भक्तराज ध्रुव [तेलुगु भी]	४

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड		मूल्य रु०
■683	तत्त्वचिन्तामणि—(सभी खण्ड एक साथ) [गुजराती भी]	९०
■814	साधन-कल्पतरु (१३ महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)	७०
▲1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?	८
▲1631	भगवान् कैसे मिलें ?	८
▲1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य	६
▲1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	८
▲1747	भगवत्प्राप्ति कैसे हो ?	८
▲1666	कल्याण कैसे हो ?	१०
▲ 527	प्रेमयोगका तत्त्व—[अंग्रेजी भी]	१५
▲ 242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा—[तेलुगु भी]	१८
▲ 528	ज्ञानयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी]	१५
▲ 266	कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-१) (गुजराती भी)	१०
▲ 267	कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-२)	१०
▲ 303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय [तमिल, गुजराती भी]	१२
▲ 298	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य [तमिल, गुजराती, मराठी भी]	१०
▲ 243	परम साधन—भाग-१	१०
▲ 244	,, ,, —भाग-२	८
▲ 245	आत्मोद्धारके साधन (भाग-१)	१२
▲ 335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति—(आत्मोद्धारके साधन भाग-२) [गुजराती भी]	१०
▲ 579	अमूल्य समयका सदुपयोग [तेलुगु, गुजराती, मराठी, कन्नड, ओड़िआ भी]	९
▲ 246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)	१०
▲ 247	,, ,, (भाग-२)	१०
▲ 611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति [गुजराती भी]	८
▲ 588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति [,,]	१२
▲1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता [गुजराती भी]	९
▲1296	कर्णवासका सत्संग [तमिल भी]	७
▲ 248	कल्याणप्राप्तिके उपाय-(त०चि०म०भा०१)[बँगला भी]	१५
▲ 249	शीघ्र कल्याणके सोपान-भाग-२, खण्ड-१ [गुजराती भी]	१४
▲ 250	ईश्वर और संसार—भाग-२, (खण्ड-२)	१६
▲1900	निष्कामभावसे भगवत्प्राप्ति	८
▲ 519	अमूल्य शिक्षा—भाग-३, (खण्ड-१)	९
▲ 253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि—भाग-३, (खण्ड-२)	१२
▲ 251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि-भाग-४, (खण्ड-१)	१२
▲ 252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा-भाग-४ (खण्ड-२)	१२
▲ 254	व्यवहारमें परमार्थकी कला—त० चि० भाग-५,(खण्ड-१) [गुजराती भी]	१२
▲ 255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम-गुजराती, भाग-५, (खण्ड-२) [गुजराती भी]	१०
▲ 258	तत्त्वचिन्तामणि—भाग-६, (खण्ड-१)	१०
▲ 257	परमानन्दकी खेती—भाग-६, (खण्ड-२)	१०
▲ 260	समता अमृत और विषमता विष-भाग-७, (खण्ड-१)	१२
▲ 259	भक्ति-भक्त-भगवान्-भाग-७, (खण्ड-२)	१२
▲ 256	आत्मोद्धारके सरल उपाय	१२
▲261	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान [मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	४
▲ 262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तमिल, मराठी भी]	७
▲ 263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, तमिल, मराठी भी]	७
▲ 264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—१	१०
▲ 265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—२	७
▲ 268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१(गुजराती भी)	१०
▲ 269	परमशान्तिका मार्ग-(भाग-२)	१०
▲1792	शान्तिका उपाय	१०
▲ 543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह [ओड़िआ भी]	१०
▲1530	आनन्द कैसे मिले ?	६
▲1837	अनन्यभक्ति कैसे प्राप्त हो ?	६
▲ 769	साधन नवनीत [गुजराती, ओड़िआ, कन्नड भी]	१०
▲ 599	हमारा आश्चर्य	१०
▲ 681	रहस्यमय प्रवचन	१०
▲1021	आध्यात्मिक प्रवचन [गुजराती भी]	८
▲1324	अमृत वचन [बँगला भी]	९
▲1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय	८
▲1433	साधना पथ	१०
▲1483	भगवत्पथ-दर्शन	६
▲1493	नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें	८
▲1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय	६
▲1529	सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो ?	८
▲1561	दुःखोंका नाश कैसे हो ?	८
▲1587	जीवन-सुधारकी बातें	१०
▲1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम [ओड़िआ भी]	१०
▲ 292	नवधा भक्ति [तेलुगु, मराठी, कन्नड भी]	६

कोड		मूल्य रु०
▲ 274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी	८
▲ 273	नल-दमयन्ती [मराठी, तमिल, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी]	३
▲ 277	उद्धार कैसे हो?— ५१ पत्रोंका संग्रह [गुजराती, ओड़िआ, मराठी भी]	६
▲1871	आवागमनसे मुक्ति	८
▲1856	महात्माओंकी अहैतुकी दया	७
▲1860	भगवत्प्राप्तिकी युक्तियाँ	७
▲1874	महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी बातें	८
▲1790	जन्म-मरणसे छुटकारा	७
▲ 278	सच्ची सलाह— ८० पत्रोंका संग्रह	८
▲ 280	साधनोपयोगी पत्र	८
▲ 281	शिक्षाप्रद पत्र	१०
▲ 282	पारमार्थिक पत्र	१०
▲ 284	अध्यात्मविषयक पत्र	७
▲ 283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ [अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, मराठी, तेलुगु, ओड़िआ भी]	६
▲1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें	१०
▲ 680	उपदेशप्रद कहानियाँ [अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु भी]	१०
▲ 891	प्रेममें विलक्षण एकता [मराठी, गुजराती भी]	१०
▲ 958	मेरा अनुभव [गुजराती, मराठी भी]	१०
▲1283	सत्संगकी मार्मिक बातें [गुजराती भी]	८
▲1150	साधनकी आवश्यकता [मराठी भी]	८
▲1908	प्रतिकूलतामें प्रसन्नता	८
▲ 320	वास्तविक त्याग	६
▲1791	त्यागकी महिमा	७
▲ 285	आदर्श भ्रातृप्रेम [ओड़िआ भी]	६
▲ 286	बालशिक्षा [तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ, गुजराती भी]	४
▲ 287	बालकोंके कर्तव्य [ओड़िआ भी]	५
▲ 272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा [कन्नड, गुजराती भी]	८
▲ 290	आदर्श नारी सुशीला [बँगला, तेलुगु, तमिल, ओड़िआ, गुजराती, मराठी भी]	३
▲ 291	आदर्श देवियाँ [ओड़िआ भी]	४
▲ 300	नारीधर्म	३
▲ 293	सच्चा सुख और....... [गुजराती भी]	२
▲ 294	संत-महिमा [गुजराती, ओड़िआ भी]	२
▲ 295	सत्संगकी कुछ सार बातें [बँगला, तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]	२
▲ 301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म	२
▲ 310	सावित्री और सत्यवान् [गुजराती, तमिल, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, मराठी भी]	३
▲ 623	धर्मके नामपर पाप (गुजराती भी)	२
▲ 299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप [तेलुगु व अंग्रेजी भी]	३
▲ 304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित [गुजराती, असमिया, तमिल, मराठी भी]	२
▲ 297	गीतोक्त सन्यास तथा निष्काम कर्मयोगका स्वरूप	२
▲ 309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय [ओड़िआ भी]	३
▲ 271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?	२

कोड		मूल्य रु०
▲ 311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य [ओड़िआ भी]	२
▲ 306	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं? [गुजराती, ओड़िआ व अंग्रेजी भी]	२
▲ 307	भगवान्की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण) [ओड़िआ, कन्नड, गुजराती भी]	२
▲ 316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये और सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य [गुजराती, मराठी भी]	२
▲ 315	चेतावनी और सामयिक चेतावनी [गुजराती भी]	२
▲ 318	ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त [गुजराती, तेलुगु भी]	२
▲ 270	भगवान्का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते हैं? (तेलुगु भी)	२
▲ 302	ध्यान और मानसिक पूजा [गुजराती भी]	२
▲ 326	प्रेमका सच्चा स्वरूप और शोकनाशके उपाय [ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]	२

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड		मूल्य रु०
■ 820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार) सभी खण्ड एक साथ	७०
■ 050	पदरत्नाकर	५०
■ 049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	६०
▲ 058	अमृत-कण	२२
▲ 332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	२२
▲ 333	सुख-शान्तिका मार्ग	२०
▲ 343	मधुर	१६
▲ 056	मानव-जीवनका लक्ष्य	१२
▲ 331	सुखी बननेके उपाय	१४
▲ 334	व्यवहार और परमार्थ	१५
▲ 514	दुःखमें भगवत्कृपा	१२
▲ 386	सत्संग-सुधा	१०
▲ 342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल [तमिल भी, तीन भागमें]	१६
▲ 347	तुलसीदल	१४
▲ 339	सत्संगके बिखरे मोती	१२
▲ 349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति	१८
▲ 350	साधकोंका सहारा—	१६
▲ 351	भगवच्चर्चा—(भाग-५)	१६
▲ 352	पूर्ण समर्पण	१७
▲ 353	लोक-परलोक-सुधार (भाग-१)	१०
▲ 354	आनन्दका स्वरूप	१०
▲ 355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर	१७
▲ 356	शान्ति कैसे मिले?	१५
▲ 357	दुःख क्यों होते हैं?	१६
▲ 348	नैवेद्य	१२
▲ 337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श [गुजराती, तेलुगु भी]	८
▲ 336	नारीशिक्षा [गुजराती, कन्नड भी]	८
▲ 340	श्रीरामचिन्तन	१२
▲ 338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन	१२
▲ 345	भवरोगकी रामबाण दवा [ओड़िआ भी]	७
▲ 341	प्रेमदर्शन [तेलुगु, मराठी भी]	१०
▲ 358	कल्याण-कुंज— (क० कुं० भाग-१)	६
▲ 359	भगवान्की पूजाके पुष्प— (क० कुं० भाग-२)	८
▲ 360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (क० कुं० भाग-३)	८
▲ 361	मानव-कल्याणके साधन (क० कुं० भाग-४)	१२
▲ 346	सुखी बनो	८
▲ 362	दिव्य सुखकी सरिता— (क० कुं० भाग-५) [गुजराती भी]	६
▲ 363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ- (क० कुं० भाग-६)	६
▲ 364	परमार्थकी मन्दाकिनी— (क० कुं० भाग-७)	६
▲ 366	मानव-धर्म—	५
▲ 526	महाभाव-कल्लोलिनी	५
▲ 367	दैनिक कल्याण-सूत्र	५
▲ 369	गोपीप्रेम [अंग्रेजी भी]	३
▲ 370	श्रीभगवन्नाम [ओड़िआ भी]	३
▲ 368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष [ओड़िआ भी]	५
▲ 373	कल्याणकारी आचरण	६
▲ 374	साधन-पथ—सचित्र [गुजराती, तमिल भी]	४
▲ 375	वर्तमान शिक्षा	३
▲ 376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	३
▲ 377	मनको वश करनेके कुछ उपाय [गुजराती भी]	१
▲ 378	आनन्दकी लहरें [बँगला, ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]	२
▲ 380	ब्रह्मचर्य [ओड़िआ भी]	
▲ 381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य	१
▲ 382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	२
▲ 344	उपनिषदोंके चौदह रत्न	६
▲ 371	राधा-माधव-रससुधा- (षोडशगीत) सटीक	४
▲ 384	विवाहमें दहेज—	१
▲ 809	दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय और जीवन कैसे बनें?	१

परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

कोड		मूल्य रु०
■ 465	साधन-सुधा-सिन्धु [ओड़िआ, गुजराती भी] (४३ पुस्तकें एक ही जिल्दमें)	११०
▲1675	सागरके मोती	१२
▲1598	सत्संगके फूल	१०
▲1733	संत-समागम	७
▲1633	एक संतकी वसीयत [बँगला भी]	२
▲ 400	कल्याण-पथ	८
▲ 401	मानसमें नाम-वन्दना	८
▲ 605	जित देखूँ तित-तू [गुजराती, मराठी भी]	१०
▲ 406	भगवत्प्राप्ति सहज है [अंग्रेजी भी]	७
▲ 535	सुन्दर समाजका निर्माण	१०
▲1485	ज्ञानके दीप जले	१४
▲1447	मानवमात्रके कल्याणके लिये (मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती, अंग्रेजी, नेपाली भी)	१४
▲1175	प्रश्नोत्तर मणिमाला [बँगला, ओड़िआ, गुजराती भी]	१०
▲1247	मेरे तो गिरधर गोपाल	६
▲ 403	जीवनका कर्तव्य [गुजराती भी]	८
▲ 436	कल्याणकारी प्रवचन [गुजराती, अंग्रेजी, बँगला, ओड़िआ भी]	८
▲1093	आदर्श कहानियाँ [ओड़िआ, बँगला भी]	८
▲ 407	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता [कन्नड, मराठी भी]	६
▲ 408	भगवान्से अपनापन [गुजराती, ओड़िआ भी]	६
▲ 861	सत्संग-मुक्ताहार [गुजराती, ओड़िआ भी]	५
▲ 860	मुक्तिमें सबका अधिकार [गुजराती भी]	१
▲ 405	नित्ययोगकी प्राप्ति [ओड़िआ भी]	८
▲ 409	वास्तविक सुख [तमिल, ओड़िआ भी]	७
▲1308	प्रेरक कहानियाँ [बँगला, ओड़िआ भी]	७
▲1408	सब साधनोंका सार [बँगला भी]	५
▲ 411	साधन और साध्य [मराठी, बँगला, गुजराती भी]	६
▲ 412	तात्त्विक प्रवचन [मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती भी]	५
▲ 410	जीवनोपयोगी प्रवचन [अंग्रेजी भी]	८
▲ 414	तत्त्वज्ञान कैसे हो? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार [बँगला, गुजराती भी]	७
▲ 822	अमृत-बिन्दु [बँगला, तमिल, ओड़िआ, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, कन्नड भी]	८
▲ 821	किसान और गाय [तेलुगु भी]	२
▲ 417	भगवन्नाम [मराठी, अंग्रेजी भी]	४
▲ 416	जीवनका सत्य [गुजराती, अंग्रेजी भी]	५
▲ 418	साधकोंके प्रति [बँगला, मराठी भी]	५
▲ 419	सत्संगकी विलक्षणता [गुजराती भी]	४
▲ 545	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग [गुजराती भी]	४
▲ 420	मातृशक्तिका घोर अपमान [तमिल, बँगला, मराठी, गुजराती, ओड़िआ भी]	३
▲ 421	जिन खोजा तिन पाइयाँ [बँगला भी]	५
▲ 422	कर्मरहस्य [बँगला, तमिल, कन्नड, ओड़िआ भी]	५
▲ 424	वासुदेवः सर्वम् [मराठी, अंग्रेजी भी]	४
▲ 425	अच्छे बनो [अंग्रेजी भी]	५
▲ 426	सत्संगका प्रसाद [गुजराती भी]	५
▲1019	सत्यकी खोज [गुजराती, अंग्रेजी भी]	६
▲1479	साधनके दो प्रधान सूत्र [ओड़िआ, बँगला भी]	४
▲1035	सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण	१
▲1360	तू-ही-तू	२
▲1434	एक नयी बात	२
▲1440	परम पितासे प्रार्थना	१
▲1441	संसारका असर कैसे छूटे?	२
▲1176	शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और.. [बँगला भी]	२
▲ 431	स्वाधीन कैसे बनें? [अंग्रेजी भी]	२
▲ 702	यह विकास है या....	
▲ 589	भगवान् और उनकी भक्ति [गुजराती, ओड़िआ भी]	६
▲ 617	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम [तमिल, बँगला, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, गुजराती, मराठी भी]	४
▲ 770	अमरताकी ओर [गुजराती भी]	६
▲ 434	शरणागति [तमिल, ओड़िआ, तेलुगु, कन्नड भी]	४
▲ 432	एकै साधे सब सधै [गुजराती, तमिल, तेलुगु भी]	५
▲ 427	गृहस्थमें कैसे रहें? [बँगला, मराठी, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु, गुजराती, असमिया, पंजाबी भी]	८
▲ 433	सहज साधना [गुजराती, बँगला, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]	४

कोड मूल्य रु०

▲ 435 आवश्यक शिक्षा (सन्तानका कर्तव्य एवं आहारशुद्धि) [गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी, मराठी भी] ६
■1012 पञ्चामृत—(१०० पन्नोंका पैकेटमें) [गुजराती भी] १
■1037 हे मेरे नाथ मैं आपको भूलूँ नहीं (१०० पन्नोंका पैकेटमें) १
■1611 मैं भगवान्‌का अंश हूँ (,,) १
■1612 सच्ची और पक्की बात (,,) १
▲1072 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ? ४ [गुजराती, ओड़िआ भी]
▲ 515 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन १ [गुजराती, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु भी]
▲ 438 दुर्गतिसे बचो [गुजराती, बँगला २ (गुरुतत्त्वसहित), मराठी भी]
▲ 439 महापापसे बचो [बँगला, २ तेलुगु, कन्नड, गुजराती, तमिल भी]
▲ 440 सच्चा गुरु कौन ? [ओड़िआ भी] २
▲ 444 नित्य-स्तुति और प्रार्थना २ [कन्नड़, तेलुगु भी]
▲ 729 सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण [गुजराती भी] २
▲ 447 मूर्तिपूजा-नाम-जपकी २ महिमा [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी]
▲ 445 हम ईश्वरको क्यों मानें ? [बँगला भी] २
▲ 745 भगवत्तत्त्व [गुजराती भी] २
▲ 632 सब जग ईश्वररूप है ५ [ओड़िआ, गुजराती भी]

—नित्य पाठ-साधन-भजन— एवं कर्मकाण्ड-हेतु

■1593 अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश ८०
■1809 गया श्राद्ध पद्धति २०
■1895 जीवच्छ्राद्धपद्धति ५०
■ 592 नित्यकर्म-पूजाप्रकाश ४५ [गुजराती भी]
■1416 गरुडपुराण-सारोद्धार (सानुवाद) २५
■1627 रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद २०
■1417 शिवस्तोत्ररत्नाकर २२
■1774 देवीस्तोत्ररत्नाकर २५
■1623 ललितासहस्रनामस्तोत्रम् ८ [तेलुगु भी]
■ 610 व्रतपरिचय ३०
■1162 एकादशी-व्रतका माहात्म्य— मोटा टाइप [गुजराती भी] १५
■1136 वैशाख-कार्तिक- माघमास-माहात्म्य २२
■1588 माघमासका माहात्म्य ५
■1899 श्रावणमास-माहात्म्य (सानुवाद) २७
■1367 श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा १०
■ 052 स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद २५ [तेलुगु, बँगला भी]
■1629 ,, ,, सजिल्द ३२
■1567 दुर्गासप्तशती— मूल, मोटा (बेड़िया) ३०
■ 117 ,, मूल, मोटा टाइप [तेलुगु, कन्नड भी] २०
■ 876 ,, मूल गुटका १०
■1727 ,, -मूल, लघु आकार १०
■1346 ,, सानुवाद मोटा टाइप २५
■ 118 ,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी] २२
■ 489 ,, सानुवाद, सजिल्द ३० [गुजराती भी]
■1281 ,, ,, (विशिष्ट सं०) ४०
■ 866 ,, केवल हिन्दी १५
■1161 ,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द ४०
■ 819 श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य २०
■ 206 श्रीविष्णुसहस्रनाम—सटीक ४
■1801 श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (हिन्दी-अनुवादसहित) ५

■ 226 श्रीविष्णुसहस्रनाम—मूल, २ [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी]
■1872 श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्-लघु १
■ 509 सूक्ति-सुधाकर १८
■ 207 रामस्तवराज—(सटीक) ३
■ 211 आदित्यहृदयस्तोत्रम्— २ हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी]
■ 224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र ४ [तेलुगु, ओड़िआ भी]
■ 231 रामरक्षास्तोत्रम्— २ [तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
■ 715 महामन्त्रराजस्तोत्रम् ४

—नामावलिसहितम्—

■1594 सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह ६५
■1599 श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् ६
■1600 श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1601 श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1663 श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1664 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1665 श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1706 श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1704 श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1705 श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1707 श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1708 श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1709 श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम् ५

■ 810 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम् ३
■1862 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्-सटीक १०
■ 495 दत्तात्रेय-वज्रकवच— ४ सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]
■ 563 शिवमहिम्नस्तोत्र [तेलुगु भी] ३
■1748 संतानगोपालस्तोत्र ५
■1850 शतनामस्तोत्रसंग्रह २०
■1885 वैदिक सूक्त-संग्रह २४
■ 054 भजन-संग्रह २५
■1849 भजन-सुधा १२
■ 229 श्रीनारायणकवच २ [ओड़िआ, तेलुगु भी]
■ 230 अमोघ शिवकवच २
■ 140 श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली २०
■ 142 चेतावनी-पद-संग्रह (दोनों भाग) २०
■ 144 भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह ९
■1355 सचित्र-स्तुति-संग्रह ५
■1800 पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह ६
■1092 भागवत-स्तुति-संग्रह
■1214 मानस-स्तुति-संग्रह १०
■1344 सचित्र-आरती-संग्रह १०
■1591 आरती-संग्रह—मोटा टाइप १०
■ 153 आरती-संग्रह ६
■1845 प्रमुख-आरतियाँ—पॉकेट ४
■ 208 सीतारामभजन ३
■ 221 हरेरामभजन— दो माला (गुटका) ३
▲ 385 नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी] २
■ 222 हरेरामभजन—१४ माला १२
■ 576 विनय-पत्रिकाके पैंतीस पद
■ 225 गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, २ हिन्दी पद्य, भाषानुवाद [तेलुगु, कन्नड ओड़िआ भी]
■1505 भीष्मस्तवराज ३
■ 699 गङ्गालहरी २
■1094 हनुमानचालीसा— हिन्दी भावार्थसहित ४
■1181 हनुमानचालीसा मूल (रंगीन) २
■ 227 ,, —(पॉकेट साइज) २ [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]
■ 695 हनुमानचालीसा—(लघु आकार)

[गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ भी] १
■ 228 शिवचालीसा— (असमिया भी) २
■1185 शिवचालीसा—लघु आकार १
■1525 हनुमानचालीसा— अति लघु आकार [गुजराती भी] १
■ 232 श्रीरामगीता ३
■ 383 भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी.... २
■ 851 दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा २
■1033 ,, —लघु आकार १
■ 203 अपरोक्षानुभूति ४
■ 139 नित्यकर्म-प्रयोग १०
■1861 दैनिक-चिन्तन-पुस्तिका ४५
■ 524 ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री ३
■1471 संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य ५
■ 210 सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण-बलिवैश्वदेवविधि— मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी] ४
■ 236 साधकदैनन्दिनी ४
■ 614 सन्ध्या २

— बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें —

■ 573 बालक-अङ्क (कल्याण-वर्ष २७)
■1316 बालपोथी (शिशु), रंगीन १०
■ 461 ,, ,, भाग-१ ३
■ 212 ,, ,, भाग-२ ३
■ 684 ,, ,, भाग-३ ३
■ 764 ,, ,, भाग-४ ८
■ 765 ,, ,, भाग-५ ८
■ 125 ,, ,, रंगीन, (भाग-१) ४
■1692 बालककी दिनचर्या रंगीन, ग्रन्थाकार १७
■1693 बालकोंकी सीख ,, २०
■1694 बालकके आचरण ,, २०
■1690 बालकके गुण ,, २५
■ 216 बालककी दिनचर्या ४
■ 214 बालकके गुण ५
■ 217 बालकोंकी सीख ४
■ 219 बालकके आचरण ४
■ 218 बाल-अमृत-वचन ३
■ 696 बाल-प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी] ४
■ 215 आओ बच्चो तुम्हें बतायें ४
■1689 ,, ,, ग्रन्थाकार, रंगीन १७
■ 213 बालकोंकी बोल-चाल ४
■ 145 बालकोंकी बातें
■1691 बालकोंकी बातें—रंगीन १२
■ 146 बड़ोंके जीवनसे शिक्षा [ओड़िआ भी] ८
■ 150 पिताकी सीख [गुजराती भी] १२
■ 396 आदर्श ऋषि-मुनि ६
■ 397 आदर्श देशभक्त ६
■ 398 आदर्श सम्राट् [गुजराती भी] ६
■ 402 आदर्श सुधारक ६
■ 399 आदर्श संत ६
■ 516 आदर्श चरितावली ५
■ 116 लघुसिद्धान्तकौमुदी, सजिल्द ३०
■1437 वीर बालक (रंगीन) १०
■1451 गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (रंगीन) १०
■1450 सच्चे-ईमानदार बालक-रंगीन १०
■1449 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (रंगीन) १०
■1448 वीर बालिकाएँ (रंगीन) १०
■ 727 स्वास्थ्य, सम्मान और सुख ३

— सर्वोपयोगी प्रकाशन —

■ 698 मार्क्सवाद और रामराज्य— स्वामी करपात्रीजी ७५
■1673 सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ १५
■1595 साधकमें साधुता २०
■ 202 मनोबोध ६

■1657 भलेका फल भला
■ 747 सप्त महाव्रत ३
■1300 महाकुम्भपर्व ३
■ 542 ईश्वर ५
■ 57 मानसिक दक्षता ३
■ 59 जीवनमें नया प्रकाश २०
■ 60 आशाकी नयी किरणें २०
■ 119 अमृतके घूँट २०
■ 132 स्वर्णपथ १५
■ 55 महकते जीवनफूल १६
■1461 हम कैसे रहें ? २८
■ 64 प्रेमयोग ८
■ 774 कल्याणकारी दोहा-संग्रह, २२ गीताप्रेस-परिचयसहित ५
■ 387 प्रेम-सत्संग-सुधामाला १५
■ 668 प्रश्नोत्तरी २
■ 501 उद्धव-सन्देश १८
■ 191 भगवान् कृष्ण [तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी] ५
■ 193 भगवान् राम [गुजराती भी] ६
■ 195 भगवान्पर विश्वास ६
■ 120 आनन्दमय जीवन १५
■ 130 तत्त्वविचार १०
■ 133 विवेक-चूड़ामणि [तेलुगु, बँगला भी] १२
■ 862 मुझे बचाओ, मेरा क्या कसूर ? २०
■ 131 सुखी जीवन १५
■ 122 एक लोटा पानी १५
▲ 701 गर्भपात उचित या...... ३ [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड भी]
■ 888 परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ [बँगला भी] १५
■ 134 सती द्रौपदी १२
■1624 पौराणिक कथाएँ १२
■1782 प्रेरणाप्रद कथाएँ १५
■1669 पौराणिक कहानियाँ १२
■ 137 उपयोगी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, कन्नड, गुजराती, बँगला भी] १०
■ 159 आदर्श उपकार— (पढ़ो, समझो और करो) १२
■ 160 कलेजेके अक्षर ,, १२
■ 161 हृदयकी आदर्श विशालता ,, १२
■ 162 उपकारका बदला ,, १२
■ 163 आदर्श मानव-हृदय ,, १२
■ 164 भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो) १२
■ 165 मानवताका पुजारी ,, १२
■ 166 परोपकार और सच्चाईका फल ,, १२
■ 510 असीम नीचता और असीम साधुता १०
■ 157 सती सुकला ४
■ 147 चोखी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, गुजराती, मराठी भी] ६
■ 129 एक महात्माका प्रसाद [गुजराती भी] २०
■1688 तीस रोचक कथाएँ १२
■ 151 सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला १२
■1363 शरणागति रहस्य २०

— चित्रकथा —

■1114 श्रीकृष्णलीला (राजस्थानी- शैली, १८वीं शताब्दी) १७
■1647 देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ २०
■1646 महाभारतके प्रमुख पात्र १२
■ 190 बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला २०
■ 868 भगवान् सूर्य (ग्रंथाकार)

कोड — मूल्य रु०

- ■1156 एकादश रुद्र (शिव) ५०
- ■1032 बालचित्र-रामायण-पुस्तकाकार ४
- ■ 869 कन्हैया [बँगला, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी] १०
- ■ 870 गोपाल [बँगला, तेलुगु, तमिल भी] १०
- ■ 871 मोहन [बँगला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी] १२
- ■ 872 श्रीकृष्ण [बँगला, तमिल, तेलुगु भी] १०
- ■1018 नवग्रह—चित्र एवं परिचय [बँगला भी] १२
- ■1016 रामलला [तेलुगु, अंग्रेजी भी] २०
- ■1116 राजा राम [तेलुगु भी] २०
- ■1017 श्रीराम १७
- ■1394 भगवान् श्रीराम (पुस्तकाकार) १०
- ■1418 श्रीकृष्णलीला-दर्शन ,, १०
- ■1278 दशमहाविद्या [बँगला भी] १०
- ■1343 हर-हर महादेव २०
- ■ 829 अष्टविनायक [ओड़िआ, मराठी, गुजराती भी] १०

कोड — मूल्य रु०

- ■ 204 ॐ नमः शिवाय [बँगला, ओड़िआ, कन्नड भी] २०
- ■ 787 जय हनुमान् [तेलुगु, ओड़िआ भी] २०
- ■1794 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र, १७
- ■ 779 दशावतार [बँगला भी] १०
- ■1215 प्रमुख देवता १०
- ■1216 प्रमुख देवियाँ १०
- ■1442 प्रमुख ऋषि-मुनि १७
- ■1443 रामायणके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी] १७
- ■1488 श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी] २०
- ■1537 श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ १७
- ■1538 महाभारतकी प्रमुख कथाएँ १७
- ■1420 पौराणिक देवियाँ १०
- ■1307 नवदुर्गा—पॉकेट साइज ४

कोड — मूल्य रु०

- ■ 205 नवदुर्गा [तेलुगु, गुजराती, असमिया, कन्नड, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी] १०
- ■ 537 बाल-चित्रमय बुद्धलीला ७
- ■ 194 बाल-चित्रमय चैतन्यलीला [ओड़िआ, बँगला भी] ८
- ■ 656 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ [तमिल, तेलुगु भी] १०
- ■ 651 गोसेवाके चमत्कार [तमिल भी] १०

रंगीन चित्र-प्रकाशन

- ▲1695 चित्र—भगवती सरस्वती ८
- ▲1582 चित्र भगवान् श्रीकृष्ण ८
- ▲ 237 जय श्रीराम—भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण १५
- ▲ 546 जय श्रीकृष्ण—भगवान् श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण १५
- ▲1001 जगज्जननी श्रीराधा ८

कोड — मूल्य रु०

- ▲1020 श्रीराधा-कृष्ण—युगल छवि ८
- ▲ 491 हनुमान्जी—(भक्तराज हनुमान्) ८
- ▲ 492 भगवान् विष्णु ८
- ▲1568 भगवान् श्रीराम-बालरूपमें ८
- ▲1351 सुमधुर गोपाल ८
- ▲ 560 लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप) ८
- ▲1674 ,, (प्लास्टिक कोटेड) १५
- ▲ 776 सीताराम—युगल छवि ८
- ▲ 548 मुरलीमनोहर—(भगवान् मुरलीमनोहर) ८
- ▲ 782 श्रीरामदरबारकी झाँकी ८
- ▲1290 नटराज शिव ८
- ▲ 630 सर्वदेवमयी गौ ८
- ▲ 531 श्रीबाँकेविहारी ८
- ▲ 812 नवदुर्गा (माँ दुर्गाके नौ स्वरूपोंका चित्रण) ८
- ▲ 437 कल्याण-चित्रावली—I ८
- ▲1320 कल्याण-चित्रावली—II ८

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

- ■1184 श्रीकृष्णाङ्क
- ■ 635 शिवाङ्क
- ■ 41 शक्ति-अङ्क
- ■ 616 योगाङ्क १३०
- ■ 627 संत-अङ्क
- ■ 604 साधनाङ्क
- ■1002 सं० वाल्मीकीय-रामायणाङ्क
- ■1773 गो-अङ्क १३०
- ■ 44 संक्षिप्त पद्मपुराण १७०
- ■ 539 संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण ६०
- ■1111 संक्षिप्त ब्रह्मपुराण ८५
- ■ 43 नारी-अङ्क
- ■ 659 उपनिषद्-अङ्क
- ■ 518 हिन्दू-संस्कृति-अङ्क
- ■ 279 सं० स्कन्दपुराण २३०
- ■ 40 भक्त-चरिताङ्क १६०
- ■ 573 बालक-अङ्क
- ■1183 सं० नारदपुराण १४०
- ■ 667 संतवाणी-अङ्क
- ■ 587 सत्कथा-अङ्क
- ■ 636 तीर्थाङ्क
- ■ 574 संक्षिप्त योगवासिष्ठ १२०
- ■1133 सं० देवीभागवत-मोटा टाइप १७०
- ■ 789 सं० शिवपुराण-(बड़ा टाइप) १५०
- ■ 631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण १५०
- ■ 572 परलोक-पुनर्जन्माङ्क
- ■1135 भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क
- ■ 517 गर्ग-संहिता ११०
- ■1113 नरसिंहपुराणम्—सानुवाद ७०
- ■1362 अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)
- ■1432 वामनपुराण ९०
- ■ 557 मत्स्यमहापुराण (सानुवाद) १८५
- ■ 657 श्रीगणेश-अङ्क
- ■ 42 हनुमान-अङ्क १००
- ■1361 सं० श्रीवाराहपुराण ७५
- ■ 791 सूर्याङ्क ८०
- ■ 584 सं० भविष्यपुराण १२०
- ■ 586 शिवोपासनाङ्क १००
- ■ 653 गोसेवा-अङ्क ८५
- ■1132 धर्मशास्त्रांक
- ■1131 कूर्मपुराण ८०
- ■ 448 भगवल्लीला-अङ्क ६५
- ■1044 वेद-कथाङ्क ८०
- ▲1542 भगवत्प्रेम-अंक-अजि० ६५
- ▲1467 भगवत्प्रेम-अङ्क-सजि० १०० (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)
- ■1592 आरोग्य-अङ्क (परिवर्धित संस्करण) १५०
- ■1189 सं० गरुडपुराण १२०
- ■1610 देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क ९०
- ■1734 अवतार-कथाङ्क
- ■1793 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध) १००
- ■1842 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (उत्तरार्द्ध) १००

Annual Issues of Kalyan-Kalpataru

- ▲1395 Woman No. 40
- ▲1397 Manusmrti No. 40
- ▲1398 Hindu Samskrti No. 40
- ▲1396 Garg Samhita Number (Part-I) 40
- ▲1841 Jaiminiya Mahabharata (Aśwamedhika Parva) (Part I) 40
- ▲1847 Jaiminiya Mahabharata (Aśwamedhika Parva) (Part II) 40

अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

बँगला

- ■1577 श्रीमद्भागवतपुराण सटीक, भाग-I १७०
- ■1744 श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीक (भाग-२) १५०
- ■1785 भागवतेरमणिमुक्तेर १५
- ■1662 श्रीचैतन्यचरितामृत १२०
- ■1603 ईशादि नौ उपनिषद् ६०
- ■1786 मूल वाल्मीकीयरामायण ५
- ■1839 कृतिवासीरामायण ११०
- ■1901 साधन समर ११०
- ■1574 संक्षिप्त महाभारत-भाग-I १४०
- ■1660 ,, ,, भाग-II १५०
- ■ 763 गीता-साधक-संजीवनी परिशिष्टसहित १५०
- ■1118 गीता-तत्त्व-विवेचनी ८०
- ■1851 गीता रसामृत ७५
- ■ 556 गीता-दर्पण ५०
- ■1736 गीता-प्रबोधनी ३५
- ■1489 गीता-दैनन्दिनी (२०११) ५५
- ■ 013 गीता-पदच्छेद ३५
- ■1444 गीता-ताबीजी—सजिल्द ४
- ■1455 गीता-लघु आकार २
- ■1322 दुर्गासप्तशती—सटीक २२
- ■1604 पातञ्जलयोगदर्शन १२
- ■1460 विवेक चूडामणि १२
- ■1075 ॐ नमः शिवाय (चित्रकथा) २०
- ■1787 महावीर हनुमान् (,,) २०
- ■1043 नवदुर्गा (चित्रकथा) १०
- ■1439 दश महाविद्या (,,) १२
- ■1292 दशावतार (,,) १०
- ■1096 कन्हैया (,,) १२
- ■1097 गोपाल (,,) १०
- ■1892 सीतापतिराम (,,) १७
- ■1893 राजाराम (,,) १७
- ■1891 रामलला (,,) २०
- ■1098 मोहन (,,) १०
- ■1123 श्रीकृष्ण (,,) १०
- ■1888 जय शिवशंकर (,,) १७
- ■1889 प्रमुख ऋषिमुनि (,,) १७
- ■1495 बालचित्रमय चैतन्यलीला ८
- ■1393 गीता भाषा-टीका (पॉकेट साइज) सजि. १४
- ■1454 स्तोत्ररत्नावली २४
- ■1854 भागवतरत्नावली १४
- ■1659 श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम १
- ■1852 रामरक्षास्तोत्र—लघु आकार १
- ■1853 आमेदेरलक्ष्य और कर्तव्य १०
- ■ 496 गीता-भाषा-टीका (पॉकेट) ८
- ■1834 श्रीमद्भगवद्गीता (मूल) एवं विष्णुसहस्रनाम ७
- ▲1581 गीतार-सारात्सार ६
- ■1496 परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ १०
- ▲1795 मनको वश करनेके कुछ उपाय व आनन्दकी लहरें ४
- ▲ 275 कल्याण-प्राप्तिके उपाय १८
- ▲1305 प्रश्नोत्तर मणिमाला १०
- ▲ 395 गीतामाधुर्य ७
- ▲1102 अमृत-बिन्दु ६
- ■1356 सुन्दरकाण्ड—सटीक १०
- ▲ 816 कल्याणकारी प्रवचन ६
- ▲1838 जीवनोपयोगी प्रवचन ८
- ▲ 276 परमार्थ-पत्रावली (भाग-१) ५
- ▲1306 कर्तव्य साधनासे भगवत्प्राप्ति ५
- ▲1119 ईश्वर और धर्म क्यों? १२
- ▲1456 भगवत्प्राप्तिका पथ व पाथेय ८
- ▲1580 अध्यात्मसाधनाय कर्महीनतानय ६
- ▲1452 आदर्श कहानियाँ ८
- ▲1453 प्रेरक कहानियाँ ६
- ■1513 मूल्यवान् कहानियाँ १०
- ▲1469 सब साधनोंका सार ४
- ▲1478 मानवमात्रके कल्याणके लिये १०
- ▲1359 जिन खोजा तिन पाइयाँ ६
- ▲1115 तत्त्वज्ञान कैसे हो? ६
- ▲1303 साधकोंके प्रति ४
- ▲1358 कर्म रहस्य ५
- ▲1122 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? ३
- ▲1742 शरणागति ४
- ▲1784 प्रेमभक्ति प्रकाश तथा ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप ३
- ▲ 625 देशकी वर्तमान दशा.... ४
- ▲ 428 गृहस्थमें कैसे रहें ? ५
- ▲ 903 सहज साधना ३
- ▲1368 साधना ३
- ▲1415 अमृतवाणी १०
- ▲ 312 आदर्श नारी सुशीला ३
- ▲1541 साधनके दो प्रधान सूत्र ४
- ▲ 955 तात्त्विक प्रवचन ४
- ■1103 मूल रामायण एवं रामरक्षास्तोत्र ३
- ■1652 नवग्रह (चित्रकथा) १०
- ▲ 449 दुर्गतिसे बचो सच्चा गुरु कौन? ३
- ▲ 956 साधन और साध्य ४
- ▲1579 साधनार मनोभूमि ६
- ▲ 330 नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र २
- ▲ 762 गर्भपात उचित या अनुचित" ३
- ▲ 848 आनन्दकी लहरें २
- ■1881 हनुमानचालीसा—सटीक २
- ■1880 हनुमानचालीसा—लघु १
- ■ 626 हनुमानचालीसा २
- ■1743 शिवचालीसा, लघु आकार १
- ■1797 स्तवमाला २
- ▲1319 कल्याणके तीन सुगम मार्ग २
- ▲1651 हे महाजीवन! हे महामरण! २
- ▲1293 शिखा धारणकी......... २
- ▲ 450 हम ईश्वरको क्यों मानें? २
- ▲ 849 मातृशक्तिका घोर अपमान २
- ▲ 451 महापापसे बचो २
- ▲ 469 मूर्तिपूजा १
- ▲ 296 सत्संगकी सार बातें १
- ▲ 443 संतानका कर्तव्य १
- ■1835 सत्यनिष्ठ साहसी बालक बालिकादेर कथा १५

कोड		मूल्य रु०
▲1140	भगवान्‌के दर्शन प्रत्यक्ष......	२
	मराठी	
■1314	श्रीरामचरितमानस सटीक, मोटा टाइप	१७०
■1687	सुन्दरकाण्ड, सटीक	६
■1508	अध्यात्मरामायण	७०
■784	ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका	१५०
■1808	श्रीतुकाराममहाराजांची गाथा	८५
■1817	पाण्डव-प्रताप	११०
■1836	श्रीगुरुचरित्र	८५
■1780	श्रीदासबोध, मझला साइज	७५
■1781	दासबोध (गद्यरूपान्तरासह)	१२०
■853	एकनाथी भागवत—मूल	१४०
■1678	श्रीमद्भागवतमहापुराण, (खण्ड-१)	१५०
■1735	श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीक (खण्ड-२)	१५०
■1776	श्रीमद्भागवतमहापुराण (केवल मराठी अनुवाद)	१७०
■7	गीता-साधक-संजीवनी टीका	१२०
■1304	गीता-तत्त्व-विवेचनी	९०
■1474	श्रीसकल संतवाणी (भाग-१)	७०
■1475	,, ,, (भाग-२)	१८०
■1071	श्रीनामदेवांची गाथा	७५
■859	ज्ञानेश्वरी—मूल मझला	५०
■15	गीता-माहात्म्यसहित	३०
■504	गीता-दर्पण	३५
■748	ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका	३५
■1896	ज्ञानेश्वरी—माउली	१५
■14	गीता—पदच्छेद	३०
■1388	गीता—श्लोकार्थसहित (मोटा टाइप)	१०
■1257	गीता—श्लोकार्थसहित	८
■1168	भक्त नरसिंह मेहता	१२
■1671	महाराष्ट्रातील निवडक संतांची चरित्रे	८
▲429	गृहस्थमें कैसे रहें?	१०
▲1703	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	४
▲1387	प्रेममें विलक्षण एकता	८
■857	अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१२
▲391	गीतामाधुर्य	१०
▲1099	अमूल्य समयका सदुपयोग	९
▲1335	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲1155	उद्धार कैसे हो?	५
▲1716	भगवान् कैसे मिले?	७
▲1719	चिन्ता,शोक कैसे मिटे?	८
▲1717	मनुष्य जीवनका उद्देश्य	६
▲1074	आध्यात्मिक पत्रावली	६
▲1275	नवधा भक्ति	६
▲1386	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1340	अमृत-बिन्दु	६
▲1382	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	८
▲1210	जित देखूँ तित-तू	७
▲1330	मेरा अनुभव	८
■1277	भक्त बालक	६
■1073	भक्त चन्द्रिका	५
■1383	भक्तराज हनुमान्	६
■1778	जीवनादर्श श्रीराम	१७
▲886	साधकोंके प्रति	६
▲885	तात्त्विक प्रवचन	५
■1607	रुक्मिणी स्वयंवर	१२
■1640	सार्थ मनाचे श्लोक	५
■1333	भगवान् श्रीकृष्ण	६
■1331	कृष्ण भक्त उद्धव	४
■1682	सार्थ सं० देवीपाठ	५
■1332	दत्तात्रेय-वज्रकवच	३
■1732	शिवलीलामृत	४०
■1768	श्रीशिवलीलामृतांतील-अकरावा अध्याय	३
■1730	श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्	३
■1731	श्रीविष्णुसहस्रनामावलिः	३
■1729	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1670	मूल रामायण, पॉकेट साइज	३
■1679	मनाचे श्लोक, पॉकेट साइज	३
■1680	सार्थश्रीगणपत्यथर्वशीर्ष	२
■1683	सार्थ ज्ञानदेवी गीता	१०
■1810	कन्हैया (चित्रकथा)	१०
■1811	गोपाल (,,)	१०
■1812	मोहन (,,)	१०
■1813	श्रीकृष्ण (,,)	१०
■1828	रामलला (,,)	१७
■1829	श्रीराम (,,)	१७
■1830	राजाराम (,,)	१७
■1645	हरीपाठ (सार्थ सविवरण)	८
■855	हरीपाठ	३
■1169	चोखी कहानियाँ	४
▲1385	नल-दमयंती	३
▲1384	सती सावित्री-कथा	२
■1814	सामजिक संस्कार कथा	१२
■1815	घराघरातील संस्कार कथा	१२
▲880	साधन और साध्य	५
▲1006	वासुदेवः सर्वम्	४
▲1276	आदर्श नारी सुशीला	३
▲1334	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲1749	श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश व ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	३
▲899	देशकी वर्तमान दशा····	५
▲1339	कल्याणके तीन सुगम मार्ग और सत्यकी शरणसे मुक्ति	४
▲1428	आवश्यक शिक्षा	४
▲1341	सहज साधना	४
▲1711	शिखा (चोटी) धारण की आवश्यकता	२
▲802	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲882	मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲883	मूर्तिपूजा	२
■1746	मनोबोधभक्तिसूत्र	८
▲884	सन्तानका कर्तव्य	२
▲1279	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1613	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	९
▲1642	प्रेमदर्शन	१०
▲1641	साधनकी आवश्यकता	८
▲901	नाम-जपकी महिमा	२
▲900	दुर्गतिसे बचो	२
▲1171	गीता पढ़नेके लाभ	२
▲902	आहार-शुद्धि	
▲1170	हमारा कर्तव्य	२
▲881	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	६
▲898	भगवन्नाम	५
▲1578	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१४
■1779	भलेका फल भला	३
	गुजराती	
■1533	श्रीरामचरितमानस—बड़ी, सटीक (वि०सं०)	२४०
■799	,, ग्रन्थाकार	१७०
■1430	,, मूल, मोटा	८०
■1552	भागवत—सटीक (खण्ड-१)	१३०
■1553	भागवत—सटीक (खण्ड-२)	१३०
■1608	श्रीमद्भागवत-सुधासागर	२२०
■1326	सं० देवीभागवत	१७०
■1798	सं० महाभारत (खण्ड-१)	१८५
■1799	सं० महाभारत (खण्ड-२)	१८५
■1286	संक्षिप्त शिवपुराण	१५०
■1650	तत्त्वचिन्तामणि, ग्रन्थाकार	८०
■1630	साधन-सुधा-सिन्धु	१००
■467	गीता-साधक-संजीवनी	१२०
■1313	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१००
■785	श्रीरामचरितमानस—मझला, सटीक	८०
■878	श्रीरामचरितमानस—मूल मझला	५०
■879	,, —मूल गुटका	३५
■1637	सुन्दरकाण्ड-सटीक, मोटा टाइप	२०
■1365	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश	४५
■1565	गीता-मोटे अक्षरवाली सजिल्द	२५
■1668	एकादशीव्रतका माहात्म्य	१५
■12	गीता-पदच्छेद	३०
■1315	गीता—सटीक, मोटा टाइप	२०
■1366	दुर्गासप्तशती—सटीक	२२
■1634	,, ,, सजिल्द	३०
■1227	सचित्र आरतियाँ	१०
■936	गीता छोटी—सटीक	८
■1034	गीता छोटी—सजिल्द	१४
■1636	श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, मोटा टाइप	८
■1225	मोहन— (चित्रकथा)	१०
■1224	कन्हैया—(,,)	१०
■1228	नवदुर्गा—(,,)	१२
■1656	गीता-तावीजी, मूल, सजिल्द	४
■948	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	६
■1085	भगवान् राम—	६
■950	सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका	३
■1199	सुन्दरकाण्ड—मूल लघु आकार	३
■1823	विनय-पत्रिका	३०
■1226	अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१०
■613	भक्त नरसिंह मेहता	१२
▲1518	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	१०
▲1486	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१४
▲1164	शीघ्र कल्याणके सोपान	१२
▲1146	श्रद्धा, विश्वास और प्रेम	१२
▲1144	व्यवहारमें परमार्थकी कला	१०
▲1062	नारीशिक्षा	१०
▲1129	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	१०
■1400	पिताकी सीख	१०
■1425	वीर बालिकाएँ	५
■1423	गुरु, माता-पिताके भक्त बालक	६
■1422	वीर बालक	६
■1424	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ	६
■1258	आदर्श सम्राट्	५
▲1128	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श	८
▲1061	साधन नवनीत	९
▲1520	कर्मयोगका तत्त्व (भाग—१)	१०
▲1264	मेरा अनुभव	८
▲1046	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	७
■1142	भक्त सरोज	७
▲1211	जीवनका कर्तव्य	१०
▲404	कल्याणकारी प्रवचन	७
▲877	अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति	१०
▲818	उपदेशप्रद कहानियाँ	८
▲1265	आध्यात्मिक प्रवचन	८
▲1516	परमशान्तिका मार्ग (भाग-१)	१०
▲1504	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	१०
■1212	एक महात्माका प्रसाद	२०
▲1539	सत्संगकी मार्मिक बातें	७
▲1457	प्रेममें विलक्षण एकता	८
▲1655	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	८
▲1503	भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भावकी प्रधानता	८
▲1325	सब जग ईश्वररूप है	५
▲1052	इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति	६
▲1878	जन्ममरणसे छुटकारा	८
■934	उपयोगी कहानियाँ	८
■1084	भक्त महिलारत्न	६
■875	भक्त सुधाकर	६
▲1067	दिव्य सुखकी सरिता	६
▲933	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१०
▲1295	जित देखूँ तित-तू	७
▲943	गृहस्थमें कैसे रहें?	८
▲1260	तत्वज्ञान कैसे हो?	६
▲1263	साधन और साध्य	५
▲1294	भगवान् और उनकी भक्ति	५
▲932	अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲392	गीतामाधुर्य	१०
■1082	भक्त सप्तरत्न	५
■1087	प्रेमी भक्त	५
▲1077	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
▲940	अमृत-बिन्दु	७
▲931	उद्धार कैसे हो?	५
▲894	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
▲413	तात्त्विक प्रवचन	५
■895	भगवान् श्रीकृष्ण	६
▲1126	साधन-पथ	४
▲946	सत्संगका प्रसाद	५
▲942	जीवनका सत्य	६
▲1145	अमरताकी ओर	६
▲1066	भगवान्‌से अपनापन	६
■806	रामभक्त हनुमान्	६
▲1086	कल्याणकारी प्रवचन (भाग-२)	५
▲1287	सत्यकी खोज	५
▲1088	एकै साधे सब सधै	४
■1399	चोखी कहानियाँ	६
▲889	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲1141	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	५
▲939	मातृ-शक्तिका घोर अपमान	३
▲1047	आदर्श नारी सुशीला	४
▲1059	नल-दमयन्ती	४
▲1045	बालशिक्षा	५
▲1063	सत्संगकी विलक्षणता	४
▲1064	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग	४
▲1165	सहज साधना	४
▲1151	सत्संगमुक्ताहार	४
■1401	बालप्रश्नोत्तरी	३
▲893	सती सावित्री	२
▲1177	आवश्यक शिक्षा	३
■1867	स्वास्थ्य, सम्मान और सुख	४
▲804	गर्भपात उचित या अनुचित"	२
▲1049	आनन्दकी लहरें	२
■937	विष्णुसहस्रनाम	२
▲1058	मनको वश करनेके उपाय एवं कल्याणकारी आचरण	२
▲1050	सच्चा सुख	२
▲1060	त्यागसे भगवत्प्राप्ति और गीता पढ़नेके लाभ	२
▲1840	एक संतकी वसीयत	२
■828	हनुमानचालीसा	२
▲844	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1055	हमारा कर्तव्य एवं व्यापार सुधारकी आवश्यकता	१.५०
▲1048	संत-महिमा	२
▲1310	धर्मके नामपर पाप	२
▲1179	दुर्गतिसे बचो	२
▲1178	सार-संग्रह, सत्संगके अमृत कण	२
▲1152	मुक्तिमें सबका अधिकार	१.५०
▲1207	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1206	धर्म क्या है? भगवान् क्या है?	२
▲1500	सन्ध्या-गायत्रीका महत्त्व	२
▲1051	भगवान्‌की दया	१.५०
■1198	हनुमानचालीसा—लघु आकार	१
■1648	,, —गुजराती, रोमन	३
■1649	हनुमानचालीसा, अति लघु आकार	१
▲1054	प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲938	सर्वोच्चपदप्राप्तिके साधन	१
▲1056	चेतावनी एवं सामयिक...	१
▲1053	अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर दयालु एवं न्यायकारी	१.५०
▲1127	ध्यान और मानसिक पूजा	१.५०
▲1148	महापापसे बचो	२
▲1153	अलौकिक प्रेम	१.५०
	तमिल	
■1426	साधक-संजीवनी (भाग-१)	१००
■1427	साधक-संजीवनी (भाग-२)	७५
■1843	श्रीमद्भागवतमहापुराण—दशम स्कन्द, सटीक	१३०
■800	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१२०
■1534	वा०रा० सुन्दरकाण्ड	८०
■1807	वा०रा०-सटीक (खण्ड-१)	२००
■1256	अध्यात्मरामायण	७०

कोड		मूल्य रु०
■ 823	गीता—पदच्छेद	४५
■ 743	गीता—मूलम्	२०
■ 795	गीता—भाषा	८
■1606	श्रीमन्नारायणीयम्, सटीक	७०
■1605	भागवत एकादश-स्कन्ध—सटीक	५५
■1618	वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड वचनमु	३५
■1619	वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड मूलम्	२५
■1890	कंबरामायण सुन्दरकाण्डम्	२५
▲ 389	गीतामाधुर्य	१०
■1788	श्रीमुरुगनतुदिमालै	१०
■1789	तिरुप्पावैविलक्कम्	१५
■ 365	गोसेवाके चमत्कार	१०
■1134	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
▲1007	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
▲ 553	गृहस्थमें कैसे रहें?	१२
▲ 850	संतवाणी—(भाग १)	८
▲ 952	" (" २)	८
▲ 953	" (" ३)	८
▲1353	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१०
▲1354	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	१०
■ 646	चोखी कहानियाँ	८
■ 608	भक्तराज हनुमान्	७
■1246	भक्तचरित्रम्	७
▲ 643	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	५
▲ 550	नाम-जपकी महिमा	२
▲1289	साधन-पथ	५
▲1480	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	९
▲1481	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	७
▲1482	भक्तियोगका तत्त्व	९
■ 793	गीता मूल-विष्णुसहस्रनाम	७
▲1117	देशकी वर्तमान दशा...	५
▲1110	अमृत-बिन्दु	८
▲ 655	एकै साधे सब सधै	७
▲1243	वास्तविक सुख	६
■ 741	महात्मा विदुर	६
▲ 536	गीता पढ़नेके लाभ, सत्यकी शरणसे मुक्ति	४
▲ 591	महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य	४
▲ 609	सावित्री और सत्यवान्	३
▲ 644	आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 568	शरणागति	५
▲ 805	मातृशक्तिका घोर अपमान	२
▲ 607	सबका कल्याण कैसे हो?	३
■ 794	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■ 127	उपयोगी कहानियाँ	८
■ 600	हनुमानचालीसा	३
▲ 466	सत्संगकी सार बातें	२
▲ 499	नारद-भक्ति-सूत्र	२
■ 601	भगवान् श्रीकृष्ण	१०
■ 642	प्रेमी भक्त उद्धव	८
■ 647	कन्हैया (चित्रकथा)	१५
■ 648	श्रीकृष्ण—(" ")	१५
■ 649	गोपाल— (" ")	१५
■ 650	मोहन— (" ")	१५
■1042	पञ्चामृत	
▲ 742	गर्भपात उचित या....	२.५०
▲ 423	कर्मरहस्य	५
▲ 569	मूर्तिपूजा	२
▲ 551	आहारशुद्धि	२
▲ 645	नल-दमयन्ती	६
▲ 606	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२
▲ 792	आवश्यक चेतावनी	३

कन्नड़

कोड		मूल्य रु०
■1112	गीता-तत्त्व-विवेचनी	८०
■1369 / 1370	गीता-साधक-संजीवनी (दो खण्डोंमें सेट)	१६०
■1728	सार्थ ज्ञानेश्वरी	१५०
■1739	श्रीमद्भागवतमहापुराण (सटीक) खण्ड-१	१५०
■1740	श्रीमद्भागवतमहापुराण (सटीक) खण्ड-२	१५०
■1558	अध्यात्मरामायण	८५
■1560	रामचरितमानस-सटीक	१३०
■1559	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-सुन्दरकाण्ड	७०
■ 726	गीता-पदच्छेद	३५
■ 718	गीता-तात्पर्यके साथ	२०
■1372	गीता-माहात्म्य	१०
■1723	श्रीभीष्मपितामह	१०
■1724	भक्त नरसिंह मेहता	१०
■1737	विदुरनीति	१५
■1726	प्रेमी भक्त	७
■1720	कृष्ण-भक्त उद्धव	४
▲1721	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	४
■1725	महात्मा विदुर	४
▲1722	बालकोंके कर्तव्य	४
■1816	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक	६
■1375	ॐ नमः शिवाय	२०
■1357	नवदुर्गा	१२
▲1109	उपदेशप्रद कहानियाँ	१२
▲ 945	साधन नवनीत	१४
■ 724	उपयोगी कहानियाँ	१०
▲1499	नवधा भक्ति	५
▲1498	भगवत्कृपा	४
▲ 833	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१०
■1827	भागवतके प्रमुख पात्र	२०
▲ 834	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	१०
■1107	भगवान् श्रीकृष्ण	६
■1288	गीता—श्लोकार्थ	९
▲ 716	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
■ 832	सुन्दरकाण्ड (सटीक)	८
■1819	कन्हैया (चित्रकथा)	१०
■1820	गोपाल (" ")	१०
■1821	मोहन (" ")	१२
■1822	श्रीकृष्ण (" ")	१२
■1825	श्रीराम (" ")	२०
■1824	रामलला (" ")	१७
■1826	राजाराम (" ")	१७
■1863	दशावतार (" ")	१०
■1864	प्रमुख ऋषि मुनि (" ")	१७
■1865	प्रमुख देवता (" ")	१२
■ 840	आदर्श भक्त	८
■ 841	भक्त सप्तरत्न	८
■ 843	दुर्गासप्तशती—मूल	१२
▲ 390	गीतामाधुर्य	९
▲1625	नारीशिक्षा	९
▲1626	अमृत-बिन्दु	८
▲ 720	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	१०
▲1374	अमूल्य समयका सदुपयोग	८
▲ 128	गृहस्थमें कैसे रहें?	७
■ 661	गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	५
■ 721	भक्त बालक	७
■ 951	भक्त चन्द्रिका	८
■ 835	श्रीरामभक्त हनुमान्	७
■ 837	विष्णुसहस्रनाम—सटीक	७
■ 842	ललितासहस्रनामस्तोत्र	६
■1373	गजेन्द्रमोक्ष	२
■1106	ईशावास्योपनिषद्	३
▲ 717	सावित्री-सत्यवान् और आदर्श नारी सुशीला	५
▲ 723	नाम-जपकी महिमा और.....	३
▲ 725	भगवान्‌की दया एवं···	३
▲ 722	सत्यकी शरणसे मुक्ति, गीता पढ़नेके लाभ	३
▲ 325	कर्मरहस्य	४
▲ 597	महापापसे बचो	१.५०
▲ 719	बालशिक्षा	४
▲ 839	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲1882	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	६
▲1371	शरणागति	४
▲ 836	नल-दमयन्ती	३
▲ 838	गर्भपात उचित या अनुचित···	२
■ 737	विष्णुसहस्रनाम एवं सहस्रनामावली	३
■ 736	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
■1105	श्रीवाल्मीकि रामायणम्-संक्षिप्त	२
■ 738	हनुमत्-स्तोत्रावली	२
▲ 593	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	
▲ 598	वास्तविक सुख	६
▲ 831	देशकी वर्तमान दशा तथा···	४

असमिया

कोड		मूल्य रु०
■ 714	गीता—भाषा-टीका-पॉकेट	८
■1564	महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव	८
■1222	श्रीमद् भागवतमाहात्म्य	८
■ 825	नवदुर्गा	५
▲624	गीतामाधुर्य	६
▲1487	गृहस्थमें कैसे रहें?	१०
▲1715	आदर्श नारी सुशीला	४
■1323	श्रीहनुमानचालीसा	२
■1515	शिवचालीसा	२
▲ 703	गीता पढ़नेके लाभ	१

ओड़िआ

कोड		मूल्य रु०
■1551	संत जगन्नाथदासकृत भागवत	१८०
■1750	सन्त जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध	२०
■1777	सन्त जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध	६०
■1121	गीता-साधक-संजीवनी	१५०
■1100	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१००
■1473	साधन-सुधा-सिन्धु	
■1463	रामचरितमानस—सटीक, मोटा टाइप	१७०
■1218	" मूल, मोटा टाइप	८०
■1831	श्रीमद्भागवतमहापुराण-I	१५०
■1832	श्रीमद्भागवतमहापुराण-II	१५०
■1298	गीता-दर्पण	५०
■1672	गीता-प्रबोधनी	३५
■ 815	गीता-श्लोकार्थसहित (सजिल्द)	२५
■1219	गीता-पञ्चरत्न	२५
■1702	गीता-ताबीजी	४
■1009	जय हनुमान् (चित्रकथा)	१७
■1250	ॐ नमः शिवाय (")	
■1010	अष्ट विनायक (")	१२
■1248	मोहन (")	१०
■1249	कन्हैया (")	१२
■ 863	नवदुर्गा (")	१२
■1494	बालचित्रमय चैतन्यलीला	७
■1157	गीता-सटीक, मोटे अक्षर	१५
■1465	गीता-अन्वयअर्थसहित पॉकेट साइज	२०
▲1511	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१०
■1476	दुर्गासप्तशती-सटीक	२०
▲1251	भवरोगकी रामबाण दवा	
▲1270	नित्ययोगकी प्राप्ति	६
▲1268	वास्तविक सुख	६
▲1209	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	१०
▲1464	अमृत-बिन्दु	७
▲1274	परमार्थ सूत्र-संग्रह	१०
▲1254	साधन नवनीत	
■1008	गीता—पॉकेट साइज	१०
▲ 754	गीतामाधुर्य	८
▲1208	आदर्श कहानियाँ	७
▲1139	कल्याणकारी प्रवचन	८
■1342	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	८
▲1205	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	८
▲1506	अमूल्य समयका सदुपयोग	९
▲1272	निष्काम श्रद्धा और प्रेम	१०
■1204	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	६
▲1299	भगवान् और उनकी भक्ति	५
■ 854	भक्तराज हनुमान्	५
▲1004	तात्त्विक प्रवचन	६
▲1138	भगवान्से अपनापन	६
▲1187	आदर्श भ्रातृप्रेम	
▲ 430	गृहस्थमें कैसे रहें?	५
▲1321	सब जग ईश्वररूप है	
▲1269	आवश्यक शिक्षा	६
▲ 865	प्रार्थना	३
▲ 796	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲1130	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	४
■1154	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■1200	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	५
▲1174	आदर्श नारी सुशीला	३
▲1507	उद्धार कैसे हो	६
■ 541	गीता-मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित	४
▲1614	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
■1644	गीता-दैनन्दिनी-पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (२०११)	५५
▲1635	प्रेरक कहानियाँ	६
▲1003	सत्संगमुक्ताहार	५
▲1512	साधनके दो प्रधान सूत्र	४
▲ 817	कर्मरहस्य	५
▲1078	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	४
▲1079	बालशिक्षा	४
▲1163	बालकोंके कर्तव्य	
▲1252	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲ 757	शरणागति	४
▲1186	श्रीभगवन्नाम	
▲1267	सहज साधना	४
▲1005	मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲1203	नल-दमयन्ती	३
▲1253	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य	
▲1220	सावित्री और सत्यवान्	२
▲ 826	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 798	गुरुतत्त्व	२
■ 856	हनुमानचालीसा	२
■1661	" " (लघु आकार)	१
▲ 797	सन्तानका कर्तव्य	२
■1036	गीता—मूल, लघु आकार	२
■1509	रामरक्षास्तोत्र	२
■1070	आदित्यहृदयस्तोत्र	२
■1068	गजेन्द्रमोक्ष	२
■1069	नारायणकवच	२
■1775	अमोघ शिवकवच	२
▲1089	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं?	२
▲1039	भगवान्‌की दया एवं भगवत्कृपा	२
▲1090	प्रेमका सच्चा स्वरूप	२
▲1091	हमारा कर्तव्य	२
▲1040	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1011	आनन्दकी लहरें	२
▲ 852	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1038	संत-महिमा	२
▲1041	ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके कुछ उपाय	२
▲1221	आदर्श देवियाँ	३
■1201	महात्मा विदुर	३
■1202	प्रेमी भक्त उद्धव	
■1173	भक्त चन्द्रिका	६

उर्दू

कोड		मूल्य रु०
■1446	गीता—उर्दू	१०

तेलुगु

कोड		मूल्य रु०
■1573	श्रीमद्भागवत-मूल मोटा टाइप	१२०
■1858	श्रीमदआन्ध्रमहाभागवतमु-दशम स्कन्धमु—सटीक	१२०
■1738	श्रीमद्भागवत संग्रहमु	८०
■1698	श्रीमन्नारायणीयम्—श्लोकार्थसहितम्	४०
■1699	श्रीमहाभागवत मकरंदालु	१५
■1767	श्रीपोतनभागवतमधुरिमलु	५०
■1632	महाभारत विराटपर्व	५५
■1352	रामचरितमानस-सटीक,ग्रन्थाकार	१६०
■1419	रामचरितमानस—केवल भाषा	९०

कोड	मूल्य रु०
■1557 वाल्मीकिरामायण-(भाग १)	१३०
■1622 ,, ,, (भाग-२)	१५०
■1745 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (भाग-३)	१५०
■1429 श्रीमद्वाल्मीकिरामायण सुन्दरकांड (तात्पर्यसहित)	७५
■1477 ,, ,, (सामान्य)	६५
■1714 गीता-दैनन्दिनी-पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (२०११)	५५
■1172 गीता-तत्त्व-विवेचनी	१००
■ 845 अध्यात्मरामायण	१००
■ 772 गीता-पदच्छेद-अन्वयसहित	३५
■ 914 स्तोत्ररत्नावली	२२
■1569 हनुमत्स्तोत्रावली	३
■1684 श्रीगणेशस्तोत्रावली	३
■1685 श्रीदेवीस्तोत्रावली	३
■1804 श्रीरामस्तोत्रावलि	३
■1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावलि	३
■1639 बालरामायण-लघु आकार	१
■1466 वाल्मीकीयरामायण-सुन्दरकाण्ड, मूल, पुस्तकाकार	३५
■ 924 ,, ,, मूल गुटका	२०
■1532 ,, ,, वचनमु	४०
■1026 पंच सूक्तमुलु-रुद्रमु	७
■1758 शिवपंचायतनपूजा	६
■1763 श्रीललितासहस्रनाम, त्रिशती एवं खड्गमालासहितम्	१०
■ 771 गीता—तात्पर्यसहित	२०
■ 910 विवेकचूडामणि	१५
▲ 904 नारद-भक्तिसूत्र मुलु (प्रेमदर्शन-)	१४
■ 959 कन्हैया (चित्रकथा)	१०
■ 960 गोपाल (,,)	१०
■ 961 मोहन (,,)	१०
■ 962 श्रीकृष्ण (,,)	१०
■ 963 रामलला (,,)	१७
■ 964 राजा राम (,,)	१७
■ 966 भगवान् सूर्य (,,)	१७
■ 965 दशावतार (,,)	१०
■1686 अष्टविनायक (,,)	१२
■ 967 रामायणके प्रमुख पात्र (,,)	१७
■ 968 श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र (,,)	२०

कोड	मूल्य रु०
■ 887 जय हनुमान् (चित्रकथा)	२०
■1301 नवदुर्गा (,,)	१०
■1859 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र (,,)	१७
■ 970 प्रमुख देवियाँ (,,)	१०
■ 971 बालचित्रमय श्रीचैतन्यलीला (,,)	८
■1753 भागवतकी प्रमुख कथाएँ (,,)	१७
■ 909 दुर्गासप्तशती—मूलम्	१५
■1029 भजन-संकीर्तनावली	२०
■1309 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
■1390 गीता तात्पर्य-पॉकेट, मोटा टाइप	१२
■ 691 श्रीभीष्मपितामह	१२
▲1028 गीतामाधुर्य	१२
▲ 915 उपदेशप्रद कहानियाँ	१०
▲1572 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
▲ 905 आदर्श दाम्पत्य-जीवनमु	१०
▲1757 आदर्श भातृप्रेम	६
■1526 गीता-मूल मोटे अक्षर, पॉकेट	८
■1570 गीता-ताबीजी	४
■1031 गीता—छोटी, पॉकेट साइज	८
■1571 गीता-लघु आकार	२
■ 929 महाभक्तुलु	८
■ 919 मंचि कथलु (उपयोगी कहानियाँ)	८
■1502 श्रीनामरामायणम् एवं हनुमान-चालीसा (लघु आकार)	१
▲ 766 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	८
▲ 768 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲ 733 गृहस्थमें कैसे रहें ?	८
■1879 परलोक और पुनर्जन्म...	१५
■ 908 नारायणीयम्—मूलम्	१५
■ 682 भक्त पञ्चरत्न	७
■ 687 आदर्श भक्त	६
■ 767 भक्तराज हनुमान्	७
■ 917 भक्त चन्द्रिका	८
■ 918 भक्त सप्तरत्न	८
■ 641 भगवान् श्रीकृष्ण	६
■ 663 गीता भाषा	७
■ 662 गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	४
■ 753 सुन्दरकाण्ड—सटीक	६
■ 685 भक्त बालक	५

कोड	मूल्य रु०
■ 692 चोखी कहानियाँ	५
▲1752 आदर्श कहानियाँ	७
▲1802 प्रेरक कहानियाँ	७
■1803 श्रीमद्भागवत पंचरत्नमुलु	२०
■1751 महात्मा विदुर	४
▲ 920 परमार्थ-पत्रावली	५
■ 930 दत्तात्रेय-वज्रकवच	५
■ 846 ईशावास्योपनिषद्	३
■ 686 प्रेमी भक्त उद्धव	४
■1023 श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्-सटीक	३
■1760 द्वादश ज्योतिर्लिंग महिमा	८
■1761 श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	८
■ 973 शिवस्तोत्रावली	३
■ 972 शतकत्रयम्	६
■1025 स्तोत्रकदम्बम्	४
■ 674 गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■ 675 सं० रामायणम्, रामरक्षास्तोत्रम्	३
▲ 906 भगन्तुडे आत्मेयुणु	३
■ 676 हनुमानचालीसा	३
■ 801 ललितासहस्रनाम	४
■ 974 ,, ,, (लघु आकार)	३
■1024 श्रीनारायणकवचमु तात्पर्यसहितमु	३
■1030 सन्ध्योपासनविधि	१२
▲ 927 भक्तियोगतत्त्वमु	१०
■ 688 भक्तराज ध्रुव	३
■ 670 विष्णुसहस्रनाम—मूल	२
■ 911 ,, -मूल (लघु आकार)	१
■1527 विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् नामावलिसहितम्	५
■ 912 रामरक्षास्तोत्र, सटीक	२
■ 677 गजेन्द्रमोक्षम्	२
■1531 गीता-विष्णुसहस्रनाम-मोटा	८
■ 732 नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
▲ 923 भगवन्तु दयालु न्यायमूर्ति	२
■1762 भजगोविंदम् मोहमुद्गर	४
▲1756 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	८
■1764 गोविन्दनामावलि और भजगोविन्दम्-लघु आकार	१
■1857 प्रश्नोत्तरी मणिरत्नमाला	४
▲ 913 भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनमु-नाम स्मरणमें	१.५०

कोड	मूल्य
▲ 760 महत्त्वपूर्ण शिक्षा	
▲ 761 एकै साधे सब सधै	
▲ 922 सर्वोत्तम साधन	
▲ 759 शरणागति एवं मुकुन्दमाला	
▲ 752 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	
▲ 734 आहारशुद्धि , मूर्तिपूजा	
▲ 664 सावित्री-सत्यवान्	
▲ 665 आदर्श नारी सुशीला	
▲ 921 नवधा भक्ति	
▲1759 वासुदेव सर्वम्	
▲ 666 अमूल्य समयका सदुपयोग	
▲ 672 सत्यकी शरणसे मुक्ति	
▲ 671 नामजपकी महिमा	
▲ 678 सत्संगकी कुछ सार बातें	
▲ 731 महापापसे बचो	
▲ 925 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	
▲1547 किसान और गाय	
▲ 758 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	
▲ 916 नल-दमयन्ती	
▲ 689 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	
▲ 928 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	
▲ 690 बालशिक्षा	
▲ 907 प्रेमभक्ति-प्रकाशिका	
▲ 673 भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द	१
▲ 926 सन्तानका कर्तव्य	
■1765 भलेका फल भला	

मलयालम

कोड	मूल्य
■ 739 गीता-विष्णुसहस्रनाम, मूल	
■ 740 विष्णुसहस्रनाम—मूल	

पंजाबी

कोड	मूल्य
■1697 गीता प्रबोधनी	
▲1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?	
▲1894 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	

नेपाली

कोड	मूल्य
■1609 श्रीरामचरितमानस—सटीक, मोटा टाइप	१
▲1621 मानवमात्रके कल्याणके लिये	

Our English Publications

Code	Title	Price
■1318	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text, Transliteration & English Translation)	200
■1617	Śrī Rāmacaritamānasa A Romanized Edition with English Translation	
■ 456	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation)	140
■ 786	,, ,, Medium	70
■1550	Sunder Kand (Roman)	15
■ 452, 453	Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 volumes	
■ 564, 565	Śrīmad Bhāgavata (With Sanskrit Text and English Translation) Set	
■ 1159, 1160	Śrīmad Bhāgavata Mahapurana only English Translation set of 2 volumes	150
■ 1080, 1081	Śrīmad Bhagavadgītā Sādhaka-Sañjīvanī (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Set of 2 Volumes	140
■ 457	Śrīmad Bhagavadgītā Tattva-Vivecanī (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary	100
▲ 783	Abortion Right or Wrong You Decide	2
■ 455	Bhagavadgītā (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	7
■ 534	,, (Bound)	12
■ 1658	Śrīmad Bhagavadgītā (Sanskrit text with hindi and English Translation)	15
■ 824	Songs from Bhartṛhari	3
▲ 783	Abortion Right or wrong you decide	2
■ 1491	Mohana (Picture Story)	12
■ 1643	Ramaraksastotram (With Sanskrit Text, English Translation)	2
■ 494	The Immanence of God (By Madan Mohan Malaviya)	3
■ 1528	Hanumāna Cālīsā (Roman) (Pocket Size)	3
■ 1638	,, Small size	2
■ 1492	Rāma Lalā (Picture Story)	20
■ 1445	Virtuous Children	15
■ 1545	Brave and Honest Children	15

By Jayadayal Goyandka

Code	Title	Price
▲ 477	Gems of Truth [Vol. I]	8
▲ 478	,, ,, [Vol. II]	8
▲ 479	Sure Steps to God-Realization	14
▲ 481	Way to Divine Bliss	6
▲ 482	What is Dharma? What is God?	2
▲ 480	Instructive Eleven Stories	5
▲ 1285	Moral Stories	14
▲ 1284	Some Ideal Characters of Rāmāyaṇa	8
▲ 1245	Some Exemplary Characters of the Mahābhārata	7
▲ 694	Dialogue with the Lord During Meditation	2
▲ 1125	Five Divine Abodes	4
▲ 520	Secret of Jñānayoga	15
▲ 521	,, ,, Premayoga	10
▲ 522	,, ,, Karmayoga	12
▲ 523	,, ,, Bhaktiyoga	15
▲ 658	,, ,, Gītā	6
▲ 1013	Gems of Satsaṅga	2
▲ 1501	Real Love	5

By Hanuman Prasad Poddar

Code	Title	Price
▲ 484	Look Beyond the Veil	8
▲ 622	How to Attain Eternal Happiness ?	10
▲ 483	Turn to God	8
▲ 485	Path to Divinity	8
▲ 847	Gopis'Love for Śrī Kṛṣṇa	4
▲ 620	The Divine Name and Its Practice	3
▲ 486	Wavelets of Bliss & the Divine Message	

By Swami Ramsukhdas

Code	Title	Price
▲ 1470	For Salvation of Mankind	12
▲ 619	Ease in God-Realization	6
▲ 471	Benedictory Discourses	6
▲ 473	Art of Living	
▲ 487	Gītā Mādhurya	
▲ 1101	The Drops of Nectar (Amṛta Bin...	
▲1523	Is Salvation Not Possible without a Guru?	
▲ 472	How to Lead A Household Life	
▲ 570	Let Us Know the Truth	
▲ 638	Sahaja Sādhanā	
▲ 621	Invaluable Advice	
▲ 474	Be Good	
▲ 497	Truthfulness of Life	
▲ 669	The Divine Name	
▲ 476	How to be Self-Reliant	
▲ 552	Way to Attain the Supreme Bliss	
▲ 562	Ancient Idealism for Modernday Living	

Special Editions

Code	Title	Price
■ 1411	Gītā Roman (Sanskrit te... Transliteration & Engli... Translation) Book Size	
■ 1584	,, (Pocket Size)	
■ 1407	The Drops of Nectar (By Swami Ramsukhdas)	
■ 1406	Gītā Mādhurya(,,)	
■ 1438	Discovery of Truth and Immortality (By Swami Ramsukhdas)	
■ 1413	All is God (,,)	
■ 1414	The Story of Mīrā Bāī (Bankey Behari)	

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याण-पथ (आत्मोद्धारके सुमार्ग)-पर ग्रसरित करनेकी प्रेरणा देना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि प्रेरणाप्रद एवं कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। १-'कल्याण' का वर्तमान वार्षिक सदस्यता-शुल्क डाक-व्ययसहित भारतमें अजिल्द विशेषाङ्कका रु०१७० (सजिल्दका रु० १९०) है। विदेशके लिये सजिल्द विशेषाङ्कका हवाई डाक (Air mail)-से US$45 (रु० २०००) । सदस्यता-शुल्कके साथ बैंक कलेक्शन चार्ज US$6 अतिरिक्त भेजना चाहिये। २-**'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं।** वर्षके मध्यमें बननेवाले ग्राहकोंको जनवरीसे ही अङ्क दिये जाते हैं। एक वर्षसे कमके लिये ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं। ३-**ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क १५ दिसम्बरतक 'कल्याण'-कार्यालय, गोरखपुर अथवा गीताप्रेसकी पुस्तक-दूकानोंपर अवश्य भेज देना चाहिये, जिससे उन्हें विशेषाङ्क रजिस्ट्रीसे भेजा जा सके।** जिन ग्राहक-सज्जनोंसे शुल्क-राशि अग्रिम प्राप्त नहीं होती, उन्हें विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा भेजनेका नियम है। वी०पी०पी० द्वारा 'कल्याण'-विशेषाङ्क भेजनेमें यद्यपि वी०पी०पी० डाक-शुल्कके रूपमें रु० १० ग्राहकको अधिक देना पड़ता है; परंतु अङ्क सुविधापूर्वक सुरक्षित मिल जाता है। **अतः सभी ग्राहकोंको वी०पी०पी० ठीक समयसे छुड़ा लेनी चाहिये।** पाँच वर्षके लिये भी ग्राहक बनाये जाते हैं, इससे आप प्रतिवर्ष शुल्क भेजने/वी०पी०पी० छुड़ानेके अतिरिक्त खर्चसे बच सकते हैं। ४-जनवरीका विशेषाङ्क रजिस्ट्री/वी०पी०पी०से प्रेषित किया जाता है। फरवरीसे दिसम्बरतकके अङ्क प्रतिमास भली प्रकार जाँच करके मासके प्रथम सप्ताहतक साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। यदि किसी मासका अङ्क माहके अन्तिम तारीखतक न मिले तो डाक-विभागसे जाँच करनेके उपरान्त हमें सूचित करना चाहिये। खोये हुए मासिक अङ्कोंके उपलब्ध होनेकी स्थितिमें पुनः भेजनेका प्रयास किया जाता है। ५-पता बदलनेकी सूचना समयसे भेज देनी चाहिये, जिससे अङ्क-प्राप्तिमें असुविधा एवं विलम्ब न हो। पत्रोंमें **ग्राहक-संख्या, पिनकोडसहित पुराना और नया—पूरा पता पढ़नेयोग्य सुस्पष्ट तथा सुन्दर अक्षरोंमें लिखना चाहिये।** ६-पत्र-व्यवहारमें 'ग्राहक-संख्या' न लिखे जानेपर कार्यवाही होना कठिन है। अतः 'ग्राहक-संख्या' प्रत्येक पत्रमें अवश्य लिखी जानी चाहिये। ७-जनवरीका विशेषाङ्क ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। वर्षपर्यन्त मासिक अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें भेजे जाते हैं। ८-**'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी स्थितिमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

'कल्याण' के पञ्चवर्षीय ग्राहक

पाँच वर्षके लिये सदस्यता-शुल्क (भारतमें) अजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ८५०, सजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ९५० है। फर्म, प्रतिष्ठान आदि भी ग्राहक बन सकते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण' का प्रकाशन बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों उतनेमें ही संतोष करना चाहिये।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)**

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे प्राप्त होता रहा है। **पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी वैशाख कृष्णपक्ष तृतीया (२० अप्रैल)-से सत्संगका आयोजन किया गया है।** इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। **इसके पूर्व चैत्र नवरात्रके प्रारम्भसे श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्नपाठका कार्यक्रम है।** गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको यहाँ पधारकर अवश्य उठाना चाहिये। गीताभवनमें संयमित साधक जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ निवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको जहाँतक सम्भव हो नहीं लाना चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम—२४९३०४**

प्र० ति० २०-१२-२०१०

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत-संख्या—NP/GR-13/2011-2013
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

दानधर्मकी महिमा

अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्॥
दानं तु कथितं तज्ज्ञैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्। न्यायेनोपार्जयेद्वित्तं दानभोगफलञ्च तत्॥
इक्षुभिः सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम्। ददाति वेदविदुषे स न भूयोऽभिजायते।
भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति॥
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः। तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः। गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥
वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः। अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्॥
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः। धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम्॥
वेदवित्सु ददज्ज्ञानं स्वर्गलोके महीयते। गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते।
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः॥
औषधं स्नेहमाहारं रोगिरोगप्रशान्तये। ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च॥
असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारसमन्वितम्। तीक्ष्णातपञ्च तरति छत्रोपानत्प्रदानतः॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे। तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥
प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायाञ्च विशेषतः। दानधर्मात्परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते॥

[**ब्रह्माजीने व्यासजीसे कहा—**] सत्पात्रमें श्रद्धापूर्वक किये गये अर्थ (भोग्यवस्तु)-का प्रतिपादन (विनियोग) दान कहलाता है—ऐसा दानधर्मको जाननेवाले विद्वानोंका कहना है। यह दान इस लोकमें भोग और परलोकमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक ही अर्थका उपार्जन करे; क्योंकि न्यायसे उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है। जो ईखकी हरी-भरी फसलसे युक्त या यव-गेहूँकी फसलसे सम्पन्न (शस्य-श्यामल) भूमिका दान वेदविद् ब्राह्मणको देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। भूमिदानसे श्रेष्ठ दान न हुआ है और न होगा ही। जलका दान करनेवाला तृप्ति (पूर्ण सन्तोष), अन्नका दान करनेवाला अविनाशी सुख, तिलदान करनेवाला अभीष्ट सन्तान तथा दीपदान करनेवाला उत्तम नेत्रज्योति प्राप्त करता है। भूमिका दान करनेवाला समस्त अभिलषित पदार्थ, स्वर्णका दान करनेवाला दीर्घ आयु, गृहका दान करनेवाला उत्तम भवनोंको तथा रजत (चाँदी)-का दान करनेवाला उत्तम रूप प्राप्त करता है। वस्त्र प्रदान करनेवाला चन्द्रलोक, अश्व प्रदान करनेवाला अश्विनीकुमारोंका लोक, वृषभका दान करनेवाला अखण्ड वैभव और गौका दान करनेवाला सूर्यलोक प्राप्त करता है। वाहन तथा शय्याका दान करनेवाला सुलक्षणा भार्या, भयभीतको अभयदान देनेवाला ऐश्वर्य, धान्य (अनाज आदि)-का दान करनेवाला शाश्वत सुख तथा ब्रह्मविद्या (वेदविद्या—अध्यात्मविद्या)-का दान करनेवाला शाश्वत ब्रह्मकी प्राप्ति करता है। वेदविद् ब्राह्मणको ज्ञानोपदेश करनेसे दिव्य लोकमें प्रतिष्ठा होती है तथा गायको घास देनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। ईंधन (अग्निको प्रज्वलित करने)-के लिये काष्ठ आदिका दान करनेपर व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। रोगियोंकी रोगशान्तिके लिये औषधि, तेल आदि पदार्थ एवं भोजन देनेवाला मनुष्य रोगरहित होकर सुखी और दीर्घायु हो जाता है। छत्र और जूतेका दान करनेसे मनुष्य प्रचण्ड धूपके कारण तीक्ष्ण तापवाले तथा तलवारके समान तीक्ष्ण धारवाली नुकीली पत्तियोंसे परिव्याप्त असिपत्रवन नामके नारकीय मार्गको पार कर जाता है। जो मनुष्य परलोकमें अक्षय सुखकी अभिलाषा रखता है, उसे संसार या घरमें जो वस्तु अपने लिये अभीष्टतम है तथा अत्यन्त प्रिय है, उस वस्तुका दान गुणवान् सुपात्रको करना चाहिये। उत्तरायण, दक्षिणायन, महाविषुवत्काल (तुला और मेषसंक्रान्तिका काल), सूर्य तथा चन्द्रग्रहणमें एवं संक्रान्तियोंके आनेपर दिया गया दान परलोकमें अक्षय सुख देनेवाला होता है। इस प्रकारका दान प्रयागादि तीर्थोंमें तथा गयामें विशेष महत्त्व रखता है। [भगवान्‌की प्रीतिके लिये बिना किसी कामनाके किया गया दान सर्वोपरि कल्याणकारी है।] दान-धर्मसे बढ़कर श्रेष्ठ धर्म इस संसारमें प्राणियोंके लिये कोई दूसरा नहीं है। **[गरुडपुराण]**